

# प्राचीन वार्ता-रहस्य

प्रथम भाग



सं १९९६

प्रकाशक -  
श्री विद्याविभाग कांकरोली



श्रीद्वारकेशो जयति

( श्रीद्वा. ग्र. माला का पुष्प १३ )

# प्राचीन वार्ता-साहित्य

प्रथम भाग

—०—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश, (व्रजभाषा)  
श्रीनाथदेव' कृत' संस्कृत अनुवाद एवं  
आवश्यक विवरण (गुजराती) सहित

—०—

सम्पादक:—

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

प्रकाशक:—

श्री विद्याविभाग-कांकरोली

सं. १९९६

श्रीवल्लभाब्द ४६१



प्रकाशक:—

पो. कण्ठमणि शास्त्री

संचालक

विद्याविभाग, कांकरोली.

प्रथमावृत्ति २००० { सर्व स्वत्व स्वाधीन.  
श्रीकृष्ण जयन्ती } मूल्य १)

---

धी वीरविजय प्रीन्टींग प्रेसमां रमणिकलाल, पी. कोठारीए  
छापी : ठे. रतनपोल : सागरनी खडकी : अमदावाद

---



# प्रास्ताविक

—०—

आज भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी भाषा को दिया जा रहा है। और यह गौरव, भाषातत्त्वज्ञों से छिपा नहीं है कि व्रजभाषा के द्वारा ही सर्वश में नहीं तो अधिकांश में उसे प्राप्त हुआ है। जिस की माधुरी पर मुग्ध हो कर अपनी मातृभाषा का मोह छोड़ते हुए अन्य भाषा भाषी भी जिस व्रजभाषा में हृदय के उद्गार उन सात्विक भावों को अभिव्यक्त करते थे, जिनके द्वारा मानव जीवन की सार्थकता समझी जाती है वह राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्राण है; और इस प्राण की प्रतिष्ठा करनेवाले भगवान् जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य हैं।

जिस समय यवनों की उच्छ्वलता से भारतीय संस्कृति के साथ उसकी अटल धर्मभावना लुप्त होती चली जा रही थी, देश की भाषा के सिंहासन पर विदेशी भाषा एक प्रकार से चढ़ बैठी थी। यह पाप हमारी उन कुचली हुई आत्माओं की विवश दृष्टि में हो रहा था जिन को अमृतका सन्देश सुना कर जाग्रत, उत्थित और प्रबुद्ध करने-वाला सं. १५३५ के पूर्व कोई महानुभाव प्रादुर्भूत नहीं हुआ था।

पाप प्रक्षालन के लिये निर्मलनोरा भागीरथी के अतिरिक्त अन्य कौन? वस भाषा के पाप प्रक्षालन के लिये भक्ति की भागीरथी प्रवाहित हुई आर श्रीवल्लभाचार्य तथा उनके सुपुत्र गोस्वामि श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरण ने भारतीय जनता को उसमें मज्जन के लिये उद्घोषणा कर दी। अष्टछाप की स्थापना ने धार्मिकता के अनुपान से भारतीयता को मरने से बचाया। आज हम देख रहे हैं हमारी भाषा,



हमारी संस्कृति, हमारा देश विषाद विपत्ति के निविडान्धकार से छुटकारा पा कर प्रकाश की किरणों के पडने से सचेष्ट हो गया है ।

द्वन्द्व परिचालन क्रम से एक समय इस के बाद वह आया जब नव शिक्षितोंने ब्रजभाषा का विरोध किया, पर वह ववंडर असन्मूल होने से स्वयमेव शान्त हो गया ।

साहित्य के पारखियोंने अपने अध्यवसाय, दक्षता और वास्तविक ज्ञान के सहारे ब्रजभाषा के प्रति पुनः लोगो की सद्भावना स्थापित की । और उसके अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित कर अक्षय पुण्य का उपार्जन किया ।

इसी ववंडर का एक छोटा हिस्सा 'अश्लीलता का आन्दोलन' था, जिसने समस्त प्राचीन साहित्य पर हडताल पोत दी थी, चाहे वह संस्कृत का वैदिक, पौराणिक, वैज्ञानिक साहित्य हो, चाहे भाषा का । पर इसकी मीमांसा लाख चेष्टा करने पर भी न की जा सकी कि वास्तव में अश्लीलता साहित्य में अपनी क्या परिभाषा रखती है ?

'घटं भिन्धात्, पटं छिन्धात्' की भावनानें इस अश्लीलता आंदोलन की हवा पा कर साम्प्रदायिक साहित्य की लहलही, हरीभरी, सत्य, शिव, और सुन्दर वाटिका पर भी चोट की, और झाड़झंखडों के साथ एक और से उन लताप्रतानों, सुरभित गुल्मों, फलित द्रुमों को भी साफ कर डालने का 'एलान' कर दिया, जिनसे देश, धर्म, समाज का मस्तिष्क नवीन रफुरणा की प्राप्ति कर सकता था । अस्तु

आर्य समाज के उपदेशकों की चेतावनी पा कर उठे हुए



सनातन धर्म के उपदेशकों की भांति भाषासाहित्य के प्रेमियों, पक्ष-पातियों, और आस्वादकों को मूर्च्छना जागृत हुई चारों ओर घोर विरोध होने लगा, पर क्रियात्मक नहीं वाचनिक, और वह भी मर्यादा की बांध तोड़ कर। जो सभ्य, शिक्षित समाज को उचित नहीं जँचा।

विरुद्ध आन्दोलन को दबाने के लिये रचनात्मक कार्य की आवश्यकता है और अनिवार्य यह है कि वास्तविकता को प्रकाशन में लाया जाय, जिसे देख कर विरोधी भावना यदि वह हठ मूलक नहीं है तो स्वयमेव कपूर हो जाय।

द्विदलात्मक व्रजभाषा साहित्य के गद्य पद्य पर यहां कहने की आवश्यकता नहीं है। उस पर विद्वानोंने यथेष्ट प्रकाश डाल दिया है। साहित्य को अभिरुचिने उसके पद्यात्मक साहित्य को बहुत कुछ प्रकाशित कर दिया है फिर भी अभी उतना संग्रह उपलब्ध है जिस के लिये समय, धन और कार्यकर्ता की आवश्यकता है। सूरदासजी, नन्ददासजी की अधिकांश अधिकांश रचना को छोड़ कर शेष अष्ट-छाप के कवियों की कृतियाँ बन्धनों में बंधी हुई उन्मुख और उद्ग्रीव होने की बाट जोह रही है। न जाने कब उनको वह उन्मुक्त वात प्रकाश प्राप्त होगा ?

इधर गद्य साहित्य की भी यही दशा है। अभी तक व्रजभाषा का जो साहित्य प्रकाशित हुआ है वह वार्तात्मक था, प्रकाशकों ने उसे विकृत अथवा अविकृत किसी भी रूप में प्रकाशित करनेका श्रेय प्राप्त किया, पर आवश्यकता थी अन्वेषण की। अद्यावधि मुद्रित



वार्ताओं का अधिकांश प्रकाशन जहां तक मुझे ज्ञात है किसी आदर्श पुस्तक के अभाव में ही हुआ है। जैसी कुछ भी पुस्तक संशोधित, परिष्कृत, परिवर्द्धित अथवा विकृत रूपमें प्राप्त हुई वह मुद्रित करा दी गई, उसके साथ न तो शंकाओंका समाधान करनेवाला, और न उसे प्रमाणित करनेवाला कोई अन्य साहित्य भी प्रकाशित किया गया जिस से उस के स्वरूप की रक्षा की जा सकती।

कुछ समय पूर्व हमारे मित्र भगवदीय द्वारकादासजी परिख के हृदय में श्रीवृद्धभाषीश प्रभु की स्फुरणा से ऐसी जागृति हुई और उन्होंने इस के लिये चेष्टा करने का संकल्प किया। उक्त मित्र ने भारी प्रयत्न, प्रचार एवं तत्परता से प्रस्तुत वार्ता साहित्य को नवीन रूपमें प्रकाशित करने का कार्य प्रारंभ किया। गुजराती भाषा भाषी होने पर भी व्रजभाषा के प्रति उनकी यह आस्था देख कर मुझे चकित हो जाना पडा। वास्तव में इस प्रकार की दृढ भावना वैष्णव धर्म का प्रभाव है जिसने सारे गुर्जर प्रान्त में व्रजभाषा साहित्य का, कीर्तन, वार्ता और पदों के द्वारा एक जालसा बिछा दिया है।

जब नागरी प्रचारिणी सभा, और हिन्दी साहित्य सम्मेलनने देश के विभिन्न भाषा भाषी प्रान्तों में एक हिन्दी भाषा के प्रचार की बात सोची भी नहीं थी, सोचना तो दूर उनका जन्म भी नहीं हुआ था उस के लगभग ३०० वर्ष पूर्व ही पुष्टिमार्गने समस्त गुर्जर प्रान्त में भाषा साहित्य का विस्तार कर दिया था, यही कारण है कि आज गुजरात में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं हो रही है वह तो वहाँ इस भक्तिमार्ग के द्वारा बहुत कुछ पनप चुकी है। अस्तु



उपर कहा जा चुका है कि प्राचीन वार्ताओ प्रकाशित करने के लिये हमारे उक्त मित्र ने उत्साह के साथ कार्य शुरू किया। उन्होंने न केवल उसका समस्त साहित्य ही एकत्रित किया, प्रेस कापी भी तैयार की और छपाने के लिये आर्थिक साहाय्य एकत्रित कर दिया। उन्होंने एक प्राचीन वार्ता की ( भावप्रकाश वारी ) पुस्तक अन्वेषण कर प्राप्त की जिसका लेखन सं. १७५२ है। जहां तक ध्यान है इस से प्राचीन वार्ता की ( भावप्रकाश वारी ) पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हुई।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता पर श्री हरिरायजीने भाव प्रकाश नाम से टिप्पण किया है जिसमें उसके रहस्य का उद्घाटन किया गया है, इस प्रकार वार्ता के वृत्त की पुष्टि श्रीहरिरायजी जैसे विद्वान महानुभाव के लेख द्वारा होती है।

द्वारकादासजी ने उस के साथ एक काम यह भी किया कि उन सब पर गुजराती भाषा में एक अपना स्पष्टीकरण भी लगाया और चरित्र नायकों की ऐतिहासिक जीवनी पर भी प्रकाश डालने का श्रम किया। कहने का तात्पर्य यह कि वार्ता का वास्तविक रहस्य प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया और उस में यथा संभव त्रिविध भाव भरने की चेष्टा की गई है।

इस प्रकार छपाने योग्य तैयार पुस्तक और उसके लिये प्राप्त अर्थ साहाय्य पा कर विद्याविभाग को इस के लिये कुछ भी चेष्टा न करनी पड़ी, उल्टे उक्त महाशयने हमें ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन का



सौभाग्य सहज ही सौंप दिया। और यह ग्रन्थ श्रीनाथदेव कृत 'संस्कृत वार्ता मणि माला' नामक ग्रन्थ के आवश्यक भाग के सहित विद्या-विभाग से द्वा० प्र० माला के त्रयोदश पुष्प के रूप में निकाला जा रहा है। श्रीनाथदेव कृत उक्त वार्ता मणिमाला, अन्यत्र अभी तक तो अप्राप्य है उस की एक ही कापी विद्याविभागान्तर्गत सरस्वती भंडार में उपलब्ध हुई है।

श्रीनाथदेव का परिचय विशेषतया उपलब्ध नहीं होता। उन्होंने इस ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार अपना उल्लेख किया है।

“ इति श्रीशाचार्य वर्य पद भक्ति मता मया  
कृतया वैष्णव कथा मालयात्मा प्रसीदतु ॥२५॥ ”

“ इति श्रीविष्णुस्वामि मतानुवर्ति श्रीवल्लभ पद पद्म परा-  
गानुरागि महाशय मठेश विप्र श्रीनाथदेवेश संस्कृतायाँ वैष्णव वार्ता  
मालायाँ चतुरशीति वार्ता मणिकोत्तरं ससुमेरु पंचविंशतिमो मणिः  
सम्पूर्णेयं वैष्णव वार्ता माला पूर्वार्द्धे श्रीमतीत उत्तरार्द्धेपिसा ” २०१

३७०७।

३

पुस्तक में लेखन संवत् नहीं दिया है। अन्तिम अंक पद्यांक है जिससे ज्ञात होता है कि इसमें लगभग तीन हजार सातसो सात श्लोक अनुष्टुप् है।

इन्होंने अपनेको मठेश शब्दसे सम्बोधित किया है यदि मठेश और मठपति एकही पर्यायवाची शब्द है तो कहना पड़ेगा कि यह तैलंग ब्राह्मण और मठपति जयगोपाल भट्टके वंशज थे।



जयगोपाल भट्टने अपने रचित तैत्तरीयोपनिषद् भाष्यमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—प्रथम द्वितीय श्लोकांमे श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी को प्रणाम कर आगे श्लोक में वह लिखते है:—

श्रीमद्गोकुलनाथान् श्रीमत्कल्याणराय गुरुचरणान्  
नाम निवेदन दातृन् प्रणमामि मुहुर्मुहुः प्रेम्णा ॥३॥

तैलङ्ग यज्य चिन्तामणि तनयो मठपतित्व विल्यातः

जयगोपाल उपनिषद् भाष्यं वितनोतितैत्तरीयायाम् ॥४॥

इससे ज्ञात होता है कि मठपति जयगोपाल भट्ट तैलंग ब्राह्मण चिन्तामणि भट्ट के पुत्र और श्रीगोकुलनाथजी (च. पुत्र) तथा श्रीकल्याणरायजी के शिष्य थे, अतः उनके सम सामयिक थे ।

इनके मठपति होनेसे श्रीनाथदेव के विषयमें ऐसा अनुमान होता है कि यह इन्हीं के वंशज हों ।

अन्य किसी साधनके अभाव में इनके विषय में इतनाही कहकर हमें चुप रहना पड़ता है✕

✕ श्रीनाथभट्टना संबंधी भाई आ अनुमान योक्तसं थयुं छे के:—  
तेओते। (श्रीमनलाल शास्त्रीना कथनानुसार) काव्य रचना का सं. १७२४ते। छे. अने तेओओ संस्कृत भण्डीभाषा १७२७ लगभग रचेली छे. नहि तो श्रीहरिरायजुक्त “भावप्रकाश”नी कंठक आछी उपरेभा तेओ अवश्य तेमनी भण्डीभाषाभां लेत. श्रीहरिरायजुते भावप्रकाश सं. १७२६ पछी अने सं १७५० पहेलां लभायेले। छे. कारण के आ भावप्रकाशनुं नाम सं. १७२६भां रचायला “संप्रदायक कल्पद्रुम”भां स्पष्टतया प्राप्त थतुं नथी. आ श्रीनाथभट्टे “दुषणोद्धार” “जलमेह विवृत्ती” आदि अनेक ग्रन्थोनी रचना करेली छे. ते तेमना ग्रन्थोनी धतिश्री थी समजय छे. श्रीनाथभट्टे वार्ताभां पोतानी संस्कृत



कार्य की अधिकता के भयसे और उपयोगिता की दृष्टि से सम्प्रति वार्ता रहस्य का यह प्रथम भाग ही प्रकाशित किया जा रहा है । यदि इसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होगा तो अगले भाग भी अनुकूल संयोग पा कर प्रकाशित किये जावेंगे ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये जिन धनीमानी महानुभावों ने अर्थ साहाय्य दे कर इस पुण्यकार्य में हाथ बटाया है उनके नाम सम्पादक के विवरण में दिये जा रहे हैं । जिन के अर्थ साहाय्य से कुछ कापियाँ वैष्णवों में विनामूल्य वितर्ण की जावेगी इसके साथ हम इस बात को यहां प्रकाशित कर देना अपना धर्म समझते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक की विक्री से जो लाभ होगा वह इस के अग्रिम भागों और साम्प्रदायिक अप्रसिद्ध ग्रन्थों के प्रकाशन में ही लगाया जायगा ।

इस बात के प्रकट करने में मुझे हिचकिचाहट पैदा हो रही है कि हम जैसा चाहिये हिन्दी वार्ता को शुद्ध रूप में प्रकाशित न

વાણીને સાહિત્યિક અલંકારોથી બહુજ દુર રાખી એક સાદી સરળ અને કથાનક કરી છે. એ, તેમનું વિશેષ પાંડિત્ય સૂચન કરે છે. જેવો વિષય તેવી જ ભાષા હોય તો તે દીપી ઉઠે, તદનુસાર વાર્તાની ભાષા બહુ જ સરળ રાખી છે.

શાસ્ત્રીજીના કથનાનુસાર તેઓ અવશ્ય જયગોપાલ મહાપતિના વંશજ અથવા કુટુંબી હોવા ભ્રેષ્ઠએ. કારણકે જયગોપાલનો સમય શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીકલ્યાણરાયજીના સમકાલીન ઉપરોક્ત શ્લોકથી સિદ્ધ થાય છે. અને શ્રીનાથદેવનો જન્મ સમય લગભગ ૧૬૮૦નો પ્રાપ્ત થાય છે. એટલે અટકના અને સમયના સંબંધથી એમ અનુમાન સિદ્ધ થાય છે કે હો ન હો તેઓ મહાપતિના વંશજ જ હોવા ભ્રેષ્ઠએ.

“સંપાદક”



कर सके। इसका कारण कांकरोली के इतिहास के लिखने और छपानेकी मेरी व्यस्तता ही है। उक्त ग्रन्थ में जुटे रहने के कारण सच कहा जाय तो मुझे सावधानी से प्रेस कापी देखनेका पुरा अवसर भी नहीं मिला, प्रूफ संशोधनकी बात तो दूर।

इधर प्रस्तुत, ओर उक्त ग्रन्थ का शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक था अतः मैंने अपना काम अपने जिम्मे रखकर प्रस्तुत ग्रन्थका भार श्रीद्वारकादासजीको सौंपा और उसका उनको सम्पादक बना दिया। अतः उसकी उत्तमता का श्रेय उनको और त्रुटियों, न्यूनताओं, असावधानियों का दोष मुझ पर है। फिर भी इतना कहना पड़ेगा कि उक्त महानुभाव इस के लिये सतत सचेष्ट रहे हैं कि मेरे उपर किसी प्रकार का दोष न आने पाये। उनकी इस सहृदयता, कार्यतत्परता एवं सौशील्य पर एक डाह पैदा होती है।

सब से बड़ी असावधानी, और गुजराती कम्पोजीटरो के कारण पुस्तक में त्रुटियाँ रह गई होंगी फिर भी हम कहेंगे कि हिन्दी के कम्पोज करनेवालों ने अपनी दक्षता दिखलाई है जिन्हें ऐसा अवसर कदाचित् ही उपलब्ध होता है। पाठक उन त्रुटियों के लिये क्षमा करें और उन्हें यथास्थान सुधार ले। प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रक महोदय के भी हम आभारी हैं कि उन्होंने यह काम शीघ्रता और सुन्दरता के साथ पूरा किया।

सम्पादक प्रति तो हमें धन्यवाद देनेकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती, क्योंकि उन्होंने जिस निष्काम कर्मयोग के भक्तिके उंचे सिद्धान्त से काम किया है वह आदरणीय और अनुकरणीय है। हमारी



दृढ धारणा है कि यदि उक्त मित्र महोदय के हृदयमें उद्विग्नता उत्पन्न करने का अवसर न दिया जाय तो वे साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में बहुत कुछ कार्य कर सकते हैं, चाहिये केवल गुणग्राही।

विद्याविभाग के अध्यक्ष गो. श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (शु. सं. तृ. पीठाधीश्वर) और उपाध्यक्ष उनके अनुज उत्साहशील गो. श्री विट्ठलनाथजी महाराज ऐसे ही महानुभाव हैं। जिनके आश्रय में रहकर हमारे मित्र महोदयने साम्प्रदायिक गंभीर ज्ञान प्राप्त करनेमें बहुत कुछ अग्रेसरता दिखाई है। उनके विवरण से उनके परिज्ञान, खोज और गंभीरता का पता लगेगा हमें उसे यहाँ प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उनके साथ इस कार्य में अथवा यों कहिये मेरे कार्य में अभिन्नभावसे परिश्रम करनेवाले मित्रद्वय पं. पुरुषोत्तम शास्त्रीजी (रोहरा निवासी सम्प्रति वीसनगर) तथा सरस्वती भंडार विद्याविभाग के व्यवस्थापक पं. लक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी का उपकार विस्मृत नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिक प्रसिद्ध पत्रकार पं. वसन्तराम शास्त्रीजी (अहमदाबाद) का सौजन्य भी भूला नहीं जा सकता जिन्होंने सम्पादक के लिये पुस्तक प्रकाशनमें प्रेस आदिकी सभी प्रकारकी सुविधाएँ सरल कर दी थी।

भगवान् करुणा वरुणालय श्री हरि प्रभु श्री द्वारकाधीश के चरणकमल स्मरण करते हुए हम अपने वक्तव्य से विराम लेते हैं। जिनके अनुग्रह बलसे हमें आगे भी इस प्रकारके पुण्य कार्यों के आयोजन का सौभाग्य अधिगत होगा। ॐ शान्तिः ३ ॥

सं. १९९६

श्र. श्रावण शु. १२/९६

ता. २८-७-३९

विधेय-

प्रकाशक-पो. कण्ठमणि शास्त्री.

संचालक विद्याविभाग

कांकरोली.





गो० श्री ब्रज भूषणात्मज

चि० श्री गिरिधर गोपाल

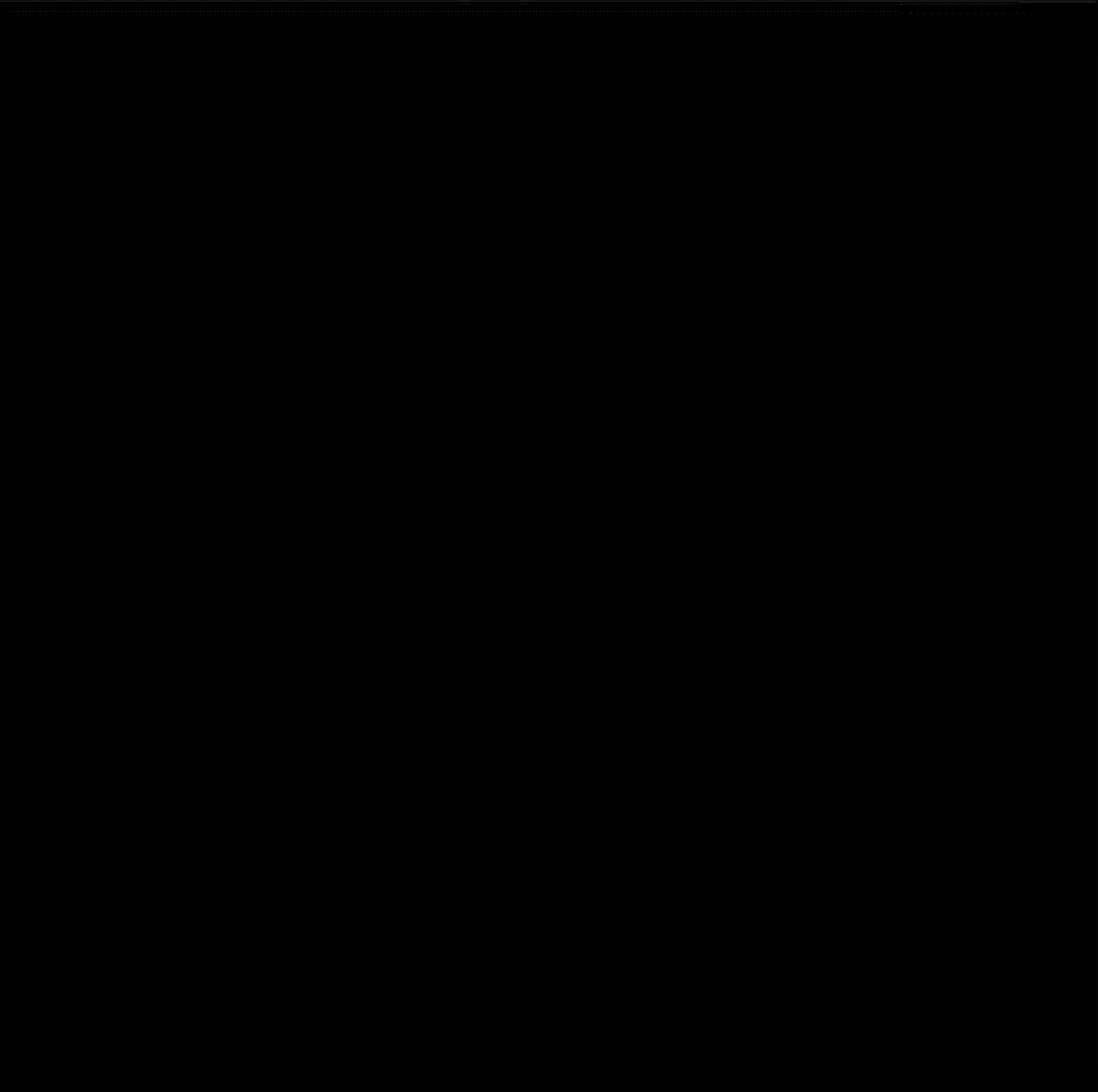
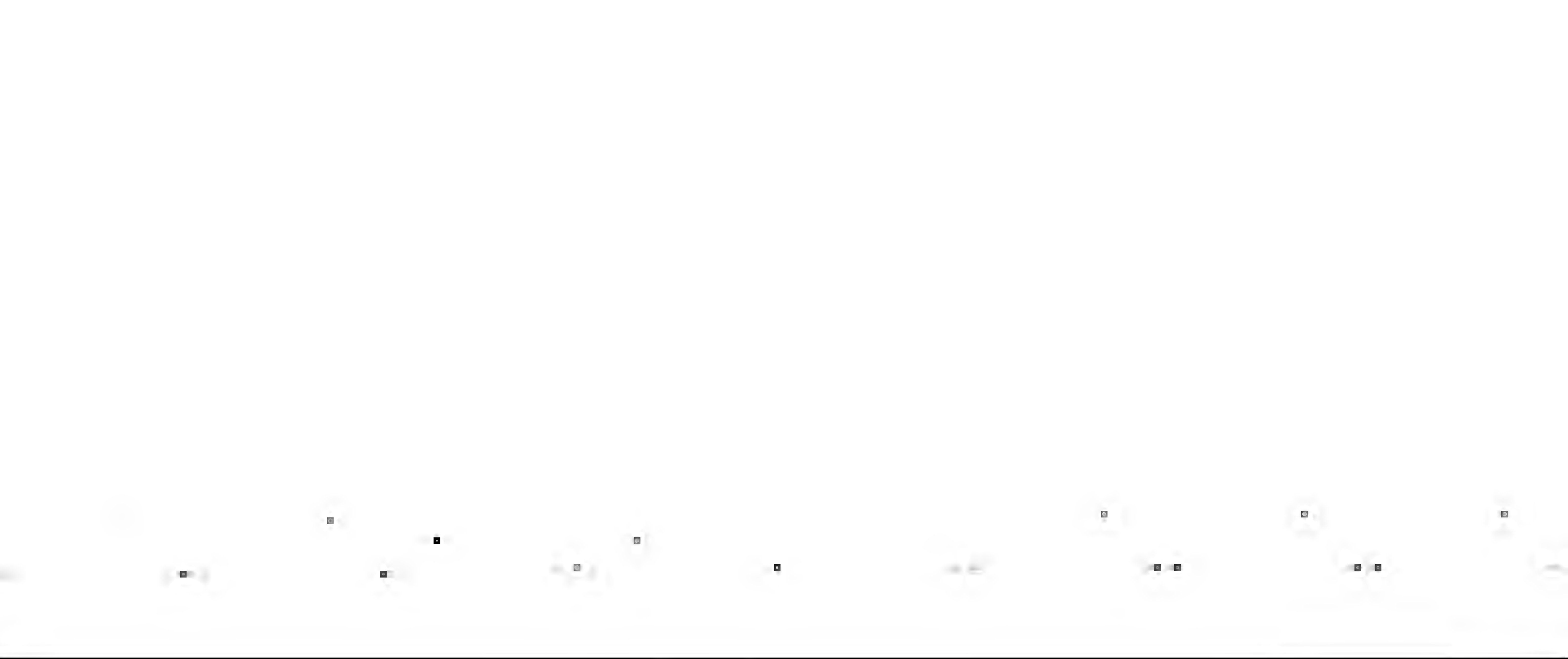


## अर्पण-पत्रिका.

- श्रीवल्लभ विठलेश गुरु कृष्णरूप श्रीनाथ ।  
द्वारकेश अठ सखनि नमि पर्यो प्रेम के पाथ ॥ १
- गोपीजन अनुभव प्रथम कियो कृष्ण के साथ ।  
पाछे दमला आदि जिन धर्यो चरन में माथ ॥ २
- अपने जन हित कारने वल्लभ भूतल आय ।  
सेवा सुख सरसाय पुनि ता हित कुल प्रगटाय ॥ ३
- मेरे तो गिरिवरधरन गोपाल हि इक नाम ।  
लगन लगाई छिप गए चितवन आठो जाम ॥ ४
- श्रीगिरिधर गोपालजू राखो चरनन पास ।  
दीन पुकारत करि दया जानि आपुनो दास ॥ ५
- लाल ही लाल पुकारके प्रान भये बेहाल ।  
अब तो प्यारे दोरिके आन दिखावो चाल ॥ ६
- मंद हसन चितवन तनक आज्ञा देत हुँकार ।  
नेन भ्रुकुटि कटि किकनी मन्मथ मोहन धार ॥ ७
- हेमंते प्रथमे मासे प्रथम दिना के अंत ।  
वरद देन सुकुमारिका छोडि छिपे कित कंत ॥ ८
- नाथ रावरी हित कथा कहँ लगि वरनों अंत ।  
छिनु छिनु में पोषत रहे ज्यों मृगशीर्ष हिमंत ॥ ९
- श्रीयमुना गिरिराजजू व्रजमंडल सब ठोर ।  
अपनो जन मो जानिके रखि लेहो निज ओर ॥ १०
- लालन आओ हरखके सेवक अपुनो जान ।  
हृदय करो सीतल प्रभु बिसरो नहिँ छनमान ॥ ११
- मेंजु कछुक चितन कीयो अपने मन के हेत ।  
गिरिधरजू अपनाइयो जानि प्रेम संकेत ॥ १२
- अवधीके दिन जात हे जो नहिँ पूरो आस ।  
प्रान पखेरु उडनको आतुर आवन पास ॥ १३

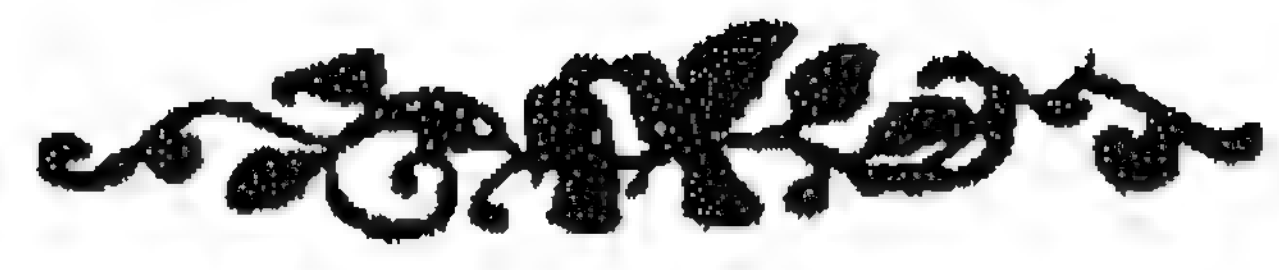
“तिहारो”







# મૂલ્ય સંબંધી કંઈક



આ પુસ્તક પ્રકાશન કાર્યમાં આજ સુધી લગભગ દરપ) જેટલી રકમ વૈ. સહયુક્ત્યો તરફની નિરપેક્ષ ભાવથી પ્રાપ્ત થઈ છે. તદ્વર્થ અમોએ પ્રત ૧૦૦૦ વિના મૂલ્યે નિમ્નોક્ત સજ્જનોને આપવાનો નિશ્ચય કર્યો છે:—

- ૧ વસંત પંચમી પહેલાં જેઓનાં નામ નોંધાઈ ગયાં છે તેમને,
- ૨ કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના ઉંચા દરજ્જાની પરીક્ષામાં ઉત્તીર્ણ થનાર બાલકોને,
- ૩ ભગવદ્ મંડલીઓ, પાઠશાળાઓ, અને નિષ્કંચન તેમજ વિરકત ભગવદ્દીયો ને,
- ૪ ગોસ્વામી બાલકો અને ખાસ સહાયક વિદ્વાનોને,

બાકીની એક હજાર પ્રત રૂ. ૧) થી આપવામાં આવશે. ( પોસ્ટેજ અલગ ) તેનાથી જે દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ થશે તે દ્વારા બાકીના વાર્તાના ભાગો પ્રકાશિત થશે.

“ શુદ્ધાદૈત ” ના ગ્રાહકોને પોણી કિંમતે આ ભાગ આપવામાં આવશે.

આ ભાગ અને બીજા ભાગો વિના મૂલ્યથી કોને આપવા અથવા કોને ન આપવા તે સમ્પાદકની ઇચ્છા ઉપર જ છે.

વ્યવસ્થાપક, “વાર્તા-સાહિત્ય”

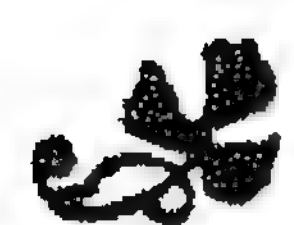


## विषय सूची

सं.	वार्ता	पृष्ठ
१	दामोदरदास हरसानी की वार्ता ... ..	२८
२	कृष्णदास मेघन की वार्ता ... ..	७१
३	दामोदरदास संभरवाले की वार्ता ... ..	९३
(३)	लौंडी की वार्ता ... ..	१२९
४	पद्मनाभदास की वार्ता ... ..	१३६
५	तुलसां की वार्ता ... ..	१७१
६	पारवती की वार्ता ... ..	१८५
७	रघुनाथदास की वार्ता ... ..	१८९
८	रजो की वार्ता ... ..	१९६

## संस्कृत वार्ता मणिमाला

सं.	वार्ता	पृष्ठ
१	दामोदरदास हरसानी की वार्ता ... ..	१
२	कृष्णदास मेघन की वार्ता ... ..	९
३	दामोदरदास संभरवाले की वार्ता ... ..	१८
४	पद्मनाभदास की वार्ता ... ..	२९
५	तुलसां की वार्ता ... ..	४१
६	पारवती की वार्ता ... ..	४३
७	रघुनाथदास की वार्ता ... ..	४५
८	रजो की वार्ता ... ..	४६





॥ શ્રીહરિઃ ॥

આજ સુધીમાં સંપ્રદાયમાં પ્રકટ નહિ થયેલું પુસ્તક  
કયું ?

શ્રી વિદ્યેશ્વર ચરિતામૃત અને અષ્ટછાપ

( સચિત્ર )

સંપ્રદાયમાં પહેલી જ વાર પ્રકટ થાય છે

તેમાં શું આવશે ?

શ્રીગુસાંધજીનું ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએથી આલેખેલું યાવત્રાપ્ય  
ચરિત્ર, ભાવાત્મક સ્વરૂપ અને પ્રતિદિનના ઐતિહાસિક તેમજ ભાવા-  
ત્મક અને સિદ્ધાંત પ્રતિપાદક પ્રસંગો, ઉપરાંત વંશવૃક્ષ અને સ્વવંશના  
શ્રીહરિરાયજી આદિ મહાનુભાવોનાં ઐતિહાસિક ચિત્રસહિત  
ચરિત્રોનો આમાં સંગ્રહ કરેલો છે.

ખીજું શું ?

અષ્ટછાપની સ્થાપનાનું ઐતિહાસિક વર્ણન અને અષ્ટછાપનાં  
ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી આલેખેલાં ચરિત્રો ઉપરાંત સાંપ્રદાયિક અન્ય  
કવિગણોના જીવન ચરિત્રો તેમજ સંકટો ઐતિહાસિક અને ભાવાત્મક  
પદો આપવામાં આવ્યાં છે.

ન્યોછાવર શી ?

અગાઉથી ગ્રાહક થનારને ફક્ત રૂ. ૨૦ પાછળથી રૂ. ૪)  
લગભગ આવશે. (પોસ્ટેજ અલગ)

ક્યારે પ્રકટ થશે ?

શ્રીગુસાંધજીના જન્મોત્સવના દિવસેજ. ફક્ત કેાપી એક હજારજ  
છપાશે માટે પહેલા ૧૭ મોકલી નામ નોંધાવો નહિતો રહી જશે.  
અત્યારથીજ વૈષ્ણવ સૃષ્ટિમાં આ પુસ્તકે ખળભળાટ પેદા કરી  
દીધો છે. આવું સાહિત્ય ઐતિહાસિક રૂપે આજ સુધીમાં પ્રાપ્ત નથી.  
રૂપર વૈષ્ણવોના ઐતિહાસિક પ્રસંગોનો સંપૂર્ણ સંગ્રહ આમાં આવી જશે.  
વિશેષમાં વિરોધીઓના મુખમર્દન કરતો અપ્રકાશિત સમગ્ર ઇતિહાસનો  
સમાવેશ કર્યો છે.

લખો અથવા મળો:—દ્વારકાદાસ “સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય”

વિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી



# વાર્તા સંબંધો સાદી સમજ

અમોએ આ વાર્તાઓ ( ૮૪ વૈષ્ણવોની ) સંવત ૧૬૯૭ ના ચૈત્ર સુદિ ૫ મે શ્રીગોકુલ મધ્યે લખી ચુકાયલા પુસ્તકના આધારે છપાવી છે. આનાથી વિશેષ પ્રાચીન ગ્રન્થ હજુ સુધી અમને મળ્યા નથી. આ વાર્તાના ગ્રન્થ સાથે અમોએ અન્ય પ્રાચીન કેટલીક વાર્તાની પ્રતો પણ મેળવી છે. જ્યાં જ્યાં પાઠાંતર પ્રાપ્ત થયું છે ત્યાં ત્યાં ફૂટનોટ આપી છે.

આ વાર્તાઓ શ્રીગોકુલનાથજીએ મૂળ વ્રજભાષામાંજ રચેલી છે અને તે જેમની તેમ વ્રજભાષામાંજ અમે અહીં આપી છે. વાર્તાના ગાંભીર્યાદિથી મુગ્ધ થઇને શ્રીયુત મઠેશ મહાનુભાવ શ્રીનાથભટ્ટે ( દૂષણોદ્ધાર આદિના કર્તા ) વિદ્વાનોના મનોરંજનાર્થ તે વાર્તાઓને સંસ્કૃતમાં શ્લોકબદ્ધ કરી છે.

આ વાર્તાઓનો સંસ્કૃત અનુવાદ તે તેની મહત્તાના દર્પણરૂપ છે. ફક્ત ચોર્યાશી વાર્તાના સંસ્કૃત અનુવાદરૂપે શ્રીનાથભટ્ટે લગભગ ૩૭૦૦ થી પણ વધુ શ્લોકો ચોળ્યા છે અને તે “મણિકા” રૂપે કાંકરોક્ષી “વિદ્યા-વિભાગ” માં વિદ્યમાન છે. આમાં કેટલાક પ્રસંગોમાં વિશેષ જાણવાનું મળતું હોવાથીજ તે ક્રમશઃ અમે દરેક વાર્તા સાથે આપેલા છે.

આ વાર્તાઓમાં કેટલું બધું સાંપ્રદાયિક અગાધ રહસ્ય સમાયતું છે તે જણાવવાને અર્થે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ દરેક વાર્તાના દરેક પ્રસંગ ઉપર મધ્યમભાષાથી\* ભાવનો પ્રકાશ કયો છે અને તે પણ વ્રજભાષામાં ગદ્યરૂપેજ.

આ બંને મહાનુભાવ વિદ્વાનોના વાર્તા ઉપરના અથાગ પ્રેમ અને પરિશ્રમથી સાધારણ બુદ્ધિનો મનુષ્ય પણ સમજી શકે છે કે સાંપ્રદાયિક તમામ ગ્રન્થોમાં વાર્તાઓ કેટલી ઉપયોગી હોવી જોઈએ ?

આ ઉપર્યુક્ત કથિત સાહિત્ય ઉપરાંત અમોએ સાંપ્રદાયિક આચાર્યો અને વિદ્વાનોના સહકારથી અન્ય પણ કેટલોક મહત્વપૂર્ણ

---

\* ન અત્યંત સ્પષ્ટ તેમજ ન અત્યંત ગૂઢ એવી ભાષામાં રહસ્યનું ઉદ્ઘાટન કર્યું છે. મહાકવિ નંદદાસજીના શબ્દોમાં કહીએ તો:—

“નાહિન ભઘરે ગૂઢ ન એસે મરહટ દેશ વધૂ કુચ જેસે ।”



સંગ્રહ આ પુસ્તકમાં કરેલો છે. જેવો કે:—પ્રાચીન ઐતિહાસિક ગ્રંથોનું અત્યંત સંશોધન કરીને આ વાર્તાઓમાં રહેલો અને તેને અપેક્ષિત અન્ય ઇતિહાસ પૃથક્ રૂપે આપેલો છે. તેમજ શ્રીહરિરાયજીના સંસ્કૃત ગ્રંથોને અહીં આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવ પ્રકાશ સાથે જ્યાં જ્યાં સંશય થાય ત્યાં ત્યાં સરખાવી તેની પ્રામાણિકતા સિદ્ધ કરી છે. જેથી લઢીયાઓ પ્રત્યેનો અન્યાયપૂર્ણ અસંબંધ પ્રલાપ ધણુ અંશમાં દૂર થાય છે. અને વાર્તાઓમાં ઉત્પન્ન થતા સંદેહોના નિવારણાર્થ શ્રીઆચાર્યજીના, શ્રીગુસાંઈજીના, તેમજ અન્ય ગ્રંથોનાં પ્રમાણો આપેલાં છે. વળી અમોએ આ વાર્તાઓનું ઇતિહાસ, તત્ત્વ અને રસ એમ ત્રણે દૃષ્ટિથી યથાધિકાર આધુનિક અલ્પબુદ્ધિ વાંચકોને પણ ઉપયોગી થઈ પડે તે હેતુને ખાસ લક્ષ્યમાં રાખી પરમ્પરાગત પ્રાપ્ત સંકલન કર્યું છે. જેથી દુરાગ્રહથી રહિત અન્ય કોઈ પણ વ્યક્તિ વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરવાની ધૃષ્ટતા નહિજ કરે.

“વાર્તા” અને “ભાવપ્રકાશ” બન્ને ક્રમશઃ શ્રીગોકુલનાથજી તથા શ્રીહરિરાયજી કૃત છે તે નિર્વિવાદ છે. તેના પ્રમાણરૂપે તેની અતિ વિખ્યાતિજ સંતોષજનક છે. તો પણ અન્ય પ્રમાણો અહિં આપીએ છીએ:—

એક તો એ પ્રમાણ કે ઉપર્યુક્ત બન્ને ગ્રંથોની સેંકડો લિખિત પ્રતિઓ અતિ પ્રાચીન પ્રાપ્ત થાય છે અને તેમાં “શ્રીગોકુલનાથજી-રચિત” “શ્રીહરિરાયજીકૃત” એવા લેખો પ્રાપ્ત થાય છે.

અમે અત્રે આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવપ્રકાશ નાં પ્રાચીન લિખિત પુસ્તકો ઘણી જગ્યાએ અમારા જોવામાં આવ્યાં છે જેવાં કે પાટણ, અમદાવાદ, ડભોઈ, ગોકુળ, નાથદ્વારા, કાંકરોલી, જતીપુરા ઇત્યાદિ સ્થળોમાં.

અમારી પાસે જે પ્રત છે, તે સં. ૧૭૫૨ માં લખાયેલી છે અને તે શ્રીહરિરાયજીના સમયનીજ છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીની મૃત્યુ સ્થિતિ સં. ૧૭૭૨ સુધીની પ્રસિદ્ધ છે. અતઃ આ પ્રત અત્યંત પ્રામાણિક ગણી શકાય. આ ગ્રંથ અમને પરમ ભ. મહાનુભાવ



ગોવિંદદાસ ( શ્રીનાથદ્વારાવાળા ) બાવા પાસેનો પ. ભ. જદુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો છે. તેમજ આ ગ્રન્થને નિત્યલીલાસ્થ તિલકાયિત શ્રીગોવર્ધનલાલજીએ પણ અવલોકીને પુષ્ટ કર્યો છે. જેથી આ ગ્રન્થની પ્રમાણિકતા વિષે વધુ કહેવું નિર્રથક છે. આવીજ એક પ્રતિ સં. ૧૭૫૨ ની લખાયેલી શ્રીગોકુલના પરમ ભગવદીય શ્રીયુત મુખીયાજી ગૌરીલાલજી પાસે પણ અમે જોઈ છે. તેમાં એક વિશેષતા એ છે કે દરેક પ્રસંગોનાં સુંદર ચિત્રોનો પણ તે ગ્રન્થમાં સમાવેશ કરેલો છે. અતઃ દર્શનીય છે.

આ “ ભાવપ્રકાશ ”ની લેખનશૈલી શ્રીહરિરાયજીની સંસ્કૃત ગ્રંથોની રચના શૈલીને મળતી જ આવે છે. શ્રીહરિરાયજી ગહન વિષયો સંબંધી ગ્રન્થો રચવામાં પ્રથમ પૂર્વપક્ષ કરીને પછી સ્વયં તેનો નિરાસ કરે છે. (જુઓ શ્રીહરિ. કૃત નિષ્કામ લીલા આદિ ગ્રન્થો) તેમ અહીં પણ ઘણી જગાએ પૂર્વપક્ષ (સંદેહ) સ્વયં કરી પછી તેનું સમાધાન પણ આપ સ્વતઃ જ કરે છે.

આ શૈલી પણ આપના “ ભાવપ્રકાશ ” માટે એક સખલ પ્રમાણ છે. અને ત્રીજું પ્રમાણ ઉપરોક્ત વલ્લભજી મહારાજનું ઘોળ છે. એયું પ્રમાણ ભાવપ્રકાશ સાથે શ્રીહરિના સંસ્કૃત ગ્રંથોની એક-વાક્યતા છે. (જુઓ દામોન્હરની વાર્તા પાન પર)

“ વાર્તા ” સંબંધી અન્ય પ્રમાણ “ સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ ” જે સં. ૧૭૨૬માં શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય વિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે રચેલો છે, તેમાં આ પ્રમાણ છે:—

“ વલ્લભવિઠ્ઠલ વારતા, પ્રગટ કોન નૃપમાન ” ॥ ૩૦ ॥ ( પાન ૧૪૧ ).

સૃષ્ટિના પ્રારંભથી જ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારના જીવોની ઉત્પત્તિ જોવામાં આવે છે. એટલે ઉત્તમોત્તમ દૈવી સંપત્તિવાળા વસ્તુઓને આસુરી દુરાગ્રહી પુરૂષો હીન બતાવે તો તે ઉપેક્ષણીય જ છે. પરંતુ દેખાતા દૈવી પુરૂષોજ આસુરાવેશી થઈને પોતાની દૈવી સંપત્તિને અસહ્ય ભાષાથી સર્વ સમક્ષ તિરસ્કાર કરે ત્યારે તો તે કાઈ પણ સહૃદય પુરૂષને અસહ્ય લાગ્યા વિના રહે નહિ જ.



એવાંજ અનેક કારણોને લઈને અમોએ સર્વ મહાનુભાવોના સહકારથી આ કાર્ય ઉઠાવ્યું છે કે સાંપ્રદાયિક વ્રજભાષાનું ગદ્યપદ્યાત્મક સાહિત્ય પ્રાચીન કાળની શૈલીથી લખાયેલું હોવા છતાં તે આજ પણ ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક ક્ષેત્રોમાં કેટલું બધું ઉપયોગી તેમજ પ્રમાણિક છે તે અન્ય તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાય સાથે જનસમૂહ સમક્ષ સુરક્ષિત રૂપથી મુકવું

આ કાર્યમાં દ્રવ્યની અત્યંત અપેક્ષા રહેલી છે. માટે સંપ્રદાય અને શ્રીઆચાર્યચરણમાં મમતા રાખવાવાળા સદ્ગૃહસ્થો, શ્રીમદ્-આચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યની નિષ્કલંકતા પ્રકટ કરી, બાહ્યાભ્યંતર પ્રહારકોનો સંયુક્ત સામનો કરવા કટિબદ્ધ થાવ; અને યથાશક્તિ તનુજીવિત્તજીવિત્ત સેવા ઉઠાવો એ નમ્ર પ્રાર્થના કરી હું અહિં વિરમું છું.

વાર્તામાં ત્રણ જન્મ કહ્યા છે તે આ પ્રમાણે સમજવા:—

શરણે આવ્યા પહેલાંની જે સ્થિતિ તે એક જન્મ. દૃષ્ટાંતરૂપે

ગાયત્રી પ્રાપ્ત કર્યા વિનાનો સંસ્કારરહિત

ત્રણ જન્મની સમજ. એક બ્રાહ્મણનો બાલક. આ જન્મ

ભૌતિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે—

શરણે આવ્યા પછીની જે સ્થિતિ તે બીજો જન્મ. અને તે આધ્યાત્મિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે. કારણ કે તેમાં ભાવનાનું સ્વરૂપ (વૈષ્ણવત્વ) બિરાજે છે. દૃષ્ટાંતરૂપે ગાયત્રીમંત્રને પ્રાપ્ત થયેલો બ્રાહ્મણ, તેમાં બ્રહ્મત્વપણાની સ્થિતિ રહે છે. ત્રીજો જન્મ મૂલભૂત જે આત્મારૂપ છે અને તેજ ભાવરૂપ હોવાથી તે આધિદૈવિકરૂપ છે. આ પ્રકારે ત્રણ સ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ કહેલાં છે. તે સમજવા પુરતુંજ અમે વાર્તામાં કેટલીક જગે તે સ્પષ્ટરૂપે આપ્યું છે.

આ આધિદૈવિક ભાવરૂપ આત્માની સત્તાને અનુસારજ આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિકમાં ક્રિયાઓ આદિની સ્થિતિ રહેલી છે. (વિશેષ જુઓ વાર્તા-રહસ્ય પાન ૭.)

“સમ્પાદક”



## —:ઉપકાર-સ્મરણુ:—

—o—

કૃપાપીયૂષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ તૃતીય પીઠાધીશ્વર શ્રીમજ્જીમ્બુજ્ઞાનાથ મહારાજ અને આપશ્રીના અતુલ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ શ્રીવિદુલનાથ મહારાજશ્રીનો ઉપકાર, આ વાર્તા-સાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યથી, સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિમાં અને ઇતિહાસગ્રંથોમાં સદાય અવિસ્મરણીય રૂપે રહેશે જ.

આપશ્રીની હાર્દિક કૃપા અને સર્વ પ્રકારની સહાયતાથી જ આ કાર્ય સફલ થયું છે અને આગલ ઉપર પણ થશે જ, એ કહ્યા વિના રહી શકાતું નથી.

સમગ્ર સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં, આપશ્રીની જ કૃપાથી સિદ્ધ થયેલ આ વાર્તાસાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યદ્વારા ઇતિહાસગ્રંથો, સાંપ્રદાયિક વિદ્વાનો અને ભાવુકોમાં પણ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ભાષા-સાહિત્ય પ્રત્યે પુનઃ શ્રદ્ધા નવપલ્લવિત થઈ છે, તે, આ પુસ્તકોમાં આવેલા અભિપ્રાયોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે.

આપ શ્રીમાન શ્રીસુખોદિનીજી આદિ સંસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર જ્ઞાતા હોવા ઉપરાંત સાંપ્રદાયિક ભાષાસાહિત્ય તરફ પણ આપશ્રીને પૂર્ણ પ્રેમ છે. આપશ્રીનું તો એટલે સુધી મન્તવ્ય છે કે આજકાલ ભાષાસાહિત્યથી જ સંપ્રદાયનો પ્રચાર સારી રીતે થઈ શકે છે, કેવલ સંસ્કૃત સાહિત્યથી નહિ જ.

આપશ્રીને કીર્તન ઉપર તો એટલી બધી પ્રીતિ છે કે આપશ્રી સ્વયં પ્રાચીન પુસ્તકોના આધારે કીર્તનોનું યથાર્થ સંશોધન કરે છે. (જે હવે પછી પુસ્તકાકાર રૂપે બહાર પાડવામાં આવશે) આપશ્રી અન્યની માફક પ્રસિદ્ધિના ઉપાસક નથી. આપશ્રી પ્રાચીન સેવા-



પ્રણાલી અને સંપ્રદાયની પ્રાચીન પરિપાટીના સંરક્ષક છે. તેમજ આપશ્રીની બુદ્ધિ એટલી તીવ્ર છે કે દ્વિવિધ સાહિત્યમાં રહેલા વિરોધાભાસનો, સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તો અને વાર્તાના દૃષ્ટાંતો દ્વારા સહેજે પરિહાર કરી બંને પ્રકારના સાહિત્યના આશયને શુદ્ધ રૂપમાં સમજાવે છે. આપશ્રી ઇતિહાસના પ્રખર જ્ઞાતા હોવાથી અનેક યુક્તિઓ દ્વારા વાર્તા, કીર્તનો, પરંપરા પ્રાપ્ત પ્રણાલી, અને રીતભાત આદિની એકવાક્યતા કરી સંપ્રદાયના ભાષાસાહિત્યની ઐતિહાસિકતા બહુજ સુંદર પ્રકારે સિદ્ધ કરી આપે છે.

આપશ્રી તો એવું આશ્ચર્ય પ્રકટ કરે છે કે વાર્તાઓમાં સ્પષ્ટ રૂપે રહેલો ઇતિહાસ અને સિદ્ધાન્ત પણ વિરોધકર્તાઓને કેમ દેખાતો નથી? વાર્તામાં એવા અનેક પ્રસંગોનો ઉલ્લેખ છે કે જેનું ઐતિહાસિક અસ્તિત્વ આજ પણ વિદ્યમાન છે; દૃષ્ટાંત રૂપે:—એઠકા, કીર્તનો, વસ્તુઓ, વંશજો, પ્રચલિત ગાથાઓ, રીતભાત, હક્ક, જગીરો, અને ‘પંચમહાલ’ આદિ નામોની એધાણી. વાર્તાની સત્યતામાં આટલા બધા સર્વમાન્ય પુરાવાઓનું આજ પણ અસ્તિત્વ હોવા છતાં વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરનારાઓને વાર્તામાં અશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે ખરેખર આશ્ચર્યજનક છે. તેથી તેઓની બુદ્ધિ કેવા પ્રકારની હશે? તે સમજાવું નથીજ.

આપશ્રીએ આ કાર્યમાં દ્રવ્યાદિ અનેક પ્રકારની ગુપ્ત સહાયતાથી જે આગલ પડતો ભાગ લઈ ભાષાસાહિત્યને ઉત્તેજન આપ્યું છે તે માટે હું સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિ તરફથી આપનો અંતઃકરણ પૂર્વક ઉપકાર માનું છું.

આપશ્રી તરફથી અનેક વખતે આ કાર્યના અંગે કાંકરોલીથી અમદાવાદ આદિ સ્થળોએ જવામાં રેલ્વેભાડા આદિનું ખર્ચ પોતાના પ્રાઇવેટ ખર્ચમાંથી આપી આ કાર્યમાં પોતાનો અદ્વિતીય ઉત્સાહ છે, એમ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. તે માટે સર્વ ભાષાસાહિત્યના પ્રેમીઓ આપશ્રીના પૂર્ણ રૂણી છે.

અસ્તુ.

કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગાધ્યક્ષ અને ઉપાધ્યક્ષનો ઉપકાર સ્મરણ કર્યા બાદ આ કાર્યને નવચેતન અર્પનાર, ભાષાસાહિત્યના પૂર્ણપ્રેમી



અને પક્ષપાતી મારા પરમમિત્ર કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના સંચાલક શ્રીયુત કણ્ઠમણિજીનો ઉપકાર તો અગ્રસ્થાને જ રહેશે.

જો સાચું કહીએ તો મારા આ વાર્તા-સાહિત્ય પ્રકાશનના વિચાર ને સમ્પૂર્ણ ટેકા આપી તેઓએ જ આ કાર્યને નવચેતન આપ્યું છે. તેમાં જરાય શંકા નથી. વિદ્યાવિભાગાન્તર્ગત સરસ્વતી ભંડારમાં સંગ્રહિત હસ્તલિખિત ૬૦૦૦ ઉપરાંત પ્રાચીન પુસ્તકોના અવલોકનનો સુઅવસર તેઓએ શ્રીમાનોની આજ્ઞાથી મને આપ્યો. તેમજ વિદ્યાવિભાગના નામથી દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ અર્થે રસીદબુક પણ આપી. આથી આ કાર્ય ત્વરીત અને સુગમ થયું. તદુપરાંત તેઓએ સંશોધન આદિ અનેક પ્રકારથી મને આ કાર્યમાં નિઃસ્વાર્થ રૂપે મદદ કરી. જો કે એમનું સ્વાસ્થ્ય ખીલકુલ અસ્વસ્થ હતું તેમજ વિદ્યાવિભાગના કાર્યનો જોજો પણ તેમના માથે અત્યંત હતો છતાં પોતાના અમૂલ્ય સમયનો ભોગ આપી આ કામમાં જો પૂર્ણ ઉત્સાહ દેખાડ્યો છે તેને માટે હું તેમનો ઉપકાર કદી ભુલી શકું તેમ નથી. અસ્તુ.

પુરોહિત પંડિત પ્રવર શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી લક્ષ્મીનારાયણજી (સરસ્વતી ભંડારના વ્યવસ્થાપક)નો ઉપકાર, હું તેમજ સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનો કદી ભૂલશે નહિજ. તેઓએ શ્રીનાથદેવ કૃત સંસ્કૃત વાર્તામાલાને શુદ્ધ કરવામાં બહુજ પરિશ્રમ લીધો છે. પ્રસ્તુત (ઉપસ્થિત) સંસ્કૃત વાર્તામાલાની એકજ પ્રતિ અમને પ્રાપ્ત હોવાથી અને તે પણ અશુદ્ધ હોવાથી તેના સંશોધનનું કાર્ય અત્યંત મુશ્કેલ હતું. તે નિર્વિવાદ જ છે. તે કાર્ય પંડિતજીએ અનેક પ્રતિકૂળ સંયોગોમાં પણ પૂર્ણ કર્યું અને સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનોના હાથમાં પ્રસ્તુત વાર્તામાળા સુંદરતાથી પરિપૂર્ણ બનાવી અર્પી તે બદલ તેમનો ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી વસંતરામજીનો ઉપકાર જેટલો મનાય તેટલો ઓછો જ છે. કારણ કે આ કાર્યમાં તેમણે જેટલો ફાળો નિઃસ્વાર્થ રૂપે આપ્યો છે, તેટલો અન્ય કોઈએ નથી આપ્યો. શ્રીયુત શાસ્ત્રીજીએ



શારીરિક અસ્વસ્થ હાલતમાં પણ સ્વયં પગે ચાલી પ્રેસ અને કાગળ વિગેરેની સરળતા પ્રાપ્ત કરાવી આપી, તેમજ પ્રેસ કાપીને શુદ્ધ કરી, પ્રુફ સંશોધન કરી, પોતાની ભાષાસાહિત્ય તરફની તીવ્ર લાગણી દેખાડી આપી. તેમની આ અસાધારણ પ્રવૃત્તિ અને મહેનત જોઈને હું ખરેખર ચકિતજ થયો. તેમણે અનેક પ્રકારે સલાહ આદિથી તેમજ શુદ્ધાદૈતમાં વિનામૂલ્ય આ સંબંધી જાહેરખબરો અને લેખો આદિને સ્થાન આપી આ કાર્યના પ્રચારમાં પણ સારો ભાગ આપ્યો છે. યદિ ઉપરોક્ત શાસ્ત્રીજીનું અન્ય વિદ્વાનો અનુકરણ કરે તો આજ પુષ્ટિમાર્ગનું ભાષાસાહિત્ય પુનઃ જનસમૂહમાં ગૌરવાંકિત થાય તે નિઃસંદેહ છે. શાસ્ત્રીજીના શ્રમનો અને ભાષાસાહિત્ય ઉપરના પ્રેમનો બદલો અમે જરા પણ આપી શકીએ તેમ નથી જ. તેથી અમે અહીં કેવલ તેમના ઉપકારનું સ્મરણ કરીને જ સંતોષ માનીશું.

શ્રીયુત રમાનાથજી, શ્રીયુત મુખીયાજી ગોકુલદાસજી વિદ્યા-સુધાકર શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી ચિમનલાલજી અને શ્રીયુત પુરષોત્તમ શાસ્ત્રીનો પણ ઉપકાર માનવો અસ્થાને નહિ જ ગણાય. ઉપરોક્ત મહાશયોએ અમને આ કાર્યમાં સલાહ સંશોધન અને અભિપ્રાયો દ્વારા ઘણી મદદ કરી છે. તદ્વર્થ તેમનો ઉપકાર માનવો પણ આવશ્યક જ છે.

આ ઉપરાંત વાર્તાપ્રેમી શ્રીગોવિંદલાલજી બાવાસાહબ (સુરત) તથા શ્રીદ્વારકેશલાલજી વિગેરે અભિપ્રાયદાતાઓનો ઉપકાર માનું છું. સદ્ગત થયેલા વાર્તાપ્રેમીઓનું સ્મરણ કરવું પણ અત્રે આવશ્યક હોવાથી તેમના નામનો પણ હું અહીં ઉલ્લેખ કરું છું. શ્રીતિલકાચત શ્રી ગોવર્ધનલાલજી, ચિ. દામોદરલાલજી તેમજ શ્રીનાથદ્વારા નિવાસી પ. મ. ભ. શ્રીગોવિંદદાસબાવા અને પ. ભ. જદુનાથદાસ જેમની કૃપા દ્વારા મને વાર્તામાં પ્રેમ થયો અને ચત્કિચિત તેના રહસ્યનું દર્શન થયું તેમજ ૧૭૫૨માં લખાયેલું હસ્તલિખિત શ્રીહરિરાયજીના



ભાવપ્રકાશ વાળું પુસ્તક પ્રાપ્ત થયું છે તેથી તેમનો ઉપકાર માનવો અતિ આવશ્યક છે.

શ્રીયુત મગનલાલ શાસ્ત્રી, શ્રીયુત કલ્યાણુજી શાસ્ત્રી એવં શ્રીયુત તેલીવાળાનું સ્મરણ પણ અસ્થાને નહિ જ ગણાય.

આ કાર્યમાં અર્થપ્રદાન કરવાવાળા સદ્ગૃહસ્થોનો ઉપકાર માની તેમના નામોનો ઉલ્લેખ કરીએ છીએ:—

૧૦૦) શેઠ ચીમનલાલ મોતી-  
લાલ પાટણ.

૧૦૧) શેઠ કાળીદાસ દારકાદાસ  
ભરતીયા સુરત.

૧૦૧) બાઈ નર્મદા તે શેઠ  
ચીમનલાલ ખેમચંદની  
વિધવા; તેના દ્રષ્ટીઓ  
શેઠ રણછોડદાસ કૃષ્ણા-  
રામ તથા શેઠ ડોસાભાઈ  
વિકૃલદાસ વડનગર.

૬૦) શેઠ બલદેવદાસ હરિ-  
વલ્લભદાસ સિદ્ધપુર.

૫૧) શેઠ વાડીલાલ દલસુખ-  
રામ વડનગર.

૫૧) શેઠ ગોવિંદલાલ ચુની-  
લાલ અમદાવાદ.

૧૦) મોતીલાલ લલુભાઈ  
વિસનગર.

૧૦) ચુનીલાલ ભાઈચંદ  
વિસનગર.

૨) જ્યેષ્ઠીશનદાસ વિકૃલદાસ  
ખેરડી.

૨૫) નાગોરી મોતીબેન અમદાવાદ

૨૫) શેઠ મણીલાલ લલુભાઈ  
મણીયાર વિસનગર.

૨૫) શાસ્ત્રી પુરૂષોત્તમ પિતાં-  
બરજી વિસનગર.

૨૫) ડોસાભાઈ વિસનગર.

૧૫) નર્મદાબાઈ તે નાનચંદ  
લીલાચંદની વિધવા હા.  
અમૃતલાલ. વિસનગર

૫) મંગલદાસ ખીમચંદ માતર.

૫) રણછોડદાસ લક્ષ્મીદાસ  
શ્રીગોકુલ.

૫) વિકૃલદાસ મોતીચંદ  
માંગરોલ.

૫) દલસુખભાઈ મોતીલાલ  
ડભોઈ.

૨) વલ્લભદાસ નરોત્તમદાસ  
પેટલાદ.

૧) જમનાદાસ મણીલાલ  
ભગતવાળા ડભોઈ.



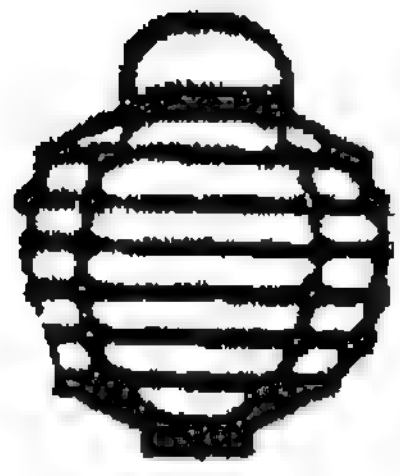
આ ઉપરાંત હાલોલ અને ડભોઈ વિગેરે સ્થળોના ગ્રાહકોનો પણ ઉપકાર માની હું અહીં વિરમીશ.

ત. ક. આ કાર્યમાં દ્રવ્યની મદદ કરાવનારાઓનાં શુભ નામો:-  
શ્રીયુત અધિકારીજી લજ્જશંકરજી, મથુરા. શ્રીયુત શેઠ ડાસાભાઈ  
વિઠ્ઠલદાસ, વડનગર. પ. ભ. ભાઈ ચંદુલાલ વિઠ્ઠલદાસ, પાટણ.  
પ. ભ. ભાઈ જયન્તીલાલ મગનલાલ, અમદાવાદ. અને શ્રીયુત  
તંત્રી “ અંબ્રનુહ ” અમદાવાદ.

આ ઉપરાંત સ્મૃતિભ્રમથી રહી જતા અન્ય ગૃહસ્થોનો પણ અંતઃકરણ પૂર્વક ઉપકાર માનું છું.

છેવટની એક વાત રહી જાય છે તે એકે વાર્તા-સાહિત્ય પ્રતિ  
ગંદા આક્ષેપ અને તિરસ્કાર કરનારા ઈશ્વર કેાટીમાં ગણાતા  
બૌદ્ધાવતારો અને જીવ કેાટીના ત્રિદ્રુપાદિનો પણ ઉપકાર અત્રે  
માનવોજ રહ્યો. કેમકે તેમના આક્ષેપોથી પ્રેરાઈ આ કાર્ય જલ્દી  
પ્રારંભાયું.

“ સંપાદક ”





# प्राचीन वार्ता-रहस्य का शुद्धिपत्रक.

कृपया नीचे लिखे शब्दों को सुधार कर पढ़िये

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
द्वादशो वै	द्वादशाङ्गोह वै	५	२३
श्रीमहा७	श्रीमहाप्रभु७	१२	१५
कीष्ट	किये	१५	यहाँ और आगे के पत्रों में भी
दीष्ट	दिये	११	
लीये	लिये	११	
ह्ये	ह्ये	११	
ह्ये	ह्ये	११	
चोरासि	चोरासी	११	यहाँ और अन्यत्र भी
दूरावनो	दुरावनो	११	
दैवि	देवी	१६	
जानीयो	जानियो	११	
राजसि	राजसी	११	
तामसि	तामसी	११	अन्यत्र भी
तिनों	तीनों	१७	
शेठ	सेठ	२८	
लेईगो	लेइगो	११	
काढी	काढि	११	
ऊठी	उठि	११	अन्यत्र भी
तीन्यों	तीनों	२९	
तिन्यों	तीनों	११	
ईनकों	इनकों	११	
भाईन	भाईननें	११	
‘हरिशरणी’	‘हरषरानी’	३०	६



અશુદ્ધ	શુદ્ધ	પત્ર	પંક્તિ	
૭૪	૭૬	”	૨૨	
જમૂહ	સમૂહ	૩૧	૧૧	
મેં	મે	”	૧૯	
કીયો	કિયો	૩૭	૧૭	અન્યત્રભી
સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મ-સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ				
સંબંધ કરાવ-	કરાવ્યું અન્યથા બ્રહ્મ-			
વાનું	સંબંધ કરાવવાનું	૪૩	૧૮	
મહાપ્રમૂ	મહાપ્રભુ	૪૫	૮	અન્યત્રભી
કરી	કરિ	૪૬	૫	
ચુકિ	ચુકી	”	૧૨	
બહુરી	વહુરિ	૪૯	૧	અન્યત્રભી
વીનતી	વિનતી	”	૧૬	
લિજિયો	લાજિયો	૫૪	૨	
શકે	સકે	૫૫	૧૦	
લેહુ	લેહુ	૫૬	૧	
તિસરે	તીસરે	૫૮	૧	અન્યત્રભી
સહાયતા સુ	સહાયતાસૂ	૬૦	૧૯	
લગી	લગિ	૬૨	૧૦	
ભગવદલીલા	ભગવહ્લીલા	”	૧૩	
નિચે	નીચે	૬૩	૫	
થાંભિ	થાંભી	૬૯	૧૧	
મૂઢે	મૂઢૈઃ	૭૦	૩	
પાંચ દિન	પાંચ દિન ભયે	૭૨	૩	
કહિ	કહી	૭૨	૯	
કીયા	કીયો	૬૮	૨૩	



अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
१४७६	१५७६	६०	२३	
जब	अब	९३	१७	
तुलसीकृत	०	६८	२३	
सहचरि	सहचर	१००	१४	
समांतिष्ठ	समातिष्ठ	१०१	२५	
लोंडि	लोंडो	११४	१	
स्त्रि	स्त्री	१२४	१३	
महोडो	म्होडो	१२४	१६	
सगरी	सिगरी	१२५	१६	अन्यत्रभी
दासकुं	दासकूं	१२६	७	
लाकिक	लौकिक	१२८	१६	
गाद्य	वाद्य	१४३	१२	
लब्धो प्रचारकैः	लब्धोपचारकैः	१४३	२१	
स	सर्व	१४६	६	
लुटि	लूटि	१४८	९	
रीन	रिन	१५१	१९	
राप्पवे	सरप्पवे	१५५	१४	
सखि	सखी	१७१	२१	अन्यत्रभी
पांच	पांव	१८५	१७	
आधिदैनीक	आधिदैविक	१९०	४	
ना६२७	ना१२६७	२०३	१७	
प्रेमरूपा	प्रेमरूपा	२०३	१९	
वेद कह्यो विधि	वेद कह्यो श्रीहरि			
निषेध को	मुख निरखत वि-			
	धि निषेध को	२०३	२४	



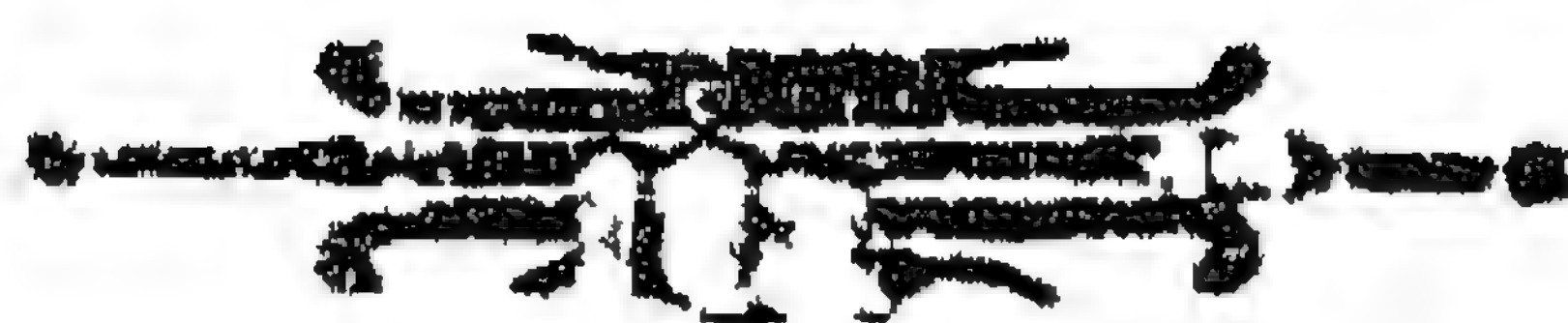
अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
नैरोक्ष्यं	नैरपेक्ष्यं	२०५	२३
सर्वमावो	सर्वभावो	„	२३
निरक्षेप	निरपेक्ष	२०४	२
कर्मीभ्यां	कर्माभ्यां	२०६	१३
आचार्य	आचार्य	२०७	१८
अरोगते	अरोगतेथे	„	} नोट में
कीसी	किसी	„	
हानी नहिं होती	हानि नहीं आती	„	

### संस्कृत वार्ता मणिमाला

प्रतिबोधितः	प्रतिरोधितः	७	२०
प्रकाशयत्य	प्रकाशयत्ययं	१३	३
कुण्णदास	कृष्णदास	१४	२
प्रसादितुम्	प्रसादितम्	१६	५
दामोदरण	दामोदरेण	२१	३
दलानि	दलानि	„	६
मूष्पापि	मूष्मापि	२२	१३
प्रसदान्नं	प्रसादान्नं	२५	२
(भडली)	भंडिलः	२७	१३
	भडुलिः (भाषा)		
अथकैदो	अथैकदो	२८	१५
श्रुत्वेति	श्रुत्वेति	२९	१३
रत्य	रेत्य	३१	३



अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
तद्रथापार	तद्वथापार	३३	२
हादै	हादै	॥	१७
श्रुतवान्	श्रुतवान्	३४	१८
कान्यकब्ज	कान्यकुब्ज	३५	६
पसे	परो	३५	१७
प्रस्यहं	प्रत्यहं	३६	१०
वसासो	व्यासो	३७	१९
रोगं निवृत्तम चिरादिति	गमिष्यत्यचिरा द्रोगइति	४४	१२
मद्भ्यहम्	मद्भ्यहम्	४६	१२





શ્રીદા. ગ્રન્થમાલના ૧૩ મા પુખ્ત તરીકે

❧ પ્રાચીન વાર્તા-રહસ્ય ❧

શ્રી ગિરધર ગોપાલના સ્મરણાર્થે

પ્રત. ૧૦૦૦

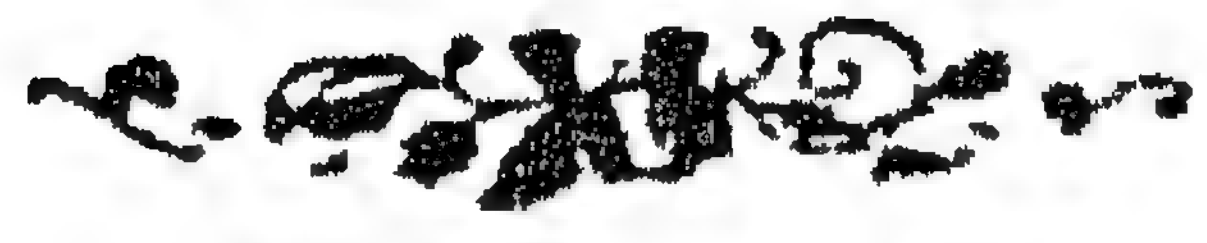
વૈષ્ણવોને વિનામૂલ્ય  
અર્પણ કરી છે.

દ્વારકાદાસ



શ્રીદ્વારકેશો જયતિ

પ્રસ્તાવના



“ વાર્તા-સાહિત્ય ”

( ભૌતિક દૃષ્ટિથી )

પુષ્ટિસંપ્રદાયમાં દ્વિવિધ સાહિત્ય ઉપલબ્ધ થાય છે. એક પ્રમાણાત્મક અને બીજું પ્રમેયાત્મક. અથવા બીજી રીતે કહીએ તો

એક શબ્દપ્રમાણવાળું સિદ્ધાન્તાત્મક અને પુષ્ટિમાર્ગનું દ્વિવિધ બીજું આપ્ત પ્રમાણવાળું ફક્તાત્મક સાહિત્ય.

સાહિત્ય શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં સિદ્ધાન્ત અને તેને પ્રાપ્ત કરવાના વિધિ નિષેધ આદિ કર્તવ્યનો સમાવેશ રહેલો છે, જ્યારે આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં લોકવેદા-તીત શ્રીકૃષ્ણ અને તેના અલૌકિક આસ્વાદરૂપ સુધા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ યથાર્થ રૂપે કહેલો છે. બીજા પ્રકારે કહીએ તો શબ્દપ્રમાણનું પ્રત્યક્ષ ફક્ત તે આપ્તપ્રમાણવાળા સાહિત્યમાં નિરૂપેલું છે.

શબ્દના અર્થથી અહીં વેદજ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપે કહેલો છે. અને તે વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્ત જ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણ સ્વરૂપે હોય તે સાહિત્યને શબ્દપ્રમાણાત્મક કહ્યું છે. તેવીજ રીતે આપ્તના અર્થથી અહીં લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણના તાદૃશ ભક્તો જાણવા. અને તેવા આપ્તપુરૂષોએ જે પ્રકારે અને જેવા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરી જેમાં તેનું વર્ણન કર્યું છે, તે બધાં વાક્યો અને ગ્રન્થો પ્રમાણરૂપ છે. માટે તેવા સાહિત્યને આપ્તપ્રમાણાત્મક કહ્યું છે.

બીજા પ્રકારે આપ્તપુરૂષોમાં પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ નિરંતર સ્થિત હોવાથી તેમનાં વાક્યો અને ગ્રન્થોને પ્રમેયાત્મક કહેલા છે. આ રીતે પ્રમાણાત્મક અને પ્રમેયાત્મક અથવા શબ્દપ્રમાણવાળું અને આપ્ત-પ્રમાણવાળું એમ બે પ્રકારનું સાહિત્ય પુષ્ટિમાર્ગમાં ઉપલબ્ધ થાય છે.

શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્ય સિદ્ધાન્તરૂપ છે અને આપ્તપ્રમા-



જ્ઞાત્મક સાહિત્ય તે સિદ્ધાન્તના દૃષ્ટાન્તરૂપ હોઈ ફલરૂપ છે. આ પ્રકારે તે બન્ને સાહિત્યનો પરસ્પર સંબંધ છે.

જેમ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણરૂપે શ્રીકૃષ્ણ છે તેમ પ્રમેયરૂપે પણ શ્રીકૃષ્ણ રહેલા છે. તો પણ પ્રમાણરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સાધનાત્મક હોઈ અનુકરણીય છે, જ્યારે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ ફલાત્મક હોઈ કેવલ સ્મરણીય છે. અર્થાત્ આપ્તજન કથિત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં શ્રીકૃષ્ણે, સ્વભક્તોને સ્વયં અનુગ્રહરૂપ થઈ ફલરૂપ સ્વાનંદનું જે દાન કરેલું જોવામાં આવે છે, તેનું અહિર્નિશ સ્મરણ (ચિંતન) કરી સાધનદશાવાળા ભક્તો, શબ્દપ્રમાણાત્મક ગ્રંથોમાં રહેલા સિદ્ધાન્ત રૂપ શ્રીકૃષ્ણના પ્રમાણ સ્વરૂપને લક્ષ્યમાં સાધી, તેમાં કહેલા કર્તવ્યાકર્તવ્યનું નિઃસાધનતાની ભાવનાથી અનુકરણ કરે, તોજ કીટબ્રમર ન્યાયે પુષ્ટિમાર્ગ ફલીત થાય છે. યદિ કોઈ અનધિકાર ચેષ્ઠાથી સ્મરણ કરવા યોગ્ય પ્રમેયાત્મક સ્વરૂપને કૃતીથી અનુસરે તો તેને ભગવતપ્રાપ્તિ રૂપી ફલમાં અનેક પ્રતિબંધ પ્રાપ્ત થાય છે તે ખાસ લક્ષ્યમાં રાખવાની વાત છે.

જ્યારથી શ્રીઆચાર્યચરણે આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવતની સમાધિભાષાને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય રૂપે સ્થાપી ત્યારથી પ્રમેય માર્ગ (પુષ્ટિમાર્ગ)નું પુનઃ પ્રાકટય આ પૃથ્વીમાં પ્રમેયમાર્ગનું પુનઃ થયું. વળી શ્રીઆચાર્યચરણે સમાધિભાષાને કેવલ પ્રાકટય અને તેની પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમાં સ્થાન આપીનેજ સંતોષ વિશિષ્ટતા નથી માન્યો કિંતુ પ્રસ્થાન ત્રયીના સંદેહના નિવારકરૂપે તેને કહી તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ કરી છે.\*

આપ્તવાક્ય ના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત, એક ભક્ત (નારદજી) ના વચનને આધિન થઈને જ્ઞાનાવતાર વ્યાસજીને અનુભવમાં આવેલ પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ હોઈ, શબ્દાત્મક વેદનું તે ફલ છે. અને તેથીજ

\*વેદાઃ શ્રીકૃષ્ણાવાક્યાનિ વ્યાસસૂત્રાણિ ચૈવ હિ ।

સમાધિભાષા વ્યાસસ્ય પ્રમાણં તત્ત્વચતુષ્ટયમ્ ॥

ઉત્તરં પૂર્વસન્દેહવારકં પરિકીર્તિતમ્ । (શ્રીઆચાર્યચરણ)



શબ્દપ્રમાણ કરતાં પણ આપ્તપ્રમાણ શ્રેષ્ઠ છે તે નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે. આ આપ્તવાક્યોરૂપ પ્રમેયાત્મક શ્રીકૃષ્ણમાં શબ્દબ્રહ્મની પરતંત્રરૂપે સ્થિતિ સહજ હોવાથી તે દ્વિગુણીત પ્રમાણભૂત છે. બીજી રીતે તે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણની આપ્તપુરૂષોમાં નિરંતર સ્થિતિ હોવાથી તેમનાં વાક્યો શબ્દપ્રમાણથી વિશેષ બળવત્તર હોયજ. તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

### પ્રમેયાત્મક સાહિત્યના બે ભેદ.

આ પ્રકારના પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં પણ બે ભેદ છે. એક પુષ્ટિનું પ્રમાણભૂત પ્રમેયરૂપ સાહિત્ય અને બીજું કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્ય. પ્રમાણભૂત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં, સેવનીય શ્રીયશોદોત્સંગ+ અને સ્મરણીય ગોપીકાવલ્લભ (શ્રીનાથજી), ઉભય સ્વરૂપ વિષયક સાહિત્યનો સમાવેશ રહેલો છે. અને બીજા કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્યમાં ભાવ સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયકજ સાહિત્યનો સમાવેશ થયેલો છે. ભાવદ્વારા જ સેવનીય યશોદોત્સંગ અને સ્મરણીય ગોપિકાવલ્લભનો આનંદ પ્રાપ્ત થઈ શકતો હોવાથી આ ભાવાત્મક સાહિત્ય પણ ભક્ત અને ભગવાનના પરમાનંદમાં શ્રીઆચાર્યચરણની માફક મધ્યસ્થરૂપ છે.

આ ભાવને શ્રીહારરાયજીએ કૃષ્ણાસ્ય તરીકે કહેલો છે તેજ સર્વાત્મભાવરૂપ, નિરોધરૂપ, સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપ અથવા તો પુષ્ટિ-ભક્તિરૂપ જે કહો તે શ્રીઆચાર્યચરણ જ છે. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પરમભાવરૂપ છે. જેથી આપ્તજનોદ્વારા કહેલું શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પ્રમેયનું પણ પ્રમેય અને ફલનું પણ ફલ છે. તે ભાવાત્મક શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્ય સંસ્કૃત અને ભાષા બન્નેમાં પ્રાપ્ત થાય છે. અને તે સાહિત્ય શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યની એકવાક્યતાના મધ્યસ્થ રૂપ છે. જે પુરૂષે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક

+જાનિત પરમંતત્ત્વં યશોદોત્સંગલાલિતમ્ ।

તદન્યદિતિ યે પ્રાહુરાસુરાંસ્તાનહો બુધાઃ ॥ (શ્રીગુસાંધજી)

xસદા સર્વાત્મના સેવ્યો ભગવાન ગોકુલેશ્વર ।

સ્મર્તવ્યો ગોપિકાવૃન્દે ક્રોડન્ વૃન્દાવનેસ્થિતઃ ॥ (શ્રીગુસાંધજી)



ભાવાત્મક સાહિત્યનો અનુભવ કર્યો છે તેને કાષ્ઠપિણુ પ્રકારનો વિરોધ શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં દેખાતો નથીજ. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની એકવાક્યતા અને મહત્તા, પુષ્ટિમાર્ગના સાહિત્યક્ષેત્રમાં પૂર્ણપણે રહેલી છે. તે વાત તેના અનુભવીથી તો જરાય અજાણી નથીજ.

શ્રીઆચાર્યચરણનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ અને તદ્વિષયક સાહિત્ય કેવી રીતે પ્રકટ થયું ?

શ્રીઆચાર્યચરણે સ્વયં, પોતાનું સ્વરૂપ મુખાર્વિન્દના અધિષ્ઠાતા રૂપ વૈશ્વાનર અને વાણીના પતી તરીકેનું સ્વમુખથી વર્ણવ્યું છે. (જેમ શ્રીકૃષ્ણે ગીતા આદિ અનેક સ્થળે પોતાનું સ્વરૂપ પોતે કહેલું છે તેમ) અને પોતાનું આંતરિક ભાવાત્મક હાર્દરૂપ સ્વરૂપ અવ્યક્ત રૂપે શ્રીસુખોદિનીજીમાં પણ સ્થાપ્યું છે. અને તે પોતાના નિગૂઢ સ્વરૂપનો પ્રકટ અનુભવ પોતાના સેવકોને આપે કરાવ્યો છે. તે સેવકોમાં મુખ્ય દમલા, પ્રભુદાસ અને પદ્મનાભદાસ છે. દમલાદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણે પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીગુસાંઈજીને કરાવ્યો. એટલે પછી શ્રીગુસાંઈજીએ સંસ્કૃતમાં શ્રીઆચાર્યચરણના નામ, રૂપ, અને ગુણને (ક્રમશઃ સર્વોત્તમ, વલ્લભાષ્ટક અને સ્ફૂરતકૃષ્ણપ્રેમામૃત રૂપે ) પ્રકટ કરી શ્રીઆચાર્યચરણના ભજનનો માર્ગ ખુલ્લો કર્યો. પદ્મનાભદાસે સ્વાનુભવ પદ્યરૂપે ભાષામાં વર્ણવ્યો. આ રીતે શ્રીઆચાર્યજીનું પરમ ક્ષાત્મક ભાવસ્વરૂપ પુષ્ટિ-સૃષ્ટિમાં પ્રકટ થયું. અને અનેક જીવોને યથાધિકાર તેનો અનુભવ થયો. અને તેનાં અનુભવનાં વાક્યો અને ગ્રન્થોનું ભાવાત્મક સાહિત્ય આ રીતે પ્રકટ થયું.

શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની પ્રામાણિકતા.

આ શ્રીઆચાર્ય વિષયક તમામ સાહિત્ય આપ્તવાક્યરૂપ હોય પ્રમેય કાટીનું છે. જેમ વ્યાસજી, વાલ્મીકિ આદિના આપ્તવાક્ય અને અનુભવ પ્રમાણ સ્વરૂપ, શ્રીભાગવત, રામાયણ આદિને શબ્દપ્રમાણથી જે વિશેષ મહત્વયુક્ત સર્વત્ર માનવામાં આવેલાં છે, તેમ શ્રીગોકુલેશ



પણ ભગવત્સાક્ષાત્કાર યુક્ત હોવાથી તેમની કહેલી આ વાણીરૂપી વાર્તાઓ પણ આપ્તવાક્ય અને અનુભવપ્રમાણરૂપ હોઈ સર્વત્ર પ્રમાણરૂપે ગણાઈ છે. તેથી તે વિશ્વસનીય સત્ય અને સ્વતઃ સિદ્ધરૂપ જ છે.

શ્રીગુસાંઈજીએ માર્ગનું રહસ્ય શ્રીગોકુલેશમાં સ્થાપ્યું હતું. એટલે શ્રીગોકુલેશે શ્રીઆચાર્યચરણના ભજન રૂપ આ રહસ્યને સારી રીતે સમજીને પોતે તેનો અનુભવ કર્યો. ત્યારપછી તે અનુભવ સ્વભક્તોમાં પ્રકટ કર્યો. એટલે શ્રીગોકુલેશે સર્વોત્તમ, અને વધુભાષ્ટક ઉપર સ્વતંત્ર ટીકા કરી અને તેમાં શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ બહુજ સ્પષ્ટ રૂપે વર્ણવ્યું. તો પણ તે સંસ્કૃતમાં હોઈ સર્વોપયોગી ન થવાથી તેમજ સંક્ષિપ્ત લાગવાથી શ્રીગોકુલેશે તે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને ભાષામાં ગદ્યરૂપે વિસ્તારપૂર્વક સ્પષ્ટ કર્યું. જેથી તે સર્વોપયોગી થયું.

આ કલીકાલમાં પ્રમેયાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ શ્રીઆચાર્યચરણની કૃપા વિના અશક્ય હોઈને જ શ્રીગુસાંઈજીએ, શ્રીગોકુલેશે તેમજ શ્રીહરિરાયજીએ શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાવાળા અનેક ગદ્યપદ્ધાત્મક ભાષા અને સંસ્કૃત સર્વ પ્રકારના ગ્રંથો કર્યા. અને શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સારી રીતે સમજાવ્યું. અને આ ગ્રંથોમાં વાર્તાને મુખ્ય સ્થાન મળ્યું. તેથી જ શ્રીગોકુલેશે વૈષ્ણવોની વાર્તાને ફલ રૂપે કહી છે.

આપ્તવાક્યોના સમૂહરૂપ વાર્તાઓના આ (ઉપરોક્ત કથીત) ગૂઢ આશયને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ સારી રીતે જાણ્યો. તેથી વાર્તાના સ્વરૂપને સમજાવવાને માટે આપે સૂત્રાત્મકરૂપે અત્યંત ભગવદ્ભાવ પ્રચૂર એક લેખ લખ્યો (તે અમે વાર્તાની શરૂઆતમાં આપ્યો છે) તે ઉપરાંત વાર્તાના દરેક પ્રસંગો ઉપર સૂક્ષ્મ “ભાવપ્રકાશ” યોજ્યો. અને વાર્તાનો આશય બહુજ સ્પષ્ટ કર્યો. આ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ વાર્તાઓના મહત્ત્વમાં વિશેષ વધારો થયો.

શ્રીહરિરાયજીના મતે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે. કારણ કે આ વાર્તાઓના એક એક અક્ષરમાં શ્રીઆચાર્યજી ઓતપ્રોત રૂપે ઝિરાજે છે. આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીના ત્રિવિધ ઇતિહાસ



રૂપ છે. ૧ ભૌતિક, ૨ આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક. ૧ ભૌતિક= બાહ્ય ક્રિયાત્મક જીવનચરિત્રરૂપે, ૨ આધ્યાત્મિક=આંતરજીવનચરિત્ર રૂપ જ્ઞાનાત્મકપણે. ૩ આધિદૈવિક=ભાવાત્મક સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપે. આ વાર્તાઓમાં શ્રીઆચાર્યચરણનાં રૂપ, ગુણ, વય, આકાર, જ્ઞાન સામર્થ્ય, ભક્તવત્સલતા આદિ ધર્મો, વાણીમાધુર્ય, નિત્યક્રમ, શાસ્ત્રાર્થશૈલી, સેવા અને કથાની પ્રણાલીકા, આનંદીતસ્વભાવ, રીતભાત, ચાલ, ખિરાજવાની શૈલી, પાકક્રિયા, વિવેક, ધૈર્ય, આશ્રય, ઐશ્વર્યાદિ અનેક અલૌકીક ધર્મો, સત્ય, દયા, દીનતા, સેવા અને કથાની તત્પરતા, વિરહ આદિ અનેક નિગૂઢ ભાવો, તેમજ અનેક ચરિત્રોનો સમાવેશ થયેલો છે. એટલે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્ર રૂપ છે. સારાંશ કે શ્રીઆચાર્યજીનું સાંગોપાંગ આંતર બાહ્ય સ્વરૂપ અને તેના ધર્મો તથા અનેક તત્ત્વો અને ભાવનાઓ આ વાર્તામાં પ્રત્યક્ષરૂપે વિદ્યમાન છે. તે તેના અભ્યાસીને જણાયા વિના રહેતું નથી જ. અને તેથી પણ આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનું જ સ્વરૂપ છે તે સ્વયં સિદ્ધ થાય છે. એવીજ રીતે ૨૫૨ ની વાર્તા શ્રીગુસાંઈજીના જીવનચરિત્રરૂપ છે. આ વાતને સમજાવવા જ શ્રીહરિરાયજીના સેવક મહાશય વિકુલનાથ ભટ્ટે પણ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ગ્રન્થોનાં નામોનો ઉલ્લેખ કરતાં ૮૪-૨૫૨ વૈષ્ણવોની વાર્તા ન કહેતાં “વહ્નમવિઘ્નલ વાર્તા પ્રકટ કીન નૃપમાન ।” એમ સૂક્ષ્મ પ્રકારથી ઉદેપુરના રાજા માનસિંહજીને વાર્તાઓનું સ્વરૂપ સમજાવતાં સં. ૧૭૨૯ માં કહેલું છે. આજ વાત સદ્ગત શ્રીયુત મૂલચંદ્ર તેલીવાળા “શૃંગાર રસમંડન”ની પ્રસ્તાવનામાં આ પ્રમાણે લખે છે:—

“સાંપ્રદાયિક ગાથાઓનો વિચાર કરતાં શ્રીવિકુલેશ્વરને લીલાના સાક્ષાત્ અનુભવમાં શ્રીમદ્ દામોદરદાસજી સહાય થાય તે અનુચિત નથી જ. x x x આપશ્રીનું (શ્રીગુસાંઈજીનું) વિશેષ ચરિત્ર સાંપ્રદાયિક વાર્તાઓ વિગેરેમાં પ્રસિદ્ધ છે.”

આ પ્રકારે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઈજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપ હોઈ રક્ષણીય અને મનનીય છે. તેમજ તે સાંપ્રદાયિક સમગ્ર સાહિત્યમાં સર્વોત્કૃષ્ટ છે.



આ વાર્તાઓમાં ધાર્મિક તત્ત્વો અને રહસ્યોનો એટલો અધો સમાવેશ છે કે તેના શ્રદ્ધાપૂર્વકના શ્રવણ માત્રથી જ હૃદયનો નાસ્તિક અજ્ઞાનાંધકાર સહેજે નષ્ટ થઈ જાય છે અને હૃદય અત્યંત શુદ્ધ બની કમલની માફક ખીલી ઉઠે છે.

યદિ આ વાર્તાઓને શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસમાંથી કાઢી લઈએ તો શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપે શેષ કંઈ પણ રહેતું જ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યચરણનાં સ્વરૂપના જ્ઞાન અર્થે, સંપ્રદાયની સેવાપ્રણાલીના અને ધાર્મિક સિદ્ધાંત આદિના દૃષ્ટાંતરૂપે આ વાર્તાઓ પૂર્ણ ઉપયોગી છે.

આજસુધીમાં જેટલા મહાનુભાવોએ શ્રીઆચાર્યચરણનાં જીવનચરિત્રો લખ્યાં છે તેમને દરેકને વાર્તાઓમાંના વૈષ્ણવોના ભાવવાહી પ્રસંગોનો આશ્રય લેવો જ પડ્યો છે. જુઓ \*વલ્લભાખ્યાન, પ્રદીપ, દેગ્વીજય, વલ્લભચરિત્ર આદિ ગ્રન્થો.

આ વાર્તાની રચના શ્રીગોકુલેશે વિ. સંવત ૧૬૪૨ પછી અને ૧૬૪૫ પહેલાં કરેલી છે. તે એથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ૨૫૨ ની વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ સાતે બાલકો અલગ વાર્તા રચના કાલ થયા પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી. કાન્હ્યાઈની વાર્તામાં શ્રીગોકુલનાથજીએ યજ્ઞ કરવાનો વિચાર્યો ત્યારે શ્રીગિરિધરજીની આજ્ઞા માંગી છે તે પ્રસંગ આવે છે એટલે તે વખતે સાતે બાલકો ભેગાજ બિરાજતા હતા તે સ્પષ્ટ જ છે. સં. ૧૬૪૫ પછી સાત બાળકો અલગ અલગ રહેવા લાગ્યા. માફી બીજો એવો એક પણ પ્રસંગ શ્રીગુસાંઈજીની લીલા વિસ્તાર પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી. શ્રીગુસાંઈજીની લીલાવિસ્તારનો પ્રસંગ પ્રાચીન અને છીતસ્વામીની વાર્તામાં આપેલો છે. અને શ્રીગુસાંઈજીએ સં. ૧૬૪૨ માં લીલા વિસ્તારી છે તે સ્પષ્ટ જ છે.

\*વલ્લભાખ્યાન અને પ્રદીપના સમયમાં વાર્તાનું સ્વરૂપ ગ્રન્થાકાર રૂપે ન હતું તો પણ વાર્તાના પ્રસંગોની વિખ્યાતી જગપ્રસિદ્ધ હતી તથા અન્ય સંપ્રદાયના ભક્તમાલ આદિ ગ્રન્થોમાં પણ તેનું અસ્તિત્વ જણાય છે.



આ વાર્તાની રચના પછી જ શ્રીગોકુલેશે નિજવાર્તા, ધરવાર્તા, અને બેકકચરિત્ર રચેલાં હોવાં જોઈએ કારણ કે વાર્તાના જ અમૂક પ્રસંગોનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ ઉપરોક્ત ગ્રન્થોમાં પ્રાયઃ જોવામાં આવે છે. દામોદરદાસ હરસાનીનો પૂર્વપ્રસંગ પાછલથી પ્રાપ્ત થયેલો હોવાથી વાર્તામાં તે દેખાતો નથી પરંતુ નિજવાર્તામાં તે આપેલો છે. આથી પણ એક અનુમાન થઈ શકે છે કે ઉપરોક્ત ત્રણ ગ્રન્થોની રચના પછીથી થયેલી હોવી જોઈએ. અને ભાવસિંધુ તો લગભગ સં. ૧૬૮૦ પછીથી રચાયેલો સ્પષ્ટ જ છે. કારણ કે તેમાં ચંદાખાધ અને જહાંગીરનો પ્રસંગ છે.

આ રીતે વાર્તાનો રચનાકાલ સં. ૧૬૪૨ થી ૧૬૪૫ સુધીનો નિશ્ચિત થાય છે.

કેટલાક સુત્ર ગણાતા પુરૂષો પણ ઘણીવાર એમ કહે છે કે વાર્તામાં લહીયાઓએ સ્વકલ્પિત રોચક પ્રસંગ લખીને વાર્તાને વધારી છે. મૂલ વાર્તા બે હજાર શ્લોકનીજ હતી અને લહીયાઓ ઉપરનો પાછલથી તે દસ હજાર શ્લોક જેટલી થઈ. આ મિથ્યાદોષ.

આક્ષેપ કેવલ અજ્ઞાનતાસૂચક અને અન્યાય પૂર્ણ છે તે કદાચ વિના રહી શકાતું નથી. કારણ કે મૂલ વાર્તા સંસ્કૃતમાં રચાયેલીજ નથી કિન્તુ વ્રજભાષામાં જ રચાયેલી છે. તે અનેક પ્રાચીન ગ્રન્થોની વિદ્યમાનતા અને મહાશય વિઠ્ઠલનાથની વાણીથી પણ સિદ્ધ થાય છે. તેમજ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત સંસ્કૃત વાર્તા અદ્યાપિ કોઈને પ્રાપ્ત થઈ પણ નથી. જે સંસ્કૃત વાર્તા સંપ્રદાયમાં પ્રાપ્ત છે તે શ્રીનાથદેવ મહેશના નામની છે અન્ય કોઈપણ પ્રાપ્ત નથી. એટલે મૂલવાર્તા સંસ્કૃત હતી તે આક્ષેપ મિથ્યા થાય છે.

બીજું તેના પ્રમાણ રૂપે શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવપ્રકાશ સખલ પુરાવો છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીનું પ્રાકટ્ય વ્રજ સંવત ૧૬૪૭માં છે અને આપ શ્રીગોકુલેશજીના જ શિષ્ય છે તેમજ શ્રીગોકુલેશજીના ગ્રન્થોના પૂર્ણ અભ્યાસી છે. યદિ શ્રીગોકુલેશજીએ વાર્તા સંસ્કૃતમાં રચી હોત તો આપ પણ તેના ઉપરનો ભાવ પ્રકાશ સંસ્કૃતમાં જ



રચત, કિંતુ આપે ભાષામાં રચ્યો છે. અને સંસ્કૃત વાર્તા સંબંધી જરા એટલેયે કાંઈ પણ જગ્યાએ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. શ્રીગોકુલેશ સં. ૧૬૮૮ સુધી ભૂતલ ઉપર બિરાજ્યા. એટલે શ્રીહરિરાયજીને શ્રીગોકુલેશનો સહવાસ અને સાંપ્રદાયિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો સમય ખૂબજ મળેલો હોવો જોઈએ. તેથી આવી વાર્તા આપનાથી અજાણી રહેજ નહિ.\*

વળી લહીયાઓ એ વાર્તામાં કલ્પિત પ્રસંગો વધારી તેને પેટના અર્થે રોચક બનાવી સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તથી વિરુદ્ધ કરી છે તેવા પ્રકારનો આક્ષેપ પણ અનુચિત જ છે. અમારી દૃષ્ટિએ વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ વધારેલો અમને લાગતો નથી તેમ સંપ્રદાય વિરુદ્ધ સિદ્ધાન્તવાળો પણ જણાતો નથી. જે જે વાર્તાઓ ઉપર આક્ષેપો થયા છે તેનો પરિહાર અમે પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે અને આગલ ઉપર કરીશું. આ ભાગમાં તુલસાં અને રજોની વાર્તા ઉપર થયેલા અનુચિત અજ્ઞાનજનક મૂર્ખતા પૂર્ણ આક્ષેપો નો પરિહાર અમે શાસ્ત્રીય પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે †

શ્રીગોકુલેશના સમય સુધી તો એકજ લહીયો મુખ્યતા રૂપે પુસ્તક લખતો અને પોતાના આશ્રિત અન્ય મનુષ્યો પાસે તે પ્રતની એક નકલો કરવાવતો હતો. અને તે શ્રીગોકુલેશ તપાસતા હતા.

\* વિશેષ શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાયજીનું જીવનચરિત્ર ભાગ ૨ માં આપવામાં આવશે.

† રજો એ આચાર્યચરણને અનસખડી અરોગાવી તેમાં વર્ણાશ્રમ વિરુદ્ધ ભક્તિમાર્ગની દૃષ્ટિથી કંઈએ નથી. કારણ કે તે અનસખડી સ્વયં શ્રીમાલકૃષ્ણ પ્રભુ સાક્ષાત્ રૂપથી મુખ્યમાં અંગીકાર કરતા એટલે તે મહાપ્રસાદના તરીકે હોવાથી ભક્તિમાર્ગમાં તેને બાધ આવતો નથીજ. તે સંબંધી શ્રીનાથ ભટ્ટે પણ મુક્તપ્રભોઃ પ્રસાદાસં પક્વાન્નં એમ સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. તેમજ શાસ્ત્રીજી વસંતરામે પણ તે સંબંધી તેજ જવાબ પહેલાં શુદ્ધાદૈતમાં પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત (હાલ મોજુદી અવસ્થાનું) દ્વારા આપી પુકચા છે. એટલે તે બાબતમાં અમે વાર્તામાં કંઈ લખ્યું નથી. (વિશેષ અન્ય પ્રમાણો રજોની વાર્તામાં જુઓ.)



અને પછીજ તે ગ્રન્થોનો પ્રચાર થતો. એટલે જરાયે પોલ તે સમયમાં ચાલતી ન હતી. તે લહીયાનું નામ “બલીયા” હતું. એ વાત જગપ્રસિદ્ધ છે. એટલે પોતાની અજ્ઞાનતાથી કોઈ પ્રસંગ યા વાર્તા સમજમાં ન આવે તો તે કલ્પિત છે એમ કહેવું તે ખરેખર હાસ્યાસ્પદ છે અને પોતાના જ પાંડિત્યને બદ્દો લગાડવા જેવું છે. પાંડિત્ય એનું જ નામ છે જે સર્વે ગ્રન્થોની અધિકાર ભેદ અને દષ્ટિભેદ આદિથી એકવાક્યતા કરી આપે.

હવે આપણને જે અનેક પ્રતીઓ હસ્તલિખીત વાર્તાની પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં, કોઈ પ્રતી અપૂર્ણ છે તો કોઈ પ્રતીના કેટલાક પ્રસંગોમાં વિવિધતા અને વિશેષતા પણ પ્રાપ્ત થાય છે.

પ્રસંગોની અપૂર્ણતા આ વસ્તુ આક્ષેપકર્તાઓની ઢાલરૂપ હોઈ અને વિવિધતા ભ્રમ ઉત્પન્ન કરવાવાળી વસ્તુ છે. પરંતુ જે

પ્રાચીન સમય ને ધ્યાનમાં લઈએ તો સમજી શકાય છે કે તે ભ્રમ મિથ્યા છે. કારણકે પ્રાચીન કાલમાં નિશ્ચિત લિખીયાઓ પાસેથી પુસ્તક લખાવવામાં દ્રવ્યની વિશેષ આવશ્યકતા પડતી હતી. એટલે દ્રવ્યવાન સિવાય અન્ય તેનો લાભ લઈ શકતા ન હતા. તે સમયમાં વાર્તાનો પ્રચાર અત્યંત હતો તેમ તેના ઉપર જનસમૂહનો પ્રેમ પણ અદ્ભુત જ હતો. તેથી સાધારણ સ્થિતિના લોકો કાં તો વાર્તા સ્વયં ઉતારી લેતા અથવા તો કંઠસ્થ પ્રસંગો ને શેષ રાખી અન્ય પ્રસંગો થોડાક દ્રવ્યમાં ઉતારાવી લેતા યા ઉતારી લેતા. આથી અનેક પ્રકારની પૂર્ણ અપૂર્ણ અને વિવિધતાવાળી પ્રતીઓ આજ આપણા જોવામાં આવે છે તેના પુરાવા રૂપ અમને એક જીર્ણપત્ર પ્રાપ્ત થયેલો તેની નકલ અમે કરી લીધી હતી તે અહીં આપીએ છીએ:—

શ્રીહરિ શ્રી...જી આગલ સુધ કરશે શ્રીજમન પાન કરતાં યાદ કરશે.

સિદ્ધ શ્રીગોકુલમધ્યે શ્રીમહારાણીજીના પયપાનન અભિલાષી ભાઈ જીવનભાઈ જોગ લી. શ્રીવલ્લભદાસાનુદાસ મહાપમર અમૃતના દૈન્યતાપૂર્વક જયજયશ્રી.....



જત તમારો પત્ર મળ્યો મારે એક ૮૪ અને એક ૨૫૨ની વાર્તાનું પુસ્તક જોઈ એ છીએ. કૃપા કરીને તમો લેતા આવજો. મારી પાસે દ્રવ્યની અનુકુલતા નથી તો જેમ બને તેમ હું ઉતરાવી સાર સાર લખાવી જરૂર લેતા આવજો. અમારા મોહનભાઈ લાવ્યા હતા તે કહેતા હતા કે રૂ. ૧૦૦) અંકે સો પુરા આપ્યા છે. પણ ભાઈ મારી પાસે તો રૂ. ૫૦) થી વધારે આપવાની શક્તી નથી. માટે તમે ચતુર છો જેમ ઠીક સમજો તેમ લખાવી જરૂર લાવજો.....

અહિં મહારાજ પધાર્યા છે તમારી દંડવત કરી છે. હાલ એજ. કામકાજ લખજો. જોઈતું કરતું મંગાવજો. સંવત ૧૭૮૦ ના મિતિ શ્રાવણ વદ ૫ વાર સોમ.

આ પત્રથી આપ જાણી શકો છો કે ઉપરોક્ત અમારું કથન સત્ય છે કે નહિ ?

આપણી વાર્તાઓ પ્રાચીન ભારતીય ઐતિહાસિક શૈલીથી લખાયેલી છે. એટલે તેમાં વિશેષ ભૌતિક કાલનું નિરૂપણ જોવામાં આવતું નથી. તો પણ આસપાસના પ્રસંગો-

**વાર્તાની** અને ઇતિહાસ જોવાથી આપણે ભૌતિક કાલનો **ઐતિહાસિકતા** પ્રાયઃ નિશ્ચય કરી શકીએ છીએ.

આપણી ભારતીય પ્રાચીન ઐતિહાસિક લેખન શૈલી એવા પ્રકારની હતી કે જેના અવલોકન દ્વારા ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષને મનુષ્ય સારી રીતે સાધી શકતો હતો. કારણ કે આપણે ત્યાંની ઇતિહાસની વ્યાખ્યાજ આ પ્રમાણે છે કે:—

इतिह पारम्पर्योपदेशः आस्तेऽस्मिन् । इतिह+आसघञ् । धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम् । पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते । इत्युक्त लक्षणे पुरावृत्तप्रकाशके भारतादिग्रन्थे । (शब्दस्तोम महानिधि)

આ વ્યાખ્યાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે જેમાં પરમ્પરાગત-ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો ઉપદેશ હોય તેજ ભારતીય દષ્ટિથી ઇતિહાસ કહેવાય. આજ કાલના કહેવાતા ભારતના સંતાનો પરંતુ મન, વાણી અને



ક્રિયાથી પાશ્ચાત્ય જડવાદ નેજા અનુસરનારા ઉપરની ભારતીય ઇતિહાસની વ્યાખ્યાથી અજ્ઞાન હોઇ જેમાં સંવત આદિ કાલનિર્દેશ હોય તેનેજ ઇતિહાસ માને છે, પછી ભલે તે અન્યથા રૂપે હોય. આ અજ્ઞાનતા મનુષ્યને કેવા અંધકારમય માર્ગે લઈ જાય છે તે અત્યારે સર્વ કાર્ષ પ્રત્યક્ષપણે જોઈ શકે છે. જો ઉપરની વ્યાખ્યા પ્રમાણ રૂપ ન હોય તો ગીતા, ભાગવત, રામાયણ આદિ મહાન ઐતિહાસિક ગ્રંથો પણ કલ્પિત રૂપે થઈ જાય, તે સર્વથા અવાંચનીયજ છે. અતએવ ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો પરમ્પરાગત ઉપદેશ જેમ ગીતા આદિ ગ્રંથોમાં છે તેમ વાર્તાઓમાં પણ સ્પષ્ટ પણે રહેલો છે. તે આપણે સ્થલે સ્થલે અવલોકીશું. અતએવ વાર્તાઓમાં કલ્પિતતા કે અનૈતિહાસિકતાનો જરાય આરોપ આવી શકે તેમ નથીજ. ભારતીય પ્રણાલીથી વાર્તા વિશેષ કરીને ધાર્મિક ઇતિહાસ રૂપ છે જ.

વાર્તા અને ભાષાસાહિત્ય સંબંધી સાંપ્રદાયિક, અન્ય સાંપ્રદાયિક અને તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયો:-

ભક્ત મહાનુભાવ કવિ દયારામ કહે છે કે:-

“સકલ તત્વનું તત્વ છે એ સાર માંહે સાર ॥

પાઠ કરતાં માત્રમાં વશ થાય શ્રીનંદકુમાર ॥

શ્રીવલ્લભ વિદ્વલ પ્રભુને પ્રસન્ન કરવા ચ્હાય ॥

નથી અવર ઉપાય બીજો હરિ ભક્તના ગુણ ગાય ॥

શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુના અંતરંગ એ ભક્ત ॥

મુજ ઉપર કરુણા કરી દો શ્રીવલ્લભ પદ આસક્ત ॥

એ વૈષ્ણવ પદરજ રતીની છે ઘણી મુજને આશ ॥

ગાય ગુણ હરિદાસના દયારામ દાસનો દાસ ॥”

આ પુસ્તકમાં આપેલા ચોરાશી વૈષ્ણવોના શ્રીહરિરાયજી કૃત લીલાના સ્વરૂપોના નામ સંબંધી અને શ્રીહરિરાયજીએ રચેલા વાર્તા ઉપરના ભાવપ્રકાશ અને લેખ સંબંધી શ્રીવલ્લભજી મહારાજ પોતાના ધોળમાં આ પ્રમાણે કહે છે:-



“ ચોરાશી ચિત લાવીને કરે પાઠ નિત્ય ધરી તેમ,  
 પુષ્ટિપંથ પ્રભુ પ્રસન્ન થાયે હ્રદે બાઢે પ્રેમ. ૧૨૨.  
 કૃપા શ્રીહરિરાયજી કરી દીન જાણી દાસ,  
 મૂલ ચોરાશી ભક્તનાં તે નામ કર્યાં પ્રકાશ. ૧૨૩  
 શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુનાં અંગ દ્વાદશ જેહ,  
 ધર્મ સાથે ધર્મી કહીએ સમે દ્વાદશ તેહ. ૧૨૪  
 ચોરાશી ગ્રજ કોશ માટે ચોરાશી એ ભક્ત,\*  
 પ્રેમલક્ષણા પૂરેપૂરી શ્રીવદ્ધભપદ આસક્ત. ૧૨૫  
 એ વૈષ્ણવ પદ કમળ રજ રતિ તણી છે અતિઆશ,  
 ગાયે ગુણ હરિદાસના પદરજ શ્રીવદ્ધભ દાસ”-(રસમય ઘોળ સાગર).

ગોસ્વામિ બાલકોના અભિપ્રાયો:—

૧ “૮૪ અને ૨૫૨ એ પુષ્ટિમાર્ગના કાયદાઓ છે. જેના જાણવાથી પુષ્ટિપ્રભુની પ્રાપ્તિ રૂપી મુકદ્દમામાં સહેજે ફલિભૂત થઈ શકાય છે.” ( શ્રીતિલકાયત શ્રીગોવર્ધનલાલજી )

૨ “વાર્તા અમારું ગૌરવ છે. તેમાં અમારા પૂર્વજો સાથે પરબ્રહ્મ શ્રીનાથજી એક સંબંધીની માફક બોલતા, ચાલતા, ભાગતા અને અરોગતા હતા. આથી અમારા કુલનું વિશેષ ગૌરવ બીજું કયું હોઈ શકે ?” (સુરતીસ્થ ચિ. ગોવિંદલાલ બાવાસાહુબના સ્વતંત્ર ઉદ્ગાર.)

૩ “ સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમાં જો સમજ ન પડે તો વાર્તાઓ અહર્નીશ વાંચવી. માર્ગના તમામ સિદ્ધાંતોનું મૂલ વાર્તાઓ છે.” ( શ્રીદ્વારકેશલાલજી )

૪ સંપ્રદાયના સંસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર વિદ્વાન અને મર્મજ્ઞ તેમજ સેવારસિક મહાનુભાવ શ્રીગોકુલદાસજી વિદ્યાસુબાકર મુખ્યાજી (કાટા-બડે મથુરેશજીના) સમગ્ર સાંપ્રદાયિક ભાષાસાહિત્યને માટે આ પ્રમાણે લખે છે:—

“हम लोग तो वार्ता भावना को मानवेवारे हैं क्योंकि वार्ता भावना ही

\* શ્રીહરિરાયજીના લેખ અને ભાવપ્રકાશનું એક વિશેષ પ્રમાણ.



पुष्टिमार्ग को प्रचार करवेवारे है x x x प्राचीन वार्ता भावनान की पुस्तक में जो विरोध मालुम पडे है वह अपनी अल्प बुद्धि को दोष है. वार्ता भावना में उत्तम मध्यम ओर प्रथमाधिकारी के योग्यतानुसार कर्तव्याकर्तव्य को निरूपण है " x x x x x

संप्रदायना प्रप्पर ज्ञाता श्रीयुत शास्त्रीः कृष्णभण्डिः वार्ता कीर्तन आदि भाषासाहित्य भाटे आ प्रमाणे कहे छे:—

“ संप्रदायकी एक भाषानिधि ८४ वैष्णव वार्ता तथा २५२ वैष्णवकी वार्ता प्राचीन अष्टसखाओ के कीर्तन तथा चरित्र आदि हैं जिनके लिये संप्रदायानुयायीओ के गर्व होना चाहिए. इसकी अनभिज्ञतासे मान-हानि करना हमारे लिये पाप है. हमे इनके अवलोकनसे वास्तविक तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये. इसका समुचित रूपेण रक्षण नितान्त आवश्यक है.” x x x

(विशेष अभिप्राये. “भाषासाहित्यतुं गांभीर्य” नामना पुस्तकभां जुओ.)

भीम पणु वार्ता अने भाषासाहित्यना गौरवने वधारनार विद्वानोना अन्य अभिप्राये. धणु छे. परंतु स्थल-संकेत्यथी आदला न आया छे. हवे अन्य संप्रदायी विद्वान अने साक्षर पुरुषो आपणु भाषासाहित्यने भाटे शुं लजे छे? तेनुं दुंक वृत्तांत अहीं नोंध्युं छे:—

श्रीयुत आचार्य श्रीरसिक भोढनः विद्याभूषणु आप्तवाक्यतुं प्रमाणु अने तेनी भगवत्स्वपथी अलिनता आ प्रमाणे कथे छे:—

“ इन वक्तव्यों में पूर्ण विश्वास करना बड़ा कठिन है। सन्तो और ऋषियो द्वारा व्यक्त सत्य सर्वातिरिक्त है; वह उन लोगोंकी विचार शक्तिसे परे है जिनको अपने हृदयमें भगवत्कृपा रूपी ज्वाला के स्फुलिंग प्राप्त नहीं हुये हैं। हम साधारण मनुष्य इस सत्यकी आत्मामें कठिनता से ही प्रवेश कर सकते हैं। हमारी जानकारी में तो नाम कुछ अक्षरों से बना है, ऐसा नाम स्वयं ब्रह्म से अभिन्न कैसे हो सकता है? हम इसके लिये कोई कारण नहीं बता सकते। वस्तुतः युक्तिवादी की सम्पूर्ण सांसारिक विधियाँ इस सत्य को प्रकट करने में



असमर्थ हैं। इस जगतमें बहुत सी ऐसी चीजें हैं विशेषतः वे वस्तुयें जो सर्वातिरिक्त हैं जिनकी व्याख्या साधारण बुद्धि से नहीं की जा सकती। ऐसी ही बातों के लिये सन्तों और ऋषियों के शब्द जिन्हें 'आप्तवाक्य' कहा जाता है, प्रमाण माने जाते हैं। ”

श्रीयुत सुप्रसिद्ध साहित्य संशोधक मिश्रअंधुओ। वार्ताओ। भाटे आ प्रमाणे लपे छे:—

“विठ्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजीने ८४ ओर २५२ वैष्णव की वार्ता नामक गद्य में जो दो बृहत् ग्रन्थ लिखे उनके देखनेसे विदित होता है कि ये भक्तगण सदैव कृष्णानन्द में ही निमग्न रहते थे। ८४ एवं २५२ वैष्णव की वार्ताओ में इसी संप्रदाय (वल्लभीय) के महात्माओंका वर्णन है।”

( “विनोद” प्रौ. भा. प्र. ११ अ. )

श्रीयुत मिश्रअंधुओ। वार्ताने ऐतिहासिक माने छे. तेओ। तेभना विनोदमां लपे छे छे:—“इनसे (वार्तासे) तात्कालिक कई महा-त्माओंका समय स्थिर हो जाता है ” x x x x

श्रीयुत मिश्रअंधुओ, आपणा वार्ता कर्तिन आदि भाषासाहित्य भाटे छेटलुं मान रापे छे ते ओओ। तेओ। लपे छे छे:—

“कविता भंडार आपहीके (श्रीवल्लभाचार्यजीके) शिष्यों की रचनासे परिपूर्ण हुआ है ॥ ब्रजभाषा का जो भाषा कविता पर साम्राज्य सा हो गया है इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि आपके संप्रदायवालोंने अपनी पुरी रचना इसीमें की है। महात्मा सुरदास तथा अष्टछापके अन्य कविगणोंकी रचना ब्रजभाषाकी भूषण स्वरूप है। यदि भाषा काव्यको आपके संप्रदाय द्वारा इतना सहारा नमिला होता तो आज शायद ब्रजभाषाकी कविता इतनी परिपूर्ण न होती। यह सब आपहीका प्रताप है। ” (भा. १ आदि प्र. २२९ पान)

“इनके (श्रीविठ्ठलनाथजी) ओर इनके पिता श्रीमहाप्रभुजी के कारण भाषासात्विकी बहुत बड़ी उन्नति हुई ॥” (२९१ पान)



“ महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के ये महाराज (श्रीगोकुलनाथजी) आत्मज थे । इनके दो ग्रन्थ चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता और २५२ वैष्णवोंकी वार्ता प्रसिद्ध है । x x x x इनकी लेख प्रणाली प्रसंशनीय है ॥ ” x x x x

आ उपरोक्त प्रमाणोथी सर्व ठाँठ जाली शक छे के पुष्टि-मार्गनुं भाषासाहित्य, अन्य साहित्यरसिकोनी दृष्टिमां पणु केटलुं उत्तम निष्कलंक अने श्रीआचार्यजना प्रतापने प्रकट करवावाणुं छे ? आया शुद्ध लक्तोना यरित्रो अने तेमनी अनुभवी वाणी उपर जेओ आक्षेप करे छे तेमने क्या शब्दोथी संशोधवा ते माटे भाषामां ठाँठ शब्दो ज मने तो मणता नथी. वार्ता ऐतिहासिक, निष्कलंक अने शुद्ध छे. ते सर्वानुमते (वियारडोमां) निर्विवादपणे सिद्ध ज छे—

“ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ” ना लेखक डा. शी, हिन्दी युनिवर्सिटीना प्रोफेसर श्रीयुत् रामचंद्र शुक्ल आ प्रमाणे लपे छे:—

“ गुरु नानकजीके जन्मके थोडे ही दिन बाद स्वामी वल्लभाचार्य का जन्म हुआ । यह तैलंग ब्राह्मण थे । जिनका जन्म १४७९ ई० में हुआ था । x x x इनकी अब तक पूजा होती है । x x x पद इन्होंने लिखे हों अथवा न लिखे हों किंतु हिन्दी विशेषतः ब्रजभाषा सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी । क्योंकि इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और इनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया. ” पा. ३९

“ इस कालके वैष्णव संप्रदायने एक नए ढंग का सर्वोत्तम साहित्य निकाला । यह साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा में है जिसकी मधुरता जगत प्रसिद्ध है ॥ ” पा. ४२

“ इस समय दो और भक्तोंका उल्लेख कर देना उचित ज्ञात होता है । एकका नाम विठ्ठल विपुल था । x x x दूसरे स्वामी गोकुलनाथजी थे । ये गोस्वामी विठ्ठलनाथ के पुत्र थे । इन्होंने ब्रजभाषा में दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे हैं एक चौरासी वैष्णवों की वार्ता और दूसरी दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता, जिन में वैष्णव मतके ८४ और २५२ भक्तोंका



वर्णन है। इन ग्रंथों से उस समय के गद्य लेखनका पता तो लगता ही है बहुत से भक्तों और भक्त कवियों का समय भी निश्चित होता है। इन पिता-पुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बड़ा उपकार किया किन्तु इनका गद्य ब्रजभाषा में था। ” पा. ६२

“ कृष्ण भक्तों में रसखान का नाम विशेष रूपसे स्मरणीय है। जाति के यह मुसलमान दिल्ली के पठान थे किन्तु वास्तव में यह वैष्णव मतके भक्त और विठ्ठलनाथजी के शिष्य थे। २५२ वैष्णवोंकी वार्ता में इनका भी चरित्र दिया हुआ है पहले इनका आचरण ठीक न था किन्तु वैष्णव हो जाने पर यह सुधर गये। इन्होंने शृंगाररसकी बड़ी उत्तम कविता की है और प्रेम का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन प्रेमवाटिका नामक ग्रंथ में दिया है। इनका सुजान रसखान नामक ग्रंथ बड़ा प्रसिद्ध है। यह श्रीकृष्ण के आनंदमें मग्न रहते थे। और उच्च कोटिके कवि थे। ”

“ वैष्णव संप्रदाय भी धन्य है जिसने एक मुसलमान को भी कृष्ण भक्ति का इतना उत्कृष्ट कवि बना दिया और उसको अपने में मिला लिया। ”

યાદ રાખો કે જો વાર્તા-કીર્તન આદિ પ્રકટ ન હોતે તો આ અન્ય તટસ્થ પુરૂષો દ્વારા વૈષ્ણવ સંપ્રદાયનું ગૌરવ જાહેરમાં ન આવત.

“ શોચ્યસ્થિતિ ” નામની પુસ્તિકામાં વાર્તા વિરૂદ્ધ જે ગંદા અભિપ્રાયો જે જે વ્યક્તિઓએ આપ્યા છે તેઓ આ ઉપરોક્ત સાંપ્રદાયિક અને અન્યસાંપ્રદાયિક એવં તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયો આગળ કેટલા ટકી શકે છે ? તે વાંચકો જ નિર્ણય કરી લે. અસ્તુ.

હજી ભાષા અને ભાષાસાહિત્ય માટે ધણું લખવાનું રહી જાય છે પરંતુ હાલમાં સમય અને સ્થલ સંકેચથી તે અપૂર્ણ જ રાખ્યું છે. અમે બહુજ જલ્દી વાર્તા ભાગ ૨ જે “શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત અને અષ્ટછાપ ” એ નામનો મોટો ગ્રન્થ બહાર પાડવાનો વિચાર રાખ્યો છે. તેમાં ઉપરોક્ત વિષયોનો સમાવેશ કરવામાં આવશે.



શ્રી દ્વારકેશો જયતિ

## “ વાર્તા-માહાત્મ્ય ”

( આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિથી )

હવે આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિથી જોઈએ તો પણ આ વાર્તાનું મહત્ત્વ અત્યંત છે. જરા પણ અતિશયોક્તિ વિના અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે વાર્તા વિના સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતોની પૂર્ણતા થતી નથી જ. કારણ એ છે કે કોઈ પણ વસ્તુ અથવા પ્રતિજ્ઞારૂપ સિદ્ધાંતને સિદ્ધ કરવાને હેતુ અને દૃષ્ટાંત એ બેની આવશ્યકતા રહેલી છે. તે બે વિના પ્રતિજ્ઞાની પૂર્તિ થતી નથી જ. જેમકે વેદમાં શ્રુતિ કહે છે કે “સર્વં ક્ષલ્વિદં બ્રહ્મ” આ તો વેદે પ્રતિજ્ઞા અથવા સિદ્ધાંત રૂપે કહ્યું કે આખું જગત બ્રહ્મરૂપ છે. એ પ્રતિજ્ઞાના હેતુમાં વેદ કહે છે કે “તજ્જલનિતિ” એટલે દરેક વસ્તુની ઉત્પત્તિ અને લય બ્રહ્મમાંજ થાય છે માટે તે જગત બધું બ્રહ્મરૂપ છે. અહિં સુધી તો પરોક્ષવાદ થયો પરંતુ આ પ્રતિજ્ઞાનું પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વેદમાં નથી કિંતુ શ્રીભાગવતમાં છે. (શ્રીકૃષ્ણે મૃતિકા-ભક્ષણ સમયે પોતામાં સર્વ બ્રહ્માંડને દેખાડ્યું છે તે.) એટલે શ્રી ભાગવત, વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્તના પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપ છે માટે વેદરૂપ વૃક્ષના ફલરૂપે તેને ગણવામાં આવ્યું છે. પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વિના સિદ્ધાન્તની પૂર્તિ થતી જ નથી. એટલે પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વિના એ સિદ્ધાન્ત જલદી દરેક મનુષ્યના ગળે ઉતરે નહિજ. માટે દૃષ્ટાંતની ખાસ જરૂર છે. વેદમાં દૃષ્ટાંત નથી માટે એ પરોક્ષવાદી છે. વેદની પ્રતિજ્ઞાઓના દૃષ્ટાંતોરૂપે શ્રીમદ્ભાગવત છે. માટેજ શ્રીઆચાર્ય-ચરણે શ્રીમદ્ભાગવત શાસ્ત્રને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમાં ગણ્યું છે અને તેનું મહત્ત્વ વેદ કરતાં પણ વધુ રાખ્યું છે. કારણ કે તે (શ્રીભાગવત) દૃષ્ટાંતરૂપ હોઈ પ્રત્યક્ષવાદી છે. જેથી તે વિશેષ પ્રમાણરૂપ છે. આ કારણને લઈનેજ શ્રીઆચાર્યચરણે વેદ ઉપર ભાષ્ય નહિ કરતાં શ્રીમદ્-ભાગવત ઉપર ટીકા કરી, તેને (શ્રીભાગવતને) સંસારભરમાં ઉચું પદ આપ્યું. અને પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપ હોઈ તેને પુરુષોત્તમરૂપ ગણ્યું.



તેજ પ્રકારે આપણી આ વાર્તાઓ પુષ્ટિસિદ્ધાન્તની પૂર્તિમાં પ્રત્યક્ષ દષ્ટાંતરૂપે રહેલી હોય સર્વ સિદ્ધાન્તાત્મક ગ્રંથોમાં તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ થાય છે.

યદિ વાર્તાઓ સંપ્રદાયમાં ન હોત તો પુષ્ટિસંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તોની પુષ્ટિમાં ઉણુપજ રહેત. તે ઉપરોક્ત કથનથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે. વાર્તાઓ પ્રત્યક્ષવાદી હોવાથી તે સિદ્ધાન્તોના તાદશ ફલરૂપ છે.

આ વાર્તાઓ આપ્તવાક્ય રૂપ છે તે વાત પહેલાં સિદ્ધ થઈ ચુકી છે. એટલે તે શબ્દાત્મક પ્રમાણથી પણ ઉચું પદ પ્રાપ્ત કરે છે.

પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય આપ્તવાક્ય રૂપ વાર્તાઓ ન્યાય દર્શનમાં કહેલાં અનુમાનાદિ અન્ય પ્રમાણો અંતમાં શબ્દ પ્રમાણમાંજ વિલીન થતાં હોવાથી અહીં અન્ય પ્રમાણોના કથનની આવશ્યકતા રહેતીજ નથી. અને શબ્દપ્રમાણ કરતાં આપ્તપ્રમાણ દ્વિગુણીત બલ યુક્ત છે તે આગલ કહી ગયા છીએ. એટલે આ આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ વાર્તાઓ પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય હોઈ સિદ્ધાન્ત સમજાવવામાં સર્વોત્કૃષ્ટ પદને પ્રાપ્ત કરે છે તે નિર્વિવાદ છે.

આ વાર્તાઓમાં જે આધ્યાત્મિક અદ્વિતીય તત્ત્વજ્ઞાન રહેલું છે તે હરેક જ્ઞાનવાન પુરૂષ વાંચીને સહજ સમજી શકે તેમ છે. એટલે હાલ સ્થલ સંકોચથી અહીં વિશેષ લખતા નથી. વાર્તા ભાગ ૨ જ માં તેનો પૂર્ણપણે ઉદ્દેશ્ય કરવામાં આવશે.

સર્વાત્મભાવવાળા આત્મારામ ભક્તો તે નિર્ગુણભક્તો અને ક્રિયા-પ્રાધાન્ય કામભાવવાળા (દ્વૈતભાવવાળા) ભક્તો નિર્ગુણ-સગુણ તે સગુણભક્તો જાણવા. આ વસ્તુ સમજવા માટે (ભક્તોનો) ભેદ શ્રીહરિઠ્કૃત “સર્વાત્મભાવનિરૂપણમ્” ગ્રન્થ જુઓ. નિર્ગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત નિરપેક્ષ હોવાથી સ્વતંત્ર કહેવાય છે અને તેઓ કેવલ ભાવમાંજ વિલસે છે. જ્યારે



સગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત સાપેક્ષ હોઈ દ્વૈતભાવનાવાળા હોય છે. એટલે તેઓ બાહ્યક્રિયાપ્રાધાન્ય લીલામાં વિલસે છે. હાલતો આટલું જ જાણવું બસ છે. આ સંબંધી વિશેષ વાર્તા ભાગ ૨માં આપવામાં આવશે.

આ વાર્તામાં આવેલાં ઐતિહાસિક સ્વરૂપોની યાદી

વાર્તા સં.	સ્વરૂપોનાં નામ.	કેનાં સેવ્ય.	હાલ ક્યાં બિરાજે છે.
૩	શ્રી દ્વારકાનાથજી	શ્રી મહાપ્રભુજી	કાંકરોલી
૪	શ્રી મથુરાનાથજી	„	કોટા
૫	છોટા મથુરેશજી	„	„
૮	શ્રી બાલકૃષ્ણજી	„	મુંબઈ





॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

## “ વાર્તા-રહસ્ય ”

વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા અને તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા:-  
( આધિદૈવિક દૃષ્ટિથી )

નમો ભગવતે તસ્મૈ કૃષ્ણાયાર્દ્રુતકર્મણે ।

રૂપનામવિભેદેન જગત્ ક્રીડતિ યો યતઃ ॥ ( નિબંધ )

રૂપ અને નામ એમ બે પ્રકારે ક્રીડાકર્તા પુરુષોત્તમનું સૂક્ષ્મ બીજ રૂપનામાત્મક સ્વરૂપ તે ગાયત્રી, વૃક્ષરૂપ નામાત્મક સ્વરૂપ તે વેદ, અને ફલરૂપ રસરૂપ નામાત્મક સ્વરૂપ તે શ્રીમદ્ભાગવત. આસ્વાદ્યતાના પ્રતાપે કરીને બીજથી અને વૃક્ષથી પણ રસાત્મક ફલનો સમુત્કર્ષ સર્વાનુભવ-ગોચર છે. તેથી એક રીતે બીજાત્મક ગાયત્રીથી અને કદપદ્રુમાત્મક વેદથી પણ નિર્ગલિત તત્કલ રસાત્મક શ્રીમદ્ભાગવતનો સમુત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થઈ રહે છે.

કાવ્યમાં લોકોને સમજાવવા માટે રૂપક અતાવાય છે તેમ અહિં કદપદ્રુમ આદિ શબ્દો અલંકારરૂપે કહેવામાં આવ્યા નથી. કારણ કે શ્રીમદ્ભાગવત તો સર્વ વેદોના શ્રીમદ્ભાગવતનું અસૌ- સારરૂપ હોવાથી સર્વોદ્ધારક છે, તેથી કિકત્વ અને નિત્યત્વ તેમાં આવા અલંકારોની કદપના કરવી ઠીક નથી. પણ સાક્ષાત્ વ્યાસજી ભગવાનના જ્ઞાનના અવતારરૂપ હોવાથી તેમના જ્ઞાનમાં એ સત્ય વસ્તુ કદપવૃક્ષરૂપે રહુરી, તે પ્રમાણથી જ તેના શબ્દો અન્યથા અનુપપન્ન થાય તો પ્રમાણ ન ગણાય, તેથી (વ્યાપી) વૈકુણ્ઠમાં વેદરૂપ વૃક્ષ છે,



તેના ફલરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત પણ ત્યાં નિત્ય છે, જેને વ્યાસરૂપે ભગવાન કરુણા કરી સર્વોદ્ધારાર્થ પધાર્યા ત્યારે સાથે લાવ્યા છે. રસરૂપ હોવાથી તેમના અંતઃકરણમાં સ્થિત હતું, તે સ્વપુત્ર શુકના અંતઃકરણમાં સ્વાન્તઃકરણદ્વારા આપ્યું. અને તે શુકદેવજીદ્વારા પૃથ્વી પર આવ્યું. અતઃ આ શ્રીમદ્ભાગવત અલૌકિક નિત્ય અને અનાદિ છે.

દ્વાદશસ્કંધાત્મક શ્રીભાગવતમાં દશવિધા સર્ગાદિ આશ્રયાન્તા લીલાનું સુનિપુણ પ્રતિપાદન છે. આ દશવિધા લીલાએ કરીને પણ વિશિષ્ટ શુદ્ધ પુરુષોત્તમનું હૃદય તો શ્રીમદ્ભાગવતનું આ- નિરોધલીલા જ છે. તેથી નિરોધલીલા ધિદૈવિક સ્વરૂપ અને પ્રતિપાદક દશમસ્કન્ધ હૃદયવત્ પરમ તેની લીલા નિગૂઢ છે. ૮૭ અધ્યાયના આ હૃદયાત્મક પરમ નિગૂઢ નિરોધસ્કન્ધમાં જન્માદિ પાંચ પ્રકરણ છે.

તે પાંચ પ્રકરણ મધ્યે દ્વિતીય પારિભાષિક તામસ પરંતુ વસ્તુતઃ નિર્ગુણ પ્રકરણમાં નિરોધદાનમાં મુખ્ય અધિકારી શ્રીવ્રજજનોતો જ પ્રસંગ પ્રશંસાયો. વસ્તુતઃ તો પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુતો પ્રાદુર્ભાવ જ સાધનનિષ્ઠને અર્થે નથી, પરંતુ કેવલ નિઃસાધનને જ અર્થે છે, તેથી કેવલ નિઃસાધન સ્વરૂપાકાંક્ષી શ્રીવ્રજજનનાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રાદુર્ભૂત પ્રભુસ્વરૂપ સ્વતઃજ થઈ જાય છે. એ સિદ્ધાન્ત સ્પષ્ટ કરવાને આ તામસ પ્રકરણના પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ એમ ચાર અવાન્તર વિભાગ છે.

નિજ સ્વરૂપપ્રાકટ્યથી અનન્તર પ્રમાણાત્મક બાલલીલાનો સ્વીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને પ્રેમનું દાન કરે છે, પ્રમેયાત્મક ગોચારણાદિ લીલાનો અંગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને આસક્તિનું દાન કરે છે, અને સાધનાત્મક શ્રીગોવર્ધનોદ્ધારણાદિ લીલાનો અંગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને વ્યસનનું દાન કરે છે. આ પ્રકારે નિઃસાધન



શ્રીમળજનને પ્રમાણરૂપ પ્રેમ, પ્રમેયરૂપા આસક્તિ અને સાધન-  
રૂપ વ્યસનનું-સર્વાત્મભાવનું-પણુ સ્વરૂપતઃ દાન કરીને બ્રહ્માનંદથી  
પણુ અધિક પરમ વિમલ ભજનાનન્દાત્મક પુષ્ટિમહારસરૂપ શ્રી  
રાસોત્સવાદિ અવિચલ નિત્યલીલામાં મધ્યપાતી પ્રવેશરૂપ ઉત્કૃષ્ટોત્કૃષ્ટ  
ફલનું સહજ દાન કરે છે.

નિરોધના આ પ્રકારના દ્વિતીય તામસપ્રકરણના મધ્યમાં મધ્ય-  
મણિવદ્ દ્વિતીય અવાન્તર પ્રમેયપ્રકરણના અન્તમાં સર્વાન્તર મધ્ય-

નાયક અસ્મત્સર્વસ્વ શ્રીવેણુ-નિનાદનો  
સુધાનું મધ્યત્વ અને સર્વોપકારક પ્રાદુર્ભાવ થાય છે. જે  
આધિપત્ય સ્વરૂપાત્મક સુધા શ્રીઆચાર્યચરણના

અવલંબન વિના પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુના પણ  
રસાત્મક સ્વરૂપમાં આધિદેવિકતા ન સમર્પાતાં અગ્રિમા સર્વ લીલાનો  
આવિર્ભાવ સુદુર્ઘટ થઈ જાય.

આ પ્રકારે સુધાએ કરીને જ રસાત્મક ફલસ્વરૂપ શ્રીભામ-  
વતનો ઉપર્યુક્ત કથિત ખીજરૂપ ગાયત્રી અને કલ્પવૃક્ષ રૂપ વેદથી પણ  
સમુત્કર્ષ સિદ્ધ થાય છે. તે સુધાનું સ્વરૂપ

વાર્તાનું અલૌકિક સ્વરૂપ તે શ્રીસુખોદિનીજી અને તેનો મનથી  
અને તેની પરંપરા અનુભવાતો નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ

તેજ આ વાર્તાઓ. જેવા પ્રકારે શ્રી  
ભાગવત વૈકુંઠમાં નિત્ય ફલરૂપે ઘિરાળે છે અને તે શ્રીશુકદ્વારા  
ભૂતલમાં પણ સર્વોદ્ધારાર્થ પ્રકટયું, તેવા જ પ્રકારે આ મૂર્તિમંત  
સુધા અને તેનો ભાવાત્મક નિર્ગુણ વિલાસ નિત્યલીલામાં પરમ રસ  
રૂપે-ભાવરૂપે-સ્થિત છે. અને તે શ્રીગોકુલેશદ્વારા ભૂતલમાં દૈવ-  
જનોદ્ધારાર્થ પ્રકટયો છે. શ્રીશુક અક્ષરબ્રહ્માત્મક છે ત્યારે શ્રી  
ગોકુલેશ સાક્ષાત્ શ્રીગોકુલેશસ્વરૂપ છે. અતઃ શ્રીશુકદ્વારા પ્રકટિત  
ફલમાં સુધા અવ્યક્ત રૂપે છે. જ્યારે અહીં વ્યક્ત અને નિરાવરણ  
કીડારૂપ છે.



આથી જ વાર્તાઓ રૂપી શ્રીમદ્વાચાર્યચરણનો આધિદૈવિક નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ, એ ફલનું ચે ફલ, રસનો ચે રસ, ગાયત્રીની ચે ગાયત્રી, દર્શનનું પણ દર્શન અને તત્ત્વનું પણ વાર્તાની સર્વોત્કૃષ્ટતા તત્ત્વ છે. જેથી શ્રીગોકુલેશે વાર્તાને શ્રીસુખોધિનીજીની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવી છે.

શ્રીભાગવત રસાત્મક ફલ છે અને તે ફલના રસના આસ્વાદ—સુધા—ના પરમ ભાવરૂપ આ વાર્તાઓ છે. જેમ શ્રીભાગવત સારસ્વતકલ્પીય અવતારલીલાના પ્રતિપાદનરૂપ છે, તેમ આ વાર્તાઓ પણ નિત્યલીલાસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપની ભાવમયી લીલાના પ્રતિપાદન રૂપ છે. જેમ શ્રીભાગવતના શ્રવણમાત્રથી સમગ્ર લીલાસહિત શ્રીકૃષ્ણ હૃદયમાં પધારે છે, તેમ આ વાર્તાઓના શ્રવણમાત્રથી જ શ્રીકૃષ્ણની લીલાના અનુભવમાં મુખ્ય એવા પરમફલરૂપ ભાવનું દાન થાય છે. અર્થાત્ શ્રીવલ્લભાધીશનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ હૃદય-સ્થિત થાય છે.

આ પ્રકારે વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા કહીને હવે તેમાં રહેલા મૂર્તિમંત સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો સૂક્ષ્મ ઉલ્લેખ કરીએ છીએ.

“પૂર્ણ બ્રહ્મ શ્રીલક્ષ્મણસુત” અતએવ આપ પૂર્ણ બ્રહ્મ ગુંગારસરસો હરિઃ રસો વૈ સઃ રૂપસુધાનું સ્વરૂપ છે. તે મુખ્ય સુધા પુરુષાકાર છે. “વર્હાપોઢં શ્રીઆચાર્યજીનું આધિ- નટવરવપુઃ” આ શ્લોકપ્રતિપાદિત દૈવિક સ્વરૂપ. સ્વરૂપ છે, દેહભાવરહિત રસસ્વરૂપ છે.

જેમ દેહમાં વીર્ય મુખ્ય તેમ ભગવત્સ્વ-રૂપમાં સુધા. જેમ દેહમાં વીર્યસાર મસ્તકમાં રહે તેમ અહીં સુધા, “આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિ” સ્વરૂપના સારભૂત હોઈ અધરમાં સ્થિત છે.



આ પ્રકારે શ્રીઆચાર્યજીનું સુધાસ્વરૂપ કેવલ ભક્તમાત્રૈક-  
અનુભવગમ્ય છે. તેમાં અત્યંતાંતરંગ ક્રાંતિમાં વિરલ પદ્મનાભદ્રાસાદિનો  
અનુભવ પ્રમાણુસ્વરૂપ છે—

આ સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી વિના પુષ્ટિપ્રભુની સર્વ  
રસમયી લીલાનો પ્રાદુર્ભાવ જ સુદુર્વટ છે. તે-સુધા-વિપ્રયોગાત્મક  
અને સદાનંદરૂપ હોવાથી કૃષ્ણુસ્વરૂપ  
શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂ- છે. અતઃ શ્રીગુસાંધજી વલ્લભાષ્ટકમાં  
પની મુખ્યતા. “વસ્તુતઃ કૃષ્ણ એવ ” એમ આશા  
કરે છે.

આ સુધા મુખ્ય સાત સ્વરૂપે વિલસે છે, તેનો વિલાસ  
સ્વતંત્ર નિરપેક્ષ અને સ્વછન્દ છે. તેનાં સાત સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે.

૧ મુખ્ય પુરુષાકારસુધા. ૨ આનંદસ્વરૂપ-ભગવદ્ભાવરૂપ કૃષ્ણ  
સ્વરૂપ-૩ પરમાનંદસ્વરૂપ-ગૂઢસ્ત્રીભાવરૂપ  
શ્રીઆચાર્યજીનાં મુખ્ય સ્વામિનીસ્વરૂપ-૪ કૃષ્ણાસ્યસ્વરૂપ-ધર્મી  
સાત સ્વરૂપ અને વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ-૫ વૈશ્વાનરસ્વ-  
તેમની સ્થિતિ. રૂપ-તાપાત્મક-૬ વલ્લભસ્વરૂપ-લીલામ-  
ધ્યપાતી દાસ્યરૂપ-અને ૭ આચાર્ય  
સ્વરૂપ-સન્મનુષ્યાકૃતિ, ભક્તિમાર્ગાબ્જમાર્તંડ અને વાકુપતિસ્વરૂપ.

આ સાતે સ્વરૂપથી શ્રીઆચાર્યજીનો ભિન્ન ભિન્ન પ્રકરણનો  
સ્વતંત્ર વિહાર સાંપ્રદાયિક સમગ્ર ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યમાં  
વિશેષતઃ વાર્તા-કીર્તનમાં ઘિરાળે છે. અતઃ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીનુંજ  
સ્વરૂપ છે.

જે પ્રકારે દ્વાદશસ્કન્ધાત્મક શ્રીભાગવત “દ્વાદશો વૈ પુરુષઃ”  
શ્રુત્યનુસાર દ્વાદશ અંગરૂપશ્રીહરિનું સ્વરૂપ છે, તે પ્રકારે આ વાર્તાઓ  
પણ દ્વાદશ અંગ અને તેના છ ધર્મ અને એક ધર્મી મળી ૮૪ લીલા-  
ત્મક રૂપ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે.



આ પ્રકારે વાર્તાની સમુત્કર્ષતા ( ઉત્તમતા ) સહજ સિદ્ધ છે.

શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ અંગ અને તેની ભાવાત્મક લીલાનું ક્રોષક:—

શ્રીઆચાર્યજીનાં અંગ.	લીલા	વૈષ્ણવોનાં નામ.
હૃદય (મધ્ય)	નિરોધ લીલા	શ્રીદામોદરદાસ હરસાનીજી.
શિર	(પુષ્ટિ) મુક્તિ	શેઠ પુરુષોત્તમદાસ.
૨ હસ્ત	ઊતિ (પુષ્ટિ) આશ્રય	પદ્મનાભદાસ—ગદાધરદાસ
૨ સ્તન	મન્વંતર(પુષ્ટિ)ઈશાનુકથા	નારાયણદાસ—ગર્જનધાવન
૨ સાથલ	સ્થાન (પુષ્ટિ) પોષણ	પૂરણમલ્લ—કનહૈયાશાલ
૨ કર	સર્ગ (પુષ્ટિ) વિસર્ગ	માધવભટ્ટ—યાદવેન્દ્રદાસ
૨ પાદ	અધિકાર(પુષ્ટિ) સાધન	પ્રભુદાસજલોટા—દિનકરશેઠ

ઉપર્યુક્ત પ્રત્યેક અંગસ્વરૂપ વૈષ્ણવોના સાત ભેદ છે. તેમાં ૧ ધર્મી અને ૬ ધર્મો. ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. તે તે ધર્મ અને ધર્મીવાળા વૈષ્ણવોની વાર્તાઓમાં સમજાવવામાં આવ્યું છે.

આ પ્રકારે સમગ્ર વાર્તારૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ભાવાત્મક લીલાને જે ધીર પુરુષ શ્રદ્ધાપૂર્વક હૃદયમાં ધારણ કરે છે; તેના ઉપર શ્રી આચાર્યજી પ્રસન્ન થાય છે અને તે ભક્તના હૃદયમાં સ્થિત થઈ પોતાના પરમ નિગૂઢ સ્વરૂપનો અનુભવ કરાવે છે.

તેવા ભક્તોનો મહિમા કેાણ કહી શકવાને સામર્થ્યયુક્ત છે ?

શ્રીભાગવતમાં લૌકિકી, પરમત અને સમાધિભાષા રહેલી છે. તેજ ત્રણ ભાષાઓ વાર્તાઓમાં ભૌતિક ઇતિહાસ—લૌકિકી—શાસ્ત્રાર્થ—પરમત અને રહસ્ય—સમાધિ—

વાર્તાની ત્રણ ભાષા. રૂપે રહેલી છે. વાર્તાઓમાં પહેલી જે ભાષાઓ સૂક્ષ્મ રૂપે છે. જ્યારે ત્રીજી સમાધિરૂપ રહસ્યભાષા પૂર્ણપણે છે. શ્રીગોકુલનાથજીએ વાર્તાઓની



ત્રણે ભાષાના ત્રણ ઐતિહાસિક ગ્રંથો કરેલા છે અને તે \*નિજવાર્તા, ધરવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર એ નામથી પ્રસિદ્ધ છે. જેથી આ ત્રણે ગ્રંથ વાર્તાની ટીકારૂપ છે.

શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ ભાવાત્મક છે. અને તે ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે :—

ભાવ એટલે કેવલ (ધર્મી) વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ અને તેજ—  
પુષ્ટિમાર્ગમાં—કૃષ્ણાસ્ય (શ્રીઆચાર્યચરણ) કહેવાય છે. અને તેજ પુષ્ટિ-

ભક્તિ અથવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિ તરીકે  
ભાવનું સ્વરૂપ અને તેનું પ્રસિદ્ધ છે. આ ભાવનું રમણ પણ  
સર્વોત્કૃષ્ટ રૂપ ભાવાત્મકજ છે. જેથી તે ક્રિયાપ્રાધાન્ય  
અને ઇન્દ્રિયપ્રાધાન્ય એવા કામભાવ-

વાળી સંયોગાત્મક લીલાથી પર છે. આ ભાવ ભાવનાથી જ સિદ્ધ થાય છે. અન્ય ભક્તસાપેક્ષ નિત્યલીલા એજ આ સંયોગાત્મક લીલા જાણવી. તેના રસનો અનુભવ અલૌકિક ઇન્દ્રિય અને ક્રિયાદ્વારા અનુભવાય છે. જ્યારે સર્વાત્મભાવવાળી અન્યભક્તનિરપેક્ષ નિત્ય લીલા-ભાવાત્મકલીલા-ના રસનો અનુભવ કેવલ ભાવનાદ્વારા જ પ્રભુ કરાવે છે. આ ભાવપ્રાપ્તિમાં કેવલ વિરહની ભાવના જ એક માત્ર સાધનરૂપ છે. આમાં લીલાની ભાવના, સ્વરૂપની ભાવના સાધનરૂપ મટી જઈ ફલરૂપ થાય છે. આમાં જ્ઞાન ગુણગાન આદિ બાધક છે. અને આ કેવલ-ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક-ભાવનો અનુભવ એજ પરમ ફલ જાણવું.

આ ભાવ પ્રથમ તાપરૂપ થઈ ભક્તના લૌકિક દેહને સ્વ તાપ-દ્વારા શુદ્ધ કરી અલૌકિક કરે છે. આજ દેહમાં નવો દેહ કરે છે. અગ્નિ જેમ સ્વપ્રવેશથી કાઢને તેજોમય બનાવી દે છે, તેમ આ તાપ

\* નિજવાર્તા=ઇતિહાસરૂપ, ધરવાર્તા=રહસ્યભાષા. બેઠકચરિત્ર=(વિશેષતઃ) પરમતરૂપ.



પણ ભક્તના દેહને યથાસ્થિત રાખી અલૌકિક તેજોમય-આધારભૂત-  
બનાવે છે. વિપ્રયોગાગ્નિસ્વરૂપાત્મક હોવાથી દેહનો નાશ થતો નથી.  
ત્યારે દેહ તેજોમય થઈ આધારભૂત બને છે ત્યારે તે ભાવાત્મક  
વિપ્રયોગાગ્નિ ભક્તના સમગ્ર આકારમાં સર્વલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપે  
પ્રવેશ કરે છે. દૃષ્ટાંત રૂપે:—ભક્તના હસ્તમાં હસ્ત રૂપે, પાદમાં પાદ  
રૂપે એમ સર્વ અંગોમાં જાણવું. ત્યારે તે ભક્ત અલૌકિક તદ્દૂપતાને  
પામે છે. આ પ્રવિષ્ટ વિરહાત્મા પ્રભુ મહાદુઃખે અનુભવાય છે.  
આ ભાવ સ્થિર થયા પછી તેમાં વિચિત્રતા પ્રાપ્ત થાય છે અને તે  
ખે પ્રકારની છે. વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય.

જેમ મહાસમુદ્રમાં ડુબેલાને સમુદ્રની લહેરોમાં મજ્જીન ઉન્મ-  
જ્જીન થાય છે, તેમ વિરહભાવરૂપી રસસિન્ધુમાં ડુબેલા આ રસિક  
ભક્તને વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહજ સિદ્ધ થઈ જાય છે. આ  
ભક્તને પ્રભુ વિના જરાયે ચેન પડતું નથી. તે વિકલ થઈ તદ્દરૂપ  
બની જાય છે. અતઃ તે ભક્ત તે વિપ્રયોગાગ્નિમાં પ્રવેશ કરે છે.  
આતું નામજ ભાવાત્મક રમણ કહેવાય છે. ત્યારે ભક્ત અસ્વાસ્થ્યે  
કરીને સ્વયં કૃષ્ણ—સદાનંદ—રૂપનો અનુભવ કરે છે. \*

આ ભાવ તેજ સર્વાત્મભાવ કહેવાય છે. જેમાં દેહાદિકની  
સ્ફુરણા નથી થતી એટલે પ્રભુમાં અનન્ય ભાવ થાય એનેજ સર્વા-  
ત્મભાવ કહેવામાં આવે છે. આ અનન્ય  
સર્વાત્મભાવનું સ્વરૂપ ભાવમાં હું સમગ્ર પ્રભુનો છું એવી શુદ્ધ  
અદ્વૈતની ભાવના રહેલી છે. આમાં  
ઇન્દ્રિયોના વિષયોનો સારી રીતે ત્યાગ છે. આમાં દેહ ઇન્દ્રિય આદિના  
પૃથક્ત્વનું ભાનજ રહેતું નથી.

આ સર્વાત્મભાવ, સ્વરૂપાનંદ અને ભાવાનંદથી પણ ઓળખાય

\* શ્યામ રટત શ્યામા શ્યામ મર્હરી । इत कृष्ण उत कृष्ण जित  
देखो तित कृष्ण मयीरी ।



છે. આના રમણમાં જોટલી ક્રિયા આદિ છે તે કેવલ ભાવમાત્રજ જાણવી. અને આ આનંદ આત્માદ્વારાજ અનુભવાય છે. આ ભાવ આનંદરૂપ હોઈ રસરૂપતાને પામેલો છે અને તે રસસ્વરૂપાત્મક છે. અને તે રસ-શૃંગારરસાત્મા હરિરૂપ છે. આ સ્વરૂપના પ્રત્યેક અવયવ મુખ-ચરણ આદિ સર્વ આનંદરૂપ છે. તેના ઐશ્વર્યાદિ બધા ધર્મો પણ આનંદાત્મકજ છે. આ પ્રભુના ધર્મો અને શક્તિઓ પણ પ્રભુરૂપ છે. સર્વ સ્વરૂપાત્મક આનંદ છે. આ શૃંગારરસના દ્વિવિધ ભેદ છે. સંયોગ અને વિપ્રયોગ. ઉભય રસ શૃંગારરસરૂપજ છે. સંયોગ રસ ધર્મસહિત હોવાથી ક્રિયાત્મક છે અને તે લોકવેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. જ્યારે વિપ્રયોગરસ ધર્મીરૂપ, ભાવાત્મક અને કેવલ છે તેથી તે અનુભવથીજ જાણી શકાય છે.

આ ભાવાત્મક રસરૂપ પ્રભુના વ્રજમાં રહેલા ભાવાત્મક સર્વ પદાર્થો હમેશાં એક ભાવથી યુક્ત છે. અને તે સર્વે ભગવદ્રૂપ છે. તેની સર્વ સામગ્રી ભાવરૂપજ છે.

ગંગાજીની માફક ભાવનાં ત્રિવિધ સ્વરૂપ છે. આધિદૈવિક, આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિક.

આધિદૈવિક:—સ્વયં ભક્તિ (ભાવ) રૂપ છે. અને ભક્તિ એજ પુષ્ટિ છે. આધ્યાત્મિક:—ભાવનારૂપ છે. ભાવનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ અને તે માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ છે. આધિભૌતિક:—ક્રિયારૂપ છે અને તે કર્મસ્વરૂપ છે, જેમ ગંગાજીના આધિભૌતિક સ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિકની સ્થિતિ છે, તેમ ક્રિયામાં (કર્મરૂપમાં) ભાવના-માહાત્મ્યજ્ઞાન-અને ભાવની-ભક્તિની-સિદ્ધિ રહેલી છે. આ ક્રિયા તે કર્મરૂપ હોઈ સદાચારથી યુક્ત શ્રીકૃષ્ણની સેવા તેજ છે. એટલે ભૌતિક તનુજીવિત્તજ રૂપ ક્રિયાત્મક સેવામાં સ્વરૂપના



માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક ભાવનાના સંબંધે કરીને, તે ભૌતિક-સેવામાં આધિદૈવિકી ભાવાત્મક-માનસી-સેવાની સિદ્ધિ રહેલી છે. તનુજીવિત્તજ વિના માનસી અપ્રાપ્ય છે.

આ પ્રકારે અંતરંગલીલાસંબંધી ભાવનાં ત્રણ સ્વરૂપ કહ્યાં. હવે બહિરંગલીલાસંબંધી ભાવનાં ત્રણ સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે:—

આધિભૌતિકમાં કલ્પનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

આધ્યાત્મિકમાં વાસનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

આધિદૈવિકમાં સત્યરૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

ભૌતિક સ્થૂલદેહાદિકલ્પનાદ્વારાજ સર્વત્ર કાર્યની સિદ્ધિ કરી શકે છે, અતઃ તે કલ્પના તે એક સત્તારૂપ છે. કલ્પનારૂપી સત્તાત્મક ભાવ વિના કોઈ પણ કાર્યની ઉત્પત્તિ કે સિદ્ધિ નથીજ. આધ્યાત્મિક સૂક્ષ્મદેહાદિ (પરલોકમાં પાપપુણ્યનો ભોગકર્તા)માં વાસનાનીજ ચૈતન્યાત્મક રૂપ સ્થિતિ છે. એટલે સૂક્ષ્મદેહ વાસનારૂપેજ અંતઃ સ્થિત છે. અને તે તત્ત્વરૂપ વાસના પોતાના બલથી કલ્પનાને ઉત્પન્ન કરી સર્વ કાર્ય કરાવે છે. આ રીતે તેનું પ્રધાનપણું અને ચૈતન્યાત્મક રૂપ કહ્યું. આધિદૈવિક તે સત્ય આત્મારૂપ છે. આત્મા એ આનંદરૂપ છે અને તેની સત્તા સર્વત્ર છે. જગત તો તેની એક માત્ર કણિકાથી ચાલી રહ્યું છે. આ રીતે તે ભાવ સત્ચિદાનંદ કૃષ્ણરૂપ છે. અને તેના આનંદના સારભૂત કૃષ્ણાસ્ય—શ્રીવલ્લભાચાર્ય છે. અતઃ કૃષ્ણાસ્યજ અંતરંગ બહિરંગલીલામાં મધ્યપાતિ છે. તેમના વિના કોઈપણ લીલા સંભવતીજ નથી. અતઃ બાહ્યાભ્યંતર જગત બ્રહ્મરૂપ હોઈ કૃષ્ણાસ્યના આધારથીજ સ્થિત છે.

આ રીતે ભાવસ્વરૂપ—કૃષ્ણાસ્યરૂપ—શ્રીવલ્લભનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ, અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ કહ્યું.



॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

### મંગલાચરણમ્

શ્રીકૃષ્ણાય નમઃ ॥ શ્રીગોપીજનવલ્લભાય નમઃ ॥

ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ श्रीवल्लभस्वामिनो  
ये वा तद्गुणगानसेवनपरा ये सन्निधिस्थायिनः ।  
ये वा तद्गतभावभावितमनोमोदान्विताः सन्ततं  
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं किं वा फलं जन्मनः ॥१॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણોનું ધ્યાન કરે છે,  
જેઓ તેના ગુણગાનમાં અને સેવનમાં તત્પર છે, જેઓ તેના  
સાન્નિધ્યમાં રહેનારા છે. વળી જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીમાં રહેલ  
ભાવથી ભાવનાવાળા મનના આનન્દથી હમેશાં યુક્ત છે, તે ભગવ-  
દીયોનું દાસ્ય મને સદા થાઓ. જન્મનું બીજું શું ફળ છે ?

ये कृष्णस्यकृपायुताः प्रतिदिनं तन्मार्गचिन्तापराः  
ये वा लौकिकवैदिकादि सकलं तत्कर्तृकं मन्वते ।  
येषामन्यदुपास्यमेव न परं चित्ते समारोहति  
स्वीयत्वेन वृतास्त एव सततं मद्रक्षका भूतले ॥२॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુના મુખ્યારવિન્દાવતાર શ્રીમહા-  
પ્રભુજીની કૃપાથી યુક્ત છે. પ્રતિદિન તે મહાપ્રભુજીના માર્ગનો વિચાર  
કરવામાં તત્પર છે, અને જેઓ લૌકિક વૈદિક સઘળું તેમણે કરેલું જ  
માની રહ્યા છે, અને જેઓના ચિત્તમાં બીજું ઉપાસ્ય ચઢતું જ  
નથી. જેઓનું પ્રભુએ સ્વકીયપણાથી વરણ કરેલ છે. તે ભગવ-  
દીયોજ ભૂતલમાં મારા રક્ષક થાવ ॥ ૨ ॥



ये तद्वाक्यविचारमात्रचतुरा गूढार्थबोधे रताः

ये दिव्यसयुक्ताः कृतौ च कथिते श्रीब्रह्मस्वामिनः ।

ये तद्वक्त्रदिदृक्षया हृदि सदा तप्ता विरक्ताः सुखे

तद्दास्यं प्रतिजन्म मे फलतु, किं सिद्धैः फलैरन्यतः ॥३॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશની કૃતિમાં તથા કથનમાં વિશ્વાસ વાળા છે, જેઓ તેના મુખારવિન્દનાં દર્શનની ઇચ્છાથી સદા હૃદયમાં તપ્યા કરે છે, અને સંસારના મુખમાં વિરક્ત છે, તેવા ભગવદીયોનું દાસ્ય પ્રતિજન્મ મને ફલીભૂત થાઓ, ખીજાં સિદ્ધ થતાં ફલોથી શું ? ॥ ૩ ॥

ये श्रीब्रह्मपादसेवनकृते दीनाः स्वदेहादिको-

पेक्षास्तन्पञ्चेतनास्तदुदितं सर्वं स्वतः कुर्वते ।

येषां बुद्धिरहर्निશं समधिका तत्तोषणे सादरा-

स्तेषामेव सतां सदा चरणयोः पातः परं मे फलम् ॥४॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણકમલના સેવન માટે દીનતાવાળા છે, પોતાના દેહાદિકની ઉપેક્ષા કરનારા છે, તે શ્રીમહા-  
બ્રહ્માં પરાયણ બુદ્ધિવાળા, તેઓશ્રીએ આજ્ઞા કરેલું બધું પોતે જાતે કરે છે; અને જેઓની બુદ્ધિ તે મહાપ્રભુને પ્રસન્ન કરવામાં અધિક આદરવાળી છે, તે સત્પુરુષોના ચરણમાં પડવું તેજ મારે પરમ ફળ છે.

ये वा तत्प्रियनन्दसूनुचरणासक्ताः पुनः स्वामिनो

दास्यं शुद्धतया तदीयहृदयाभिप्रायमातन्वते ।

ये जीवत्फलमेतदेव निखिलं बुद्ध्या सदा मन्वते

तेषामेव पदाम्बुजे मम रतिः सेवाफलं जायताम् ॥५॥



અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીના પ્રિય નન્દનન્દનના ચરણોમાં આસક્ત છે. ફરી શ્રીહાકુરજીનું દાસ્ય તેમના હૃદયના અભિપ્રાયને જાણીને શુદ્ધપણથી કરે છે. અને જેઓ જીવવાનું બધું : : કળ આજ છે એમ શુદ્ધિપૂર્વક માને છે, તે ભગવદ્દીયોનાં ચરણ કમલમાં સેવાના ફલરૂપ રતિ (પ્રેમ) મને થાઓ ॥ ૫ ॥

ये तद्धोधनचातुरीकलनतः सन्तुष्टचित्ताः सदा  
ये वा मानससेवनां तदुदितां मुख्यां परां जानते ।  
ये ‘दोषः सकलो निवृत्त’ इति तद्विश्वासतो मन्वते  
तेषामेव ममास्तु पादकमलद्वन्द्वे परा रेणुता ॥ ६ ॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીની સમજાવવાની ચાતુરીના વિચારથી સદા સન્તુષ્ટ ચિત્તવાળા છે અને જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીએ કરેલ માનસી સેવાને કેવલ મુખ્ય માને છે, જેઓ “મારો બધો દોષ નિવૃત્ત થયો છે” એમ તેઓશ્રી ઉપરના વિશ્વાસથી માને છે. તે ભગવદ્દીયોનાં બંને ચરણકમલમાં મને રજપણું થાઓ.

ये गोपीपतिपादरेणुभजने श्रीवल्लभैकाश्रिता  
ये वा दास्यपरम्परामुपगताः प्राप्ताः परां दीनताम् ।  
ये “स्वीयं सकलं तदीय”मिति हृत्पङ्केरुहे मानयन्त्ये—  
तेषामहमस्मि दासपदवीं प्राप्तः सदा जन्मनि ॥ ७ ॥

અર્થ:—જેઓ ગોપીપતિ શ્રીકૃષ્ણના ભજનમાં શ્રીવલ્લભાધીશના આશ્રયવાળા છે. જે દાસ્યની પરમ્પરાને પામ્યા છે, શ્રેષ્ઠ દીનતાને પ્રાપ્ત થયા છે. જેઓ હૃદયમાં બધું તે પ્રભુનું છે એમ માની રહ્યા છે. સદાય જન્મમાં (જન્મોજન્મે) એવાઓની દાસપદવીને હું પ્રાપ્ત થયો છું.



યે તદ્ગુપ્તમહર્નિશં સ્વહૃદયે તાપાત્મકં સુન્દરં  
સાકારં સરસં રસાત્મકતયા લ્પ્યાતં હિ જાતં મુવિ ।

નિદ્યં તત્પરિચિન્તયન્તિ સતતં સઙ્કીર્તયન્ત્યાદરાત્

તેષાં દૈન્યમરેણ યે પ્રતિભવં દાસ્યં હિ મૂયાત્ફલમ્ ॥૮॥

અર્થઃ—જેએ તાપાત્મક સુન્દર સાકાર સરસ રસાત્મકપણથી  
પૃથ્વીમાં પ્રકટેલા અને પ્રસિદ્ધ, તે મહાપ્રભુજનના સ્વરૂપનું રાત્રિદિવસ  
ચિન્તન કરે છે અને આદરથી હૃમેશાં ગાય છે. દીનતાના ભારથી  
પ્રતિભવ (પ્રતિજન્મ) તે ભગવદીયોનું દાસ્યજ અને થાયો. ૮

॥ इति श्रीहरिदासोक्तं दास्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥



॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ चोरासी वैष्णवकी वार्ता श्रीगोकुलनाथजी कीए ताको भाव श्रीहरिरायजी कहत हे सो लिख्यते ॥

समग्र वार्ता के उपर श्रीहरिरायजीकृत भावात्मक लेखः—

चोरासी वैष्णव को कारण यह हे जो दैवी जीव चोरासी लक्ष योनि में परे हैं ॥ तिनमें ते निकासिवे के अर्थ चोरासी वैष्णव कीए ॥ सो जीव चोरासी प्रकारके हैं ॥ राजसी तामसी सात्त्विकी निर्गुण ए चारि प्रकार के गिरे ॥ तामें ते गुणमय राजसी तामसी सात्त्विकी रहन दीए ॥ सो श्रीगुसांईजी उद्धार करेंगे ॥ श्रीआचार्यजी विना श्री गोवर्द्धनधर रह न सके तो अपने अंतरंगो निर्गुण पक्षवारे चोरासी वैष्णव (प्रकट) कीए ॥ सो एक एक लक्ष योनिमें तें एक एक वैष्णव निर्गुण वारे के उद्धार वैष्णवद्वारा कीए ॥ ओर रसशास्त्रमें रसादिक विहारके आसन चोरासि वैष्णव कीए हे सो वर्णन कीये हैं ॥ न्यारे न्यारे अंग के भावरूप ॥ चोरासि वैष्णव रसलीला संबंधी निर्गुण हे श्री ठाकुरजी के अंगरूप ॥ तार्ते शास्त्र रीतिसों आसन चोरासी या भावसों अलौकिक हैं ॥ ओर श्री आचार्यजी के अंग द्वादश हैं सो स्वरूपात्मक हैं । एक

१ राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा तथा । एवं चतुर्विधा गोप्यः...फल० प्र अ० ३ को० ३

२ ब्रज वृंदावन गिरि नदी पशु पंछी सब संग ।

इनसों कहा दूरावनो यह सब मेरो अंग ॥

(श्रीहरि०) याकी एकवाक्यता.



एक अंग में सात सात धर्म हैं ॥ ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ए  
छह धर्म, एक धर्मी ॥ ए सातमें या प्रकार बारह सते चोरासि वैष्णव  
श्री आचार्यजी के अंग रूप अलौकिक सर्व सामर्थ्यरूप हैं ॥ और  
साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला चोरासि कोस व्रजमें हैं ॥ सो एक  
एक जीवकों अंगीकारि करि ॥ दैवि जीव जो चोरासि लक्ष योनिमें  
गिरे हैं तिनको उद्धार करि चोरासि कोस व्रजमें जो जीव (जा)  
लीला संबंधी हैं ॥ तिनकों तहां प्राप्त करन के अर्थ चोरासि वैष्णव  
अलौकिक प्रगट कीए ॥ यहभाव तें चोरासि वैष्णव श्रीआचार्यजी के  
हे सो एक दिन श्रीगोकुलनाथजी चोरासि वैष्णव की वार्ता करत कल्याण  
भट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होइ गए सो श्रीसुबोधिनीजी की कथा  
कहन की सुधि नांही ॥ सो अर्द्ध रात्रि होई गई ॥ तब एक वैष्णवने  
श्रीगोकुलनाथजी सों बिनती करि ॥ जो महाराजाधिराज आज कथा  
कब कहोगे ॥ अर्द्धरात्रि गई ॥ तब श्रीमुखतें श्रीगोकुलनाथजीनें कही ॥  
आज कथाको फल कहत हैं ॥ वैष्णव की वार्तामें सगरो फल जानीयो ॥  
वैष्णव उपरांत और कछु पदारथ नाहि हैं ॥ यह पुष्टि भक्तिमार्ग हैं  
सो वैष्णवद्वारा फलित होयगो ॥ श्रीआचार्यजीहू यही कहते दमला तेरे-  
लिए मार्ग प्रगट कीयो हैं ॥ तातें वैष्णव की वार्ता हे सो सर्वोपरि  
जानियों ॥ या प्रकार चोरासि वैष्णव श्रीआचार्यजी के निर्गुण पक्ष के  
मुखिया जानने ॥

अब रई राजसी तामसी सात्विकी गुणमय\* तिनके उद्धारार्थ  
श्रीगुसांईजी नें चोरासि वैष्णव राजसि कीए ॥ चोरासि वैष्णव तामसि

\* देखो निर्गुण सगुण भेद “वार्तामाहात्म्य”



કીણ ॥ ચોરાસિ વૈષ્ણવ સાત્ત્વિકી કીણ ॥ ચે તિનેં જૂથ મિલિકે દોયસે  
બાવન મણ ॥૨૫૨॥ શ્રીગુસાંઈજીકે અંગસંબંધી હેં ॥ યા પ્રકાર શ્રી  
આચાર્યજી શ્રીગુસાંઈજી કે સેવક કો માવ કહેં ॥

॥ શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

શ્રીહરિરાયજીકૃત સમગ્ર વાર્તાઓ ઉપરના  
ભાવાત્મક લેખનું ટિપ્પણ

શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ ભગવદ્લીલાનું અસ્તિત્વ બતાવતાં, ચાર  
પ્રકારના જીવોનું આ લેખમાં નિરૂપણ કરે છે. ૪ પ્રકારો—૧ નિર્ગુણ,  
૨ રાજસ, ૩ તામસ, ૪ સાત્ત્વિક. નિર્ગુણ ભક્તોનો શ્રીઆચાર્યચરણદ્વારા  
ઉદ્ધાર નિરૂપેલો છે. જ્યારે શેષ ત્રણ ગુણમય ભક્તોનો ઉદ્ધાર  
શ્રીગુસાંઈજીદ્વારા કહેલો છે,

જ્યારે શ્રીગોવર્ધનધરે શ્રીઆચાર્યજીને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારાર્થ  
ભૂતલમાં પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી ત્યારે શ્રીઆચાર્યજી વિના  
શ્રીગોવર્ધનધર લીલામાં રહી ન શક્યા.\* તે વખતે નિજ અંતરંગ—  
આધિદૈવિક ભાવરૂપ નિર્ગુણ ચોર્યાશી વૈષ્ણુવોને પણ શ્રીઆચાર્ય-  
ચરણમાં જ અંગરૂપે સ્થાપી ( પ્રકટ કરી ) પૃથ્વી ઉપર તે તે ભાવરૂપ  
આધિદૈવિક વૈષ્ણુવોના ભૌતિક સ્વરૂપના ઉદ્ધારાર્થ પ્રાકટચ કર્યું.

અતઃ તે અંતરંગી ચોર્યાશી વૈષ્ણુવો શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ  
અંગ અને તેના સાત—૬ ધર્મ, ૧ ધર્મી—ભેદથી ભૂતલ વિષે  
શ્રીઆચાર્યચરણમાં જ ભાવરૂપે પ્રકટ થયા.

આ પ્રકારે ચોર્યાશી વૈષ્ણુવોના ભૌતિક—લક્ષ ચોર્યાશી ચોનિ  
સ્થિત—અને આધિદૈવિક—અંગરૂપ—એમ બે સ્વરૂપ અહીં નિરૂપ્યાં છે.

\* પ્રત્યક્ષવિરહ ( નંદદાસકૃત વિરહમંજરી )



રસશાસ્ત્રમાં નિરૂપેલાં રસાદિક વિહારનાં—તે શ્રીઠાકુરુજીના સંબંધથી અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થયેલાં—ચોર્યાશી આસનોનાં સ્વરૂપ શ્રીઠાકુરુજીના અંગરૂપ એવા ઉપર વર્ણવેલા આધિદૈવિક ચોર્યાશી વૈષ્ણવોનાં છે.

અતએવ આ રસમય લીલા ચોર્યાશી કેસ વ્રજમાં સ્થિત છે. તે લીલાના સંબંધી ભૌતિક ચોર્યાશી સાધનરૂપ ભક્તોના તેમના જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ દ્વારા, ઉદ્ધાર કરી તે તે લીલામાં પ્રાપ્તિ કરાવવી એ શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રાકટ્યનું મુખ્ય કારણ છે અને તે પ્રાપ્તિના ફલાત્મક સાધનનું નિરૂપણ કરવું તે આ વાર્તા પ્રકટ કરવાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ છે. આ માર્ગમાં સાધન અને ફલનું અભેદપણું કહેલું હોવાથી આ વાર્તાઓ પરમ ફલરૂપ છે. આજ પ્રકારે શ્રીગુસાંઈજીના અંગ-સંબંધી રૂપર સગુણ ભક્તોનું ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપ નિરૂપેલું છે.

### શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવાત્મક લેખનું સ્વારસ્ય:—

જેવા પ્રકારથી શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીમદ્ભાગવતના ચાર અર્થરૂપ આનંદમય શ્રીહરિ અને તેની લીલાનાં દર્શન નિબંધમાં કરાવ્યાં છે તેવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીએ આ વાર્તાઓના ચાર અર્થરૂપ પરમાનંદસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી અને તેમની ભાવાત્મક લીલાનાં દર્શન આ લેખમાં કરાવ્યાં છે. શ્રીભાગવતના શેષ ત્રણ અર્થરૂપ શ્રીહરિનાં સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીસુખોદિનીમાં સ્થાપ્યાં છે, તેમ શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાના અર્થરૂપ શેષ ત્રણ સ્વરૂપ “ભાવપ્રકાશ” માં સ્થાપ્યાં છે.

આ લેખમાં દર્શાવેલાં શ્રીઆચાર્યજીનાં ચાર સ્વરૂપો આ પ્રમાણે છે:—

૧ “ તાર્તે અપને અંતરંગી નિર્ગુણ પક્ષવારે ચોરાસિ વૈષ્ણવ (પ્રકટ) કીણ ”

અંતરંગી=આધિદૈવિક, નિર્ગુણ પક્ષવારે વૈષ્ણવ=દેહભાવરહિત



પુરુષાકાર સુધા-વર્હાપીડં નટવરવપુઃ-સ્વરૂપ સાથે ભાવાત્મકરીતે વિલસનારા ભક્તોને પ્રકટ કર્યા.

જ્યાં જે પ્રકારના ભાવના ભક્તોનું પ્રાકટ્ય હોય, ત્યાં તે પ્રકારના ભાવાત્મક પ્રભુનું પ્રાકટ્ય અવશ્ય રહેલું જ છે. તેથી અહીં સુધાસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

૨ “ ઓર રસશાસ્ત્રમેં રસાદિક વિહાર કે આસન ( રૂપ ) ચોરાસી વૈષ્ણવ કીણ હે । ન્યારે ન્યારે અંગ કે ભાવરૂપ । ચોરાસિ રસલીલા સંબંધી નિર્ગુણ હે । ”

અહીં આસનશબ્દથી પાત્રરૂપતા કહેલી છે. રસની સ્થિતિ સ્ત્રીઓમાં જ છે જેથી તે રસના પાત્રરૂપ છે. અને લીલાશબ્દથી સંયોગત્વ પણ સિદ્ધ જ છે. આ લીલાની સ્થિતિ સ્વામિનીભાવ વિના નથી. અતઃ અહીં “સ્વામિનોભાવસંયુક્ત” ઇત્યાદ્યુક્ત શ્રીઆચાર્યજીનું પરમાનંદરૂપ ગૂઢસ્ત્રીભાવ સ્વામિનીસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

૩ “ ઓર શ્રીઆચાર્યજી કે અંગ દ્વારે હે સો સ્વરૂપાત્મક હે ।

અહિં દ્વાદશ અંગ શબ્દથી સાકાર પુરુષોત્તમનું પ્રતિપાદન છેઃ કારણ કે “ દ્વાદશો વૈ પુરુષઃ ” પુરુષ નિશ્ચયે દ્વાદશાંગ છે એમ શ્રુતિ કહે છે. અને તે પુરુષોત્તમ આનંદરૂપ છે. તેથી શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ “ આનંદ ” એમ છે. અને તે ભગવદ્ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીહરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે કે “ ભગવદ્ભાવભાવિતઃ ” ।

૪ “ ચોરાસિ કોસ વ્રજમેં જો જીવ જા લીલા કો સંબંધી હે તિનકોં તહાં પ્રાપ્ત કરન કે અર્થ ચોરાસિ વૈષ્ણવ અલૌકિક પ્રગટ કીણ ॥ ”

અહિં કેવલ વિપ્રયોગાત્મક કૃષ્ણાસ્થસ્વરૂપ કહેલું છે. વિપ્રયોગ વિના કાઈ પણ વસ્તુની પ્રાપ્તિ નથી જ. અતઃ આપે વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપે ભૂતલ ઉપર પધારીને, દૈવી જીવોને સ્વતાપાત્મક સ્વરૂપનું દાન કરી શુદ્ધ કર્યા અને ભગવદ્લીલાના સંબંધને પ્રાપ્ત કરાવ્યા.



આ પ્રકારે આ લેખમાં શ્રીઆચાર્યજીનાં ચાર સ્વરૂપો કહ્યાં છે.\*

॥ શ્રીદ્વારિકેશો જયતિ ॥

કુંજ પ્રકરણ —: સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

ચોર્યાશી કેસ વ્રજમાં ચોરાસી કુંજ મુખ્ય છે.

રસિક પુરુષો અને મહાત્માઓના નિકુંજદિવર્ણનમાં અનેક મત છે. તેને પરસ્પર વિરુદ્ધ જોઈને શંકા કરવી નહિ. કારણ કે આ નિકુંજલીલા ભાવસિદ્ધ છે. જેનો જેવા ભાવનો અધિકાર હોય તેને તેવા પ્રકારના ભાવાત્મક સ્વરૂપનાં દર્શન થાય છે. રહસ્યપુરાણમાં ૯૩ કોટિ રાસલીલાનું વર્ણન છે. અને ૯૩ કોટિ કુંજો પણ છે. વૃંદાવન એ છે. એક પૃથ્વી ઉપરનું અને બીજું ગોલોકનું નિત્યવૃંદાવન— આ નિત્ય વૃંદાવનનો જ આવિર્ભાવ ભૌતિક વૃંદાવનમાં ભગવત્કીડાર્થ થયેલો છે. એટલે આ ભૌતિક વૃંદાવન પણ તદ્રૂપ જ છે. એવા જ પ્રકારે શ્રીગોકુલ ગોવર્ધન આદિ છે. જેથી વારાહપુરાણમાં તીર્થરાજ પ્રયાગના સમક્ષ પ્રભુએ વ્રજને પોતાનું ઘર કહેલું છે.

આ નિત્યલીલાના શ્રીમદ્ગોકુલ આદિ સ્થલોના ભૌતિક ગોકુલ આદિ ધામેમાં આવિર્ભાવનો પ્રકાર શ્રીગુસાંઈજીએ વિદ્વન્મંડનમાં નેત્રના દષ્ટાંતથી સમજાવ્યો છે.

જેમ અસલ નેત્રેન્દ્રિય આ દેખાતા પ્રાકૃત ચક્ષુની અંદર રહેલી છે, ( આ વાત આજના ડૉક્ટરી વિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થાય છે. ) અને તેથી જ આ નેત્રમાં તેની તદ્રૂપતા હોઈને આ ભૌતિક નેત્રદ્વારાજ સર્વ વસ્તુ પ્રત્યક્ષ થઈ શકે છે. તેવા જ પ્રકારે આ દેખાતા ભૌતિક

---

\* આ, શ્રીહરિરાયજીના ભાવરૂપ લેખનું મૂલ સાધનપ્રકરણ છે. તેમાં વ્રતચર્યાપ્રસંગના “ વચસ્યૈરાગતસ્તત્ર ” આદિ શ્લોકોનાં શ્રીસુખાધિનીજીમાં આધિદૈવિક ભાવરૂપ અંતરંગ ભક્તોની અંગરૂપે સ્થિતિ આદિનો પ્રકાર શ્રીઆચાર્યચરણે સમજાવ્યો છે. જ્ઞાસુખોએ ત્યાં જોવું. સ્થલસંકેચથી અહિં તે ન લખતાં ખાલી સૂચના માત્ર કરી છે.



શ્રીમદ્ગોકુલ આદિના સેવનથી જ સર્વ લીલાનો સાક્ષાત્કાર થઈ શકે છે. કારણ કે તે નિત્યલીલાના શ્રીમદ્ગોકુલ આદિ નિત્ય ધામોથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થયેલાં છે.

આવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીના સમગ્ર વાર્તા ઉપરના લેખમાં રહેલાં વૈષ્ણવોનાં બે સ્વરૂપો જાણવાં. ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવ અને અંગરૂપે સ્થિતિ હોવાથી તેમના સન્મુખ થતાં માત્રથી જ ભૌતિક સ્વરૂપમાં શ્રીઆચાર્યજી દષ્ટિદ્વારા તેમના આધિદૈવિક મૂલ સ્વરૂપોનો પ્રવેશ કરાવે છે. તેથી વૈષ્ણવો અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે—

આ ભાવાત્મક સ્વરૂપોના સ્થાપનનો પ્રકાર વ્રતચર્યાપ્રસંગનાં શ્રીસુખોદિનીજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણે સારી રીતે સમજાવ્યો છે. પૂતના દ્વારા શોષેલાં કુમારિકાઓના પુંભાવરૂપ સ્વરૂપોને શ્રીકાકારજીએ દષ્ટિદ્વારા કુમારિકાઓમાં સ્થાપી રસયોગ્ય કર્યો છે. અસ્તુ. -

૯૩ કાટિ કુંજોમાં ચોર્યાશી કુંજ મુખ્ય છે. માટે તે તે કુંજના અધિકારી નિર્ગુણ ચોરાશી સેવકો શ્રીઆચાર્યચરણે અંગીકાર કર્યા.

હવે ચોર્યાશી કુંજોનાં નામ લખીએ છીએ :—

૧ પ્રીતિકુંજ, ૨ પ્રેમકુંજ, ૩ કંદર્પકુંજ, ૪ લીલાકુંજ, ૫ મજ્જનકુંજ, ૬ વિહારકુંજ; ૭ ઉત્કલકુંજ, ૮ મોહન કુંજ, ૯ યુગલ કુંજ, ૧૦ હાવકુંજ, ૧૧ ભાવકુંજ, ૧૨ કટાક્ષકુંજ, ૧૩ અલક કુંજ, ૧૪ મુક્તાકુંજ, ૧૫ ભ્રૂકુંજ, ૧૬ વેણીકુંજ, ૧૭ રોમરાજિકુંજ, ૧૮ નીલીકુંજ, ૧૯ કટિક્ષીણકુંજ, ૨૦ માનકુંજ, ૨૧ ભ્રમનકુંજ, ૨૨ તિષ્ઠનકુંજ, ૨૩ સંગીતકુંજ, ૨૪ આલસ્યકુંજ, ૨૫ કલકૂજિત કુંજ, ૨૬ વિવિધાકાર કુંજ, ૨૭ દુકુલકુંજ, ૨૮ નેત્રકુંજ, ૨૯ કુંડલકુંજ, ૩૦ હારકુંજ, ૩૧ તામ્બૂલકુંજ, ૩૨ આડકુંજ, ૩૩ લાવણ્યકુંજ, ૩૪ હાસ્યકુંજ, ૩૫ ઉત્સાહકુંજ, ૩૬ ઉગ્રતાકુંજ, ૩૭ કાકિલાલાપકુંજ, ૩૮ ગ્રીવકુંજ, ૩૯ આલિંગનકુંજ, ૪૦ સુમ્મનકુંજ, ૪૧ અધરપાન



કુંજ, ૪૨ દર્શનકુંજ, ૪૩ દર્પનકુંજ, ૪૪ પ્રલાપકુંજ, ૪૫ ઉન્માદકુંજ  
 ૪૬ દર્પકુંજ, ૪૭ ઉત્સાહનકુંજ, ૪૮ ઉત્કર્ષકુંજ, ૪૯ દીનકુંજ, ૫૦  
 અધીનકુંજ, ૫૧ સુરતકુંજ, ૫૨ આકર્ષણકુંજ, ૫૩ ઉચ્ચાટનકુંજ,  
 ૫૪ મૂર્છાકુંજ, ૫૫ વશીકરણકુંજ, ૫૬ સ્તમ્ભનકુંજ, ૫૭ પ્રિયાસ્કન્ધા-  
 રોહણકુંજ, ૫૮ આવેશકુંજ, ૫૯ વાર્તાલાપકુંજ ૬૦ પર્યેકકુંજ, ૬૧  
 પ્રિયાચરણતાડકાનકુંજ, ૬૨ નખક્ષતકુંજ, ૬૩ દન્તક્ષતકુંજ ૬૪  
 ક્ષપિતરંગકુંજ, ૬૫ વિગતાભરણકુંજ, ૬૬ ભૂષણકુંજ, ૬૭ કંપકુંજ,  
 ૬૮ રતિપ્રલાપકુંજ, ૬૯ તુતલગિરકુંજ, ૭૦ પ્રિયાવાસભવનકુંજ, ૭૧  
 મહનગુણકુંજ, ૭૨ આસક્તપુંજકુંજ, ૭૩ પરમરસકુંજ, ૭૪ પીડા-  
 વાદાકુંજ, ૭૫ સુરતશ્રમનિષેધકુંજ, ૭૬ હુતુકુંજ, ૭૭ વાગ્વિભ્રમ  
 કુંજ, ૭૮ વ્યવસ્તભાવકુંજ, ૭૯ કામટંકકુંજ, ૮૦ કિંકિનીરવકુંજ, ૮૧  
 વીરવિપરીતકુંજ—સુરતાન્તકુંજ, ૮૨ કલિકાકૌતુકકુંજ, ૮૩ સુરતકુંજ,  
 ૮૪ સહજપ્રેમકુંજ.

આ પ્રકારે ભાવાત્મક ચોર્યાશી કુંજો કહી. આ કુંજોમાં એક  
 એક કુંજમાં બધી કુંજો અન્તરભાવથી રહે છે. અને કોઈ કોઈ જગ્યાએ  
 પ્રકાશિત થઈને રહે છે.

હવે બીજું કેટલુંક મુખ્ય લીલાનું રહસ્ય વર્ણન કરીએ છીએ.  
 પ્રથમ શ્રીઠાકારજી અને શ્રીસ્વામિનીજીના સ્વરૂપને જાણવાને અર્થે  
 તેમનાં રહસ્યરૂપ સ્વરૂપોનું વર્ણન કરીએ છીએ :—

વ્રજમાં સખાવરણસ્વરૂપ શ્રીઠાકારજીનાં બિરાજે છે તે આ પ્રકારે :—  
 વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, કાલાત્મા, સંયોગરસાત્મક, અને  
 વિપ્રયોગરસાત્મક, જ્યારે પૂર્ણ પ્રભુનું પ્રાકટ્ય થાય (સારસ્વતકલ્પમાં)  
 ત્યારે છ સ્વરૂપ શ્રીમથુરાજીમાં પ્રકટ થાય છે અને વિપ્રયોગરસાત્મક  
 સ્વરૂપ વ્રજમાં પ્રકટે છે. તે સાતે સ્વરૂપની સ્થિતિ આ પ્રકારે  
 જાણવી :—

પૂતનાવધમાં સંકર્ષણ. ધર્મપાલનમાં અનિરુદ્ધ—લઘુરાસસમયે પ્રથમ  
 ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો ત્યારે અને દ્વારકામાં.



કામચાર પ્રદુમ્ન-કુબ્જને ત્યાં પધાર્યા ત્યારે.

રાજલીલામાં વાસુદેવ-મુચુકુંદપર કૃપા કરી ત્યાં.

મહાભારતમાં કાલાત્મા—(કાલાત્મા=કાલ કે કાલ ईश ईशान के)

‘કાલોઽસ્મિ લોકક્ષયકૃત્પ્રવૃદ્ધો લોકાન્સમાહર્તુમિહ પ્રવૃત્તઃ ।’

ગીતા ૧૧-૩૧

નંદસ્ત્વાત્મજ ઉત્તન્ને સંયોગાત્મક સ્વરૂપ—તેજ વસુદેવજીને ત્યાં પ્રાકૃત શિશુ થયા ‘બભૂવ પ્રાકૃતઃ શિશુઃ’

વિપ્રયોગાત્મસ્વરૂપ વ્રજમાં સ્થિત છે. મથુરા પધારતી સમયે શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયઅંતર્ગત વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ પ્રવેશ્યું—આ સ્વરૂપ મથુરા નથી પધાર્યું. સદા તે તો વ્રજમાં જ બિરાજે છે.

અન્ય કલ્પોમાં આ સાતમાંથી એક અથવા બે એમ પ્રાકલ્ય થાય છે માટે તે અંશાત્મક રૂપે પ્રકટે છે, પૂર્ણ રૂપે નહિ. શ્રીભાગવતમાં સારસ્વતકલ્પની લીલા છે. માટે “કૃષ્ણસ્તુ ભગવાન્ સ્વયં” એમ કહેલું છે.

આવીજ રીતે શ્રીસ્વામિનીજીનાં સાત સ્વરૂપ છે :—

૧ શ્રીશક્તિ, ૨ ભૂશક્તિ, ૩ લીલાશક્તિ, ૪ મનોરથાત્મક, ૫ સ્વામિન્યાત્મક, ૬ સંયોગાત્મક, ૭ વિયોગાત્મક.

સારસ્વત કલ્પમાં સાતે રૂપથી પ્રકટે છે. અન્ય કલ્પમાં એક બે રૂપે પ્રકટે છે—

પ્રથમના પાંચ સ્વરૂપનું કીર્તિજીને ત્યાં પ્રાકલ્ય છે શ્રીઠાકુરજીના પ્રાકલ્યના પછી પંદર દિવસે અને જ્યારે શ્રીઠાકુરજીનું પ્રાકટય થયું ત્યારે તેની સાથે માયાવૃત સંયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પ્રકટયું (નંદાલયમાં) અને વિયોગરસાત્મક સ્વરૂપ બે વર્ષ પહેલાં સેવાકુંજમાં પ્રકટયું છે.

જ્યારે કીર્તિજી પોતાને ત્યાંથી શ્રીસ્વામિનીજીને નંદાલયમાં



પધરાવી લાવ્યાં ત્યારે શ્રીઠાકોરજી માતાની ગોદમાં હસ્યા. તે સમયે પાછળનાં બન્ને રસાત્મક સ્વરૂપો પહેલાના કીર્તિજીની પાસેનાં આધારભૂત પંચવર્ણાત્મક સ્વરૂપમાં સ્થાપન ( શ્રીઠાકોરજીએ ) કર્યાં. આ પ્રકારે બન્નેનાં વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પરસ્પર હૃદયમાં વિદ્યમાન છે. [ સૌંદર્યપદ્યનું ચિંતન અહીં કરવું ] જ્યારે શ્રીઠાકોરજી મથુરાજી પધાર્યા ત્યારે તે વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયમાં પૂર્ણરૂપે સ્થાપ્યું. મથુરામાં આ સ્વરૂપનું ગમન નથી.

શ્રીસ્વામિનીજીનું મનોરથાત્મક જે સ્વરૂપ છે તેમાં અન્ય ( સ્વામિની )ના પ્રભુથી રમણ કરવાના મનોરથ તથા વરદાન આદિથી જે સ્વામિની પ્રકટે છે તે મળી રહે છે. અને સ્વામિન્યાત્મક સ્વરૂપમાં પ્રતિકુંજ પ્રતિમંડલ પ્રતિયૂથમાં જે સ્વામિનીજીના અંશ સ્વરૂપ હોય છે તેમની એકતા છે.

પુષ્ટિ સંપ્રદાયના મતે અષ્ટ સખીનાં નામ આ પ્રકારે છે;— શ્રીચન્દ્રાવલીજી, શ્રીલલિતાજી, શ્રીવિશાખાજી, શ્રીચમ્પકલતાજી, શ્રીચન્દ્રભાગાજી, શ્રીરાધાસહચરી, શ્રીશ્યામાજી અને શ્રીભામાજી આ આઠમાં શ્રીચન્દ્રાવલીજીને સ્વામિનીત્વ છે અન્ય સાતને સખીત્વ છે. તેથી પંચાધ્યાયીમાં અન્તર્ધાન અને આવિર્ભાવ અને મહારાસમાં કાચિત્ કાચિત્ કરીને સાત જ ગણાવ્યાં છે. \*

( શ્રીચન્દ્રાવલીજીના પ્રાકટ્ય આદિનો સર્વ પ્રકાર ભગવદ્વિચ્છા હશે તો હવે પછી ગ્રન્થ પ્રકટ થશે તેમાં આપીશું. મુદ્રણખર્ચની પૂર્તિ થઈ નથી એટલે વાંચકોએ આટલાથી સંતોષ માનવો. )

રસિક ભક્તો માટે ધ્યાનાર્થ લલિતાજીનાં સ્વરૂપ, સેવા આદિનું કોષક આપ્યું છે.

---

\* આ સમસ્ત પ્રકરણ યુગલસર્વસ્વ અને અન્ય પ્રાચીન પુસ્તકોમાંથી ઉદ્દ્યુત કર્યું છે.



નામ	લીલાનું સ્વરૂપ.	રંગ		
દામોદરદાસ હરસાની	લલિતાજીનું સ્વરૂપ	ગોરોચનપ્રભા	ઉજ્જવલલાલાશયુક્ત	
વસ્ત્રનો રંગ.	મુખ્ય સેવા	ચાતુર્ય	ભાવ	વાદ્ય
મયૂર પિચ્છ	પાનની બીડી	મધ્યામુખ્ય સ્નેહવર્દન	સખ્ય	બીન

શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાનું સ્વરૂપ  
અને તેનું રહસ્ય.

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધનિરોધરૂપ અને તેના પરમ ફલ-ભાવ-રૂપ છે. આમાં પરમ નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક આંતર રમણનું વર્ણન છે, જેથી તે તામસ ફલપ્રકરણના પણ ફલ-ભાવ-રૂપ છે. આ વાર્તાનું મૂલ યુગલગીતમાં છે. આ પરમ ફલરૂપ શબ્દાત્મક લીલા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયમાં સ્થિત છે. અતઃ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના પરમ નિગૂઢ હૃદયરૂપ છે, અને તેમાં ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક નિરોધનું સ્વરૂપ રહેલું છે.

एवमेव स्थितिर्ज्ञेया स्वामिनीहृदयेषु हि ।

सैवास्मदाचार्यवर्यैर्नमामीत्यत्र रूपिता ॥ (સ્વ. મા. સે. ફ. નિ.)

શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધના પારિભાષિક તામસ, પરંતુ વસ્તુતઃ નિર્ગુણ પ્રકરણમાં પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફલનું નિરૂપણ છે. તેમ અહિં પણ તે ચારેનું નિરૂપણ છે:—

પ્રસંગ ૧માં બ્રહ્મસંબંધની આજ્ઞા સમયે:—

“સાક્ષાદ્ભગવતા પ્રોક્ત” ત્યાં ભગવદ્વાજ્ઞા, એ આ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણરૂપે સ્વીકારાર્થ છે.

“પ્રમાણં ભગદ્વાક્યમાવિર્ભૂયોદિતં હિ યત્ । (સ્વ. મા. મ. નિ.)

તે આજ્ઞાસમયે સાક્ષાત્ પ્રભુનું પ્રાકટ્ય તેજ આ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમેયરૂપ કહેવાય છે. “પ્રમેયો હરિરેવાત્ર”



તે સમયે પુષ્ટિમાર્ગનો પ્રાદુર્ભાવ-ગદ્યમંત્રરૂપે “ ભગવન્નામો-  
પદેશકઃ ” (સં. વા.) – તેજ સાધનરૂપ કહેલ છે. “ સાધનં  
ભગવન્માર્ગઃ ”, અને તેજ ફલરૂપે છે. કારણ કે આ માર્ગમાં ફલ  
અને સાધન એક જ છે. “ ફલં સાધનમેવ હિ ”

બીજા પ્રકારે ભગવતપ્રાકટ્ય એજ ભક્તિમાર્ગમાં ફલ કહેવાય  
છે. ભક્તિમાર્ગે ભગવતઃ પ્રાકટ્યં ફલમુચ્યતે” આથી અહીં  
ભગવાનનું સાક્ષાત પ્રાકટ્ય એ ફલ જાણવું.

આ પ્રકારે બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં ચારે વસ્તુનું નિરૂપણ કર્યું છે.

આ નિરોધ તેજ ફલરૂપ આધિદૈવિક માનસી છે. ચેતસ્ત-  
ત્પ્રવણં સેવા માનસી ફલરૂપિણી । પ્રોક્તા નિરોધરૂપા ॥૨૥॥  
(સ્વ. મા. સે. ફ. નિઃ ) અને તેનું દાન શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદર-  
દાસજીને કર્યું છે. “ રસભાવભૂતાં નિત્યં ” (સં. વા.) જેથી દામોદર-  
દાસ શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયનું સ્વરૂપ છે, અને તેમની વાર્તા તે પરમ  
ફલરૂપ નિરોધલીલાનું સ્વરૂપ છે.

આ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રાકટ્ય કેવલ દામોદરદાસજીના  
અર્થેજ છે. આ માર્ગના અધિકારી સર્વ દૈવી જનોના મૂલ આધિદૈવિક  
રૂપ દામોદરદાસજી જ છે. માટે શ્રીઆચાર્યજી આજ્ઞા કરે છે કે  
“ દમલા, यह मार्ग तेरे लिए प्रकट कीयो हे ” “ પુષ્ટિ  
પથસ્તવ હિતાર્થં વે પ્રકટિતઃ ” (સં. વા. શ્લોક. ૨૫)

જેઓમાં આવા પ્રકારની (ભાવાત્મક નિરોધરૂપ) પ્રભુની  
સ્થિતિ હોય તે સ્વતંત્ર-નિર્ગુણ-ભક્તો કહેવાય. અને આજ પ્રકારે  
તે પુષ્ટિભક્તિ-આધિદૈવિક નિરોધરૂપા માનસી-પણ સ્વતંત્ર કહી  
કહી શકાય. “ સ્વતંત્રભક્તાસ્તે ” (સ્વં માં સેં ફં નિં)

આવા સ્વતંત્ર ભક્તિવાળા ભક્તોમાં મૂર્તિની માફક પ્રભુનો  
આવેશ થાય છે, અને તે ભક્તો નિત્ય અને મૂર્તિની માફક સેવનીય



હોય છે. દામોદરદાસજીનું આવા પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. માટે જ શ્રી ગુણાંધ્રજી આજ્ઞા કરે છે કે:—“ વાર્તામ્પ્રાયસ્તવાસ્યતઃ ” (સં. વાર્તા)

**પ્રશ્ન:**—જ્યારે તમે દામોદરદાસજીની વાર્તાને નિરોધલીલા કહો છો, તો શ્રીમદ્ભાગવતમાં દશમસ્કંધ સમગ્ર નિરોધરૂપ હોઈ તેમાં જન્મપ્રકરણ-રાજસ પ્રકરણ સાત્ત્વિક પ્રકરણ ગુણ પ્રકરણ આદિ છે, તે આ વાર્તામાં ક્યાં છે ?

**ઉત્તર:**—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ પ્રશ્નનો જવાબ શ્રીહરિ-રાયજીકૃત ભાવરૂપ લેખમાં આવી ગયેલો છે. તેમાં લખ્યું છે કે ૮૪ વૈષ્ણવો નિર્ગુણ છે, અને શ્રીઆચાર્યજીના અંગના ભાવરૂપ છે. તેથી તેમની વાર્તાઓ પણ તે તે અંગની લીલાના ભાવરૂપ છે. એટલે નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક રમણરૂપ છે. એમાં ગુણમય ક્રિયાપ્રાધાન્ય સંયોગાત્મક લીલાની સંભાવના હોય જ નહિ. આ વાર્તાઓમાં કેવલ ભાવાત્મક પ્રભુની જ સ્થિતિ છે. જેથી આ નિરોધલીલારૂપ દામોદરદાસજીની વાર્તા ભાવાત્મક હોઈ પરમ સ્વરૂપે કહી છે.

બીજું જન્મપ્રકરણ સંબંધી એવું કહેવાનું છે કે—આ વાર્તામાં ભાવાત્મક શ્રીગોપીજનવલ્લભનું સાક્ષાત્ પ્રાકટ્ય પણ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં આવી ગયું છે. વળી વિશેષમાં જેમ શ્રીકૃષ્ણના જન્મનો અલૌકિક પ્રકાર ( કાલઃ પરમશોભનઃ ) શ્રીભાગવતમાં વર્ણવ્યો છે. તેમ સ્વયં પરમ ભાગવત શ્રીદામોદરદાસજીએ શ્રીગુણાંધ્રજી સમક્ષ શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક પ્રાકટ્યના પ્રકારનું વર્ણન કરેલું છે, અને તેનો શ્રીગુણાંધ્રજીએ શ્લોકબદ્ધ “ સહસ્રકૃત ? ” નામનો ગ્રન્થ પણ રચેલો છે. ( જુઓ સંવાદ ) તે ગ્રન્થ શ્રીગોકુલનાથજી પાસે હતો. આપના લીલામાં પધાર્યા બાદ ખલીયા (?) ના હાથ લાગ્યો ( હાલ અપ્રાપ્ય છે. ) એથી સંભવ છે કે શ્રીગોકુલનાથજીએ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના જન્મનો પ્રકાર વાર્તામાં યોજ્યો નહિ હોય.



॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

## दामोदरदास हरसानी की वार्ता.

जन्म (१) शरण आये पहेले को प्रकार \*

— भौतिक स्वरूपको प्रसंग: —

पाछे आप श्रीआचार्यजी आगे पधारे ॥ तहाँ एक बडो नगर—  
वृद्धनगर (वर्धा)—आयो ॥ सो वा ठोर एक बडो नगरशेठ हतो ॥ सो  
क्षत्री हतो ॥ वाके चार बेटा हुते ॥ सो तीन बेटा तो बडे हते ॥ ओर  
सबतें छोटे दामोदरदास हते ॥ सो उन चारि भाईनने विचार कियो ॥  
जो होई तो यह द्रव्य अपनो अपनो हम चारों भाई बांटे लेई ॥ काहेते  
जा द्रव्य हे सो क्लेश को मूल हे ॥ पाछे हमारो आपस में हित न  
रहेगो ॥ दामोदरदास तो छोटे हते ॥ सो इनसों कहे ॥ क्यों बाबा  
तू अपने बांटेको द्रव्य लेईगो ॥ तब दामोदरदास कहे में तो कछु  
समुझत नाहि ॥ तुम बडे हो ॥ आछो जानो सो करो ॥ तब इनने  
द्रव्य सब धरमेंसु काढी ॥ वाके चारि बांट किए ॥ सो चारि चिठी लिख  
के वाके उपर डारि ॥ सो जा जाके नाम की चिट्ठी आई ॥ सो सो वाने  
लीयो ॥ तब दामोदरदास सों कही ॥ तुमारो द्रव्य जहां तुम कहो वहां  
वर ॥ ता समें दामोदरदास गोखमें बैठे हते ॥ सो गोख के नीचे राज-  
मार्ग हतो ॥ सो ता समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु वा मार्ग होई निकसे ॥  
सो उपरतें दामोदरदास की दृष्टि परी ॥ सो तत्काल ऊठी दोरे ॥ न कछु  
द्रव्य की सुधि रही ॥ न कछु घर की सुधि रही ॥ सो आवत ही श्री  
आचार्यजी महाप्रभु को साष्टांग दंडवत् कीये ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु

\* कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त प्राचीन स्फुट लेखसुं उद्धृत.



श्रीमुखतें कहें ॥ जा दमला तू आयो ॥ तब इन्ने कही, महाराज, हों  
कब को मारग देखुं हूं ॥ सो श्रीमहाप्रभुजी के चरणारविंद के पाछे पाछे  
दामोदरदास चले ॥ सो पाछे भाई कहन लगे ॥ जों दामोदरदास कहां  
गए ॥ तब काहुने कही जो या मारग में एक लरिका \* जात हुते ॥  
तिन के पाछे पाछे दामोदरदास जात हे ॥ तब ये तीन्यों भाई उहां ते  
चले ॥ सो आगे वा नगर के बाहर एक स्थल हुतो ॥ तहां श्रीआचार्यजी  
आप विराजे हे ॥ आगे दामोदरदास बैठे हे ॥ तब इह देखत ही तिन्यों  
भाई चकित होय गये ॥ सो इनकां श्रीआचार्यजी के दर्शन साक्षात्  
तेजपुंज के भए ॥ सो इन्तें कछु बोल्यो न गयो ॥ अपुने मन में विचारे  
जो कदाचित कछु बोलेंगे ॥ तो इह अग्नि हम को भस्म कर डोरगी ॥  
तब दामोदरदास भाईन कां देखिकें कह्यो ॥ जो जाउ ॥ सो भाईन  
दामोदरदास को स्वरूप ता समय तेजोमय देखें ॥ सो भय स्वाय के  
पीछे फिर आए\*<sup>१</sup> ॥ जो दैवी जीव होते तो शरन आवते ॥ श्रीआचार्य-  
जी को नाम दैवोद्धारप्रयत्नात्मा हे ॥ तब दामोदरदास को संग लेकें  
श्रीआचार्यजी आगे पधारे ॥ दामोदरदास कछु ब्याहे तो हते नाहि ॥  
जो इनकां स्त्री आदि आइ के प्रतिबंध करे ॥ बहोत दिना के बिछुरे हते ॥  
सो आय मिले ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु की संग दामोदरदासजी  
चले ॥ सो आगे फेर विद्यानगर कछुक दिन में पधारे ॥

\* संवत् १५४६ में श्रीआचार्यजी वा समय ११ वर्षके हते ।

\* १ आ त्रणु बाधयो उद्वेग, प्रतिबंध, अने लौकिक भोगनां स्वरूपो  
छ. दामोदरदास निरोधरूप मानसी सेवानुं स्वरूप छ. जेथी ते आधिदैविकी  
सेवाभां उद्वेग आदि त्रणु वस्तु प्रतिबंधरूप होई श्रीआचार्यज्ये पोताना  
आध्यात्मिक अग्निस्वरूपनां दर्शन हेई ते त्रणुने लय उत्पन्न करावी दूर कर्या.



## દામોદરદાસજીનો શેષ રહેલો ભૈતિક ઇતિહાસ.

દામોદરદાસજીના પિતાનું નામ થીરદાસ \* અને માતાનું નામ જસોદા હતું. થીરદાસનો જન્મ સંવત ૧૪૫૫ માં થયો હતો. તેઓ શ્રીરંગપદ્મમાં રહેતા હતા. લગભગ સં. ૧૫૦૦ સુધી તેમને કોઈ સંતાન ન હતું. થીરદાસ દ્રવ્યપાત્ર અને ધર્મનિષ્ઠ હતા. તેઓ જ્ઞાતિએ ક્ષત્રિય હતા. થીરદાસની અટક ‘ હરિશરણી ’ હતી. તેઓ શ્રીરંગપદ્મમાં એક પ્રતિષ્ઠિત વ્યક્તિ તરીકે ગણાતા હતા. ગામમાં તેમણે બે ધર્મશાળાઓ પણ અંધાવી હતી. તે ધર્મશાળામાં ઉતરતા સાધુ યાત્રીઓનો તેઓ સારી રીતે સત્કાર કરતા હતા, તેમજ તેઓ મહાત્માઓની સેવા અને સંગમાં પણ પ્રીતિવાળા હતા.

એક દિવસે કોઈ એક મહાપુરુષ તેમને ત્યાં આવેલા. થીરદાસે તે મહાપુરુષની સારી સેવા કરી. ત્યારે મહાપુરુષે પ્રસન્ન થઈ તેમને ત્યાં ચાર પુત્રો થવાનું વરદાન આપ્યું. અને ચોથો પુત્ર હરિભક્ત થશે તેમ કહ્યું. એ પ્રમાણે થીરદાસની નિષ્કામ સેવાથી પ્રસન્ન થઈ વરદાન આપી તે મહાપુરુષ ગામમાંથી ચાલી નીકળ્યા.

થીરદાસે પુત્ર થવાની આશા છોડી દીધી હતી. તેમને પ્રાપ્ત થતી વૃદ્ધાવસ્થા જોતાં તે વાત બનવી અસંભવ જેવી હતી. છતાં હરિની સમાન કોટિના ભક્તો હરિની માફકજ સમાન ધર્મવાળા હોય છે, જેથી તેઓ અન્યથા પણ કરી શકે છે. તે ન્યાયે મહાપુરુષના થયેલા વરદાનથી થીરદાસને ચાર પુત્રરત્નોની પ્રાપ્તિ થઈ. પહેલા પુત્ર ચતુરદાસ થયા. બીજાનું નામ ભગવાનદાસ ધર્યું. ત્યારબાદ ત્રીજા પુત્રની ઉત્પત્તિ થઈ. જ્યારે થીરદાસ ૭૪ વર્ષના થયા અને તેમનાં

\* શ્રીવલ્લભચરિત્રના કર્તા સં. લલ્લુભાઈ જજ્જ પિતાનું નામ કપુરચંદ્ર લખે છે. “સંવાદમાં” થીરદાસ છે અને તે દામોદરદાસજીએ સ્વયં કહેલું હોવાથી વિશેષ પ્રમાણરૂપ કહી શકાય. સંભવ છે કે મૂલનામ થીરદાસ હોય અને પ્રખ્યાત નામ કપુરચંદ્ર પણ હોય.





૪૨૨

૩૧

સ્ત્રી શોદા ૫૦ વર્ષનાં થયાં ત્યારે તેમને ત્યાં સંવત ૧૫૩૧ ના માધ સુદ પૂર્ણિમા દિવસે ચોથા પુત્ર તરીકે મહાનુભાવ હરિભક્ત દામોદરદાસજી પ્રાપ્ત થયું. તેઓ જન્મતાં જ પ્રસન્નવદન અને અંતર્દષ્ટિવાળા થયા. વળી તેઓના કપાલમાં દિવ્ય ભગવત્તેજ બિરાજતું હતું. ચોડા દિવસ બાદ માતા જશોદા શ્રીહરિના ચરણ-રવિંદને પ્રાપ્ત થયાં. ત્યારથી દામોદરદાસનું લાલનપાલન સ્વયં થીરદાસજી કરતા હતા. તેઓનો દામોદરદાસ પ્રત્યે અત્યંત પ્રેમ હતો. એક દ્વારુ પણ દામોદરદાસજી વિના થીરદાસ રહેલા ન હતા. થીરદાસને જેસી અને રંગો નામનાં બે કન્યારત્નો પણ હતાં.

સંવત ૧૫૩૪ ના કાર્તિક માસમાં અનેક સાધુ સંતોનો એક જળ્મરદસ્ત જમૂહ યાત્રા કરવા નિકળેલો. તેમની સાથે થીરદાસ પણ દામોદરદાસજીને તેમની ભાઈ ભોજાઈને સોંપી યાત્રા કરવા નિકળી પડ્યા. યાત્રાની પહેલી મજલે થીરદાસને રાતના એક સ્વપ્ન થયું. તેમાં ભગવાને થીરદાસને આજ્ઞા કરી કે, મારી અલૌકિક ભેટ રૂપ તારા ચોથા પુત્ર દામોદરદાસને લઈને તું ચંપારણ્ય જા. દામોદરદાસ વિના તારી યાત્રા સંપૂર્ણ થશે નહિ. સવારે થીરદાસ પોતાના ગામમાં આવ્યા. ત્યાં દામોદરદાસજીને રોતા જોઈ થીરદાસે દામોદરદાસની ભોજાઈને રોવાનું કારણ પૂછ્યું ત્યારે ભાઈ ભોજાઈએ કહ્યું કે—જ્યારથી તમે ગયા છો ત્યારથી દામોદરદાસ રોયા જ કરે છે. કોઈ પણ ઉપાયે તે રોતા બંધ થતા નથી. સારું થયું કે તમે તરત જ ઘેર પાછા આવ્યા. હવે તમારે જ્યાં જવું હોય ત્યાં દામોદરદાસને લઈને જ જાઓ. પછી થીરદાસ દામોદરદાસને લઈને યાત્રાએ ગયા. રસ્તામાં સાધુ સંતોના સમૂહને મળ્યા. કેટલાક દિવસ પછી તેઓ ચંપારણ્ય પહોંચ્યા. સંવત ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના દિવસે શ્રીઆચાર્યજીનો પ્રાદુર્ભાવ થયો. તે અલૌકિક પ્રાકટ્યઉત્સવનો અનુભવ સાડા ચાર વર્ષના બાલક દામોદરદાસને થયો. બીજા પણ



કેટલાક સત્પુરુષોને તે પ્રાકટ્યનો અનુભવ થયો. થીરદાસ લક્ષ્મણભ-  
ટ્ટજીનો પ્રભાવ જોઈને તેમના શિષ્ય થયા. પછી કેટલાક દિવસ ત્યાં  
રહીને તેઓ પાછા શ્રીરંગપદ્મમાં આવ્યા. ત્યાં ઉપદ્રવ થવાથી કેટલાક  
વર્ષ બાદ થીરદાસ સહકુટુંબ વૃદ્ધનગર ( વર્ધા ) આવીને રહ્યા. ત્યાં  
તેઓ કાપડનો ધંધો કરતા. આ રીતે થોડાક સમય સુધી થીરદાસ  
વર્ધામાં રહ્યા. પછી સંવત ૧૫૪૫ માં થીરદાસે પોતાના દેહનો  
ત્યાગ કર્યો.

થીરદાસના બાર મહિનાનાં ક્રિયાકર્મ કર્યા બાદ તેમના ચારે  
પુત્રો અલગ થયા. દામોદરદાસ નાના હોવાથી તેમની દેખરેખ તેમના  
મામા રાખતા. જ્યારે ચારે ભાઈ અલગ થયા ત્યારે કલેશનું મૂળ જે  
દ્રવ્ય તેના ચાર ભાગ કર્યા.

આ સમય દરમિયાન દામોદરદાસજી રાજમાર્ગ ઉપર આવેલા  
પોતાના મકાનના ગોખલામાં બેસી રહેતા અને પૂર્વે મળેલાં અલૌકિક  
સ્વરૂપના ધ્યાનમાં મગ્ન રહેતા. લૌકિક કોઈ પણ પ્રકારની વાત  
તેઓ જાણતા ન હતા.

એક દિવસે જ્યારે દામોદરદાસજી રાજમાર્ગ ઉપર આવેલા  
પોતાના મકાનના ગોખલામાં બેઠા હતા. તેવામાં બાલસ્વરૂપ શ્રીઆ-  
ચાર્યચરણ ત્યાં થઈ પધાર્યા. ( સંવત ૧૫૪૬ પછી અને સં. ૧૫૪૭  
પહેલાં ) દામોદરદાસજીને આપનાં દર્શન થતાં માત્ર તેઓએ આપના  
ચરણકમલમાં સાષ્ટાંગ દંડવત્ કર્યા\* શ્રીઆચાર્યચરણે તેમનો હાથ  
પકડી ઉઠાવી અને આજ્ઞા કરી કે “ દમલા તું આવ્યો ? ” પછીનો  
બધો પ્રસંગ વાર્તામાં છે. ત્યાં જુઓ )

x શ્રીઆચાર્યજીના આસુરવ્યામોહલીલા પછીનો શેષ પ્રસંગ:—

\* સંવાદ, દિગ્વિજય આદિ ઘણાં ગ્રંથોમાંથી કરેલું સંશોધન.

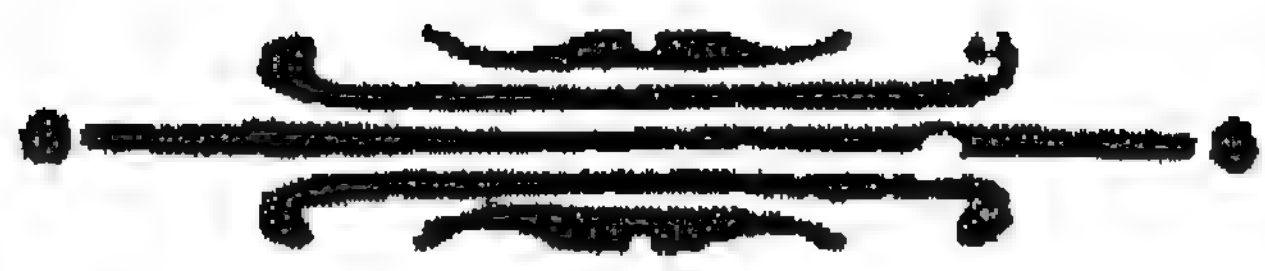
x કદપદ્મ આદિ ગ્રંથોમાંથી.



ત્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ આસુરવ્યામોહલીલા કરવાનો વિચાર કર્યો ત્યારે સં. ૧૫૮૨ માં આપશ્રી દામોદરદાસજીને લઈને વ્રજમાં શ્રીનાથજી પાસે પધાર્યા. શ્રીનાથજી પાસે શ્રીઆચાર્યચરણે આ સમયે દામોદરદાસના દેહની સ્થિતિ રહે એમ ત્રણ વાર માગ્યું; તે વરદાન પ્રાપ્ત કરીને દામોદરદાસને શ્રીમદ્ગોકુલમાં વાસ કરાવ્યો. નિર્વાહ અર્થે ચરણપાદુકાજી પધરાવી આપ્યાં. ( સાંભળવા પ્રમાણે આ પાદુકાજી શ્રીનાથજીની પાસે બિરાજે છે ) પછી શ્રીઆચાર્યચરણે અડેલ પધારી કેટલાક સમય પશ્ચાત્ સંન્યાસ ધારણ કર્યો અને વ્યામોહ કર્યો.

તે સમયે દામોદરદાસ અડેલ આવ્યા, અને પછીથી ત્યાંજ એક પર્ણકુટી રચીને રહેવા લાગ્યા. શ્રીઅક્ષાજીની આજ્ઞાથી શ્રીગુસાંધજીએ દામોદરદાસ પાસેથી સેવાપ્રણાલી, ઉત્સવક્રમ અને માર્ગનું રહસ્ય આદિ પ્રાપ્ત કર્યું.

કેટલાક સમય પછી સંવત ૧૬૦૭ માં દામોદરદાસજી ૭૬ વર્ષ ભૂતલ ઉપર સર્વ સમક્ષ બિરાજી સદેહે અંતર્હિત થયા.\*





॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अब श्रीआचार्यजीके चोरासि वैष्णव की वार्तामें गूढ़ आशय श्रीगोकुलनाथजी कहे हैं ॥ तहां श्रीहरिरायजी कछुक भाव प्रकट करत हे ॥

पुष्टिमार्गीय वैष्णव के (अर्थ) जनाइवे के अर्थ ॥<sup>१</sup>

अब प्रथम सेवक सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दामोदर-दास जिनको श्रीआचार्यजी दमला कहते ॥

सो यातें ॥ दमला सो. अमला ॥ मल करिकें रहित ॥ तहां यह श्रीहरिरायजीकृत संदेह होई जो साधारन वैष्णवमें मल नांहि ॥ भावप्रकाश तो दामोदरदासमें केसैं संभवे ? दामोदरदास के दरसन तें इनके नाम लिए तें पाप जाय तो इनको नाम दमला सो अमला कहें ॥ ताको प्रयोजन कहा ? यह संदेह होई ॥ तहां कहत हैं ॥ यह भक्तिमार्ग में श्रीठाकुरजीमें प्रीति होइ तहां तांई अमल हे ॥ जब श्रीठाकुरजी तें अधिक \*श्रीआचार्यजीमें प्रीति होई तब अमला कहिए ॥ दामोदरदास को एक दृढ भाव श्रीआचार्यजी में हे ॥ जो दामोदरदास की गोद में माथो धरके श्रीआचार्यजी पोढे हते ॥

१ सं. १७५२ में लिखित पुस्तक को अक्षरशः उतारो ।

\* धर्मी विप्रयोगात्मक स्वरूप में प्रीति, माने सर्वात्मभाव होय सो

अमला



सो श्रीगोवर्धनधर साक्षात् पधारे ॥ तब बरजे, “ निकट मति आवो, महाप्रभुजी जगेंगे ” एसो दृढ भाव हे ॥ जो ऊठि के श्रीठाकुरजी को दंडोत हू न कीए ॥ ओर श्रीगुसांईजी पूछे ॥ श्रीठाकुरजीसें बडे क्यो कहे ? तब दामोदरदासने कहि ॥ दान बडो के दाता बडो ? दाता जहां देई तहां दान चलो जाई ॥ जहां चाहे तहां दाता दानकुं राखे ॥ यह भाव दृढ हे जातें श्रीआचार्यजी दमला कहतें ॥ जो कोइ प्रकारसें अन्यसंबंध<sup>१</sup> को गंव हूं नाहि हैं ॥ तातें अमला हैं ॥ ओर इनको नाम दामोदरदास यातें हे जो पुरुषोत्तमसहस्रनाम में श्रीआचार्यजी कहें हे ॥ “ दामोदरो भक्तवश्यो ॥ ” ओर श्रीसुबोधिनीजी में विस्तार करिके लिखे हे ॥ जो पुरुषोत्तम साक्षात् भक्तन के बस देखाए ॥ सो अपनो बंधन छोडि न सके ॥ ओर जसोदाजी को ब्रजभक्तन को ( स्वरूप ) दिखाए ॥ जसोदाजी इतनें भक्त हे जो श्रीठाकुरजी को बांधे सो उन भक्तन क संमति देखि के बंधाने जो दाम ब्रजभक्त लाए हे ॥ परंतु जसोदाजी को बंधन छुडाइवे कि सामर्थ नाहि हैं ॥ तातें जमलार्जुन वृक्ष गिरें ॥ तब सोर भयो ॥ तब ब्रजभक्तननें दाम छोरे हे ॥ तातें श्रीठाकुरजीसें जसोदाजी बडे ॥ श्रीदामोदरजी सें ब्रजभक्त बडे, सो भक्तवत्सलता प्रगट करी तेसें ही दामोदरदास नाम करि दामोदरदास के—अनन्य भक्त के—बस श्रीआचार्यजी हैं ॥ तातें कहतें “ दमला यह मारग तेर लिये प्रगट कीयो हैं ॥ ” तातें यह आयो जो ओर भक्त बहोत हैं परंतु तेरे में बस हों यह जनाए ॥

---

१ अन्यसंबंध=संयोगात्मक कामभाव [ देखो प्रसंग १० के रहस्यमें ]



ओर दामोदरदास को अलौकिक स्वरूप हैं सो ललिताजी को प्रागट्य  
 हे ॥ उहां सगरी रहस्य लीला में श्रीस्वामि-  
 दामोदरदासको अलौ- नीजी की आज्ञाकारी जेसें ललिताजी तेसें हि  
 किक आधिदैविक इहां श्रीआचार्यजी की आज्ञाकारनी ललिता-  
 स्वरूप रूप दामोदरदास ॥ जो जनमते ही तें बाल  
 ( जन्म ३ ) ब्रह्मचारी सखीरूप गृहस्थाश्रम को जानत  
 नाहीं ॥ सो ललिताजी को भाव यह कीर्तन  
 में जाननो ॥

राग केदारो ॥

हँसि हँसि दूध पीवत नाथ ॥

मधुर कोमल बचन कहि कहि प्राण प्यारी साथ ॥ १ ॥

कनक कटोरा भर्यो अमृत दियो ललिता हाथ ॥

लाडिली अचवाय पहले पाछें आप अघात ॥ २ ॥

चिंतामनि चित बस्यो सजनी निरखि पिय मुसक्यात ॥

स्यामा स्याम कि नवल छवि परी रसिक बल बल जात ॥ ३ ॥

याको यह भाव कहत हैं ॥ जो दोऊ स्वरूप रतन खचित सज्या  
 पर विराजे हैं ॥ तहां ललिताजी कनककटोरा में दूध ओटि कें मिश्री  
 सुगंध डारि ले आई ॥ तव ललिताजीने विचार कीए जो दोउ स्वरूप  
 विराजे हैं ॥ पहले में श्रीस्वामिनीजी के हाथ में देउगी तो श्रीठाकुरजी  
 कौं पान कराव कें पान करेगी ॥ तहां मनोरथ सिद्ध न होइगो ॥ तार्ते



श्रीठाकुरजी के हाथ में देउगी ॥ तब पहले पान श्रीस्वामिनीजी करेंगी ॥ तातेँ दूध को कटोरा श्रीठाकुरजीके हाथ में दीयो ॥ तब लाडिली अच-वाय पहले पाछे आप अघात ॥ काहेतेँ इनके हाथसों वे अरोगे ॥ उनके हाथ सों चिंतामनिरूप श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजीके हृदय में हे ॥ तातेँ श्रीस्वामिनीजी के पान कीए श्रीठाकुरजी तृप्त होत हे ॥ या प्रकार ललिताजी की प्रीतिचातुर्य देखि केँ श्रीठाकुरजी मुसिकानेँ ॥ यह नवल छवि दूध पान करिवे के समय की सोभा उपर में (श्रीहरिरायजी) बलिहारी जात हों ॥ या प्रकार को भाव दामोदरदास कौं श्रीआचार्यजी महाप्रभूमें हे ॥ तातेँ न्यारी श्रीठाकुरजी की सेवा नाहि पधराई ॥ श्रीआचार्यजी महाप्रभु ठाकुर हे \* ॥ इनकी “मानसी सा परा मता” मानसी सेवा के अधिकारी हैं ॥ लीलारसमें मगन रहत हैं ॥

पाछे एक समेँ श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप व्रजमें पाउ धारें ॥ तब दामोदरदास साथ हे ॥  
**वार्ताप्रसंग १** श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप दामोदर-  
**आध्यात्मिक स्वरूप** दासकु दमला कहते ॥ ओर कहेते जो  
 (जन्म २) “दमला यह मार्ग तेरे लीये प्रगट  
 कीयो हैं” ॥ सो श्रीगोकुल में चोतरा  
 एक गोविंदघाट उपर हतो ॥ सो ता ठोर छोंकर के नीचे श्री

१ पुंरूपं च पुनस्तदंतरगतं प्रावीविशत्स्वप्रिये । ( सौ० पद्य )

\* पुंभावरूप विप्रयोगात्मक स्वरूप ( त्रिविधभावना )

२ हृदयगत धर्मी विप्रयोगरूप भावात्मक लीला “नमामि हृदये शेषे” यह भावमय लीला ।



आचार्यजी आप विश्राम करते ॥ सो ताके पास श्रीद्वारिका-  
नाथजी को मंदिर हे ॥ तहां श्रीआचार्यजी को चिंता उपजी ॥  
जो श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी हैं ॥ जो जीवन को ब्रह्मसंबंध  
करवाओ ॥ तातें श्रीआचार्यजीने विचार्यो जो जीव तो दोष  
सहित हे ॥ ओर श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तो गुननिधान हे ॥ एसे  
संबंध केसे होय ? तातें चिंता उपजी ॥ सो अत्यंत आतुर  
भए ॥ ता समें श्रीठाकुरजी तत्काल प्रगट होइके श्रीआचार्यजी  
महाप्रभु सों पूछी ॥ जो तुम चिंता-आतुर क्यों हो ? तब श्री  
आचार्यजी महाप्रभु आप कहे ॥ जो जीवको स्वरूप तो तुम  
जानत ही हो, दोषवंत हे ॥ जो तुमसो जीवन को संबंध केसे  
होइ ? तब श्रीठाकुरजी कहें जो तुम ( जा ) जीवनकू ब्रह्म-  
संबंध करो ताको हों अंगीकार करंगो ॥ तुम जीवन को नाम  
देउगे तिनके सकल दोष निवृत्त होइगे ॥ तातें तुम जीवन को  
अंगीकार करो ॥

जीवन के उद्धारिवे की चिंता भई ॥ ताको कारन यह ॥ जो

उत्तम वस्तु को अंगीकारि कराए सुख लेई ॥

श्रीहरिरायजीकृत

प्रीतम को मध्यम वस्तु दोषसहित जीव केसे

भावप्रकाशः

अंगीकार कराइए ? यह मारगकी रीति हे ॥

तथा जगत में महात्मी जीव हे ॥ जो आप

ब्रह्मसंबंध करावे तो लोक में जीवको दृढ विश्वास कोइ एक को होइ ॥

---

३ यहा श्रीआचार्यजी की बैठक हे ( ऐतिहासिकतत्त्व ) संभव हे  
यह जगह पहले द्वारकाधीशके मंदिरमें मिलि गई हो ।



तातें श्रीठाकुरजी के मुखतें ब्रह्मसंबंध की आज्ञा कराए ॥ तामें जीवनको विश्वास दृढ़ कराए जो श्रीआचार्यजी को वचन दीये हैं ॥ जाको ब्रह्म संबंध होइगो ताकों न छोड़ेंगे ॥ यह माहात्म्य तें जीव ब्रह्मसंबंध सब करेंगे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सो कहवाए ॥

ए वार्ते श्रावन सुदि एकादशी<sup>१</sup> के दिन मध्यरात्र को भई ॥ प्रातःकाल पवित्रा द्वादशी हती ॥

वार्ता प्रसंग १      तातें पवित्रा सूत को सिद्ध करी  
शुरु      राख्यो हतो ॥ सो पवित्रा ता समे के  
अक्षर हे ताको श्रीआचार्यजीने

“ सिद्धान्तरहस्य ” ग्रन्थ कीयो हे ॥<sup>२</sup>

ता समें दामोदरदास नेक दूरि सोये हते ॥ तातें दामोदरदास सो श्रीआचार्यजीने पूछी जो दमला, तें कछु सून्यो ? तब दामोदरदास नें कह्यो जो महाराज मेने श्रीठाकुरजी के बचन सुने तो सही ॥ परि समुझ्यो नाही ॥ तब श्री आचार्यजी आप कहे ॥ जो मोको श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे ॥ जो तुम जीवनको ब्रह्मसंबंध करवावो ॥ तिनको हों अंगीकार करुंगो ॥ और जीनको तुम नाम देउगे ॥ तिनके सकल दोष निवर्त्त होइगे । ताते ब्रह्मसंबंध अवश्य करना ॥

१ अथ स. १५५०ना श्रावण सुद ११ ना रेव

२ आ. प्रसंगनी सत्यताइये ग्रन्थ विद्यमान छे.

३ अड़ीं डाल पाणु दामोदरदासजी जेठ छे,



दामोदरदास ने कही मेनें श्रीठाकुरजी के वचन सुने परि समुज्यो  
 नाही ॥ ताको कारन यह जताए जो एका-  
 श्रीहरिरायजी कृत दसाव्यायमें भैगवद्गीतामें श्रीठाकुरजी के  
 भाव प्रकाश वचन हे सो अपुने पढिके समुझो चाहे सो  
 समुझे न जाई<sup>२</sup> ॥ जब गुरु कृपा करे तब  
 समुझो जाई<sup>३</sup> ॥ ताते श्रीठाकुरजी के कहेते दामोदरदास समुझे तब श्री  
 ठाकुरजीके सेवक भए ॥ ताते दामोदरदास श्रीआचार्यजी के सेवक हे ॥  
 जब श्रीआचार्यजी समजावे तब ही समुझे ॥ यह कही (यह): जताए ॥  
 जो हृदय में दृढ ज्ञान गुरुकी कृपाहितें होई ॥ स्वामी सेवक भाव  
 प्रगट दिखाए ॥ जो दामोदरदास कहे समुझे ॥ तो श्रीआचार्यजी की  
 बराबरि ज्ञान कह्यो जाई ताते कहे में समुझ्यो नाहि ॥ अथवा कहे में  
 समुझे नाहीं मेरे समुझवे को कडा प्रयोजन हे? आप कहे ताके समुझवे  
 को प्रयोजन मोकों हे ॥

(ख) ओर कथा कहेत में श्रीआचार्यजी दामोदरदास  
 वार्ताप्रसंग १ सो कहते ॥ जो दमला बडी बार भई  
 थुरु हे श्रीठाकुरजी का वार्ता नाहि करी ॥

१ न तु मां शक्यसे...ये श्लोकनो इति तार्थ—गीतामां श्रीकृष्ण उपदेशक  
 रूपे होवाथी गुरुरूपे कथा.

२ तत्स्वरूपं तु दुर्ज्ञेयं स्वसामर्थ्येन सर्वथा ॥

( श्रीहरि० कृत० मार्गस्वरूप नि० )

३ ज्ञातं तत्फलदं, तत्र हेतुस्तद्गुरुसंश्रयः ॥

( श्रीहरि० कृत० स्वमार्गभर्यादा नि० )



ताको तात्पर्य यह है जो श्रीठाकुरजी की वार्ता आपु श्रीस्वामिनी  
 रूप, दामोदरदास लिखितासखी रूप ॥ सो  
 श्रीहरिरायजी कृत लिखिता सो एकांत रहस्यवार्ता श्रीठाकुरजी  
 भाव प्रकाश के मिलन को प्रसंगा प्रथम जा प्रकार लीखा  
 करी है सो नही करी ॥ सो कसन के लिख  
 सबन के आगे ऐसे कहते ॥ (जो) कथा कहत समें ॥ श्रीठाकुरजी  
 की वार्ता नाहीं करी ॥

इति प्र. १. समाप्त.



॥ શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાના પ્રસંગોનું  
પરિશિષ્ટ રહસ્ય.

પ્રસંગ ૧ બ્રહ્મસંબંધનો:—

આ ભાવાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના પ્રભુ કૃષ્ણ પણ “રસો વૈ સઃ” એ શ્રુતિને અનુસાર ભાવાત્મક રસ રૂપજ છે. એટલે તેમના સંબંધી આ પુષ્ટિમાર્ગની સર્વ વસ્તુ ભાવરૂપ રસરૂપ જ-જાણવી. આ ભાવાત્મક સ્વરૂપનો સંબંધ પણ ભાવાત્મક જ છે. (મુખ્યો હિ બ્રહ્મસમ્બન્ધઃ, સ ભાવાત્મક एव हि) તેમજ આ પુષ્ટિમાર્ગના પ્રકટકર્તા, શ્રીકૃષ્ણના મુખ્યારવિંદરૂપ ભક્તોના અનુભવમાં આવેલા શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ પણ ભાવાત્મક જ છે. એટલે આ સમગ્ર ભક્તિમાર્ગ પણ ભાવાત્મક જ છે. (તેન ભાવાત્મકો માર્ગ:-) અતઃ આ માર્ગનાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ ભાવાત્મક શ્રીકૃષ્ણ જ છે. અને તે શ્રીગોકુલનાથજીએ આ પ્રસંગમાં સૂક્ષ્મરૂપે કહેલાં છે. (જુઓ દામોં ની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્ય.)

હવે આ પ્રસંગમાં એક શંકા થાય છે કે:—

પૂર્વપક્ષી:—જેઓ પોતાના અને બ્રહ્મના સ્વરૂપને અજ્ઞાનથી ભૂલી ગયેલા છે, અને અવિદ્યાથી દોષને પ્રાપ્ત થયા છે, એવાને માટે બ્રહ્મસંબંધની આવશ્યકતા છે એ તમારું કહેવું ઠીક છે. પરંતુ દામોદરદાસજી તો શરણે આવ્યા પહેલાં જ પોતાના અને શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક સ્વરૂપને (જન્મથી જ) જાણતા હતા. તેમજ તેઓની અંતર્દષ્ટિ હોઈ અલૌકિક ભગવત્સંબંધને પ્રાપ્ત થયેલાજ હતા. તે તેમના ભૌતિક ઇતિહાસમાં કહેલું છે. ત્યારે એમને બ્રહ્મસંબંધ લેવાની શી આવશ્યકતા? અને શ્રીઆચાર્યજીએ એમને પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કેમ કરાવ્યું?



**સિદ્ધાન્તી:**—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ આ ભાવાત્મક ભક્તિમાર્ગનું બ્રહ્મસંબંધ પણ ભાવાત્મક છે. અને આ નિર્દોષ ભાવાત્મક સંબંધમાં શૃંગારરસના આધારભૂત સ્થાયીભાવની સ્થિતિ છે. “ શૃંગાર રસસંસ્થાનં સ્થાયી ભાવઃ પ્રભુર્મતઃ । ” માટે આ બ્રહ્મસંબંધ તે સ્થાયીભાવના આલંબન ભાવરૂપ જાણવું. પુષ્ટિમાર્ગમાં જે શ્રીકૃષ્ણ તત્ત્વરૂપે છે, તે રસરૂપ કહેવાય છે. “ રસો વૈ સઃ ” इति श्रुत्या रसात्मा स विनिरूपितः ॥ અને તે સ્વામિનીજીના હૃદયમાં સ્થિત સ્થાયી ભાવાત્મક પ્રભુ કૃષ્ણ છે. “ तदेकहृदयस्थायी तद्भावः कृष्ण एव हि ” અને તે રસાત્મક કૃષ્ણની સેવાજી પુષ્ટિમાર્ગમાં છે, તે સેવાનો અધિકાર બ્રહ્મસંબંધદ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે આ બ્રહ્મસંબંધ તે રસાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ પ્રભુનો આલંબન ભાવ જાણવો. આલંબન વિના રસની સ્થિતિ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યજીએ બ્રહ્મસંબંધ રૂપી આલંબન દ્વારા સમગ્ર દૈવી જીવોના આધિદૈવિક મૂલભૂત દામોદર-દાસજીના હૃદયમાં પ્રમાણુ તરીકે ભાવાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ રસાત્મા પ્રભુને સ્થાપ્યા.

આ પ્રકારે દામોદરદાસજીના હૃદયમાં સર્વ પ્રથમ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના ભાવાત્મક સ્વરૂપની સ્થિતિ કરી અને તેમની દ્વારા સમગ્ર પુષ્ટિસૃષ્ટિમાં રસરૂપ સ્થાયી ભાવ કૃષ્ણની સ્થાપનાર્થ તેમને સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કરાવવાનું કોઈ પ્રયોજન રહેતું નથી જ.

આ પ્રસંગમાં ( બ્રહ્મસંબંધના ) શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીઆચાર્યજીના વલ્લભ ( લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ ) સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. અને તેના રહસ્યનું સૂક્ષ્મસ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ. “ प्रीतमको मध्यम वस्तु दोषसहित जीव केसें अंगिकारि कराइये. ” આ શબ્દોમાં સમજાવ્યું છે.

આ દાસ્યરૂપ સ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા શેષ માહાત્મ્ય રૂપે ઓળખાવે છે, અને તે આ પ્રમાણે:—



ફલપ્રકરણમાં ભગવાને ગોપીજનોને કહ્યું કે, ‘ ન પારયેહં નિર-  
 વચ સંયુજાં સ્વસાધુકૃત્યં વિવુધાયુષાપિ વઃ ’ દેવતાની આયુષ્ય  
 લઈને તમારું ભજન કરીએ તો પણ પાર  
 શ્રીઆચાર્યજીનું શેષ ન આવે. આ શ્રીમુખથી આજ્ઞા કરી, પરંતુ  
 માહાત્મ્ય સ્વરૂપ. કૃતિમાં ન આવી. શ્રીમુખથી કહ્યું માટે  
 શ્રીમુખાવતારનું પ્રાકટ્ય થાય ત્યારેજ વચ-  
 નનું પ્રતિપાલન થાય. માટે શ્રીમુખાવતાર શ્રીવલ્લભાધીશે પ્રગટ થઈ  
 સેવા કરી. સેવાના અધિકારી તો વ્રજભક્તો છે, માટે તેમના ભાવનું  
 અનુસરણ કર્યું. ( સેવારીત પ્રીત વ્રજજનકો જનહિત જગ પ્રગટાર્દ )  
 આ પ્રકારે દાસ્યભાવ કર્યો. તેથી આપ આજ્ઞા કરે છે કે, ‘ ઇતિ  
 શ્રીકૃષ્ણદાસસ્ય વલ્લભસ્ય હિતં વચઃ ॥ અહિં સેવા તે શ્રીગોપી-  
 જનોના હૃદયસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપ કૃષ્ણ ( શ્રીગોપીજનવલ્લભ ) ની  
 માટે “ કૃષ્ણસેવા સદા કાર્યા ” એમ આજ્ઞા કરી છે.

આ શેષ ભાવનો અનુભવ (આપ) “ નમામિ હૃદયે શેષે ”  
 એ વાક્યમાં કરે છે.

આ સ્વરૂપની કૃપાજ પુષ્ટિમાર્ગમાં ફલરૂપ છે, અને તે અત્યંત  
 દુર્લભ છે.

શ્રીઆચાર્યજી તૃતીય સ્વરૂપે ( રૂપં તત્ત્રિતયાત્મકં ) જેમ  
 લીલાના મધ્યપાતી છે. તેમ ભૂતલમાં પણ વલ્લભસ્વરૂપે દૈવી જીવોના  
 સમુદ્ધારક છે.

જેમને અલૌકિક આભરણ હોય તેજ ઉદ્ધારક થઈ શકે—તે  
 અલૌકિક આભરણ ( “ હિયેં હાર વિનુ ડોર ” એ દૃષ્ટાંતરૂપ )  
 શ્રીઆચાર્યજીમાં સૂચન કરવાને અર્થે શ્રીગુસાંઈજીએ આપનું નામ સર્વો-  
 ત્તમમાં “ અપ્રાકૃતાશિલાકલ્પભૂષિતઃ ” એમ યોજ્યું છે. તેમજ



સમશ્લોકીમાં “ શ્રીભાગવતપ્રતિપદમણિવરભાવાંશુભૂષિતા  
મૂર્તિઃ ” એમ કહેલું છે.

આ પ્રકારે લીલાસંપાદનકર્તાએ જીવેના ઉદ્ધાર કર્તા દાસ્યરૂપ  
શ્રીવલ્લભનું સ્વરૂપ આ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં નિરૂપ્યું છે.

ઓર શ્રીઆચાર્યજીને શ્રીઠાકુરજીકી પાસ ત્રીન વાર યહ  
વાર્તા પ્રસંગ ૨ માંગ્યો ॥ જો મેરે આગે દામોદરદાસ  
કી દેહ ન છુટે ॥ તાકો હેતુ યહ હે  
જો શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભૂ આપ સંન્યાસ ગ્રહણ કરિવેકો વિચાર  
મનમેં કરે ॥ તા સમેં શ્રીગોપીનાથજી તથા શ્રીગુસાંઈજી દોઝ  
ભાઈ બાલક હતે ॥ તાતેં માર્ગકી વાર્તા શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુ  
દામોદરદાસકો સમજાઈકે થાપી ॥ દામોદરદાસ સોં કહુ ગોપ્ય  
ન રાખ્યો ॥ ઓર શ્રીઆચાર્યજી શ્રીભાગવત અહર્નિશ દેસતે,  
કથા કહતે ઓર દામોદરદાસ સુનતે ॥ ઓર માર્ગકો સર્વ  
સિદ્ધાંત ભગવદ્લીલારહસ્ય શ્રીઆચાર્યજીને દામોદરદાસકે  
હૃદય વિષે સ્થાપ્યો ॥ દામોદરદાસકે હૃદે વિષે માર્ગ સ્થાપિ  
કેતેક દિન પાછે શ્રીઆચાર્યજી આપ સંન્યાસ ગ્રહણ કીયો ॥ તબ  
કેતેક દિન પાછે શ્રીગુસાંઈજીને શ્રીઅક્ષાજીસોં પૂછી ॥ જો  
આચાર્યજીને માર્ગ પ્રકટ કીયો હે સો ઉચ્છવકો કહા પ્રકાર

૧ અહીં શૃંગારરસનો સ્થાયી ભાવ જણાવ્યો છે. અહીં આ  
વાક્યનું અનુસંધાન કરે:-દમલા પ્રભુદાસ બડભાગી તાકો પુનિ પુનિ  
આપ સિખાવે ॥



हे ॥ हम तो कछु जानत नाही ॥ तब श्रीअक्काजीने कह्यो ॥  
जो मारग तथा उत्सव को प्रकार सब दामोदरदास सों कहे  
हे ॥ सो उनसों तुम पूछो ॥ तुमसों दामोदरदास सब कहेंगे ॥  
तब श्रीगुसांईजी दामोदरदास के घर पधारे ॥ तब दामोदर-  
दासने बहुत सन्मान करी भक्तिभावसों घरमें पधराए ॥ ता  
पाछे श्रीगुसांईजीने उच्छव के प्रकार पूछे ॥ सो दामोदरदा-  
सने कहें<sup>१</sup> ॥

यामें संदेह बहोत हे ॥ जो श्रीआचार्यजी कर्तु, अकर्तु अन्यथा  
कर्तु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे ॥ सो श्रीठाकुरजी  
श्रीहरिरायजी कृत पास क्यों मांगे ? ताको अभिप्राय यह हैं  
भावप्रकाश जो दामोदरदास कों प्रेमलक्षणा भक्ति दृढ  
होई चुकि हैं ॥ ओर ललिताजी को स्वरूप  
हे ॥ सो श्रीठाकुरजी कों परमप्रिय हे ॥ सो ललिताजी मध्याजी हे ॥  
दोउ स्वरूप की सेवा में मगन हे ॥ सो श्रीआचार्यजी के दर्शन ओर  
श्रीठाकुरजीके दर्शन दोउ में भाव हे ॥ जातें श्रीआचार्यजी श्रीठाकुरजी  
सों कहे जो में दामोदरदास कों जैसे नित्य अनुभव करावत हों तेसैं  
तुमहू नित्य अपने स्वरूप कों अनुभव कराईयो ॥ यह कहिके यह  
जताए जो दामोदरदास पर अत्यंत प्रीति श्रीआचार्यजी की हैं ॥ तातें  
जाने जो मति कहूं मेरे पाछे दमला कोई बात सों दुख पावे ॥ तातें  
श्रीठाकुरजी सों कहे ॥



ओर मारग दामोदरदासके हृदयमें स्थापन किये (सो) श्रीगुसांईजी के लिए ॥ ताको तात्पर्य यह हे जो यद्यपि श्रीगुसांईजी ईश्वर हे, बालक हैं, तो कहा भयो ? परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपुनो भक्तिमारग दामोदरदास के हृदयमें स्थापन करते ॥ आपु श्रीमुखतें कहतें “ यह मारग दमला तेरे लिए प्रगट कियो हे ” तातें वैष्णवके हृदयमें स्थापन करे तो आगे वैष्णव में फेले ॥ जो श्रीगुसांईजीके हृदय में प्रथम धर्म रहे ॥ तो गोकुलमें हि धर्म रहतो ॥ गोकुलमें तो पहलेंहीसों शेष अशेष माहात्म्य धारन कीए हैं ॥ काहेतें विंदुसृष्टि हे । ओर वैष्णव सो तो नादसृष्टि हे ॥ तातें इनकों तो भक्ति दिये तें होई ॥ तातें गोपालदास गाये हैं ॥ “भक्तिमारगीय जीव स्वतंतर केवल भक्त न थाय” ॥ तातें भक्तिमार्गीय जीव स्वतंत्र हे ॥ दैवी ॥ परंतु केवल आपतें भक्ति न बढे ॥ तातें श्रीआचार्यजी नवरत्न में कहे हैं ॥ “निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैरपि” या प्रकार भक्तनके हृदयमें राखें<sup>१</sup> ॥ तातें भक्तिमारग प्रकट भयो ॥ नहिं तो ईश्वरमारग कहावतो ॥ (तहां केवल) ईश्वरमारग कहावें ॥ भक्तिमारगमें ईश्वर हू मारग कहावे ॥ जहां भक्ति तहां भगवान ॥ जहां भक्ति नाहि तहां भक्तिमारगकी रीति सों भगवान न रहें ॥ अंतर-जामी ँहे आप रहे ॥ तातें भक्तनको उत्कर्ष जामें होई सो भक्तिमारग कहावें ॥

॥ इति ॥ प्रसंग २ समाप्त ॥

१ कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते ॥ दामोदरदासभां  
या प्रकारनी स्वतन्त्र भक्ति स्थापी.



## પ્રસંગનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય:—

આ પ્રસંગમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ આચાર્યસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપક ભક્તિરૂપ કમલના સૂર્ય શ્રીકૃષ્ણની સેવારૂપ કર્મના પ્રવર્તક, શ્રીકૃષ્ણરૂપ જ્ઞાનના દેવાવાળા-ગુરુરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ છે. આપ પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપનકર્તા હોઈ તે માર્ગની રક્ષાના અર્થે તેમજ પુષ્ટિમાર્ગના કર્મરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સેવાની ઉત્સવપ્રણાલી આદિની રક્ષાને અર્થે શ્રીઠાકુરજી પાસે દામોદરદાસની સ્થિતિ માગી.

ત્રણવાર માગવાનું કારણ એ કે જે વાત ત્રણવાર કહેવામાં આવે તે લોકમાં પણ પ્રમાણરૂપ થાય છે. બીજું, મન વાણી અને ક્રિયા એમ ત્રણે પ્રકારે દામોદરદાસને અનુભવ કરાવવાનો શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીઠાકુરજીને સંકેત કર્યો. જેથી સંયોગરસનું દાન થવાથી દેહ ટકી રહે એ મૂળ હેતુ છે.

આચાર્યસ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા અશેષ માહાત્મ્યસ્વરૂપે ઓળખાવે છે તે આ પ્રકારે:—

પ્રભુએ પોતાના નિજમાહાત્મ્યને દૈવીજનો પ્રતિ ભૂતલમાં પ્રકટ કરવાના અર્થે નિજ મુખારવિંદરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણને ત્રણ પ્રકારે પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી.

- ૧ સન્મનુષ્યાકૃતિરૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી સુંદર સ્વરૂપ નિરખીને દૈવી જીવો પ્રેમપૂર્વક શરણ આવે.
- ૨ અતિકરુણાવંત રૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી દોષવંત જીવો નિકટ આવી ઉપદેશ લઈ શકે.
- ૩ હુતાશરૂપે પ્રકટ થાવ જેથી શરણે આવેલા જીવોના પાપપુંજનો દાહ સહજે થઈ જાય.

આ ત્રણ પ્રકારનું જનઉદ્ધરણરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ તે અશેષ માહાત્મ્યરૂપ જાણવું.

આ અશેષ માહાત્મ્યનું સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ સકલ બાલકત્વાવચ્છિન્ન વિષે ભૂમિમાં ભક્તિરૂપી ભગવન્માહાત્મ્યના પ્રચારાર્થે સ્થાપન કર્યું છે.



बहुरी एक समय दामोदरदास ओर श्रीगुसांईजी एकांतमें  
 बैठे हते ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदर-  
 वार्ता प्रसंग ३ दाससों पूछे ॥ जो तुम श्रीआचार्यजी  
 को कहा कार के जानत हो ? तब  
 दामोदरदासने कह्यो जो हम तो श्रीआचार्यजी महाप्रभून को  
 जगदीस सो संसार में सब कोऊ कहत हैं जो सबतें बडे जग-  
 दीस श्रीठाकुरजी हैं, तिनतें अधिक करि जानत हैं ॥ तब  
 श्रीगुसांईजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो तुम ऐसे क्यों कहत  
 हो ! जो, श्रीठाकुरजी तें बडे हे ? तब दामोदरदास नें श्रीगुसां-  
 ईजीसों कह्यो जो महाराज, दान बडो के दाता बडो ? काहुके  
 पास धन बहोत हैं तो कहा करे ? देई ताको जानिये ॥ ओर  
 श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको सर्वस्व धन श्रीनाथजी हे ॥ सो  
 हम जेसे जीवनको आपु दान कीयो हैं ॥ तातें हम श्रीआचा-  
 र्यजी को सर्व ते बडे करि जानत हैं ॥<sup>१</sup>

इति वार्ता प्र. ३ समाप्त ॥

---

१ अहिं श्रीआचार्यजना सुधास्वरूपतुं प्रतिपादन छे. देहभाव  
 रहित पुरुषाकार सुधानुं स्वरूप आ प्रमाणे समजवुं:-ज्यां देह अने  
 आत्मा भिन्न नथी देह ओज आत्मा छे अने आत्मा ओज देह छे.  
 दृष्टांत रूपे:-सिद्ध गवैयाओ द्वारा तादृश थतुं साकार रागनुं स्वरूप.  
 आवी न रीते आ सुधा भावात्मक साकाररूप छे. ते साकारपणुमां  
 देहभाव नथी तेथी ते निर्गुण छे अने ते पुरुषार्थरूप होवाथी पुरु-



बहुरी एक समय श्रीगुसांईजी बैठक म बैठे हते ॥  
 द्वे चार वैष्णव कुंभनदास गोविंददास  
 वार्ता प्रसंग ४ आदि एकांत हसिवे खेलिवे के लिये  
 पास बैठे हते ॥ आपु उनसों हँसत  
 खेलत मसकरी करत बहुत ही प्रसन्नता में खेल की वार्ता  
 करत हते ॥ ता समें दामोदरदास तहाँ आए ॥ तब श्रीगुसां-  
 ईजी बहुत आदर सन्मान कीए ॥ पाछें दामोदरदास तहाँ  
 आय के दंडवत करि के बैठे ॥ तब श्रीगुसांईजी सों दामोदर-  
 दासने कह्यो जो महाराज, अपनो मारग निश्चितताको नाहि ॥  
 यह मार्ग हैं सो तो अत्यंत कष्ट आतुरता को हे, दुःख को हे ॥  
 तब श्रीगुसांईजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ साँची कहत हो ॥  
 परि हम को जब श्रीआचार्यजीकी कृपा होइगी तब कष्ट आतु-  
 रता होइगी ॥ यह मार्ग तो श्रीआचार्यजी के अनुग्रह बिना  
 ना होई ॥

तब दामोदरदास दंडवत कीए ओर कहें जो हमको  
 राजसों एकबेर बीनती करनी सो करी ॥ पाछे आप प्रभू हो  
 भली जानोगे सो करोगे ॥ परि यह मारग तो या भांतिको  
 हे ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भए ओर कहें जो हमको

---

पाठार छे. जेभ देहमां वीर्य तेभ आनंदमां सारभूत आ सुधा ज्ञानुपी.  
 आनंदरूप श्रीठाकुरजीनुं आधिदैविक स्वरूप सुधा होवाथी श्रीठाकुरजी  
 करतां श्रीआचार्यजी (सुधारूप) ने मोटा कछा. अने ते दोकरीतिना  
 दृष्टांतद्वारा सिद्ध कर्युं. आ प्रसंगमां शृंगाररसने स्थायी रतिभाव ज्ञानुवे.



यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे ॥ जो तुम न कहोगे तो ओर कोन कहेंगे ? तुम को देखत हैं तब चित्त अतिप्रसन्न होत है तातें सुखेन कहो ॥ आप सरिखे श्रीआचार्यजी के सेवक जानिके कहत हैं ॥ पाछें दामोदरदास की शिक्षा अंगिकारि करत भये ॥ तातें बडे सो बडे ॥

यह लोकरीति सो विरुद्ध है ॥ जो सेवक स्वामीसों शिक्षा करें ॥ यह संदेह होय तहां कहत है दामोदरदास ललितारूप है ॥

श्रीहरिरायजी कृत  
भावप्रकाश  
सो श्रीचंद्रावलीजी कों ( श्रीगुसांईजी ) पर-  
कीयारसभाव है ॥ परकीयारस में प्रीति बहोत  
हैं, अष्टप्रहर चित्त प्यारे सो लग्यो रहत है ॥  
सो जारभाव को प्रकार दिखाये ॥ जो ओर  
के संग हांसी केसी ?

( दूसरो हेतु ) तथा दामोदरदास की देह मात्र दीसत है परंतु श्रीआचार्यजी को आवेश अष्ट प्रहर रहत है ॥ जो मुख सो श्रीआचार्यजी बोलत हैं ॥ तातें श्रीगुसांईजी कहत हैं ॥ जो हमकों यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे ॥\*

इति प्र. ४. समाप्त.

---

\* शुद्धपुष्टिभक्तोनुं स्वरूप साक्षात् भगवान्नी समान ७  
अधी प्रकारे होय छे. ७७०:—

१ स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।

तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥ (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)



૨ સેવકઃ સેવ્યં ચાદશરૂપં પશ્યતિ સ્વસ્યાપિ તાદૃશં રૂપં સંપાદ-  
યતિ । ( ૧-૨-૨૩ )

આ શ્રીહરિરાયજીકૃત ભાવપ્રકાશનું મૂળ શ્રીહરિંકૃત સ્વમા-  
ર્ગીયસેવાફલનિં માં છે. જુઓ:—

एवमेव हि तद्भक्तेः स्वातन्त्र्यं नान्यथा भवेत् ॥ ५ ॥ त्यांથી ચત્તો  
ભગવતા પ્રોક્ત...ત્યાં સુધી (૧૦૩) ના શ્લોકોનો આ ફલિતાર્થ સમજવો.  
તે શ્લોકોમાં બતાવેલી રાસસ્ત્રીઓની સ્વતંત્રભક્તિ શ્રીઆચાર્યજીએ  
નિજ સેવકોમાં સ્થાપી છે—તેથી શ્રીઆચાર્યજીના સેવકોમાં મુખ્ય  
દામોદરદાસ આદિ સ્વતંત્ર ભક્તો છે અને તેમના અર્થે જ સમર્પણની  
આજ્ઞા અને પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રાકટ્ય છે. એવા શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તોમાં શ્રીમ-  
હાપ્રભુજીનો આવેશ નિત્ય હોવાથી શ્રીગુસાંઈજીએ પણ આજ્ઞા કરી કે  
“... હમણેંમં યહ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભૂ તુમ દ્વારા કહે ” ( વાર્તા-  
મ્પ્રાગસ્તાસ્યતઃ ॥ ( સંસ્કૃત વાર્તા ) તેજ વાતની પુષ્ટિને અર્થે શ્રીહરિ-  
રાયજી સ્વમાર્ગીયસેવાફલનિં ના ૧૧ માં શ્લોકમાં આ પ્રકારે આજ્ઞા  
કરે છે કે:—શ્રીમત્પ્રભોસ્તુ તદાનમાચાર્યેભ્યો ન સંશયઃ ॥ શ્રીગુસાંઈજીને  
જે ભાવપ્રાપ્તિ ( સ્વતંત્રભક્તિ ) થઈ, તે અસ્મદાચાર્યવર્ય શ્રીમદ્  
વલ્લભાધીશદ્વારાજ થઈ, તેમાં કશો શક નથી. માટે જ શ્રીહરિરાયજી-  
એ અહીં ભાવપ્રકાશમાં કહ્યું છે કે દામોદરદાસ કી દેહ માત્ર દીક્ષત  
હે ॥ પરંતુ શ્રીઆચાર્યજી કો આવેશ અષ્ટપ્રહર રહત હે ॥ જો મુખતેં  
શ્રીઆચાર્યજી બોલે હે ॥ આ પ્રમાણે શ્રીહરિરાયજીના સંસ્કૃત ગ્રંથો  
શ્રીહરિરાયજીએ વ્રજભાષામાં કરેલા આ ભાવપ્રકાશ સાથે સર્વ  
સંમત રૂપે હોવાથી આ ભાવપ્રકાશની પ્રામાણિકતા પણ સિદ્ધ થાય  
છે. શું આવાં રહસ્યો અને અંતરંગી પ્રકારો લીખીયાઓ સમજી શકે ?

આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભક્તહૃદયસ્થિત વિપ્રયોગાત્મ-  
કૃષ્ણાસ્ય સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સંચારી  
ભાવ કહ્યો છે.



(क) ओर एक दिन दामोदरदास के पिता को श्राद्ध दिन हतो ॥ ता दिन श्रीगुसांईजी तहां चार्ता प्रसंग ५ पधारे ॥ बाके पिता को श्राद्ध करवायो ॥ पाछें उत्थापन के समें दामोदरदास दरसनकों आए ॥ तब श्रीगुसांईजी ने कही ॥ जो मोक्कूँ श्राद्ध की दक्षिणा देउ ॥ तब दामोदरदास ने कही जो दक्षिणा में एक बात कहूंगो ॥ सो सिद्धान्तरहस्य के डेढ श्लोक को व्याख्यान कहे ॥ यह एसी बात हे ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे जो आगे कहो ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मेने तो इतना संकल्प कीयो हे ॥ तब श्रीगुसांईजी चुप करि रहें ॥ पाछें दामोदरदासने मारग की प्रणालिका कही ॥ ॥ श्रीभागवतकी टीका श्रीसुबोधिनीजी श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके ग्रन्थनकी टीका ओर रहस्यवार्ता श्रीगुसांईजीकी आगे सब कहें ॥

(ख) ता पाछें श्रीगुसांईजी दामोदरदास को नमस्कार करन न देते ॥ यातें जो श्रीगुसांईजी अपने मनमें यों विचारे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदास के हृदे विषे (सदा) सर्वदा बसत हैं ॥ तो इन पास क्यों नमस्कार करन दीजे ? यातें नमस्कार न करन देते ॥ ओर दामोदरदासको श्रीगुसांईजी अपनो चरणोदक हू न देते ॥

पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने दामोदरदासको दरशन



दीनो ओर आज्ञा दीनी जो तू श्रीगुसांईजीको चरणोदक नित्य लीजियो ॥ तब प्रातःकाल दामोदरदास श्रीगुसांईजी के पास आए ॥ चरणोदक माग्यो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदककी नहीं कीनी ॥ तब दामोदरदासने श्रीगुसांईजी से कह्यो जो मोकों श्रीआचार्यजीकी आज्ञा भई हे ओर श्रीआचार्यजी को दर्शन भयो हे ॥ ओर कह्यो हैं जो चरणोदक लीजियो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदक दीनो ॥

(क) श्राद्ध करायवेको अभिप्राय यह (हे) जो दामोदरदास के पितरन को उद्धार तो होइ चुक्यो ॥ जब ए भक्त में (हे) ॥ मर्यादा-

मार्ग में नृसिंहजीने प्रह्लाद से कह्यो हैं<sup>१</sup>

श्रीहरिरायजी कृत एकीस पुरुषा भक्त के तरे ॥ सो दामोदर-

भावप्रकाश दास तो पुष्टिमार्गीय हे ॥ तातें इनके पितर

तरे यामें कहा संदेह हे ? परंतु पुष्टिमार्ग

के संबंध बिना पुष्टिमार्ग में अंगीकार न होई ॥ तातें श्रीगुसांईजी को

संबंध श्राद्धद्वारा पाय पुष्टिमार्ग में अंगीकार भयो ॥ जो दामोदरदास

के श्राद्ध तें पुष्टिमार्गमें अंगीकार होई ॥ परंतु गुरुकी अपेक्षा हे ॥ गुरु

बिना अंगीकार में दृढ अंगीकार नाहि ॥ तातें श्रीगुसांईजीको संबंध

कराए ॥

तहां यह संदेह होय जो दामोदरदासको श्राद्ध कराए ॥ इनके

१ त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।

यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ श्री. भा. ७-१०-१८



पितरन को पुष्टिको संबंध भयो ॥ और भगवदीय को नाहिं कराए ॥  
 सो उनके पितरनको कैसें होइगो ? यह संदेह होय तहां कहत हे ॥  
 यह पुष्टिमार्गीय दैवी जीव के आधिदैविक (मूलभूत) दामोदरदास हे ॥  
 जहां इनके पितरन को पुष्टिसंबंध भयो तब सगरे पुष्टिमार्गीयके  
 पितरनको पुष्टिसंबंध भयो ॥ जैसे मारग, दामोदरदास के पितरन को  
 पुष्टिसंबंध (भयो) एसे मारग दामोदरदास के लिए ॥ तामें सगरे  
 पुष्टिमारग के (जीवन के) लिए ॥ या प्रकार मूलमें भक्ति ता करि के  
 सबमें फेले ॥ या प्रकार दामोदरदासकी भक्ति करि के जीवमें भक्ति  
 बढि हैं ॥ जीवको सामर्थ्य नाहिं हैं ॥ जो पुष्टिमारगकी भक्ति एक  
 छिन करि शके ॥

ओर दक्षिणामें दामोदरदासने सिद्धांतरहस्य के डेढ श्लोक को  
 व्याख्यान कियो ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे आगे कहो ॥ तब  
 दामोदरदासने कही जो मैंने तो इतनो (ही) संकल्प कीयो हे ॥  
 ताको कारन यह हे जो सत्यसंकल्प (तो) इतनेही में सगरो  
 मारग हे ॥

(ख) श्रीगुसांईजी चरणोदक दामोदरदास को न देते दंडोत करन  
 न देते ॥ सो यातें जो श्रीस्वामिनीजीकी अनन्य सखी हे ॥ उनही को  
 करे ॥ तातें दामोदरदासने हठ नाहिं कीयो ॥ पहले चरणोदक न  
 लीयो ॥ तातें श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदास को समझायो ॥ जो तूं  
 श्रीगुसांईजी को चरणोदक लिजीयो ॥ दंडोत करियो में श्रीगुसांईजी के  
 हृदय में बिराजत हूं ॥ मेरो स्वरूप मोतें प्रगटे हे ॥ तब दामोदरदास



શ્રીગુસાંઈજીસેંં યહ મેદ કહે' ॥ તવ શ્રીગુસાંઈજી કહે લેહૂ ॥ પ્રસન્ન  
હોફકે ચરણોદક દીયે ॥ જાને જો શ્રીઆચાર્યજી કે માવતેંં લેત હેં ॥  
મેરે માવતેંં નાંહિ ॥

યાહી તેંં શ્રીગોપીનાથજી યદ્યપિ ( શ્રીઆચાર્યજી કે બડે પુત્ર )  
શ્રીગુસાંઈજી કે બડે માઈ હે ॥ પરંતુ કાહૂ વૈષ્ણવને ચરણોદક નાંહિ  
લિયો ॥ યા માવતેંં શ્રીગુસાંઈજી કે સાત બાલક ઓર વલ્લભકુલકે  
ચરણોદકમેંં શ્રીઆચાર્યજીકો માવ જનાયો ॥ તાતેંં ચરણોદક લેનો ॥  
દંડોત કરનો ॥ યહ સિદ્ધાંત જનાયો ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

૧ મેદ શબ્દથી લીલાના પ્રાકટ્યનો ભેદ સમજવો. “ સંવાદ ”  
માં દામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઈજીને આ પ્રકાર સમજાવ્યો છે. તેનો  
ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છે : ત્યારે દામોદરદાસ શ્રીગુસાંઈજીના ચરણમાં  
પડ્યા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજીએ તેમને શ્રીહસ્તથી ઉદાસી અને પોતાને  
નમન આદિ ન કરવાની આજ્ઞા કરી. ત્યારે દામોદરદાસજીએ આ  
ભેદ કહ્યો કે:-લીલામાં મારું પ્રાકટ્ય આપથી જ છે. ( લલિતાજીનું  
પ્રાકટ્ય ચંદ્રાવલીજીથી જ છે. ) આ અર્થ અહિં ન લખ્યો તો શ્રીગો-  
પીનાથજી પણ શ્રીઆચાર્યજીના પુત્ર હતા. તેથી તેમનું ચરણોદક  
લેવામાં કશો વાંધો ન જ હોય. પરંતુ જે ભગવદ્ભક્તોને મૂલ લીલાનું  
જ્ઞાન અને પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેઓની સર્વ ક્રિયા વાણી  
અને ભાવના પોતાના મૂલ સ્વરૂપ રૂપે જ સ્થિત રહે છે અને તે  
મૂલ સંબંધથી જ તે સર્વ કાર્ય અહીં પણ તે પ્રમાણે કરે છે. શ્રીગો-  
નાથજીનું મૂલ સ્વરૂપ ળીલામાં બલદેવજીનું છે. “ બલદેવ શ્રીગોપીનાથ



ओर दामोदरदास को श्रीआचार्यजी तीसरे दिन दरसन देते ॥ मारग की रहस्यवार्ता कहते ॥  
 वार्ता प्रसंग ६ एसी कृपा करते ॥ ओर कदाचित तीसरे दिन दरशन न होतो तो ता दिन दामोदरदास के पेट में पीडा बहुत होती, अत्यंत कष्ट पावते ॥ ओर पाछे दरसन होतो तब तत्काल कष्ट निवर्त्त होई जातो ॥ एसी भांति केतेक वर्षपर्यंत श्रीआचार्यजी दरशन दीनो एसी कृपा करते ॥ जो बात होती सो सब दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आगे कहते ॥ ओर मारग के प्रकार ( प्रकाश ? ) की वार्ता अहर्निश करते ॥ श्रीगुसांईजी दामोदरदास की उपर बहोत कृपा करते ओर कहते जो दामोदरदास के हृदयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभू सदा विराजे हे ॥

---

કહીએ ” ( વલ્લભાખ્યાન ) માટે તે મર્યાદાપુષ્ટિ છે. જ્યારે શ્રી આચાર્યજીના સેવકાનાં સ્વરૂપ નિર્ગુણ આધિદૈવિક ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીગોપીનાથજીની ભક્તિ તેમને અનુકૂલ હોય જ નહિ તે સહજ છે. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો ઉદ્દીપન ભાવ કહેલો છે.

सर्वात्मभावसाध्यो हि स्वरूपानन्द उच्यते । ( श्रीहरि० ) सर्वात्म-  
 भावથી પ્રાપ્ત થતો આનંદ તે સ્વરૂપાનંદ કહેવાય છે.  
 सर्वात्मभावनी व्याख्या:—

‘ अहं भगवतः सर्व ’ इति सर्वात्मभावनम् । ( श्रीहरि० ) હું સમગ્ર પ્રભુનો એનું નામ સર્વાત્મભાવ. વધુ સર્વાત્મભાવ સમજવા માટે જુઓ  
 “ વાર્તારહસ્ય ”



દામોદરદાસ કોં તિસરે દિન શ્રીઆચાર્યજી દરશન દેતેં ॥ તાકો  
 શ્રીહરિરાયજી કૃત હેતુ યહ જો તિન દિન લોં દરસનકો આવેસ  
 ભાવપ્રકાશ તામેં મગન રહતે ॥ તિસરે દિન સરીર કી  
 સુધિ હોતી ॥ સો વિરહ કષ્ટ હોતો ॥ સો દરશન કરિ ફેરિ સ્વરૂપા-  
 નંદમેં મગન હોઈ જાતેં ॥

इति प्र. ६ समाप्त.

ओर पहले दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आधी गादी दाबि  
 के बैठते<sup>१</sup> ॥ सो एक दिन श्रीआचा-  
 वार्ता प्रसंग ७ र्यजी महाप्रभूने देख्यो ॥ तब श्रीआ-  
 चार्यजी ने दामोदरदाससों पूछी जो  
 दमला, तु श्रीगुसांईजी को कहा करिके जानत हे ? तब दामो-  
 दरदासने कही जो महाराज, हों तो इनकों तुमारे पुत्र करिके :

૧ આ પ્રસંગ લગભગ સંવત ૧૫૮૦ ના અરસામાં બનેલો છે. જ્યારે શ્રીગુસાંઈજી આઠ વર્ષના હતા. અહિં ગાદી દાબીને બેસતા એવા શબ્દો છે. પ્રાચીન તમામ હસ્તલિખિત પુસ્તકોમાં આજ શબ્દો જોવામાં આવે છે. તેનો ગુજરાતી અનુવાદ કરનારાઓએ “અડધી ગાદી ઉપર બેસતા.” એમ અર્થ કયો છે, તે અત્યંત ભ્રમોત્પાદક છે. દાખલો શબ્દ વાળવાના અર્થનો દ્યોતક છે. સારાંશ એ છે કે દામોદરદાસજી શ્રીગુસાંઈજીની અડધી ગાદી વાળીને પાસે બેસતા (આજ પણ કેટલાક બાલકોને ત્યાં તેમના પિતાના પ્રાચીન સેવકોને એ પ્રમાણે કવચિત્ બેસતા જોવામાં આવે છે. પરંતુ તેમ કરવું તે ઉચિત નથી. તે કૃતિમાં માહાત્મ્યજ્ઞાનનું વિસ્મરણ હોવાથી.



જાનત હું ॥ તવ શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભૂ દામોદરદાસ સોં કહે  
જો જેસેં તું મોકોં જાનત હે । તેસેં इनको स्वरूप जानियो<sup>२</sup> ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

एक समें श्रीगुसांईजी बैठे हैं ॥ तब दामोदरदास ने कही ॥

महाराज, अपना मारग निसंगता को  
वार्ता प्रसंग ८ नांही ॥ रूप प्रगट कर्ता ( हे ) ॥

( ओर कही जो ) एक समें श्रीमहा-  
प्रभुजी पोढे हते ॥ तब श्रीगोवर्धननाथजी आप कहे जो जीव  
को उद्धार करो ॥ लीलाकर्त्ता अवलंबन सुद्धि करता उद्दीपन  
भाव या प्रकार डेढ श्लोक कहे ॥

ત્યાં લોકવત્ સ્નેહ થઈ જવાથી ભાવની હાનિ થાય છે ) યદ્યપિ  
લોક અને વેદથી દામોદરદાસજીનું આ પ્રકારે ખેસવું વિરુદ્ધ નથી.  
તો પણ દાસ્યભાવને જણાવવાને અર્થે જ શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને  
ટાક્યા. લોકમાં પિતાના મુખ્ય માનનીય સેવક પુત્રની બરોબરનું  
માન પ્રાપ્ત કરી શકે છે. તે રાજદ્વારમાં પણ દેખાય છે. તેમજ વેદથી  
પણ પદ શિષ્ય અને પુત્રનો એક સમાન અધિકાર છે. શિષ્યને પુત્ર  
વત્ જ કહેલો છે—પરંતુ અહિં તો સ્વવંશમાં પણ શ્રીઆચાર્યજી જ  
બિરાજતા હોઈ શ્રીઆચાર્યજીની સમાન જ દાસ્યભાવનું અનુકરણ કરવું  
જોઈએ. અન્યથા દાસ્યભાવમાં ત્રુટિ પ્રાપ્ત થાય. યદ્યપિ દામોદરદાસજીને  
આ કાર્ય બાધકરૂપ ન હતું છતાં પણ દામોદરદાસજી દ્વારા સર્વે  
દૈવી જીવો પ્રતિ શ્રીઆચાર્યજીએ આ શિક્ષા કરી છે—દામોદરદાસજી  
—તો શ્રીઆચાર્યજીના તરૂપ જ છે.

૨. श्रीविठ्ठलेशे स्वाखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः ॥ ( श्रीहरि० )



श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ॥

साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ॥ यह डेढ श्लोक  
में सब आयो ॥

सो ( अभिप्राय ) कहत हे ॥ श्रावण महिना के पति भगवान

हे ॥ एक अमल जो उजियारो पक्ष भक्त-

श्रीहरिरायजी कृत जननको हे ॥ तिन एकादशी को दिन  
भावप्रकाश प्रभून को हे ॥ एकादश्यां ॥ एकादश इंद्रिय

की सुद्धि भक्तजननको करायवे को ॥ महा

निशि जो अर्द्धरात्रि रासलीलामें साक्षात् भगवान (भक्तन) सेां निसंक

होई रहस्यवार्ता करत हे लीलामें तेसेही श्रीआचार्यजीसेां बोले ॥

सगरे अक्षर कहत हे ॥ यहां ताई श्रीआचार्यजी उपर भाव ॥ श्रीगोव-

नर्द्धनाथजी अब कहें ॥ ब्रह्मसंबंध करावो ॥ सबको देहजीवकों ॥

( तातें दामोदरदासने श्रीगुसांईजीसेां कह्यो ) जो भक्तिमार्गके विस्तार

की आज्ञा हे सो तुम करो ॥ अज्ञान जीव हें ॥ याही ब्रह्मसंबंध तें

दोष जाइगें ॥ अंगोकार कराए ॥ एक श्लोकमें लीला ॥ आधे श्लोकमें

मार्ग की रीति ॥ सब इनमें आयो ॥ या प्रकार श्रीगुसांईजी सेां

दामोदरदासने कह्यो ॥

ओर ता पाछे दामोदरदासकी सहायतासु आपने शृंगाररसमंडन  
ग्रन्थ कियो ॥ \*

इति प्र. ८ समाप्त.



પ્રસંગ ૮-પુષ્ટિ સૃષ્ટિના જીવોને આસુરભાવરૂપ દોષની ઉત્પત્તિનો પ્રકાર:-સૃષ્ટિ પ્રક્રિયાના પ્રારંભમાં દૈવી જીવ જેમ આસુરી જીવથી જુદા થયા, તેમ ઇન્દ્રિય પણ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારની થઈ. ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી જીવ પાસે આવીને કહે કે મારું પણ ગાન કર. ત્યારે દૈવી જીવે કહ્યું કે “યો યદંશઃ સતં મજેત” હું ભગવદંશ છું ભગવદ્ગાન કરીશ. તેથી દૈવી જીવને પાપવેધ ન થયો. ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી ઇન્દ્રિય પાસે ગયો. અને દૈવી ઇન્દ્રિયને ભયત્રસ્ત કરીને કહ્યું કે મારું ગાન કર. તે વખતે દૈવી જીવનો દેહ તો હતો નહિ કે જેથી દૈવી ઇન્દ્રિય તેમાં પ્રવિષ્ટ થઈ શકે. જેથી ઇન્દ્રિયે સભય થઈ આસુરી જીવનું ગુણગાન કર્યું. ત્યારે દૈવી ઇન્દ્રિયને પાપવેધ થયો. જેથી દૈવીજીવ શુદ્ધ તથા દેહ શુદ્ધ. ઇન્દ્રિયમાં દ્વિવિધ્ય. ઇન્દ્રિય સ્વયં દૈવી, પરંતુ આસુરીના ગાનથી આસુર ભાવવાળી થઈ. એ મૂલ દોષ છે. આ પ્રકાર “દ્વયાહ પ્રાજાપત્યાઃ” એ શ્રુતિમાં કહ્યો છે. વ્યાસજીએ પણ “દ્વૈધા હ્યર્થમેદાત્” એ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે. આ દોષનિવારણના અર્થે શ્રીઆચાર્યજીનું પ્રાકટ્ય થયું. (ભાવમાનના) અને આપે ભગવદ્જ્ઞાને લોકમાં પ્રમાણરૂપ કરાવી બ્રહ્મસંબંધદ્વારા આ મૂલ દોષ અને તેથી ઉત્પન્ન થતા પાંચે દોષની નિવૃત્તિ કરી.

**શ્રીહરિં કૃતં ભાવનું સ્પષ્ટીકરણ :**

રાસાદિ લીલાની માફક અહીં પણ શ્રીઆચાર્યજી (સ્વામિનીભાવસંયુક્ત) સાથે શ્રીગોવર્દ્ધનધરે પાંચ પ્રકારે ભાવાત્મક નિર્ભય અને સ્વતંત્ર રૂપે રમણ કર્યું તે આ પ્રકારે:-પાંચ પ્રકાર:-આત્માથી-મનથી-વાક્ય-પ્રાણથી--ઇન્દ્રિયથી અને શરીરથી.

સાક્ષાત ભગવાન (સાક્ષાદ્ભગવતા) સ્વરૂપ દ્વારા પ્રકટ થઈ જીવોને ફક્ત દાન કર્યું તે આત્માથી રમણ-શ્રીઆચાર્યજીની ચિંતાને આપે જાણી એટલે બંનેના મનની એકતા વિના હૃદયગત ભાવ પરસ્પર ઉદય ન થાય માટે અહીં, મનથી રમણ. આપ ચિંતા કેમ.



ओर प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कह्यो  
जो यह मारग तेरे लिए प्रगट कियो  
वार्ता प्रसंग ९ हे ॥ जो जहां लगि श्रीआचार्यजी के  
मारग की स्थिति हे तहां तांई दामो-  
दरदास की (भी) मारगमें स्थिति गोप्य हे ॥

ओर दामोदरदासने कह्यो जो मेनें श्रीठाकुरजीके वचन  
सुने परि समुझ्यो नांहि ॥ ता समें श्रीआचार्यजीने कह्यो अज  
हू दश जन्मको अंतराय हे ।

ताको हेतु यह ॥ जो जब लगी श्रीआचार्यजी महाप्रभूके मारग  
की स्थिति हे तब लगी दामोदरदास को  
श्रीहरिरायजी कृत प्रागट्य फेरि फेरि हे ॥ ( गोप्य रीतिसों )  
भावप्रकाश मारग को स्तंभ यातैं हे ॥ जो श्रीआचार्य-  
जीने दामोदरदास के हृदयमें भगवदलीला  
स्थापी ॥ सो संपूर्ण सृष्टि के उद्धार के निमित्त ॥ दामोदरदासके जनम  
दसलों मारग की स्थिति हे \* जेसे बल्लभकुल को प्रागट्य हे ॥ तेसैं

---

करो छे ओ वाणीथी लीला करी अने ते श्रवण करी आचार्यजी-  
ओ प्रति उत्तर कर्यो तेथी आप संयोगात्मक वाणीद्वारा-प्राणुमां  
प्रवेश्या—वाङ्प्राणुथी, प्राणुतो धर्म अण छे. प्रभुना प्राणु अलौकिक  
छे माटे भगवानने वश करी वचन लीधुं—ईंद्रियथी. पछी आप  
अंतर्ध्यान थया ते कायिक लीला. आ प्रकारे स्वाभिनी स्वरूपे भावा-  
त्मक रमण श्रीआचार्यजी साथे श्रीजीओ क्युं.

\* भावात्मक आधिदैविक मार्गनी, ते मार्ग आ प्रकारे लक्ष्मीना



હિ ભક્તિ દટ કરન કે લિણ દામોદરદાસ કો હૂ અનેક વૈષ્ણવનમેં પ્રાગટ્ય હે ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

एक समें श्रीआचार्यजी सुंदर सिलाके पास [जाको पूजनी सिला कहें हे तहां छोंकर के निचे वार्ता प्रसंग १० श्रीआचार्यजीकी वेठक हें तहां] दामो-  
दरदासकी गोदमें मस्तक धरि आप पोढे हे ॥ ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिरतें श्रीआचार्यजी के पास पधारे ॥ तब दामोदरदासने सेनहीमें श्रीगोवर्द्धननाथ-

હુદયમાં રહ્યો છે:—શ્રીહાકુરજી અને તેમની સેવાના પદાર્થો અને ક્રિયાઓમાં ભાવનાસહિત ભકતોને અનુભવ—ગોસ્વામિબાલકામાં અને તેમની પ્રત્યેક ક્રિયામાં શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ. વૈષ્ણવોમાં અને તેમની ક્રિયાઓમાં લીલાસૃષ્ટિની ભાવનાનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ—વ્રજ ગિરિરાજજી જન્મનાજી ગોકુલ અને વ્રજવાસી-યોમાં લીલાના આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવનાનો અનુભવ. ઉપર્યુક્ત ચાર પ્રકારથી પ્રકટ થયેલા આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ એક પણ ભકતને જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગની સ્થિતિ ભૂતલ ઉપર છે પછી ક્રિયાત્મક (ભૌતિક સેવા) અને જ્ઞાનાત્મક ( શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંત ) માર્ગનીજ વિદ્યમાનતા રહેશે.

આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગના તિરોધાનના કારણભૂત ભાવાત્મક સ્વરૂપો અને ભાવાત્મક ગ્રંથોથી બાલકો અને વૈષ્ણવોનું વિસ્મરણ બાણવું. માટેજ શ્રીજીથી ( ભાવાત્મક કૃષ્ણ ) બહિર્મુખ ન થવાનો ઉપદેશ બાલકો અને વૈષ્ણવોને શ્રીઆચાર્યચરણે કરેલો છે.



जीसों कहे जो तुम अब हि यहां मति आवो ॥ तुम चंचल हो ॥  
 ( तातें ) श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तब श्रीगोवर्द्धननाथजी  
 ठाडे होय रहे ॥ तब श्रीआचार्यजी जागि उठें ॥ कहे बाबा  
 उहां क्यों ठाडे होय रहे हो पास पधारो ॥ तब श्रीगोवर्द्धन-  
 धर पास आय श्रीआचार्यजीसों कहे ॥ जो तुम्हारो सेवक  
 (ने) मोकूं बरज्यो जो यहां मति आवो ॥ श्रीआचार्यजी जागि  
 उठेंगे ॥ तातें में दूरि ठाडो रह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामो-  
 दरदास उपर खीजन लागें ॥ जो तैं श्रीगोवर्द्धननाथजीकों  
 क्यों बरजे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें ॥ इनसों क्यों  
 खीझत हो ? इननें अपनो धर्म राख्यो ॥ इनकों ऐसेहि चाहियें ॥  
 तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धनधर को गोदिमें बेठाय कपोल  
 परस करि कहें बाबा, कछु आज्ञा करो ॥ तब श्रीगोवर्द्धनधर  
 कहे ॥ मोकों गाय बहुत प्रिय हैं ॥ तब श्रीआचार्यजी सदूपांडे  
 को बुलाय वेदकर्म करिवे की पवित्री हती सो दे कहे याके  
 दाम करि श्रीगोवर्द्धननाथजीकों गाय ल्याय देउ \* ॥

इति प्र. १० समाप्त.

\* अव्यति नूपुर भाग्याने। पणु विलेख प्राप्त छे.

आ प्रसंगमां श्रीआचार्यजुनुं दारयइय वल्लभस्वइयनुं प्रति-  
 पादन छे.



## પ્રસંગ ૧૦ નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય:—

આ પ્રસંગમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીવલ્લભ સ્વરૂપ (દાસ્યરૂપ) નો અનુભવ કહેલો છે. તે આ પ્રકારે:—

આપ કદી નિદ્રાધીન થતા નથી. નિદ્રાના મિષથી આપ કેવલ વિપ્રયોગરસનો અનુભવ કરતા. લોકદષ્ટિથી પણ આપનું નિદ્રાધીન થવું યુક્તિસંગત લાગતું નથી. કારણ કે લોકમાં પણ જ્યારે કોઈ મનુષ્યને મહાન્ હર્ષ અથવા શોકને પ્રાપ્ત કરાવે એવો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થાય છે, ત્યારે તે પુરુષને નિદ્રા સર્વાશે સ્વતઃ ત્યાજ્ય થઈ જાય છે એ સર્વાનુભવગોચર છે. તેવીજ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણને લીલાના વિયોગરૂપ અત્યંત દુઃખ અને દૈવી જીવેના ઉદ્ધારરૂપ આનંદ પ્રાપ્ત થયો છે. તેવા પ્રસંગે નિદ્રા કેમ આવે ? નજ આવે.

બીજા પ્રકારે આપનો નિત્ય નિયમ જોવાથી જ્ઞાત થાય છે કે આપ બન્ને અનોસરમાં નિદ્રાના મિષથી સૂક્ષ્મ વિશ્રામ કરતા. બપોરના અનોસરમાં વ્રજભક્તોની વેણુગીત યુગલગીત આદિની ભાવનાનો અનુભવ કરતા. પછી નિજ સેવકો ઉપર તે અનુભવેલો મહાન્ રસ કથારૂપે વરસાવતા “ભોજન કર વિશ્રામ છિનક લે નિજ મંડલી બુલાઈ । વેણુગીત પુન યુગલગીત કી રસ વરસા બરસાઈ” ॥

રાત્રિના અનોસરમાં ભગવત્કથા કર્યા પછી દામોદરદાસની સાથે આપ રહસ્યવાર્તા કરતા. ત્યારબાદ મધ્યરાત્રિનો ભોગ શ્રીને આરોગાવતા પછી આપ સર્વે વૈષ્ણવોની ગુપ્ત રીતે તપાસ કરતા. (જુઓ ગોપાલદાસ જટાધારીની વાર્તા) કેટલોક સમય વીત્યા પછી આપ પોઢવા પધારતા. (લગભગ એક વાગે) અને ત્રણ વાગે આપ શાયાદિક કરતા. આ પ્રમાણે આપનો નિત્યનિયમનો ક્રમ હતો. આપનાં આહાર અને નિદ્રા બહુજ અદ્ય હતાં. આ બન્ને અનોસરના વિશ્રામમાં રાસ-લીલૈકતાત્પર્ય આપ રાસાદિક લીલાનો હૃદયસ્થિત ધર્મો વિપ્રયોગરૂપે



અનુભવ કરતા. ” નમામિ હૃદયે શેષે ” એ ભાવાત્મક માનસી લીલામાં મગ્ન રહેતા.

આ પ્રકારના ધર્મી વિપ્રયોગના અનુભવમાં બાહ્ય (ધર્મ સહિત સંયોગાત્મક) સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી. બાહ્ય પ્રકટ્યમાં કામાત્મભાવની સ્થિતિ રહેલી છે એટલે તેમાં ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને અન્યસાપેક્ષતા રહેલી છે. જેથી આમાં દ્વૈતપણાનું ભાન રહે છે. “ પ્રભુ મારા છે ” એ પ્રકારના ભાવને કામભાવ કહેવામાં આવે છે, આમાં દેહાદિની સ્ફુરણા અને વિષયોનો સમાવેશ હોવાથી દ્વિધા ભાવ રહેલો છે. ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસમાં સર્વાત્મભાવની સ્થિતિ છે. “ હું સમગ્ર પ્રભુનો ” એ પ્રકારના ભાવને સર્વાત્મભાવ કહેવામાં આવે છે. આમાં દેહાદિના પૃથક્પણાનું ભાનજ રહેતું નથી. તે કેવલ પ્રભુમય થઈ જાય છે. આમાં ક્રિયાદ્વારા અનુભવ નથી. પરંતુ ભાવદ્વારા અનુભવ થાય છે. આ ભાવ આંતરરમણ રૂપ હોઈ અન્યનિરપેક્ષ છે. આમાં બાહ્ય સ્વરૂપના આવિર્ભાવની અપેક્ષા મુદ્દલે રહેતી નથી. ઉલટું બાહ્ય સ્વરૂપનો આવિર્ભાવ આ અનુભવમાં બાધકરૂપ છે. આ વિપ્રયોગરસમાં કેવલ ભાવભાવનજ હોય છે. આ નિરપેક્ષીત ભક્તો સ્વતંત્ર હોવાથી શુદ્ધ પુષ્ટિ કહેવાય છે, “ કૃષ્ણાધીના તુ મર્યાદા સ્વાધીના પુષ્ટિરુચ્યતે ” કૃષ્ણનું આધીનત્વ (અપેક્ષિતા ) ત્યાં સુધી મર્યાદા કહેવાય. ( ભાવ સિદ્ધ થયા પછી સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી. ભાવથી કોટાનકોટિલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપો સ્વેચ્છાનુસાર પ્રકટ થાય છે )

સ્વતંત્રફલરૂપો યઃ સ્વરૂપાવેશતો હરેઃ ।

ધર્મી રૂપઃ સ વિજ્ઞેયો નાવિર્ભાવપ્રયોજનમ્ ॥ (શિક્ષા૦)

આ ધર્મી વિપ્રયોગ રસનો શ્રીઆચાર્યચરણ અનુભવ કરતા. તેનું જ્ઞાન દામોદરદાસને છે કે નહિ ? તેની પરીક્ષાને અર્થે અને દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ લોકમાં પ્રસિદ્ધ કરવાને અર્થેજ શ્રીજી આ અનોસરના સમયમાં



પધાર્યા. નહિ તો આપ સર્વજ્ઞ હતા. આ સમયે પધારી શ્રીમહા-  
પ્રભુજીને શ્રમ શું કરવા દે ? કારણ કે બન્ને સ્વરૂપ પરસ્પર અત્યંત  
ગાઠ સ્નેહી છે. શ્રીનાથજી તો શ્રીઆચાર્યચરણની પાછલ પાછલ  
કરે છે. ( જુઓ વિદ્યાનગરનો પ્રસંગ ) તે બન્ને સ્વરૂપ એક  
બીજાના શ્રમને સહન કરી શકતાંજ નથી. છતાં પધાર્યા તેનું  
કારણ એજ કે દામોદરદાસની ઉત્કર્ષતા સિદ્ધ કરવી છે. દામોદર-  
દાસજી તો શ્રીઆચાર્યજીનું હૃદય છે. એટલે શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની  
ક્ષણક્ષણની બધી લીલાનો તેમને અનુભવ છે. આ વખતે શ્રીઆચાર્ય-  
ચરણ ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસનો અનુભવ કરે છે. તે બાણીનેજ  
દામોદરદાસે શ્રીજીને રોક્યા. કારણકે—આપના પધારવાથી શ્રીઆચાર્ય-  
ચરણ જે અત્યારે પરમ આંતરરમણરૂપ સુખનો અનુભવ કરે છે  
તેમાં વિશ્લેષ પડે તેથી દૂરથીજ રોક્યા.

આ પરમ સુખરૂપ સર્વાત્મભાવવાળા આંતરરમણમાં કામભાવ-  
વાળું બાહ્ય રમણ અન્યસંબંધના ગંધરૂપ હોઈ બાધક છે કારણ  
કે બાહ્ય સંયોગમાં એકલીલાનોજ એક કાલમાં અનુભવ છે. જ્યારે  
આંતર સંયોગાત્મક રમણમાં એકકાલાવચ્ચિન્ન અનેક લીલાના  
પરમ સ્વાદનો અનુભવ ભક્ત કરે છે. માટે આ આંતરરમણ આગળ  
કામાત્મક બાહ્ય રમણ અન્યસંબંધરૂપ હોવાથી ત્યાજ્ય છે. ભક્તની  
સાધનદશામાં જેમ અન્યાશ્રય બાધકરૂપ છે. તેમ અહીં અન્ય-  
સંબંધનો ગંધ પણ બાધકરૂપ છે. આ આંતરરમણમાં બાહ્ય સ્વરૂ-  
પની અપેક્ષા નથી. જે બાહ્ય સ્વરૂપ પ્રગટ થાય તો રસાભાસ થઈ  
જાય. તેથી દામોદરદાસજીએ શ્રીજીને રોક્યા. અહિં દામોદરદાસજીએ  
શ્રીઆચાર્યજીનું પરમ અલૌકિક સુખ વિચારી પોતાનો દાસ્ય ધર્મ  
પ્રકટ કરેલો હોવાથી જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી ખીજ્યા ત્યારે શ્રીજીએ  
પક્ષ કર્યો. અન્યથા સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમાં હાનિ આવે.

શ્રીજી તે વખતે ત્યાં વૃક્ષ નીચે ઉભા કેમ રહ્યા ? પાછા મંદિ-  
રમાં કેમ ન પધાર્યા ? તેમાં પણ એ રહસ્ય છે કે:—શ્રીનાથજીનું



વૃક્ષની ઓટમાં ઉભા રહેવાનું પ્રયોજન એ હતું કે “વૈષ્ણવા વૈ વન-  
સ્પતયઃ” એવી શ્રુતિ છે. ઓટલે વૃક્ષ વૈષ્ણવ છે. તેથી વૈષ્ણવની

ઓટ (હૃદય)માં આપ સ્થાયીભાવ રતિરૂપે દામોદરદાસની ઇચ્છાથી  
સ્થિત રહ્યા. કારણકે શ્રીઆચાર્યચરણના સેવકોની કા’ન શ્રીજી અને  
શ્રીગુસાંધજી બંને રાખતા. તેમનો કદિ અપરાધ પણ બને તો કંઈ  
કહેતા નથી. મોટાના સેવકો પણ મોટાજ હોય.

શ્રીઆચાર્યચરણના હૃદયમાં સ્થાયીભાવ રતિરૂપે આપની  
સ્થિતિ હોવાથી, તરતજ આ (બાહ્ય) સ્થાયીભાવ રતિના સ્વરૂપને આપે  
બાળ્યું. જેથી આપનું ચિત્ત આંતરરમણમાંથી બહાર આવ્યું. અને  
બ્યારે દષ્ટિ ખોલીને જોયું તે સમયે શ્રીનાથજીને જોયા. પછી શ્રીઆ-  
ચાર્યજીએ પૂછ્યું ત્યારે બધો પ્રકાર શ્રીજીએ કહ્યો. તેથી શ્રીઆચાર્યજી  
આપ દામોદરદાસ ઉપર ખીજ્યા. ત્યારે શ્રીજીએ પક્ષ કર્યો. આ  
પ્રકારે દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થયો.

આ પ્રકારે દામોદરદાસ હરસાની અને તેમની વાર્તાનો ભાવ કહ્યો.

વૈષ્ણવ ૧

વાર્તા ૧ સમાપ્ત





॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

## કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય:—

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની નિરોધલીલાના ધર્મી સ્વરૂપ છે, એટલે હૃદયવત્ છે. શ્રીઆચાર્યજીએ કૃષ્ણદાસમાં સમગ્ર ઐશ્વર્ય (ષડૈશ્વર્ય) સ્થાપ્યું હતું. માટે શ્રીહરિરાયજી કૃષ્ણદાસના આધિ-દૈવિક સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં આ પ્રકારે શબ્દો યોજે છે:—“કૃષ્ણદાસમેં ऐश्वर्य को आवेश बहोत हैं।” તે છ પ્રકારના ઐશ્વર્યનું શ્રીગોકુલેશે વાર્તામાં વર્ણન કર્યું છે. તે આ પ્રમાણે જાણવું:—

પ્રસંગ ૧:—પ્રથમ પરિક્રમા મેં બદ્રીનારાયન કે પરલી ઓર કિરણી નામ પર્વત હે ॥ તહાંતે એક બડી શિલા ગિરી ॥ સો કૃષ્ણદાસ મેઘન ને હાથ સોં થાંમિ ॥

અહિં અલૌકિક સામર્થ્યરૂપ વીર્યનું પ્રતિપાદન છે.

પ્રસંગ ૨:—તા પાછે વેદવ્યાસજી સોં બિદા હોય કે શ્રીઆચાર્યજી તિસરે દિન પધારે ॥ તબ કૃષ્ણદાસ કોં ઠાઠો દેસિ પ્રસન્ન મણ ॥

અહીં શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞામાં પરમ વિશ્વાસરૂપ શ્રીધર્મનું નિરૂપણ છે.

“શ્રિયો હિ પરમા કાષ્ઠા સેવકાસ્તાદશા ચદિ ।” इति वाक्यात् ।

પ્રસંગ ૩:—તાકી અટકર તેં પેરિ કે ગંગાજો કે પાર ગણ ॥

અહીં દેહનો પૂર્ણ વૈરાગ્ય ધર્મ કહ્યો. ભગવદર્થ જરાપણ શરીરનો વિચાર કર્યા વિના, ભયંકર ગંગાસાગરમાં ઝંપલાવવું એનાથી શ્રેષ્ઠ વૈરાગ્ય ધર્મ બીજો કયો હોઈ શકે ?

તહાંતે સેત મેં તે ગીલો ધાન કટવાયો । ટકા કી જગે દ્વે ટકા દેકે મુરમુરા સિદ્ધ કરવાણ ॥

રાત્રિના સમયે ઝેડુતો ધાન નીંદતા ન હોવા છતાં કૃષ્ણદાસે પોતાના પ્રભાવથી તે ઝેડુત (એક મૂઠ વ્યક્તિ કે જે પોતાની પકડેલી



વાતને છોડે નહિ તે)ના નિશ્ચયને ફેરવી રાત્રિના ધાન નીંદાવ્યું અને ભાડભૂગ્ન (મૂઠ વ્યક્તિ) પાસે સિદ્ધ કરાવ્યું (જુઓ ભાવસિન્ધુ) અહીં કૃષ્ણદાસનું ઐશ્વર્ય કહ્યું. “ઈશ્વરઃ પૂજ્યતે મૂઠે” ઈતિ વાક્યાત્ ।

સજ્ઞાન પુરુષ તો આકર્ષાય, પરંતુ મૂઠ પુરુષો પણ ઐશ્વર્યના પ્રભાવે આજ્ઞાધીન થાય તે ઐશ્વર્ય.

તેમજ વાસુદેવદાસ છકડા, વિષ્ણુદાસ છિપા, નારાયણદાસ આદિને કૃષ્ણદાસેજ ભગવતપ્રાપ્તિ કરાવી. ત્યાં પણ કૃષ્ણદાસના ઐશ્વર્યનું નિરૂપણ છે. તે પ્રસંગો તે તે વાર્તામાં છે. “સર્વેષામિતરસાધનાસાધ્ય-ભગવતપ્રાપ્તિસંપાદન”માં ઐશ્વર્ય. (નામરત્નાવલિટીકા)

પ્રસંગ ૩ (સ્વ):—જો શ્રીઆચાર્યજી પૂર્ણ પુરુષોત્તમ હોઈ તો મેરે હાથ મતિ જરિયો ॥

અહીં જ્ઞાનનું નિરૂપણ છે.

જ્ઞાનનું ફક્ત તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો અનુભવ, જેમ નદીમાં જ્ઞાન છે ‘મગ્નગતયઃ સરિતો વૈ’ તેમ કૃષ્ણદાસને પણ પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો બોધ થઈ ગયો છે. તે હાથમાં અગ્નિ લઈ સિદ્ધ કર્યું.

પ્રસંગ ૪:—બહુરી માર્ગ હૃદયારૂઢ મળ પાછે કદાચિત્ત ગોપ્ય વાર્તા હોઈ સો સવન કે આગે કહે ॥

અહીં યશ ધર્મનું નિરૂપણ છે.

‘સ્વયશોગાનસંહૃષ્ટ’ એવા પ્રભુનો સ્વાનુભવવાર્ય સર્વત્ર યશોગાન કરતા. આ છએ ધર્મ જેમાં સિદ્ધ છે એવા વિપ્રયોગનું દાન પણ કૃષ્ણદાસને હતું. માટે શ્રીઆચાર્યચરણે વ્યામોહ કર્યો ત્યારે વિરહાનલથી આ દેહને બાળી નાખી ભૂતલનો ત્યાગ કર્યો. (જુઓ પ્ર૦ ૮)

માટે કૃષ્ણદાસને ધર્મી રૂપ કહ્યા.



॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक कृष्णदास मेघन  
क्षत्री सोरोंमें रहते तिनकी वार्ता ॥

---

सो कृष्णदास दस वर्षके घर छोड़ि के आये हते ॥ हृदयमें  
वैराग्य हतो ॥ सो प्रथम सोरमजी गंगा न्हायवेकुं आये ॥ सो वहां  
एक बडो योगी महात्मा रहतो ॥ सो चेला  
शरण आये पहेले को करतो ॥ उनके चेला भये ॥ सो वा महा-  
प्रकार\* (जन्म १) त्माकुं योग सिद्ध हतो ॥ दोय वरस पाछें  
ये सं. १५३५ की सालमें वैशाख कृष्ण  
११ के ब्रह्ममुहूर्त समय योगाभ्यास साधत हतो ॥ वा समय कृष्ण-  
दास पास बैठे हते ॥ सो वाहि समय योगके प्रभावसूं गुरुने जानी  
ओर कही जो या समय भूतल विषे भगवदवतार भयो हे ॥ तब  
कृष्णदासके मनमें दर्शनकी परम उत्कंठा भई ॥ वह संवत मिती मास  
सब याद करि लियो । पाछें गुरुसों बदरिकाश्रम जायवेकी आज्ञा  
माँगी ॥ सो गुरुने नाहि करी ॥ ओर कही ॥ जो अभी तु बालक हे ॥  
सो कहां जायगो ? फेर कृष्णदास दस वर्ष ओर गुरुके यहां रहे ॥  
फेर गुरुकी आज्ञा ले बदरिकाश्रम के मिष पृथ्वीपर्यटनको चले ॥

सो प्रयाग आये ॥ (यहां दामोदरदास संभरवारे को मिलाप भयो)  
(देखो दा. सं. की वार्ता ) तब उनने सुनी जो श्रीवल्लभाचार्यजी



प्रकट भए हैं ॥ सो दक्षिणमें पधारे हैं ॥ कृष्णदेव राजाकी समीप मायावाद खंडन कीए हैं ॥ यह सुनत ही कृष्णदास दक्षिण देश गये ॥ तब राजाके यहां खबरि पाए ॥ जो पांच दिन ॥ यहां ते पधारे हे ॥ सो कृष्णदास रात्रि दिन चले ॥ सो तीन दिन में दक्षिण के झारखंड में श्रीआचार्यजी को दर्शन पूर्ण पुरुषोत्तम (रूपसों) पाए ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही कृष्णदास आयो ॥ तब कृष्णदास (ने) दंडोत करि के (कह्यो) महाराज में आयो ॥ अब मो पर कृपा करि के सरन लेऊ ॥ बहोत संसारमें भटक्यो ॥ अब में आपको सरन में आयो हों ॥ तब श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सेां कहि ॥ (जो) तेर तो गुरु हे ॥ अब क्यों तू शरन आवत हैं? ॥ तब कृष्णदास ने कहि महाराज आप साक्षात् पुरुषोत्तम हो ॥ में तिहारो हों ॥ तुम अब मोकों मति छोडो ॥ में संसारसमुद्र में डूबत हों ॥ या प्रकार बहोत दैन्य करी ॥ तब श्रीआचार्यजी कृष्णदास को नाम सुनाये ॥ सरनि ले पृथ्वीपरिक्रमा को पधारे ॥<sup>+</sup>

---

+ ५४ पुत्र श्रीयदुनाथजी रचित “द्विग्विजय” भां पण कृष्णदास झारखंड भां अने आन सभये शरणे आव्याने। उल्लेख छे जुओ:-

तत्सविधे सूकरक्षेत्रान्मेघनकृष्णदासक्षत्रियः प्रयागं समेत्य, दामोदर हस्ते ताम्रपात्रं निरीक्ष्य, विद्यापुरजयं श्रुत्वा, भगवदवतारो जात इत्यनुमाय, द्रुतमाचार्यानुपेत्य, पादयोर्निपतितः । तत आचार्यैः समुत्थाय कुशलं पृष्ट्वा तस्मै निजमन्त्रमाले दत्ते ।

अथ पम्पायां समागताः ।

( प्रथम दक्षिण यात्रा )



॥ શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

## કૃષ્ણદાસ મેઘનનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:—

કૃષ્ણદાસ મેઘન ઘણું કરીને પૂર્વના હતા. તેમના પિતા શ્રી રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા. જેથી કૃષ્ણદાસ પણ નાનપણથી જ રામભક્ત હતા. તેમનો જન્મ સં. ૧૫૨૩માં થયો હતો. તેઓ ક્ષત્રિય હતા, અને તેમની અટક મેઘનની હતી. સંવત ૧૫૩૩માં તેઓને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થવાથી તેઓ સોરમજીમાં ગંગા-સ્નાનાર્થ આવ્યા. ત્યાં કેશવાનંદ નામના એક પ્રસિદ્ધ મહાત્માના ચેલા થયા.

જ્યારે તેમણે સંવત ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ પોતાના ગુરુના મુખથી ભગવદ્વતાર થયાનું સાંભળ્યું, ત્યારથી તેમને ભગવદ્દર્શનની તીવ્ર ઉત્કણ્ઠા થઈ. પરંતુ તે વખતે તેમની ઉંમર ફક્ત બાર વર્ષનીજ હોવાથી ગુરુએ કોઈ પણ જગ્યાએ જવાની ના પાડી.

\* સંવત ૧૫૪૫માં જ્યારે તેઓ ૨૨ વર્ષના થયા ત્યારે ગુરુની આજ્ઞા લઈ બહરીકાશ્રમના મિષે પૃથ્વી પર્યટન કરવા નિકળ્યા.

કૃષ્ણદાસ અનેક ગામો અને તીર્થોમાં ફર્યા. દરેક સ્થળે સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ પ્રગટેલા બાલકની ધરધરમાં તપાસ કરી પરંતુ સફલ ન થયા. તોપણ તેઓ નિરાશ ન થયા. સંવત ૧૫૪૭માં મકરસ્નાનાર્થ અનેક સાધુસંતોનો મોટો મેળો પ્રયાગમાં થયેલો. ત્યાં કૃષ્ણદાસ પણ આવ્યા. તે સમયે તપાસ કરતાં કૃષ્ણદાસે સાંભળ્યું કે દક્ષિણમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ કૃષ્ણદેવ રાજાની સભામાં દિગ્વિજય કરી, વૈષ્ણવ મતનું સ્થાપન કર્યું છે. તેઓ ઘણા તેજસ્વી છે અને સાક્ષાત્ ભગવાનનોજ અવતાર છે. નાની વયમાં તેઓએ પ્રખર પંડિતોને જીત્યા છે. સ્માર્ત અને વૈષ્ણવ સંપ્રદાયના સમસ્ત આચાર્યોએ આપને વિજયતિલક કરી આચાર્યપદવી આપી છે.

આ શ્રવણ કરતાંજ કૃષ્ણદાસ દક્ષિણ તરફ ચાલી નિકળ્યા.

\* અહિં જ્યાં જ્યાં સંવત, માસ આદિનો ઉલ્લેખ છે ત્યાં ત્યાં ચૈત્રાદિ સંવત્ (વ્રજનો) અને માસ આદિ સમજ લેવા.



લગભગ બે અઠી મહીનામાં સંવત ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદી ૮ ની સાંજે વિદ્યાનગર આવ્યા.

ત્યાં તપાસ કરતાં સમાચાર મળ્યા કે અહિંથી શ્રીવલ્લભાચાર્યજી વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાંત ૩ ના<sup>૧</sup> રોજ પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા છે. આપશ્રીને વિદ્યાનગરથી પધારે ફક્ત પાંચ દિવસજ થયા છે.

આ સાંભળીને કૃષ્ણદાસ શીઘ્ર ગતિએ ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. રાત્રિ દિવસ ચાલતા ત્રીજા દિવસે વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ (શ્રી આચાર્યજીના પ્રાકટચોત્સવના દિવસેજ) દક્ષિણમાં આવેલા ઝારખંડમાં તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને આવી મળ્યા. ત્યાં તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને શરણે આવ્યા.<sup>૨</sup>

॥ શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

### —:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

શ્રીવિશાખાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોણક આ પ્રમાણે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ (રંગ)	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	વય	બાળ	રાગ
ગુણભાનુ	ગુણકલા	ગુલાબી શ્વેત	રંગશહાના	વિદ્યા	૧૫	મૃદંગ	સારંગ

આ પ્રકારે વિશાખાજીનું ધ્યાન કરવું. તે મુખ્ય અષ્ટ સખીમાં છે. એમને ત્યાં ૨૧૦૦૦૦૦ એકવીસ લાખ ગાયો છે. અને બીલધુ કુંડ ઉપર વિશાખાજીની નિકુંજ છે. એ સકલ વિદ્યામાં નિપુણ છે. શ્રીસ્વામિનીજી અને શ્રીઠાકોરજીની લીલામાં લલિતાજીની માફક સહાયક છે.

કૃષ્ણદાસ મેઘન વિશાખાજીનું સ્વરૂપ છે.

૧ જુઓ વલ્લભીયસર્વસ્વ, અને સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ.

૨ સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમમાં શ્રીઆચાર્યજીની સાત વર્ષની વય હતી, ત્યારે કાશીમાં જનોઈના સમયે શરણે કૃષ્ણદાસ આવ્યા, તેમ ઉલ્લેખ છે. પરંતુ દિગ્વિજય આદિ અન્ય સમગ્ર પ્રાચીન પુસ્તકોમાં વિદ્યાનગરની સભા જત્યા બાદ શરણ આવેલા તેવા ઉલ્લેખો છે, અને તેજ ઉચિત પણ લાગે છે, ઐતિહાસિક તત્ત્વોની શોધમાં ઉત્તરોત્તર પ્રાચીન પુસ્તકોના લેખોજ વધુ પ્રમાણરૂપે ગણાય છે. જેથી સર્વ પ્રાચીન પુસ્તકોમાં આજ સમયનો ઉલ્લેખ છે, તેથી તે સખળ પ્રમાણ રૂપ ગણાય.



સો કૃષ્ણદાસ વિસાખા સસ્ત્રી તેં પ્રગટે હેં ॥ વિસાખાજી શ્રીસ્વા-  
આધિદૈવિક સ્વરૂપકો મિનીજી કી છાયારૂપ હેં ॥ જેસેં છાયા  
વર્ણન. સરીરકે સંગ લાગી ડોલે તેસેં વિસાખાજી

( જન્મ ૩ ) શ્રીસ્વામિનીજી કે સંગ રહત હેં ॥ તાહી  
શ્રીહરિરાયજી કૃત પ્રકારસોં કૃષ્ણદાસ હૂ શ્રીઆચાર્યજીકે સંગ  
રહત હેં ॥ કૃષ્ણદાસમેં ऐश्वर्यको आवेश बहोत है' ॥ સો આગે  
( વાર્તામેં ) વરનન કરત હેં ॥

શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુનેં પૃથ્વી પરિક્રમા કરી ॥ તીનોં  
બેર કૃષ્ણદાસ સંગ રહે ॥ પ્રથમ પરિ-  
વાર્તાપ્રસંગ ૧ ક્રમામેં વદરીનારાયનકે પરલી ઓર  
( જન્મ ૨ ) કિરણી નામ પર્વત હે તહાંતે એક બડી  
આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ સિલા ગિરી ॥ સો કૃષ્ણદાસ મેઘનને  
હાથસોં થાંભી \* ॥ તવ શ્રીઆચાર્યજી-  
મહાપ્રભુ આપ વહુત પ્રસન્ન ભણ ॥ સો અલૌકિક ફલ દેતે ॥  
પરંતુ પરીક્ષા દેખન અર્થ કહે ॥ કૃષ્ણદાસસોં કહ્યો જો તુ માગિ  
કહા માગત હે ? તવ કૃષ્ણદાસ તીન વસ્તુ માંગે ॥ ૧ મારગ  
કો સિદ્ધાંત હૃદયારૂઢ હોઈ ॥ ૨ સુખરતા દોષ જાઈ ॥ ૩ મેરે  
ગુરુકે ઘર પધારો ઓર ઉનકો અંગીકાર કરો ॥ તામેં દોઈ  
વસ્તુ દીની ॥ ગુરુકે ઘર પધારિવેકી નાંહિ કીની ॥

\* કૃષ્ણદાસમાં ષડૈશ્વર્યની સ્થિતિ છે. તેથી તેઓ ધર્મીરૂપ છે.  
વિશેષ જુઓ. “ કૃષ્ણદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય ”  
અહિં વીર્યનું નિરૂપણ છે, જુઓ કૃ. વાર્તાનું સ્વ. અને રહસ્ય.



यह पहलेको गुरुभाव हृदयमें हतो सो बाहिर प्रगट्यो ॥ तार्ते  
 अलौकिक दान श्रीआचार्यजीने छिपाय  
 श्रीहरिरायजी कृत लीयो ॥ दो वस्तु दीए ॥ गुरुकी नांहि  
 भावप्रकाश. कीए ॥ सो दैवी न हतो ॥ दैवी बिना  
 एतन्मार्गमें अंगीकार नांहि ॥ या प्रकार  
 दो वस्तु दीए ॥ परंतु ओर को गुरुभाव रहे ॥ तार्ते मार्गको अनुभव  
 हू न भयो ॥ सुखरताको दोष हू न गयो ॥ प्रथम सामर्थ्य तें कछुक  
 सामर्थ्य हू घटी ॥

इति प्र. १ समाप्त.

## प्रसंग १ नो परिशिष्ट ऐतिहासिक भागः—

आ प्रसंग अधुरे छे ते “ यद्गुनाथ द्विविज्यमांथी पूर्णु करी  
 अहीं आप्ये छेः—

बदरिकाश्रमान्तं गत्वा तन्नार्थं नत्वा व्यासाश्रमं गताः । तत्र शिला  
 पतिता सा कृष्णदासेन गृहीता । तत्राऽऽचार्यैरस्मै वरद्वयं दातुं प्रतिज्ञातम् ।  
 ततोऽन्तः प्रविश्य व्यासं श्रीवित्त्वमङ्गलाऽज्ञया प्रमाणचतुष्टये संशयान-  
 पृच्छन् । स तान्निरूप्याह । भक्तिः प्रवर्तनीया, सिद्धान्तग्रन्था विधेयाः,  
 प्रतिपक्षा निवार्याः, गार्हस्थ्यं विधेयमित्यादि । तथेत्युक्त्वा प्रणमुः । ततः  
 प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण सूकरक्षेत्रं समागताः ॥

सारांशः—कृष्णदासने जे वरदान आपवानी प्रतिज्ञा करी पड़ी  
 आप बीतर पधार्या. वित्त्वमङ्गलनी आज्ञाथी श्रीव्यासजी पासे  
 प्रमाणचतुष्टयमां जे संदेह छता. ते पृछ्या. व्यासजीजे ते वर्णुन कर्या,  
 अने अेम उछुं के “ आप भक्तियो प्रचार करो; सिद्धान्त ग्रन्थानुं



નિર્માણ કરો, પ્રતિપક્ષોનું નિવારણ કરો, અને ગાર્હસ્થ્ય ધારણ કરો.-  
આચાર્યચરણે તે આજ્ઞા સ્વીકારી અને તેમને પ્રણામ કરી હરિદ્વારના  
ઉપમાર્ગથી સૂકર ક્ષેત્ર (સોરોં) પધાર્યા.

નોંધ:-“ દિગ્વિજય”માં આ પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતે  
વર્ણવ્યો છે. અને અહીં પણ બીજી પરિક્રમા વખતે પ્રથમ ( પહેલ-  
વહેલા ) બદરીકાશ્રમ પધાર્યા, એમ ઉલ્લેખ છે. કારણ કે લગ્નની  
પહેલી આજ્ઞા બીજી પરિક્રમા વખતે પાંદુરંગ શ્રીવિકૃલનાથજીએ કરી.  
તે આજ્ઞાને ફરી વ્યાસજીદ્વારા શ્રીબદરીનાથજીએ પ્રમાણ કરાવી  
આ પરિક્રમાનો સમય લગભગ સં. ૧૫૬૦નો આવે છે. પહેલી  
પરિક્રમા શ્રીઆચાર્યજીએ ૧૫૪૯-૫૦ થી સંવત ૧૫૫૮-૫૯ સુધીમાં  
નવ વર્ષમાં પૂર્ણ કરી છે. ( જુઓ “ યદુનાથદિગ્વિજય ” ) બીજી  
પાંચ વર્ષમાં એટલે ૧૫૬૩-૬૪ સુધીમાં અને ત્રીજીવાર ચાર વર્ષમાં  
એટલે સં. ૧૫૬૭-૬૮ સુધીમાં આપે ત્રણે પરિક્રમા પૂર્ણ કરી.  
ત્યારપછી પણ આપનું પૃથ્વીપર્યટન સ્થલે સ્થલે ચાલુજ હતું. જ્યાં  
જ્યાં શાસ્ત્રાર્થ થતો અથવા તીર્થસ્નાનાદિ પ્રસંગ હોય ત્યાં આપ  
પૃથ્વીપર્યટનના મિષથી પધારતા હતા (જુઓ હરદ્વારની બેઠક ચરિત્ર)  
પહેલી પરિક્રમા પૂર્ણ કરી બદરીકાશ્રમ પધાર્યા. બીજી પરિક્રમા ત્યાંથી  
શરૂ કરી છે.

બહુરિ શ્રીઆચાર્યજી શ્રીવદરિકાશ્રમતેં આગે વ્યાસજીકી  
ગુફામેં પધારે ॥ સો ( કૃષ્ણદાસકોં  
વાર્તાપ્રસંગ ૨ સંગ નાંહિ લે ગયે ) ॥ તહાં જીવ કી  
ગમ્ય નાંહિ ॥ તાતેં કૃષ્ણદાસ સોં  
શ્રીઆચાર્યજીને કહ્યો જો તૂ ઠાડો રહિયો ॥ જબ શ્રીઆચાર્ય-  
જી આગે કોં પધારે ॥ તવ વૈદવ્યાસજી સામેં હી આણ ॥ સો



श्रीआचार्यजी को पधराइ के अपने धाम ले गए ॥ पाछे वेद-  
 व्यासजीने श्रीआचार्यजीसों कह्यो ॥ जो तुमने श्रीभागवतकी  
 टीका करी हे सो मोकों सुनावो ॥ तब श्रीआचार्यजी जुगल  
 गीतके अध्याय को एक श्लोक कहे ॥ सो श्लोक ॥ “ वाम-  
 बाहुकृतवामकपोलो वल्लितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलि-  
 भिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ” ॥१॥ या श्लोक  
 को व्याख्यान कियो सो तीन दिवस में संपूर्ण भयो ॥ तब  
 वेदव्यासजीने कह्यो जो में यह व्याख्यान की अवधारना  
 नाहीं करि सकत, तातें अब क्षमा करो ॥ पाछे श्रीआचार्यजी  
 कह्यो जो तुम वेदांत के ऐसे सूत्र कहा कीए जो माया-  
 वाद पर अर्थ लग्यो ॥ तब व्यासजी ने कह्यो जो में कहा  
 करूं ? मोकूं आज्ञा ही ऐसी हती ॥ जो ऐसे करियो ॥ जामें  
 दोइ अर्थ प्राप्त होइ ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥  
 जो हमने तो ब्रह्मवाद पर अर्थ कीयो हे ॥ सो सुनायो ॥  
 सो सुनके वेदव्यासजी बहोत प्रसन्न भए ॥ तापाछे वेदव्या-  
 सजी सों बिदा होइ के श्रीआचार्यजी तीसरे दिन पधारे ॥  
 तब कृष्णदास कों ठाडो देखि प्रसन्न भए \* ॥ कहे तू ठाडो  
 हे ॥ तू गयो नांहि ॥ सो काहेते ? ॥ तब कृष्णदासने कह्यो  
 जो महाराज हों कहां जाऊं ॥ मोकों तुमारे चरणारविंद बिना  
 कछु ओर आश्रय नांहि हे ॥ तब यह सुनिके श्रीआचार्यजी-  
 प्रहाप्रभू आप बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर कह्यो जो मागि ॥

\* अहिं श्रीधर्मनुं निरूपण छे (बुध्वा इ०नी वार्तानुं २६स्थ)



तब फेरि वेई तीनि वस्तू मांगि ॥ तामें दोइ तो दीनी ॥  
गुरु के घर की नांहि कीनी ॥

ओर को गुरुभाव हतो ॥ तातें प्रथम तें कल्लुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत      सो व्यासजी की गुफामें श्रीआचार्यजी  
भावप्रकाश      कृष्णदासको संग नहि ले गये ॥ सो यातें  
जुगलगीतको प्रसंग कहनो हे ॥ ताकी  
धारना अब ही कृष्णदास सां होइगी नांहि ॥

व्यासजी सां हू धारना ना भई ॥ सो यातें व्यासजी कलाअवतार हैं ॥  
पुरुषोत्तम की बानी भावरूप की धारना केसें होइ ॥ यह श्रीभागवत  
व्यासजीमें श्रीपुरुषोत्तम आप बिराज कें कहि गए ॥ व्यासजी द्वारा  
मात्र हैं ॥ श्रीभागवतके रसको अनुभव नांहि हे ॥ सो रहस्य हरजी-  
बनदासनें या पदमें कह्यो हे ॥

॥ राग केदारो ॥

जोलैं हरि आपुनपां न जनावैं ॥

\*तोलां वेद पुरान स्मृति सब पढे सुनें नहि आवैं ॥१॥

सुनि विरंचि नारायन मुख सां नारदसां कहि दिनो ॥

नारद कहि वेदव्याससां आप सोध नहि कीनो ॥२॥

वेदव्यास ओषध की नाई पढि तन ताप नसायो ॥

तिनतें सुनि शुकदेव परीक्षित राजाको जु सुनायो ॥३॥

जदपि नृपति सुनि ब्रजकी लीला दसम कही शुकदेवा ॥

तोऊ सर्वात्मभाव न उपज्यो तातें करि न सेवा ॥४॥

---

\*तोलैं सकल सिद्धांत मारगको पढे सुने नहि आवे ॥ एसो हू पाठ हे ॥



શ્રીભાગવત અમૃત દધિ મથિકે શ્રીવલ્લભ સર્વોત્તમ ॥

કરિ આવરન દૂરિ નિજજનકે હાથ દિયે પુરુષોત્તમ ॥૫॥

સેવા અરુ શૃંગાર વિવિધ રસ શ્રીવલ્લભ પ્રગટાયો ॥

કરિ કૃપા નિજ જીવન ઉપર હરજીવન સ્વાદ ચઢાવ્યો ॥૬॥

યા પ્રકાર શ્રીઆચાર્યજી કી કૃપાતેં રસકી પ્રાપ્તિ હે ॥

इति प्र. २ समाप्त.

શ્રી આચાર્યચરણ સંવત ૧૫૬૮ (વજ) ના જ્યેષ્ઠ માસમાં બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે વખતનો આ પ્રસંગ છે. (શ્રીસુખોદિનીજીની શરૂઆત બીજી પરિક્રમામાં માધવ ભટ્ટ શરણે આવ્યા ત્યારે કરી દીધી હતી. તે સ્પષ્ટ છે.) આ પ્રસંગના પ્રમાણમાં શ્રીબદ્રીનાથજીના પુરોહિત વાસુદેવને શ્રીઆચાર્યચરણે લખી આપેલા વૃત્તિપત્રનો નવમો શ્લોક છે. જુઓ;—

विद्वद्भिः किल कृष्णदासकमुखैः शिष्यैरनेकैर्वृतः

सोहं श्रीबदरीवनान्तमगमं शुक्रे शकाब्दे तथा ।

देवाम्भःपतिभूमिते सह नरं नारायणं वीक्षितुं

तत्र ‘व्यासमुनीश’ सङ्गतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा ॥૧॥

નોંધ:--

શ્રીઆચાર્યચરણ બદરીકાશ્રમ ત્રણ વખત પધારેલા છે. તેમ યદુનાથદિગ્વિજયથી સ્પષ્ટ થાય છે. અને તેની પુષ્ટિ આ વાર્તાથી થાય છે.

યદ્યપિ આ વાર્તામાં (પ્રાચીન હસ્તલિખિત પ્રતોમાં) બદરીકાશ્રમ પધારવાનું બેજ વારનું વર્ણન સાધારણ દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે છે, તો પણ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી જોતાં ત્રણવાર પધારવાનું સ્પષ્ટ માલુમ પડે છે.



અત્રે આપેલા પ્રસંગ (૧) અને પ્રસંગ (૨) નું સર્વ પુસ્તકોમાં (હસ્તલિખિત) એકજ પ્રસંગ તરીકે વર્ણન જોવામાં આવે છે. છતાં અત્રે આપેલા પ્રસંગની શરૂઆતમાં બહુરિ શબ્દ દરેક અન્યમાં જોવામાં આવે છે. અને તેથી તે પ્રસંગ અલગ પડી જાય છે. જેમ શ્રીભાગવતના અધ્યાય ૧૯ માં વ્રતચર્યાના પ્રસંગ પછી ૨૯ માં શ્લોકમાં “અથ ગોપૈઃ પરિવૃત્તો ” ત્યાં અથ શબ્દથી અલગ પ્રકરણ ચાલુ થાય છે તેમ અહિં બહુરિ શબ્દથી બીજાવારનું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. એથીજ અમે તેનો પ્રસંગ ૨ તરીકે ઉલ્લેખ કર્યો છે.

એટલે વૃત્તિપત્ર ત્રીજી પરિક્રમામાં બીજી વખતે બદરીકાશ્રમ પધાર્યા ત્યારે લખી આપ્યું છે. અને વામન દ્વાદશીનો પ્રસંગ ત્રણ પરિક્રમા પૂર્ણ કર્યા પછી કેટલાક વર્ષ બાદ સં. ૧૫૭૬માં-કુંભ નહાવા-હરિદ્વાર પધાર્યા છે. ત્યાં કેટલાક મહિના બિરાજી પછી બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે સમયનો છે. (જુઓ એકક ચરિત્ર) અને પહેલો પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતનો છે. એમ ત્રણે પ્રસંગ અલગ થઈ જાય છે.

(ક) બહુરિ એક સમય શ્રીઆચાર્યજી ગંગાસાગર પધારે ॥

તહાં શ્રીઆચાર્યજી આપ પોઢે હતે ॥

વાર્તા પ્રસંગ ૩ ઓર કૃષ્ણદાસ પાંચ દાવત હતે ॥

તવ શ્રીઆચાર્યજી આપ મનમેં ચિચારે ॥

જો ધાનકે મુરમુરા હોઈ તો આરોગે ॥ તવ યહ વાત શ્રીઆચાર્યજીકે મનકી કૃષ્ણદાસ મેઘનનેં જાની ॥ સો હતનેમેં શ્રી આચાર્યજીકોં નિદ્રા આઈ ॥ તવ કૃષ્ણદાસ ઉઠિકે ગંગાસાગર ઉપર આયે ॥ તવ દેસે તો પાર એક દોવા. વરત હે ॥ તાકી



अटकर तें पेरि कें गंगाजी के पार गए<sup>१</sup> ॥ तहां एक गांव हतो ॥ तहांते खेतमें ते गीलो धान कटवायो ॥ टका की जमे द्वे टका दे के मुरमुरा सिद्धि करवाए ॥ पाछें कृष्णदास श्रीगंगाजी में पेरिके श्रीआचार्यजी के पास आये ॥ तब श्री आचार्यजी के चरणारविंद दाबि के जगाए ॥ मुरमुरा आगे राखे<sup>२</sup> ॥ कह्यो जो महाराज आरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजी-महाप्रभूनने पूछी जो तू कहां ते लायो ॥ तब कृष्णदासने सब वृत्तांत कह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ कहें जो कछु मागि ॥ तब वेई तीन वस्तू मागी ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो जीव कहा मागि जाने ॥ या समें जो मागतो सोई देतो ॥ जो कहेतो तो श्रीठाकुरजी को स्वरूप दिखावतो ॥

(ख) पाछे श्रीआचार्यजी आप सोरों पधारे ॥ तब कृष्णदासने विनती करिके कह्यो जो मेरे गुरु को ले आउं ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू खेद पावेगो ॥ पाछे कृष्णदास ईकेलेई गुरु के इहां गये ॥ सो जब गुरुने कृष्णदास को देख्यो ॥ तब कह्यो ॥ जो तेनें ओर गुरु कीये ॥ तब कृष्णदासनें कह्यो ॥ जो मेंने तो और गुरु नांहि किये ॥ मेरे गुरु तो आप ही हो ॥ परि तुमारे प्रतापतें मेंनें पूर्ण पुरुषोत्तम पाये हैं ॥ तब वाने कह्यो ॥ जो पूर्ण पुरुषोत्तम कैसें जानीए ? तब गुरुके आगे अग्नि की अंगीठी धकधकात हती ॥ तामें ते

१ अहि वैराग्य धर्म. २ अहि अैश्वर्य धर्म ( जुओ। कृ०नी  
वार्तानुं रहस्य)



कृष्णदासने दो हाथकी अंजुली भरि के अंगार हाथमें लीये  
 ओर कहें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पूर्ण पुरुषोत्तम  
 होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥ ओर जो अन्यथा होई  
 तो मेरे हाथ जरि बरि भस्म होइ जैयो ॥ सो एक सुहूर्त लों  
 अग्नि हाथमें राखी ॥ तब उन गुरुने भय खाई ॥ तब कह्यो  
 के डारी दे ॥ पाछें उन गुरुने कृष्णदास के हाथ पकरी के  
 अपने हाथ सों अग्नि डारि दीनी ॥ तब कृष्णदास तहांते  
 खेद पाइ के उठि आए ॥

( यह प्रसंग सब बल्लभाष्टक की टीकामें श्रीगोकुलनाथजी  
 ने विस्तारपूर्वक कह्यो हे ॥ )

(क) सो गंगासागर के तीर पधारे ॥ सो रात्रिकां पोढे हते ॥

श्रीहरिरायजी कृत अर्धरात्रिको सुरमुराकी मनमें आई जो भोग  
 धरिये ॥ सो कृष्णदास पर कृपा करन के  
 भावप्रकाश लिये ॥ काहेतें पुरुषोत्तमको कछू वस्तु की

अपेक्षा होइ नाहि ॥ कदाचित होई तो  
 काहूके उपर कृपा करन के अर्थ ॥ सो कृष्णदास कों जनाई ॥ तब  
 कृष्णदास तरिके पार जाय ले आए ॥ यह ईश्वरकार्य हैं ॥ जीवसें न  
 होइ ॥ तब कृष्णदास चरण दाबि के जनाए ( जगाए ) तब श्रीआ-  
 चार्यजी आप अरोगि के बहोत प्रसन्न भए ॥

तब कहे मांगि । पाछे वही तीन वस्तू मांगे ॥

तब श्रीआचार्यजी कहे जीव कहा मांगे ? जीवको मागनो हि  
 बाधक हे ॥ तार्ते परमानंददासने गायो हे “ मागे सर्वस्व जात हे  
 परमानंद भाखे ” ॥



(સ્વ) ઓર ગુરુ કો ભાવ ચિત્ત મેં હતો ॥ તા કરિ મહાપ્રભૂ કે વચન કો વિશ્વાસ ન ભયો ॥ જો એકવાર દિએ સો દઢ હૈં ॥ ફેરિ કહા માંગનો ? ઓર મારગ કી દુર્લભતા દિસ્વાએ ॥ શ્રીમહાપ્રભૂજી કે મનકી વાત મુરમુગકી જાને ॥ પરંતુ મારગ હૃદયારૂઢ કૃપાહી તે હોઈ ॥ દોષ કો સ્વરૂપ હે જો મુસ્વરતા દોષ, જીવકો સ્વભાવ હૂ જીન કે હાથ નાહોં ॥ જવ શ્રીઆચાર્યજી છોડાવેં તવ હી છૂટે ॥ તાતેં શ્રીઆચાર્યજી વિના ઓર મેં ઇશ્વરબુદ્ધિ તથા ગુરુબુદ્ધિ કરે' તાકો એતન્ મારગકો ફલ કવહૂ સિદ્ધ ન હોઈ ॥ યહ ભાવ જતાએ ॥ પાછેં કૃષ્ણ-દાસ ગુરુ કે યહાં સૂં દુઃખ પાય, અન્યાશ્રય છોડિ, મહાપ્રભૂકે પાસ આએ ॥ તવ મારગ કો સિદ્ધાંત હૃદયારૂઢ ભયો ઓર મુસ્વરતા દોષ હૂ ગયો ॥ તાતેં ફેરિ શ્રીઆચાર્યજી સો નાહિં માગ્યો ॥ અન્યાશ્રય એસો બાધક હે ॥ \*

इति प्र. ३ समाप्त.

૧. સરખાવો શ્રી હરિરાયજીની વાણી:—

निजाचार्येषु सततं मनस्तत्प्रियसूनुषु ।

स्थापनीयं न चान्येषु सममत्या कदाचन । (चतुःश्लोकी)

\* ગંગાસાગરનો સમય. ૧૫૬૦-૬૧ લગભગનો અનુમાન થાય છે. અહીં શ્રીઆચાર્યજીને દેહત્યાગની આજ્ઞા થઇ. “ગંગાસા-ગર સંગમે” ( જુઓ અંતઃકરણ પ્રબોધ) તે આજ્ઞા સ્વીકારી નહિં કારણ કે આપનો દેહ અલૌકિક છે. તેમજ લીલામાં થયેલી પ્રથમ આજ્ઞાનું પાત્રન પૂર્ણ રૂપથી થયું નથી. આ આજ્ઞા અંતઃકરણમાં થઇ છે. અને તેજ વખતે આપે મુરમુરા ભાગ ધરવાની ઈચ્છા કરી. અને શીવ કૃષ્ણદાસે તે ઈચ્છા જાણી કાર્ય સિદ્ધ કર્યું. અહીં કૃષ્ણ-દાસે દાસધર્મ દેખાડ્યો. સ્વામીની ઈચ્છા (વિના આજ્ઞા કરે) જાણીને કાર્ય કરવું તે દાસધર્મ. તેથી આપ પ્રસન્ન થયા.



बहुरि मार्ग हृदयारूढ भये पाले कदाचित् गोप्य वार्ता  
 होइ सो सबन के आगे कहें ॥ तब  
 वार्ता प्रसंग ४ काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों कही  
 जो महाराज कृष्णदास गोप्य वार्ता  
 सबन के आगे कहत हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों  
 पूछी, जो तू गोप्य वार्ता सबन के आगे क्यों कहत हे ? तब  
 कृष्णदासने कह्यो जो महाराज, आप उनही सों पूछिये ॥  
 जो मैंने कहा कह्यो हे ? तब उन वैष्णव सों श्रीआचार्यजीने  
 पूछी जो तुमसों इन कृष्णदासने कहा वार्ता कही ? तब  
 उन वैष्णवने कह्यो ॥ जो महाराज हमको तो कछु सुधि रही  
 नाहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी मुसिकाईके चुप करि रहें ॥

मार्ग हृदयारूढ भयो ॥ सो रसके भरते रह्यो न जाइ ॥ सो  
 रहस्यवार्ता वैष्णवसों करे ॥ तामें यह  
 श्रीहरिरायजी कृत जताए ॥ कृष्णदास अपुने अनुभव करन  
 भावप्रकाश अर्थ कहते ॥ परंतु पात्र बिना रस ठेरे  
 नाहि ॥ ( तातें वैष्णवने कही, कछु सुधि  
 रही नाहिं )

और कृष्णदासकी कछू दामोदरदास तें उतरती दशा ॥ जो कहे  
 बिना रह्यो न जातो ॥ यह दोऊ भाव जताए ॥

इति प्र. ४. समाप्त.



(क) ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें प्रश्न पूछ्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी को वार्ता प्रसंग ५ प्रिय वस्तु कहा हे ॥ ताको प्रतिउत्तर श्रीआचार्यजी कहत हैं ॥ जो श्रीठाकुरजी उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हैं ॥ परंतु गोरस अति प्रिय हे ॥ गोरस शब्देन वाणी कहियति हे ॥ ताको भाव अनिर्वचनीय हे ॥ ओर सबन ते भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हैं ॥ जातें भक्तवत्सल कहवावत हे ॥

तब कृष्णदासने फेर पूछी जो श्रीठाकुरजी कों अप्रिय वस्तु कहा हे ? तब श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीठाकुरजी कों धुंआ समान अप्रिय ओर नाही हे ॥ ताहूतें अप्रिय श्री ठाकुरजी कों भक्तको द्वेषी हे ॥

गोरस सो वैष्णव को स्नेह परस्पर ओर वैष्णव को कलेश सो श्रीहरिरायजी कृत धुंवा ॥ जहां स्नेह तहां श्रीठाकुरजी पधारे भावप्रकाश जानिए ॥ जहां कलेश तहां ते श्रीठाकुरजी दूरि जानिए ॥

(ख) फेरि कृष्णदासने प्रश्न पूछ्यो ॥ जो महाराज श्रीरघुनाथजी संपूर्ण सृष्टि को लेके स्वधाम पधारे ॥ ओर राजा दशरथ को स्वर्ग दीयो ॥ सो काहेते ? ताको प्रति उत्तर श्रीआचार्यजी कहे जो श्रीरघुनाथजी तो परमदयाल हैं ॥ तातें स्वर्ग दीनो ॥ नातर स्वर्ग की योग्यता राजा दशरथ को न हती ॥ काहेते जो अपनो वचन सत्य करिवे को श्रीरामचंद्रजी को वनवास पठाए ॥ एसो कर्म कीया ॥



यह प्रश्न हीनाधिकारी को हे काहें ते साक्षात पुरुषोत्तमकी लीला  
 श्रीहरिरायजी कृत तें मन बहार करी यह प्रश्न कहा ? यामें  
 भावप्रकाश यह जताए ॥ ( कृष्णदासकों ) अवहो  
 “ मानसी सा परा मता ” यह फल नांहि भयो ॥ तब कृष्णदास के  
 समाधान के अर्थ आप कहे जो रामचंद्रजी दयाल हैं....( देखो वार्ता )

यह कहि अपने मारग को सिद्धांत जताए ॥ जो अपने हठधर्म  
 करि धर्मी जो श्रीठाकुरजी तिनको श्रम करावे तो हीन फल धर्मको स्वर्ग  
 ही मिलें ॥ श्रीठाकुरजीको फल न मिले ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

ओर एक समें श्रीआचार्यजी सां कृष्णदासनें फेरि  
 प्रश्न पूछयो जो भक्त होइ के श्री-  
 वार्ता प्रसंग ६ ठाकुरजी की लीला को भेद नांहि  
 जानत सो काहेतें ? तब श्रीआचा-  
 र्यजीने कह्यो जो ये विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कह्यो हे त्यों  
 नांहि करत ॥

\* विधि सो समर्पन पदारथ को ज्ञान नांहि ॥ अहंता  
 ममता अपनी सत्ता अहंकार को समर्पन ॥ जो अब  
 दास भयो ॥ प्रभु आधीन हैं ॥ प्रभु करे सो सर्वोपर  
 सिद्धांत हे ॥ यह भेद अपने में नांहि ॥ ओर अपनियोग्यता  
 मानि भगवदीय को संग नांहि करत हे ॥ तातें योग्यता मानें



तब प्रभु अप्रसन्न होई जात हैं ॥ यह मारग दैन्य को हे ॥  
 सो दैन्य नाहि हे ॥ इत्यादिक अंतरायतें अपनो स्वरूप ओर  
 भगवदीय को स्वरूप श्रीठाकुरजी को स्वरूप नाहि जानत  
 हैं ॥ ओर भगवद्भक्त को संग करे तो श्रीठाकुरजी की  
 लीला को भेद जाने ॥ सो तो योग्यता समज नाहि करत  
 हे ॥ ओर जो कळू करत हे सो अंतःकरण पूर्वक नाहि  
 करत हे ॥ ता तें श्री ठाकुरजी को स्वरूप ओर लीला को भेद  
 नाहि जानत हे ॥+

उत्तम भक्त को संग करे ॥ श्रीभागवत श्रीसुबोधि-  
 नीजी आदि ग्रन्थ को अहर्निश अवगाहन करे ॥ तब भगवद्-  
 भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजी ब्रजभक्तन विषे सदैव रहत  
 हैं ॥ तहां सेवा करि के बंधे हैं ॥ तहां एतन्मार्गीय वैष्णव  
 ताके हृदय में श्रीठाकुरजी विराजत हैं ॥ ताको संग करनो ॥  
 तहां गजनधामन आदि वैष्णव को दृष्टांत दीनो ॥ जिन जिन  
 ने भावपूर्वक सेवा करी तिन तिन के सकल मनोरथ सिद्ध  
 भये ॥ जातें लीलास्थ ब्रजभक्तन के भाव को विचार करनो ॥

जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को स्वरूप जानत हे ॥ तिनको  
 स्वरूप अलौकिक दृष्टि सेां जान्यो जाय ॥ जो आज्ञा होइ  
 सो जाने ॥ जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को जानत हैं सो जो  
 कळू काज करत हे सो श्रीठाकुरजी के अर्थ करत हैं ओर  
 श्रीठाकुरजी विषे विरह ताप भाव करत हैं ॥ अपुने स्वदोष



को विचार करत हैं ॥ (एसे जीव) अपुने स्वरूप विचारे जो  
हैं कोन हैं ? पहले कहा हतो ? भगवद् संबंध कीये तें हैं  
कोन हो गयो ? अब मोकों कहा-कर्तव्य ? रात्रदिवस एसे  
विचार करत रहें ॥ तब अपनो स्वरूप जाने ॥ ये प्राकट्य  
श्रीव्रजभक्तन के अर्थ हे । तातें उत्तम संग होइ तो एत-  
न्मार्गीय ठाकुर को जाने ॥ और शास्त्र पुरान अनेक इति-  
हास हैं ॥ तातें व्रजराज के घर प्रगटे सो स्वरूप जान्यो  
न जाय ॥ ये ठाकुर तो तबही जाने जब भगवद्भक्त को  
संग करे ॥ सेवा को प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत  
हैं ॥ तिनसों मिली भाव पूछि के सेवा करनी । तब  
भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजीकी लीला को सब  
भेद जाने ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

१ ओर श्रीआचार्यजी श्रीवद्रीनाथजी के मंदिर पाउ  
धारे ॥ तब वेदव्यासजी साथ हे ॥

वार्ता प्रसंग ७ तब श्रीआचार्यजी वेदव्यासजी सों  
पूछी जो भ्रमर गीत के अध्याय में  
उद्धव कों व्रजभक्त पास पठाए ॥ ता प्रसंग में आधो श्लोक  
घटत हे ॥ तब वेदव्यासजीने अर्द्धश्लोक कह्यो सो श्लोक ॥  
“आत्मत्याज्यक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात्स्वभावतः” सो याकी



टीका श्रीआचार्यजीनें पहले ही कीनी हे\* ॥ सो सुनि के वेद व्यासजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ ता पाछें श्रीआचार्यजी महा प्रभु श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर में पधारे ॥ ता दिन वामनद्वादशी हती ॥ ता दिन श्रीआचार्यजी व्रत करते ॥ सो फलाहार श्रीव्यासजी हूं हूँडे ॥ आर कृष्णदास हूं हूँडे ॥ परंतु मिल्यो नांहि ॥ तब श्रीबद्रीनाथजीने श्रीआचार्यजी सों कह्यो ॥ जो मेनें फलाहार को सर्वत्र खोज कीयो ॥ परि पावत नांहि ॥ तातें तुम रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के भोजन करो ॥ तब श्रीआचार्यजी विचारे जो श्रीठाकुरजी की इच्छा ऐसी ही दोसत हे ॥ इतने में कृष्णदासने आइ के कह्यो जो महाराज, इहां कछु फलाहार पाइयत नांहि ॥ तब वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने कही जो सामग्री करि भोजन करो ॥ “उत्सवांते च पारणा” यहू बचन हे ॥ तापाछे श्रीआचार्यजी आपु रसोई करिके श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के आप भोजन कियो ॥

पाछें ता दिनतें वामनद्वादशी के दिना व्रत न करते ॥ पाछे श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी ते बिदा होइके कृष्णदास को साथ ले के पधारे ॥<sup>१</sup>

\* अत्र प्रायेण साधनचतुष्टयप्रतिपादकमर्धमन्तरितमिति प्रतिभाति

‘आत्मत्वाद.....’ (सुबोधिनी १०-४४-२९)

१. आ प्रसंग त्रणे परिक्रमा आह अडेलवास डर्यो त्यार पछी सं. १४७६मां हरिद्वार थर अही (अद्रीडाश्रम) पधार्या ते वज्रतनो छे. (शुभो. हरिद्वार अड्डे चरित्र)



फलाहार ना मिल्यो ॥ ताको प्रयोजन यह जो, श्रीआचार्यजी  
 चाहें सो सबहि मिले ॥ व्यासजी कृष्णदास  
 श्रीहरिरायजी कृत सरीखे ढूँढनहारे ॥ सो फलाहार या तें न  
 भावप्रकाश मिल्यो जो श्रीआचार्यजी के मनमें सामग्री  
 उत्सवकी करनी ॥ ऊपर तें मर्यादा राखिवे  
 के लिए फलाहारकी कहो ॥ सो फलाहार न मिल्यो ॥ तातें वेदव्यासजी  
 द्वारा श्रीठाकुरजीने कहवाई ॥

तातें श्रीगुसांईजीने सात लालजीन में ॥ बडे घर ( प्रथम पुत्र  
 श्रीगिरिधरजी के घर ) यह रीति राखी उपवास ॥ ओर ठोर “उत्सवांते  
 च पारणा” श्रीठाकुरजी सब सामग्री अरोगे ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

श्रीआचार्यजीने जब आसुरव्यामोह लीला करी, तब  
 वार्ता प्रसंग ८ कृष्णदास ने हू विप्रयोग करी देहको  
 त्याग कीयो ॥ X

इति प्र. ८ समाप्त.

X “संप्रदायकल्पद्रुम”

अहिं विप्रयोगनं निश्पणु छे.



॥ શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

## દામોદરદાસ સંભરવાળાની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય:-

“ચેતસ્તત્પ્રવળં સેવા” इति ॥ ઈશ્વરમાં ચિત્તનું પૂર્ણ પરોવાવવું તેનું નામ સેવા. દરેક મનુષ્યનું ચિત્ત ત્રણ વિભાગમાં વંટાળેલું છે. ૧. ખાનપાન, ૨. ગાનતાન અને ૩. સુંદર પહેરવું ઓઢવું. તે ત્રણે પ્રકારની ચિત્તવૃત્તિને ઈશ્વરમાં યોજવાને અર્થે શ્રીમદાચાર્યચરણે ૧ ભોગ, ૨ રાગ અને ૩ શૃંગાર પ્રાધાન્ય ઐશ્વર્યયુક્ત સેવાનો દામોદરદાસને ત્યાં સર્વ પ્રથમ પ્રાદુર્ભાવ કર્યો છે. શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસને ત્યાં આ સેવા ભાવાત્મક ઐશ્વર્યરૂપે સ્થાપન કરી એટલે અભોગ્ય ઉત્તમોત્તમ વસ્તુ શ્રી પ્રભુને અંગીકાર કરાવવી એવી આજ્ઞા કરી. ( જુઓ પ્ર૦ ૧ ) શ્રી દ્વારકાનાથજીએ તેનો બાહ્ય પ્રાદુર્ભાવ સાંગોપાંગ પ્રકટ કરાવ્યો. (જુઓ પ્ર૦ ૩) એથી મંદિર, ટેરા, ઝારી ઝરોખા આદિ સર્વ લીલા સૃષ્ટિનો ઐશ્વર્યક્રમ પ્રથમ દામોદરદાસને ત્યાં પ્રકટ થયો.

આ રીતે સજ્ઞાન પુરુષ અને અજ્ઞાન પુરુષ બન્નેના મનને આકર્ષીને પ્રભુમાં યોજવાને અર્થે ઐશ્વર્યરૂપ સેવાનો પ્રાદુર્ભાવ કર્યો. આથી અનેક જીવો કૃતાર્થ થયા. “ રાજ કાજે જોડીયા જન ઉચ્ચાવચ નરનાર ” દરેક ઉચ્ચ નીચ તેમજ વિવિધ અવિકારવાળા જીવોનો પણ આ ઐશ્વર્યરૂપ સેવામાં અંગીકાર છે, અને તેની કૃતાર્થતા પણ છે. માટે આ સેવા વિના ચિત્તમાં રહેલી અનેક પ્રકારની વાસનાઓનો નિરોધ દુઃશક્યજ નહિ પણ અશક્યજ છે. માટે ઉપરના દેખાવ પૂરતા પાખંડ ધર્મયુક્ત સંન્યાસાદિ કરતાં ભગવત્સેવાનિમગ્ન ગૃહસ્થાશ્રમજ એક સર્વમુલભ ભગવત્પ્રાપ્તિના સાધનરૂપ છે. આ સેવાથી અહંતા મમતા સહજમાં નષ્ટ થાય છે. (જુઓ દામોદરદાસની સ્ત્રીનું પુત્ર ઉપરનું મમત્વ કેવું દૂર થયું ? પ્રસંગ ૭-૮ ) અને



आगल उपर पुष्टिना संन्यासरूप विप्रयोग अवस्थानी सिद्धि प्राप्त थाय छे.

आथी आ दामोदरदासनी वार्तामां अप्राकृत औश्वर्यनुं आधिदैविङ् सेवा अर्थे प्राकृत्य निरूप्युं छे. माटे आ वार्ता श्रीआचार्यजना भावात्मङ् निरोधना आधिदैविङ् औश्वर्यरूप डही.

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके सेवक दामोदरदास संभलवारे क्षत्री कन्नोज के वासी तिनकी वार्ता ॥

दामोदरदास कों बालपनें तें विरह हतो जो श्रीठाकुरजी की प्राप्ति कोंन प्रकार सो होई ? सो शरण आये पहेले दामोदरदास एक समय प्रयाग में आए को प्रकार हते मकरस्नानको ॥ सो कृष्णदास ( जन्म १ ) सो मिलाप भयो ॥ तब चर्चा करत कृष्णदास (मेघन) ने कही श्रीवल्लभाचार्यजी प्रकट भये हैं ॥ सो दक्षिण में पधारे हे ॥ कृष्णदेव राजा की समिपे मायावाद खंडन कीए हे ॥ उनकी कृपातें निश्चय श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ मेरे गुरु सों नेह हे तिनसो कछु कार्य मेरो भयो नांही ॥ तातें जब में जहां श्रीआचार्यजी



होइंगे तहां जाऊंगो ॥ यह दामोदरदाससों कहे के कृष्णदास दक्षिण देश गए ॥

जब तें दामोदरदास के पास तें कृष्णदास मेघन श्रीआचार्यजी पास गए ॥ तब तें दामोदरदासको विरह बहोत रहे ॥ जो मोकों श्रीआचार्यजी कोन प्रकार मिलेंगे ? ॥ या प्रकार विरह करत माह महिना में मकरस्नान दामोदरदास कीए ॥ सो महा सुद १५ को दामोदरदास मकरस्नान करत हते ॥ ता समय एक तांवे को पत्र गंगा यमुना के संगम में तें दामोदरदास के हाथ आयो ॥ सो दामोदरदास घर लाए ॥ जब रात्रिकों दामोदरदास सोए ॥ तब दामोदरदास को स्वप्न भयो ॥ यह पत्र बांचे ताकी तू शरन जैयो ॥ तब सवारे उठि के प्रयाग में बड़े २ पंडित ब्राह्मण महापुरुष मकरस्नानको आए हते ॥ तिन सबन को वंचायो ॥ कोई बांचि न सके ॥ तब दामोदरदास काशी में सेठ पुरुषोत्तमदास के इहां व्योहार हतो ॥ ( तहां गये ) खरच की हुंडी सेठ पुरुषोत्तमदास के यहां ले गये हते ॥ तिनसों सगरी बात दामोदरदासने कही जो यह पत्र श्रीआचार्यजी बांचेंगे ॥ और काहूकी सामर्थ्य नाहीं ॥ मोसों कृष्णदास मेघन कहे गए हैं ॥ जो श्रीआचार्यजी की सरन तें श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ (सो) यह सुनिके सेठ पुरुषोत्तमदास हू को चटपटी लागी ॥ जो मोको कब श्रीआचार्यजी को दरसन होइंगे ? सो सेठ पुरुषोत्तमदासकी वार्ता के भाव में वर्णन करेंगे ॥ या प्रकार दामोदरदास दिन १५



કાસો રહે ॥ પરંતુ પત્ર કોડ ન વાંચ્યો ॥ તવ કન્નોજ મેં  
અપને ઘર આણ ॥ એસે વિરહ કરત \* કલૂક મહિનામેં શ્રી  
આચાર્યજી મહાપ્રભૂ કન્નોજ પધારે ॥ તવ ગામકે બાહર બાગમેં  
ઉતરે ॥

॥ શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ॥

### દામોદરદાસ સંભરવાળાનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:-

દામોદરદાસ જાતે ક્ષત્રિય હતા. તેમનો જન્મસમય સંવત  
૧૫૩૦ લગભગનો છે. તેમના પિતા કરોલીના ચંદ્રવંશીય રાજાના  
દિવાન હતા. જ્યારે તેમના પિતાએ દેહ છોડ્યો ત્યારે તેઓ લગભગ  
૨૦ વર્ષના હતા. તેમના પિતાએ તેમને નાનપણથીજ રાજ્યનીતિના  
પ્રખર અભ્યાસી કર્યા હતા અને રાજા સાથે તેમનો ધનિષ્ઠ પરિચય  
કરાવેલો હતો. દામોદરદાસની બુદ્ધિ અત્યંત તીવ્ર હતી અને બહુજ  
નાની અવસ્થામાં પણ તેમના પિતાને કવચિત્ રાજ્યનીતિને અત્યંત  
ઉપયોગી એવી સલાહ આપતા કે જેથી પિતા પોતાના એકના એક  
પુત્રનું મુખ્ય જોઈ રહેતા અને પોતાના પુત્રની બુદ્ધિ ઉપર મુગ્ધ  
થતા હતા. જ્યારે રાજાને દામોદરદાસની તીવ્ર બુદ્ધિનો પરિચય થયો  
ત્યારે દામોદરદાસના પિતાને તેઓએ હુકમ કર્યો કે પોતાના પુત્રને  
નિત્ય રાજ્યદરબારમાં સાથે લાવ્યા કરો અને રાજ્યથી માહિતગાર  
કરો. તેમ કરતાં કરતાં લગભગ પાંચેક વર્ષમાંજ જ્યારે દામોદરદાસના  
પિતાએ દેહ છોડ્યો ત્યારે રાજાએ દામોદરદાસને તેમના પિતાની  
દિવાનગીરી ઉપર કાયમ કર્યા. યદ્યપિ દામોદરદાસ રાજ્યનીતિમાં પૂર્ણ

\* સંવત ૧૫૫૧-૫૨ માં શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધારેલા હોવા  
જોઈએ. ( જુઓ શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ. )



સંડોવાયેલા હતા છતાં તેમનું ચિત્ત વૈરાગ્યથી પૂર્ણ હતું અને ભગ-  
વત્પ્રાપ્તિના અર્થે અનેક સાધુ પુરુષોનો મંગ કરતા હતા.

વ્રજ મં. ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાંત ત્રીજના દિવસે  
શ્રીઆચાર્યજીએ વિદ્યાનગરથી પ્રયાણ કર્યું. સર્વ પ્રથમ દક્ષિણના  
ઝારખંડમાં પધાર્યા. ત્યાં ભગવદ્દાસા થઈ કે આપ વ્રજમાં પધારી  
મારી સ્થાપના કરો. તેથી આપ વ્રજ તરફ પધાર્યા. રસ્તામાં કન્નોજ  
મુકામ કર્યો. ત્યાં ભગવદ્દાસા થઈ કે અહીંના જીવોને શરણે લેવાના  
છે. પ્રથમ આજ્ઞાનું પાલન કરવા આપ શીઘ્ર સંવત ૧૫૪૯ ના  
ફાલ્ગુન માસમાં વ્રજમાં પધાર્યા. ત્યાં શ્રીજીને પાટ બેસાડી મં. ૧૫૫૦  
માં બ્રહ્મમંબંધનો મંત્ર શ્રીજીના શ્રીમુખથી પ્રકટ કરાવી આપ વ્રજ-  
યાત્રા કરી પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા. સંવત ૧૫૫૧-૫૨ માં  
આપ કન્નોજ પધાર્યા.

આપના પધારવાના એક દિવસ પહેલાં દામોદરદાસને સ્વપ્નમાં  
શ્રીદ્વારકાધીશે જણાવ્યું કે મારું જી બીજું સ્વરૂપ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી કાલે  
કન્નોજમાં પધારશે અને તે તને તાંબાપત્રનો અર્થ સમજાવશે. માટે  
તું તેમને શરણે જાજે. જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા ત્યારે  
ગામ બહાર ગંગાતટ ઉપર આપે બગીચામાં મુકામ કર્યો. અને કૃષ્ણ-  
દાસને સામાન લેવા બજારમાં મોકલ્યા. આપણે પહેલા વાંચી ગયા  
છીએ કે કૃષ્ણદાસનો અને દામોદરદાસનો પ્રથમ મિલાપ મં. ૧૫૪૭  
ની મકરસંક્રાંતિ વખતે પ્રયાગમાં થયો હતો. ( જુઓ કૃષ્ણદાસનો  
ઈતિહાસ ) જ્યારે દામોદરદાસ રાજદ્વારમાંથી ઘોડા ઉપર બેસીને  
ઘેર આવતા હતા, તેવામાં બજાર વચ્ચે તેમણે કૃષ્ણદાસને જોયા.  
જેથી તેમણે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પધાર્યા છે કે નહિ તેમ પૂછ્યું. (વિશેષ  
જુઓ વાર્તા.)

x

x

x

શ્રીઆચાર્યચરણે તાંબાપત્ર વાંચીને તેમાંની આકૃતિના થતા



બન્ને અર્થ દામોદરદાસને સમજાવ્યા. માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક અર્થ સમજાવતાં આપશ્રીએ તે આકૃતિઓનું આ પ્રમાણે રહસ્ય કહ્યું:—

આ ગીધ અને સ્ત્રીના જેવી જે આકૃતિ જોવામાં આવે છે તે પૂતનાની છે, અને તે અવિદ્યા (અજ્ઞાન) રૂપ છે. એની પાસે ગર્દભ ( ગધેડા ) ની જે આકૃતિ છે, તે ‘ ઘેનુક ’ રાક્ષસની છે અને તે ‘ દેહાધ્યાસ ’ નું રૂપ છે. એની પાસે જે ઘોડાની આકૃતિ છે, તે કેશી દૈત્યની છે, અને તે ‘ ઇન્દ્રિયાધ્યાસ ’ રૂપ છે. એની પાસે જે રાક્ષસની આકૃતિ છે તે ‘ પ્રલંબાસુર ’ છે અને તે અંતઃકરણાધ્યાસનું સ્વરૂપ છે. એની પાસે જે અગ્નિમંડલ છે તે દાવાનલ છે તે પ્રાણાધ્યાસરૂપ છે અને આ સન્મુખ વેણુનાદ કરતી જે મૂર્તિ છે તે સાક્ષાત શ્રીકૃષ્ણની છે. એ શ્રીકૃષ્ણ અવિદ્યા ( પૂતના ) દેહાધ્યાસ ( ઘેનુક ) ઇન્દ્રિયાધ્યાસ ( કેશી ) અંતઃકરણાધ્યાસ ( પ્રલમ્બ ) ને નષ્ટ કરે છે. અને પ્રાણાધ્યાસ ( દાવાનલ ) નું પાન કરે છે. અને આ પાસેજ જે સર્પની આકૃતિ છે તે ‘ કામક્રોધ ’ રૂપ છે. તેના ઉપર શ્રીકૃષ્ણ નૃત્ય કરે છે. કારણ કે શ્રીકૃષ્ણની આગલ કામક્રોધનું પ્રાપ્ત્ય નથી ચાલતું અને આ ‘ ગોલાકાર ’ આકૃતિ છે તે બ્રહ્મરૂપ છે અને આ સાકાર ‘ બ્રહ્મવાદસૂચક ’ ચિહ્ન છે, એને આ શ્રીકૃષ્ણની સામે હાથ જોડી ઉભેલી સ્ત્રીની આકૃતિ તે ‘ ભક્તિ ’ રૂપ છે તેનો તરફ શ્રીપ્રભુ પ્રસન્નતાથી જોઈ રહ્યા છે. આ ભક્તિની પાસે જે બે બાલકોની આકૃતિ છે, તે જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. એ એમ સૂચન કરે છે કે ભક્તિ થવાથીજ જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. એની પાસે પંજની આકૃતિ છે તેમાં આ દીર્ઘરેખા છે તે પૂર્ણ આયુષ્યની છે. અને આ નાની રેખા છે તે સાધુતાની છે. એની પાસે આ બીજી સન્મિલિત રેખા છે તે ઐશ્વર્યની છે. આની પાસે ભક્તિનું સ્વરૂપ અને ભક્તિ નિરૂપણ તત્ત્વ છે. તેથી એ સિદ્ધ છે કે મનુષ્ય ભક્તિનિષ્ઠ થાય તે દીર્ઘાયુષ્યવાન, સાધુસ્વભાવ, અને ઐશ્વર્યવાન થાય છે. આ પ્રમાણે



બધી આકૃતિની એકવાક્યતા કરીને આધ્યાત્મિક અર્થ દામોદરદાસજીને કહ્યો. પછી ભક્તિ (ભાવ) રૂપ આધિદૈવિક અર્થ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરવા લાગ્યા:--

આ સર્વ આકૃતિઓ અનેક પ્રકારની કુંજોના ચિત્રામણુ રૂપ છે. અને તારું જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ (સ્ત્રી આકૃતિ રૂપ) આ ચિત્રા સખીનું છે. શ્રીસ્વામિનીજીની નિકુંજ મહલમાં ચિત્રામન કુંજ સમ્હારવી એ તારી સેવા છે. અને તું શ્રીસ્વામિનીજીની સખી છે.

આ પ્રકારે જ્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ બન્ને અર્થરૂપ લીલાનું સમગ્ર સ્વરૂપ અને ભાવનું દામોદરદાસને દર્શન કરાવ્યું ત્યારે દામોદરદાસને સમગ્ર લીલા અને પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું. ત્યાર પછી તેઓ શરણે આવ્યા.\*

શ્રીઆચાર્યજીએ રાજસેવાનું પ્રથમ મંડાણ દામોદરદાસને ત્યાં (વ્રજ) સં. ૧૫૫૨ ના ચૈત્ર માસમાં સ્થાપ્યું અને તેથી જ શ્રીઠાકુરજીનું નામ પણ શ્રીદ્વારકાધીશ કાયમ રાખ્યું.

પછી દામોદરદાસે શ્રીઆચાર્યજીને બે હાથ જોડી વિનતિ કરી કે કૃપાનાથ! વ્રજલીલામાં નંદનંદન તો દ્વિભુજ છે, અને આ શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ ચતુર્ભુજ છે, તેમજ પુષ્ટિલીલામાં આયુધધારણનું કારણ શું? તે કૃપા કરીને સમજાવો.

ત્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ અત્યંત પ્રસન્ન થઈ આ પ્રકારે દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે:—

શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ અતિપ્રાચીન છે. આ સ્વરૂપનું વર્ણન શ્રીમદ્ભાગવત, ગીતા, ઉપનિષદ, મહાભારત, વાલ્મીકીય રામાયણ, તુલસીકૃત રામાયણ અને પદ્મપુરાણ આદિ અનેક ગ્રંથોમાં છે.

---

\*તત્ર કલ્કિસ્થાનં દૃષ્ટા કાન્યકુબ્જં સમેત્ય ગજ્ઞાતટે સ્થિતાઃ । તત્ર દામોદરદાસદત્તતામ્રપત્રસ્થલીલાસમ્બન્ધાર્થં નિરૂપ્ય તદભિજ્ઞાનં તત્કર યજ્ઞવલ્ક્યં ચિત્રં પ્રદર્શ્ય, તં સકુટુમ્બં ચ શિષ્યં કૃત્વા, તત્કૃતે શ્રીદ્વારકેશ્વરં પ્રતિષ્ઠાપ્ય । (યદુનાથ દિગ્વિજય પ્રથમ ઉત્તરયાત્રા )



શ્રીદ્વારકાધીશ પરમ ગુપ્ત રહસ્યલીલાનું સ્વરૂપ છે. આ સ્વ-રૂપને કોઈ જાણી શક્યું નથી. તે પૂર્વે આજ સ્વરૂપની રાજ્ય અંબરીષ રૂપે મર્યાદામાર્ગની રીતિથી સેવા કરેલી છે. અને આ જન્મમાં તારે પુષ્ટિરીતિથી સેવા કરવાની હોય છે તને આ સ્વરૂપનું અતિગુપ્ત રહસ્ય કહું છું, તે તું દૃઢ ચિત્તથી શ્રવણ કર. તારા દ્વારા અનેક દેવી જીવોને આ સ્વરૂપનો અનુભવ થશે.

શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીદ્વારકાધીશના ભાવાત્મક સ્વરૂપનું વર્ણન દામોદરદાસજી આગળ આ પ્રમાણે કર્યું:—

આ સ્વરૂપ (શ્રીદ્વારકાધીશ) શ્રીમદ્ભાગવતના દશમસ્કંધના પ્રમેય પ્રકરણના સાતમા અધ્યાયની લીલાનું પ્રાકટ્ય છે. અને અન્ય પ્રકરણની લીલા આપમાં ગુપ્ત છે. તેથી વ્રજલીલામાં આપ પ્રમેય બલ લીલા કરી ચતુર્ભુજરૂપે દર્શન આપે છે.

મુખ્ય પ્રકારથી શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ વન-નિકુંજમાં આંખ મિચોનીની ભાવનાનું છે.

આપના નીચેના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમાં પદ્મ (કમલ) છે. તેનો અવાંતર ભાવ ચૌદભુવન રૂપ છે. તેથી તે આયુધરૂપ છે. યથા ‘ભુવનાત્મકં કમલં’ इति ।

એનો મુખ્યભાવ પુષ્ટિરીતિથી શ્રીસ્વામિનીજીની હથેલી છે. શ્રીકાકુરજીએ શ્રીપ્રિયાજીનાં નેત્ર મિચ્યાં છે તે શ્રીસ્વામિનીજી પોતાની હથેલીથી નેત્રનિમીલન છોડાવે છે.

ઉપરના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમાં ગદા છે. તેનો અવાંતર ભાવ અસ્ત્રના તેજનું નિવારણ છે. તેથી ગદા આયુધરૂપ છે. યથા ‘અસ્ત્રતેજઃ સ્વગદયા’ इति । મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો-અદ્ભુત લીલા જોઈને શ્રીસ્વામિનીજી ભુજાશ્લેષ કરે છે. માટે ભુજના આશ્લેષરૂપ ગદા છે.

ઉપરના વામ શ્રીહસ્તમાં ચક્ર છે તેનો અવાંતર ભાવ તો એ છે કે જેને મુક્તિ દેવી હોય તેને ચક્રથી મારે, માટે તે આયુધરૂપ છે. યથા ‘યે યે હતાચ્ચક્રધરેણ રાજન્’ । इति ।



એનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો શ્રીસ્વામિનીજીએ ભુજ-  
શ્લેષ કર્યો ત્યારે કંકણાદિ સ્પર્શ-ક્ષત ખચિત થાય છે તે આ ચિહ્ન છે.

નીચેના વામ શ્રીહસ્તમાં શંખ છે. તેનો અવાંતર ભાવ તો  
અંસુર-ગર્વ-નિવૃત્તિ છે તેથી તે આયુધરૂપ છે. યથા ‘ વિષ્ણોર્મુખોત્થા-  
નિલપૂરિતસ્ય તસ્ય ધ્વનિર્દાનવદર્પહંતા ’ इति ।

તેનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો એ છે કે શ્રીસ્વામિનીજીના  
નેત્રને મિચ્યાં તે સમયે સન્મુખથી ગ્રીવાનો સ્પર્શ થાય છે.

આ, શ્રીઆચાર્યજીએ જે ભાવ દામોદરદાસને કહ્યો તે શ્રી  
દ્વારકેશજીએ જનહિતાર્થ સ્વરચિત ભાવનાના ગ્રંથમાં શ્રીદ્વારકાધીશના  
સ્વરૂપવર્ણનમાં સંસ્કૃતમાં શ્લોકબદ્ધ કર્યો છે. તે આ પ્રમાણે છે:—

પ્રિયા મુજાશ્લિષ્ટમુજઃ કંકણાકૃતિચક્રકઃ ।

કંબુકંઠે ઘૃતમુજો લીલા કમલ વેત્રધૃક્ ॥ ૧ ॥

શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ આંખમિચ્યોનીનું છે તેની ભાવનાનો શ્લોક:—

ભ્રૂવલ્લીસંજ્યાદૌ સહચરિનિકરં વર્જયિત્વા સ્વકીયં,

પશ્ચાદાગત્ય તૂળ્લીમથ નયનયુગં સ્વપ્રિયાયા નિમીલ્યઃ ॥

કોઽસ્મીત્યેતદ્વચનમસકૃદ્દેણુના ભાષમાણઃ,

પાતુ ક્રીડારસપરિચય સ્વાઞ્જતુર્વાહુરુચ્ચૈઃ ॥ ૧ ॥

અર્થ:—શ્રીજમુનાજીના તટ ઉપર નિકુંજમાં પોતાના યૂથની  
સખીને પોતાની પાછલ રાખીને અને શ્રીઠાકુરજીના મેલની સખીને  
પોતાની આગલ બેસાડી શ્રીસ્વામિનીજી મધ્યમાં બિરાજી હાસ્યવિનોદ  
કરતાં હતાં. એવા સમયે વનમાંથી શ્રીપ્રભુ શ્રીસ્વામિનીજીની  
પાછલથી પધાર્યા. તે શ્રીપ્રિયાજીની આગલ બેઠેલી શ્રીઠાકુરજીની  
સ્વકીય સખીએ આપને પધારતા જોયા. શ્રીઠાકુરજીએ એને બ્રહ્મકુટી  
ચલાવીને રોકી અને કહ્યું કે મારૂં પધારવું પ્રિયાને જણાવે નહિં. પછી  
યુપચાપ પધારી પાછલથી પ્રિયાજીના બન્ને નેત્રો મીચ્યાં. તે પછી



આપે પ્રિયાજીને પૂછવાની ઇચ્છા કરી કે હું કેણુ છું ? પરંતુ જો મુખથી બોલે તો અદ્ભુત લીલાનું રહસ્ય ખુલી જાય છે તેથી તે ક્ષણે આપે પ્રમેયબલથી બીજા બે શ્રીહસ્ત પ્રકટ કરી બેઉ શ્રીહસ્તથી વેણુનાદ કરીને વેણુમાં પૂછ્યું કે હું કેણુ છું ?

વેણુદ્વારા આ વચનને સાંભળીને શ્રીસ્વામિનીજી આશ્ચર્યચક્ર થયાં. અને મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યાં કે બે શ્રીહસ્તથી નેત્ર મીચ્યાં છે, અને બે શ્રીહસ્તથી વેણુદ્વારા પૂછે છે કે હું કેણુ છું ?

પોતાના પ્રિયતમની આ અદ્ભુત લીલા જોઈને શ્રીપ્રિયાજીએ ઉત્તર દીધો કે આપ ચતુર્ભુજ છો. એવી રીતે પરસ્પર અત્યંત રસરૂપ આનંદની વૃદ્ધિ થઈ.

ત્યાર પછી શ્રીઆચાર્યજીએ દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે તેથીજ આપના શ્રીઅંગમાં ચારે આયુધનાં સ્વરૂપ મૂર્તિમાન છે. પ્રિયાનાં આવિર્ભાવાવિષ્ટ સ્ત્રીરૂપ છે અને પ્રિયા જે સ્વામિની તે કરીને વિશિષ્ટ સ્વરૂપ આપનું છે. તેથીજ આપની પીઠિકા (કંદરા) ચોખ્ખૂંટી છે. પીઠિકાના વામ ભાગમાં ચક્રના ઉપર જે પદ્માસનથી બિરાજેલું ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે એ સ્વરૂપ છે કે જેણે કારાગારમાં વસુદેવ દેવકીને ત્યાં પ્રકટ થઈ દર્શન દીધાં અને આજ્ઞા કરી:—યથા ‘एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे’,

પીઠિકાના દક્ષિણ ભાગ તરફ ગદાની ઉપર પદ્માસનથી બિરાજેલું જે ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે સૃષ્ટિકર્તા લક્ષ્મીપતિ નારાયણનું સ્વરૂપ છે. આપ બ્રહ્માને ત્યાં બિરાજતા ત્યારે સૃષ્ટિકર્મ આ સ્વરૂપદ્વારા થતો. યથા શ્રી માં દ્વિં સ્કંં નં અં । ‘ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितं’.

ઈત્યાદિથી આપે પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન કરાવ્યું અને પછી આજ્ઞા થઈ કે:—

‘ एतन्मतं समांतिष्ठ परमेण समाधिना ।

भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् । ’



એ આજ્ઞા આ સ્વરૂપથી થઈ તે આ સ્વરૂપ છે. આ સ્વરૂપનું બીજું પ્રમાણ શ્રી ભા૦ તૃ૦ સ્કં૦ ન૦ અ૦ સમાપ્તિમાં શ્લોક:—

સર્વવેદમયેનેદમાત્મનાત્માત્મયોનિના ।

પ્રજાઃ સૃજ યથા પૂર્વં યાશ્ચ મય્યનુશેરતે ॥ ૪૩ ॥

તસ્માદેવં જગત્ સષ્ટૈ પ્રધાનપુરુષેશ્વરઃ ।

વ્યજ્યેદં સ્વેન રૂપેગ કંજનાભસ્તિરોદધે ॥ ૪૪ ॥

આજ સ્વરૂપ દ્વારા આ આજ્ઞા થઈ. તેથી આ બંને વામ અને દક્ષિણ બંને ભાગનાં સ્વરૂપ પણ આપ શ્રીદ્વારકાધીશનાંજ વસ્તુતઃ છે. લીલાકરણ પીઠિકામાં પ્રથમ દર્શન દે છે.

હવે બંને તરફ નીચેના શ્રીહસ્તની નીચે બે બે સ્વરૂપ મલીને ચાર છે. તેનું સ્વરૂપ કહે છે:—

પૃથક્ પ્રમાણથી તો એ ચારે પાર્ષદ છે. એમનાં નામ સુનન્દન, નન્દ, પ્રબલ, અને અર્હણ છે. બીજા પ્રમાણથી એ ચારે વેદ છે. ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, અથર્વવેદ અને સામવેદ ।

ત્રીજા પ્રમાણથી એ ચારે વ્યૂહ છે—પ્રદુમ્ન, અનિરુદ્ધ, સંકર્ષણ, અને વાસુદેવ. અને ચોથા પુષ્ટિના પ્રમાણથી એ ચાર ચૂથાધિપતિ છે. ચાર મુખ્ય સ્વામિની છે—નિત્યસિદ્ધા (શ્રીરાધિકાજી), શ્રુતિરૂપા (શ્રીચંદ્રાવલીજી), ઋષિ રૂપા (શ્રીકુમારિકા રાધા સહચરીજી) અને તુર્ય પ્રિયા (શ્રીજમુનાજી)

હવે શ્રીઅંગના ચિન્હોનું સ્વરૂપ કહે છે:—

શ્રીમસ્તક ઉપર કિરીટ છે તે પ્રથમ મર્યાદાનો અંગીકાર છે. મુખ્ય પુષ્ટિ ભાવથી તો મથૂરપક્ષના મુકુટનોજ પર્યાયરૂપ કિરીટ છે. મલ્લકાછ કટિમાં ધારણ છે તે સૃષ્ટિ રચવી શ્રમસાધ્ય છે, તેથી. પુષ્ટિભાવ તો કામને જીતવાના હેતુથી નટવત્ વિહારરૂપ મલ્લકાછ છે. યજ્ઞોપવીત ધારણ છે તે શ્રુતિનો અંગીકાર છે. અને શ્રીકંઠમાં હાંસ ધારણ છે તે શ્રીસ્વામિનીજી સન્મુખથી આશ્લેષ કરે છે તે



આપના ઉભય મુખની કાંતિ પ્રભાસ્પ છે. વનમાલા છે તે યાવત્ વ્રજભક્તોનો અંગીકાર કરે છે. ચરણમાં નૂપુર, પાયલ અને શ્રીહસ્તમાં કડાં છે તે આપનું યુગલ સ્વરૂપ ભાવાવિશિષ્ટ સ્વરૂપ છે તેથી યુગલતા સૂચિત છે. કિરીટના પાછલ તેજનું ચિહ્ન છે તે ક્રાંતિકર્ધલાવણ્ય અમંખ્ય સૂર્ય આપના તેજની આગલ લન્નિત છે.

આ પ્રકારે આપના શ્રીઅંગનાં ચિન્હ છે. આવા પ્રકારનું આપનું સુંદર સ્વરૂપ અગમ્ય છે. \*

શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી દામોદરદાસે શ્રીદ્વારકાધીશનું સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપ શ્રવણ કરી હૃદયમાં ધારણ કર્યું. જેથી તેમને સમગ્ર લીલા સ્ફુરી. ત્યારે પોતે લોકલજ્ઞ કુલકા'નનો ત્યાગ કરી પરમ સ્નેહથી સેવા કરવા લાગ્યા.

દામોદરદાસનું અવસાન સંવત ૧૫૭૭ લગભગ છે. (વ્રજ સં.) ૧૫૭૭માં શ્રીદ્વારકાધીશ શ્રીમહાપ્રભુજીને ત્યાં પધાર્યા.

### —:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

ચિત્રાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોણક આ પ્રમાણે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	બાજ	રાગ	વય
રુચિભાનુ	રુચિરકલા	પીન શરીર લંબચોડા કેશ અધકચરે	લીલાં	જ્યોતિષ ચિત્રકલા	સીતાર	શંકરા	વર્ષ ૧૩ માસ ૮

આ પ્રકારે ચિત્રાજીનું ધ્યાન કરવું. તે મુખ્ય અષ્ટસખીમાં છે. એમને ત્યાં ૧૬૦૦૦૦૦ ઓગણીશ લાખ ગાયો છે અને શ્રીકુંડની પૂર્વ આનંદ સુખદનામ એમની કુંજ છે. એ જ્યોતિષ સાર જાણે છે. (તે લીલાના સંબંધથી અહીં પણ દામોદરદાસને પૂર્વસૂચિત તાંબાપત્ર પ્રાપ્ત થયું.) તેમની સેવા નિકુંજમાં ચિત્રામનની છે. દામોદરદાસ સંભરવાળાનું સ્વરૂપ ચિત્રાજીનું છે.



जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तहां गाम के  
 बाहिर एक बाग हतो तहां आप उतरे ॥  
 शरण आयवेको ओर कृष्णदास को गाम में पठायो ॥  
 प्रकार जो सीधो सामग्री ले आउ ॥ परि  
 काहूसों कहीयो मति ॥ जो श्रीआचा-  
 र्यजी आप पधारे हैं ॥

यह कहे ताको अभिप्राय यह हे जो दामोदरदास कृष्णदास  
 को मिलेगो ॥ सो दामोदरदास सों पहिले  
 श्रीहरिरायजी कृत आपहि कहे जो श्रीआचार्यजी पधारे हे ॥  
 भावप्रकाश. सो दामोदरदास द्रव्यपात्र हे ॥ तातें इनके  
 बुलायवेकी अपेक्षा यह मनमें आवे तो  
 कृष्णदासको विगार होइ ॥ सो ताते बरजी दीए जो काहूसों  
 कहियो मति ॥ प्रीति होइगी तो आपुही आवेगो ॥ यह अभिप्राय  
 जाननो ॥

ओर दूसरो अभिप्राय यह हे जो जा दिन श्रीआचार्यजी कन्नोज  
 पधारे तातें पहलेई श्रीआचार्यजी आपको ( श्रीठाकुरजीकी ) आज्ञा  
 भई हती ॥ जो यहांके ( कन्नोज के ) जीव पावन करने हे ॥ तातें  
 श्रीआचार्यजी आप विचारे जो आग्या भई हे तो आपही होइगो ताके  
 लिये नाहि करी हती ॥



तब कृष्णदास गाममें गए ॥ सीधो सामग्री सब लीनी ।

सो सब ले के चले तहां दामोदरदास

वार्ता

राजद्वारतें आवत हते ॥ सो मारग

में जात कृष्णदास कों पहचानें ॥ तब

दामोदरदास घोडातें उतरि के कृष्णदास के पास आए ॥

तब दंडवत करि के कह्यो ओर पूछ्यो जो श्रीआचार्यजी  
महाप्रभू पधारे हैं ? ॥ तब कृष्णदासने विचार्यो जो श्री  
आचार्यजी की आज्ञा नाही\* (तातें कछु उत्तर दीयो नाहि)

तब दामोदरदासने विचार्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी बिना  
ए काहेको आवे ? सो जब कृष्णदास चले तब दामोदरदास  
पाछे पाछे आए ॥ घोडा घर पठवाइ दीयो ॥

तब कृष्णदास को ओर दामोदरदास कों दूरि तें आवत  
श्रीआचार्यजी ने देखें ॥ तब दामोदरदासने दंडवत कीये ॥  
तब कृष्णदाससों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तेंने वासों क्यो  
कह्यो ? ॥ तब इनने (कृष्णदासने) कही महाराज मेने तो  
इनसों नाही कही ॥ तब दामोदरदासने श्रीआचार्यजी सों  
बिनती कीनी जो महाराज इनने तो मोसों नाहि कही ॥  
हों तो इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥

पाछे श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदाससों पूछी जो पत्र  
पायो हे सो लायो हे ? ॥ तब दामोदरदास ने बिनती

---

\* तब कृष्णदासने कही आज्ञा नाहि ॥ आवे पाठ पणु भीष्म  
केटकीअेक प्रतोभां छे.



कीनी ॥ जो महाराज पत्र को कहा काम हे ? तब श्रीआ-  
चार्यजी आप कही जो तोकों आज्ञा भई हे ॥ जो पत्र बांचे  
ताकी सरन जैयो ॥ तातें पत्र ल्याऊ ॥ तब पत्र मंगवायो ॥

श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सेां कह्यो जो तेनें इनसों क्यों कह्यो ॥

यह कहे ताको कारण यह जो ' तेने आज्ञा

श्रीहरिरायजी कृत नांही ' यह कह्यो तामें हमारे पधारनो तो

भावप्रकाश कह्यो ॥ तब दामोदरदासने कही जो इनने

नाही कह्यो ॥ में इनके पाछे चलयो आयो

हूं ॥ या प्रकार दैन्यता सिद्ध कीए ॥

जब दामोदरदासने कह्यो पत्रको कहा काम हे ? यह कही  
दामोदरदास ने यह जतायो जो आप ईश्वर हो ॥ मोको अनुभव भयो  
हे ॥ तब ( श्रीआचार्यजी ) कहे ल्याव भगवद्आज्ञा होय तेसेहि  
करनो ॥

तब श्रीआचार्यजी ने पत्र मंगवायो हतो सो बांच्यो ॥

पाछे वाको अभिप्राय दामोदरदाससों

वार्ता कह्यो<sup>+</sup> ॥

+तू चित्रा सखि हे । श्रीस्वामिनीजी की निकुंज महलमें चित्रामन  
कुंज सवारनों यह तेरी सेवा हे ॥ सो श्रीआचार्यजी ( स्वामिनीजी ) की  
तू सखि हे ॥ उनहि की सरन जैयो ॥ यह बांचि सूनाये ॥ ( श्रीहरि-  
रायजी ) विशेष श्रुत्ये। दामो० नी वार्ताना रहस्यभां.



पाछें दामोदरदास को नाम सुनायो \* ॥ पाछे श्रीआचार्यजी को दामोदरदास नें अपने घर पधराए ॥ पाछे दामोदरदास की स्त्री हू सरनि आई ॥ तब दामोदरदासको ओर उनकी स्त्री को समर्पन करवायो ॥ एक छेांडि दैवी जीव हती सोउ शरन आई ॥

तब दामोदरदास नें वीनती करी जो महाराज अब कहा आज्ञा होत हे ? अब हम कहा करे ? तब श्रीआचार्यजी श्रीमुखतें आज्ञा किए ॥ जो अब तुम वाताप्रसंग १ सेवा करो ॥ तब दामोदरदासनें कही ॥

जो महाराज सेवा कोन प्रकार करे ? तब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने कही ॥ जो कहूं श्रीठाकुरजीको स्वरूप होय सो देखो ॥ सो एक दरजी के यहां श्रीठाकुरजी को स्वरूप हतो ॥ ताको द्रव्य देके स्वरूप अपने घर ले आए ॥ पाछें घर सब पोते ॥ पात्र सब बदलाये ॥ पाछें श्रीआचार्यजी ने वा स्वरूप को पंचामृत करवायो ॥ श्रीद्वारकानाथजी नाम धर्यो + ॥

श्रीद्वारकानाथजी नाम यातें धर्यो जो राजरीतिसो प्रथम सेवाको श्रीहरिरायजी कृत विस्तार दामोदरदास के माथे सोंपे हे ॥ भावप्रकाश.

---

\* स्वयं अनुग्रहपत्ते आप इन्तोण पधारी डोर्ध पणु प्रडा- रना अवकृत साधनथी अपेक्षा राभ्या विना (स्वयं साधनरूप थर्ध) दामोदरदासने शरणे लीधा. अहीं पुष्टिनुं निरपणु छे. + श्रीद्वार-



पाछें सिंहासन पाट बेठाए ॥ दामोदरदास के माथे सेवा  
 पधराय के पाछें श्रीआचार्यजी आप रसोई  
 वार्ता करि के भोग समर्प्यो ॥ समयानुसार भोग  
 सरायो ॥ तब बीडा समर्पन लागे ॥ तब देखें  
 तो पान हरे हैं । तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों खीजके  
 कहें जो हरे पान श्रीठाकुरजी कों न समर्पिए ॥ उत्तम तें  
 उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए ॥ श्रीठाकुरजी  
 तो उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हे ॥

काधीशनी प्राकट्य वार्ताभां आ प्रसंगतुं पाठांतर आ  
 प्रमाणे छे:—तब आपने आज्ञा करी कि—तुम्हारे या गाम में एक  
 विष्णुस्वामि संप्रदाय को शिष्य क्षत्री नारायणदर्जी है, वाके घर एक अति  
 प्राचीन स्वरूप विराजे हे, सो पधराय लाओ ॥ तब सेठजी (दामोदरदास)  
 ने कही, जेसी राज की आज्ञा हे वोही करूँगो । वे यह कहके दर्जी  
 के यहां गए, रस्ता में जाते जाते मन में विचार्यो बड़ो आश्चर्य है कि  
 इतने वर्ष सँ मैं या गाम को रहिवेवारो ओर मोकूँ दर्जी के यहाँ की  
 खबर नहि है, कौन है, कहाँ रहे है, यह विचारते घर पूछते पूछते  
 पहुँचे । दर्जी कूँ खबर लगी कि प्रधान सेठ दामोदरदासजी आवे हैं ॥  
 सो वह अपने घर के द्वार पे हाथ में नजराना लिये ठाडो भयो सो  
 सेठजी कूँ देखतेई बहुत विनीत भाव सँ हाथ बढाय के नजराना कियो ।  
 बहुत मंदवाणी सँ प्रधान को स्वागत कियो । सेठजी ने नजराना नहि  
 लियो x x x दर्जीने पूछ्यो—आज आप मेरे गरीब के घर कैसे आए ?  
 x x x तब सेठजी ने कही—जिनको चंपारण्य में प्राकट्य भयो हे वेही  
 श्रीवल्लभाचार्यजी यहां पधारे हैं । उनने तुम्हारे पास मोकूँ भेज्यो है ।  
 तुम्हारे यहाँ, जो निधि विराजे है उनकूँ पधरायवेकी आज्ञा करी है सो  
 जो चाहिये सौ तुम्हारो सब प्रकारको प्रबन्ध मैं राज्य की आडीसूँ



ઉત્તમ તે ઉત્તમ સામગ્રી હોઈ સો શ્રીઠાકુરજી કો સમર્પિણ ॥  
તા પાછે સ્ત્રીપુરુષ મલી માંતિ સો સેવા કરન લાગે ॥ સો  
શ્રીદ્વારકાનાથજી કી સેવા મલી માંતિ સો હોન લાગી ॥ ઓર  
શ્રીઆચાર્યજી ને આજ્ઞા દીની ॥ જો ઉતર્યો પરકાલો ( વસ્ત્ર  
કો થાન ) હોઈ તામેતે શ્રીઠાકુરજી કો ન સમર્પિણ ॥ સારે  
પરકાલે મેતે પ્રથમ શ્રીઠાકુરજી કો લીજિયે ॥ ઓર ઉત્તમ  
સામગ્રી હોઈ તામેં તે ઓર ઠોર ન સ્વરચિણ ॥ તા પાછે સ્ત્રી  
પુરુષ નીકિ માંતિ સો સેવા કરન લાગે ॥

કરાય દઉં । x વિશેષ જુઓ કાંકરેલી વિદ્યા વિભાગ તરફથી પ્રગટ  
થયેલી “શ્રીદ્વારકાધીશની પ્રાગટ્ય વાર્તા”

શ્રીદ્વારકાનાથજી દરજીને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થયા તે માટે એ  
મત ઉપલબ્ધ થાય છે. શ્રી દ્વા. ની પ્રાગટ્ય વાર્તામાં નિચે પ્રમાણે  
છે:—વા નારાયણ દરજી કું રાત મેં સ્વપ્ન મયો, તામેં શ્રીદ્વારકાધીશ ને  
આજ્ઞા કરી કિ—હમારો નામ દ્વારકાધીશ હૈ ઓર હમ આવુ પર્વત પે ઋષિન  
કે આશ્રમ મેં વિરાજે હૈ તૂ મક્ત હૈ । તેરી શ્રદ્ધા સૂં હમ પ્રસન્ન હોય કેં તોકું  
આજ્ઞા કરે હૈં કિ અમી જો ચંપારણ્ય મેં આચાર્ય જનમે હૈં, ઉન્કે યહાં  
હમકું પધારનો હૈ, સો તેરે દ્વારા હમ પધારેંગે । તૂ યહાં આવૂ આય  
કે ઋષિન સૂં હમકું માંગકે અપને ઘર લે જાવ । ( અષ્ટમોહાસ ).

પછી દરજી આશુ જઈને રૂપીની પાસેથી સ્વરૂપ પધરાવી લાગ્યો.  
છે—તે બધુ વૃતાંત છે.

આ નારાયણ દરજીની વહનું નામ લક્ષ્મી અને બહેનનું નામ  
સરસ્વતી હતું. વિશેષ જુઓ “શ્રી દ્વા. ની પ્રાગટ્ય વાર્તા” “વિદ્યા  
વિભાગ કાંકરેલી” ની બીજી મત ( પ્રાચીન પ્રતના આધારે ):—



ओर सेवा सामग्री ऐसी होती जो सोने के कटोरा में  
अमरस राखते ॥ सो एसो उच्यताते सो ओर कोई न जाने  
जो यामें कछु सामग्री धरी हैं ॥ या भांति सो दामोदरदास  
सेवा करन लागे ॥

पाछे वस्त्रादिक की रीति बताए ॥ जो ओर कार्य में कछु आयो  
होइ तो ( सो वस्तु ) श्रीठाकुरजीके काम  
श्रीहरिरायजी कृत न आवें ॥ जाके अर्थ उठे ॥ तिनको  
भावप्रकाश. प्रसाद कहावे ॥ तातें पहले श्रीठाकुरजी  
को सब सामग्री में ते लेनो ॥ श्रीठाकुरजी

सो दरजीने अपनो घर बनवायो ॥ द्रव्यमान हतो सो नींव में  
श्रीद्वारकानाथजी पधारे ॥ प्रगटे ॥ सो मर्यादा रीति सों दरजी पूजा  
करे ॥ सो दामोदरदास के शरण आये पहले पांच वर्ष अगाल श्रीठाकु-  
रजीने बिचार्यो जो ॥ दामोदरदास सों पुष्टि रीति सों सेवा करावनी  
हे ॥ तातें दरजी को सगरो धन नास कीए ॥ दरजी के घर खानपान  
को कसालो भयो ॥ तब दरजी को एक सैव मिलापी हतो ॥ तासों  
दरजीने पूछी मेरो द्रव्य सगरो गयो ॥ ठाकुर की पूजा हू करत हों सो  
कहा कारन ? ॥ तब सैव ने कहि तूं देवी की पूजा करे तो द्रव्य होइ ॥  
ठाकुर पूज्यो तातें निर्धन भयो ॥ तब दरजी देवी को पूजन करन  
लाग्यो ॥ श्रीठाकुरजी कों एक आलिया में बेठाय राखे ॥ सो कछू द्रव्य की  
प्राप्ति भई ॥ तब दरजी को विश्वास देवि पर भयो ॥ मन में यह रहे  
जो कोई ठाकुर ले जाय तो आछो ॥ सो दामोदरदास ने खवरि पाई  
तब कछूक द्रव्य दे के उह दरजी सों द्वारकानाथजी कों लाये ॥ x x x x

आ लोकमत हेरि लौकिनी भाषा छे अटले न समाधिऽप  
रहस्य भाषामां नेटली उपीयोगी थर्ध पडे तेटलीन आद्य छे.



की सामग्री में ते अन्य ठोर खरच न करना ॥ या प्रकार पुष्टिमार्ग की रीति सबकों बताए ॥

पाछे श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमाको पधारे ॥ जीनके सामग्री पिरि सोने के पात्र में मिलि जाई ॥ उज्ज्वल सामग्री रूपे के पात्र में मिलि जाइ ॥ यह गूढ भाव जनाए ॥ सोने के मिष श्रीस्वामिनीजी के भाव ते रूपे के मिष श्रीचंद्रावलिजी के भाव सों सेवा करते ॥

इति प्र. १ समाप्त.

ओर दामोदरदास श्रीठाकुरजी को जल आप भरते ॥  
 सो एक दिन दामोदरदास को सुसर  
 वार्ता प्रसंग २ दामोदरदास के घर आईके दामोदर-  
 दास सों कहन लागे ॥ जो तुम जल  
 भरि लावत हो ॥ सो हमकों जाति में लज्जा आवति हैं ॥  
 ताते तुम जल मति भरो ॥ लोंडी पास जल भराओ ॥

तब दामोदरदास बिचारे जो सूरदासजि गाए हैं ॥  
 “सूर भजन कलि केवल कीजे लज्जा कान निवारि” ओर  
 किर्तन में गाए हैं ॥ “कानन काहूकी मन धरीए वृत्त अनन्य  
 एक लहीए हो ” यह बिचारी अस्त्री सों कहे तुमहू जल लेंन  
 चलो ॥ तब दामोदरदासने दूसरे दिन एक घडा तो आपु  
 लीयो ॥ एक घडा स्त्रीके हाथ में दीनो ॥ तब स्त्री भगवदी  
 सो घडा (गागरि) ले ससुर (दामोदरदास के) हाट आगे



तैं चले ॥ तब दोउ जने ( फेर ) बाकी हाटके नीचे होय के निकसे ॥ तब जल लेके आए ॥ तब पाछे दामोदरदास को ससुर आयो ॥ सो आइ के दामोदरदास के पाइन पर्यो ॥ ओर कह्यो जो में चूकयो ॥ जो तुमसों कह्यो ॥ अब ते तुमही जल भरो परि अस्त्री जन पास जल मति भरावो ॥ आज पाछे हम कछु न कहेंगे तब आपहि जल भरन लागे । श्रीठाकुरजी दामोदरदाससों सानुभावता जनावन लागे ॥ जो कछु चाहिये सो दामोदरदास पास मांगि लेइ ॥ बातें करे ॥ सेवा करि के दामोदरदासने श्रीठाकुरजी को ऐसे प्रसन्न कीये ॥ सो इनकी सेवा देखि के श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये ॥ तब आप अपने श्रीमुखते कहें ॥ जो जिन राजा अंबरीष न देख्यो होइ सो दामोदरदास को देखो राजा अंबरीष तो मर्यादामार्गीय हुतो । और ये पुष्टिमार्गीय हैं ॥ इनमें इतनी अधिकताइ है ॥

दामोदरदास जलकी सेवा श्रीयमुनाजी के भावतैं करतैं ॥ तातैं श्रीआचार्यजी कहें ॥ मर्यादामें अंबरीष पुष्टि श्रीहरिरायजी कृत में दामोदरदास राजसेवा कीए ॥ तब तत-भावप्रकाश. हरा रुपे के अंबरीष की उपमा कैसे जानिए जेसैं श्रीठाकुरजी की मुखकी उपमा चंद्रमाकी ॥ काहेतैं कहां मर्यादा कहां पुष्टि ? कोटि गुनो तारतम्य जाननो ॥

जब दामोदरदासके सुसरने कही ॥ अस्त्रिसो जलमति भरावो



तब दासोदरदास कहे । जल न भरावेंगे ॥ पाछे ससुर गयो ॥ तब दामोदरदासनें बिचार्यो जो जलकी सेवा ( स्त्री जनसें ) कराई ॥ सो जो अब में छुड़ाऊ तो मोको ससुराकी का'नको दोष परे । परंतु एकवार बरजोगो, प्रीति होइगी तो स्त्री आपुहि न छोड़ेगी ॥ (यों बिचार के) जो एकवार भर्यो सो सोवार भर्यो अब गामके (लोग तो) जान चुके ॥ अब में सेवा क्यों छोड़ें ? ॥ प्रीति होइगी तो या भांति (बिचारके) भरेगी ॥ ताते में हठ करिके भराऊ तो प्रीति बिना श्रीठाकुरजी अंगीकार न करेंगे ॥ ताते एकवार बरजो तो सही ॥ तब (स्त्री सों) कहें ॥ अब मेंही जल भरेंगे ॥ तुम मति भरो ॥ तिहारे पिताको लाज लागत हे ॥ तब स्त्रीने कही तुमही भरो ॥ या प्रकार पिताकी का'नको दोष भयो ॥ सो आगे जाय के अन्याश्रय भयो ॥

जो दामोदरदास ससुरके आग्रह का'न तें जलकी सेवा छुड़ावते ॥ तां इनहूँको बाधक होतो ॥ तासों फेर सेवा करन लागे ॥

इति प्र. २ समाप्त.

ओर एक समें उष्णकाल के दिन हते ॥ तब दामोदरदास श्रीठाकुरजी को मंदिरमें पधराइ  
 वार्ताप्रसंग ३ पोठाइके आप चोवारे जाइ सोये ॥  
 तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी को आज्ञा दीनी जो तू किंवाड खोलि ॥ मोको गरमी बोहात होत है ॥ तब लोंडीने मंदिर के किंवाड खोले ॥ तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी सों कह्यो जो पंखा करि ॥ तब लोंडि



ने पंखा कीयो ॥ तब श्रीठाकुरजीने लोंडि सो कह्यो ॥ जो  
 तू जा, रहन दे ॥ तब लोंडि किंवाड खुले छोटिके सोयवे गई ॥  
 तब सवारो भयो तब दामोदरदास देखे तो मंदिरके किंवाड  
 खुले हैं ॥ तब पूछे जो किंवाड कोन ने खोले हैं ? तब लोंडि  
 ने दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मोक्कू श्रीठाकुरजीने आज्ञा  
 दीनी ही जो तू किंवाड खोलि ॥ तब मेने किंवाड खोले  
 हैं ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मोसू खोलिवेकी क्यों न  
 कही ? आप खोले ॥ फेर दामोदरदास के मनमें आई ॥ जो  
 श्रीठाकुरजी ने मोसों किंवाड खोलिवेकी क्यों न कही ? ॥  
 और लोंडि सों क्यों कहे ॥ परि प्रभु बडे दयाल हैं ॥ जाके  
 विषे स्नेह होइ ॥ ताही सों संभाषन करे ॥ श्रीआचार्यजी के  
 अंगीकार में सब समान हैं ॥ लौकिक में कोऊ उंचनीच  
 कहियो (परि) श्रीठाकुरजी स्नेह के बस हैं ॥ पाछे श्रीठाकुरजीने  
 दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मेने खुलाए हैं और इन (ने)  
 खोले हैं ॥ जो तू यासों क्यों खीझत हैं ? तू तो चोवारे जाय  
 सोयो ॥ और मोको भीतर सुवायो ॥ तब दामोदरदासने  
 कह्यो जो प्रसाद तब लेहूँ (जब) मंदिर नयो समराउं ॥ तब स्त्रीने  
 कह्यो जो ऐसे क्यों बने ॥ यह तो कछु पांच सात दिनको  
 तो काम नाही ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो सखडी  
 महाप्रसाद तो नहीं लेउगो ॥ फलाहार करुंगो ॥ तब त्योंहि  
 करत मंदिर सिद्ध भयो ॥ तब आछो दिन देखि के श्रीद्वार-  
 कानाथजीको मंदिर में बेठाये ॥ तब बडो उत्सव कीयो ॥



पाछें सब वैष्णवनको महाप्रसाद लिवायो ॥ ता पाछें आपु  
महाप्रसाद लीयो ॥

श्रीठाकुरजीने लोंडीकी पास पंखा कराए, परि स्त्रीकों नांहि  
जताए ॥ सोउ जलकी सेवा छोडि, तातें इनकों न कहे ॥ काहेतें पहले

स्त्री जलकी सेवा न करती सो चिंता नांहो ॥

श्रीहरिरायजी कृत (सेवा) करि के छोरनो हतो तो दस पांच

भावप्रकाश दिन जल भरिके ॥ पाछें अपने मनतें न

भरते तो चिंता नांहि ॥ ससुरके कहेतें

छोडे, तातें श्रीठाकुरजी लोंडी सों किंवार खोलाय पंखाकी सेवा कराए ॥

ओर श्रीआचार्यजी की यह आज्ञा हैं ॥ जहां तांड़ पूरन स्नेहको  
प्रकार हृदयारुढ न होई तहां तांड़ सेवा ( यथा देहे तथा देवे )  
अपनी देहकों सीत उष्ण विचारि कें करे ॥ सो दामोदरदास चोवारें  
सोए ॥ श्रीठाकुरजी कों बियारि आयवेको मार्ग न हतो ॥ तातें मंदिर  
की रीति प्रगट कराइवेके लिए श्रीठाकुरजीने लोंडिसों किंवार खुलाए ॥

लोंडिको मानसि सेवाको अधिकार हतो ॥ अष्ट प्रहर गोप्य रीति  
सों मानसि करती ॥ कोई जानतो नांहि ॥ तातें श्रीठाकुरजी उह लोंडि  
के उपर बहोत प्रसन्न रहते ॥

जब दामोदरदास लोंडि पर खीजै ॥ सो श्रीठाकुरजी सहि न  
सके ॥ जो मोकों प्रिय हैं ता पर खीझत हे ? ॥ सो लोंडिकी पक्ष  
श्रीठाकुरजीने करी ॥ तथा दामोदरदासको अपराध तें छोडाइवे कों बोले  
जो मेनें यासों खुलाए ॥ तू क्यों खीझत हे ? आज पाछें या पर प्रीति



રાखियो ॥ याको स्वरूप अलौकिक जानियो ॥ तूं जाय चोवारे पर  
 सोयो ॥ मोकों बियारि आयवेकी ठोर नांही ॥ चित्रा सखि होइ  
 अपनि सेवा भूलि गयो ? ॥ मंदिर संवारनो ॥ तब दामोदरदास चोंकि  
 परे सो यह जो अपने स्वरूप को अनुभव भयो ॥ तब कहे मंदिर बने  
 तब खानपान करूं ॥ यह टेक चित्राके आवेसमें कहे ॥ पाछें कारिगर  
 बुलाय काम लगाए ॥ पाछें स्त्रीनें कही खानपान बिना कैसें चलेगो ?  
 एक दिन को काम नांही हे ॥ तातें खान पान बिना रह्यो न जायगो ॥  
 वह आवेस रहेतें ॥ तब खानपान मति करियो ॥ अब तो करो ॥ तब  
 कहे फलाहार लेऊंगो ॥ या प्रकार मंदिर सवराए ॥ जारी झरोखा निज  
 मंदिर तिवारी चोक टेरा परदा जेसें लीलासृष्टिमें करत हतें ताहि भाव  
 सों सगरे मंदिरको व्योत कीए \* ॥ मुहरत देखि पधराए ॥ बडो उत्सव  
 (कीयो) वैष्णवको समाधान श्रीआचार्यजीकी भेट काढे ॥

इति प्र. ३ समाप्त.

---

\* આ પ્રસંગ લગભગ ૧૫૬૦-૬૫ માં બન્યો હોવો જોઈએ. આ પ્રસંગથી ઐતિહાસિક એક વસ્તુ એ જાણવાની મળે છે કે—શ્રીનાથજી નવા મંદિરમાં પધાર્યા પહેલાં આ મંદિર બન્યું છે કારણ કે અહીં લીલાસૃષ્ટિનો ક્રમ બતાવ્યો છે. પાછલથી બન્યું હોત તો શ્રીનાથજીના મંદિર અનુસાર બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ અવશ્ય હોત. બીજી વાત આથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કે મંદિરનો તમામ પ્રકાર લીલાસૃષ્ટિને અનુસાર જ આપણે ત્યાં બનેલો છે, પ્રાકૃત નથી. શ્રીઆચાર્યજીએ સર્વ પ્રથમ શ્રીદ્વારકાનાથજીને ત્યાં રાજસેવા ચાલુ કરાવી છે.



बहुरि एक दिन दामोदरदास श्रीठाकुरजीको राजभोग  
 समर्पि सय्या मंदिरमें सैया संभारन  
 चार्ता प्रसंग ४ गए ॥ तब देखे तो दुलीचा उपर  
 बिलाई ने बिगाड्यो हे ॥ तब  
 दामोदरदासने कह्यो जो श्रीठाकुरजी तो अपनी सैया हू  
 राखि सकत नाही ॥ ऐसं कह्यो तब श्रीठाकुरजी ने थार  
 चोकी उपरसूं लात मारि डारि दीनो ओर दामोदरदास  
 सों श्रीठाकुरजीने कह्यो ॥ जो सेवक तू के सेवक में ?  
 सेवक होइ के ऐसे बोलत हे ? ऐसे बहुत खीजे पाछे  
 दामोदरदास ने बिनती कीनी ओर बहुत मनुहार करी ॥  
 सब सामग्री सिद्ध करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो ॥  
 श्रीठाकुरजी अरोगे ॥ परि तोहू दोय मास लों बोले नाहीं ॥  
 पाछे वहीत बिनती करन लागे ॥ तब बोलन लागे ॥

श्रीठाकुरजीने राजभोगको थार लात मारि के डारि दियो ॥ सो  
 या भावतें जो श्रीआचार्यजीनें अवही दासभावको अधिकार दियो हैं ॥

श्रीहरिरायजी कृत श्रीआचार्यजीके दिये तू (तैं) विशेष भाव  
 भावप्रकाश कर्यो ॥ तातें तेरो धर्यो भोग नांही अंगीकार  
 करूंगो ॥ या प्रकार शिक्षा कोए ॥ तातें अधिकार बिना विशेष  
 विचार किए इतनो अंतराइ जताए वैष्णवकों ॥

इति प्र. ४. समाप्त.



બહુરિ એક સમય દામોદરદાસ હરસાની इनके घर पाहूने  
आए ॥ सो संभरवारे के घर दिन

वार्ता प्रसंग ५ पांच सात रहे ॥ तब इन बहुत भली  
भांति सो समाधान कर्ये ॥ पाछे

દામોદરદાસ હરસાની इनसों बिदा होइ के अडेल आए ॥  
तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों पूछे जो दमला, तू कहाँ  
उतर्ये हो ? कहा प्रसाद लीयो हो ? तब दामोदरदास हर-  
सानी ने श्रीआचार्यजी सों विनती करी जो महाराज कन्नोज  
में दामोदरदास संभरवारे के घर उतर्ये हो ॥ अनसखडी महा-  
प्रसाद लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास संभरवारे उपर  
अप्रसन्न भये ओर (मनमें—बिचारे जो) यह मेरो अंतरंग सेवक\*  
याको सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? यह बात श्रीआचार्यजी  
के मनकी दामोदरदास संभरवारेने घर बैठे जानी + ॥ जो

\*દામોદરદાસ હરસાનીજી માટે શ્રીયદુનાથદિગ્વિજયમાં આ  
પ્રમાણે છે:—તતો વૃદ્ધિનગરે કસ્યચિચ્છેષ્ટિનશ્ચત્વારસ્તનયાસ્તેષાં કનિષ્ઠો  
દામોદરો હરેલીલાતો ગુરોઃ સેવાથમત્રાઽવતીર્ણો ગુરોર્માર્ગે પ્રતી-  
ક્ષમાણસ્તં દૃષ્ટ્વા દાયં ત્યક્ત્વા સમાગતઃ પાદયોર્નિપતિતો ગુરુભિરંગીકૃતો  
મન્ત્રમાલાભ્યાં સંસ્કૃતઃ સિદ્ધાર્થો જાતઃ ॥

+અહીં શંકા નહિ કરવી. કારણ કે દામોદરદાસ સંભરવાળા  
શુદ્ધ નિર્ગુણ ભક્ત છે. શ્રીમહાપ્રભુજી “પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદા”માં તે  
ભક્તોનાં લક્ષણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે:—સ્વરૂપેનાવતારેણ લિંગે-  
ન ચ ગુણેન ચ ॥ તારતમ્યં ન સ્વરૂપે દેહે વા તત્ક્રિયાસુ વા ॥૧૩॥  
પુષ્ટિપુષ્ટિભક્તો પણ સર્વજ્ઞ હોય છે તે માટે આપ આજ્ઞા કરે છે  
કે:—પુષ્ટ્યા વિમિશ્રાઃ સર્વજ્ઞાઃ તો શુદ્ધ પુષ્ટિજીવોનું તો કહેવું જ શું ?



श्रीआचार्यजी महाप्रभु मेरे ऊपर अपसन्न भये हैं ॥ तब स्त्रीसों कही जो तू श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करीयो ॥ ओर में तो श्रीआचार्यजी के दरशन कों अडेल जात हों ॥ तब दामोदरदास अडेल को चले ॥ सो अडेल जाइ पहेंचे ॥ तब श्रीआचार्यजी के दरशन कीये । साष्टांग दंडवत कीए ॥

तब श्रीआचार्यजी पीठ दे बेठे ॥ तब दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सो बिनती करि के कह्यो जो महाराज मेरो अपराध कहा हे ? ओर जीव तो अपराध करत ही आयो हे ॥ परि अपराध कयों जानिए तो भली बात हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने कहा ॥ जो तेने दामोदरदास हरसानी को सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? ओर अनसखडी प्रसाद क्यों लिवायो ? तब दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी, जो महाराज, दामोदरदाससेंहि पूछिये ॥ तब श्रीआचार्यजीने दामोदरदास हरसानी सों पूछी जो दमला तेने दामोदरदास संभरवारे के यहां सखडी महाप्रसाद क्यों न लीयो ? तब दामोदरदासने कह्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी प्रातःकाल बालभोग अरोगते सोई लेतो ॥ सो सखडी की रुचि रहती नाही तातें न लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू तो तेरी इच्छा ते न लेतो ॥ परि मोको तो याके उपर बडी खुनस भई हती ॥ सो भक्तन के अंतःकरण की भक्ति देखिवे को प्रभु को नाट्य हे ॥ काहें तें जो दामोदरदास संभरवारे ने कन्नोज में अपने घर बेठे श्रीआचार्यजी के अंतःकरन की



जानी ॥ सो श्रीआचार्यजी तो भक्त के हृदय में सदा स्थित हैं ॥ वह भक्त हृदे की बात कहा न जाने ? परि भक्त परि-क्षार्थ यह प्रभू को नाट्य हे ॥ पाछें दामोदरदास को बहुत सन्मान करि के श्रीआचार्यजी ने घर पठाये ॥ तब दामोदरदास अपने घर कन्नोज आइ पहुँचे ॥ पाछें स्त्री पुरुष भली भांति सों सेवा करन लागे ॥

दामोदरदास हरसानी (संभरवारेके उपर कृपा करनके अर्थ) इन के घर पाहुने आए ॥ दामोदरदास संभरवारे तनुजा वित्तजा भलिः भांति

श्रीहरिरायजी कृत  
भावप्रकाश

सों राजसेवा करे हैं ओर जो वैष्णव (इनके यहां होयके) श्रीआचार्यजीके दरसन को जाते तिन सबन संग न्यारि न्यारि भेट पठावते ॥ वैष्णवको समाधान बहोत करते ॥

खडियामें बिना कहें खरची वैष्णवको भरि देते ॥ सो श्रीआचार्यजीके आगे बडाई बहोत भई ॥ जो आवे सो (बडाई) करे ॥ तब श्रीआचार्यजीके मनमें यह आई जो हृदयके भीतरको भाव शुद्ध होइ तब काम होइ ॥ सो अन्याश्रय न होइ ॥ यह श्रीआचार्यजीके हृदयकी जानिके दामोदरदास हरसानी इनके यहां पाहुने आये ॥ (कृपा करनके अर्थ) सो दामोदरदासके हृदयकी सगरी रीति आछी देखी, परंतु स्त्री में रंच पिताकी कानि जानि सखरी महाप्रसाद न लिये ॥ दिन पांच सात रहे ॥ परंतु अपने हृदयको अभिप्राय कछू दामोदरदाससों मारगकी वार्ता नाहि कहे ॥ पाछें श्रीआचार्यजी पास आए ॥ तब श्रीआचार्यजी



पूछे कहाँते आए ॥ तब विनती करी जो दामोदरदास संभरवारेके यहां  
 पाहुनें गयो हतो सो सखडी नाहि लियो अनसखडी लीयो ॥ यह  
 कहिके यह जताए जो दामोदरदासको भाव दृढ हे ॥ तातें अनसखडि  
 लीनी ॥ स्त्रीको भाव दृढ नाहि हे तातें सखडी (महाप्रसाद) नाहीं  
 लियो\* ॥ तब श्री आचार्यजी दामोदरदास संभरवारेके ऊपर अप्रसन्न  
 भए ॥ जो मेरे अंतरंग सेवककों पायके स्त्रीकूं अन्याश्रय सों न  
 छुडायो ॥ फेर एसो समें कब पावेगो ? सो यह बात श्रीआचार्यजी  
 के हृदयकी संभरवारेने जानी ॥ स्त्रीकां पराश्रय हे तातें नाहि जानी ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

ओर सिंहनंद के वैष्णव श्रीआचार्यजी के दरसन कों  
 जाते सो कन्नोज में दामोदरदास के  
 वार्ता प्रसंग ६ वर उतरतें ॥ सो दामोदरदास सबन  
 को प्रसाद लिवावते ॥ ता पाले जब  
 वैष्णव अडेलको बिदा होते तब जितने वैष्णव होते तिन  
 सबन प्रति एक एक मोहोर एक एक नारियल श्रीआचार्यजी  
 की भेट को पठावते ॥ काहेते ? जो मेरी दंडवत खाली  
 हाथ कैसे करोगे ? ॥ सो वे दामोदरदास ऐसे भगव-  
 दीय हे ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

---

\* आथी ओ अनुमान थाय छे के सखडीनी रसोछ स्त्री  
 करती छती.



( या प्रसंग को भाव प्रसंग ५ के भाव में आय गयो हे )

ओर दामोदरदास को ससुर बहुत संपन्न हतो ॥ तिनने  
 एक सो लोंडी बेटी के दायजे में दीनी  
 वार्ता प्रसंग ७ हती \* ॥ जो मेरी बेटी बेठी रहेगी ॥  
 ओर कामकाज सब लोंडी करेगी ॥  
 परि वह लोंडी पास काम न करावती ॥ सेवा संबंधी कार्य सब  
 आपुही करती ॥ ओर लोंडी सब ओर कामकाज करती ॥  
 सो वह एसी भगवदीय ही ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी आप दामोदरदास संभर-  
 वारे के घर पोढे हते ॥ ओर दामोद-  
 वार्ता प्रसंग ८ रदास संभरवारे पांव दाबत हते ॥ तब  
 श्रीआचार्यजी इनसें पूछे ॥ जो तोको  
 तेरे मनमें काहू बात को मनोरथ हे ? ॥ तब दामोदरदास ने  
 कह्यो जो महाराज मोको तो आप के अनुग्रह ते काहू बात  
 को मनोरथ रह्यो नाहि ॥ तब श्री आचार्यजीने कह्यो ॥ जो तू  
 जाइके अपनी स्त्री सो पूछी आउ ॥ तब दामोदरदास अपनी  
 स्त्रीसो पूछी जो तेरे काहू बात को मनोरथ हे ? तब स्त्रीने

\* आथी दामोदरदासनी संपत्ति डेटली हसे ? तेनुं सहज अनु-  
 मान थछ शके छे. आ ओक ऐतिहासिक तत्त्व छे.



કહ્યો જો ઓર તો કહ્યું મનોરથ રહ્યો નાંહો ॥ એક પુત્ર કો મનોરથ હે ॥ તવ શ્રીઆચાર્યજી સો આઈ કે દામોદરદાસને કહ્યો જો મહારાજ સ્ત્રીકો તો એક પુત્ર કો મનોરથ હે ॥ તવ શ્રીઆચાર્યજી આપ શ્રીમુખ તૈં આજ્ઞા કરે ॥ જો પુત્ર હોઈગો ॥ પાછે શ્રીઆચાર્યજી આપ શ્રીનાથજીદ્વાર ( જતિપુરા ) પધારે ॥ તા પાછે સમય મયો તવ વાકે ગર્ભ કી સ્થિતિ મઈ ॥ તા પાછે કેતેક દિન મેં વા વારવરિ મેં એક ઢાકોતિયા આયો ॥ તવ તાકો સવ સ્માર્ત કી સ્ત્રી પૂછન લાગી ॥ તવ તામેં તે કાહૂને દામોદરદાસકી સ્ત્રી સો કહી ॥ જો અમૂકી × તૂ હૂ પૂછિ, તેરે કહા હોઈગો ? પાછે એક લોંડિને જાઈકે વા ઢાકોતિયા સોં પૂછી ॥ જો કહા હોઈગો ॥ બેટા હોઈગો કે બેટી હોઈગી ॥ તવ વા ઢાકોતિયાને કહ્યો ॥ જો બેટા હોઈગો ॥

તા પાછે કેતક દિનમેં શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધારે ॥ તવ દામોદરદાસ ચરન હુવન લાગે ॥ તવ શ્રીઆચાર્યજી ને

---

× અમુકી શબ્દ યોજવાથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે દામોદરદાસની સ્ત્રીનું નામ ભગવત્સંબંધી અથવા યોગ્ય નહિ હતું, શ્રીગોકુલનાથજીની એક ખાસ ટેવ હતી કે ખરાબ નામનો ઉચ્ચાર ન કરતા. માટેજ કેટલીક વાર્તાઓ વિના નામની આવે છે. આ ભેદ શ્રીહરિ-રાયજીએ “ એક ક્ષત્રીની પ્રયાગમેં રહતી ” ( વાર્તા ૪૩ ) તેમાં આ પ્રમાણે કહ્યો છે:—અબ જહાં તહાં નામ શ્રીગોકુલનાથજી નાંહી કહે સો માતાપિતા હીન નામ રાખે ॥ કાહૂકો ફકીરા ઘસીટા ॥ સો વૈષ્ણવ સોં હીન નામ શ્રીગોકુલનાથજી કહતે નાંહિ ॥







एक समें जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तब दामोदरदास सों  
आज्ञा करी कछू मनोरथ होइ सो मांगि  
श्रीहरिरायजी कृत ले ॥ या प्रकार फेरि दामोदरदास की  
भावप्रकाश परिक्षा किए ॥

जो स्त्रीकों पराश्रय हे ॥ ताके संगतें याहूकों पराश्रय होइ ॥ तो  
कछू वर दीजे ॥ इतने पुष्टिमार्गके फलसों रहित होइ ॥ परि दामोदरदास  
तो दृढ हे ॥ तातें कहे महाराज आपुके चरनारविंदकी सेवा मिली अब  
मोकों काहू बातको मनोरथ नांही हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने दामोदर-  
दाससों कह्यो स्त्रीकों पूछी आव ॥ यामें यह जानिए जो श्रीआचार्यजी  
दामोदरदाससों बोले परि स्त्रीसों कछू बोले नांही ॥ ओर स्त्री हू आप  
आय श्रीआचार्यजी सों चिनती नांही कीनी यामें यह जानिए जो  
(स्त्री) बहोत श्रीमहाप्रभुजीकी निकट हूं नांही आवती, ओर मनमें  
अन्याश्रय हतो ॥ तातें कह्यो एक पुत्र सेवा अर्थ होय ॥ सो यह  
विचार नांही आयो ? जो पुष्टिमार्ग की सेवा मांगे ते मिले ॥ पुत्र को  
कहा प्रमान हे जो सेवा करेगो ? इतने यह वचनमें (श्रीआचार्यजीने  
जान्यो) जो मेरो आश्रय छूट्यो ॥ जाव पुत्र लेके सगरी भक्ति सकामी  
होइ गई ॥ ताते मुकुंददास \* ने सप्तम स्कंधमें प्रह्लाद वृसिंहजी सों

---

\* आ मुकुंददास ते दिनकरदासना भाई ८४ वार्तामां तेमनी  
वार्ता १६ भी छे. तेमणे आभा श्रीमद्भागवतनो भाषामां पद्यरूपे  
अनुवाद क्यो छे अने ते “मुकुंदसागर” नामथी प्रसिद्ध छे. परंतु  
अत्यारे ते प्राप्त थतो नथी. तपास करवानी जरूर छे. तेमनो.  
समग्र छतिहास तेमनी वार्तामां आप्यो छे.



कहे हैं ॥ “स्वामिसों निज अर्थ हि चाहें ॥ निंदन भक्ति अवगाहें ॥”  
 स्वामीसों लौकिक वैदिक अपनो सुख कछू चाहे सो निंदत हे वाको  
 भक्ति न मिले या प्रकार पुत्र दे आप श्रीगोवर्धनधर पास गिरिराज  
 पधारे ॥ फेरि जब स्त्रोने अन्याश्रय कीयो तब आप कन्नोज पधारे ॥  
 ओर दामोदरदासकों चरन यातें छूवन नहिं दीये जो स्त्रीके हाथको खान  
 पान दामोदरदासने कीयो हे ॥ तातें चरनपरस करिवेको अधिकार नांही  
 हे ॥ यह दामोदरदासकुं जतायो ॥

तातें अन्याश्रय बराबरि दोष दूसरो नांही हे । जेसैं एक पति  
 छोडिकें दूसरो पति करे तब स्त्रीको सगरो धर्म जाइ ॥ ताहि प्रकार  
 अन्याश्रय रंच करे तो वैष्णवको धर्म नाश होई ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥  
 फेरि स्त्रीको अनन्यता भई तातें श्रीठाकुरजीकी सामग्री सेवा परस नांहि  
 करती ॥ तब वह अन्याश्रय पुत्र द्वारा हृदय तें निकर्यो ॥ काहेतें श्री  
 भागवतमें कहे हैं भक्त कों श्रीठाकुरजी बिना ओर ठौर ममत्व होई  
 सो वस्तुकों श्रीठाकुरजी तत्काल नाश करे ॥ तब ज्ञान वैराग्य दृढ  
 होइके आश्रय सिद्ध होइ ॥ भक्ति न होइ तो वस्तु गए ओरहू अन्या-  
 श्रय सदा करे ॥ सो स्त्रीकी पुत्रमें ममता देखि के नष्ट श्रीआचार्यजीने  
 अपने जानिके किए ॥ तब स्त्रीकों ज्ञान भयो ॥ तब अपनि मातासों  
 कहे ॥ जो मैं पुत्रको मुख न देखोंगी ॥ सो पुत्र होन समय नेत्रनसों  
 पटी बांधि लीनी ॥ सो उनकी माता पुत्रको जन्मतही अपने घर ले गई ॥  
 तहां पुत्र वरस १० को व्हे पाछें म्लेच्छ भयो ॥ स्त्री पुरुष मन  
 लगाइके श्रीद्वारकानाथजी की सेवा करी ॥

इति प्र. ८ समाप्त.



बहुरी एक समय दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीने  
 घर में छिपाइ राखे ॥ पाछे वैष्णव  
 वार्ता प्रसंग ९ सों कह्यो ॥ जो तुम एक नाव अडेल  
 को भाडे करिलावो ॥ सो वैष्णव नाव  
 भाडे करि लाए ॥ तो नावमें श्रीद्वारकानाथजी ओर घरमेंकी  
 सब सामग्री त्रण पर्यंत कछु घरमें राख्यो नहि ॥ घरमें हतो  
 सो सब नाव में धर्यो ॥ तब वैष्णवन सों कह्यो ॥ जो यह  
 नाव अडेल ले जाउ ॥ सब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के मंदिर  
 में पहुँचाओ ॥ सो वैष्णव नाव लेके चले ॥ सो कोस तीस  
 चालीस उपर नाव गई ॥ पाछे स्त्रीने प्रगट कीए ॥ जो दामो-  
 दरदास की देह छूटी हैं ॥ तब वैष्णव सब आए ॥ संस्कार  
 कीयो ॥ तब दामोदरदास को बेटा तुरक \* भयो सो आयो ॥  
 सो आय के देखे तो घरमें कछू नाहीं ॥ जल को करवा भर्यो  
 हे ॥ सो देखिके मूड पटक रह्यो ॥ पाछे दामोदरदास को  
 ससुर आयो ॥ तिननें बेटी सों कह्यो ॥ जो बेटी तेनें घरमें  
 कछू राख्यो नाहीं ॥ जो अब तू कहा खायगी ? तब वानें  
 कही जो तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ क्षत्री लोगन के या समें  
 सगे सहोदरे कछु देत हैं ॥ एसी ज्ञाति की रीति हैं ॥ तब  
 दामोदरदास की स्त्रीने जलपान न कर्यो ॥ सो थोरेही दिन  
 में देह छूटी ॥ कृति दोउन की साथ गई ॥ तब यह बात

\* अहीं उर्भथी तुरक (भ्लेन्ड) कह्यो छे; जेभ रावलु आह्वलु  
 होवा छतां राक्षस कहेवाये छे.



केतेक दिन पाछें काहू वैष्णवनें श्रीआचार्यजी आगे कही ॥  
 तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो ॥ जो इनको एसोही चाहिए ॥  
 सो वे दामोदरदास तथा उनकी स्त्री ये दोउ श्रीआचार्यजी के  
 सेवक ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं ॥ तातें इनकी वार्ता  
 को पार नाहीं ॥ सो कहां ताई लिखिए ?

पाछें दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीने देह छिपाइ यातें  
 राखे जो पुत्र म्लेच्छ हे ॥ सगरी वस्तु श्रीजी  
 श्रीहरिरायजी कृत की हे सो ले जायगो ॥ तातें नाव भरि  
 भावप्रकाश कें सब वस्तु श्रीआचार्यजी के यहां पहुंचाई ॥  
 जब कोस चालिस नाव गई तब स्त्रीने  
 जाहेर कीयो ॥ ससुर आदि ज्ञाति के सबने दामोदरदास की  
 देह को संस्कार कियो ॥ पाछें बेटा दोरि के आयो सो देखे तो माटी  
 को करुवा जलसों भर्यो हे ॥ आर कछू हे नाहीं ॥ जब खबर पाइ तब  
 नाव लेके दोर्यो ॥ परंतु पायो नांही ॥ तब माथो पीटि रह्यो ॥ यामें यह  
 जतायो जो लाकिक होइ के अलौकिक वस्तू लेन को उपाय करे सो  
 दुखही पावे ॥ परंतु हाथ लागे नांही ॥

ओर ससुरने कह्यो ॥ कछू राख्यो नांहीं ॥ अब तू कहा खायगी ?  
 यह लौकिक पूछ्यो ॥ तब स्त्रीने अलौकिक बात कही जो अब तुम  
 देउगे सो खाऊंगी ॥ या समें क्षत्री लोगन में सगे देत हैं ॥ तासों  
 निर्वाह करूंगी ॥ ताको अर्थ यह जो श्रीठाकुरजी पधारे सो सेवा  
 बिना घरकी वस्तु कैसे लेऊं ?



(और) अलौकिक (जो मैं=अलौकिक स्वरूप भावना को) वस्तु के संग ( श्रीआचार्यजी के यहां ) गई ॥ सेवा बिना में लौकिक हों ॥ सो लौकिक सों निर्वाह करुंगी ॥ या प्रकार खीने हूं देह छोड़ि दियो ॥ क्रिया कर्म सब दामोदरदास के संग भयो ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

\* ॥ लोंडीकी वार्ता लिख्यते ॥

ओर वह लोंडी बड़ी भगवदीय हती ताकी वार्ता (विस्तार पूर्वक) नाहि लिखी (“वार्तामें”) सो यातें ॥ (जो वो) श्रीजमुनाजी की सखी है ॥ लीलामें इनको नाम कृष्णावेसनि हे ॥ सदा कृष्ण के स्वरूप को आवेस रहतो ॥ सो द्वापर में विदुरजी की स्त्री यह लोंडी हती ॥ सो श्रीठाकुरजी में अत्यंत स्नेह ॥ (सो इन्हीके लिए श्रीठाकुरजी) विदुरजी के घर बिना बुलाए जाते ॥ सो अब दामोदरदास के इहां आई ॥ सो लोंडी दामोदरदास के ब्याहमें आई ॥ याको पुष्टिसंबंध भयो ॥ मानसी में मगन रहती ॥

एक दिना दामोदरदास (कुँ) सेवा करतमें मनमें आई ॥ जो नकास में जाइ घोडा खरीदिए ॥ ताही समय एक वैष्णव दामोदरदास को मिलन को आयो ॥ तब लोंडी ने कहौ नकासमें घोडा खरीदन गए हैं ॥ तब

---

\* वैष्णव ४. लोंडीनुं स्वरूप निरोधलीलात्मक छे अने मानसी सिद्ध हती. ते सदेहे लीलाभां गर्ध ते वीर्य धर्म प्रकट कियो. अथी आ वार्ता वीर्यधर्मरूप ज्ञापुवी. ६६ वैष्णवभां आ योथा वैष्णवनी वार्ता ज्ञापुवी.



वह वैष्णव चल्थो गयो ॥ पाछें यह बात काहूने दामोदरदास सों कही ॥  
जो तुम सेवा में हते (तब) लोंडी ने एसे कही ॥ तब दामोदरदास लोंडी  
सों पूछि ॥ तब लोंडीने कही तिहारो मन वा समय कहां हतो ? जहां  
मन तहां देह जानियो ॥ तब दामोदरदास चुप होइ रहे ॥

सो जब नावमें सगरी सामग्री धरी ॥ तामें सामग्री सदृश लोंडी  
हू हे ॥ सो वह नाव पर श्रीद्वारकानाथजी के संग गइ ॥ तब श्रीआ-  
चार्यजी सों वैष्णव ने आइ कहो ॥ महाराज श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित  
पधारे हैं ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाडे हते ॥ (तब) श्रीगोपीनाथजी  
कहे लक्ष्मीसहित नारायण पधारे (हैं) ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥  
वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो हे ? ॥ (तब) श्रीगो-  
पीनाथजी कहे तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन  
करेगो ताको निरमूल नाश जाइगो ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ हमारो  
मारग तो एसोई हे ॥ सो द्रव्य तें कछूक गोपीनाथजी प्रसन्न भए हते ॥  
सो एक पुत्र भयो ॥ परंतु वंस नांही चल्थो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी  
वैष्णव सों आज्ञा कीए ॥ सगरि सामग्री श्रीजमुनाजी में पधराइ देउ ॥  
श्रीद्वारिकानाथजी को हमारे घर पधराई लावो ॥ तब वह लोंडी हू सामग्री  
रूप हे ॥ सो देह सहित श्रीजमुनाजी पास चली गई ॥ सगरी सामग्री  
श्रीजमुनाजीमें पधराई ॥ श्रीद्वारकानाथजी श्रीआचार्यजी के घर बिराजे ॥  
यह लोंडी की अलौकिक बात हती ॥ सो लोगनमें विरुद्ध सी लागी ॥  
तातें श्रीगोकुलनाथजी प्रकास नांही कीए ॥ सामग्री रूप कहें \* ॥



પાછેં કાહૂ વૈષ્ણવને શ્રીઆચાર્યજી સૌં વિનતી કીની મહારાંજ સામગ્રી  
તો દામોદરદાસ કી સ્ત્રી વૈષ્ણવ ને પઠાઈ ॥ સો આપ અંગિકારિ ક્યોં નાંહિ  
કિણ ? ॥ તવ શ્રીઆચાર્યજી કહે જો વેટા મ્લેચ્છ હે ॥ મુનકે આવે જગરો  
કરે ॥ દ્રવ્ય દુઃસ્વકો મૂલ હે ॥ દામોદરદાસ કી સ્ત્રીને પઠાયો ॥ શ્રીમ-  
હારાનીજી (કૌં) અંગીકાર હૂં કરાયો ॥ લૌકિક જગરો હૂં મિટાયો ॥  
પાછેં કાહૂ વૈષ્ણવને સ્ત્રી ને હૂં દેહ છોડિ इनकी बात कही ॥ તવ  
શ્રીઆચાર્યજી કહે સ્ત્રીપુરુષ મલે વૈષ્ણવ ટેક કે હને ॥

॥ વૈષ્ણવ ૩ ॥ (ગિનતી લોંડિ સમેત વૈષ્ણવ ૪)

### પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્ય:-

આ સમગ્ર વાર્તામાં વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ છે. જેમ દેહમાં વીર્ય  
સાર છે તેમ પુષ્ટિધર્મમાં આ વાર્તા પુષ્ટિધર્મના સારરૂપ છે (જુઓ  
પ્ર૦ ૩ શ્રી હરિ૦ કૃત ભા. પ્રકાશ) પુષ્ટિજીવેનો ફક્ત એક જ ધર્મ  
છે. અને તે સર્વકાલમાં ભગવત્સુખાર્થ સેવા છે. પુષ્ટિસૃષ્ટિ કાયાથી  
ઉત્પન્ન થયેલી હોઈ તે ભગવત્સુખથી અતિરિક્ત કોઈ પણ ધર્મમાં  
પ્રવૃત્ત થાય જ નહિ. “આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિઃ” પુષ્ટિપ્રભુનું જ્યાં  
સુધી સાંગોપાંગ સ્વરૂપ જાણવામાં ન આવે ત્યાં સુધી કોઈ પણ  
વ્યક્તિ તે પ્રભુને સુખ કયા પ્રકારે થાય તે સમજી નજ શકે. તેમજ  
તેને માટે કોઈ પણ પ્રકારનું આચરણ કરી શકે નહિ.

તે ભાવાત્મક આનંદરૂપ પ્રભુનાયે “સારભૂત” આધિદૈવિક  
સ્વરૂપનું સાંગોપાંગ જ્ઞાન આજ સુધીમાં ફક્ત ત્રણ જ ભક્તોને પ્રાપ્ત  
થયું છે. તે “આનંદસારભૂત” શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ દિવ્ય  
અને મહાન્ અલૌકિક છે. તે સ્વયં કૃપા કરી સ્વાનંદનું દાન કરે તોજ



તે અનુભવી શકાય તેમ છે. “ નાયમાત્મા પ્રવચનેન લભ્યોઃ ” એ શ્રુતિ અહિં પ્રમાણભૂત છે.

આ સ્વરૂપનો પૂર્ણ અનુભવ દામોદરદાસ હરસાની, પ્રભુદાસ જલોટા અને પદ્મનાભદાસને જ થયો છે. આ મહાન અલૌકિક “ સુધા ” સ્વરૂપના પાનમાં કંઈનો ચે પ્રવેશ નથી.

પદ્મનાભદાસજી સ્વયં વર્ણન કરે છે કે;—“ તહાં પ્રવેશ દ્વે અમર કો દામોદર પ્રભુદાસ ”

આ સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીમદાચાર્યચરણની પૂર્ણ કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, અન્યથા નહિ જ.

જુઓ પદ્મનાભદાસજી કહે છે કે:—

દમલા પ્રભુદાસ વડભાગી તિનકો પુન પુન આપ સિખાવે ॥

યદ્યપિ પદ્મનાભદાસે પોતાને માટે કંઈ પણ વર્ણન નથી કર્યું તો પણ તેમના ૪૦ પદોથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે તેમને પણ આ સ્વરૂપનો અનુભવ હતો.

પદ્મનાભદાસના પદોમાં શ્રીઆચાર્યજીના સાતે સ્વરૂપ ( જુઓ “ વાર્તારહસ્ય ” ) ની ઓતપ્રોતતા અને તેના પૂર્ણ અનુભવનું વર્ણન સ્પષ્ટ તરી આવે છે. તેની અત્યંત સૂક્ષ્મ ઝાંખી અહાં કંઈકે કરાવીએ છીએ:—

પદ ૧ શ્રીલક્ષ્મનસુત ને કહૂ ગાવે ॥

દમલા પ્રભુદાસ વડભાગી તિનકો પુન પુન આપ સિખાવે ॥

પ્રેમવિવશ હોઈ શ્રીવલ્લભ પ્રભુ નેન સેનમેં અર્થ જનાવે ॥

પ્રકટ પ્રસિદ્ધ યશોદાનંદન રસિક શોભામય સકલ જનાવે ॥

વૃંદાવન રમણીક રમણ અતિ ઊર સંપુટકી કોઝ ન પાવે ॥

પદ્મનાભ ગિરિધરરસલીલા વેણુનાદકી વતિયાં ભાવે ॥



પંક્તિ ૧ લક્ષ્મણસુત ત્યાં આચાર્યસ્વરૂપનું વર્ણન છે.

„ ૨-૩ માં વલ્લભસ્વરૂપ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યભાવનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ ) નું વર્ણન છે. ( જુઓ દામો ૦ હર ૦ ની વાર્તા પ્ર ૦ ૧નું પરિ ૦ રહસ્ય )

„ ૪ માં ભગવદ્ભાવરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે.

„ ૫ માં સ્વામિનીભાવ રૂપનું વર્ણન છે.

„ ૬ માં સુધાસ્વરૂપનું વર્ણન છે.

આ પુસ્તકમાં આપેલા “ વાર્તા-રહસ્ય ” અને શ્રીહરિરાયજીના ભાવાત્મક લેખનું મનન કરવાવાળાઓ ઉપર્યુક્ત સ્વરૂપોનો સહજમાં અનુભવ કરી શકે તેમ હોવાથી અહીં વિસ્તાર નથી કર્યો, જેમ ગંગાના ભૌતિક પ્રવાહસ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપની સ્થિતિ રહેલી છે ( જુઓ “ વાર્તા-રહસ્ય ” ) તેમ આચાર્ય સ્વરૂપમાં જ આ સાતે સ્વરૂપોની સ્થિતિ છે, અને તે તદ્રૂપ છે. માટે શ્રીઆચાર્યચરણનો દેહ અલૌકિક અને આનંદરૂપ નિત્ય છે.

દૃષ્ટાંત રૂપે:—ભગવદ્વિગ્રહ ( મૂર્તિ-સ્વરૂપ ) માં મર્યાદારૂપે ( મંત્ર વિધિ આદિથી ) અને પુષ્ટિ રૂપે ( ભાવથી ) સાક્ષાત્ પ્રભુનો આવિર્ભાવ રહે છે. તદ્વત્ અહીં સમજવું.

પદ ૨ શ્રીમદ્બલ્લભરૂપ સુરંગે ।

અંગ અંગ પ્રતિ ભાવનકે ભૂપન વૃંદાવન સંપતિ અંગઅંગે ॥

ચટક મટક ગિરધરજૂકી નાંદ એન મેન વ્રજરાજ ઉછંગે ॥

પદ્મનાભ દેવે બનિ આવે સુધિ રહી રસાલ ભ્રુવમંગે ॥

આ પદમાં પ્રથમ બે પંક્તિઓમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ વિપ્રયોગાત્મક શૃંગારરસ સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે—( જેને કૃષ્ણાસ્ય કહેવામાં આવે છે જુઓ “ વાર્તા-રહસ્ય ” ) અને ત્રીજી બે પંક્તિમાં



શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ સંયોગાત્મક શૃંગારરસસ્વરૂપનું વર્ણન છે.\*  
( જે ભગવદ્ભાવરૂપ આનંદમાત્રકરૂપાદ્મુખોદરાદિરસસ્વરૂપ છે )  
અહિં સ્થલ સંક્રાંત્યથી અન્ય પદો નથી આપતા.

આથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે:—પદ્મનાભદાસનો પણ  
“આનંદસારભૂત” શ્રીઆચાર્યજીના સુધા આદિ સાતે સ્વરૂપમાં  
પૂર્ણ પ્રવેશ છે. દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસે આ સ્વરૂપને કેવલ હૃદય  
માં જ અવગાણ્યું. જ્યારે પદ્મનાભદાસજી એ સ્વજનોના હિતાર્થ  
કીર્તનરૂપે બાહ્ય પ્રગટ કર્યું. પદ્મનાભદાસ શ્રીમથુરેશજીમાં શ્રીઆચાર્ય  
જીના જ સ્વરૂપની ભાવના કરતા. (જુઓ પ્રમંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

જેવી રીતે પદ્મનાભદાસ પુષ્ટિપ્રભુના (આનંદરૂપના) સારભૂત  
આધિદૈવિક સ્વરૂપમાં મગ્ન હતા તેવી જ રીતે પુષ્ટિધર્મના પણ  
સારભૂત શ્રીઆચાર્યચરણના સુખમાં સદા નિમગ્ન રહેતા ( જુઓ  
પ્રમંગ ૩ )

આ રીતે આ વાર્તા વીર્યધર્મરૂપ કહી.

બીજા પ્રકારે આ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પુષ્ટિના આશ્રયરૂપ  
છે. એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના આશ્રયરૂપ છે. એટલે તે શ્રીઆચાર્ય  
જીના વામ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે ( જુઓ “વાર્તારહસ્ય” ) શ્રીઆચાર્ય  
જીનું વામ અંગ ભાવાત્મક વિપ્રયોગરૂપ છે અને દક્ષિણ અંગ  
સંયોગાત્મક છે. ( આ સંપ્રદાયની પરંપરાગત ભાવના છે ) ગદાધર-  
દાસની વાર્તા ( પુષ્ટિ ) બિતિ સ્વરૂપ હોય શ્રીઆચાર્યજીના દક્ષિણ  
શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે તે તેમની વાર્તામાં સમજાવ્યું છે. પદ્મનાભદાસની  
વાર્તાનું આશ્રયસ્વરૂપ ( વામ શ્રીહસ્તરૂપ ) ગદાધરદાસની વાર્તામાં  
સમજાવ્યું છે.

\* શ્રીઆચાર્યજીના રસ સ્વરૂપનું વિશેષ વર્ણન જોવું હોય તો  
જુઓ શ્રીહરિરાયજીકૃત “રસાત્મકભાવસ્વરૂપનિરૂપણમ્”



શ્રીઠાકુરજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણ ( વિપ્રયોગાત્મરૂપ )ની ભાવના કરી સેવા કરનાર ચોર્યાશી વૈષ્ણવોમાં પાંચ જ વૈષ્ણવો છે. ૧ પદ્મનાભદાસ, ૨ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ૩ એક ડોકરી મહાવનની ( જેને શ્રીજમનાજીમાંથી ચાર સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયાં તે ) ૪ પ્રભુદાસ જલોટા ૫ અને મહાતુભાવ પરમ ભાગ્યવાન રજે ક્ષત્રાણી. આ પાંચે ભક્તોમાં પદ્મનાભદાસે પોતાનો અનુભવ પ્રકટ કર્યો. અન્ય ચારે ગુપ્ત અનુભવ્યો. શ્રીઠાકુરજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણની ભાવનાથી સેવા કરવી તે આ વાર્તાનું રહસ્ય છે—(વિશેષ જુઓ પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

ત્રીજા પ્રકારે આ વાર્તા પુષ્ટિના ધર્મી રૂપ છે. કારણ કે સર્વ ધર્મમાં વીર્યધર્મ મુખ્ય છે માટે આ વાર્તામાં જોયે ધર્મોનું આ પ્રમાણે નિરૂપણ છે:—

પ્રસંગ ૧ માં:—શ્રી ધર્મનું નિરૂપણ.

સ્વામીની આજ્ઞાનો પૂર્ણ વિશ્વાસ તે શ્રી ધર્મ ( જુઓ કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તા ) “ શ્રિયો હિ પરમા કાષ્ઠા ” ઇતિ વચનાત્

તે પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાને અનુસાર વૃત્ત્યર્થ ભાગવતની કથા જીવન પર્યંત ન કહી. અનેક કષ્ટ સહન કર્યા. આવી રીતે સ્વામીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ.

પ્રસંગ ૨ માં:—પુષ્ટિધર્મનું પણ તત્ત્વ શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચારવું તે સ્પષ્ટ દેખાડયું. અહીં પણ શ્રીધર્મ (શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ) કહ્યો.

પુષ્ટિધર્મના સારભૂત શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચાર્યું, અને અકિંચન હોવા છતાં શ્રી જે લક્ષ્મી ( ૧૭૦૦૦ રૂપીઆ ) વિના વિલંબે પ્રાપ્ત થઈ. અહિં પણ શ્રીધર્મ જાણવો. અને રાજના પ્રસંગમાં ઐશ્વર્ય જાણવું. મૂઠ પુરુષોમાં પણ પોતાની વાણીના પ્રભાવથી રસ ( વીરરસ ) ની ઉત્પત્તિ કરી મુગ્ધ કર્યા.

પ્રસંગ ૪ માં:—વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ.



श्रीप्रभुमां जेवो दह स्नेह के लोकव्यवहार अनेवेदधर्मनुं उल्लंघन  
कर्यो. नति अधी ऊपमारी रही. (विशेष जुओ ते असंग नीचेनी नाट)

असंग ५ मां:--यश धर्मनुं निरूपण

पोताना अरुणोदकथी पुत्र आये.

असंग ६ मां:--वैराग्य धर्मनुं निरूपण

श्रीठाठारुणा लुटमां पधारवाथी सात द्विस सुधी देहाध्यासने  
त्याग कर्यो. अन्न जल कुंघ पणु न लीधुं. अही औश्वर्य पणु निरूपेधुं छे  
मुगलानी जे परधर्मी अने निर्दय तेना हृदयमां पूज्यभाव  
थवे ते औश्वर्य.

असंग ७ मां:--श्रीआचार्यजना स्वरूपनुं ज्ञान छे (विशेष  
जुओ परिशिष्ट रहस्य)

अब श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक पद्मनाभदास  
कन्नोजिया ब्राह्मण कन्नोज में रहते तिनकी वार्ता ॥

सो प्रथम पद्मनाभदास व्यासासन बैठते ॥ सो कन्नोज  
में आप अपने घर कथा कहते ॥ ऊंचे  
वार्ता असंग १ आसन बैठते ॥ काहूके घर जानो  
न परतो ॥ वृत्ति घर बैठे चली  
आवती ॥ या भांति रहते ॥ सो एक समय श्रीआचार्यजी आप  
कन्नोज पधारे ॥ तब पद्मनाभदास दरसन को आए ॥ तब पद्मनाभ-  
दासने श्रीआचार्यजी महाप्रभू के श्रीमुखतें भगवद्वार्ता को  
असंग सुन्यो ॥ तब जानी जो ए साक्षात ईश्वर हैं ॥ श्रीपूर्ण  
पुरुषोत्तम यही हैं ॥ सो पुरुषोत्तम जानि के पद्मनाभदास  
श्रीआचार्यजी की शरण आए ॥ नाम पायो ॥ पाछे समर्पन



करवायो ॥ पाछे उत्थापन के समे श्रीआचार्यजीने पोथी खोली ॥ तहां दामोदरदास संभरवारे के घर बिराजे हते ॥ सो पद्मनाभदास आपने घर तें आये श्रीआचार्यजी को दंडवत करिके वेठे ॥ तब श्रीआचार्यजी नें निबंध को श्लोक कह्यो ॥ सो श्लोक ॥

“ पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम् ।

वृत्त्यर्थं नैव युंजीत प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥१॥

तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत् ।

त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात् ॥२॥

यह श्लोक पढे ॥ सो पद्मनाभदासजी ने अंजुली भरि के संकल्प कीयो ॥ जो कथा कहि के वृत्ति न करुंगो ॥ ऐसे श्रीआचार्यजी के आगे संकल्प कीयो ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहनो ओर तो तुम्हारी वृत्ति हे ॥ तुम ब्राह्मण हो ॥ ताते ओर महाभारत इत्यादिक तो कहनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज अब तो संकल्प कीयो सो तो कीयो ॥ ताते कछू न कहनो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही जो तुम तो गृहस्थ हो ॥ कोन भांति सो निर्वाह करोगे ? तब पद्मनाभदास नें श्रीआचार्यजी सां कह्यो ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहूंगो ॥ ओर जिजमान के घर वृत्ति कर लाऊंगो ॥ ताते निर्वाह करूंगो ॥ पाछे जिजमान के घर वृत्त्यर्थ गए ॥ तिनने बहुत



आदर कीयो ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें ग्लानी आई ॥ जो पहिले तो कबहू भिक्षा करी नहीं ॥ अब वैष्णव भये पाछे भिक्षा मागन निकस्यो ॥ सो उचित नहीं ॥ पहले तो उपवीत गरे में हतो ॥ ताको तो उचित हे जो भिक्षावृत्ति करें ॥ परि अब तो गरेमें माला पहरी ॥ ताको तो यह भिक्षा वृत्ति उचित नहीं ॥ तब फेरि संकल्प कीयो ॥ जो भिक्षावृत्ति न करुंगो\* ॥ तब फेरि श्रीआचार्यजी ने पूछी जो अब निर्वाह कैसे करोगे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही जो वैश्यवृत्ति करि निर्वाह करुंगो ॥ पाछे कोडी बेचते लकड़ी ले आवते ॥ परि ओर बात न विचारी ॥ या भांति देहादि पर्यंत सेवा कीनो ॥ ऐसे टेकी ॥

इति प्र. १ समाप्त ॥

\*ते वञ्चते पद्मनाभदासे आ पद गाथुं:—

जाचों जाय कोनके घरपे श्रीवल्लभसे पाय धनो ।

x

+

x

x

छेद्वी लीटी पद्मनाभप्रभु विलोक वागधीश मिट गये रवि सुत त्रास रनी ॥

नोधि:—कवयित् आ पदना अंते कुंभनदासनी छाप पणु नेवाभां आवे छे. परंतु वाक्यरचनाभाव अने संगति पद्मनाभदासनां अन्य पदे साथे योक्तस भणती होवाथी आ पद्मनाभदास कृत पद छे तेमां जराय संशय रहेतो नथी.



## પદ્મનાભદાસનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:—

પદ્મનાભદાસનો જન્મ સંવત ૧૫૨૦ માં કન્નોજ ગામમાં એક કનોજીયા બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો. પદ્મનાભદાસના પિતા એક સુપ્રસિદ્ધ ભાગવતકથાકાર હતા. તેઓ ભાગવતને પોતાના ઇષ્ટદેવ તરીકે ગણી, નિત્ય શ્રીમદ્ભાગવતનું પૂજન કરતા, ભોગ ધરતા અને પ્રેમપૂર્વક આરતી ઉતારતા. પદ્મનાભદાસના પિતા લગભગ ૪૦ વર્ષના થયા ત્યાં સુધી તેઓને કોઈ સંતતિ ન હતી.

એક સમય તેઓ “ નૈમિષારણ્ય ”માં ગયેલા, ત્યાં તેઓને રાત્રે સ્વપ્નમાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીં તમે દુગ્ધપાન કરી એક શ્રીમદ્ભાગવતની સમ્પાદ કરો. તમારે ત્યાં એક હરિભક્ત પુત્ર થશે. આજ્ઞાનુસાર તેઓએ એક સમ્પાદ કરી. પછી તેઓ કન્નોજ આવ્યા. ત્યાં તેઓને સમયાનુસાર એક સુંદર પુત્રરત્નની પ્રાપ્તિ થઈ. અને તે પુત્રનું નામ તેઓએ “ પદ્મનાભ ” રાખ્યું.

પદ્મનાભ બહુ જ સુંદર તેજસ્વી અને અત્યંત તીવ્ર બુદ્ધિના હતા. નાનપણથીજ તેઓ અન્ય રમત ગમતને ત્યજી શાસ્ત્રના અભ્યાસમાંજ મગ્ન રહેતા.

લગભગ ૧૫૪૦ સુધીમાં તો તેઓએ મોટી મોટી સભાઓમાં જઈ શાસ્ત્રાર્થ કરવા શરૂ કર્યા. અને થોડાજ સમયમાં અત્યંત પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. તેઓ એટલા બધા પ્રસિદ્ધ થયા કે મોટાં મોટાં રાજ્યોમાં તેઓનું આદર સન્માન થવા લાગ્યું.

જ્યારે તેમના પિતા હરિશરણ થયા. ત્યારે તેઓએ પિતાનું સુપ્રસિદ્ધ વ્યાસાસન સંભાળ્યું. અને ત્યારથી તેઓ કથા કહેવા લાગ્યા. તેઓની કથા કહેવાની શૈલી એટલી સુંદર હતી કે અનેક ગામોના લોકો દૂર દૂરથી સાંભળવા આવતા અને મુગ્ધ થતા. જેથી તેમનો પૂર્ણ યશ સર્વત્ર પ્રસરી ગયો. આથી તેમને આજીવિકા ધર બેઠે આવતી. વળી તેઓને એક નિયમ એવો હતો કે અધિક માસમાં



પૂર્ણ ભક્તિથી કેવળ દુગ્ધપાન કરીનેજ શ્રીમદ્ભાગવતનું પારાયણ કરતા. આ પ્રકારે કેટલાંક વર્ષો તેઓએ વ્યતીત કર્યા.

સંવત ૧૫૫૨ લગભગ શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા તે અર-સામાં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીના દિગ્વિજયનો યશ સાંભળી દામોદરદાસને ત્યાં દર્શનાર્થ ગયા. ત્યાં પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી શ્રીમદ્ભાગવતના કેટલાએક પ્રસંગો શ્રવણ કર્યા. તરતજ તેમને શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું, અને તેઓ સહકુટુંબ સેવક થયા. ( પછીનો બધો પ્રસંગ વાર્તામાં જુઓ.)

પછી શ્રીઆચાર્યજી સાથે તેઓ વ્રજમાં આવ્યા ત્યાં સં. ૧૫૫૬ ના ફાગણ સુદ ૭ ના દિવસે કર્ણાવલમાં શ્રીમથુરેશજીને પધરાવી પાછા કન્નોજ આવ્યા. ત્યાં માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સેવા કરવા લાગ્યા. તે વખતે તેમને શ્રીઠાકુરજી સાનુભાવ થયા. તેમની કવિત્વશક્તિ પાછલથી આવિર્ભાવ પામી તેમણે અનેક પદો શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીઠાકુરજીનાં કર્યા છે.

તેમનાં રચેલાં ૪૦ પદો વિદ્વાનોના અભિમાનને પૂર્ણતયા ચૂર્ણ કરે એવાં છે. ભગવત્કૃપા વિના સમજમાં આવે તેમ નથીજ. તે પદોદ્ધારા સારી રીતે સમજી શકાય છે કે યદિ શ્રીઆચાર્યજીનું નિગૂઢ ભાવાત્મક સ્વરૂપ દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસથી અતિરિક્ત કોઈએ પૂર્ણતયા જાણ્યું હોય તો એક પદ્મનાભદાસે જ અને “નિગૂઢહૃદયો-નન્યભક્તેષુ જ્ઞાપિતાશયઃ । ” આ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ અહિંજ ( આ વાર્તામાં ) વિશેષતયા સાર્થક દેખાય છે.

પદ્મનાભદાસજીની ભૂતલસ્થિતિ તેમના આ પદથી ચોક્કસ થઈ શકે છે:—

મધુર વ્રજદેશ વશ મધુર કીનો ।

મધુર ગોકુલ ગામ મધુર વલ્લભનામ મધુર વિટુલ ભજન દાન દીનો ॥

મધુર ગિરિધર આદિ સતતનુ વેણુનાદ સત રંધ્રન મધુરરૂપ લીનો ।



मधुर फलफलित अति ललित पद्मनाभप्रभु मधुर अलि गावत सरस रंग भीनो ॥ ( श्रीगुरु पञ्च सात आलोकना नामनुं अेक पद छे ) अेथी स्पष्ट छे के साते आलोकना प्राकट्य सुधी पद्मनाभदास विद्यमान हता. अने सातमा आलोक श्रीधनस्यामनुं प्राकट्य १६२७मां छे. ( सह कृष्ण तेरस रविज रिक्ष शत कला श्रीविठ्ठल भूप के ( भूल पुरुष ) अेटले पद्मनाभदासनी स्थिति १६३० सुधी योक्कस. छेण अे निर्विवाद सिद्ध थाय छे. पद्मनाभदासनेो काव्यरचनाकावः लगलग संवत् १६०० नेो अनुमान थर्ध शके छे.

सो पद्मनाभदास चंपकलता सखि हे ॥ श्रीस्वामिनीजीकी ॥

जब पद्मनाभदासने श्रीआचार्यजीसों श्रीहरिरायजी कृत बिनती करी जो हम ब्राह्मण हे ॥ भिक्षावृत्ति आधिदैविक स्वरूप करेंगे ॥ यह टेक देखि श्रीआचार्यजी बहोत (जन्म ३) प्र० १ पें प्रसन्न भए ॥ (ओर कह्यो) जो वैष्णवको भावप्रकाश ओर टेक हि बडो धर्म हे ॥

श्रीमथुरेशजीके पाछें पद्मनाभदासके सगरे कुटुंबको प्राकट्यको प्रकार (जब) अंगीकार कीए ॥ तब पद्मनाभदासने कही महाराज हमको कहा कर्तव्य हे ? ॥

तब श्रीआचार्यजी कहे भगवद्सेवा करो ॥ तब पद्मनाभदासने कही ॥ महाराज मैंने तो पुराण महाभारत आदि शास्त्र बहोत देखे हैं ॥ सो मोकां श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें विश्वास आवनो कठिन हे ॥ जो स्वरूपको माहात्म्य प्रगट होतही देखूं तब मेरो विश्वास दृढ होइ ॥ काहेतें विश्वासही फलरूप हे ॥ (विश्वासः फलदायकः) तब श्रीआचार्यजी कहें



હમારે સંગ વ્રજ ચલો ॥ તુમકોં (માહાત્મ્ય) દિશાવેંગે ॥ તબ પદ્મનાભદાસ  
 વ્રજકું ચલે ॥ સો મહાવન કે પાસ રમનસ્થલ હે ॥ તહાં શ્રીજમુનાજી કે  
 કિનારે (સામને પાર કર્ણાવલમેં) શ્રીઆચાર્યજી ચિરાજે હતે ॥  
 પ્રાતઃકાલ સમય હે ॥ ઓર શ્રીજમુનાજીકો કરાડો ટૂટ્યો ॥  
 તામેંતે એક ભગવત્સ્વરૂપ જેસેં તાડકો વૃક્ષ (હોય) હતને  
 બડે, શ્રીઆચાર્યજી કે આગેં આઈ કહે ॥ મેરો સેવા કરો\*  
 તબ શ્રીઆચાર્યજી કહે ॥ મહારાજ યા કાલમેં વૈષ્ણવકી સામર્થ્ય  
 નાંહી ॥ જો આપુકી સેવા શૃંગાર કરે ॥ સેવા કરાડવે કો મનોરથ હોઈ  
 તો ભક્તનસોં પધરાણ જાય (એસે) ગોદસેં બેઠો ॥ તબ સેવા હોઈ ॥ તબ  
 છોટો સ્વરૂપ કરિ શ્રીઆચાર્યજી કે ચિબુકસોં મસ્તક ઠાકુરજી કો લગ્યો ॥  
 હતને બડે ભણ ॥ સો સ્વરૂપ શ્રીયમુનાજી ગિરિરાજ સરખા સરખી ગાંઝ  
 કુંજ ચોરાસી કોસ સગરો સ્વરૂપાત્મક ચિહ્ન સહિત હે ॥ તારેં શ્રીઆ-  
 ચાર્યજીને શ્રીમથુરાનાથજી નામ કરે ॥ (ઓર) પદ્મનાભદાસકોં કહે ॥  
 ક્યોં તેરો મનોરથ ભયો ? તબ પદ્મનાભદાસ પ્રેમમેં વિહલ હોઈ કહે ॥  
 મહારાજ આપુ સરિખે મેરે ધની હો ॥ આપકી કૃપાતેં કહા ન હોઈ ? ॥

---

\* શ્રીમથુરાનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૫૫૬ શાગણ સુદ ૭નું છે.  
 આથી એ પણ અનુમાન સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીઆચાર્યજી સંવત્  
 ૧૫૫૦ થી ૧૫૫૫ ની વચ્ચે કત્તોજ પધારેલા હોવા જોઈએ. અને  
 પદ્મનાભદાસજી દામોદરદાસને ત્યાં શરણે આવેલા છે. તેથી દામોદર-  
 દાસને શરણે લઈ આપ દામોદરદાસને ત્યાં થોડા દિવસ બિરાજ્યા  
 અને માર્ગની સેવા પરિપાટી આદિ બતાવી તેજ સમયમાં ભગવત્કથા  
 સાંભળી પદ્મનાભદાસ પણ શરણે આવેલા છે.



તવ શ્રીઆચાર્યજી કહે “યથા લાભ સંતોષ”<sup>x</sup> કરિ ભાવપૂર્વક સેવા કરિયો ॥ તવ આજ્ઞા માંગી શ્રીમથુરાનાથજી કોં કન્નોજ મેં અપને ઘર પધ-રાઈ લાણ ॥ પ્રીતિપૂર્વક સેવા કરન લાગે ॥ (પહેલે) ભિક્ષાવૃત્તિ કરતે ॥ તવ પદ્મનાભદાસ કે મનમેં આઈ જો મેં વૈષ્ણવ કહાઈકે ભીલ માંગો ? ॥ શ્રીઆચાર્યજી યથાલાભ સંતોષ સોં કહે હે ॥ ઓર ઉત્તમ પક્ષ યહી હે ॥ “અવ્યાવૃત્તો ભજેત્ કૃષ્ણં પૂજયા શ્રવણાદિભિઃ ” ॥૨॥ યા પ્રકાર અવ્યા-વૃત્તકો નેમ લે સેવા મન લગાઈકે કરન લાગે ॥

॥ इति मथुरेशप्राकट्य प्रकार ॥

### —: સમસ્ત લીલાપ્રકરણ :—

પદ્મનાભદાસ ચંપકલતા સહી કો પ્રાકટ્ય હે ।

તેમના ધ્યાનનું કોષક આ પ્રમાણે છે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	ગાદી	રાગ
ચંદ્રભાનુ	ચંદ્રકલા	કૃષ્ણ વર્ણ શ્વેત ઝાંઘ	હર્યો	કલાનિપુણ	રવાવ	કાન્હરા

ચંપકલતાજીને ત્યાં સત્તર લાખ ૧૭૦૦૦૦૦ ગાય છે. શ્રીચંદ્રા-વલીજીના ભાવને મળે છે અને પરસ્પર સહવાસી છે. તેથીજ અહીં

<sup>x</sup> શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞા “યથાલાભ સંતોષ”ની નિબંધમાં પણ છે. અને તેને અનુસરીને શ્રીહારરાયજી પણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે.

“વૈરાગ્યં પરિતોષં ચ લીલાભાવાય ભાવयेत्” ॥ ૬૪૩ ॥

(સ્વ૦ મા૦ શ૦ સ૦ સે૦ નિ૦) ..

“શ્રીકૃષ્ણં પૂજયેદ્વત્તયા યથાલબ્ધોપચારકૈઃ” (નિબંધ)



पणु श्रीगुसांछिना प्राकट्यना सहायभूत पद्मनाभदास थया. अने श्रीगुसांछिना स्वश्पने ( वेणुस्वश्पने ) अनुभव पणु छे. ते ४० पदमां वर्णुव्ये छे.

\* एक समे श्रीआचार्यजी प्रयाग में हते ॥ तहां पद्मनाभदास पास हैं ॥ तब रात्र प्रहर एक  
वार्ता प्रसंग २ गई हती ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीअक्काजी पार हैं ॥ सो पार तें पधराय लाओ ॥ सो इतनो सुनि कें उठि चले ॥ तब पांच सात वैष्णव उहां सोये हते ॥ सो कहन लागे ॥ जो ब्राह्मण बावरो भयो हे ॥ या समें कहां जायगो ? ॥ नाव सब बंधी हे ॥ घटवारे सब घर गए हैं ॥ तातें या विरियां जायवेकी नाहीं ॥ परि याको ( पद्मनाभदास को ) श्रीआचार्यजी महाप्रभून की आज्ञा को विश्वास हे ॥ जो यह बात अवश्य होईगी ॥ सो घाट उपर आये ॥ तब इत उत देखन लागे ॥ इतनेमें ही अकस्मात् एक लरिका एक डोंगी लेके आयो ॥ तब वाने पद्मनाभदास सों पूछी जो तु पार जाइगो ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो जो हां हां जाउंगो ॥ सो उन पार उतार दीनो ॥ पाछें फेरि पूछ्यो जो तू फेरि आवेगो ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो घडी दो में आऊंगो ॥ तब उन लरिकाने कह्यो जो डोंगी राखत हों, बेग आईयो ॥ पाछें अडेल



में आइके श्रीअक्काजी को पधराइ ल्याए \* ॥ वाही डोंगी में बेठारि पार उतरे ॥ तब पाछें फेरि देखे तो डोंगी नांही ॥ ओर लरिका हू नांही ॥ पाछे श्रीअक्काजी को पधराय के लाये ॥ तब श्रीआचार्यजी पद्मनाभदास को आज्ञा दीनी ॥ जो जाउ सोइ रहो ॥ तब पद्मनाभदास जहां वैष्णव सब जाइ के सोए हते ॥ तहां आए ॥ तब वैष्णव पूछन लागे ॥ जो तूम कहा करि आए ? ॥

तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो एसे श्रीअक्काजी को पधराय लायो हूं ॥ तब सब वैष्णव ने कह्यो जो तुमने श्रीठाकुरजी को श्रम बहुत करायो ॥ पाछें उन वैष्णवननै (जब) श्री आचार्यजी सों कह्यो जो महाराज पद्मनाभदास ने श्रीठाकुरजी को श्रम बहुत करवायो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ (जो) यह जो कछू भयो हे ॥ सो मेरी इच्छा सों भयो हे ॥ तातें तुम इन पद्मनाभदास सों कछू मति कहो ॥

यह वार्तामें यह सिद्धांत भयो जो गुरुके कार्यार्थ प्रभुकों कष्ट

(श्रम) करावे तां वैष्णवकों बाधक नांही ॥

श्रीहरिरायजी कृत

भावप्रकाश.

गुरुके प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होइ ॥+

(दूसरो अभिप्राय) ओर उह रात्रि श्रीगुसांईजी के प्रागट्यके गर्भ स्थितिको मुहूरत हतो ॥

तातें श्रीआचार्यजी आज्ञा कीए ॥ श्रीठाकुरजी डोंगी लाए ॥ तातें यह

\* श्रीआचार्यजी अने श्रीगुसांईजीना समयमां पडदानी प्रथा नहिं हती. पडदानी प्रथा सात बालडोना समयमां श्रीनाथजीनी.



જતાણ જો શ્રીગુસાંઈજીકે લિણ સગરો કાર્ય કરેં યામેં કહા કહનોં ? ॥

આજ્ઞાથી ચાલુ થઈ છે. વિશેષ તે સંબંધી ઇતિહાસ પ્રસંગોપાત આગલ ઉપર લખીશું.

†સરખાવો શ્રીહરિરાયજીનાં આ વાક્યો:—

यथाकथञ्चित्स्वस्वामिसन्तोषोत्पादनं हितम् ।

तस्मिंस्तुष्टે फलं स<sup>०</sup> सिद्धमेव न संशयः ॥૨૦॥ (સ્વ૦મા૦મ૦નિ૦)

વિશેષ ગુરુના સ્વરૂપજ્ઞાનને માટે શ્રીહરિરાયજીએ “ગુરુદેવાણક” રચ્યું છે તે વાંચો. ગુરુની અપેક્ષિતા અને મુખ્યતા ક્રિશ્ચીયન, મોહ-મેદન, બૌદ્ધ, જૈન, શાંકર આદિ ધર્મોમાં પણ ખૂબજ કહી છે. વ્યવહારથી પણ મનુષ્ય માત્ર જન્મે ત્યારથી મરે ત્યાં સુધી ગુરુની (કાષ્ટ/પણુરૂપે) અપેક્ષા છેજ. ગુરુ વિના કાષ્ટ પણ પ્રકારતું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું નથી. તેમજ દરેક કાર્યમાં (લોક અને વેદમાં) ગુરુની અપેક્ષા છેજ.

માટેજ દરેક ધર્મમાં ગુરુને ઇશ્વરથી પણ અધિક માનવામાં આવ્યા છે. (અન્ય માર્ગ અને આ માર્ગના ગુરુમાં શો તફાવત છે તે જાણવા માટે નીચે વાંચો.)

**गुरु के प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होई ॥**

આ શ્રીહરિરાયજીના મતને ભાવનાવાળા શ્રીદ્વારકેશજી પણ અનુસરે છે તે આ પ્રમાણે:—

या भावना तब सिद्ध होइ जब गुरु प्रसन्न होय । तातें गुरु को प्रसन्न राखिये । गुरु हे सो हृदयांधकार के निवर्तक हे । ‘गुरुशब्दस्त्वंध-कारे स्यात् रुशब्दस्तन्निवर्तकः । अंधकारनिवृत्तत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ’ इति, हरि जब अप्रसन्न होइ तब गुरु रक्षा करे । जब गुरु अप्रसन्न होइ तब कोउ रक्षक नहि । यातें तनुजा वित्तजा सेवा करिकें गुरुको प्रसन्न करिये । ‘हरौ हृष्टे गुरु छाता गुरौ हृष्टे न कश्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत् ’ । तहां मुख्य गुरु तो श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसांईजी । ता पीछे इनको कुल गुरु हे । श्रीकृष्णज्ञानदः, या पद करिके



यामें श्रीगुसांईजीके स्वरूपकी श्रीठाकुरजीतें अधिकता दिखाए ॥ (तीसरो

श्रीमहाप्रभुजी गुरु हे । ओर श्रीगुसांईजी में (श्रीआचार्यजीने) शेषमाहात्म्य तथा अशेष माहात्म्य यह दोउ माहात्म्य को स्थापित किये हैं । या तें गुरु हे । ‘ श्रीविद्वलेशे स्वाखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः ’ । ओर कुलमें तो ‘ अस्मत्कुलं निष्कलंकं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतं ’ । या वाक्य तें कुल हैं सो गुरु हे । यथा देहे तथा देवे, यथा देवे तथा गुरौ ’ । इंद्रियव्रत करिकें देह पोषन करिये । तो प्राण पोषन सेवा होइ । जेसे प्राणसेवा करनी तेसे देव सेवा करनी । प्राण सेवा करे तो इंद्रिय देहभावको प्राप्त होइ । ‘ आसन्यस्य हरेर्वापि सेवया देवभावतः ’ । आसन्य सो प्राण । हरिसेवा करे तो व्यापि वैकुण्ठी प्राप्ति तब होइ जब गुरु सेवा करे । जेसी हरि सेवा तेसी गुरु सेवा । ‘ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः । ’

देहसेवा तथा देवसेवा, गुरुसेवा, यह तीनों सेवा नित्य करनी ताको प्रकार । तहां देहसेवा तो याको जो पदार्थ अपेक्षित हे सो सिद्ध करत हे । तेसे देवसेवा जो पदार्थ अपेक्षित हे सोउ सिद्ध करत हे । दोइ सेवा तो भई । गुरुसेवा तो शेष रही । यह सेवा होइ तो पहिली दोउ सेवा सिद्ध होइ । ( भावभावना )

पुष्टिभार्गीय गुरुनी श्रेष्ठताः—

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, श्रीगुसांईजी साक्षात् ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम इनकी शरण गये । ओर मारग में गुरु जीव हे, सेवा ईश्वरकी । या पुष्टिमारग में गुरु ही पूर्णपुरुषोत्तम, सेवाहू पूर्णपुरुषोत्तम की । सेवोपयोगी पदार्थ हू निर्दोष हे ।

( श्रीद्वारकेशजी भावनावारे )

જે લોકો શ્રી આચાર્યજીએ નિબંધમાં કહેલાં લક્ષણો આજના ગોસ્વામી બાલકોમાં નથી એવા પ્રકારનો આક્ષેપ કરી અજ્ઞાની જનોને પુષ્ટિભાર્ગીય દીક્ષાથી રહિત કરી ઉધે રસ્તે દોરે છે તે લોકોને શ્રીહરિચંદ્રનાં આ વચનો સમજવાં જોઈએ:—



અભિપ્રાય) ઓર પદ્મનાભદાસકોં પૂરન વિશ્વાસ દિશ્વાણ ॥ જો શ્રીઆચાર્ય—  
જીકે બચન સ્વાલી કબહૂં ન જાઈ ॥ સર્વથા કાર્ય સિદ્ધ હોયગો ॥

॥ ઇતિ પ્રસંગ ૨ સમાપ્ત ॥

બહુરિ એક સમેં શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભૂ શ્રીગોકુલ તેં  
અડેલ કો જાત હતે ॥ તબ એક વ્યો-  
વાર્તા પ્રસંગ ૩ પારી ક્ષત્રી કલુક વસ્તુ લેકે સાથ મેં  
ચલ્યો સો કનૌજ કે ઉરે રહ્યો ॥  
શ્રીઆચાર્યજો તો કનૌજ બીચ પધારે ॥ વ્યોપારી પાછે રહ્યો  
સો તાકે ઊપર ચોર પરે ॥ વસ્તુ સબ લુટિ લીની\* ॥ શ્રીઆ-

અથાધુનિકતીર્થાનામતથાભૂતતોઽપિહિ ॥ પૂ૦ ॥

ઉપદેશસ્તથાભૂતગુરોરિવ ફલિષ્યતિ ।

યદિ દુઃસજ્જદોષેણ નાન્યથા ચેદ્ ભવેન્મતિઃ ॥ ૫૧ ॥

( સ્વ૦ મા૦ શ૦ સ૦ સે૦ નિ૦ )

ભાવાર્થ:—હવે જો આધુનિક તીર્થરૂપ ગુરુઓ ઉપર જણાવેલા  
ગુરુ જેવા નથી, તો પણ તેઓ જે ઉપદેશ આપે છે, તે તો પહેલાં  
વર્ણવેલા સદ્ગુરુઓ જ કહેલો ઉપદેશ આપે છે, માટે હાલના ગુરુઓ  
તેવા ન હોવા છતાં પણ તેમની પાસેથી જો ઉપદેશ લેવામાં આવે  
તો તે ઉપદેશ, જો દુઃસંગરૂપી દોષથી બુદ્ધિ ભ્રમિત થઈ નહિ હોય  
તો, પહેલાં બતાવેલા મુખ્ય સદ્ગુરુના ઉપદેશની પેઠે જ ફળશે. આજ  
મતલેખવાળા શ્રીપુરુષોત્તમજીનો છે. તેમજ સમગ્ર ગોસ્વામીબાલકાનો  
છે. કેટલાએક બાલકાના મુખારવિન્દથી સાંભળ્યું છે કે “અમે જીવને  
શરણે લઈ શ્રીમહાપ્રભુજીને સોંપીએ છીએ”

\*શ્રીઆચાર્યજીના ચરણારવિન્દ જે છોડે છે તે આ લોક અને  
પરલોક બન્નેમાં વાસ્તવિક બુટાય છે જ, તે આ દષ્ટાંતથી સિદ્ધ થાય છે.



चार्यजी आप रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो  
 इतनेमेंही पाछेंते ब्योपारी रोवत पीटत आयो तब पूछी जो  
 श्रीआचार्यजी कहा करत हैं ? तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो  
 भोजन करत होइंगे ॥ तब ब्योपारी ने कह्यो जो हमारो माल  
 सगरो लुटि गयो हे ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप  
 भोजन करत हैं ॥ तब पद्मनाभदास ने मनमें विचार्यो ॥ जो यह  
 बात श्रीआचार्यजी सुनेंगे तो भोजन न करेंगे ॥ तार्ते आप सुने  
 नहीं ( एसें करना ) ॥

तब पद्मनाभदास वा ब्योपारी की बांह पकरि के बाहिर  
 ले आये ॥ तब पूछि जो साँच कहे ॥ तेरो माल कितनो गयो  
 हे ? तब उन ब्योपारी नें बतायो ॥ तब वा ब्योपारीकी बांह  
 पकरि के पद्मनाभदास एक साह की दूकान पें ले गये ॥  
 ता साहनें पद्मनाभदास की बहुत आगतासागता करी ॥  
 पाछे वा साह ने कह्यो जो आग्या करो केसे पधारे हो ॥  
 तब पद्मनाभदास नें साहसों कह्यो ॥ जो या ब्योपारी को  
 इतनो द्रव्य देनो चाहिये ॥ या द्रव्य को खतपत्र व्याज हम  
 लिखि देइंगे ॥ तब वा साहनें कही जो पद्मनाभदासजी तुम  
 कों जितनो द्रव्य चाहिए तितनो द्रव्य लेउ ॥ खतपत्र की कहा  
 बात हे ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ जो पहिले तो खतपत्र  
 लिखूंगो ॥ ओर पाछें द्रव्य लेऊंगो विना खतपत्र लिखे तो में  
 लेऊंगो नांही ॥ तब साह ने कही ॥ जो तुमारी इच्छा ॥  
 पाछें पद्मनाभदास ने खतपत्र व्याज लिखि अपनो धरम



गहने लिखि दीनो \* ॥ पाछें व्योपारी तो द्रव्य लेके अपने घर गयो ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तू कहाँ गयो हो ॥ तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो महाराज एक काम हो तहां गयो हो ॥ सो श्रीआचार्यजी आपु तो ईश्वर हैं ॥ तत्काल बात को जानि गए ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो हमको वा व्योपारी के संग कलू बिसावनो हतो कहा ? जो वाको माल देते ? वह पाछें रह्यो तो हम कहा करें ? ॥ परि तेने बुरी करी ॥ जो रिन काढि के पैसा दीनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज रिन तो कालि देऊंगो ॥ यह कितनीक बात हे ॥ परि वह व्योपारी पुकारतो तो राज भोजन घडी दिय अवेरो करते ॥ तो मेरो सगरो जन्मारो वृथा होय जातो ॥ तब श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो तेने धर्म गहने लिखि दीनो सो कहा हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज ऐसे गाढो लिखे बिना दियो न जाइ पाछें श्रीआचार्यजी आप तो अडेल पधारे ॥ पाछे पद्मनाभदास एक राजा हतो ॥ ताके पास गये ॥ पाछें राजाने कह्यो जो मोकों कृपा करि के कथा सुनावो ॥ तब पद्मनाभदास नें कह्यो ॥ जो राजा श्रीभागवत तो न कहूंगो ॥ कहो तो महाभारत सुनावों ॥ तब राजा नें कह्यो जो भल्यो

---

\* ते समयमां धर्मनी डेटली डींभत सर्व सामान्यमां पणु हुती तेनुं सूक्ष्म अवलोउन अहीं थाय छे. ते समयना पुरुषो सत्यवयनी अने धर्म उपर अपूर्व श्रद्धावाणा हुता.



महाभारत ही सुनावो ॥ तब महाभारत कहन लागे ॥ सो जब युद्ध को प्रसंग आयो ॥ तब सबन के हथियार छुड़ाइ धरे ॥ तब आगे कहन लागे ॥ सो कथा में कोऊ (एसो) वीररस उपज्यो सो आपुस में लात मुक्किन सों लरन लागे \* ॥ पाछें केतेक दिनमें महाभारत समाप्त भयो ॥ तब राजा बहुत दक्षिणा देन लाग्यो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो ॥ जो इतनो द्रव्य नांहि लेऊंगो ॥ मेरे माथे रिन हे ॥ सो तितनो लेऊंगो ॥ पाछे वा साहको जितनो मूल व्याज देनो हतो तितनो लीनो ॥ बाकी सब फेरि डार्यो ॥ सो वे पद्मनाभदास ऐसे भगवदीय हे ॥

तब व्योपारीने कह्यो जो हमारो माल सब लुटि गयो ॥ आपु भोजनको पधारे हैं ? ॥ यह कह्यो ताको श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश. कारन यह जो आपु दयाल व्हेके जीव दुःख जानिके भोजन कैसें करत हैं ? ॥ जो दयाल हे सो परायो दुःख दूरि करिकें भोजन करत

हे ॥ [तब पद्मनाभदास बह व्योपारीकी बांह पकरिके बाहर लाय पूछे ॥ जो साँच कहियो तेरो माल कितनेको गयो हे ? ॥ तब उन व्योपारीनें कही ॥ जो पंद्रह हजारको माल हतो ॥ बेचेंतें सतरे हजारको होतो ] ॥ × × × जब पद्मनाभदास व्योपारीको द्रव्य दिवायके घर आये तब श्रीआचार्यजीने कही (जो तेने) व्योपारीको द्रव्य क्यों दिवायो ? ॥ रोन काढिके ॥ कछू हम वीमा कीयो हतो ? पाछें रह्यो लुटि गयो ॥ तें

\* अथैश्वर्य धर्म शुभे। पद्मवन्ती वार्तानुं स्व० अने रहस्य

[ ] आटकी वात १७५२ ना पुस्तकमां विशेष प्राप्त थाय छे.



बुरी करी ॥ ताको कारन यह जो रिनहत्या माथें लीनी ॥ सो बुरी करी-  
सरीर को कहा भरोसो हे ? ॥ देह छुटि जाइ तो रिन माथे रहे ॥

तब पद्मनाभदासने कही ॥ वा व्योपारिको रुदन सुन घरी दोय  
आपु भोजन अवेरो करते ॥ मेरो जन्म वृथा होइ जातो ॥ (ताको  
अभिप्राय) सेवकके आगें स्वामीको कछू श्रम होइ ॥ सेवक श्रम दूरिन  
करें ॥ तो धर्म जाइ ॥ पाछें धिकार वह सेवककां जीवे सो वृथा हे ॥  
ओर रिणकी केतिक बात हे ? ॥ अब चुकाई देऊंगो ॥ ताको कारन  
यह जो कालकी कहा सामर्थ्य हे ॥ आपुकी कृपातें बाधक न होइगो ॥  
ओर धरम गहने धर्यो तामें एक भाव यह हे ॥ (जो) अपनो वैदिक  
ब्राह्मणको धर्म गहने धर्यो होइगो वह गौन भाव हे ॥ काहेतें श्रीआचा-  
र्यजीकी सरन आए ॥ तब (सब) समर्पन कीए ॥ जो वैदिक धर्म न्यारो  
रहे ॥ तो पुन्यको फल स्वर्ग भोगनो परे ॥ तातें इनने तो सर्व समर्पन  
करि एक पुष्टि भक्तरूप धर्म राखे हे ॥ ताहितें श्रीआचार्यजी हू पूछ्यो  
(जो) एसो धर्म साहके इहां गहने धर्यो ? ॥ परंतु पद्मनाभदासकों  
श्रीआचार्यजीको स्वरूप हृदयारुढ हतो ॥ श्रीआचार्यजीके सुखके  
लिए ॥ धर्महूकी अपेक्षा राखें नाही ॥+ गहने धरे ॥ ओर व्योपारिको  
द्रव्य देके बहोत मनमें प्रसन्न भए ॥ भली भई (व्योपारी) इहां आयो ॥

---

x “ तेने ऊक्ष कर्म नव सांधेरे यम ते शिर धनुष्य न सांधेरे  
अवे। भारग श्रीवल्लभवरनोरे, जहां नहि प्रवेश विधि हरनोरे,”  
(वल्लभाभ्यान)

+ पुष्टि धर्मनाये सारूप (शुद्ध) पद्मनाभदासनी वार्तानुं  
स्वरूप अने तेनुं रहस्य.)



જો ચલ્યો જાતો તો જહાં તહાં દેસમેં નિંદા કરતો ॥ ( એસી ઉત્તમ દૃષ્ટિ પુષ્ટિ ભક્તનકૂં ચાહિય ) જો મેં શ્રીઆચાર્યજીકી સંગ છુટિ ગયો ॥ કાહેતેં લૌકિક રાજાકે સંગ છુટયો ન જાઈ તો એસે ईश्वरके સંગ છુટિ ગયો ? ॥ સો પદ્મનાભદાસ કહે ॥ મેરે ધર્મકી પરીક્ષા અર્થ છુટયો ગયો ॥ સો વ્યોપારીકો દ્રવ્ય દીયો ॥ અવ જહાં જાઈગો તહાં શ્રીઆચાર્યજીકી વઢાઈ કરેગો ॥ મોકોં નફા સહિત દ્રવ્ય દીય ॥ યા ભાવસોં પદ્મનાભદાસકી શ્રીઆચાર્યજીમેં અનિર્વચનીય પ્રીતિ હે ॥ x x x

ઓર રાજા જાદા દ્રવ્ય દેન લાગ્યો સો આપ (પદ્મનાભદાસ) યાતેં ન લીય ॥ જો इनको अव्यावृतको नेम हे ॥ વૃત્તિકે અર્થ કથા નાંહી કહની ॥ યહ સંકલ્પ હે ॥ યહ સગરો કામ શ્રીઆચાર્યજીકે સુખકે અર્થ કિય ॥ સો સાહ કો રૂપૈયા દિવાઈ ધર્મ કો કાગદ લિખે હતે સો લે આય ॥ પાછેં ઘર આય સેવા કરન લાગે ॥

॥ इति प्रसंग ३ समाप्त ॥

નોંધ:—દાસ અને સેવકમાં નીચે પ્રમાણેનો ભેદ જાણવો:—

દાસ હોય તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જોતો નથી તેમજ સ્વામીની આજ્ઞાને પૂર્ણપણે જાણીને જ તેનું ઉચિત પાલન કરે છે. સ્વામીને સુખ કયા પ્રકારે થાય ? તેજ વિચારમાં દાસ નિમગ્ન સદૈવ હોય છે. અને તે ગુપ્તપણે પરોક્ષરૂપે સદૈવ સ્વામીના સુખના કાર્યમાં તત્પર રહે છે. સ્વામીને પોતાના કાર્યની જાણ ન થાય તેની બહુ જ સાવધાની રાખે છે. આ દરેક વસ્તુ પદ્મનાભદાસે આ પ્રસંગમાં કરી દેખાડી છે. સેવક હોય છે તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જુએ છે. આજ્ઞાને અનુસાર ( ઉચિત અથવા અનુચિતનો વિચાર કર્યા વિના ) ધર્મ સમજી



ઓર પદ્મનાભદાસ કે ઘર બેટી કુમારી હતી ॥ તાકે નિમિત્ત  
 એક વર શ્રીઆચાર્યજી કો સેવક ચહિ-  
 વાર્તા પ્રસંગ ૪ યત હતો ॥ સો વૈષ્ણવ સોં પૂછન લાગે ॥  
 તવ વૈષ્ણવ નેં કહ્યો ॥ જો એક વર  
 શ્રીઆચાર્યજી કો સેવક હે ॥ પરિ સનોઢિયા બ્રાહ્મણ હે ॥ સો  
 પદ્મનાભદાસ કો સેવક સુનત હી લૌકિક વ્યવહાર કી તો સુધિ  
 નાહીં આઈ ॥ વૈષ્ણવ નેં કહ્યો જો મલો વૈષ્ણવ હે ॥ યાકો કન્યા  
 દીજિયે ॥ તવ પદ્મનાભદાસ ને કહ્યો જો મલો ॥ તવ પદ્મનાભ-  
 દાસ ને વા વૈષ્ણવ કો કુંકુમ મગાઈ તિલક કીયો ઓર કહ્યો  
 મેં બેટી તુમકોં દે ચુક્યો ॥ લગન કો દિન તુમ પૂછો તા દિન  
 બ્યાહ કરું ॥ વિવાહ સહી કરિ પ્રસન્ન હોઈ અપને ઘર આણ ॥  
 તવ બડી બેટી એક તુલસાં હતી સો બ્યાહ હોત હી વિધવા મર્ઈ ॥  
 લૌકિક પતિ કો મુખ નાંહિ દેર્યો ॥ સો શ્રીમથુરાનાથજી કી  
 સેવા મેં તત્પર હતી તાસોં કહ્યો જો અપની બેટી કો વિવાહ અમુકે  
 વૈષ્ણવ સોં સહી કરિ આયો હું ॥ તવ તુલસાંને કહ્યો જો વહ  
 તો સનોઢિયા બ્રાહ્મણ હે ॥ હમ કન્નોજિયા બ્રાહ્મણ હે ॥ સો

---

કાર્ય કરે જાય છે. એટલે સ્વામીના હાર્દને જાણુતો નથી. સ્વામીનું  
 સુખ શેમાં છે તે પણ વિચાર કરતો નથી. દાસ ધર્મનું સ્વરૂપ  
 પ્રજ્ઞલક્ષ્મીએ ( રાસ સમયે ), શ્રીઆચાર્યચરણે ( બન્ને ભગવદ્ આરા  
 સમયે ) અને દામોદર પદ્મનાભ તથા રંગે આદિ પરમ મહાનુભાવ  
 ભગવદ્દીયોએ કૃતીદ્વારા જીવેને સમજાવ્યું છે એ હાસ્ય ધર્મ એજ  
 પુષ્ટિમાર્ગ અને તે ક્ષાત્રમક ધર્મ હોય ભગવત્સ્વરૂપ જ છે. (મર્યાદા  
 દાસ્યધર્મ જે હનુમાનજીમાં હતો તે નહિં. )



एसे कैसे होइ ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो अब तो भई  
सो भई ॥ तब तुलसां ने कही जो सगाई फेरो ॥ तब पद्मनाभ-  
दास ने कही ॥ जो छूरी लाओ ॥ अंगूठा काटो ॥ जा अंगूठा  
करि तिलक कीयो हे ॥ तब तुलसां ने कह्यो ॥ जो अंगूठा कैसे  
काटिए ॥ तब पद्मनाभदास ने कही तो सगाई कैसे फेरिए ? ॥  
अंगूठा कटे तो सगाई फिरे ॥ पाछे पद्मनाभदास ने विवाह  
करि दीनो ॥ जाति के सब झग मारि रहे ॥ वैष्णव के कहेको  
एसो विश्वास ॥ ताते सगाई न फेरी ॥

जब तुलसां ने कह्यो ॥ अंगूठा कैसे काट्यो जाय ? ॥ तब पद्म-  
नाभदास ने कह्यो ॥ श्रीआचार्यजी के सेवक पर  
श्रीहरिरायजी कृत तन मन धन न्योछावरि करिए+ ॥ सो सगाई  
भावप्रकाश. कैसे फेरि जाइ ? ॥

+ आ श्रीहरिरायजी गद्य वाणीने श्रीहरिरायजी पद्य वाणी  
साथे राख्योः--

बारुं तनमन वल्लभियन पर ।

मेरे तन को करुं विछोना शीश धरुं इनके चरनन तर ॥

x

x

x

छेस्ती लीटी

दास रसिक बलैया लेले वल्लभीयनकी चरन रज अनुसर ॥

क्यां आ सर्वोत्तम वैष्णव प्रत्येनो शुद्ध प्रेम ? अने क्यां  
आजडावना आक्षेप कर्ताओंनां भविन हृदय ?

( आ भारगमां तो शुं ? परंतु सर्वत्र जगतमां व्यवहारथी  
लघने छेक भक्ति सुधीनी सिद्धी सुधी भक्तोना भक्तिमा प्रत्यक्ष के  
अप्रत्यक्ष रूपे सर्वने मानवो पडे छे न. )



सरभावे। परमानंददासनुं (अष्टसप्तानुं) ५६

आये मेरे नंदनंदन के प्यारे ।

(अष्टसप्ता) सूरदासजुनां ५६:—

गिरिधर जब अपनो करि जाने । ताको मन भक्तन की सेवा  
भक्त चरनरज सदा लुभाने ॥

(२) प्रभु जन पर प्रसन्न जब होहीं ।

तब वैष्णवजन दर्शन पावे पाप रहे नहिं कोई ॥

हरि लीला उर आवे ताके सकल वासना नासे ।

सूरदास निश्चे विचार करि हरि स्वरूप जब भासे ॥

(अष्टसप्ता) कृष्णदासनुं ५६:—

ताहीको शिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पदरज रति होय ।

x

x

x

(अष्टसप्ता) छीत स्वामीनुं ५६:—

मोहि बल हे दोउ ठोर को ।

एक भरोसो हरिभक्तन को दूजो नंदकिशोर को ॥

x

x

x

श्रीवल्लभजु मळारजुनुं ५६:—

आये मेरे श्रीवल्लभ के दास ।

ताकी सरवर नहिं त्रिभुवन में सुनो वेद इतिहास ॥ १ ॥

x

x

x

ताकी महिमा को कवि बरनत सकुचत सरस्वती व्यास ।

तीर्थन को अति तीर्थ करियत पद रज गंध सुवास ॥

भक्त कहे। साधु कहे। संत कहे। परोपकारी कहे। के वैष्णव कहे।

तेनी महिमा सर्व संप्रदायोमां सर्व जगतमां सर्व ग्रन्थोमां (आष्ट-  
भक्तमां पणु) पाने पाने प्रत्यक्ष के अप्रत्यक्ष रूपे रहेली छे. अहाँ  
विशेष न कहेतां आगत अन्य प्रमंगोमां वर्णन करीशुं.



યા પ્રકાર તુલસાકૈાં મારગ કો અભિપ્રાય બતાવ\* ॥

તા દિન તેં તુલસાકો પ્રેમ વૈષ્ણવમેં પદ્મનાભદાસકે સંગતેં મયો ॥  
સો શ્રીઠાકુરજી તુલસાહકો અનુભવ જતાવન લાગે ॥ પાછેં પ્રસન્ન હોઈ કે

\* ૨ સરખાવો શ્રીકાકા વલ્લભજીનું ૧૪ મું વચનામૃત ( તેમાં આપેલો પ્રસંગ )

મારગનું મૂલ્ય વૈષ્ણવ જ છે. વૈષ્ણવની સેવા એ સર્વોપરિ વસ્તુ છે. તે વૈષ્ણવ કાટિમાં પ્રજ ભક્તો, શ્રીઆચાર્યચરણ ( શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ ), શ્રીગુસાંધજી, સમસ્ત વલ્લભકુલ, દમલા, પદ્મનાભદાસ અને રાજા આશકરણ જેવાનો સમાવેશ થાય છે. આ ભક્તોનાં સ્વરૂપ પુષ્ટિ પ્રવાહ મર્યાદા ગ્રન્થમાં શ્રીઆચાર્યચરણે કહેલા “સ્વરૂપેણાવતારેણ” એ શ્લોક અનુસાર જાણવા. તેથી જ શ્રીગુસાંધજીની આજ્ઞાથી સત્ય-ભામાજીએ રાજા આશકરણને રાજભોગના ચારની સામગ્રી લેવડાવી. શ્રીમહાપ્રભુજીએ અડેલમાં કૃષ્ણચૈતન્યને અનેાસરના સમયમાં વિના સર્મપેલી સામગ્રી લેવડાવી અને અક્ષાજીને આજ્ઞા કરી કે તેમના હૃદયમાં સાક્ષાત્ પ્રભુ ખિરાજમાન છે. માટે તેમની આગલ સામગ્રી ધરવામાં કાંઈ વાંધો નથી ( જુઓ પ્રદીપ ) તેજ પ્રમાણે શ્રીહરિરાયજીના સમયમાં એક વિરકત વૈષ્ણવ ( રાજા આશકરણના સમાન ) ને શ્રીહરિરાયનીની આજ્ઞાથી એક ડોકરીએ વિના સર્મપેલો ખીરનો ડબ્બો ધર્યો. શ્રીહરિરાયજીએ સર્વ સમક્ષ કહ્યું કે મારગનો સિદ્ધાંત એ ડોકરીએજ જાણ્યો. એ વૈષ્ણવને સંદેહ થયો. ત્યારે સંદેહ નિવારણાર્થ તે ડોકરીની પાસે અનેાસરના સમયમાં તે વૈષ્ણવને મોકલ્યો. ત્યાં તે વૈષ્ણવ જુએ છે તો ખીરનો ડબ્બો લઈ શ્રીકાકારજી ડોકરીની છાતી ઉપર ખેલી રહ્યા છે—

શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંધજીનું, આચાર્ય કાટિ, ભક્ત કાટી અને ઈશ્વર કાટી એમ ત્રણે કાટિમાં પ્રાધાન્યત્વ છે. અને ત્રણે કાટિમાં



વૈષ્ણવકોં અપનિ બેટિં વ્યાહિ દિણ ॥ જાતિ સગરિ ઝરિવ મારિ રહી ॥  
તાકો કારન યહ હે ॥ (જો) જહાં તાંઈ દ્રઢ સ્નેહ નાંહિ ॥ તહાં તાંઈ  
લૌકિક વૈદિકકો ડર હે ॥ જબ દ્રઢ સ્નેહ પ્રભૂમેં મયોં ॥ તબ સગરી  
ચિંતા મિટી ॥ લૌકિક વૈદિક બાધા હૂં ન કરિ સકે+ ॥ એસે એક  
વૈષ્ણવ પદ્મનાભદાસ મણ ॥

॥ ઇતિ પ્રસંગ ઇ સમાપ્ત ॥

પણ ભકત કોટિ સર્વોપરિ છે. તે શ્રીમદ્ભાગવત આદિથી સિદ્ધ છે.  
શ્રીઆચાર્યજી સ્વયં ત્રણે કોટિને સ્વીકારે છે જુઓ:—

“ ઇતિ શ્રીકૃષ્ણદાસસ્ય ” અહિં ભકત કોટિ

“ નહિવિભુર્વૈશ્વાનરાદ્વાકપતેઃ ” અહિં ઇશ્વર કોટિ

“ ઇતિ શ્રીવલ્લભાચાર્ય વિરચિતં ” અહિં આચાર્ય કોટિ

માટે પુષ્ટિમાર્ગમાં વૈષ્ણવોની સેવા મુખ્ય છે. તેમાં શેષ અન્તે  
સેવાનો સમાવેશ રહેલો છે. ( હરિ અને ગુરુની સેવાનો. ) વિષયાંધ  
હૃદય આ વસ્તુ ક્યાંથી સમજી શકે ?

+ સરખાવો નારદભક્તિ સૂત્ર :—

સૂત્ર ૧૨ ભવતુ નિશ્ચયદાર્દ્યાદૂર્ઘ્ન શાસ્ત્ર રક્ષણં ।

અર્થ:—દૃઢ નિશ્ચય થયા પહેલાં શાસ્ત્ર રક્ષણ ( શાસ્ત્રોક્ત  
કર્મોનું અનુષ્ઠાન ) હોય.

૧૩ અન્યથા પાતિત્યાશંકયા । અર્થ:—અન્યથા પતિત થવાની શંકા છે.

૧૪ લોકોપિ તાવદેવ કિંતુ ભોજનાદિવ્યાપારસ્ત્વાશરીરધારણાવધિ ।

લોક ( લોક વ્યવહાર ) પણ ત્યાં સુધી ( દૃઢ નિશ્ચય થયા પૂર્વતક )  
છે. કિંતુ ભોજનાદિ વ્યાપાર તો જ્યાં સુધી શરીર છે, ત્યાં સુધી છે.

સારાંશ કે જ્યાં સુધી ઇશ્વરમાં નિરોધરૂપા ભક્તિ દૃઢ ન  
થાય ત્યાં સુધી શાસ્ત્રોક્ત કર્મ પાલન અવશ્ય છે. નહિ તો પતિત



ઓર એક ક્ષત્રાણી પદ્મનાભદાસકે ઘર નિત્ય આવતી ॥

તવ પદ્મનાભદાસકી બેટી તુલસાંને એક

વાર્તા પ્રસંગ ૬ દિન વાસોં કહ્યો ॥ જો ક્ષત્રાણી તું  
નિત્ય ક્યોં આવત હે ? તવ વા ક્ષત્રાણીને

કહી જો એ મહાપુરુષ હૈં ॥ બહે ભગવદીય હૈં ॥ ઓર મેરે સંતતિ  
નાંહી હોતિ હે ॥ તારે આવતિ હેં ॥ તુમ મેરી બિનતી પદ્મનાભ-  
દાસજીસોં કરિયો ॥ તવ એક દિન તુલસાંને પદ્મનાભદાસસોં  
કહ્યો જો યા ક્ષત્રાણીકે સંતતિ નાંહી ॥ તાકે લિએ તુમસોં  
બિનતી કરત હે ॥ તવ પદ્મનાભદાસને તુલસાંસોં કહ્યો જો જલ  
લાડ ॥ તવ તુલસાંને જલ આગે લાડ ધર્યો ॥ તવ વહ જલ લેકે  
ચરણોદક કરિ વા ક્ષત્રાણીકો દીયો ॥ ઓર કહ્યો જો જા તેરે  
પુત્ર હોઇગો\* ॥ તાકો નામ મથુરાદાસ ધરિયો ॥ પાછે વાકે  
પુત્ર ભયો ॥ (તાકો) નામ મથુરાદાસ ધર્યો ॥

થવાની શંકા રહે છે. અને લોક વ્યવહાર પણ દૃઢ ભક્તિ ન થાય  
ત્યાં સુધી જ છે. ઈશ્વરમાં દૃઢ ભક્તિ થયા પછી લોક અને વેદ  
અનેનો ત્યાગ છે. કેટલાક એવો કુતર્ક કરે છે કે પહેલા ખાતુંપીવું  
છોડી દે ત્યારે લોક વેદનો ત્યાગ કર્યો ઉચિત કહેવાય, પરંતુ ઉપ-  
રોક્ત સૂત્રથી સિદ્ધ થાય છે કે ભોજનાદિ વ્યવહાર તો શરીર જ્યાં  
સુધી છે ત્યાં સુધી છે. તેનું વિશેષ વિવેચન રજોની વાર્તામાં આપ્યું  
છે ત્યાં જુઓ.

\* શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો પણ શ્રીઆચાર્યજીની માફક પૂર્ણ-  
સામર્થ્યયુક્ત છે. દષ્ટાંતરૂપે:—પ્રભુદાસે અહીરનીને મુક્તિ આપી  
ગદાધરદાસે માધવદાસને ભક્તિ આપી. જે ભક્તિ આપવાને બ્રહ્માદિક



अपनो चरणोदक क्यों दीए ? ॥ भगवदीय अपनी बडाई तो करावत  
 नांही ॥ तातें श्रीठाकुरजीको चरनोदक दीयो  
 श्रीहरिरायजी कृत होयगो ॥ तहां कहत हैं ॥ जो पद्मनाभदासनें  
 भावप्रकाश. विचारी जो तुच्छ कामना पुत्रादिककी हे ॥  
 याके लिए श्रीठाकुरजी को चरनोदक कहा ?

श्रीठाकुरजीको श्रम काहेकां कराऊं ? ॥ तातें अपनो चरणोदक दिए ॥ परंतु  
 पद्मनाभदास सदा श्रीआचार्यजी के स्वरूप में मगन रहत हैं ॥ (देखो पद्म-  
 नाभदास कृत ४० पद) सो जल ले श्रीआचार्यजी के भाव तें दिए ॥ ओर  
 इनको कछू कामना की बडाई की अपेक्षा नांही है ॥ भगवदीय को आश्रय  
 करें ॥ सो सगरो मनोरथ वाको पूरन होइ ॥ यह पुत्र की कहा बात  
 हे ? ताके ( क्षत्राणीकां ) पुत्रकामना हती सो पुत्र दीए ॥ परंतु बाधक  
 नांही ॥ जो अपने कीए को अहंकार नांही ॥ ता समय जो बुद्धि की  
 प्रेरणा भई ॥ सो भगवद् इच्छा तें कार्य करत हैं ॥ अपनो कीयो जानत  
 नांहीं हैं । श्रीगुसांईजी लिखे हैं “ बुद्धि प्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसी-  
 दतु ” जो कार्य होत हे । जेसी ताकी बुद्धि प्रेरक होई करत हे  
 सो कार्य सब कृष्णही को जाननो ॥ जो अपनो ओर को जाने  
 सोई संसार समुद्र में भ्रमत हे ॥ तातें पद्मनाभदास ने अपनो चरणोदक  
 दिए ॥ परंतु यह भाव नांही जो मेरे चरनोदकसें पुत्र होइगो ॥  
 भगवद् इच्छा तें सब होत हे ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

पणु असमर्थ छे. तेवीज रीते पद्मनाभदासे पुत्र आय्यो. तेभां  
 नराय आश्रय नज होय. सेवक सेव्यना यित्वनथी तद्रूपताने प्राप्त  
 आय छे. लोकभां अट भ्रमर न्याय प्रत्यक्ष दृष्टांतइय छे.



ઓર એક સમૈં બઢે રામદાસજી અપને સેવ્ય શ્રીઠાકુરજી કોં  
 પદ્મનાભદાસ કે ઘર પધરાઈ કે શ્રીનાથજી-  
 વાર્તા પ્રસંગ ૬ કે દરસન કોં ગણ ॥ સો શ્રીનાથજી કી  
 સેવામૈં શ્રીઆચાર્યજી કી આજ્ઞા તેં રહે ઓર  
 શ્રીનાથજી કી સેવા કરન લાગે ॥ શ્રીનાથજી કે ભીતરિયા\*મણ ॥  
 તબ પદ્મનાભદાસ શ્રીઠાકુરજી કી સેવા કરન લાગે ॥ સો કિત-  
 નેક દિન પાછે મુગલ કી ફૌજ આઈ ॥ સો તાનેં ગામ લૂટયો+  
 સો શ્રીઠાકુરજીકોં એક મુગલ લે ગયો ॥ તબ પદ્મનાભદાસ વા  
 મુગલકે સાથ દિન સાતલોં રહે ॥ જલ પાન હૂ ન કર્યો ॥  
 તબ આઠમે દિન મુગલસોં મુગલાનીને કહ્યો ॥ જો યહ બ્રાહ્મણ  
 જલપાન નાહિં કરત હે ॥ યાકો સાત દિન મણ હૈં ॥ અન્નજલ  
 છોડે ॥ સો જો યહ મરેગો તો તેરે માથે હત્યા ચઢેગી\* ॥  
 તાતેં યાકો દેવતા હે ॥ સો વાકોં દે ॥ તબ મુગલ ને શ્રીઠાકુ-  
 રજી પદ્મનાભદાસકોં દીણ ॥ સો લેકે પદ્મનાભદાસ અપને ઘર  
 આણ ॥ તા પાછે આપ સ્નાન કરિ શ્રીઠાકુરજી કો પંચામૃત સ્નાન  
 કરવાયો ॥ અંગ વસ્ત્ર કરિ શૃંગાર કર્યો ॥ રસોઈ કરિ ભોગ  
 સમપ્યો ॥ પાછેં સમયાનુસાર ભોગ સરાય અનોસર કરિ પાછેં

\* શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં મુખ્યાજીનેજ ભીતરીયા કહીને સંબોધતા.

+ ઐતિહાસિક તત્ત્વ. ' લૌકિક ભાષા ' ( રહસ્ય ભાષાને ઉપ-  
 યોગી હોવાથી સૂક્ષ્મરૂપે આપી છે )

\* સાચું આત્મબલ આનું નામ કે જેનાથી એક દુષ્ટાત્માના  
 હૃદયમાં પણ સદ્વિચાર આવ્યા. અહીં ઐશ્વર્ય કહ્યું છે.



वैष्णवन कों महाप्रसाद लिवायो ॥ पाछे आप महाप्रसाद लियो ॥  
 ओर जा दिन श्रीठाकुरजी कन्नोज में मुगल के हाथ परे ॥ ता  
 दिन बडे रामदासजी ने हू यह बात जानी ॥ सो ता दिन तें  
 बडे रामदासजी ने हू सात दिनलों भोजन नाहि कियो ॥ परि  
 श्रीनाथजी की सेवा सावधानतासें करत रहे ॥ यह बात पद्म-  
 नाभदासजी ने अपने घर बेठे जानी ॥ जो रामदासजी ने हू या  
 बात के उपर बहोत दुःख पायो ॥ यह जानि पद्मनाभदास श्री-  
 नाथजी के दरसन कों तथा रामदासजी के मिलिवे कों श्रीनाथजी-  
 द्वार (गिरिराज-जतिपुरा) गये ॥ सो श्रीनाथजी के दरसन  
 कीये ॥ पाछे रामदासजी कों मिले ॥ तब रामदासजी सेां  
 पद्मनाभदासजी ने कह्यो ॥ जो होंतो दुःख पायो सो तो न्याव  
 हे ॥ जो तुम मेरे माथे सेवा पधराय आए ॥ परि तुमने दिन  
 सातलों प्रसाद न लियो ॥ सो काहेते ? तब रामदासजी ने  
 कह्यो जो तुम कहत हो सो तो साँच परि मेंहू तो बहोत दिन-  
 लों सेवा करी हे ॥ तातें इतनो संबंध तो चाहिए ॥ पाछे  
 कितनेक दिन रहिके पद्मनाभदास श्रीनाथजी सेां तथा राम-  
 दासजी सेां बिदा होइके अपने घर कन्नोज आए ॥ पाछे फेरि  
 सेवा करन लागे ॥

या वार्तामें यह सिद्धांत दिखाए ॥ जो पुष्टिमार्गीय वैष्णव के ठाकुर  
 श्रीहरिरायजी कृत अपने घर पधारे ॥ तो भिन्न भाव न राखनो+ ॥  
 भावप्रकाश श्रीआचार्यजी के संबंधी जानि माथे पधारे



जानि सेवा करनी ॥ ओर रामदासजी के भावमें यह जताए जो अपने  
सेव्य (सेवाके) ठाकुर कहूं पधराइ निश्चित न होइ ॥ उनके दुःखतें  
दुःखि होई ॥ उनके सुख तें सुख पावे ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥

॥ इति प्रसंग ६ समाप्त ॥

बहुरि एक समय पद्मनाभदास ने विचारी जो श्रीठाकुरजी  
सहित कुटुंब सहित श्रीआचार्यजी के  
वार्ता प्रसंग ७ दरसन करिए ॥ श्रीमुख के वचनामृत  
सुनिए ॥ सो श्रीठाकुरजी सहित कुटुम्ब  
सहित अडेल में आए ॥ सो कलुक दिन रहे ॥ परि द्रव्य को  
संकोच बहुत दतो ॥ तातें श्रीठाकुरजी को भोग समर्पे ॥ सो  
छोला तलि के समर्पे ॥ सो छोला आछी रीति सों बीनि के  
पहले दिन भिजोइ राखे दूसरे दिन नीकी भांति सो तलि के  
समर्पे ॥ सो या भांति पातरि में एक मूठि दारि की भावना  
करते ॥ एक मूठि भात की ॥ एक मूठि खीर की ॥ साकादिक  
सब को नाम ले न्यारि न्यारि मूठि धरतें ॥ सो श्रीठाकु-  
रजी सगरी सामग्री के भावसां आरोगते ॥ या प्रकार नित्य  
करें ॥ पाछे एक दिन एक वैष्णव श्रीआचार्यजी सों यह  
सब प्रकार कहे, जो महाराज पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी कों



यां भांति छोला समर्पत हे ॥ सो एक दिना श्रीआचार्यजी  
 भोग समर्पवे की बिरियां पद्मनाभदास के :घर पधारे ॥  
 सो पद्मनाभदास सों पूछे जो यह ढेरि न्यारि न्यारि क्यों  
 हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही यह दारि हे यह भात हे ॥ यह  
 खीर हे ॥ यह कढि हैं ॥ यह साकादिक हे ॥ या प्रकार सब  
 ढेरि कों सामग्री बताए ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभून को  
 हृदय भरि आयो ॥ ओर जान्यो जो याके द्रव्यको संकोच हे  
 तातें यों करत हे ॥ परंतु द्रव्य को उपाय नांहि करत हे । बडो  
 धैर्य हे ॥ तातें याके उपर श्रीठाकुरजी बडे प्रसन्न हे ॥  
 पाछे श्रीआचार्यजी घर पधारे भोजन कीए ॥ ओर  
 श्रीअक्काजी सों कहे ॥ जो पद्मनाभदास के घर द्रव्य  
 को बहोत संकोच हे ॥ सो छोला नित्य श्रीठाकुरजी को  
 धरत हैं ॥ तब श्रीअक्काजी ने संझा समय सगरी सामग्री सिद्ध  
 करि ( चुनबीन फटकके ) एक वैष्णव के हाथ पठाई ॥ तब  
 तुलसां ने पद्मनाभदास सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी के इहां  
 सों सामग्री आई हे तब पद्मनाभदास ने कह्यो हम जाने अब  
 हमको काढिवे को उपाइ किए हे ॥ जतन सों धरि राखो ॥  
 तब तुलसां ने धरि राखी ॥ पाछे दूसरे दिन फेरि  
 सामग्रि सांझ कों श्रीअक्काजी ने पठाई ॥ तब तुलसां ने  
 फेरि पद्मनाभदास सों कही ॥ तब पद्मनाभदास ने कही  
 हमको बेगि बिदा दिए ॥ तातें सवेरे चलेंगे ॥ अब  
 यह धरि राखो ॥ पाछें प्रातःकाल भयो ॥ तब श्रीठाकुरजी



કોં બેગિ હી રાજભોગ સોં પહોંચિ ॥ શ્રીમથુરાનાથજી સોં પૂછે  
જો મહારાજ આપકોં શ્રીઆચાર્યજી કે ઘર પધારિવે કી ઇચ્છા  
હોઈ ॥ તો ઉહાં નાના પ્રકાર કી સામગ્રી હે ॥ મેરે ઇહાં તો જો  
સમય જેસો પ્રાપ્ત હોઈ ॥ તેસોં ધરૂંગો ॥ તવ શ્રીમથુરાનાથજી  
ને કહી મોકોં તેરો કીયો ભાવત હે ॥ તારેં જો ધરેગો ॥  
સો પ્રીતિ તેં અરોગૂંગો ॥ તવ અનોસર કરાઈ ॥ એક નાવ બાઢે  
કરિ લાણ ॥ તુલસાં સો કહે ॥ દોઝ દિન કો સીધો સામગ્રી  
હે ॥ સો શ્રીઅક્ષાજી કો દે આવ ॥ તવ તુલસાં સારી સામગ્રી  
શ્રીઆચાર્યજી કે યહાં દે આઈ ॥

પાછેં સગરી વસ્તૂ નાવ પર ધરિ શ્રીમથુરાનાથજી કોં નાવ  
પર પધરાઈ શ્રીઆચાર્યજી કે પાસ વિદા હોંન આણ\* ॥ ઓર

\*અહીં સાંપ્રદાયિક પરિપાટીનું જ્ઞાન થાય છે. અને તે આજ પણ  
પ્રાયઃ ગોસ્વામિ બાલકોમાં અવશ્ય જોવામાં આવે છે. તેમજ કેટલાક  
મહાનુભાવ વૈષ્ણવોમાં પણ આ પરિપાટી જોવામાં આવે છે, કાષ્ઠપિણ  
બાલક અથવા વૈષ્ણવ અન્યત્ર પધારે ત્યારે પોતાના ઠાકોરજી  
અથવા જે સ્થલે રહેતા હોય ત્યાંના મુખ્ય સ્વરૂપો (શ્રીનાથજી આદિ)  
સ્વગુરુ અથવા કાષ્ઠપણ વલ્લભકુલ જે પોતાના ગામમાં બિરાજતા  
હોય તેમનાથી વિદાય થઈ (ભેટ આદિથી સન્મુખ થઈ) પછી  
પરદેશ જાય છે. કાંકરોલીના ઘરમાં આ રીત હજી સુધી બહુજ સારી  
રીતે સચવાઈ રહી છે. જ્યારે કાંકરોલીના બાલકો પરદેશ પધારે છે  
ત્યારે પોતાના સેવ્ય શ્રીદ્વારકાનાથજી ઉપરાંત શ્રીનાથદ્વાર પધારી  
શ્રીનાથજી આદિ સર્વે સ્વરૂપોને સન્મુખ થઈ વિદા થઈ પછી પર-  
દેશ પધારે છે.



दंडवत करि बिनती कीनी जो महाराज आज्ञा होइ तो घर जाय ॥ तब श्रीआचार्यजी पूछे ॥ जो श्रीठाकुरजी कहाँ हैं ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही महाराज नाव पर पधारे हैं ॥ तब श्रीआचार्यजी बिदा कीये । ( ओर ) मनमें विचारे ॥ जो आंचको पद्मनाभदास क्यों गयो ? तब श्रीअक्काजी ने कही दोय दिन सिधा पठायो सो फेरि दे गए ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कही जो सीधो पठवायो तातें गयो ॥ नांही तो न जातो ॥ ऐसे श्रीआचार्यजी ने श्रीमुख तें कही ॥

पाछें पद्मनाभदास घर जाय सेवा करन लागे ॥

या वार्ता में यह जताए ॥ जो गुरु द्रव्य श्रीठाकुरजी के द्रव्य तें हू भारी हे ॥ तातें श्रीभागवत में (स्कं. ११

श्रीहरिरायजी कृत अ. १७ श्लोक २८ ) कहे हैं ॥ भिक्षा

भावप्रकाश मांगि के लाई गुरु के आगे धरिए ॥ जो गुरु आज्ञा देई तो खाई ॥ नांही तो

भूख्यो रहि जाइ ॥ परंतु मांगे नांही ॥ जो मांगि भिक्षा हू आज्ञा बिना नहि लीनी जाय तो गुरुको (द्रव्य) कैसे लियो जाइ ? ॥ तातें श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रय में लिखे हैं ॥ जो “त्रिदुःख सहनं धैर्य” ॥

जब मुगल ठाकुर ले गयो तब पद्मनाभदास चाहे तो भस्म करि डारें परि पद्मनाभदास (कष्ट) सहे ॥ आप सात दिन भूखे रहे ॥ वासों कछू न कहे ॥ (यह अलौकिक दुःख कही) यह लौकिक दुःख जो बेटी परज्ञातकों दिनी ॥ यह ज्ञातमें निंदा सो सहे ॥ खानपानादिक को दुःख



સો સહે ॥ પરંતુ ધર્મ ન છોડે ॥ તાર્તે શ્રીગોકુલનાથજી શ્રીસર્વોત્તમકી ટીકામેં લિખેહે ॥ કોટિન વૈષ્ણવનમેં દૂર્લભ પદ્મનાભદાસ સારિખે હે ॥ સો શ્રીઆચાર્યજી કે મારગકો શ્રીઆચાર્યજીકે સ્વરૂપકો જાનત હે ॥\*

॥ ઇતિ પ્રસંગ ૭ સમાપ્ત ॥

સો ઉન પદ્મનાભદાસ કી ઉપર શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભૂ આપ સદા પ્રસન્ન રહતે, તાર્તે इनकी वार्ताको पार नांहि ॥ સો કહાં તાંઈ લિખિયે ?

॥ વાર્તા ૪ ॥

(વૈષ્ણવ ૫)

### પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય:—

આ પ્રસંગ સં. ૧૫૮૩માં બનેલો છે. અતે પદ્મનાભદાસને પણ આજ સમયમાં શ્રીઆચાર્યજીના નિગૂઢ સ્વરૂપનું જ્ઞાન પૂર્ણરૂપે થયું હોય એમ નીચેની પંક્તિઓથી જણાય છે.

શ્રી મુખ કે વચનામૃત સુનિષ્ટ ॥ અહિં સુધાનું આકર્ષણ છે.

સો યા માંતિ પાતરિ મેં એક મુઠ્ઠી દારિ કી ભાવના કરતે ॥

x

+

x

અહિં ભાવની સિદ્ધિ સ્પષ્ટ જણાય છે. કારણ કે તે તે ભાવનાની વસ્તુ તાદૃશ્ય થતી એમ આ વાક્યથી સમજાય છે:—

સો શ્રીઠાકુરજી સગરી સામગ્રી કે ભાવસોં ઓરોગતે ॥

જ્યાં સુધી ભાવની પૂર્ણ સિદ્ધિ નથી થતી ત્યાં સુધી ત્રણે પ્રકારના દુઃખને સહન કરવાની શક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી. જે પદ્મનાભદાસમાં પુત્ર આપવા તેમજ ૧૭૦૦૦ રૂપીઆ સહેજે

\* શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપ ( ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક )નું જ્ઞાનથયેલું છે. વિશેષ જુઓ પ્ર. ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય—



પ્રાપ્ત કરવાની શક્તિ હોય તે આવું કષ્ટ થું કામ વેઠે ? મુગલને ત્યાં પણ અસહ્ય કષ્ટ વેઠ્યું, તે ધૈર્યની પરકાષ્ટ છે. પરંતુ આ કષ્ટ જુદા પ્રકારનું છે. અહિંઆં તો શ્રીમથુરેશજીમાં શ્રીઆચાર્યજીની ભાવના તેમજ છોલામાં પણ ભાવાત્મક સામગ્રીની ભાવના એ, સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપની પદ્મનાભદાસમાં સ્થિતિ સુદૃઢ છે તે સમજાય છે. (ભાવનું સ્વરૂપ જુઓ વાર્તા રહસ્ય) અને એ ભાવની પ્રાપ્તિ થયા પછી સ્વરૂપની બાહ્ય અપેક્ષા રહેતી નથી માટેજ પદ્મનાભદાસે શ્રી મથુરેશજીને પૂછ્યું મહારાજ આપકેાં શ્રીઆચાર્યજી કે ઘર પધારિવે કી ઇચ્છા હોઈ તો ઉઠાં નાના પ્રકારકી સામગ્રી હે ॥

જે ભાવમાં બાહ્ય સ્વરૂપની અપેક્ષા નથી, તે ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રૂપ જાણવો. (જુઓ દામોઁ હરઁની વાર્તાના પ્ર. ૧૦નું પરિ. રહસ્ય) તે અહીં પદ્મનાભદાસને સિદ્ધ થયો. અને આ ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજી (કૃષ્ણાસ્ય) મહાન કષ્ટથી અનુભવાય છે. (જુઓ “વાર્તા-રહસ્ય” તથા શ્રીહરિઁ કૃતઁ ભાવના) તેથી જ પદ્મનાભદાસ ત્રણે પ્રકારના દુઃખને સહન કરી શક્યા. પરંતુ પદ્મનાભદાસને હજી ભૂતલમાં સ્થિત રાખવાના હોવાથી શ્રીમથુરેશજી તેમની પાસેજ રહ્યા. ત્યાર પછીનો કેટલોક પ્રસંગ “ભાવસિંધુ” માં છે તે અવશ્ય જોવો તેમાં પદ્મનાભદાસની વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહેજે જણાઈ આવે છે.

### તુલસાંની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય:—

આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયરૂપ નિરોધાત્મક લીલાના યશ સ્વરૂપ છે. તેમાં વિશેષ કહેવું વ્યર્થ છે. કારણ કે યશનું સ્વરૂપ ત્યારેજ પ્રકટે છે જ્યારે કોઈ અસાધારણ કાર્ય સિદ્ધ થાય છે. તેજ પ્રકારે તુલસાંદારા શ્રીઆચાર્યજીના ભાવાત્મક પ્રભુ શ્રીગોપીજન-વલ્લભે લોકવેદાતીત સ્વતંત્ર શરણુમાર્ગરૂપ ભક્તિને આ વાર્તામાં



પ્રકટ કરી ( જુઓ પ્રમંગ ૧નું રહસ્ય ) અને તે અસાધારણ લોકવેદ વિરૂદ્ધ કાર્યની સિદ્ધી તેજ આ વાર્તાના યશ સ્વરૂપનું નિરૂપણ છે. લોક અને વેદમાં વિરૂદ્ધાચરણથી અપયશની પ્રાપ્તિ છે. કિંતુ આ સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગમાં લોક વેદ વિરૂદ્ધ આચાર હોવા છતાં યશ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સ્થિતિ હોવાથી તે સ્વયં ( સ્વતંત્ર ભક્તિ ) યશ સ્વરૂપ છે. અને તે આ વાર્તામાં નિરૂપેલી છે. માટેજ આ વાર્તા યશ સ્વરૂપ છે.

### તુલસાંનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:—

પદ્મનાભદાસનું લગ્ન સં. ૧૫૩૪ માં એક કન્નોજીયા બ્રાહ્મણની કન્યા સાથે થયું હતું. પદ્મનાભદાસની સ્ત્રીની ઉંમર તે વખતે બાર વર્ષની હતી જ્યારે પદ્મનાભદાસની ઉંમર વર્ષ ૧૪ ની હતી. જ્યારે પદ્મનાભદાસ વર્ષ ૧૮ ના થયા ત્યારે સંવત ૧૫૩૮ માં તેમને ત્યાં એક પુત્રીનો જન્મ થયો. અને તેનું નામ પદ્મનાભદાસે તુલસાં રાખ્યું. આ તુલસાં રૂપ ગુણ અને શીલથી ખરેખર અદ્ભુત હતી. તે નાનપણથી જ સ્વભાવે શાંત અને વિશ્વાસુ હતી. વળી તે ધર્મપરાયણ પણ હતી. તેની અત્યંત સાર્વિક વૃત્તિ જોઈને પદ્મનાભદાસ તેના ઉપર ખૂબ મમતા રાખતા. તુલસાં ઉપર પદ્મનાભદાસનો પ્રભાવ સારો હતો. તુલસાં પદ્મનાભદાસની આજ્ઞામાં સદૈવ રહેતી. અને પિતાના વાક્યને ઇશ્વરવાક્ય સમજી તેનું સંપૂર્ણ પાલન કરતી. સં. ૧૫૪૯ માં તુલસાંનું લગ્ન જાતિના એક છોકરા સાથે કરવામાં આવેલું પરંતુ તે થોડાજ મહિનામાં હરિશરણ થઈ જવાથી તુલસાં બાલ વિધવા થઈ. તુલસાંને સંસારનું મુદ્દલે જ્ઞાન ન હતું. શ્રીભાગવત અહર્નિશ શ્રવણ કરતી. અને તેમાં જ તે નિમગ્ન રહેતી. સં. ૧૫૫૨ માં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે આવ્યા તે વખતે પદ્મનાભદાસે પોતાના સમગ્ર કુટુંબને પણ સમર્પણ કરાવ્યું. તેજ સમયે તુલસાં પણ શરણે આવી. પછી સં. ૧૫૫૬ માં જ્યારે શ્રીમથુરેશજીને પદ્મ-



નાભદાસે ધરમાં પધરાવ્યા જ્યારે તુલસાં પણ ભગવત્સેવામાં ધીરે ધીરે અનુકૂળ થઈ થોડા સમયમાં તે તુલસાંની શ્રીમથુરેશજીમાં પૂર્ણ આસક્તિ થઈ. અને મથુરેશજીને જ પોતાનું સર્વસ્વ માનવા લાગી.

એક સમય તુલસાં અનોસરમાં શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપનું સાંગો-પાંગ ધ્યાન કરવા લાગી. જ્યારે તે શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપ સુધાનું પૂર્ણ પાન હૃદયમાં એક ધ્યાનાવસ્થિત પણે કરી રહી હતી તે સમયે જોત જોતાંમાં શ્રીમથુરેશજી ધ્યાનમાંથી અંતઃધ્યાન થયા. ત્યારે તુલસાંને મહાન વિરહ ભગવત્સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ અર્થે થયો. તે વિરહથી તુલસાંના હૃદયમાં સ્થિત શ્રીમથુરેશજીનું સ્વરૂપ બહાર આવિર્ભાવ પામ્યું.\* અને તે સ્વરૂપે તેને સાક્ષાત્ થઈ દર્શન આપ્યું. તે સ્વરૂપ “ છોટા મથુરેશજી ” તરીકે ઓળખાય છે અને હાલ તે કોટામાં બિરાજે છે. પછી તુલસાં આ સ્વરૂપની સેવા કરવા લાગી.

(વ્રજ) સંવત ૧૫૮૨ માં શ્રીઆચાર્યજી વ્રજમાંથી અડેલ પધારતી સમયે કોનોજ પધાર્યા ત્યારે આ સ્વરૂપને પુષ્ટ કરી તુલસાંને પધરાવી આપ્યું. તુલસાંએ ઘણા વર્ષ સુધી આ સ્વરૂપની સેવા કરી. સંવત ૧૬૩૦ માં જ્યારે પદ્મનાભદાસ લીલામાં પ્રાપ્ત થયા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજી કોનોજ પધાર્યા અને તુલસાંને ત્યાં મુકામ કર્યો. ( જુઓ પ્ર. ૨ ) તુલસાં તે વખતે દર વર્ષની હતી. છતાં શ્રીઠાકોરજીની અને શ્રીગુસાંઈજીની સેવા પૂર્ણ ઉત્સાહ અને દૈન્ય-યુક્ત પ્રેમથી કરતી. જેથી શ્રીગુસાંઈજી તેનો પ્રેમ અને દીનતા જોઈ ગદગદ થઈ તુલસાંની ભૂરિ ભૂરિ પ્રસંશા કરતા. ( વિશેષ જુઓ વાર્તા ) તુલસાં લગભગ ૧૬૩૨ માં ભગવદ્વરણારવિંદને પ્રાપ્ત થઈ.

---

\* સરખાવો શ્રીઆચાર્યજીનો સિદ્ધાંત:—

क्विलश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।

तदा सर्व सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ ( निरोध० ल० )



अब श्री आचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की बेटी तुलसां  
तिनकी वार्ता ओर ताको भाव लिख्यते ॥

ए लीलामें पद्मनाभदास की सखी हे ॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता  
अष्टसखीनमें ॥ ओर चंपकलताकी सखी  
श्रीहरिरायजी कृत मणिकुंडला ॥ जेसें मणिकी ज्योतिकी  
आधिदैविक स्वरूप कुंडाली चारो ओर फूले ॥ सो ( यह )  
तुलसां सात्विक भक्त हे ॥ पद्मनाभदास  
की आज्ञामें तत्पर हे ॥

एक दिन तुलसां के घर वैष्णव आयो ॥ सो श्री आचार्य  
जी को सेवक हतो ॥ सो श्रीमथुराना-  
वार्ता प्रसंग १ थजी के दरशन राजभोग आरती के  
किये ॥ तब तुलसां ने उह वैष्णव से  
कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो ॥ महाप्रसाद लेउ ॥ तब उह  
वैष्णव ने कह्यो जो होंतो घर जाइ स्नान करुंगो ॥ तब तुलसां  
चुप करि रही ॥ पाछे वह वैष्णव उठि के अपने घर गयो ॥  
तुलसां के मनमे बहोत खेद भयो ॥ जो मेरे घर तें वैष्णव  
भूख्यो गयो ॥

ताको कारन यह महाप्रसादकी नाहि करी ॥ जोर ज्ञात व्योहारके  
लिए लीयो नाहीं ॥ सो तुलसां समज गई ॥  
श्रीहरिरायजी कृत तातें आग्रह नाहीं कियो ॥ यह गौड ब्राह्मण  
भावप्रकाश हतो ओर लीलामें ललिताजीकी सखि हे ॥  
सौरभा इनको नाम हे ॥ इनके अंगते अत्तर  
गुलाबकी सुगंध आवती ॥ यह वैष्णव ललिताजीकी सखि हे ॥ ओर



तुलसां चंपकलताकी सखि हे ॥ ओर तुलसांके बस श्रीमथुरानाथजी हैं ॥  
तातेँ यह वैष्णवनें महाप्रसाद न लियो ॥

जो ललिताजीकी आज्ञा बिना कैसें लेउ ? ॥ तातेँ यह वैष्णव अपने  
घर चलयो गयो ॥ तब तुलसांके मनमें खेद भयो ॥

तब मनमें आई जो ज्ञाति ब्योहार के लिये सखड़ी न  
लीनी होइगी ॥ तो भलो परि सबेरे  
वार्ता प्रसंग १ पूरी प्रसाद लिवाऊंगी ॥ पाछे मेदा  
शुरु छानि सिद्ध करि राख्यो ॥ पाछे सोइ  
रही ॥ ता दिन तुलसां ने महाप्रसाद नांहि लियो ॥

पाछे रात्रिकों श्रीमथुरानाथजी ने तुलसां सेां स्वप्न में  
कह्यो ॥ जो सवारे वा वैष्णव को महाप्रसाद लिवाइयो ॥ वह  
वैष्णव अपने घर महाप्रसाद न लेइगो ॥

यामें यह जताए जो कालि उह वैष्णव महाप्रसाद लेइगो ॥ तू  
चिंता मति करे ॥ पाछें श्रीठाकुरजी ने उह  
श्रीहरिरायजी कृत वैष्णव को जताए ॥ जो तुलसां के इहां महा-  
भावप्रकाश प्रसाद क्यों न लियो ? ॥ सबेरे लीजियो ॥  
ललिताजी की हू आज्ञा हे ॥ सो (तब) ललि-  
ताजी हू कहे ॥ तूलसांके इहां महाप्रसाद लीजो ॥ हमारे उनके भावमें  
भेद नांहि ॥



पाछे प्रातःकाल तुलसांने पूरी करी ॥ श्रीठाकुरजी कूँ  
जगाए ॥ सेवा सिंगार करन लागी ॥

वार्ता प्रसंग १ इतनेही में उह वैष्णव सवारे नहाय  
शुरु के श्रीठाकुरजी की सेवासें  
पहोंचि तुलसां के घर आयो । जब तुलसां भोग समर्पि  
के बाहर आई ॥ तब वा वैष्णवसों जय श्रीकृष्ण  
कीयो ॥ ओर तुलसां ने कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो  
भगवद्स्मरण करो ॥ तब वा वैष्णवने कही मे स्नान करि अप-  
रसहि में आयो हूं ॥ ( तथा कहूं वार्ता मे यहू हे जो स्नान  
करि तिलक मुद्रा करि भगवद्स्मरण कीयो ) समय भए तुलसांने  
राजभोग सरायो आरती करि ॥ वैष्णव ने दरसन कीयो ॥  
पाछे तुलसां श्रीठाकुरजी को अनोसर करि बाहर आई ॥ ओर  
वा वैष्णव को प्रसाद की पातर धरी ॥ तामें पुरी बुरा दहींकरा ?  
( दहींथरा ) संधानो धर्यो ॥ ओर कह्यो जो प्रसाद लेउ ॥ तब  
वा वैष्णव ने कही जो यह नाहि लेऊंगो ॥ सखडी महाप्रसाद  
धरो, लेऊंगो ॥ तब तुलसांने कह्यो कछू संकोच मति करो  
यह तो ज्ञाति को ब्योहार हे ॥ तब वैष्णवने कह्यो जो  
सो तो साँच ॥ पहले तो मेरे मनमें ऐसी ही ॥ परि अब  
तो आज्ञा भइ हे ॥ तातें अब तो सखडी महाप्रसाद  
लेऊंगो ॥ तब तुलसां(ने)सखरी अनसखरी दोऊ धरि वैष्णव के  
आगे, पाछे वा वैष्णव ने सखडी प्रसाद लीयो ॥ प्रसाद ले वह  
वैष्णव अपने घर गयो ॥ तब तुलसां मनमें बहोत प्रसन्न भई ॥



યામેં યહ જતાણ ॥ વૈષ્ણવ ઘર આવે ॥ તિનકો યથાશક્તિ સન્માન  
 કરનો ॥ કાહે તે શ્રીભાગવતમેં કહે હે ॥ જા  
 શ્રીહરિરાયજી કૃત ઘરમેં જલાદિકનકો હૂ સન્માન નાંહિ હે ॥  
 ભાવપ્રકાશ વાકો ઘર સર્પકો વિલા સો જાનનો ॥ સો  
 તુલસાંકો વૈષ્ણવ પર એસો મમત્વ હતો ॥

॥ इति प्रसंग १ समाप्त ॥

### પ્રસંગ ૧નું સમાધાન અને રહસ્ય:—

પૂર્વપક્ષી:—આ પ્રસંગથી કેટલોક મર્યાદી વર્ગ પંક્તિ ભેદ  
 તોડતો હોય એમ અમને લાગે છે. કારણ કે આમાં તુલસાં અને  
 આગંતુક વૈષ્ણવ બન્ને એક જ્ઞાતિના નહિં હોવા છતાં તેઓએ પંક્તિ-  
 ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો એ આ પ્રસંગમાં સ્પષ્ટ જ છે.

સિદ્ધાન્તી:—આપનું કહેવું યથાર્થ છે કે ઉપર્યુક્ત, બન્ને વૈષ્ણવો  
 એ પંક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો. પરંતુ સખડી મહા-  
 પ્રસાદ ક્યારે અને કેમ લીધો તે પણ આ પ્રસંગમાં સ્પષ્ટ જ છે.  
 જુઓ :—તબ તુલસાંને કહ્યા કછૂ સંકોચ મતિ કરો ॥ યહ તો જ્ઞાતિ  
 કો બ્યોહાર હે ॥ ( અહીં સ્વયં તુલસાં જ્ઞાતિ વ્યવહારનું સમર્થન કરે  
 છે ઉલ્લંઘન કરતી નથીજ ) તબ વૈષ્ણવને કહ્યો જો સો તો સાંચ ॥  
 પહેલે તો મેરે મનમેં એસી હો ॥ ( અહીં આગંતુક વૈષ્ણવે પણ  
 જ્ઞાતિ વ્યવહારને માન્ય કરેલો સ્પષ્ટજ છે ) પરિ અબ તો આજ્ઞા મરે  
 હે ॥ ( અહીં સખડી મહાપ્રસાદ લેવાનું કારણ બતાવ્યું અને ભગ-  
 વદાજ્ઞા લોક વ્યવહારથી શ્રેષ્ઠ છે તે સિદ્ધ કર્યું છે ) તાતેં અબ તો  
 સખડી મહાપ્રસાદ લેડંગો ॥



આ પંક્તિઓથી આપ જાણી શકો છો કે આહિં તુલસાં અને આગંતુક વૈષ્ણવની જ્ઞાતિ વ્યવહાર તોડવાની કે મર્યાદા ઉલ્લંઘન કરવાની મુદ્દલે ઇચ્છા ન હતી. પરંતુ કેવલ ભગવદ્વાચી જ તેઓએ વ્યવહારને તોડ્યો. આ જ્ઞાતિ વ્યવહાર લોક સિદ્ધજ હતો. વેદસિદ્ધ પણ ન હતો. કારણ કે બંને પાત્રણ જ હતાં. ફક્ત આચાર વિચારને લઇને જ તેઓમાં ભિન્નતા છે. એટલે ભગવદ્વાચી આગલ આ લોકવ્યવહાર ટકી શકે નહિ જ. જ્યાં પ્રત્યક્ષ રૂપે (કોઈ પણ રીતે) વિશેષ પ્રકારની ભગવદ્વાચી થાય ત્યાં પરોક્ષાત્મક સામાન્ય પ્રકારની વેદ વાચી, અને અન્ય સર્વ (મર્યાદા) નો ત્યાગ કહેલો છે ત્યાં બિચારા લોકવ્યવહારનું મહત્ત્વ તો હોયજ ક્યાંથી? જુઓ શ્રીઆચર્યચરણ શી વાચી કરે છે ?

“ સેવાકૃતિર્ગુરોરાજ્ઞા વાઘનં વા હરીચ્છયા । ” (નવરત્ન)

“ વિશેષતરચેદાજ્ઞા સ્યાદ્ અંતઃકરણગોચરઃ ॥

તદા વિશેષ ગત્યાદિ માવ્યં મિન્નં તુ દૈહિકાત્ ’ (વિં ધૈં ભાં)

પુષ્ટિમાર્ગમાં ભગવદ્વાચી જ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપ ( પ્રમાણં ભગવદ્વાક્યૈઃ ) માનેલી છે. તેના અભાવમાં ગુરુએ બતાવેલી સેવાની મર્યાદા (રીત) મુખ્ય છે.

આ સેવાની મર્યાદામાં યથાધિકાર લોક વેદનો સમાવેશ થઇ જ જાય છે.

પૂર્વપક્ષી:—આવા પ્રકારની ભગવદ્વાચી થવાનું કારણ શું ?

સિદ્ધાન્તી:—આવા પ્રકારની ભગવદ્વાચીમાં તુલસાંનો શુદ્ધ પ્રેમજ એક માત્ર કારણભૂત છે. લોક અને વેદમાં પણ એ સ્પષ્ટજ છે કે ભોજનના સમયે યદિ કોઈ અતિથી પોતાના ઘરે આવે તો તેને યથાશક્તિ સત્કાર અવશ્ય કરવો, એ ગૃહસ્થાશ્રમી માત્રનું કર્તવ્ય છે, અન્યથા તે ગૃહસ્થાશ્રમી ( યદિ વિરક્ત પુરૂષ પણ ઘર કરીને રહેતો હોય તો તેને પણ ગૃહસ્થિત હોવાથી આ ધર્મ લાગુ પડે છે ) ચૂતિત થાય છે.



આવા પ્રકારે તુલસાં ગૃહસ્થિત ઉપરાંત વૈષ્ણવો ઉપર પરમ પ્રેમ રાખતી હતી. અને તે પ્રેમમાં પદ્મનાભદાસની કૃપાળ કારણભૂત હતી ( જુઓ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પ્રસંગ ૪ )

સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રભુ ઉપર પરમ વિશુદ્ધ નિષ્કામ અને પૂર્ણ પ્રેમ થયો ત્યારે જ જાણવો જ્યારે પ્રભુના સંબંધવાળી તમામ વસ્તુ ( વેષ, ચિહ્ન, ભાષા, સેવોપયોગી પદાર્થ અને સેવકા આદિ ) ઉપર પ્રભુવત્ સ્નેહ સહજ થાય.\* ( બનાવટી અથવા કથન માત્ર નહિ ) તો વૈષ્ણવો ઉપર પ્રેમ હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

માટેજ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ પણ વૈષ્ણવોમાં પોતાપણાનું મમત્વ કરવું તેને માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે:—

સ્વકીયતા તદીયેષુ તદ્વિન્ને ભિન્નતા મતા ॥ ૧૮ ॥ ( શિ૦ ૧ )

વળી વૈષ્ણવો ઉપર કેવો ભાવ હોવો જોઈએ તે માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે:—

તદીયેષુ ચ તદ્વબુદ્ધ્યા વરઃ સ્થાપ્યોવિશેષતઃ ।

યથા દૂતીષુ ભવતિ વિષયિણાં મતિસ્તથા ॥ ૧૯ ॥ ( શિ૦ ૧ )

આવાં તો ધણાં વાક્યો સર્વ ભક્તિમાર્ગના ગ્રન્થોમાં સિદ્ધાન્ત રૂપે પ્રાપ્ત છે (તે અમે દયા ભવૈયાની અને અન્ય વાર્તાઓમાં આપીશું) એટલે દરેક વૈષ્ણવોનું સહજ કર્તવ્ય છે કે પોતાને ત્યાં સમય ઉપર આવેલા વૈષ્ણવનું ( વેશધારી યા નામધારીનું પણ ) યથા શક્તિ સાદર શ્રદ્ધાપૂર્વક સન્માન કરેજ ( કિંતુ સંગ તો વિચારીને જ કરવો ) તે સિદ્ધાન્તમાં નિયોડ્ડ૫ એક દોહો અત્યંત ઉપયોગી હોવાથી અહિં આપ્યો છે:—

હરિજન આવે દ્વારપે હસિ નમાવે સીશ ।

વાકે મન કી વે જાને મેરે મન જગદીશ ॥ ( તુલસી )

\* લોકોમાં પણ એક ક્ષુદ્ર વસ્તુના પ્રેમનું દ્રષ્ટાંત મોજુદ છે. અને તે મજનું નું. મજનું લોકમાં એટલો ઉત્કૃષ્ટ પ્રેમી થયો કે લેલાંના ગામના કુત્તર ઉપર પણ લેલાંવત્ પ્યાર કર્યો. એ શુદ્ધ પ્રેમની સહજ નિશાની છે.



જ્યારે આ કર્તવ્ય સર્વ સામાન્ય ને માટે પણ છે તો પરમ ભાગવત શુદ્ધ અને નિર્દોષ બ્રહ્મ દ્રષ્ટિવાળી પુર્ણ પ્રેમી તુલસાંને માટે હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

આથી જ્યારે આગંતુક વૈષ્ણવ સમય ઉપર (અનસખડી નહિ હોવાના કારણથી) પોતાના ધરમાંથી વિમુખ ગયો ત્યારે તુલસાંને અત્યંત કલેશ થયો. અને તે સ્વાભાવિક છે. “મક્ક વિરહ કાતર કણામય ઢોલત પાછે લાગે” (સૂર૦) એવા કાણીક પ્રભુથી તે કલેશ સહ્યો ન ગયો. જેથી બંનેને આજ્ઞા કરી. ભગવદાજ્ઞા થવાનું આ કારણ છે.

**પૂર્વપક્ષી:—**સખડી મહાપ્રસાદ જ લેવાની ભગવદાજ્ઞા થવાનું કારણ શું ? અનસખડી પ્રસાદથી પણ વૈષ્ણવનું સન્માન થઈ શકતું હતું. અને તેથી લોકવ્યવહાર પણ સચવાતો હતો.

**સિદ્ધાન્તી:—**આપનું કહેવું ઉચિત છે. પરંતુ સ્વયં શ્રીકૃષ્ણે પ્રકટાવેલા લોકવેદાતીત નિર્ગુણ ભક્તિમાર્ગનું સ્વરૂપ સમજાવવાને અને લોકમાં પણ તેની ઉત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ કરવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરુદ્ધ) સ્વતંત્ર આજ્ઞાઓ ભક્તોના ચરિત્રોમાં તેમજ ભક્તિમાર્ગના સિદ્ધાન્તાત્મક પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય આદિ ગ્રંથોમાં પણ જોવામાં આવે છે.

**દષ્ટાંત રૂપે:—**

સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ ।

અહંત્વા સર્વ પાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ માશુચઃ ॥ (ગીતા)

ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણે બે પ્રકારના શરણ માર્ગ અર્જુન પ્રતિ કહેલા છે. એકથી ચાર અધ્યાય સુધીમાં જ્યાં જ્યાં શરણનું વર્ણન છે, ત્યાં ત્યાં વેદોક્ત શરણનો પ્રકાર કહેલો છે. અને પાંચમા અધ્યાયથી જેમ જેમ અર્જુનને શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિ દ્રઢ વિશ્વાસ થતો ગયો તેમ તેમ તેને સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક શરણ માર્ગનો ઉપદેશ કરેલો છે. વેદોક્ત.



શરણુમાર્ગ એ પ્રમાણુ સ્વરૂપ છે અને તેની શક્તિ પણ મર્યાદિત છે. જ્યારે સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક ( જેમાં શ્રીકૃષ્ણજી સ્વયં શરણુ રૂપ હોય તે ) શરણુમાર્ગ પૂર્ણ સામર્થ્ય યુક્ત અને અમર્યાદિત છે. આ પ્રમેયાત્મક શરણુમાર્ગ સ્વયં ફલ સ્વરૂપ છે. અને તે શ્રીમદ્વાચાર્યવરણુ શ્રીકૃષ્ણના હાર્દને જાણી આ વિપરીત આચાર વિચાર યુક્ત કલિકાલના જીવોના ઉદ્ધારાર્થે તેનો ઉપદેશ કર્યો. તેથી શ્રીગુસાંઈજીએ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ સર્વોત્તમસ્તોત્રમાં “ પૃથક્ શરણ માર્ગોપદેષ્ટા ” યોજ્યું છે. ( વિશેષ આ પ્રસંગ શ્લોકો દ્વારા સમજાવીને આગલ ઉપર વિવેચન કરીશું )

ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં શ્રીકૃષ્ણે પૂર્ણ રૂપે સ્વતંત્ર શરણુમાર્ગ અર્જુન આગલ પ્રકટ કરી દીધો છે. તે આ પ્રકારે:--

સર્વ ધર્મો ( લોકવેદાદિના ) ને છોડવાથી થતું જે પાપ તેમાંથી હું તને ( અર્જુનને ) મુક્ત કરીશ. અહીં પોતાના સ્વરૂપ બલનો પ્રયોગ બતાવ્યો છે. એટલે કર્તુ અકર્તુ અન્યથા કર્તુમ્ સર્વ સામર્થ્યવાન શ્રીકૃષ્ણના શરણુસ્થ જીવને લોકવેદાદિનાં શાસનો લાગુ પડતાં જ નથી. એટલે ત્યાં ( સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક શરણુમાર્ગમાં ) તેમાં ( વેદાદિમાં ) કહેલા દોષોની જરા પણ સંભાવના રહેતી નથી જ. આનું નામજ પુષ્ટિ ( સ્વતંત્ર ) શરણુ માર્ગ છે. જેમાં શ્રીકૃષ્ણજી એક માત્ર રક્ષક છે. આ માર્ગમાં દ્રઢતાપૂર્વક જેઓ સ્થિર છે, અથવા પ્રભુ જેને સ્વયં લોક અને વેદમાં અસ્વાસ્થ્ય પ્રાપ્ત કરાવીને સ્થિત કરે છે, તેને વેદાદિના શાસનની જરાય અપેક્ષા રહેતી નથી જ ( જે પુરૂષો પુષ્ટિ ભક્તિમાં દ્રઢ નિશ્ચયવાળા નથી તેઓ માટે વેદાદિમાં કહેલા સાધન ધર્મોની અત્યંત અપેક્ષા છે. એ નિશ્ચે સમજવું ) ઉપરોક્ત સિદ્ધાંતને નારદ ભક્તિ સૂત્રોની પણ પુષ્ટિ છે. ( જુઓ સૂત્ર ૧૪ મું પદ્મનાભદાસની વાર્તાના પ્રસંગ ૪ ની નોંધ )

આવો સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક ભક્તિમાર્ગ લોકમાં પ્રકટ કરી તેની



ઉત્કૃષ્ટતા જણાવવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરુદ્ધ) આજ્ઞા સ્વતંત્ર રૂપે શ્રીહરિએ કરી.

હવે આ પ્રસંગનું સૂક્ષ્મ રહસ્ય નિરૂપીએ છીએ:—

આ પ્રસંગમાં લોકવ્યવહાર સાચવીને તેથી (પ્રતિબંધાદિથી) ઉત્પન્ન થતા ભગવદ્વિષયક તાપકલેશનું અનુસરણ કેવી રીતે (દૈન્યતાપૂર્વક) કરવું? તે તુલસાંએ સ્વયં દેવીજનોના હિતાર્થ કરી બતાવ્યું છે.

જ્ઞાતિ વ્યવહારનો વિચાર કરીને જ તુલસાંએ તે વૈષ્ણવને જરાયે પ્રસાદ લેવાનો આગ્રહ ન કર્યો. પરંતુ તેથી (આજ કાલની માફક) હૃદયમાં સંતોષ કરી તુલસાં એસી પણ ન રહી. પોતાના ધરમાં સમય ઉપર આવેલા પોતાના પરમ પ્રિય પ્રભુના સંબંધવાળા વૈષ્ણવનો પોતાના તરફથી સત્કાર ન થયો તેનો તુલસાંને અત્યંત તાપ થયો. તેના ફલ સ્વરૂપ શ્રીપ્રભુએ તેની આર્તિ પૂર્ણ કરી.

એટલે તાપાત્મક સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ધારણા માત્રથી જ શ્રીકાકુરજી લીલા પરિકર સહિત તુલસાંને સાધન રૂપ થયા (આનું નામજ પુષ્ટિમાર્ગ અથવા સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગ, આ માર્ગમાં શ્રીકૃષ્ણજ પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલરૂપ હોવાથી વેદાદિ પ્રમાણોની અપેક્ષા હોતી નથીજ.) અને તે તાપાત્મક શ્રીવલ્લભ લીલામધ્યપાતી હોવાથી સર્વ લીલા આપોઆપ સાનુકૂળ બને છે.

આવા સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગમાં શ્રીહરિ પણ બાધ કરવાને સમર્થ નથી તો વેદાદિ તો બાધ કેમ જ કરી શકે? (હરિરત્ર ન શક્નોતિ કર્તુ વાધાં કુતોડપરે ॥ )

આ પ્રકારે આ પ્રસંગમાં સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગનું નિરૂપણ કર્યું. આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું તાપાત્મક સ્વરૂપ કહ્યું. ( જુઓ “વાર્તા-રહસ્ય.” )



बहुरि एक समे × तुलसां के घर श्रीगुसांईजी पधारे ॥  
 तब तुलसां ने बहुत भली भांति से  
 वार्ता प्रसंग २ सेवा कीनी ॥ श्रीठाकुरजी तें अधिक  
 जानि के सेवा कीनी ॥ तब श्रीगुसां-  
 ईजी बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर एक दिन श्रीगुसांईजी भोजन  
 करि के पोढ़े हते ॥ तुलसां भगवद्वाता करि श्रीगुसांईजीकों  
 प्रसन्न कीए ॥ तब तुलसां सेां अति प्रसन्नता में भगवद्वाता  
 करत में श्रीगुसांईजी ने श्रीमुख सेां कह्यो ॥ जो पद्मनाभदास की  
 संतति एसीही चाहिए ॥

याको अर्थ यह जो लीलामें सखी हे ॥ एसी क्यों न होई ॥ तहां  
 श्रीगुसांईजी चंद्रावलीजी रूप हे ॥ सो इनको  
 श्रीहरिरायजी कृत परकीया भाव श्रीठाकुरजी सेां हे ॥ तातें हास्य  
 भावप्रकाश बहोत प्रिय हे ॥ सो कटाक्ष के वचन पूछे जो  
 श्रीठाकुरजी अपने स्वरूपानंद को अनुभव जता-  
 वत हे ? तुम हू तो सखी हो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करि के बस कीए ॥  
 तातें हमारे साझेमें तुमहू हो ॥ या प्रकार व्यंगके वचन कहे ॥ परंतु  
 तुलसां शुद्ध सात्विक हे ॥ इनकां कटाक्ष बहोत नाहि हे ॥ सुधी हे ॥

पाछे श्रीगुसांईजी ने तुलसां सेां पूछी जो श्रीठाकु-  
 रजी सानुभावता जतावत हैं ? ॥ तब  
 वार्ता प्र. २ शुरु तुलसांने कह्यो ॥ जो महाराज अ तो  
 (हम) पेट भरि खइयत हैं ओर नींद



भरि सोइयत हैं । परि श्री आचार्यजी के ग्रन्थ को पाठ नित्य करियत हैं ॥ तब श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भए ॥

पेट भरिके खइयत हैं ॥ नौद भरिके सोइयत हैं ॥ सो यह जो

जितनो रस हमारे पेटमें समात हे ॥ जेसें

श्रीहरिरायजी कृत हम पात्र हैं ॥ तितनो श्रीठाकुरजी अनुभव

भावप्रकाश जतावत हैं ॥ तातें श्रीठाकुरजीकी संग नौद-

भरि सोइयत हैं ॥ काहेते हमारो स्वकीया

भाव हे ॥ तातें सखी हैं ॥ चिंता नाहि हे ॥ मुख्य अर्थ यह ॥

ओर गुरु भावसें यह अर्थ जो महाराज हम अनेक जन्म श्रीठाकुरजीसें विछुरिके पायो ॥ परंतु काहू योनिमें पेट नाहि भर्यो ॥ ओर सुख सें नौद नाहि आई ॥ अब आपु कृपा करिके सरन लिए ॥ सो अबके जनममें पेट हू भर्यो ॥ ओर श्रीठाकुरजीको एक आश्रय करिकें सोएहू ॥ सगरे जनम अविद्या करि दुःखमें बिताए ॥ एक अर्थ यह ॥

ओर दैन्य पक्षमें यह जो हमकां कहा अनुभव करावें ॥ पेट भरिके खइयत हैं ॥ नौद भरिके सोइयत हैं ॥ जेसे पशुको खाइवेको ओर सोइवेको काम ॥ ओर काम परवसतें कोई लादे जो मारे तब करे ॥ तेसें हमहू प्रीति खानपानमें हे ॥ सेवा लोगनकी निंदा भए ते है ॥ जो बडे पद्मनाभदासकी संतति सेवा नाहि करत ॥ या प्रकार लोगनकी प्रतिष्ठा अर्थ ॥ तातें हमकां कहा अनुभव जतावें ? ॥ श्रीसूरदासजीनें गायो हे ॥ “सूर अधमकी कोन चलावें उदर भरे अरु सोये” ॥ ऐसे अधम जो हे ॥ तिनकी बात नाहि करनी ॥ जो सरीरको सुख चाहत हे ॥ या प्रकारके हम हैं ॥ परंतु श्रीआचार्यजीके ग्रन्थको पाठ सदा करियत हैं ॥



ताको भाव यह जो एसेहू अधमको श्रीआचार्यजीके ग्रन्थ मात्र कहे ॥ भावहू न जानत होइ तो पाठहीके किए ते श्रीठाकुरजी सगरो अनुभव जतावे ॥ तातेँ यह कहि अपनो पुरुषार्थ नाहिँ कहे ॥ श्रीआचार्यजीको प्रताप कहे ॥ जो उनके ग्रन्थके पाटतेँ कृपा प्रभू करत हैं ॥ या प्रकार प्रेममें लपेटे वचन तुलसाँके सुनिके श्रीगुसांईजीको हृदय भरि आयो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

एसी भगवदीय तुलसां हती ॥ जिनके उपर श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते ॥ तातेँ इनकी वार्ताको पार नांही ॥ सो कहाँ ताँई लिखिये ॥

यह वार्ता ४की अन्तर्गत हे तातेँ वार्ता ४ (९६ मध्ये । वैष्णव ७ भण ॥ ) (दृष्टे वैष्णव जिनने तुलसाँके यहां प्रसाद लीयो सो)

पारवतीनी वार्तानुं स्वरूप अने तेनुं रहस्यः—

आ वार्ता श्रीधर्मरूप छे.

श्रीनुं स्वरूप आगण कछा प्रमाणे ( ज्यो. कृष्णदास मेधन अने पद्मनाभदासनी वार्ता ) “ श्रियोहि परमाकाष्ठा ” इति वचनात् स्वामीनी आज्ञा उपर परम विश्वास छे.

अहीं पणु पारवतीये श्रीगुसांईजीनी आज्ञा उपर पूर्ण विश्वास राप्पी श्वेतकुष्ठथी थती ज्ञानीनो सर्वांशे त्याग कर्यो अने ते भगवत् सेवामां स्थित रही. ज्यो. वार्ताना आ शब्दोः—

जो प्रभूनकी ( श्रीगुसांईजी की ) आज्ञा प्रमाण चलती ।

पारवती ने श्रीगुसांईजी उपर दृढ विश्वास हुतो माटे अन्य औषधि आदि डाँध पणु उपाय न करतां श्रीगुसांईजी उपर



વિશ્વાસ રાખી શ્રીગુસાંધજીને પત્રદ્વારા પોતાની ગ્લાનીનું નિવેદન કર્યું ( રોગનું નહીં )

જીએ. આ શબ્દો:—

મેરી બિનતી તુમ શ્રીગુસાંધજી સોં કરિયો ॥ મેરી દેહકો યહ પ્રકાર ભયો હે ॥ તાતેં મોકોં સેવા કરત પાક કરત બહુત ગ્લાનિ ભાવત હે ॥

અને શ્રીગુસાંધજીની કૃપાથીજ હું સારી થઈ છું. એવો દ્રઢ વિશ્વાસ પારવતીને હતો.

જીએ. આ શબ્દો:—તામેં લિખિ જો મહારાજ કે પ્રતાપતેં નીકી મઈ હો ॥

આ બધા શબ્દોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પારવતી ને શ્રીગુસાંધજી ઉપર અતુલીત શ્રદ્ધા હતી. અને તે સ્વામી પ્રત્યેની શ્રદ્ધા-વિશ્વાસ જ-શ્રીધર્મરૂપ છે.

પૂર્વપક્ષી:—

તુલસાં, પારવતી, અને રઘુનાથદાસ ત્રણે શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો હોવા છતાં શ્રીગુસાંધજી દ્વારા તેમના ઉપર ભગવત્કૃપા કેમ થઈ ?

સિદ્ધાન્તી:—પ્રશ્ન યથાર્થ છે. આ ત્રણે ભક્તો સ્વકીય ભાવવાળા છે, એટલે શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને શરણે લીધા. પરન્તુ તેઓ ક્રિયા પ્રાધાન્ય બાહ્ય ધર્મરૂપ સંયોગ રસવાળા હોવાથી સગુણ છે. ( જીએ નિર્ગુણ-સગુણ ભેદ “ વાર્તા માહાત્મ્ય ” ) એટલે તેઓને પરકીય ભાવદ્વારા સ્વકીયત્વની વૃદ્ધી છે. તેથી શ્રીગુસાંધજી પરકીય ભાવરૂપ શ્રીચંદ્રાવલીજીનું સ્વરૂપ હોવાથી તેમના દ્વારા આ ભક્તોના ભાવનું પોષણ છે. ( વિશેષ શ્રીગુસાંધજીના સ્વરૂપનો પ્રકાર વાર્તા ભાગરમાં આપવામાં આવશે ત્યાં જોવું. )



## પારવતીનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:-

પદ્મનાભદાસ ને કુલ ત્રણ સંતતી ક્રમશઃ તુલસાં, જનાર્દન, અને નાની પુત્રી યમુના હતી. જનાર્દનનો જન્મ સં. ૧૫૪૦માં તુલસાંના જન્મથી એ વર્ષ પછી થયો હતો. અને નાની પુત્રી યમુનાનો જન્મ સંવત ૧૫૪૬માં થયો હતો.

જનાર્દન જ્યારે અગ્યાર વર્ષનો થયો ત્યારે તેનું લગ્ન એક જ્ઞાતિની દસ વર્ષની સુંદર રૂપવતી પારવતી નામની કન્યા સાથે પદ્મનાભદાસે કર્યું.

જનાર્દન સંવત ૧૫૬૦માં વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને ત્યાં એક રઘુનાથ નામક પુત્રનો જન્મ થયો. તે પુત્ર પાછળથી ઘણોજ વિદ્વાન અને સુપ્રસિદ્ધ થયો. (જુઓ વાર્તા)

ભાગ્યવશાત્ જનાર્દન સં. ૧૫૬૩માં હરિશરણ થયો. તે વખતે રઘુનાથદાસનું લાલન પાલન તેની માતા પારવતી પૂર્ણ પ્રેમથી કરતી.

પારવતી એક દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી તેણીને દ્રવ્યની મુશ્કેલી નહીં. તેણીએ રઘુનાથદાસને કાશી મોકલી ભણાવ્યો.

પારવતી પદ્મનાભદાસના હરિશરણ થયા પછી ભગવદ્દેવામાં તુલસાંને અતુકૂળ થઈ. અને શ્રીમથુરેશજીની સેવા અત્યંત પ્રેમથી કરવા લાગી. જેના પરિણામે શ્રીમથુરેશજી એને સાનુભાવ થયા. શ્રીમથુરેશજીએ તુલસાંની ભગવદ્દલીલા પ્રાપ્તિ પછી લગભગ ૩ વર્ષ પારવતી પાસે સ્વતંત્રરૂપે સેવા કરાવી. સં. ૧૬૩૫ લગભગ પારવતીની દેહ છુટી.



अब पद्मनाभदास के बेटा ताकी बहू पारवती तिनकी वार्ता ॥  
ओर ताकी भाव ॥

ए राजसी भक्त हे ॥ पद्मनामदास तो चंपकलता अष्ट सखीन  
में तिनकी सखी सुचरिता सो इहां पुरुषो-  
श्रीहरिरायजी कृत त्तमदास मेहरा क्षत्री भए ॥ सो सुन्दर चरित्र  
आधिदैविक स्वरूप सबको सुखरूप कार्य के करता हैं ॥ ए  
ओर सुचरिता की सखी रुपविलासिनी हे ॥  
सो यहां पारवती भई ॥ सो लीला में पारवती को रूप बहोत सुन्दर  
हतो ॥ सो राजसी हे ॥ अपनो रूप बहोत संवारती ॥ सो रूप के गर्व  
ते लीला सां गिरी\*

सो पारवती श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सां  
करती ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा इनको  
वार्ता प्रसंग १ नीकी भांति सां जानते सो जब कन्नोज  
जातें तब याके घर उतरते ॥ सो एक  
समें पुरुषोत्तमदास मेहरा कन्नोज आइ अडेल श्रीगुसांईजी के  
दरशन को गए ॥ ( लीला के गर्व की निवृत्ती के अर्थ ) यहां  
पारवती के हाथ पांच सुफेद भए ॥ तब ग्लानि दैन्यता भई ॥  
तब अपने पूर्व स्वरूपकी हू ( लीला के स्वरूप की ) खबरि

\* पारवती पुष्टपुष्टि भव छे. ओटले तेनी गणुत्री मिश्रपुष्टिमां  
छे ते भवे। (मिश्रपुष्टि) श्रापादिउथी भूतलमां आवे छे. “ आसक्तो  
भगवानेव शापं दापयति ” (पुष्टि प्रवाह भर्थादा.)



परी ॥ जो में पुरुषोत्तमदास की सखी हों ॥ मेरो काम इन-  
 द्वारा होयगो ॥ तब पत्र पुरुषोत्तमदास को लिख्यो जो मेरी  
 बिनती तुम श्रीगुसांईजी सों करियो ॥ मेरी देह को यह प्रकार  
 भयो हे ॥ ताते मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि  
आवति हैं ॥

ताको आशय यह हे जो में श्रीठाकुरजी सों रूप को गर्व कीयो  
 (लीला में) ताको फल पायो ॥ अब कब  
 श्रीहरिरायजी कृत कृपा करेंगे सो श्रीगुसांईजी सों बिनती करि  
 भावप्रकाश लिखियो ॥

यह पत्र पठायो ॥ एक मोहर श्रीगुसांईजी को भेट  
 पठाई ॥ सो पत्र पुरुषोत्तमदास ने  
 वार्ता प्रसंग १ श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥  
 शुरु मोहोर आगे राखी ॥ बिनती कीनी ॥  
 तब श्रीगुसांईजी पुरुषोत्तमदास को कहे ॥ जो दिन दोई चारि  
 में कहूंगो ॥

सो याते जो लीला में रूप को गर्व ता अपराध तें (यह) भयो ॥  
 श्रीहरिरायजी कृत तथा ओरहू कोई अपराध न होइ ॥ सो  
 भावप्रकाश विचारे ॥ तब ओर अपराध नाहि देखे ॥



फेर तीन दिन पाछे श्रीगुसांईजी ने पुरुषोत्तमदास सों  
कही ॥ जो पारवती को पत्र लिखो ॥

वार्ता प्रसंग १ जो थोरे दिन में शरीर को भोग  
शुरु निवृत्त होइगो ॥

सेवा में ग्लानि मति करियो ॥ श्रीठाकुरजी थोरेसे  
दिन में तेरो रोग निवृत्त करेंगे ॥ तब पुरुषोत्तमदास मेहरा ने  
पारवती को पत्र लिख्यो ॥

तामें श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के बचन कहे सो लिखि  
पठाए ॥ सो पत्र पारवती के पास पहुँच्यो ॥ सो पत्र बांचि के  
पारवती प्रसन्नता सों सेवा करन लागी ॥ सेवा करत ग्लानि  
मनमें न लावे ॥ पाछे महिना तीन चारि में हाथ पांच नीके भए ॥

तब पारवती बहोत प्रसन्नतासों सेवा करन लागी ॥  
तब फेर श्रीगुसांईजी कों पत्र लिखि, पुरुषोत्तमदास मेहरा  
की पास पठायो ॥ तामें लिखी जो महाराज के प्रतापतें  
नीकी भई हों ॥ ओर भेट पठाई ॥ सो पुरुषोत्तमदास मेहराने  
श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥ तब श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न  
भए ॥ सो पारवती एसी भगवदीय हती ॥ जो प्रभून की आज्ञा  
प्रमाण चलती+ तातें श्रीगुसांईजी सदा इनके उपर प्रसन्न रहते ॥  
तातें इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहाँ ताई लिखिये ॥

यह वार्ता ४ की अन्तर्गत है तातें वार्ता ४ (९६ मध्ये ।

वैष्णव ९ भये ) ( पुरुषोत्तमदास मेहरा समेत )



## રધુનાથદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય:-

આ વાર્તા જ્ઞાન ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિ ધર્મના જ્ઞાનરૂપ મારગની પ્રણાલીકા, સિદ્ધાન્તરહસ્ય, કૃષ્ણાશ્રય, નવરત્ન, અને સેવાફલ છે. આમાં સમગ્ર પુષ્ટિમાર્ગના ફલાત્મક જ્ઞાનનું નિરૂપણ છે અને તે શ્રીગુસાંઈજીએ રધુનાથદાસના હૃદયમાં સ્થાપ્યું. (જુઓ વાર્તા)

જ્ઞાની પુરૂષો સેવા કરી શક્તા નથી તેમ અહિં પણ રધુનાથદાસથી (ક્રિયાત્મક) સેવા થઈ શકી નહિ.

જ્ઞાનધર્મરૂપ શ્રી રધુનાથજીની માફક રધુનાથદાસે પણ સ્વતંત્ર પણે સેવા કરી નથી.

રધુનાથદાસ શાસ્ત્ર અને સાંપ્રદાયિક સિદ્ધાંતોના અવલોકનમાં જ જીવન પર્વત મગ્ન રહ્યા.

## રધુનાથદાસ નો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:-

રધુનાથદાસના પિતાનું નામ જનાર્દન અને માતાનું નામ પારવતી હતું. તેનો જન્મ ૧૫૬૦માં થયો હતો. પારવતી એ નાનપણથી જ પાલનપોષણ કરી તેને મોટો કર્યો હતો. તેનો પિતા જનાર્દન રધુનાથદાસને બહુ જ નાની ઉંમરનો છોડી પરલોક વાસી થયો હતો. જ્યારે રધુનાથદાસ વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને વિશેષ શાસ્ત્રીય અભ્યાસાર્થે પારવતીએ તેના મામાની સાથે કાશી મોકલ્યો. ત્યાં તે લગભગ વીસેક વર્ષ રહ્યો અને શાસ્ત્રનું ખૂબ અધ્યયન કર્યું. સર્વે શાસ્ત્રનો પારંગત થયો. પારવતી દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી રધુનાથદાસને દ્રવ્ય સંબંધી કાઈ પણ પ્રકારની આપત્તિ પડી નહિ.

પછી રધુનાથદાસ ઘર આવી પોતાની વિદ્યાના અનુભવાર્થે પંડિતોની સભામાં જવા લાગ્યો. સર્વે જગ્યાએ તેની ખ્યાતિ અત્યંત થઈ.



रघुनाथदासने पद्मनाभदाससे ७ श्रीआचार्यजी पासे अक्षमंभंध  
देवडाव्युं हतुं. (पछीनो प्रसंग वार्तामां) रघुनाथदासनुं अवसान संवत  
१६३८ लगभग थयुं, पछी श्रीमथुरानाथजी श्रीगुसांईजीने त्यां पधार्या.

अब श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास के नाती पारवती  
को बेटा रघुनाथदास तिनकी वार्ता आर ताको भाव ॥

पारवती लीला में रूपविलासिनी राजसी भक्त\* ओर रघुनाथदासको  
नाम गुनाभिरान्या ॥ इन में गुन बहोत जो  
श्रीहरिरायजी कृत कोई ओरसें एक दिन में काम होइ सो एक  
आधिदैनिक स्वरूप घरि में यह करें ॥ सो ए तामसी हे ॥ सो  
दोऊ सुचरिता की सखि बरावरि की हैं ॥  
पुरुषोत्तमदास मेहरा की दोऊ आज्ञाकारिनी हैं ॥

सो रघुनाथदास कासी गए ॥ तहां बहोत शास्त्र पढि के  
श्रीगोकुल आए ॥ श्रीगुसांईजी के  
वार्ता प्रसंग १ दरसन कीए ॥ दंडोत करी ॥ तब  
श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक  
जानि (के) बहोत आदर सन्मान किए ॥ आप कथा सुबो-  
धिनीजी की कहते ॥ तब रघुनाथदास को आगे बेठावते ॥  
सो एक दिन परमानंद सोनी ने रघुनाथदास सों पूछी ॥ जो  
तू तो कासीमें बहोत शास्त्र पढ्यो हे ॥ सो आज श्रीगुसांईजी  
ने कहा कथा कही हे ॥ सो कहो ॥



श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की सखी जानि  
 रघुनाथदास को बहोत आदर करते ॥ ओर  
 श्रीहरिरायजी कृत परमानंददास को नाम लीला में चंद्रका हे ॥  
 आधिदैवीक स्वरूप चंद्रमा की उजियारी वत इन की देह की  
 कांति हे ॥ श्रीगुसांईजी ( श्रीचंद्रावलीजी )  
 अनेक चंद्रमारुप तिनकी अंतरंगिनि यह हे ॥ तारें रघुनाथदास से  
 कटाक्ष के वचन कहे ॥

तब रघुनाथदासने परमानंद सोनीसों कह्यो जो तुम  
 सांच पूछो तो में कछू समझत नांही ॥  
 वार्ता प्रसंग १ शुरु श्रीआचार्यजी के मारग की परिपाटी  
 ओर मारग की बात नांही जानत हों  
 रघुनाथदास को मान ( विद्या को मद ) सब मर्दन व्हे गयो ॥

यामें यह जताए जो शास्त्रादिक वेद पुरान के पढे तें श्रीआचा-  
 श्रीहरिरायजी कृत र्यजी के ग्रन्थको सिद्धान्त जान्यो न  
 भावप्रकाश जाइ ॥ कृपाहि को मारग हे ॥ सो कृपाहि  
 तें जान्यो जाइ ॥

पाछे परमानंद सोनी ने श्रीगुसांईजी से कही जो महा-  
 राज रघुनाथदास तो कछू समझत  
 वार्ता प्रसंग १ शुरु नांही ॥ तब श्रीगुसांईजी ने रघुनाथ-  
 दास कों चारि ग्रन्थ अर्थ सहित पढाए  
 ( ओर ) मारग की प्रणालिका कही ॥



( चार ग्रन्थ के नाम ) १ सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थ में सगरे मारग को सिद्धान्त बताए ॥ २ कृष्णाश्रय ग्रन्थ में एक आश्रय दृढ करि दिए ॥ ३ नवरत्न ग्रन्थ में लौकिक वैदिक चिंता दूर करि दीनी ॥ ४ सेवाफल में सेवा को फल बताइ दिए ॥ पाले रघुनाथदास समुझन लागे ॥ श्रीगुसांईजी की कथा को भेद लीला को प्रकार सब जानन लागे ॥ बड़े पंडित भए ॥

इति प्र. १ समाप्त.

---

सो केतेक दिन पाले कन्नोज में अपने घर आज्ञा मांगि के आए ॥ भगवत्सेवा में ममत्व बढ्यो ॥  
 वार्ता प्रसंग २ तब माता पारवति सों कह्यो । जो होंतो न्यारो होउंगो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करोंगो ॥

यह कहेवे में अभिप्राय यह हे ॥ जो पारवती ओर रघुनाथदास बराबरि की सखी हे ॥ तामें पारवती राजसी श्रीहरिरायजी कृत हे ॥ ओर रघुनाथदास तामसी भक्त हे ॥  
 भावप्रकाश सो पारवती ने श्रीठाकुरजी बस कीए हैं, सेवा करि के ॥ सो भेद रघुनाथदास ने देख्यो ॥ सो एऊ बराबरि के ॥ तामसि सो सह्यो न गयो ॥ जो मेरे



श्रीठाकुरजी इननें मन लगाइ के बस किये हैं सो अब मैं बस करों ॥  
ताते पारवति तें कहें ॥ मैं न्यारो होइ के सेवा करुंगो ॥

तब पारवती ने कही जो भलेही सेवा करि ॥ प्रीति काहू  
के बांटे में नाहि ॥ श्रीआचार्यजी की  
वार्ता प्रसंग २ शुरू कृपा ते होइगी ॥ पाछे रघुनाथदास  
न्यारे भये ॥ सो बाकी माता पारवती  
जल भरि लावे ॥ पात्र मांजे ॥ श्रीठाकुरजी की परचारगी  
सब करि पाछे अपने न्यारे घरमें आय अकेली लीटी करिके  
भावसों भोग धरे ॥ पाछे जलके घूंट सों उतार के लेइ ॥  
श्रीठाकुरजी की सेवा झुंगार बिना सगरो राजस  
खानपान देह सुख सब त्याग कीयो ॥ या भांति सां  
करत दिन द्वे चारि बीते ॥ पाछे श्रीमथुरानाथजीने कह्यो ॥ तू  
धन्य हे मेरी सेवा नाहि छोडे ॥ अपनो सुख सब छोडे ॥  
मनमें तापहू बहोत कीए ॥ अब तू कबहू तो दारि करि ॥  
मेरो गरो अकेली लीटी<sup>x</sup> लेत खरखरात हे ॥ तब पारवती  
ने कह्यो जो महाराज तुम तो रघुनाथदास के इहां दारि भात  
खीरि आदि सब सालन सामग्री नित्य अरोगत हो ॥ गरो  
क्यों खरखरात हे ? ॥ तब श्रीठाकुरजीने पारवती सां कह्यो ॥  
जो मोकों तो तेरो कीयो भावत हे । ताते लीटी अकेली  
अरोगत हो ॥



यह कहि (यह) जताए जो प्रीति की लीटि मोकों प्रिय हे ॥

अहंकार करि छप्पनभोग प्रिय नाहि हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत रघुनाथदास के इहांहू अरोगत हों ॥ श्रीआ

भावप्रकाश चार्यजी की कान तें ॥ परंतु तेरो कीयो

बहोत भावत हे ॥ यह कहि यह जताए ॥

जो भक्तजन सुख लेइ श्रीठाकुरजी लिए जानिए ॥ ओर इतनो कहे

पारवती सों ॥ सो पारवती के लिए जो में अपने गरे को नाम लेउंगो ॥

तब यह सगरी सामग्री करेगी ॥ पाछें प्रसाद लेइगी ॥ तब मोकों

सुख होइगो ॥

या प्रकार पारवती को सुख विचारे ॥ तब पारवती

सगरी सामग्री अपने घर करन को

वार्ता प्रसंग २ शुरु दोरी आवती ॥ दार भात सालन सब

करती ॥ पारवती ने विचार्यो जो श्री-

ठाकुरजी सुखी होइ सो करनो ॥

पाछे रघुनाथदास कलूक दिन सेवा करि ॥ पाछे ज्ञान

भयो जो पारवती की सेवा अहंकार करि छुडाइ ॥ तातें प्रभू

मो पर अप्रसन्न हे ॥ तातें भगवदीय सों मिलि के चळंगो ॥

तो श्रीठाकुरजी प्रसन्न होइंगे ॥ अहंकार कीए मेरी यह सेवा

जाइगी ॥ यह ज्ञान श्रीगुसांईजीने मारग को सिद्धान्त बतायो

हतो, तातें उनकी कृपा तें भयो ॥ तब रघुनाथदास पारवती

सों कहे ॥ माता अब तुमही सेवा करो ॥ तुम आज्ञा करो सो

में करूं ॥ में चूक्यो ॥ तब पारवती को कछू ईरसा तो नाही ॥



શુદ્ધ ભક્ત હે ॥ સો પ્રસન્ન હોઈ રસોઈ કરન લાગી ॥ રઘુનાથદાસ  
સૌં શૃંગારાદિ કરાવે ॥ યા પ્રકાર એસેં કરત પારવતી કે સંગ  
કરિ રઘુનાથદાસ કૌં પ્રીતિ ભઈ ॥ તવ દોડન કો વરાવરિ  
અનુભવ હોન લાગ્યો ॥ યા પ્રકાર પદ્મનાભદાસ કો પરિવાર  
અલૌકિક ભયો ॥ યા પ્રકાર (૮૪ મધ્યે) વૈષ્ણવ સાત ભણે ॥  
પરંતુ પદ્મનાભદાસ કે કુટુંબ સહિત વાર્તા એક જાનની તાર્તે  
વૈષ્ણવ ૪ ભણે ॥ (૯૬ મધ્યે વૈ. ૧૦ ભણે)

### રજ્જોબાઈની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્ય:—

આ વાર્તા વૈરાગ્ય ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિમાર્ગનો વૈરાગ્ય એ વિરહ રૂપ છે. અને તે વિરહનો અનુ-  
ભવ રજ્જો ને છે. માટે આ વાર્તા પુષ્ટિના વૈરાગ્ય રૂપ કહી છે.  
“વિરહાનુભવૈકાર્યસર્વત્યાગોપદેશકઃ” એ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ અહિં  
સાર્થક છે. રજ્જોને શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ છે  
તેથી તેઓ સર્વ પ્રકારની લૌકિકાસક્તિનો સર્વાંશે ત્યાગ કરી આપશ્રીના  
ચરણમાં સ્થિત છે. “સંત્યજ્યસર્વવિષયાંસ્તવપાદમૂલમ્” એ શ્રી-  
ગોપીજીનોના વાક્યનો અનુભવ રજ્જો કરે છે. શ્રીઆચાર્યજીના અર્થે  
સર્વ પ્રકારના સુખનો ત્યાગ કર્યો છે.

શ્રીગોકુલનાથજી (ચતુર્થપુત્ર) સર્વોત્તમ ઉપરની પોતાની સ્વતંત્ર  
ટીકામાં “દાસદાસીપ્રિયઃ” ત્યાં દામોદરદાસને દાસ અને રજ્જોને દાસીમાં  
અગ્રગણ્ય ગણે છે એટલે આ રજ્જો દામોદરદાસની સમાન કાટીનાં છે.

રજ્જોને પરમાનંદરૂપ વિપ્રયોગાત્મક સ્વામિની સ્વરૂપનો અનુભવ  
છે. (જુઓ “વાર્તા-રહસ્ય”)



## રંભેનો શેષ ભૈાતિક ઇતિહાસ:-

કાશીમાં એક ક્ષત્રી રહેતો હતો. તે ગંગાજીનો પૂર્ણ ભક્ત હતો. તેમજ તે દ્રવ્યસંપન્ન પણ હતો. તેને કાઈ સંતાન નહતું. જ્યારે તે લગભગ ૫૦ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને સંતાનની આશા છોડી દીધી. અને પોતાના દ્રવ્યનો ઉપયોગ દાનપુણ્યમાં કરવાનો નિશ્ચય કર્યો. એજ રાત્રે શ્રીગંગાજીએ તેને સ્વપ્નમાં આજ્ઞા કરી કે હે ક્ષત્રી ! તું શોચ ન કર, તારે ત્યાં એક અદ્ભૂત કન્યાનું પ્રાગટ્ય થશે. તેથી તે ક્ષત્રીએ શ્રીગંગાજીના વચન ઉપર વિશ્વાસ રાખી કુટલોક સમય ધાર્મિક કૃત્યોમાં વિતાવ્યો. થોડા સમય બાદ તેને ત્યાં એક પુત્રીનું પ્રાગટ્ય થયું તેનું નામ તેને રંભે રાખ્યું. રંભે એક અતિ અદ્ભૂત સ્વરૂપવાન હતી તેના લલાટમાં પૂર્ણ ભગવદ્દેવ જળહળતું હતું. તે એટલી અધી સ્વરૂપવાન હતી કે તેની પરછાંઈ ધરતી ઉપર પડતી. છતાં તે પૂર્ણ વૈરાગ્યયુક્ત હતી. નાનપણથી જ નિત્ય તે શ્રીગંગાજીનું પૂજન કરવા શ્રીમહાલક્ષ્મી (શ્રીઆચાર્યજીનાં પત્ની) સાથે જતી. જ્યારે તે દસ વર્ષની થઈ ત્યારે તેનું લગ્ન એક જ્ઞાતિના છોકરા સાથે કરવામાં આવ્યું. રંભેના પિતાનું ઘર શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના પિતા ભદ્ર જોષીસનજી સાથે જ હોવાથી તે બન્નેમાં અત્યંત પ્રેમ હતો. શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના લગ્નનું સમગ્ર ખર્ચ રંભેના પિતાએ કર્યું હતું. જ્યારે શ્રીમહાલક્ષ્મીજી શ્રીઆચાર્યચરણ સાથે અડેલમાં કાયમ રહેવા લાગ્યાં ત્યારે રંભે પણ પોતાના પતિ અને પિતા સાથે અડેલમાં જ રહેવા ગઈ. રંભેનો શ્રીમહાલક્ષ્મી સાથેનો પ્રેમ અત્યંત ગાઢો હતો. શ્રીમહાલક્ષ્મીજી વિના એક ક્ષણ પણ અલગ રંભે રહેતી ન હતી. રંભે સ્વભાવથી જ પૂર્ણ વૈરાગ્યવાન હતી. તે અહર્નીશ ભગવત્સેવામાં જ પોતાનો સમય વ્યતીત કરતી. શ્રીઆચાર્યચરણે રંભેને માથે એક ભગવત્સ્વરૂપ (શ્રીઆલકૃષ્ણજી) પધરાવી આપ્યું હતું. તેની તે અહર્નીશ સેવા કરતી. શ્રીઆચાર્યચરણ ઉપર તેની અતુલીત શ્રદ્ધા હોવાથી તે ભગવત્સ્વરૂપમાં શ્રીઆચાર્યચરણની જ ભાવના કરતી. અને તેની ભાવનાને અનુસાર શ્રીઆચાર્યચરણ રંભેને



अनुभव करावता. रब्बे ने वैष्णुवे। उपर पणु अत्यंत प्रेम હતો-  
 આવ્યા गया वैष्णुवे। नित्य महाप्रसाद आदिथी समाधान करती-  
 दाभोदरदास हरसानी अने श्यामदास सुतारनी ते पूर्ण डाण्ण राખती-  
 समय उपर प्रसाद लेवडावती. रब्बेने। जन्म अनुमानतः सं. १५४०  
 लगभग मनाय છે અને तिરોધान सं. १५८७-८८नुं मानવામાં આવે છે.

## अब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक रजो क्षत्राणी तिनकी वार्ता ओर-ताको भाव ॥

सो रजो क्षत्राणी लीला में ललिताजी की सखी हैं ॥ इनको नाम  
 रतिकला हैं ॥ रति जो प्रीति ताकी कला ॥

श्रीहरिरायजी कृत  
 भावप्रकाश

अथवा रति जो विहार ताकी कला जो जिनको  
 श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को विहार सिद्ध  
 होइ ॥ यही भाव में मगन हैं ॥ ओर जानत

ही नांही ॥ श्रीस्वामिनीजी के लिए नाना प्रकार की सामग्री करनी ॥  
 निकुंजादिक में रात्रि को दूधादिक अरोगावनो ॥ यह ललिताजी की  
 सेवा हे ॥ तातें यहांहू रजो कां यह नेम जो रात्र की सामग्री नित्य  
 नेम सों श्रीआचार्यजी कां आरोगावनो ॥ सो लीला में रतिकला को  
 बहोत ताप हतो ॥ जो श्रीस्वामिनीजी कां परोसों (एसो) भाग्य मेरो  
 कब होय ? ॥ काहेतें (जो) अरोगावनो सो ललिताजी की सेवा हे ॥  
 सो कैसें मिले ? ॥ ललिताजी तो अत्यंत प्रिय मध्याजी हे ॥ सगरी  
 लीला की सिद्धि करता ॥ सो ताप रतिकला के हृदय को हे ॥ (सो)  
 अब श्रीआचार्यजी (श्रीस्वामिनीजी) मनोरथ पूरन करें, ताप मिटाए ॥  
 काहेतें ? ॥ नारायणदास ब्रह्मचारी ब्राह्मण होते ॥ तिनकी करी खीरि  
 श्रीगोबुलचंद्रमाजी खीरि लेवे कां श्रीआचार्यजी सों वहे ॥ तब श्रीआ-



र्यजी कहे ॥ पाक कैसें लियो जाइ ? ॥ पाछे श्रीगोकुलचंद्रमाजी के ग्रन्थ (वाक्य) तें लीए ॥

ओर इहां रजो क्षत्राणी हती ॥ ताकी अनसखडी आप नित्य नेम सों लेते ॥ सो लीला संबंघ को भाव विचारि के ॥ तथा रजो एकांगी अनन्य भक्त के बस होइके, सो प्रेमके भरतें मर्यादा छूटि जाय ॥ यामें रजो को प्रेम जताए ॥ रजो के प्रेमतें मर्यादा स्वरूप को तिरो-धान होइ जातो ॥ लीला रस में मगन होइ सामग्री अंगीकार करें ॥

सो रजो नित्य पकवान सामग्री करि रात्रकों ले आ-  
वार्ता प्रसंग १ वति ॥ सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू  
आरोगते ॥ चाके नेम हतो ॥

सो एक दिन लक्ष्मन भट को श्राद्ध दिन हतो ॥ सो श्रीआचार्यजीने ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हते ॥ तहां घृत थोरो सो चाहियत हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो रजो के इहां ते घृत ले आवो ॥ सो एक वैष्णव जाइ के रजो सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजीने घृत मंगायो हे ॥ तब रजोने वा वैष्णव सों कह्यो जो घृत काहेको मंगायो हे ? ॥ तब वा वैष्णवने कह्यो, जो लक्ष्मण भटजी को श्राद्ध दिन आज हे ॥ सो ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हे तहां घृत घट्यो हे ॥ सो तारें मंगायो हे ॥ तब रजो ने कह्यो जो घृत मेरे नांही हे, जाय कहीयो ॥ तब वैष्णव फिरि आयो ॥ ओर श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो महाराज रजो के घृत नांही हे ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो एकवार तू फेरि जा ॥ खीजि के कहियो जो घृत दे ॥ तब वह वैष्णव फेरि आयो ॥ रजो सों



कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी स्वीकृत हैं ॥ तातें घी देउ ॥ तोहू  
 रजोने घृत दीनो नाहों ॥ कह्यो मेरे घृत नाहों हे ॥ कहां ते  
 देऊं ? तब वैष्णव फिरि आय श्रीआचार्यजी सों कह्यो  
 जो महाराज रजो घृत नाही देत ॥ पाछे और ठोरते घी  
 मगाई काम चलायो ॥ पाछे रात्र भई ॥ तब रजो सामग्री  
 सिद्ध करि श्रीआचार्यजी पास आई ॥ तब श्रीआचार्यजी  
 पीठि दे बेठे ॥ तब रजोने कह्यो ॥ जो महाराज, जीव तो  
 दोष ते भयों हे ॥ अपराध कहा जो आप दरसन नाहि देत ॥  
 तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो आज लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध  
 हतो ॥ सो तेंने घृत क्यों नाहि दीनो ? तब रजोने कही  
 मेरे घी नाहि हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही सामग्री कहां  
 ते करि लाई ? ॥ तब रजोने कही महाराज आपु के घरमें  
 हू घी हतो क्यों नाहीं लीए ? ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे उह तो  
 श्रीठाकुरजी को हतो ॥ वामें ते कैसे लीयो जाई ? ॥ तब रजोने  
 कही मेरे घरमें कोन हे ? ॥ श्रीठाकुरजी तें अधिक आपको  
 स्वरूप हे । सो आपकी लीला संबंधी सामग्री में ते श्राद्ध में  
 कैसे दऊं ? ॥ ओर में लक्ष्मण भट्ट की लोंडी नाहि हों ॥ मैं तो  
 आपकी लोंडी हों आप मेरी परीक्षा लेन अर्थ घी मगायो, सो  
 पहले वैष्णव पठायो तब तो लौकिक आवेस सों घी घटयो ॥  
 तब आपु कहे रजो सो ले आवो ॥ यह लौकिक प्रवाह  
 आज्ञा जानि के मँने घी की नाहि करि ॥ सो पाछे आपु यह  
 मनमें बिचारे जो श्राद्ध के लिये ब्राह्मण भोजन में बेगे चाहिए ॥



फेरि जो उह वैष्णव आईकें कह्यो ॥ जो खीजि के कहे घी देह ॥ तब में मर्यादा जानी ॥ जो पुष्टि कार्य में क्रोध को प्रयोजन हे नांहि ॥ काहेतें भावही सो सगरी वस्तु सिद्ध हे ॥ ओर मर्यादा में तो वेउ वस्तु विना कर्मको नास होइ ॥ (वस्तु तें) पूरनता हैं ॥ तातें वस्तु के लिये क्रोध हे ॥ जो वह वस्तु आवश्यक चाहिए ॥ तातें मर्यादाकी आज्ञा हु नांहि माने ॥ ओर मर्यादा के कार्यार्थ घी हु नांहि दीयो ॥ पाछे तीसरे पुष्टि के आवेश ते मांगते तो में घी देती ॥ ओर आपुको घी मंगावनो हतो ॥ (तो) इतनो उह वैष्णव सो कहि देते ॥ जो रजो सो कहियो ॥ तेरे पुष्टि धर्म में हांनि नांहि हे, घी दीजो ॥ तो में काहेको फेरती ॥ ओर महाराज जानि बूझि के कूवा में केसे परूं ? ॥ आपुकी कृपा तें इतनो ज्ञान भयो तब में घी नांहि दीयो ॥ आपु तो बुद्धि प्रेरक हो ॥ मेरे हृदय में बेठि के घी देवे की नांहि कहे ॥ उहां के घी मगाए ॥ सो में बिना मोल की दासी हों ॥ आपु कृपा करिए ॥

याहि तें शिक्षापत्र में कह्यो हैं \* श्रीठाकुरजी की आज्ञा तीन प्रकार की हे ॥ लौकिक आज्ञा प्रवाहसें के करन अर्थ ॥ याहि तें श्रीभागवत में लौकिक आदि कार्य यह तीन ही बरनन हैं ॥ अलौकिक कार्य में श्रीठाकुरजी को आश्रय ओर भगवदोयको संग ॥ वैदिक कार्य में तीर्थ देव पूजा कर्मादि ॥ लौकिक में कुटुंब पालनों खानपान शरीर को सुख ॥ सो तीन्यों फलहू न्यारे न्यारे कहे



हैं ॥ लौकिक तें संसार ॥ वैदिक तें स्वर्गादिक ॥ अलौकिक तें भगवद प्राप्ति ॥ या प्रकार के भेदसों घी नांहि दीयो ॥

तब श्री आचार्यजी प्रसन्न होइ के दरसन दिए ॥ तब रजो नें सामग्री श्रीआचार्यजी वार्ता प्रसंग १ के आगे राखि ॥ ओर कह्यो जो शुरु अरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजीने रजो सों कह्यो जो आजु श्राद्ध दिन हे ॥ सो दूसरी बेर लेनो नांहीं ॥ तब रजो ने कह्यो ॥ जो महाराज घर की होइ सो लोगन के मर्यादा के लीए मति लेहू ॥ यह तो लीयो चाहिए ॥

ताको अर्थ यह जो लीला के भाव सों अपने निज स्वरूप सों अरोगो ॥ अब मर्यादा को आवेश कहां श्रीहरिरायजी कृत राखोगे ॥ लीला के आवेश में मन दीजे ॥ भक्तन भावप्रकाश को मनोरथ पूरन करो ॥ इतनो सुनत ही आप (में) पुष्टि लीला को आवेश वहे गयो ॥

मर्यादा की आज्ञा सब जात रही ॥ सामग्री अरोगे ॥ जेसे परमानंदजी गाए ॥ “ हरि तेरी लीला की सुधि आवे ” ॥ इतनो सुनत ही तीन दिनलों शरीरको अनुसंधान न रह्यो ॥ ऐसे लीला में आवेस होइ ॥ रजो को मनोरथ पूरन कोए ॥ ताते रजो एकांगी भगवदीय हे ॥

तब रजो के आग्रह तें श्रीआचार्यजी ताहू दिन सामग्री अरोगे ॥ सो वह रजो क्षत्राणी श्रीआचार्यजी महाप्रभून की ऐसी कृपापात्र भगवदीय ही ॥ ताते इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां ताई लिखिये ॥ ( ९६ मध्ये वै. ११ भये )



## શંકા સમાધાન અને રહસ્ય:—

**પૂર્વપક્ષી:—**આ વાર્તામાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો સ્પષ્ટ વિરોધ કહેલો છે. અને શ્રીઆચાર્યચરણ વર્ણાશ્રમ ધર્મના અત્યંત પક્ષપાતી છે માટે આ વાર્તા સંશોધ્ય છે.

**સિદ્ધાન્તી:—**આપ પુષ્ટિમાર્ગના જ્ઞાનથી પૂર્ણ પરિચિત નથી તેમ અમને આ પ્રશ્નથી સહજ જણાઈ આવે છે. બીજા પ્રકારે સ્પષ્ટ કહીએ તો આપ લોક અને શાસ્ત્રના જ્ઞાનમાં પણ અર્ધદગ્ધ છો એટલે જ આપને આવા પ્રકારના કુતર્કો આવી નિર્દોષ સર્વોત્કૃષ્ટ દશાને સમજાવનારી વાર્તામાં થાય છે.

આપ વર્ણાશ્રમ ધર્મનું સ્વરૂપ જાણો છો ? વર્ણાશ્રમનો ધર્મ કયા પ્રકારનો, કેવો અને કેટલો બલિષ્ઠ છે તે જાણો છો ? તેમજ પુષ્ટિ ભક્તિનું સ્વરૂપ આપ જાણો છો ?

**પૂર્વપક્ષી:—**મારા જ્ઞાનથી હું એટલું કહી શકું છું કે વર્ણાશ્રમ ધર્મનું સ્વરૂપ સ્મૃતી પ્રતિપાદ આચાર વિચારનું છે. અને તે વર્ણાશ્રમ ધર્મ એ દેહનો ધર્મ છે અને તેનું બલ પણ મર્યાદીત છે.

જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ એક સ્વતંત્ર અમર્યાદિત અને પ્રમેયબલ વાળી હોઈ આત્માના ધર્મ રૂપ છે. વળી વર્ણાશ્રમ ધર્મ કાલાધીન અને પરિવર્તનીય છે જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી ધર્મ ત્રિકાલાબાધિત અને સર્વ સમયમાં સર્વ સ્થાને સર્વ પ્રકારથી અપરિવર્તનીય છે. મારી સમજ પ્રમાણે આ ઉપરોક્ત શાસ્ત્ર સિદ્ધ વાત વિદ્વાનોને માન્ય છે.

**સિદ્ધાન્તી:—**યદિ આપ ઉપરોક્ત કથનને સ્વીકારો છો તો આપના મુખથી જ આપ કહી શકશો કે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી પ્રમેયબલયુક્ત ત્રિકાલાબાધિત ધર્મ આગળ વર્ણાશ્રમ ધર્મ ક્ષુદ્ર અને નિસ્તેજ છે તેથી વર્ણાશ્રમ ધર્મ આશ્રયને યોગ્ય નથી જ.

**પૂર્વપક્ષી:—**હા, તે તો અમે સ્વીકારીએ છીએ જ કે વર્ણાશ્રમ ધર્મ ભક્તિમાર્ગીય જીવો ને માટે આશ્રયરૂપ નથી કારણ કે તે દેહ



ધર્મ છે તેમજ આ કલિયુગમાં તેનું વિશુદ્ધ રૂપમાં સાંગોપાંગ અસ્તિત્વ પણ નથી છતાં તે ત્યાજ્ય પણ નથી જ.

**સિદ્ધાન્તી:—**અમારો એ સિદ્ધાન્ત જ નથી કે વર્ણાશ્રમનો હરેક મનુષ્યે ત્યાગ કરવો. કારણ કે તેના ત્યાગથી પાખંડીત્વ અને અશુદ્ધતા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે શ્રીમદ્વાચાર્યચરણના કથનાનુસાર જેવા સ્વરૂપમાં તે ધર્મ પ્રાપ્ત થતો હોય તેવા સ્વરૂપમાં તેનું પાલન અવશ્ય કરવું. પરંતુ તે કેવી રીતે ? ભક્તિરૂપી આત્મધર્મમાં જે વખતે જેટલી આવશ્યકતા તેની હોય તેટલા જ પ્રમાણમાં અને તે પણ કપટ રૂપથી જ એટલે મનરહિતપણે.

વળી આ સર્વ પ્રકાર સાધન દશાના ભક્તોને માટે છે. જેમને ભક્તિ પૂર્ણ રૂપે પ્રાપ્ત થઈ નથી તેમને માટે જ.

જ્યારે વૈદિક કર્મોમાં અને જ્ઞાનમાં પણ વર્ણાશ્રમનો ત્યાગ કેટલીય જગ્યાએ કરવાનો સ્વયં શાસ્ત્ર આજ્ઞા કરે છે જેવાં કે:— બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામાં, સંન્યાસ અવસ્થામાં, તો પછી ભક્તિમાં તેનો ત્યાગ હોય તેમાં કહેવું જ શું ?

એક વિપ્રને બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામાં વૃદ્ધિ સૂતક આદિ કંઈપણ શાસ્ત્ર રીતીથી લાગતું નથી. તેવી જ રીતે સંન્યાસમાં પણ છે.

જ્યારે કર્મ જ્ઞાનાદિની સંન્યાસાદિ અવસ્થામાં આવા પ્રકારના ત્યાગો રહેલા છે તો ભક્તિની ઉત્કૃષ્ટ દશામાં ( ભક્તિના સંન્યાસરૂપ વિરહદશામાં ) વર્ણાશ્રમ તો સહજ ત્યાગ થઈ જાય તેમાં સંદેહ હોય જ કેમ ? ભક્તિનું સ્વરૂપ જ માહાત્મ્ય જ્ઞાનપૂર્વક સુદૃઢ સ્નેહનું છે. એટલે તે સિદ્ધ થયા પછી (સુદૃઢ પ્રેમ પ્રભુમાં થયા પછી) તેને માટે શાસ્ત્રીય વિધિ નિષેધનું સ્થાન જ હોતું નથી. સૂરદાસજી પણ એજ સમજાવે છે કે સૂરદાસ જાકે નેમ ધરમ વ્રત સો પ્રેમી કોઈ કો તે પ્રેમનું સ્વરૂપ



જ એવું છે જેમાં લોક અને વેદના રાગનો અને જ્ઞાનનો પૂર્ણ અભાવ છે. તો તેનું અસ્તિત્વ તો હોય જ ક્યાંથી ?\*

હવે એ પ્રેમમાં પણ વિપ્રયોગની કાટી સ્વતંત્રરૂપ હોવાથી મુખ્ય છે. એટલે ધર્મી વિપ્રયોગવાળા ભક્તોને પોતાના સ્નેહી તરફના સુખની મુદ્દલે અપેક્ષા રહેતી નથી જ. તેમજ સ્વરૂપ તકની અપેક્ષા રહેતી નથી. આટલી નિઃકામભક્તિ અને પૂર્ણ સુખનો ત્યાગ કેવલ આ ધર્મીવિપ્રયોગ દશામાં જ છે. તે ભક્તો કેવલ પોતાના સ્વતંત્ર ભાવમાં જ વિલસે છે.

યદ્યપિ પ્રેમમાં સ્વયં લોકવેદના રાગનો અભાવ હોવાથી તે ભક્તિના સન્યાસરૂપ છે. તદ્દપિ તે સન્યાસરૂપ પ્રેમની પણ આંતરીક સન્યાસ અવસ્થા તે આ ધર્મીવિપ્રયોગ અવસ્થા છે. એટલે તે અવસ્થામાં બાહ્યક્રિયાત્મક ભાવ (કામભાવ)ની તેમજ સ્વરૂપની પણ અપેક્ષા નથી હોતી તો બિચારા વર્ણાશ્રમ ધર્મની અપેક્ષા તો હોય જ કેમ ?

આ ધર્મીવિપ્રયોગવાળા ભક્તો સ્વતંત્ર ભક્તો છે. અને તે આંતરીક સન્યાસ અવસ્થાવાળા છે. ત્યાં વેષ ક્રિયા આદિની અપેક્ષા નથી. કેવલ ભાવમાં જ વિલસનારા ભાવાત્મક ભક્તોની તે કાટી છે.

તે ભક્તિનું સ્વરૂપ નાદરજી પોતાના ભક્તિસૂત્રમાં આ પ્રમાણે સમજાવે છે:—

૨ ઠાં સા કસ્મૈ પરમપ્રેમરૂપા । તે ભક્તિ ઇશ્વરમાં પરમ પ્રેમરૂપા છે.

૩ ઠાં અમૃતસ્વરૂપા ચ । અને તે અમૃત સ્વરૂપા છે.

૪ ઠાં યલ્લબ્ધવા પુમાન્ સિદ્ધો ભવત્યમૃતીભવતિ તૃપ્તોભવતિ । જેને પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય સિદ્ધ થાય છે અને અમૃત થાય છે અને તૃપ્ત થાય છે.

\* સરખાવો અષ્ટ સખાની વાણી:—

કેસે કીજે વેદ કહ્યો વિધિ નિષેધ કો નાહિન ઠોર રહ્યો ।

દુઃખ કો મૂલ સનેહ સખીરી સો ઊર પેઠ રહ્યો ।

પરમાનંદ પ્રેમ સાગરમેં પર્યો સો લીન મયો ।



૫ ઓં યત્રાપ્ય ન કિંચિદ્વાંછતિ ન શોચતિ ન દ્વેષ્ટિ ન રમતે નોત્સાહિ ભવતિ । જેને પામી (મનુષ્ય) પછી ન કોમને ચાહે છે અથવા શોક કરે છે અથવા દ્વેષ કરે છે અથવા (કાઈમાં) રમે છે અથવા (કાઈ વિષયનો) ઉત્સાહ કરે છે.

૬ ઓં યજ્ઞાનાન્મત્તોભવતિ સ્તબ્ધોભવત્યાત્મારામોભવતિ । જેને જાણીને પાગલ થઈ જાય છે સ્તબ્ધ થઈ જાય છે અને આત્મારામ થઈ જાય છે.

૭ ઓં સા ન કામયમાના નિરોધરૂપાત્ । તે (ભક્તિ) કામના ને અર્થ નથી થતી કારણ કે (આ) નિરોધરૂપ છે.

હવે નિરોધનું સ્વરૂપ સમજાવે છે.

૮ ઓં નિરોધસ્તુ લોકવેદવ્યાપારસંન્યાસઃ । નિરોધ તો લોક વેદ વ્યાપારનો ત્યાગ કરવો તે છે.

૯ ઓં તસ્મૈ અનન્યતા તદ્વિરોધિષૂદાસીનતા ચ । અને એમાં અનન્યતા અને તેના વિરોધિયો ઉપર ઉદાસીનતા પણ નિરોધ છે.

૧૦ ઓં અન્યાશ્રયાણાં ત્યાગોડનન્યતા । અન્ય આશ્રયોનો ત્યાગ કરવો તે અનન્યતા છે.

૧૧ ઓં લોકે વેદેષુ તદનુકૂલાચરણં તદ્વિરોધિષૂદાસીનતા । લોક અને વેદમાં શ્રીમદ્ભગવદનુકૂલાચરણ કરવું એજ તદ્વિરોધિષૂદાસીનતા છે. એટલે લોક અને વેદમાં કેવળ પ્રેમપાત્રના અનુકૂલ આચરણ કરવાથી તે અનન્યતાના વિરોધી કર્મોમાં ઉદાસીનતા આપોઆપ થાય છે.

૧૨ ઓં ભવતુ નિશ્ચયદાઢ્યદિર્ઘવં શાસ્ત્રરક્ષણં । નિશ્ચય દઢ થયા પહેલાં શાસ્ત્ર રક્ષણ હોય । ( અર્થાત્ શાસ્ત્રના કહેલા કર્મોનું અનુષ્ઠાન ભક્તિના દઢ નિશ્ચય થયા પહેલાં સુધી જ છે.

૧૩ ઓં અન્યથા પાતિત્યાશંકયા । અન્યથા પતિત થવાની શંકા છે. ( જ્યાં સુધી પુષ્ટિ ભક્તિમાં દઢ નિશ્ચય નથી ત્યાં સુધી વર્ણાશ્રમ ધર્મની પૂર્ણ આવશ્યકતા છે. આશ્રયરૂપે નહિ કિંતુ કર્તવ્યરૂપે ) અન્યથા તે જીવ પતિત થાય એમ શંકા રહે છે.

૧૪ ઓં લોકોપિ તાવદેવ કિંતુ ભોજનાદિવ્યાપારસ્ત્રવાશરીરધારણા-



વધિ । લોક (લોકવ્યવહાર) પણ ત્યાં સુધીજ (અર્થાત નિશ્ચય થયા પૂર્વતક) છે કિંતુ ભોજનાદિ વ્યાપાર તો જ્યાં સુધી શરીર છે ત્યાં સુધી છે.

હવે આપ જાણી શકશો કે આમાં બતાવેલું નિરોધનું સ્વરૂપ (સૂત્ર ૮ અને ૯માં) શ્રીઆચાર્યચરણ અને રજો બન્નેને સિદ્ધ થયેલું છે. જુઓ શ્રીઆચાર્યચરણ સ્વયં આજ્ઞા કરે છે કે:—અહં નિરુદ્ધો રોધેન નિરોધપદવીં ગતઃ । ૧૩ (નિ૦લ૦)

હું રોધ વડે નિરુદ્ધ છું અને નિરોધની પદવીને પામેલ છું. તેવી જ રીતે રજો પણ નિરોધ ને સારી રીતે પ્રાપ્ત થયેલાં છે તે ભાવસિંધુ, વાર્તા આદિમાં રજોના પ્રસંગથી સ્પષ્ટ થાય છે. જેવી રીતે વ્રજભક્તો એ પંચાધ્યાઈ સમયે જ્યારે શ્રીઠાકારજીએ ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો ત્યારે સામે પ્રતિઉત્તર આપીને પોતાની અચલ ભક્તિથી શ્રીઠાકારજીમાં રહેલા અનિરુદ્ધ (ધર્મોપદેશક) વ્યુહનું નિવારણ કર્યું. તેવી રીતે રજોએ પણ શ્રીઆચાર્યચરણમાં રહેલા મર્યાદા આવેશને પોતાની અચલ ભક્તિયુક્ત પ્રાર્થનાથી દૂર કર્યો. અને કેવલ શુદ્ધ પુષ્ટિસ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી સામગ્રી અરોગાવી (જુઓ વાર્તા) એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ અને પરમભક્ત રજો બન્નેનાં સ્વરૂપ શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિરૂપ\* હોવાથી સૂત્ર ૧૨ માં કહ્યા અનુસાર વેદની મર્યાદાની

\* સર્વાત્મભાવ યુક્ત (વિશેષ જુઓ શ્રીહરિ૦ કૃત. સર્વાત્મભાવ નિરૂપણમ્) જેઓ સર્વભાવથી ભજન કરે છે તેને લૌકીક વૈદિકની શી અપેક્ષા રહે ? નજ રહે “તતઃ કિમપરં બ્રૂહિ લૌકિકૈ વદિકૈરપિ” “લોકવૈદિક ત્યાગ શરણ ગોપી શકે.”

સર્વત્યાગસ્તુ સહજો યત્ર લૌકિકવેદયોઃ ।

નૈરોક્ષ્યં સ ભાવસ્તુ સર્વમાવો નિગદ્યતે ॥ ૧૩ ॥ (શિ૦ ૩૪)

મર્યાદામાં પ્રહ્મભાવ તેવીજ રીતે પુષ્ટિની ઉત્કૃષ્ટ દશામાં સર્વાત્મભાવ છે.

દ્રષ્ટાંતરૂપે:—નાભાજી, (કુતરામાં પણ પ્રહ્મના દર્શન કર્યા અને રાટી લઈ ગયું ત્યારે ઘી ચોપડવા દોડ્યા) તેવીજ રીતે અહિં પણ તે દશામાં લૌકીક વૈદિકની દૃષ્ટિ સહજ અને સ્વતઃ નષ્ટ થઈ જાય છે. રજો આવાં સર્વાત્મભાવવાળાં ભક્ત છે.



તેઓને અપેક્ષા મુદ્દલે હોય જ નહિ. તે ભક્તિનું સ્વરૂપ એવું છે કે તેને પ્રાપ્ત કરીને ભક્ત ભક્તિમાં પાગલ થઈ જાય છે, નિરક્ષેપ થઈ જાય છે. લોકવેદાતીત થઈ સ્વયં આત્મારામ થઈ જાય છે. (જુઓ ૪-૫-૬ સૂત્ર) હવે આવી દશામાં બિચારો ક્ષુદ્ર બાહ્ય ધર્મરૂપ દેહધર્મ (વર્ણાશ્રમ) ટકી જ ક્યાં શકે ?

આવી ભક્તિમાં સૂરદાસજીના કથનાનુસાર “વેદ પુરાણ જ્યોતીષ બહે ઠગ જાનત ફાંસી જીકો ।” એનો વસ્તુતઃ અનુભવ થાય છે. આ ભક્તિ-માર્ગની સન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થામાં ન વેદની સ્થિતિ છે ન લોકની. કારણ કે તે ભક્તિ પ્રાપ્ત થવાથી તે ભક્ત સ્વયં લોકવેદાતીત થઈ જાય છે.

વળી શ્રીહરિના સમાન રૂપ, ગુણ અને શીલવાળા વૈષ્ણવોમાં જ્ઞાતિબુદ્ધિ રાખવાથી મહાન દોષ થાય છે તેવું શાસ્ત્ર કહે છે. (જુઓ ભાર-તેદુનું નારદ ભક્તિસૂત્ર ઉપરનું ભાષ્ય; તેમાં અનેક પ્રમાણોનો સંગ્રહ છે)

નયસ્યજન્મકર્મીભ્યાં વર્ણાશ્રમજાતિભિઃ ।

સજ્જતેસ્મિન્નહંમાવો દેહેવૈ સહરેઃ પ્રિયઃ ॥

આવા વૈષ્ણવોમાં જ્ઞાતિબુદ્ધિ કરવી તે ૬૪ અપરાધોમાંનો એક અપરાધ છે.

ૐ નાસ્તિતેષુજાતિવિદ્યારૂપકુલધનક્રિયાદિભેદઃ (નાંમંસૂં૭૨)

અર્થઃ—એવા (ભક્તો)માં જ્ઞાતિ, વિદ્યા, રૂપ, કુલ, ધન અને ક્રિયા આદિનો ભેદ નથી.

ૐ યતસ્તદીયાઃ । (૭૩)

અર્થઃ—કેમકે એ (ભક્તો) એના છે.

એજ પ્રમાણે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ પણ શિક્ષાપત્રમાં કહ્યું છે.

આતો થઈ શાસ્ત્રીય વાત. હવે આપણે સાંપ્રદાયિક વાત કરીએ. આ વાર્તાના શબ્દો જોવાથી આપણે એ સ્પષ્ટ સમજી શકીએ છીએ



કે આચાર્યચરણે મર્યાદા રૂપથી (આચાર્ય રૂપથી) આ સામગ્રી અંગી-  
કાર કરી નથીજ. પરંતુ લીલાના નિજસ્વરૂપ શ્રીસ્વામિની રૂપથીજ.  
જીએ. આ શબ્દો:-

બોરે હાં રજો ક્ષત્રાની હતી ॥ તાકિ અનસરવડી આપુ નિત્ય નેમ  
સોં લેતે સો લીલા સંબંધ કો ભાવ વિચારિ કે x x x લીલા  
રસ મેં મગન વહે સામગ્રી અંગીકાર કરે x x + તાકો અર્થ યહ  
જો લીલા કે ભાવસોં અપને નિજ સ્વરૂપસોં આરોગો (શ્રી હરિં)  
એટલે એ સ્પષ્ટ છે કે શ્રીઆચાર્યચરણ શ્રીસ્વામિની રૂપથી સામગ્રી  
આરોગતા માટે અહિં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો પ્રશ્નજ રહેતો નથી.

શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ શ્રી ગુસાંધજી “વસ્તુતઃકૃષ્ણ એવ”  
એમ કહે છે. એટલે નિજ વિવિધ પ્રકારના સ્વરૂપોનો અનુભવ શ્રી  
આચાર્યચરણ ભક્તોને પોતપોતાની ભાવના અનુસાર કરાવે તેમાં જરાય  
આશ્ચર્ય હોયજ નહિ. અને તેથીજ કૃષ્ણદાસજીએ (અષ્ટસખા) ગાયું  
છે કે કોઠ કહે વિપ્ર, કોઠ વિવિધ પંડિત કહે, કોઠ કહે અંશ, કોઠ  
આત્મારામી । સ્વકીયજન ષક, મન નિશ્ચે નિરધાર કીયો વસ્તુતઃ  
કૃષ્ણ જે બંધે દામી એટલે નિજજનો ને તો શ્રીઆચાર્યચરણે  
પોતાના દામોદર સ્વરૂપનોજ અનુભવ કરાવ્યો છે.

આચાર્યવાન્ પુરુષોવેદ । આચાર્યમામ્ વિજાનીયાત્ । આવાં અનેક  
શાસ્ત્રીય વાક્યોથી પણ શ્રીઆચાર્યચરણનું ઈશ્વરત્વ સિદ્ધ છે. તેથી આચાર્ય-

કાટાના સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાન અને સંપ્રદાયના મર્મજ્ઞ શ્રીયુત ગોકુ-  
લદાસજી મુખીયાજી (શ્રીમથુરેશજીના) આ પ્રસંગ માટે આ પ્રમાણે  
લખે છે :-

જીન પુસ્તકમેં અનસરવડી અરોગને કા લિખા હૈં ઉનહો પુસ્તક મેં  
યહ બાત સ્પષ્ટ કી ગઈ હૈં કિ શ્રીઆચાર્યચરણ સ્વામિની રૂપ સે સામગ્રી  
અરોગતે । હસ લીએ હસ વાર્તા સે વર્ણાશ્રમ ધર્મ મેં કીસી મી પ્રકાર કી  
હાની નહિં હોતી હૈં ।



માં પ્રમેયબલ રહેલું છે, અને તે પ્રમેયબલથી યદિ લોકમાં કોઈપણ આચાર્ય કવચિત્ કોઈ લોકવેદ વિરુદ્ધ સાહસ કરે તો તે તેમના ઇશ્વર-ત્વના સ્પષ્ટીકરણ રૂપ છે. તેથી પણ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રમેયબલને દેખાડનારી છે—અને આવાં ચરિત્રો શંકરાચાર્ય આદિ અન્ય આચાર્યોમાં પણ સ્પષ્ટ થએલાં છે.

શ્રીગોપીજનોની માફક રંગેને ભક્તિ પ્રાપ્ત થયેલી હોવાથી તે લૌકિક સ્ત્રી નહિં હતી કિંતુ શ્રુતીઓના પણ ભાવરૂપ હતી-આથી આ વાર્તામાં લૌકિક દૃષ્ટિને સ્થાન નથી જેને સ્વતંત્ર ભક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે તે આત્મારૂપ થાય છે તે ન તો સ્ત્રી રહે છે ન પુરૂષ. તેમાંથી સ્ત્રી અને પું બન્ને ભાવ નષ્ટ થઈ જાય છે—

પૂર્વપક્ષી:—આપનો ઉત્તર સપ્રમાણ અને યથાર્થ છે એટલે હવે અમને એ શંકા રહેતી નથી કે શ્રીઆચાર્યચરણે આમાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનું ઉલ્લંઘન કર્યું છે. અથવા તો આ વાર્તા કલ્પિત છે. કિંતુ હવે અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે આ વાર્તા શુદ્ધ ભક્તિની પરમોત્કૃષ્ટ દશાની સ્થિતિનું સુનિપૂણ પ્રતિપાદન કર્તા હોઈ અવશ્ય મનનીય છે.

પરંતુ આ વાર્તાને ન સમજી અન્ય સામાન્ય લોકો આ સિદ્ધાંતનો દુરુપયોગ કરે (એટલે વર્ણાશ્રમ ધર્મનો ત્યાગ કરે ) તો તેની જવાબદારી આ વાર્તા પ્રગટ કરનારને માથે છે કે નહિં ?

સિદ્ધાંતી:—ત્યાં પણ આપની ભૂલ થાય છે દૃષ્ટાંત તરીકે શ્રીમદ્ભાગવતમાં વ્રતચર્યા રાસાદિ પ્રસંગોનું શ્રી શુક વર્ણન કર્યું છે. અને તેના રહસ્યને અજ્ઞાની પુરૂષ ન સમજી વિરુદ્ધાચરણ કરે અથવા ટીકા કરે તો શું તેની જવાબદારી શ્રીશુક ઉપર રહે છે કે ?

શ્રીશુક તો એવી પરમ પુનિત શ્રીકૃષ્ણની નિર્દોષ લીલાઓનું વર્ણન કર્યું છે કે જેના શ્રવણથી જ મનુષ્ય કૃતકૃત્ય થાય છે. અભાગ્ય વશ કોઈ ઉંધે રસ્તે જાય તો તેની જવાબદારી તેની અજ્ઞાનતાની જ છે શ્રીશુકની નહિ. તેજ પ્રમાણે અહીં સમજવું.



॥ श्रीहरिः ॥

## निवेदनम्

अस्ति महनीयमहिम्नो मेदपाटमहीमण्डलस्य मण्डनायितायां पाव-  
नप्रतोल्यां पुरि कांकरोल्यां मणीवासमसुषमासन्निवेशा कांकरोलीश्वराध्यक्ष-  
त्वसुस्था विद्याविभागाभिधैका संस्था । यस्यां सुविशालकलेवरस्य सरस्वती  
भण्डारसदभिधस्य विविधविषयकप्राचीनतमलिखितग्रन्थसंग्रहस्य विराजते-  
तमां महती सत्ता ।

सौभाग्येन तद्व्यवस्थापनकार्यनियोजितः शुद्धाद्वैतसंप्रदायसंस्कृत  
ग्रन्थेषु व्यलोक्यं छन्दोमय्यां सुरसरस्वत्यामवतारितं सपदिपुष्टिभक्तिमार्ग-  
रहस्यावबोधनचतुरं चतुरशीतिवैष्णववार्तामालाख्यं सद्ग्रन्थम् । शुद्धा-  
द्वैततत्त्वजिज्ञासुभिरपि गीर्वाणवाणीप्रणयिभिर्मनीषिभिरद्यावध्यपि अनधिगमि-  
तसमुचितसम्मानं सम्प्रति च संस्कृतगिरा परिवर्तितत्वेन तेषामेव सत्क्रि-  
यापात्रत्वयोग्यममुमवलोक्य स्वान्तं नितान्तममोदत, समभवच्च समुद्रतोत्क-  
लिकं साहित्यक्षेत्रे प्रकाशमुपगतस्य सुन्दरवेषेण विचरतस्तस्य प्रेक्षणाय ।

भगवतः श्रीनिकेतनस्याकम्पयानुकम्पया समायात एवासौ सुसम-  
योऽमुं प्रकाशमानेतुम् ; येन विद्याविभागसंचालकाः पण्डितप्रवरकण्ठमणि  
शास्त्रिणोऽमुं प्रकाशयितुमैच्छन्, साम्प्रदायिकसाहित्यसेवनधर्मा परिखोपाह-  
द्वारकादाससद्वैष्णवस्तत्प्रकाशनव्ययमुपाज्य दातुं स्वोत्साहं प्रादर्शयत्, वि-  
द्याविभागाध्यक्षमहानुभावाः सदुदारविचारविद्योतमानमानसाः श्रीगो. १०८  
श्रीव्रजभूषणलालजीमहाराजचरणाश्च तममुं सदव्यवसायमन्वमन्यन्त । तदैव  
च यद्यपि सुरभारतीविभारतेभ्यः कोविदेभ्यस्तु संस्कृतानुवादमयस्य तद्-



ग्रन्थस्य स्वातन्त्र्येण साकल्येन च प्रकाशनमेवाभ्यरोचेत; किन्तु तथा प्रकाशितस्तु स केवलं विद्वत्समाजस्यैव सम्मानपात्रमभिनन्दनीयश्च स्यात्, न तु संस्कृतभाषासम्बन्धिस्वल्पज्ञानं धृतवतो जनसाधारणस्यापि, तेन वाञ्छितस्य संस्कृतवार्ताप्रचारस्याभावः कदाचित्सम्मुखमापतेत्; अतः “ग्रन्थोऽसौ मूलेन ( भाषावार्तारूपेण ), तदुपरि श्रीहरिरायमहानुभावचरणप्रकाशितेन भावप्रकाशेन, तत्सम्बन्धिटिप्पणान्तरेण च सह प्रकाशितः सर्वोपयोगितामावहन् भूयांसं प्रचारमधिगमिष्यतीति दृष्ट्या मूलादिभिः सहैव यथासुविधं खण्डश एव प्रकाशमानेतुं निरचीयत । अस्तु !

तस्यैव ग्रन्थरत्नस्य प्राथमिकं वार्ताष्टकं प्रारम्भिकभागरूपेण प्रकाशमुपनतस्तत्रभवतां भवतां करयुगलीमलंकरोति । एतदवलोकनेन विदितं स्याद् यत्—साकल्येन प्रकाशमुपनतेनानेन भक्तिमार्गीयसंस्कृतसाहित्यं विकलतां विजहद् भृशं भ्राजिष्यते । यतो हि भक्तिमार्गसाहित्ये भाष्यनिबन्धादिग्रन्थानां बाहुल्ये सत्यपि चरित्रग्रन्थानां तु नितान्तमभाव एव । भाष्यनिबन्धेषु संप्रदायस्य सिद्धान्तानां रहस्यानां च विद्यमानेऽपि विशदस्वरूपे तेभ्योऽमुमनाकलयतां संसारव्यवहारमाचरतामपि भक्तिमार्गीयत्वाभिमानिनामनधिगतशास्त्रशाणोत्तेजितमुशेमुपीकाणां मन्दाधिकारिणां हृदयेषु सरलया गिरा पुष्टिभक्तिमार्गरहस्यानि प्रवेशयतः संस्कृत भाषाभाषिणां मनीषिणामपि शास्त्रकान्तारसततपरिभ्रमगपरिश्रान्तायां मतौ च ऋते क्लेशादेव शुद्धाद्वैतसिद्धान्तानवतारयतोऽस्य ग्रन्थस्य साम्प्रदायिकसाहित्ये महद् गौरवम्, प्रपूर्यते चानेन संस्कृतसाम्प्रदायिकसाहित्यक्षेत्रे रिक्तमतिमहनीयं चरित्रग्रन्थस्थानम् ।

ग्रन्थोऽयं हिन्दीभाषायां राजमानानां चतुरशीतिवैष्णववार्तागां



श्रीनाथदेवकृतः संस्कृतानुवादः । अनुवादत्वादेव यथास्थानं निवेशयितुं शक्यत्वेऽप्यलंकाराणां नास्त्यस्मिन् सन्निवेशः । अनुवादस्यानुवादत्वं तु तत एव सिद्धयति, यदा कस्यांचिदेकस्यां भाषायां सालंकारो निरलंकारो वा समुपलभ्यमानः कोऽप्यर्थो भाषान्तरशब्दैस्तथैवोपस्थाप्येत । शब्दालंकारा यद्यनुवादग्रन्थे प्रयासमन्तरा स्वयमेव निविष्टाः स्युस्तर्हि न ते कदाचिदपि तदनुवादत्वविघातकाः । यतो हि कीदृशा अपि स्युर्नाम शब्दाः, अर्थो-पस्थापनं तु कैश्चिदपि करणीयमेव भवेत् ; यदि कुत्रापि अश्रव्यादिशब्दानां स्थाने सुभाष्याणि श्रवणमधुराणि मनोहराणि च पदानि प्रयुज्येरन्, तदा को नाम दोषो भवेच्छब्दालंकाराणाम् । किन्तु त एव यदि श्रममङ्गीकृत्यापि निर्बन्धेन निबद्धा भवेयुस्तर्हि पाठकानां मनः क्षणं प्रतिपाद्यविषयादाक्षिप्य स्वशोभानिरीक्षणाभिमुखीकरणेन, सातत्यप्रयोजितत्वादरुचिजनकत्वेन, कविकौतुकमाकलयतां तत्त्वान्वेषिणां वैराग्यवतां कदाचिदश्रद्धेयतोद्भावकत्वेन तेषां दोष एव । अतो नास्ति निर्बन्धप्रयोजितानां शब्दालङ्काराणां कुत्राप्यावश्यकता, विशेषतोऽनुवादग्रन्थे, तत्रापि च भक्तिमार्गीये चरित्रग्रन्थे । अर्थालङ्कारास्तु सर्वथैवानुवादग्रन्थे अप्रयोज्या एव भवन्ति । यतो हि अर्थस्यालङ्कारणेऽर्थान्तरस्यैवावश्यकता निश्चिता, तद्यद्यनुवादग्रन्थेऽनुपलभ्यमानं पाठित्यप्रचिकाशयिषुणाऽनुवादग्रन्थे निवेश्येत, तर्हि सोऽनुवाद एव नास्ति, किन्तु वस्त्वन्तरम् ; अनुवादस्तु स एव नाम यत्—केषुचिच्छब्देषु यथोपलब्धस्य वस्तुनोऽन्यूनानधिकीकृतस्य तथैव शब्दान्तैरुपस्थापनम् । कस्यचिद्वस्तुनो रूपकोपमादिभिरलंकारैः परिवर्द्धनं स्फुटमेव तस्य स्वरूपान्तरकरणम् । अतोऽर्थालंकाराणामनुवादग्रन्थेषु सर्वथा नास्त्येवावश्यकता । ततो यदुच्यते कैश्चिन्महाशयैः “अस्य ग्रन्थस्यालंकारिकी



सुश्लाघ्या नास्ति भाषेति” तदनवधेयम् । अनुवादस्य सकलत्वं सफलत्वं च भाषान्तरे प्रसिद्धस्य वस्तुनो याथातथ्येन स्वेष्टभाषयोपस्थापने सत्येव-  
भवति, तदस्मिन् ग्रन्थे पर्याप्ततयावलोक्यते । अहं तु विश्वसिमि यत्—सर-  
लप्यर्थगम्भीरया, संक्षिप्तयापि विशदस्वरूपया समासव्यासादिप्रौढि-  
गुणवत्या गिरा मूलार्थं यथातथमनुवदन् भट्टः श्रीमान् श्रीनाथदेवः  
स्वकीयं भूयस्तरां पाण्डित्यं प्राचीकटत्, महतामप्यन्येषां कृते कार्यमेतन्न  
सुकरं स्यादिति ।

विद्याविभागसंचालकैः पं. कण्ठमणिशालिभिः स्नेहवशंवद-  
त्वेन विशनगरवास्तव्यैः पं. पुरुषोत्तमशालिभिश्च कार्यान्तरव्यासक्तत्वेन  
यद् आदर्शमुस्तकान्तररहितस्य प्रतिपदं प्रायोऽशुद्रस्यास्य ग्रन्थस्य  
कठिनतमं संशोधनकार्यं स्वल्कके मपि न्यधायि, तच्चिरायुष्मतामाचार्य  
कुमारश्रीयदुनाथलालजीशर्मगामव्यापनकार्यं कुर्वन्नपि यथामति कथं-  
चित् परिपूर्य कम्पमानेन हृदा तेषामेव पुरः स्थापये; प्रार्थये च चक्षुर्दोषेण  
मतिभ्रमेण वा संभाव्यमाना यदि काश्चित् संशोधनव्रटयो जागरिताः स्युः  
साम्प्रतमपि, तर्हि प्रथमप्रयासे समुदात्तचित्तैः क्षमावित्तैर्भवद्भिः क्षन्तव्या  
इति ।

अनावश्यकविस्तरमचिकीर्षुर्ग्रन्थस्यास्य समुचितसम्मानाय सुधी-  
समुदायं सम्प्रार्थ्य, अवशिष्टांशप्रकाशने विघ्नविहर्ति कार्यकर्तृणां शङ्क्यु-  
त्साहाभिवृद्धिं च श्रीपतिपदारविन्दयोरभ्यर्थयमानः समुपैमि विरामम् ।

श्री शु. सं. त. पोठेश्वरैः सह  
हालोलस्थितौ  
द्वि. श्रा. कृ. ५ सं. १९९६

विनीतनिवेदकः—  
पु. लक्ष्मीनारायणशास्त्री  
साहित्यभूषणः



श्री हरिः  
अथ श्रीनाथदेव कृता

# संस्कृत वार्ता मणिमाला

## वार्ता १

जयत्यनन्तलीलः श्रीगोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥  
व्रजनागरिकः कृष्णः साङ्गोपाङ्गः सुपार्षदः ॥१॥  
अथासीदक्षिणे देशे खंभंकाकरसंज्ञके ॥  
यज्ञनारायणो भट्टस्तैलङ्गो याज्ञिको द्विजः ॥२॥  
सभारद्वाजगोत्रोग्न्यस्तैत्तिरीययजुःकृती ॥  
वेदादिसर्वशास्त्रज्ञो विष्णुस्वामिमतानुगः ॥३॥  
तत्सुतोऽभूत्सोमयाजी गंगाधर इति श्रुतः ॥  
तस्य सूनुर्गणपतिस्तस्य श्रीवल्लभः सुतः ॥४॥  
तस्य श्रीलक्ष्मणो यज्वेल्लम्भगारुपतिर्महान् ॥  
तस्य पुत्रा रामकृष्णश्रीश्रीवल्लभकेशवाः ॥५॥  
तेषां मध्येऽभवद्यः श्रीवल्लभःसोग्निरेव हि ॥  
आचार्यो भगवान्साक्षादाज्ञया श्रीहरेरिह ॥६॥  
महालक्ष्म्यां तस्य गोपीनाथो ज्येष्ठः सुतो बलः ॥  
यस्यैक आसीत्तनयः पुरुषोत्तम इत्यलम् ॥७॥  
कृष्णोऽभूच्छ्रीवल्लभस्य कनिष्ठो विट्ठलः सुतः ॥  
आचार्यरत्नं स महान्यतो गिरिधरादयः ॥८॥  
गिरिधरश्च गोविन्दो बालकृष्णश्च वल्लभः ॥  
रघुनाथो यदुपतिर्धनश्याम इति क्रमात् ॥९॥



रुक्मिण्यां षट् सुता जाताः पद्मावत्यां तु सप्तमः ॥

यत्संततिरिहाद्यापि राजते श्रेयसे नृणाम् ॥१०॥

तान्नौमि, श्रीमदाचार्यान् श्रीवल्लभविभावसून् ॥

विधूँश्च श्रीविट्ठलेशान्यान्प्रपन्ना हरिं गताः ॥११॥

चतुरशीतिकलक्षवियोनितः समनु कृष्णरतान्हरिरात्मनि ॥

समनुगृह्य यथा समशेषतां तदनु वृत्तमथेह तथोच्यते ॥१२॥

श्रीमदाचार्यगोस्वामिसेवकानां हरिं जुषाम् ॥

वर्णानामिह लिख्यन्ते वार्ताः स्त्रीणां तथा नृणाम् ॥१३॥

गोकुले गोविन्दघट्टे वेद्यामाचार्यसूरयः ॥

आसीना विश्रमंतस्ते कचिद्विष्यं स्म चिन्तयन् ॥१४॥

महाप्रभोरिति ह्याज्ञा वचनं यदिह त्वया ॥

जीवानां ब्रह्मसम्बन्धः कार्यः स च कथं भवेत् ॥१५॥

जीवाः स्वभावतो दुष्टाः कलिकाले विशेषतः ॥

इति चिन्तातुरेष्वाराच्छ्रीगोपीजनवल्लभः ॥१६॥

आविर्भूयार्यान्पृच्छत्कुतश्चिन्तातुराः स्थ भोः ॥

श्रुत्वेत्यार्याः प्रोचुरहो जीवा दुष्टा इति स्वयम् ॥१७॥

भवता चेदसम्बन्धो ब्रह्मणस्ते कथं घटेत् ॥

इत्याकर्ण्यार्थं विभुनाचार्यान्प्रत्युक्तमादरात् ॥१८॥

जीवानां ब्रह्मसम्बन्धबोधनं कार्यमार्यकाः ॥

तानहं स्वीकरिष्यामि भवन्नामोपदेशतः ॥१९॥

निवृत्तसर्वात्मदोषानिति श्रावणं शुक्लके ॥

एकादश्यामर्धरात्रे पवित्राद्वादशीयुजि ॥२०॥



साक्षाद्भगवता प्रोक्तं पवित्रं श्रीप्रभोर्गले ॥  
 तस्मिन्कालेऽर्पितं त्वार्यैः सिता खण्डीकृतापि च ॥२१॥  
 तदक्षरश आचार्यैः स्वानुभूतं निरूपितम् ॥  
 स्वसिद्धान्तरहस्याख्ये ग्रन्थे समवधार्यताम् ॥२२॥  
 अथ कस्मिंश्चन पुरे श्रीमदाचार्यसेवकः ॥  
 श्रीदामोदरदासाख्यो हरसानीति विश्रुतः ॥२३॥  
 क्षत्री समर्पितस्वात्मा श्रीवल्लभपदानुगः ॥  
 दमलेति च संबोध्य वल्लभाचार्यदीक्षिताः ॥२४॥  
 प्रीत्या यस्याग्र इत्याहुरेष पुष्टिपथस्तव ।  
 हितार्थं वै प्रकटितस्तथा भागवतीं कथाम् ॥२५॥  
 रसभावभृतां नित्यं कथयन्ति स्म ते रहः ॥  
 किञ्च वार्ता भगवतो न भवेद्वा यदा क्वचित् ॥२६॥  
 तदेति कथयन्तिस्म दमलाऽजनि भोश्चिरम् ॥  
 प्रभोर्वार्ता नहि कृता क्रियतामधुनेति यत् ॥२७॥  
 स तादृगन्तरङ्गोभूद्वेन गोपीपतेः श्रुतम् ॥  
 श्रीवल्लभाचार्यवर्यब्रह्मसम्बन्धनोवनम् ॥२८॥  
 तदनु श्रीमदाचार्यैर्दामोदर किमु श्रुतम् ॥  
 त्वया भगवता प्रोक्तमिति पृष्ठो जगाद सः ॥२९॥  
 श्रुतं भगवता प्रोक्तं न तु बुद्धं मयेति किम् ॥  
 तदा श्रीवल्लभचार्यैः सूचितं भोः प्रभोर्मयि ॥३०॥  
 ब्रह्मसम्बन्धवचनं प्रोक्तं जीवहिताय हि ॥  
 तद्द्वाराङ्गीकृतिर्विष्णोः सर्वदोषनिवृत्तितः ॥३१॥



तदाज्ञाय स तुष्टोऽभूदात्मानं सततं मुदा ॥

कृतार्थं भुवि मन्वानः कृपयाचार्यपादयोः ॥३२॥

जात्वन्तिके भगवतः स्वाचार्यैः प्रार्थितं हृदा ॥

मा दामोदरदासस्य संस्था भूत्पुरतो मम ॥३३॥

भगवञ् श्रौतमार्गं च माप्नोत्विति विषादतः ॥

तदोमिति प्रदायैव ह्यार्यैभ्योऽन्तर्हितो हरिः ॥३४॥

एकदा श्रीविट्टलेशा गोस्वामिचरणाः स्थितम् ॥

श्रीदामोदरदासाख्यं पृष्ठवन्तः स्वसेवकम् ॥३५॥

भो दामोदरदास त्वं श्रीमदाचार्यदीक्षितान् ॥

किं स्वरूपान्विजानासि वदेति स ततोऽवदत् ॥३६॥

यो ह्यत्र जगदीशोऽस्ति सर्वैर्गीतो महान् प्रभुः ॥

ततोपि ह्यधिकान् जाने स्वाचार्यान् वल्लभाभिधान् ॥३७॥

इत्याकर्ण्यैव गोस्वामिश्रीविट्टलमहाशयाः ॥

उक्तवन्तः कथमिदमीश्वरादपितेऽधिकाः ॥३८॥

ततो दामोदरः प्राह भो श्रीमद्रविट्टलेश्वराः ॥

देयं गुर्वथवा दातेत्येतदेव विचिन्त्यताम् ॥३९॥

पार्श्वेधिकं धनं यस्य यदि राति न कर्हिचित् ॥

तर्हिस्वित्तस्य किं कोथो यो ददाति स वै गुरुः ॥४०॥

श्रीशाख्यं यद्भनं सर्वस्वमाचार्या ददुर्यदि ॥

अस्मादृशेषु जीवेषु ततस्तेऽभ्यधिका मताः ॥४१॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य श्रीविट्टलमहाशयाः ॥

संतुष्टहृदयाः स्वीयमनुगृह्णन्ति ते स्म तम् ॥४२॥



किं चैकदा श्रीगोस्वामिश्रीमदाचार्यसूनवः ॥  
 स्वैरं स्थिता रमन्ते स्म पार्श्वे कुम्भनदासकः ॥४३॥  
 गोविन्दस्वामिनामान्ये तथा द्वित्राश्च सेवकाः ॥  
 उपविष्टा रहस्यग्रे हसन्तो हासयन्ति च ॥४४॥  
 तदैव दामोदराख्यमालोक्यागतमन्तिके ॥  
 उत्थिताः श्रीविदुलेशाः श्रीगोस्वामिमहौजसः ॥४५॥  
 तत्रोपवेशयामासुः स्वान्तिके तं महादरात् ॥  
 तदा दामोदरेणोक्तं श्रीगोस्वामिपुरः स्वतः ॥४६॥  
 महाराज न मार्गोयं सुनिश्चिन्ततया मतः ॥  
 किन्तु कृच्छ्रेणोपगते हरौ चिन्तात्मभावतः ॥४७॥  
 तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं सत्यमुक्तं त्वयानघ ॥  
 परन्तु श्रीमदाचार्यकृपा यत्र यदा तदा ॥४८॥  
 हरौ जनस्यार्तिचिन्ता भवित्रीत्यवसीयते ॥  
 विनैतच्छ्रीमदाचार्यानुग्रहान्नेति मे मतिः ॥४९॥  
 तदा दामोदरेणोक्तं दण्डवत्प्रणिपाततः ॥  
 महाराज बताऽस्माकं धर्मो विज्ञापनं सकृत् ॥५०॥  
 अग्रे तु श्रीभवन्तो हि गुरवः शुभकारिणः ॥  
 परमेतादृशो मार्ग इत्याचार्यमुखाद्भुतम् ॥५१॥  
 इत्याश्रुत्य प्रसन्नाः श्रीगोस्वामिचरणाः सदा ॥  
 ऊचुर्दामोदरेह स्वां वार्तां प्रायस्तवास्यतः ॥५२॥  
 प्राहुर्मै श्रीमदाचार्याः कृपयेति विनिश्चितम् ॥  
 भवानेवं न चेद्ब्रूयादाप्तः कः कथयेदिति ॥५३॥



किंच दामोदर त्वां हि यदा पश्यामि मे मनः ॥

तदा संतुष्यति भृशं श्रीमदाचार्यसेवक ॥५४॥

नान्यस्त्वत्तो हिततम इति मन्ये न संशयः ॥

इत्येवं वल्लभाचार्यात्मजाः श्रीविठ्ठलेश्वराः ॥५५॥

यच्छिक्षां मानयामासुः सोऽभूद् दामोदरो महान् ॥

अथैकदा भगवतः समक्षमिति याचितम् ॥५६॥

त्रिवारं श्रीमदाचार्यैर्दामोदरतात्मभिः ॥

मदग्रे भगवन्दामोदरदासस्य मा स्म भूत् ॥५७॥

देहत्यागोन्यथा कोऽत्र मार्गरीतिं वदिष्यति ॥

सेवोत्सवप्रकारं त्वं श्रीगोपीनाथसंज्ञके ॥५८॥

बाले ममात्मजे गूढं विठ्ठले चेति भावतः ॥

काश्यां पूर्वप्रतिज्ञार्थं मयि सन्यस्य गच्छति ॥५९॥

तदेतदादिकार्यार्थमयमुद्रववन् मम ॥

चिरं श्रीभगवन्मार्गं ज्ञात्वा भुवि स तिष्ठतु ॥६०॥

एतादृशे निजे तस्मिन्सेवके सेवनाध्वनः ॥

धुरं न्यस्य गता काश्यां सन्यस्याचार्यसूरयः ॥६१॥

अथो कियद्दिनान्ते हि श्रीगोस्वामिमहात्मभिः ॥

अक्कापृष्ठा महालक्ष्मीः कचिन्मातार्भभावतः ॥६२॥

अम्ब श्रीतातचरणैराचार्यैर्दर्शितेऽध्वनि ॥

कथं सेवोत्सवविधिः को भाव इति कथ्यताम् ॥६३॥

न जानीमो बालधियः शास्त्रतः को वदिष्यति ॥

इत्युक्ता साऽब्रवीद्वत्स स्वे दामोदरसंज्ञके ॥६४॥



निवेदितः स्वमार्गीयसिद्धान्तः श्रीमदार्यकैः ॥

स वेत्ति सर्वभावेन स्वमार्गोत्सवपद्धतिम् ॥ ॥६५॥

जिज्ञासया स पृष्ठो हि सम्यगेव वदिष्यति ॥

इत्यावेदितहार्दास्ते श्रोगोस्वामिमहाशयाः ॥६६॥

गता दामोदरगृहं तत्त्वजिज्ञासया तदा ॥

दामोदरः पितृश्राद्धं कुर्वाणो दृष्टवान् प्रभून् ॥६७॥

श्रीमदाचार्यतनुजानुत्थोय प्रणनाम ह ॥

निवेशयामास च तानासने संमुखः स्थितः ॥६८॥

तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं श्रीदामोदरदास भोः॥

कारयिष्यामि त्वां श्राद्धमित्यथो कारयन्मुदा ॥६९॥

श्राद्धकर्मेत्तरं प्रोक्तं श्रीगोस्वामिभिरुत्स्मितम् ॥

भो दामोदरदासाय देहि मे श्राद्धदक्षिणाम् ॥७०॥

तदा दामोदरेणोक्तं ज्ञातहार्देन केवलम् ॥

वक्ष्यामि दक्षिणास्थाने मार्गवार्त्ता पुरोऽथ वः ॥७१॥

तदा गोस्वामिभिस्तूष्णीमनुमोद्य स्मितं कृतम् ॥

ततो दामोदरेण श्रीगोस्वामिषु महात्मसु ॥७२॥

मार्गप्रणालिका सर्वा प्रतिपाद्य निवेदिता ॥

तदाप्रभृति गोस्वामिचरणैस्ताततत्त्वदः ॥७३॥

श्रीदामोदरदासाख्यः स्वप्रणामैककर्मणि ॥

हठात्स्वचरणाब्जाम्बुपाने च प्रतिबोधितः ॥७४॥

तदनु श्रीमदाचार्यैः स्वात्मा सन्दर्शितो बहिः ॥

अपूर्वं च वचः प्रोक्तं दामोदरपुरः क्वचित् ॥७५॥



मत्सूनुविटुलाधीश चरणोदकमाज्ञया ॥

ग्राह्यमार्येण भवता लोकान् वै संजिघृक्षता ॥७६॥

इत्याधाय शिरस्याज्ञां प्रातर्गोस्वामिनां गतः ॥

निकटेऽर्थितवान् दामोदरस्तच्चरणोदकम् ॥७७॥

प्रतिषिद्धस्तदा तैश्च प्रोक्तवाननुशासनम् ॥

मेऽभूत्पूर्वेद्युराचार्यशासनं नान्यथा तु यत् ॥७८॥

तदाज्ञाय ददुः श्रीमदाचार्यप्रभुसूनवः ॥

तदाप्रभृति गोस्वामिचरणाश्चरणोदकम् ॥७९॥

यस्मै दामोदराख्याय तृतीये तृतीयेऽहनि ॥

स्वात्मानं दर्शयन्ति स्म श्रीमदाचार्यदीक्षिताः ॥८०॥

स्वमार्गवात्तस्मािहुश्च कृपापात्राय भाविताः ॥

कदाचिच्चेद् दर्शयेयुर्न स्वमाचार्यसूरयः ॥८१॥

तदास्यात्तदिने शूलव्यथा तस्योदरेऽधिका ॥

यदात्मानं दर्शयेयुः साऽथ शांता तदा भवेत् ॥८२॥

इत्याचार्यावलोकान्तिमुदितात्मा स वैष्णवः ॥

श्रीदामोदरदासाख्यः कियत्संवत्सरावधि ॥८३॥

अवदद्भगवद्वार्ता गूढां गोस्वामिनः प्रति ॥

अहर्निशं भागवतप्रक्रियां च स्वमार्गतः ॥८४॥

इत्थं यस्याधिकां बोधशक्तिं वीक्ष्य विलक्षणाम् ॥

गोस्वामिपादाः प्रणतिं प्रत्याचेरुर्हि तदिनात् ॥८५॥

वैष्णवानामथान्येषामाहुः स्म पुरतः क्वचित् ॥

अहो दामोदरस्यान्तराचार्याः सम्प्रतिष्ठिताः ॥८६॥



त एवोपदिशन्तीति ततो दामोदरस्य ताः ॥

वार्ता अगाधा भूयस्य इति प्रोक्ताः समासतः ॥८७॥

यावच्छ्रीवल्लभार्याणां मार्गस्येह स्थितिः कलौ ॥

तावदामोदरस्यास्य भवित्री जन्मभिर्मुहुः ॥८८॥

इति वैष्णव वार्ताया मालायां प्रथमो मणिः

## वार्ता २

अथान्यो वैष्णवः श्रीमदाचार्यपदसेवकः ॥

मेघनश्रीकृष्णदासस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥८९॥

यदा श्रीवल्लभाचार्या, पृथ्वीप्रक्रमणे गताः ॥

तदा सार्थं कृष्णदासोऽनुयाति स्म पदानुगः ॥९०॥

उदीच्यां बदरीनारायणस्थानोत्तरं गिरेः ॥

कर्णिकाख्यस्य महतः शिखरात्पत्तितां शिलाम् ॥९१॥

स्तम्भयामास हस्तेनेत्यालोक्याचार्यवर्यकाः ॥

तुष्टा वरं वृण्विति तं त्रिवाचा समुदैरयन् ॥९२॥

तदा तेन पुस्तकेषां याचितं हि वरत्रयम् ॥

आद्यो मुखरतादोषनिवृत्तिर्मेऽस्त्विति स्वतः ॥९३॥

आयातु हरिसिद्धान्तः स्वमार्गस्येति चाऽपरः ॥

तृतीयो मदगुरुगृहे पदधारणमित्युत ॥९४॥

तदाकर्ण्यार्यवर्या ददुस्तद्वद् वरद्वयम् ॥

गुरुगृहे पदन्यासं नाऽङ्गीचक्रुर्महाशयाः ॥९५॥

अथो बदर्याश्रमतोऽप्यग्रे प्रचलितैः पुनः ॥

अमर्त्यगम्ये प्रदेशे श्रीमदाचार्यवर्यकैः ॥९६॥



प्रतिषिद्धोनुगः कृष्णदासोऽत्र स्थेयमेव ते ॥

नाऽऽगन्तव्यमितश्चेति स्वयं त्वेकाकिभिर्गतम् ॥९७॥

दिनत्रयावधि स्थाने स्थितं तेन च तत्र हि ॥

तृतीय दिवसान्ते तु स्वाचार्यैः सुसमागतैः ॥९८॥

उक्तस्तदेतो न गतः परावृत्य कथं भवान् ॥

तदातेनोक्तमाचार्याः क्व यामि भवतामहम् ॥९९॥

मुक्त्वा वो पादयुगलं शरणं मम नेतरत् ॥

श्रुत्वेति श्रीमदाचार्या भूयस्तुष्टास्तमब्रुवन् ॥१००॥

वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति सेवकम् ॥

भूयोपि तत्तेन वृतं प्राक्तनं हि वरत्रयम् ॥१०१॥

पूर्ववत्तद्वयं दत्तमाचार्यैर्न तृतीयकः ॥

एकदा श्रीमदाचार्यान् गङ्गासागरसैकते ॥१०२॥

सुप्तान् यथासुखं रात्रौ कृष्णदासो दिलोक्य सः

पाद संवाहनं मन्दं कुर्वाणोऽवोचदादरात् ॥१०३॥

भो महाप्रभवः किञ्चिद् बुभुक्षाचेत्तदेर्यताम् ॥

इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैर्धानापृथुकतन्दुलाः ॥१०४॥

भर्जिता मुदुला लभ्याश्चेत्स्युस्तान्द्रम्यहन्त्विति ॥

श्रुतवान्स समाज्ञाय स्वाचार्यान् शयिताञ् शनैः ॥१०५॥

कृष्णदासः समुत्थाय गङ्गां तीर्त्वा पुरे गतः ॥

तत्र भ्राष्ट्रे भर्जयित्वा क्रीतान् पृथुकतन्दुलान् ॥१०६॥



आनिनाय पुनर्मन्दं पादसंवाहमाचरत् ॥

अथाचार्यान्सम्प्रबुद्धानुत्थितानवलोक्य सः ॥१०७॥

कृष्णदासोऽप्रतस्तेषामर्पयामास तान्मृदून् ॥

तदा तानवलोक्योक्तमाचार्यैः कुत आहताः ॥१०८॥

इति पृष्टः स्म स प्राह यथावद्वृत्तमात्मनः॥

भुक्त्वा भूयः प्रसन्नैस्तैरुक्तं भो वृणु मद्वरम् ॥१०९॥

ततस्तदेव तेनापि प्रार्थितं प्राग्वरत्रयम् ॥

ओमिति श्रीमदाचार्यैरभ्युपेत्य हृदीरितम् ॥११०॥

किमपि प्रार्थितुं शक्तो जीवोऽल्पोऽयं न मद्वरम् ॥

यदेतत्समये तेन प्रार्थितं देयमेव तत् ॥१११॥

यद्वा कदाचिद्भगवत्स्वरूपं प्रार्थितं भवेत् ॥

तदप्यस्मै दातुमर्हं वाग्बद्धेन मयेत्यथ ॥११२॥

प्रयातं श्रीमदाचार्यैरुत्थितैः शूकरस्थले ॥

तत्र श्रीकृष्णदासेन कृतं विज्ञापनं पुरः ॥११३॥

अत्रास्ते मे गुरुः कश्चिदानये तं पुरोऽद्य वः ॥

तद्विज्ञापनमाकर्ण्यप्रोक्तमाचार्यपण्डितैः ॥११४॥

तदन्तिके याहि परं दुःखं ते भवितेति वै ॥

तदा श्रीकृष्णदासस्तु मुदाविष्टस्ततोगतः ॥११५॥

प्रणम्याह गुरुं शीते तपन्तं वह्निनाऽऽसने ॥

भोः प्राप्ताः श्रीवल्लभार्यास्तत्पार्श्वे गम्यतां गुरो ॥११६॥

श्रुत्वोक्तं तेन सरुषा कृतः किमपरो गुरुः ॥

त्वं मे गुरुः परं युष्मत्प्रसादात्पुरुषोत्तमः ॥११७॥



लब्धो मयेश्वरः साक्षादिति सत्यं ब्रवीमि भोः ॥

तदोक्तं गुरुणा त्वेतत्कथं शक्येत वेदितुम् ॥११८॥

यदीश्वरः सत्यमिति साक्षात्स पुरुषोत्तमः ॥

तदैव कृष्णदासेन ज्वलतोऽग्नेर्गुरोः पुरः ॥११९॥

अङ्गारानञ्जलौ कृत्वा मुहूर्तान्तं समास्थितम् ॥

उक्तं च सत्यवचसाऽऽन्यथा भावोऽत्र चेदणुः ॥१२०॥

मे तदास्तां करौ दग्धाविति भीतो विलोक्य सः ॥

गुरुराह स्म करतो निःक्षिपेति पुनः पुनः ॥१२१॥

तथापि तेन ते नैव क्षिप्ता अङ्गारकाः करात् ॥

तदातेनैव गुरुणा हस्ताभ्यामात्मनो द्रुतम् ॥१२२॥

धृत्वा श्रीकृष्णदासस्याञ्जलिस्ते निपातिताः ॥

आः सत्यं तेऽभिविज्ञातं सन्ति ते पुरुषोत्तमाः ॥१२३॥

अतोऽहमपि तेषां वै शरणं यामि नान्यथा ॥

इत्यन्तर्गूढनिर्वेदः स तेषां शरणं गतः ॥१२४॥

कालान्तरे तत्कृपया सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥

अथ श्रीकृष्णदासस्तु गुरुक्षोभसुदुःखभाक् ॥१२५॥

आगत्य श्रीमदाचार्यसमीपे तद्यथाऽब्रवीत् ॥

सर्वं जातं भवत्प्रोक्तं नान्यथेति कृपाबलात् ॥१२६॥

श्रीमदाचार्यपादानां मार्गसिद्धान्त आहितः ॥

बहिर्मुखरतादोषः कृष्णस्य सुविनिर्गतः ॥१२७॥

पुनः कदाचिदाचार्या गोप्यवार्ता स्म कुर्वते ॥

रसभावभृतां विष्णोः कृष्णदासाय धीमते ॥१२८॥



स च हर्षेण महता वैष्णवेष्ववदत्क्वचित् ॥

तस्योक्तं वृत्तमाचार्यसमीपे वैष्णवैः क्वचित् ॥१२९॥

प्रकाशयत्यं राजश्रीमदाचार्यवर्यकाः ॥

भवदुक्तां गोप्यवार्तां वैष्णवेष्विति चासकृत् ॥१३०॥

तदैव श्रीमदाचार्यैः स पृष्ठः कृष्णदासकः ॥

किमहो कृष्णदास त्वं गोप्यवार्तां वदस्यलम् ॥१३१॥

मदीरितां वैष्णवानामग्र एते वदन्ति हि ॥

तदोक्तं कृष्णदासेन महाराजा महाशयैः ॥१३२॥

ते पृष्ठव्याः समाहूय भवद्विवैष्णवाः खलु ॥

कृष्णदासेन का गोप्यवार्ता प्रोक्ता भवत्स्विति ॥१३३॥

तदैव श्रीमदाचार्यैराहूता वैष्णवास्तु ते ॥

प्राप्ताः प्रणम्योपासीनाः पृष्टा गोप्यकथास्मृतौ ॥१३४॥

तदोक्तं तैर्महाचार्याः कृष्णदासमुखाच्छ्रुताः ॥

गोप्यवार्ताः परं नाप्ताः स्मृतिगोचरतामिति ॥१३५॥

तदा तूष्णीं स्थितं श्रीमदाचार्यैः सस्मिताननैः ॥

सर्वेषां मिषतां मध्ये कृष्णदास उवाच ह ॥१३६॥

भो महाप्रभवो गोप्या वैष्णवैर्यदि वा श्रुताः ॥

ता वार्तास्तर्हि किं जातं हृदि न स्थिरतामिताः ॥१३७॥

तत्स्थैर्यं दानसापेक्षं दानं दातृवशं यतः ॥

तदानं तु महाचार्या भवन्तः कुर्युरेव चेत् ॥१३८॥

तास्तद्धृदिस्था भवन्ति नान्यथेति मतिर्मम ॥

इत्युक्त्वा विररामाथ सर्वे निःसंशयास्तदा ॥१३९॥



यथागतं गताः सर्वे श्रीमदाचार्यसेवकाः ॥

एतादृशः कृष्णदासो बभूवान्वर्थनामभाक् ॥१४०॥

श्रीवल्लभाचार्यवर्यकृपापात्रं स वैष्णवः ॥

एकदा कृष्णदासेन पृष्ठमाचार्यकान्प्रति ॥१४१॥

आर्याः प्रभोः प्रियं किंस्विदप्रियं ब्रूत शास्त्रतः ॥

श्रुत्वेत्यार्याः प्राहुरहो प्रभुरुत्तमवस्तुभुक् ॥१४२॥

परन्तु गोरसस्यातिभोक्ता नो भक्तवत्सलः ॥

विद्वच्चप्रियं हरेर्धूमं भक्तिमार्गविरोधि यत् ॥१४३॥

इत्याकर्ण्य प्रमुदितः क्वचिदित्थं स पृष्ठवान् ॥

रघुनाथः कोशलाः स्वाः प्रजा आदाय जग्मिवान् ॥१४४॥

स्वधामाथ स्वरनयद्रामो दशरथं कुतः ॥

तत्र प्रत्यूचुराचार्या भो दयालुः स राघवः ॥१४५॥

तं तादृशं स्वरनयत्पितरं कैकयीवशम् ॥

यः स्ववाक्यमृतं कर्तुं विपिने राममत्यजत् ॥१४६॥

श्रुत्वेति पुनरापृच्छदार्या भक्तोपि सन्न यः ॥

प्रभोर्लीला यथारूपसम्बन्धं भावयत्यसौ ॥१४७॥

विधिवत्तत्कथमिति संशयो मे निवार्यताम् ॥

तत्र प्रोचुर्भूय आर्या रे करोति प्रभुः स्वतः ॥१४८॥

अनाचन्रतो यथावदेते भक्ता अपि स्वयम् ॥

स्युः कथं वा नु भविनो भक्तसङ्गतिवर्जिताः ॥१४९॥

सद्भक्तसङ्गिनः स्युश्चेत्प्रभोर्लीलाविदस्तदा ॥

स्वरूपयोग्यमात्मानं जानन्तो नाचरन्ति तत् ॥१५०॥



आचरन्ति च केऽप्यन्ये नान्तःकरणपूर्वकम् ॥

ततो विभोरूपलीलाभेदं नानुभवन्ति ते ॥१५१॥

सङ्गादुत्तमभक्तानां श्रीभागवतभावनात् ॥

पृष्ठा वा भावमारूढो भगवद्भावमाप्नुयात् ॥१५२॥

कृष्णो ब्रजस्थानां सङ्गे सदैव स्थितवान्यथा ॥

सेवायां स तथारुद्ध इति निश्चयवान् भवेत् ॥१५३॥

यत्रैतन्मार्गीयजना येषां हृदि हरिः सदा ॥

ते वैष्णवाः सानुभवास्तेषां सङ्गः फलावहः ॥१५४॥

यथेह गर्जनाद्याः स्युर्भावतः सेवया सिताः ॥

तेषां सर्वेऽत्राभिलाषाः सिद्धा आसन् भवन्ति च ॥१५५॥

लीलानां ब्रजभक्तानां भावमेवानुचिन्तयेत् ॥

सेवाप्रकारमेतस्य वैष्णवसङ्गतश्चरेत् ॥१५६॥

यः पृष्ठा सर्वभावेन स कृष्णानुभवी भवेत् ॥

इत्याश्रुत्य स गम्भीरं शास्त्रार्थं मुखतः सतः ॥१५७॥

आर्याणां सेवकः कृष्णदासो निःसंशयोऽभवत् ॥

एकदा श्रीमदाचार्यैर्गतः सह स वैष्णवः ॥१५८॥

बदर्यां श्रीमदाचार्याः फलाहारं समाचरन् ॥

तत्र क्वापि फलाहारकरणार्थं फलान्यपि ॥१५९॥

न लेभे कृष्णदासोऽथ बदरीशोऽप्यमार्गयत् ॥

क्वचिन्न लेभे सोऽपीशः कृष्णदासश्च तावुभौ ॥१६०॥

ऊचतुः श्रीमदाचार्यसमक्षं खिन्नचेतसौ ॥

भो महार्याः फलाहारकृते वोऽत्र फलान्यपि ॥१६१॥



क्वचिन्न लब्धान्यावाभ्यां ज्ञाप्यतां करवाव किम् ।

तथालोक्याचार्यवर्याः स्वान्तः खिन्नहृदोऽब्रुवन् ॥१६२॥

अहो मदर्थं बदरीनाथोऽपि श्रममाचरत् ॥

इत्युत्थाय स्वयं पाकमाचरन्नार्यसत्तमाः ॥१६३॥

समर्प्य तद्भोगमस्मै बुभुजुस्तं प्रसादितुम् ॥

इत्येतद्वृत्तमालक्ष्य वैष्णवाश्चावदन् प्रियम् ॥१६४॥

हंहो श्रममिमं तं श्रीबदरीशः कुतोऽकरोत् ॥

तदाकर्ण्यब्रवीत्कृष्णदासो रे विकलाःस्थ किम् ॥१६५॥

आचार्यार्थं श्रमं साक्षाद्गोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥

कुरुते किमुतैषोऽत्र बदरीपतिरित्यलम् ॥१६६॥

कदाचित्ते महाचार्या बदरीविपिने घने ॥

विचरन्तः स्वीयकृष्णदासमर्वाग् जनस्थले ॥१६७॥

अवस्थाप्यावदन्नेवं त्वमिह तिष्ठ मेऽनुग ॥

अहमेकः प्रतिष्ठामि प्रभोर्मन्दिरसंमुखम् ॥१६८॥

इत्याज्ञाप्य गतास्त्वार्याः स्वालयं बदरीपतेः ॥

तदन्तिके व्यासमुनेराश्रमं स्वयमभ्यगुः ॥१६९॥

तत्रासीनं व्यासदेवं वीक्ष्योचुर्विनयान्विताः ॥

जयश्रीकृष्णेति मुदा व्यासोऽभ्यागत्य सोऽब्रवीत् ॥१७०॥

भो वागीशाचार्यवर्याः श्रीमद्भागवतेऽखिले ॥

टीका कृताऽऽस्ते भवद्भिरिति श्रुत्वाऽथ तेऽब्रुवन् ॥१७१॥

कृष्णद्वैपायन विभो कृता सेह मयेत्यृतम् ॥

तन्निशम्याऽथ स मुनिर्मह्यमाश्राव्यतां तु सा ॥१७२॥



तदोमित्यभ्युपेत्यार्याः टीकां स्वेन कृतां मुदा ॥

वामबाहुकृतेत्यत्र व्याचल्युर्नेकधा बुधाः ॥१७३॥

तदाकर्ण्यब्रवीद्व्यासोऽवधर्तुं न क्षमोऽस्म्यहो ॥

एतावताऽलं गम्भीरश्रीभागवतभावुकाः ॥१७४॥

तमापृच्छंस्तदाचार्या मुने भ्रमरगीतके ॥

ब्रजौकसामभिमुखोद्धवप्रस्थापनोत्सवे ॥१७५॥

पद्यं पतितमाभाति तद्देयमपरत्र च ॥

ज्ञाप्यं न्यूनं यदधिकं पाठं भिन्नं समाहितम् ॥१७६॥

तच्छृण्वानः कृष्णमुनिरङ्गीकृत्येत्यवाचयत् ॥

आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात् स्वभावतः ॥१७७॥

इत्याद्युपरि टीकान्तेऽनन्तरं चक्रुरादरात् ॥

ततो द्वितीयेऽह्वाचार्या बदरीशं व्यलोकयन् ॥१७८॥

तद्दिने वामनद्वादश्युपोषणपरान्स तान् ॥

बदरीपतिराहेति भो महार्या मया वने ॥१७९॥

सर्वत्र फलमन्विष्टं फलाहाराय निर्जने ॥

आतिथ्यार्थं च भवतामुपलब्धं न कुत्रचित् ॥१८०॥

तद्भुज्यतां प्रसादान्मुत्सवान्ते च पारणम् ॥

ततः प्रभृति केषांचिदस्मन्मार्गानुवर्तिनाम् ॥१८१॥

कृताकृतं श्रीवामनद्वादशीव्रतमुच्यते ॥

ततस्त्वार्या बदरिकाधीश्वरेण विसर्जिताः ॥१८२॥

तत्र सन्तं कृष्णदासं समेतास्त्रिदिनेन तम् ॥

तिष्ठन्तमेकपादेन दृष्ट्वात्यर्थमभर्त्सयन् ॥१८३॥



अहो त्वामहमास्थाप्य गतवान्स भवानिह ॥  
 उपविष्टः कथं नात्र कृष्णदास यथासुखम् ॥१८४॥  
 तदाकर्ण्योक्तवान्कृष्णदासो भो मे महाशयाः ॥  
 एवमेवानुशास्तिर्वो यदत्र स्थीयतामिति ॥१८५॥  
 ततोऽहं स्थितवानेवं न त्वत्रासितवानिति ॥  
 आश्रुत्य श्रीमदाचार्यास्तुष्टा मुमुदिरे भृशम् ॥१८६॥  
 सेवकस्य तु धर्मोऽयं यथाज्ञावचनं सताम् ॥  
 तथैवानुविधातव्यमिति धर्मविदो विदुः ॥१८७॥  
 इति वैष्णववार्तामालायां द्वितीयोमणिः

### वार्ता ३

श्रीदामोदरदासोन्यः कान्यकुब्जे बभूव ह ॥  
 क्षत्री शंभरवालाख्यस्तस्यवार्ता निरूप्यते ॥१८८॥  
 तेन दामोदरेणाऽत्तं ताम्रपत्रं कचिद् भुवि ॥  
 तस्मै केनचिदित्युक्तं स्वप्ने येनाक्षराणि भोः ॥१८९॥  
 ताम्रपत्रगतान्यग्रे वाचितानि भवन्ति हि ॥  
 तस्य त्वं शरणं याहि सर्वथेति प्रबुद्धवान् ॥१९०॥  
 बहूनां स पुरः पत्रं दर्शयामास वैश्यराट् ॥  
 अस्पष्टवर्णं तत्पत्रं नैव केनापि वाचितम् ॥१९१॥  
 ततः कतिपयाहानुपदमाचार्यपण्डिताः ॥  
 तत्र याता उपघनस्थले समुषिताः पुरे ॥१९२॥  
 श्रेषयामासुरामान्नानयने कृष्णदासकम् ॥  
 न ज्ञापनीयोऽस्मि पुरः कस्यापीति प्रबोध्य तम् ॥१९३॥



यदामोदरदासः स्वयमायास्यति पथिस्व आचार्याः ॥

जीवोद्धारणमुदितं भावि स्वतएव तदिति हृदा ॥१९४॥

गतस्स कृष्णदासोऽपि ततो ग्रामे तदाज्ञया ॥

आमान्नानयने दामोदरदासोऽमिलत्तदा ॥१९५॥

प्रत्यभ्यजानात्तं कृष्णदासं दर्शनमात्रतः ॥

मध्येमार्गं नृपद्वारादश्चारूढः समागतः ॥१९६॥

दामोदरः पृष्ठवान् भोः किमाचार्याः समागताः ॥

तदोक्तं कृष्णदासेन न मे तदनुशासनम् ॥१९७॥

यद्ब्रूयामधिकां वार्तामामान्नानयनात्पराम् ॥

इत्यावेद्य तदामान्नं कृष्णदासः समाययौ ॥१९८॥

तस्यानुपदमायातः स च दामोदरः स्वतः ॥

आगत्यान्तःस्थितान् गेहे श्रीमदाचार्यपण्डितान् ॥१९९॥

प्रणम्य दण्डवदामोदरदासोऽग्रतः स्थितः ॥

दृष्ट्वा तमारात् पप्रच्छुः कृष्णदास कथं त्वया ॥२००॥

ज्ञापितोऽहमिति श्रुत्वा कृष्णदास उवाचह ॥

न मया वेदितः श्रीमदागमोऽस्यानुवर्त्तिनः ॥२०१॥

तावदामोदरेणोक्तं महाराजा धिया मयि ॥

अनेन नैवाभिहितं श्रीमदागमनं स्मृतम् ॥२०२॥

परं दृष्टवता चैनं मयानुपदमागतम् ॥

इति सत्यं समाकर्ण्य श्रीमदाचार्यसूरयः ॥२०३॥

दामोदरं तं प्रत्यूचुरहो पत्रं समानय ॥

तदोक्तं तेन भो प्राज्ञाः किं पत्रेण प्रयोजनम् ॥२०४॥



प्रपन्नं मां सानुबन्धमङ्गीकुरुत किंकरम् ॥  
 तथापि तैः प्रसिद्धचर्थमीरितः स समानयत् ॥२०५॥  
 ताम्रपत्रं तदाचार्यचरणग्रे न्यवेदयत् ॥  
 विलोक्य पत्रमाचार्या वाचयामासुरादरात् ॥२०६॥  
 ज्ञात्वाऽऽभिप्रायमखिलमङ्गीचक्रुर्हरीच्छया ॥  
 तं दामोदरदासं तत्पत्नीं चापि पतिव्रताम् ॥२०७॥  
 शरणात्मकमन्त्रेण गद्यपञ्चाक्षरेण च ॥  
 हरौ निवेदयामासुरात्माद्यर्पणपूर्वकम् ॥२०८॥  
 ततस्ताभ्यां दम्पतिभ्यां परमादरपूर्वकम् ॥  
 स्वगृहे श्रीमदाचार्याः समानीता निवासिताः ॥२०९॥  
 तदन्वाभ्यां जम्पतिभ्यां विज्ञाप्याञ्जलिपूर्वकम् ॥  
 प्रोक्तं भोः प्रभवो नित्यमावाभ्यां कार्यमत्र किम् ॥२१०॥  
 तदाकर्ण्योक्तमान्दार्थैर्भो युवाभ्यां प्रभुर्हरिः ॥  
 भजनीयः कलौ मूर्त्या प्रेमसेवाप्रकारतः ॥२११॥  
 तदान्विष्याचार्यवर्यैः स्वर्णकारस्य कस्यचित् ॥  
 गृहे विप्रन्यासभूतो मूर्तिमान् द्वारिकेश्वरः ॥२१२॥  
 चतुर्भुजः श्यामतनुः प्रदाय धनमाहतः ॥  
 दामोदरस्य स गृहे लिप्ते समुपवेशितः ॥२१३॥  
 आदितो नूतनैः पात्रैर्मृन्मयैरपि चाग्वरैः ॥  
 समं संभृत्य सम्भारं शय्यासिंहासनादिकम् ॥२१४॥  
 आगत्य श्रीमदाचार्यैर्मन्त्रपूर्वकमादरात् ॥  
 पञ्चामृतेनाभिषिक्तः प्रभुः श्रीद्वारिकेश्वरः ॥२१५॥



वस्त्रभूषालंकृतश्च स्थापितः पीठके शुभे ॥

भोगारार्तिसुगीताद्यैरुत्सवः सुमहान्कृतः ॥२१६॥

दामोदरज विप्राद्या वैष्णवाश्च विशेषतः ॥

भोजिताः परमान्नेन सपत्नीकेन तेन हि ॥२१७॥

ततःप्रभृति नित्यं स प्रेम्णा सेवां समाचरत् ॥

नागवल्लीदलानि श्रीद्वारिकेशार्थमेकदा ॥२१८॥

आनीतानि श्यामलानि दृष्ट्वाचार्यैः प्रबोधितः ॥

भो दामोदरदासेत्थं नागवल्लीदलानि ते ॥२१९॥

श्यामानि नार्पणीयानि ह्युत्तमोत्तमभोजिने ॥

नूतनं वस्तु परममर्घ्यमन्यानिवेदितम् ॥२२०॥

यद्यदिष्टतमं लोकेयच्चातिप्रियमात्मनः ॥

भोज्यं भक्ष्यं रम्यवस्त्रं सुगंधिद्रव्यमेव च ॥२२१॥

अथ ग्राह्यमर्पणीयन्तत्प्रसादीकृतं स्वयम् ॥

इत्येवं भगवन्मार्गविधिं श्रुतवता हृदि ॥२२२॥

श्रीमदाचार्योक्तशिक्षावचनं तेन धारितम् ॥

श्रीदामोदरदासेन सपत्नीकेन नित्यदा ॥२२३॥

सेवापरेण स्वविभोर्जलानयनकारिणा ॥

आहरन्तं जलमिमं वीक्ष्याह श्वशुरः क्वचित् ॥२२४॥

आनेतज्यं जलं दास्या ज्ञातयोऽत्र हसन्ति नः ॥

श्रुत्वेति तेनोमित्युक्तं परेद्युर्दम्पती गतौ ॥२२५॥

प्रत्येकं घटमादाय तस्यापणंसमीपतः ॥

तथोभौ प्रेक्ष्य स ह्रीगो गृहे तस्याऽपतत्पदोः ॥२२६॥



क्षम्यतां पूर्वं तत्कार्यं स्वयं कुर्यास्तथा नहि ॥

श्रुत्वेति स्वयमेवैको जलमाहरदुत्तमः ॥२२७॥

एवं जुषं तु तं साक्षाद्याचते भाषते प्रभुः ॥

एकदा श्रीमदाचार्यैरुक्तं तत्परिचर्यया ॥२२८॥

दृष्ट्वा तयोर्मोदभावं दम्पर्योर्भिषतां सतम् ॥

हं हो न दृष्टो यै राजाम्बरीषो वैष्णवः श्रुतः ॥२२९॥

तैरयं दृश्यतां दामोदरदासः स्त्रिया सह ॥

सचाम्बरीषो मर्यादामार्गीयो वैष्णवोऽभवत् ॥२३०॥

अयं तु पुष्टिमार्गीय इति भावविवेकतः ॥

एवं सेवां स कुर्वाणः पत्न्या सह महामतिः ॥२३१॥

मन्दिरे श्रीद्वारिकेशं शाययित्वोर्ध्वमेकदा ॥

स्वयं सुष्वापोष्णकाले चतुर्द्वारि सुवातके ॥२३२॥

तदहोरात्रमूष्पापि भूय एवाभ्यजायत ॥

अधः सुप्तां गृहे दासीमेकां संप्रतिबोध्य च ॥२३३॥

श्रीद्वारिकेशः संप्राह कपाटोद्घाटनं कुरु ॥

तदाश्रुत्य तु दास्या तत्कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥२३४॥

कृत्वा तु सुप्ता सामूढा निद्रयोपहतेन्द्रिया ॥

जाते प्रभातेऽथ दामोदरदासः समुत्थितः ॥२३५॥

चैत्यं ददर्श पत्नीं तदुद्घाटितकपाटकम् ॥

ससंभ्रमधियाऽपृच्छकपाटोद्घाटनं कथम् ॥२३६॥

कृतं केन विशङ्केन जनेनेह निगद्यताम् ॥

तदाकर्ण्य भिया दास्या गदितं भो मया निशि ॥२३७॥



द्वारिकेशेनेरितया कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥

इत्याश्रुतवता तेन सरुषोक्तं सतर्जनम् ॥२३८॥

त्वया किमिति रे दासि कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥

ततस्त्रप्तो सेवनार्थं मन्दिरे गतवाँस्त्वयम् ॥२३९॥

तत्र प्रबोधयामास प्रभुं स्वं द्वारिकेश्वरम् ॥

तदोक्तं द्वारिकेशेन कथं दामोदर त्वया ॥२४०॥

भार्सिता वर्जिता दासी सा मयैवेरिता खलु ॥

कपाटोद्घाटनं चैत्यद्वारः कृतवती सती ॥२४१॥

त्वं तु गत्वोपरिगृहे सुप्तो वातायने निशि ॥

मां शाययित्वान्तर्गेहे स्वयमूष्मातिकातरः ॥२४२॥

इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं तत्र दामोदरः स्वयम् ॥

संकल्पं कृतवान्नव्यं कारयित्वैव मन्दिरम् ॥२४३॥

वातायनमथान्नं हि भोक्ष्यामीतिप्रतिज्ञया ॥

तदा स्त्रियोक्तं प्रतिज्ञा कथं ते निर्वहेद्दहो ॥२४४॥

अनल्पकालसाध्यत्वात् प्रभुमन्दिरनिर्मितेः ॥

विना प्रसादान्नभुक्तिं चिरं कथमवस्थितिः ॥२४५॥

इत्युक्ते स पुनः प्राह तर्हि रन्धितमन्नकम् ॥

नात्स्यामि तु फलाहारं करिष्यामीति निश्चितम् ॥२४६॥

इति सत्यप्रतिज्ञेन फलाहारं प्रकुर्वता ॥

श्रीदामोदरदासेन मन्दिरं कारितं शुभम् ॥२४७॥

शुभे मुहूर्ते तत्रात्मप्रभुः समुपवेशितः ॥

नित्यं सेवां चकारासौ सपत्नीको मुदान्वितः ॥२४८॥



एकदापुनरात्मीयंप्रभोर्भोगोत्तरं मुदा ॥

शय्यां मार्जयता तेन मन्दिरे तल्पकान्तिके ॥२४९॥

स्वास्तृते स्वासने दृष्ट्वा मार्जार्यैश्चरितं मलम् ॥

उक्तं हंहो भगवता स्वशय्यापि न रक्ष्यते ॥२५०॥

तदनु स्वजनेनाथ तन्निःसार्य विलिप्य च ॥

सेवाकर्मण्यापृतोऽभूत् राजभोगसमर्पणे ॥२५१॥

समर्प्य सूपोदनकस्थालं शाकादिवेष्टितम् ॥

यावद्बहिः समासीत तावत् स्वप्रभुगा रुषा ॥२५२॥

पदा निःक्षिप्य तत् स्थालमुक्तं रे सेवकोऽत्र कः ॥

त्वं वाऽहं वेति रक्षां कः कुर्यात्सर्वस्य वस्तुनः ॥२५३॥

इत्याकर्ण्य तदा दामोदरेण च सह स्त्रिया ॥

अनुनीतश्चाटुवाक्यैर्द्वारिकेशोऽनुतापिना ॥२५४॥

पूर्णनूतनपाकेन राजभोगेन भोजितः ॥

तथापि मासद्वितयं द्वारिकेशो न चावदत् ॥२५५॥

ततो बहुविधैर्वाक्यैरनुनीतः स्वयं प्रभुः ॥

चिरादवददाचार्यानुगं दामोदरं प्रति ॥२५६॥

एकदा हरसान्याख्यः श्रीदामोदरदासकः ॥

गृहं शंभलवालस्य गतो दामोदरस्य ह ॥२५७॥

श्रीदामोदरदासेन शंभलग्रामवासिना ॥

संमानितो बहुविधं पंचसप्तदिनं स्थितः ॥२५८॥

ततोऽरिहग्राममितः स्वाचार्यान् दृष्टवान्नतः ॥

पृष्ठोऽथ श्रीमदाचार्यैः स्वागतं भद्रमस्तु ते ॥२५९॥



दामोदरगृहे स्थानं सुकृतं बत ते कृतम् ॥

प्रसादान्नं किं गृहीतं तत्र स्थितवतेति भोः ॥२६०॥

अवदत् सत्यमेवाऽग्रे तेषां दामोदरोऽनुगः ॥

महाचार्या मया तत्र प्रसादान्नं न रन्धितम् ॥२६१॥

भुक्तं चिरं स्थितवता दामोदरगृहे सता ॥

तदाकर्ण्यार्चार्यवर्यैरुषोक्तं करुणाकरैः ॥२६२॥

अहो मदन्तरङ्गाय सेवकाय गृहे प्रभोः ॥

सेवकेन मदीयेन तेन नाऽवेदितं कुतः ॥२६३॥

रन्धितं तत्प्रसादान्नमुच्छेषमधरामृतम् ॥

इत्यस्फुरद् गृहे दामोदरशम्भलवासिनः ॥२६४॥

प्रायो रुष्टा ममाचार्या यामि कान्ते हरिं जुष ॥

श्रीमदाचार्याभिमुखमित्युक्त्वा निःसृतो गृहात् ॥२६५॥

अरिल्लग्राममागत्य स च स्वाचार्यपादयोः ॥

पतितो दण्डवन्मूर्ध्ना साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥२६६॥

तमालोक्याचार्यवर्या न तत्संमुखमास्थिताः ॥

इत्यकस्मात्क्रुधो बीजमन्विष्यन्स विसिस्मिये ॥२६७॥

विज्ञप्तिं कृतवान्नीचैर्महाराजा महाशयाः ॥

कोऽपराधोस्तिऽमे दृष्टो न तं जानामि बोध्यताम् ॥२६८॥

तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः कथं तस्मै त्वया प्रभोः ॥

प्रसादान्नं स्थितवते रन्धितं नोपभोजितम् ॥२६९॥

तदाश्रुत्योदितं दामोदरदासेन कम्पता ॥

महाराजधिया दामोदरः पृष्टव्य एव वः ॥२७०॥



रन्धितं तत्प्रसादान्नं कथं नात्तं त्वयेति सः ॥

तदाहूय स तैः पृष्टः श्रीमदाचार्यपण्डितैः ॥२७१॥

यथातथं समवदन्महाराजा मयोषसि ॥

बालभोगाप्तसामग्रीप्रसादान्नं प्रभोस्तुयत् ॥२७२॥

तदेव भुक्त्वा सुप्रीतं मेवापक्वान्नमेवच ॥

रन्धितान्नं रुच्यभावान्न गृहीतमिति स्वतः ॥२७३॥

तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यैरुक्तं भो यद्यपि त्वया ॥

न स्वेच्छया रन्धितान्नं भुक्तं मे तु ततोऽपि रुट् ॥२७४॥

अस्मिन्दामोदरे जातेत्याचार्यास्तदनु स्वयम् ॥

समाधाय तदा दामोदरदासं स्वसेवकम् ॥२७५॥

बहु शंभलवालं तं मुदा विससृजुर्गृहे ॥

अथ वार्तेतरा दामोदरदासस्य रूप्यते ॥२७६॥

ख्याता शंभलवालस्य श्रीमदाचार्यसेविनः ॥

कान्यकुब्जे निवसतो गृहे गत्वा समेत्य हि ॥२७७॥

श्रीनन्दवासिनो लोका यान्त्यग्रे वैष्णवाः खलु ॥

श्रीमदाचार्यचरणदर्शनार्थं समुत्सुकाः ॥२७८॥

तदा दामोदरोऽप्येषां प्रत्येकं स्वर्णमुद्रया ॥

हस्तेसमुपहारार्थं प्रतिपादितयात्मनः ॥२७९॥

श्रीमदाचार्यपादेषु नतिसंदेशमावदत् ॥

रिक्तपाणिः कथमिति ब्रूयां प्रणतिवाचिकम् ॥२८०॥

तादृक्स्वभावो यो भावोद्गारिवर्णश्च निर्ममः ॥

दामोदरः सदामोदी पटुः प्रभुनिषेवणे ॥२८१॥



शतं यच्छृशुरेणोरुधनार्धनेह दासिकाः ॥

कन्यकोद्वाहसमये पारिवर्हे प्रयोजिताः ॥२८२॥

सुखस्थितां मम सुतामेताः परिचरन्त्विति ॥

तथापि दामोदरस्य तस्य पत्नी हरिप्रिया ॥२८३॥

परिचर्याकर्म हरेः स्वयमेव चकार ह ॥

पादौसंवाहयन्तं स्वं दामोदरमथ क्वचित् ॥२८४॥

गृहे शयानाः स्वाचार्याः पप्रच्छुरिदमादरात् ॥

रे कश्चित्तेऽभिलाषोऽरित श्रुत्वेत्याह स मे नहि ॥२८५॥

स्त्रियं पृच्छेति सच तामपृच्छत्साऽर्थयत्सुतम् ॥

तत्काममावेदयत्तांस्ते चाऽहुर्भविता सुतः ॥२८६॥

इत्युक्त्वाऽथगतास्ते श्रीद्वारं सा सत्ववत्यभूत् ॥

एकदा गर्भवत्यान्तः कुर्वत्या परिचारणम् ॥२८७॥

पार्श्ववर्तिगृहस्त्रीभिर्द्वारापृष्टः स्व (भडली) ॥

प्राह ते भविता पुत्र इत्यन्याश्रयदोषतः ॥२८८॥

तस्य भावात्सुतं श्रुत्वा प्राप्तैराचार्यकैः क्वचित् ॥

अस्पर्शयद्भिः स्वौ पादौ पुरो दामोदरस्य ह ॥२८९॥

प्रोक्तं भावी म्लेच्छ इति जातो नीतोऽम्बिकाम्बया ॥

बभूव म्लेच्छसंसर्गान्म्लेच्छो देशान्तरं गतः ॥२९०॥

तदुःखपरितप्तौ तावनपत्यौ च दंपती ॥

अतिचक्रमतुः कालं भूयांसं हरिसेवया ॥२९१॥

श्रीदामोदरदासस्य देहत्यागो यदाभवत् ॥

तदा पत्न्या तथाभूतो गोपितो न प्रकाशितः ॥२९२॥



वैष्णवेभ्यः शनैरुक्तं नौरानेया सुमूढतः ॥

इतीरितैस्तैरानीता नौर्घटे कान्यकुब्जके ॥२९३॥

तत्र नावि धृतः श्रीमान् द्वारिकेशः प्रभुः स्त्रिया ॥

धनवस्त्रादिसामग्रीसहितः सपरिच्छदः ॥२९४॥

उक्तं भो वैष्णवा एतदरिष्टग्राममाप्यताम् ॥

श्रीमदाचार्यनिकट इति तैस्ततथा कृतम् ॥२९५॥

त्रिंशत्क्रोशगतायां तु नौकायां गाङ्गवारिणि ॥

दामोदरः स्त्रिया संस्थामितः पश्चात्प्रकाशितः ॥२९६॥

श्रुत्वा मृतं समायाता वैष्णवाः सुहृदस्तदा ॥

तस्य देहस्य संस्कारमकुर्वन् विधिवत्पुरः ॥२९७॥

श्रुत्वाऽऽगतः सुतो म्लेच्छो जातो दामोदरस्य यः ॥

गृहे किमपि नाऽऽत्राप्तमासीद्रव्यं पितुर्हियत् ॥२९८॥

शिर आहतवानुक्तवृत्तान्तः केनचित् खलः ॥

नौकामनुगतोप्येको न प्रापाऽसौ दिगंतरम् ॥२९९॥

अथकैदोक्तमागत्य वैष्णवैर्हितमीप्सुभिः ॥

श्रीदामोदरदासस्य श्वसुरादिभिरागतैः ॥३००॥

पुत्रिके भक्ष्यमप्यास्ते धान्यं नेह किमत्स्यसि ॥

तयोक्तं यद्भवद्भिर्हिदेयं भोक्ष्यामि नान्यथा ॥३०१॥

इत्यभिप्रेत्य करुणैर्यदुक्तं भक्षणं हि तैः ॥

तेनैवाऽऽमृति निर्वाहं कुर्वाणाऽगाद्धरेः पदम् ॥३०२॥

इतिश्री वैष्णववार्त्तामालायां तृतीयवार्तामणिः



## वार्ता ४

पद्मनाभः कान्यकुब्जजातीयः कोपि ब्राह्मणः ॥

श्रीमदाचार्यशरणस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥३०३॥

कान्यकुब्जः पद्मनाभो व्यासासनसमास्थितः ॥

कथां कथयति स्माऽग्रे श्रोतॄणां वृत्तिर्माँस्ततः ॥३०४॥

प्रष्टुमार्यान्ततो जानँस्तत्राप्तान्पुरुषोत्तमान् ॥

प्रपन्नः शरणं तेषां भक्तः स्वात्मसमर्पणी ॥३०५॥

उत्थापनक्षणे श्रीमदाचार्याः स्वासने स्थिताः ॥

कथां भागवतीं वक्तुं दामोदरसखान्प्रति ॥३०६॥

प्रथमं स्वनिबन्धं सत्पद्यं प्रोचुर्हितार्थिनः ॥

“ पठनीयं प्रयत्नेन श्रीभागवतमोदरात् ॥३०७॥

वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि ” ॥

श्रत्वेति सोऽम्भोजलिना संकल्पं कृतवानिमम् ॥३०८॥

वृत्त्यर्थं नैतत्कर्तेति तमाचार्यास्तदाब्रुवन् ॥

वृत्त्यर्थं नैतदायोज्यं तदा तेनोक्तमीश्वराः ॥३०९॥

संकल्पो मे कृतः किञ्चिन्नकार्यमिति वै गतः ॥

स्वीयानां यजमानानां गृहे तैरादृतो बहु ॥३१०॥

इतस्तु ग्लानिमाप्तो न वैष्णवस्य ममोचितम् ॥

उक्तश्चार्यैस्तव कथं निर्वाहो भविता वत ॥३११॥

तदोक्तवान् पद्मनाभो वैश्यवृत्त्येति निश्चितः ॥

एकदा श्रीमदाचार्यैः प्रयागे सुशयालुभिः ॥३१२॥

निशीथार्द्धे पद्मनाभदास आज्ञापितः सकृत् ॥

आनयस्व गृहादक्कामिति सत्वरमुत्थितः ॥३१३॥



प्रतिषिद्धोपि बहुभिर्वैष्णवैर्भोः क यास्यसि ॥

निशीथार्द्धेऽत्र नौर्वद्वा सुताः कर्णधरा इति ॥३१४॥

गुरुणामविचार्याज्ञेत्येकवाक्येन चोदितः ॥

वेणोतीरं समासाद्य नाऽपश्यत्कमपि क्वचित् ॥३१५॥

स एतर्ह्येव कमपि ह्यकस्माद्बालमागतम् ॥

दशार्द्धवयसं धृत्वा प्लवमेकं ददर्श ह ॥३१६॥

बालेन पृष्टः किमहो पारमस्या यियाससि ॥

तदोक्तवान् पद्मनाभो हंहो पारं यियासितम् ॥३१७॥

तेन प्लवे स आरोह्य पारमुत्तारितः क्षणात् ॥

पृष्टोऽप्येष्यसि किं भूय इति श्रुत्वाऽवदत्स तम् ॥३१८॥

आयास्ये घटिकामध्ये तेनोक्तं त्वरयत्विति ॥

ततस्तु पद्मनाभोऽपि गत्वा प्रागन्तरालयम् ॥ ३१९॥

विज्ञप्तिपूर्वमक्कां स्वामानिन्ये बालकप्लवे ॥

बालेन प्रेरिते देवीमारुढां पारमानयत् ॥३२०॥

उत्तीर्य पश्चान्नाऽपश्यत् प्लवं नैव च बालकम् ॥

विस्मितः स समावेद्य तामक्कामोगतां पुरः ॥३२१॥

श्रीमदाचार्यपादानां प्रगतः साञ्जलिः स्थितः ॥

दृष्ट्वा तु श्रीमदाचार्यैराज्ञप्तस्तुष्टमानसैः ॥३२२॥

शयस्व साम्प्रतं नक्तमिति सुप्वाप नोदितः ॥

वैष्णवानां तदा तेषां मध्ये तैः पृष्ट आदरात् ॥३२३॥

किं विधाय गतोसीति तेन सर्वं तदीरितम् ॥

तदोक्तं वैष्णवैर्मित्र प्रभुस्ते प्रापितः श्रमम् ॥३२४॥



आयातो बालरूपेण प्लवं धृत्वा निशीथके ॥  
 इत्याकर्ण्यऽभवन्नूर्णीभूतः सुप्तः स निद्रया ॥३२५॥  
 प्रातः समुत्थितैरस्य वैष्णवैरीरितं पुनः ॥  
 श्रीमदाचार्यपुरतः पद्मनाभविचेष्टितम् ॥३२६॥  
 स्वप्रभोः श्रमदानादि श्रुत्वाचार्यैस्तदीरितम् ॥  
 सत्यमेतत्परमिदं मदिच्छतोऽस्यनाऽग्रहात् ॥३२७॥  
 नाऽधुना प्रतिदेष्टव्यो भवद्भिर्वैष्णवैः क्वचित् ॥  
 एकदा श्रीमदाचार्याश्चलिता ब्रजगोकुलात् ॥३२८॥  
 अरिहं स्वमार्गमध्ये सङ्गताः क्षत्रियेण ह ॥  
 व्यापारिणा केनचित्संद्वाणिज्यपरिवारिणा ॥३२९॥  
 कान्यकुब्जदिशं मन्दं चलता सार्थभारिणा ॥  
 निरपेक्षास्तदाचार्या अग्रतो दूरमुज्झिताः ॥३३०॥  
 पश्चात्स्थितः स च शठैश्चोरैः पथि विलुण्ठितः ॥  
 श्रीमदाचार्यपादास्तु कान्यकुब्जपुरङ्गताः ॥३३१॥  
 स्वदामोदरदासस्य गृहे समुषिता मुदा ॥  
 प्रणताः सत्कृतास्तेन सकुटुम्बेन चात्मवत् ॥३३२॥  
 तत्रान्नं रन्धितं कृत्वाऽर्पयामासुः प्रभोः पुरः ॥  
 एतावता क्षत्रियः स क्रन्दमानः समागतः ॥३३३॥  
 पप्रच्छान्यान्बताचार्याः किं कुर्वन्तः क्वचाऽसते ॥  
 तदाश्रुत्य पद्मनाभदासेन हृदि चिन्तितम् ॥३३४॥  
 भोजने ह्यत्राऽचार्याणां वैयग्र्यं भवितेत्यतः ॥  
 उत्थितः पाणिना धृत्वा व्यापारिणमथाऽनयत् ॥३३५॥



बहिः प्रदेशे दूरेण पृच्छति स्म स तं शनैः ॥

भ्रातर्हृतं कियद्द्रव्यं चोरैस्तत्ते ददाम्यहम् ॥३३६॥

मा शुचो दैवविहतं यदीश्वरवशं जगत् ॥

तदा व्यापारिणा प्रोक्तमियद् द्रव्यं गतं मम ॥३३७॥

तदाश्रुतवता पद्मनाभदासेन वै करे ॥

गृहीत्वा श्रेष्ठिनः साधोः स नीतः कस्यचिद् गृहे ॥३३८॥

आराद् दृष्ट्वा पद्मनाभदासं स श्रेष्ठिसंज्ञकः ॥

स्वागतं पृष्ठवानाज्ञा दीयतां कथमागतिः ॥३३९॥

तदा प्रोक्तं पद्मनाभदासेन श्रेष्ठिसत्पते ॥

अस्मै व्यापारिणे देयमियद् द्रव्यं गिरा मम ॥३४०॥

तावद् द्रव्यस्यास्य पत्रं मूलवृद्धियुतं लिख ॥

तन्निशम्येरितं साधु श्रेष्ठिना लिखितेन किम् ॥३४१॥

यद् द्रव्यं वाञ्छितं यावद् गृह्यतां तावदेव तत् ॥

तत्रोक्तं पद्मनाभेन नाऽदास्ये लिखितं विना ॥३४२॥

तदोक्तं श्रेष्ठिना द्रव्यमेवं ग्राह्यं निजेच्छया ॥

लिखित्वा तु तदा पत्रं पद्मनाभेन हस्ततः ॥३४३॥

विन्यस्य धर्मं तद्द्रव्यग्रहणे श्रेष्ठिकोन्वितः ॥

प्रदाप्याऽभीप्सितं द्रव्यं व्यापारी क्षत्रियोऽपि सः ॥३४४॥

विसर्जितः पद्मनाभदासोऽथाऽचार्यवर्यकैः ॥

भुक्तवद्भिर्बुधैः पृष्टः किमर्थं गतवान् क्व भोः ॥३४५॥

स तदा साञ्जलिः प्राह बहिः किञ्चित्कृते गतः ॥

तथापि श्रीमदाचार्यैरीश्वरैर्विदितं हि तत् ॥३४६॥



आक्षिप्योक्तमहो किंवा वयं तत्सार्थरक्षकाः ॥

तद्रूपापारप्रसक्ता वा यद्द्रव्यं देयमेव नः ॥३४७॥

पश्चात्किमर्थं रहितो भारवाही स बाहुजः ॥

यच्चोरैर्लुण्ठितोऽकस्मादिति कुर्मो वयं हि किम् ॥३४८॥

त्वया चैतद्धृतं महत्कृतं दुश्चेष्टितं वृथा ॥

ऋणं कृत्वा धनं दत्तं लिखित्वा पत्रमात्मना ॥३४९॥

तदाकर्ण्येरितं पद्मनाभदासेन धीमता ॥

महाराजधिया भोक्तुमुद्यतेषु भवत्स्विह ॥३५०॥

क्रन्दमानः समायातः क्षत्रबन्धुः स लुण्ठितः ॥

तथा दृष्टो भुञ्जतां हि वैयाघ्रचे हेतुरित्यतः ॥३५१॥

समाधाय बहिर्नीतोऽन्यथा मे जन्म वै वृथा ॥

ऋणं कृतं यत्तदेयं परेद्युरपि संभवेत् ॥३५२॥

तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैस्तर्हि पत्रे त्वया कुतः ॥

धर्मो विन्यस्य लिखितः परस्वार्थं वदेति मे ॥३५३॥

स चोक्तवान्महाचार्या गाढलेखं विना क्वचित् ॥

न दातुं संभवेत् द्रव्यमृणनिर्मुक्तिपूर्वकम् ॥३५४॥

इत्याकर्ण्य प्रसन्नैस्तैर्ज्ञातहादैर्महाशयैः ॥

प्रस्थितं श्रीमदाचार्यैरलिखितमसंमुखे ॥३५५॥

पद्मनाभो गतो विप्रो राजानं क्वचिदेकदा ॥

वीक्ष्यैनमागतं राजा प्रत्युत्थायाऽभिवन्द्य च ॥३५६॥

उवाच मह्यं भो ब्रह्मन् कथां श्रावय वैष्णवीम् ॥

तदावोचत्पद्मनाभः कथां भागवतीं तु न ॥३५७॥



भारतीं श्रावयिष्यामि चेद्राजञ् श्रोतुमिच्छसि ॥

तदोवाच महान् राजा बाढं श्रोष्यामि भारतम् ॥३५८॥

इत्यामन्त्र्यैव नृपतिरेकदा सुमुहूर्तके ॥

वाचयामास स कथां भारतीं पद्मनाभतः ॥३५९॥

पद्मनाभो महान् वक्ता वाचयामास भारतीम् ॥

कथां नित्यं नियमतो राजलोकस्य संसदि ॥३६०॥

कथां वाचयता नित्यं यदा युद्धप्रसङ्गकः ॥

आगतस्तेन वै प्रोक्तं सर्वेषां शृण्वतां पुरः ॥३६१॥

अद्य शस्त्रायुधानीह सर्वैर्मुक्त्वा निशम्यताम् ॥

तदाज्ञया राजलोकैर्मुक्त्वा शस्त्रायुधानि तैः ॥३६२॥

उपविष्टं श्रोतुमेकचेतसा भारतीं कथाम् ॥

भारतं युद्धमाश्रुत्य पद्मनाभेन वाचितम् ॥३६३॥

तदैवात्यद्भुतो वीररसः प्रादुर्बभूव यत् ॥

अन्तस्तेषां मिथः स्वेषां मुष्टामुष्टि पदापदम् ॥३६४॥

युद्धमासीत्कियत्कालं प्रशशाम स्वतः क्षणात् ॥

यावद्युद्धप्रसंगीयकथा तावदभूदिति ॥३६५॥

कियद्दिनावसानेन समाप्तां भारतीं कथाम् ॥

श्रुतवान्पूजयामास पुस्तकं वाचकं नृपः ॥३६६॥

ददाति स्म बहु द्रव्यं दक्षिणां वाचकाय सः ॥

तदोक्तवान् पद्मनाभदासो राजानमादरात् ॥३६७॥

राजन् भारं धनस्येमं न गृहीष्यामि ते वृथा ॥

अपेक्षितं गृहोष्येऽहमृणानिर्मुक्तिहेतवे ॥३६८॥



राजोक्तं बाढमस्त्वेवमिति दत्तं धनं मुद्रा ॥  
 तदा स्वापेक्षितं पद्मनाभस्त्वादाय जग्मिवान् ॥३६९॥  
 तस्यैव श्रेष्ठिनो हस्ते तत् द्रव्यं दत्तवान् स्वयम् ॥  
 वृद्धिमूलयुतं लेखपत्रं पाटितवाँस्ततः ॥३७०॥  
 मन्वानः स्वं सुकृतिनं पद्मनाभस्ततो महान् ॥  
 किं च श्रीपद्मनाभस्य कान्यकब्जद्विजन्मनः ॥३७१॥  
 गृहे पुत्री कुमार्येका तदर्थं वर उत्तमः ॥  
 श्रीमदाचार्यसंसेवी विप्रः संनाहमोचकः ॥३७२॥  
 विचारितः कृष्णभक्तिमधुमत्तहृदा क्वचित् ॥  
 पद्मनाभो विस्मृतस्वव्यवहारो दिने शुभे ॥३७३॥  
 वरस्य वैष्णवैः साकमलिके तिलकं व्यधात् ॥  
 स्वहस्तेन समाजे स ततः स्वगृहमागतः ॥३७४॥  
 अवदत्तुलसाख्याया ज्येष्ठाया दुहितुः पुरः ॥  
 पुत्रिके ते कनीयस्या स्वसुरुद्धाहयोजनम् ॥३७५॥  
 वरेण तेन विप्रेण सममद्य मया कृतम् ॥  
 तदोक्तं तुलसानाम्न्चा हंहो किमिति ते कृतम् ॥३७६॥  
 संनाहमोचको विप्रो परो ह्यभिमतः कथम् ॥  
 तदा ध्यात्वा पद्मनाभदासेनोक्तमहो सुते ॥३७७॥  
 जातं यदधुना जातं संभवेत्तत्कथं मृषा ॥  
 तदा प्रोक्तं तुलसया संबन्धः परिवर्त्यताम् ॥३७८॥  
 श्रुत्वेदं पद्मनाभेन प्रोक्तं तर्हि सुतेऽधुना ॥  
 छुरिकामानयस्वेह छिन्द्यामङ्गुष्ठकं यतः ॥३७९॥



तिलकं रचितं तस्य भाले सर्वसमक्षतः ॥

तदा पुनस्तुलसया प्रोक्तमङ्गुष्ठकं त्वया ॥३८०॥

किमिति च्छिद्यते तात ततस्तेनेरितंपुनः ॥

दुहितुः कृतसंबन्धः परिवृत्येत वै कथम् ॥३८१॥

इत्युक्त्वोपररामाथ तथा तामुदवाहयत् ॥

कालान्तरे पद्मनाभो वैष्णवः सत्यवाग् द्विजः ॥३८२॥

अन्यवैष्णववाक्यैकविश्वासभरयन्त्रितः ॥

भगवत्प्रेममत्तश्च चकार न ततोऽन्यथा ॥३८३॥

किंचास्य क्षत्रियाण्येका पद्मनाभस्य वै गृहे ॥

आयान्ती प्रस्यहं दृष्टा पृष्टा तुलसया क्वचित् ॥३८४॥

किमित्यायासि हे नित्यमिति पृष्टा जगाद सा ॥

अयं महौल्लिकालज्ञस्तव तातोऽत्र वैष्णवः ॥३८५॥

संततिर्न ममेत्यर्थमायामि प्रत्यहं त्विह ॥

पुत्रि त्वं मे तदेवास्य विज्ञापय पुरः क्वचित् ॥३८६॥

तच्छ्रुत्वाऽग्रे तुलसया पितुर्विज्ञापितं क्वचित् ॥

तन्निशम्याज्ञप्तमग्रे तर्ह्यानय जलं मम ॥३८७॥

तदानीतं जलं स्वस्य पदा स्पृष्टं ददौ तदा ॥

क्षत्रियाण्यै पद्मनाभः प्रोक्तवाँस्त्रिः पिबेति वै ॥३८८॥

पुत्रस्ते भविता भद्रे मथुरादासनामतः ॥

आकारणीयो भक्त्या स बन्धुभिर्याहि ते गृहम् ॥३८९॥

इत्युक्ता सा लब्धवरा गृह्णन्ती चरणोदकम् ॥

तथैव गृहमागत्य कृतवत्यचिरेण ह ॥३९०॥



तथा प्रातवती पुत्रं मथुरादासनामकम् ॥

यत्प्रसादात्क्षत्रियाणी स्वभूत्सिद्धमनोरथा ॥३९१॥

स वैष्णवः पद्मनाभदासः स्वाचार्य सेवकः ॥

गोवर्द्धनेशाभ्यन्तर्यसेविनो वैष्णवस्य सः ॥३९२॥

रामदासस्य विप्रस्य पद्मनाभः पुराऽभजत् ॥

सेव्यं प्रभुं नित्यदा हि ब्राह्मणे ब्राह्मणो गतिः ॥३९३॥

एकदा तत्र वै देशे यवनो मौनसंज्ञितः ॥

आगतो ग्राममारुव्य सर्वं लुण्ठितवान् खलः ॥३९४॥

रामदासनिषेव्यं तं प्रभुं मौनो गृहीतवान् ॥

दृष्ट्वा तथा हतं तेन प्रभुं मोनेन मौनतः ॥३९५॥

अन्वियाय शनैः पद्मनाभदासोऽपि दूरतः ॥

नाम्भोऽपि पीतवान्सतदिनावधि विना प्रभुम् ॥३९६॥

मौनद्वारस्थितो दीनो हीनोऽप्यनशनव्रती ॥

अष्टमेहि यवन्योक्तो यवनः सामवाक्यतः ॥३९७॥

अन्वायातो द्विजः कश्चित् द्वार्येकोऽनशनः स्थितः ॥

निरम्बुपानः सहसा यतोऽग्रेऽयं मरिष्यति ॥३९८॥

हत्या तव शिरस्येषा मा भूद् देहीति तत्प्रभुम् ॥

तदाकर्ण्यैव यवनः प्रभुं तस्मै न्यवेदयत् ॥३९९॥

स पद्मनाभदासोऽपि वसासो पिहितमम्बरे ॥

रामदासप्रभुं देवमादाय गृहमागतः ॥४००॥

पञ्चामृतेन मन्त्रेण स्नापयित्वा शुभासने ॥

त्वं प्रतिष्ठापयामास वासोभूषावलंकृतम् ॥४०१॥



भोगमावेद्य नैवेद्यं ततो व्यासोऽपि भुक्तवान् ॥

इति ज्ञातं रामदासेनात्माभ्यन्तरसेविना ॥४०२॥

तस्मिन्नेव दिने श्रीशपुरे गोपालके स्वतः ॥

हाहाकारं कृतवता तेन सप्तदिनावधि ॥४०३॥

नोपभुक्तं प्रसादान्नं स्वसेव्यदुरवग्रहात् ॥

परन्तु गोवर्द्धनेशसेवां स्वीकुर्वता स्थितम् ॥४०४॥

इति वृत्तं श्रुतवता पद्मनाभेन वै क्वचित् ॥

आगतं श्रीनाथदेवं द्रष्टुं गोपालके पुरे ॥४०५॥

संगतो रामदासेन पृष्ठो वै पद्मनाभकः ॥

अहो कष्टमुरु प्राप्तो यवनप्रभुनोद्यतम् ॥४०६॥

तदा व्यासः पद्मनाभः प्रोक्तवान् रामदासकम् ॥

यल्लभ्येत मया दुःखं तद्युक्तं यत्प्रभुस्त्वया ॥४०७॥

सेव्यो मे शिरसि न्यस्तः सदसच्चोपयाजितम् ॥

प्रसादान्नं न सप्ताहं भवतात्तं किमित्यहो ॥४०८॥

तदोक्तं रामदासेन व्यास सत्यं त्वयोदितम् ॥

तथापि तु चिरं सेवा कृता सेव्यस्य यन्मया ॥४०९॥

तत्संबन्धेऽक्षये तावत्कृतं युक्तं विचार्यताम् ॥

किं च व्यासः पद्मनाभः प्रभुं श्रीमथुराधिपम् ॥४१०॥

स्वसेव्यमेकदादाय सकुटुम्बश्च निर्धनः ॥

अरिल्लग्राममेयाय स्वाचार्यान्त्यालये स्थितः ॥४११॥

नित्यं श्रीमथुरानाथप्रभोः सेवां समाचरत् ॥

घृतपक्वैर्नव्यहरिच्चणकैर्भोगमार्पयत् ॥४१२॥



हरिपालाशपत्रेषु पुटकेषु च राशितः ॥

मुद्रा एते भक्तमेतद् व्यञ्जनं पायसं घृतम् ॥४१३॥

वटकाः कथिताद्योषः शर्करा मुष्टिभिः पृथक् ॥

तत्तत्समग्रसामग्रीनामभिव्याहस्तपुरः ॥४१४॥

तथा भावत एवास्य प्रभुर्नैवेद्यमश्नुते ॥

तदूहितं वैष्णवेन केनचित् ज्ञापितं पुरः ॥४१५॥

श्रीमदाचार्यपादानां चणकोरुविधार्पणम् ॥

कदाचित्स्वेच्छयाऽऽचार्याः प्रभोभोगसमर्पणे ॥४१६॥

समागताः पद्मनाभदासेनोपहृतं नवैः ॥

नित्यवच्चणकैरेव सर्वसामग्र्युपायनम् ॥४१७॥

पृथक् पप्रच्छुरालोक्य पद्मनाभ महामते ॥

पुटकेषु च पत्राल्यां का एता राशयः कृताः ॥४१८॥

तदाऽवोचत्पद्मनाभो महाराजा इमे पृथक्

राशयः सर्वसामग्र्यो दध्यदः पायसं घृतम् ॥४१९॥

शर्करेयं शिखरिणी व्यञ्जनं मुद्रभक्तकम् ॥

इत्यादयोऽर्पिता एते हरिद्विश्वागकैः कृताः ॥४२०॥

इत्याकर्ण्यऽचार्यवर्यैस्ततः क्लिन्नहृदेरितम् ॥

ज्ञातं हा द्रव्यसंकोचादित्थं भोगोऽर्प्यतेऽमुना ॥४२१॥

तत आगत्यात्मगृहमक्कां प्रत्युक्तमार्यकैः ॥

अकिञ्चनस्य भोः पद्मनाभदासस्य वै गृहे ॥४२२॥

भोगार्थमत्र सामग्री प्रत्यहं प्रेष्यतामिति ॥

अक्रयोमित्युरीकृत्य द्वितीयदिवसात्ततः ॥४२३॥



प्रेषिताऽमान्नसामग्री पद्मनाभगृहे प्रभोः ॥  
 वीक्ष्याऽतां तां तुलसया पद्मनाभं प्रतीरितम् ॥४२४॥  
 प्रायोऽस्मान्प्रभुरस्माकं निर्वासयितुमुद्यतः ॥  
 आचार्या धान्यभारेण दीनान् स्वान् परिपीडयन् ॥४२५॥  
 इत्याकण्योद्विग्नमनाः पद्मनाभः कथंचन ॥  
 अर्थं व्ययार्थं संगृह्य गन्तुकामो परत्र च ॥४२६॥  
 नान्येकस्यां स्वमारोप्य मथुरेशं कुटुम्बकम् ॥  
 समागतः प्रणामार्थमाचार्यचरणान्तिकम् ॥४२७॥  
 तं सज्जितं कापि यातुं प्रेक्ष्याऽथाऽचार्यपण्डिताः ॥  
 पृष्टवन्तः पद्मनाभ सेव्यः काऽस्ते तव प्रभुः ॥४२८॥  
 तदोक्तवान् पद्मनाभः प्रस्थितो नावि मे प्रभुः ॥  
 नौश्चास्माच्चलिता ग्रामादित्यवेत्य विसर्जितः ॥४२९॥  
 पद्मनाभो द्वित्रदिनप्रापितामान्नसंचयम् ॥  
 प्रापय्य श्रीमदाचार्यभाण्डागारे परोक्षतः ॥४३०॥  
 जगाम नावमारूढो देशान्तरमर्किंचनः ॥  
 विसर्जनानन्तरं हि भाण्डागारे परोक्षतः ॥४३१॥  
 श्रीमदाचार्यनिकटे प्रोक्तं यत्प्रापितं गृहे ॥  
 भाण्डागारे स्वमामान्नं पद्मनाभेन तत्समम् ॥४३२॥  
 इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैः सोऽन्नसंकोचतो गतः ॥  
 हन्त ग्रामादितोऽस्माकमावासात्सेवकः खलु ॥४३३॥  
 इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां चतुर्थवार्तामणिः



## वार्ता ५

पद्मनाभस्य या पुत्री तुलसी कीर्तिता पुरा ॥  
 तस्या भगवदीयाया भव्या वार्ता निरूप्यते ॥४३४॥  
 श्रीमदाचार्यचरणसेवकः कोऽपि वैष्णवः ॥  
 आयातस्तुलसागेहे कृतवान् दर्शनं प्रभोः ॥४३५॥  
 तदा तुलसया प्रोक्तं स्नातव्यं वैष्णव त्वया ॥  
 वैष्णवेनेरितं गत्वा स्नास्यामि स्थानके स्वके ॥४३६॥  
 तदा तुलसया तूष्णींभूय स्थितमधोदृशा ॥  
 उक्तं हा वैष्णवो यातो मम गेहादभोजितः ॥४३७॥  
 ज्ञातं ज्ञातं गतो ज्ञात्वा सामग्री रन्धितेति ते ॥  
 शुचयो ब्राह्मणा अन्यजातीया व्यवहारतः ॥४३८॥  
 बाढं भूयः प्रातरहमरन्धितमुदारतः ॥  
 घृतपक्वं प्रसादान्नं चित्रधा रचितं प्रभोः ॥४३९॥  
 भोजयामीति मिष्ठान्नसारं गोधूमपिष्टजम् ॥  
 सुष्वाप तुलसा स्वप्ने मथुरेश उवाच तौ ॥४४०॥  
 वैष्णवात्तं प्रसादान्नं तुलस्या न कथं गृहे ॥  
 अद्य गत्वोपभोक्तव्यं वैष्णव्या सत्कृतेन रे ॥४४१॥  
 तुलसे वैष्णवं तं त्वं प्रसादान्नेन तर्पय ॥  
 स सत्कृतस्त्वया भद्रे भोक्ष्यते नात्मगेहजम् ॥४४२॥  
 इत्याकर्ण्य प्रबुद्धा सा प्रातः स्नात्वा चकार ह ॥  
 पक्वान्नं पूरिकामिष्टमथ श्रीमथुराधिपम् ॥४४३॥  
 प्रबोध्य स्नापयित्वा तु यावच्छृङ्गारयेत् प्रभुम् ॥  
 तावत्समागतः सोऽपि वैष्णवो हरिनोदितः ॥४४४॥



प्रातस्तुलस्याः सदने दर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥

समर्प्यार्थो राजभोगं तुलसा बहिरागता ॥४४५॥

उपविष्टं वैष्णवं तं स्नानार्थमपि चैरयत् ॥

तदोक्तं तेन भो भद्रे प्रातः स्नातं पुनर्मया ॥४४६॥

स्नातव्यमित्येवमुक्त्वा भूयः स्नातः स वैष्णवः ॥

अस्मरच्छरणं कृष्णो ममेति च वदन्मुहुः ॥४४७॥

एतावता तुलसया राजभोगोऽपि सारितः ॥

राजभोगारार्तिकं श्रीदर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥४४८॥

कृत्वाऽनवसरं प्रागात्तुलसा बहिरादरात् ॥

इहासितव्यमिति सा निवेश्य शुचिमानयत् ॥४४९॥

अरन्धितं प्रसादान्नं धृतपक्वाः सुपूरिकाः ॥

वटका मिष्टमित्यग्रे पत्राल्यां परिवेषितम् ॥४५०॥

भोक्तव्यं वैष्णव मुदेत्युक्तं तुलसया तदा ॥

श्रुत्वेरितं वैष्णवेन भोक्ष्ये नेदं हि केवलम् ॥४५१॥

अहं तु रन्धितं भोक्ष्ये तुलसे तत्समानय ॥

तदेरितं तुलसया संकोचः क्रियतां न भोः ॥४५२॥

भवता विसजातीयव्यवहारो विचारितः ॥

तदोक्तं वैष्णवेनेत्थं सत्यं प्राक् हृदि मे स्थितम् ॥४५३॥

परन्तु जातं मे स्वप्ने मथुरेशानुशासनम् ॥

तेन भोक्ष्ये रन्धितं श्रीप्रसादान्नं च नान्यथा ॥४५४॥

इत्यावेदितवृत्तान्तो वैष्णवस्तुलसार्पितम् ॥

रन्धितं तत्प्रसादान्नं वैष्णवो बुभुजे प्रभोः ॥४५५॥

भोजयित्री प्रसादस्य तुलसो वैष्णवश्च भुक् ॥

प्रसीदतो मिथश्चोभौ मथुरेशानुमोदितौ ॥४५६॥



कचिद् गोस्वामिभिर्यातं तुलसाया गृहे मुदा ॥

तत्रैव भोजनं कृत्वा सुप्तमुत्थापनावधि ॥४५७॥

स्वासनेऽथोपविष्टैस्तैस्तां प्रत्युदितमादरात् ॥

कृष्णवार्तानन्तरं भोः पद्मनाभस्य संततिः ॥४५८॥

एवंविधैवोचितेति तुलसे वः प्रभुः क्वचित् ॥

दर्शयत्यनुभावं स्वमिति पृष्टा जगाद सा ॥४५९॥

संशेमहे महाराजाः सम्प्रत्यम्भो, भृतोदरम्

श्रुत्वेति तुष्टास्ते प्रोचुर्वैष्णवस्य प्रभुस्त्वहो

आर्तिं न सहते जातु दयालुरिति मे मतिः ॥ ॥४६०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां पञ्चमवार्ताभिणिः

### वार्ता ६

किंच पूर्वोक्तस्य तस्य पद्मनाभस्य वै स्नुषा ॥

विधवावीरसूः प्रीत्या प्रभोः सेवां सदाचरत् ॥४६१॥

पुरुषोत्तमदासश्च मेघराट् वैष्णवः क्वचित् ॥

प्रीत्या वैष्णवतारीत्या प्रपुनाति स्म यद्गृहम् ॥४६२॥

कियद्दिनोत्तरं साध्वी पार्वती तस्य सा स्नुषा ॥

श्वित्रेण श्वेततां याता रोगेण करपादयोः ॥४६३॥

नानाविधान्नसामग्र्यं प्रभोः सेवां करादिना ॥

तथाविधेन कुर्वन्ती मनसि ग्लानिमानयत् ॥४६४॥

लिखित्वात्मसमाचारान् पत्रं सा पुरुषोत्तमे ॥

प्रेषयामास दीनारं स्वाचार्यार्थमुपायनम् ॥४६५॥

वाचयामास तत्पत्रं पुरुषोत्तमदासकः ॥

यत्त्वमाचार्यनिकटे पृच्छ मे श्वित्रकं कथम् ॥४६६॥



निवर्त्तेताशु संभूतमति पृष्ठाङ्घ्रिहस्तयोः ॥  
 अङ्गसेवां पाकसेवां कुर्वन्त्या ग्लानिरेति मे ॥४६७॥  
 ततोऽत्र कुर्यां किमिति पत्रमादाय सोऽगमत् ॥  
 श्रीमदाचार्यवर्याणामन्तिके स तदाज्ञया ॥४६८॥  
 श्रावयामास पत्रस्थान् समाचारान् व्यजिज्ञपत् ॥  
 पार्वत्योपहृतां स्वर्णमुद्रामग्रे न्यवेदयत् ॥४६९॥  
 तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैः पश्चाद्वक्ष्ये प्रतिक्रियाम् ॥  
 दिनद्वयोत्तरं भूय आचार्यैरेव वेदितम् ॥४७०॥  
 पुरुषोत्तमदासाग्रे तस्याः पत्रे विलिख्यताम् ॥  
 सुखेन पाकाङ्गसेवां कुर्वत्याग्लानिरण्व्यपि ॥४७१॥  
 त्वया न कार्या मनसि प्रभुः क्षेमं विधास्यति ॥  
 रोगं निवृत्तमचिरादिति तैः स विसर्जितः ॥४७२॥  
 पुरुषोत्तमदासोऽपि समायातो निजे गृहे ॥  
 श्रीमदाचार्योक्तरीत्या प्राहिगोल्लिखितं दलम् ॥४७३॥  
 पार्वत्या अपि हस्ताङ्घ्री मासत्रिचतुरान्तरे ॥  
 विनिवृत्तश्चित्ररुजौ सेवया परया प्रभोः ॥४७४॥  
 तुष्टा प्रभुं भजन्ती स्वं पार्वती प्रकृतिं गता ॥  
 भूयः पत्रं स्वर्णमुद्रां प्राहिणोद्भो विभूतमाः ॥४७५॥  
 भवत्प्रसादाद्विरुजा भजामीति विलिख्य सा ॥  
 तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यास्तुष्टा ऊर्चुर्महत्सुखम् ॥  
 जातं प्रभुः स्वया वृत्त्या साहाय्यं कृतवानिति ॥४७६॥  
 इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां षष्ठो वार्तामणिः



## वार्ता ७

पार्वत्याश्चसुतो नाम्ना रघुनाथ इतीरितः ॥

पद्मनाभस्य पौत्रः स गतो वाराणसीं चिरात् ॥४७७॥

तत्र शास्त्रमधीत्योरु श्रीगोकुलमिहागतः ॥

प्रणतः श्रीविठ्ठलेशान्दण्डवत् पूर्ववैष्णवः ॥४७८॥

श्रीमदाचार्यचर्याङ्गीकृतवंश्यानुरोधतः ॥

गोस्वामिपादाः सुकथां कथयन्ति स्म यत्पुरः ॥४७९॥

रघुनाथः शृणोति स्म वाच्यमानां कथांसुधीः ॥

एकदा परमानन्दस्वर्णकारेण चादरात् ॥४८०॥

पृष्ठो भो रघुनाथ त्वं वाराणस्यामधीतवान् ॥

कथां किमनुसंधत्से श्रीगोस्वामिसमीरिताम् ॥४८१॥

तर्हि तां कथयास्माकं श्रोतॄणामविदां पुरः ॥

तदोक्तं रघुनाथेन सत्यं वेद्मि न पद्मतिम् ॥४८२॥

तेन मे बुद्धिविषया न कथेयमिति ध्रुवम् ॥

निशम्य परमानन्दस्वर्णकारेण तत्पुनः ॥४८३॥

श्रीगोस्वाम्यन्तिके प्रोक्तं महाराजधिया खलु ॥

श्रोता न रघुनाथोऽनुसंधत्तेऽप्यपि वः कथाम् ॥४८४॥

इति स्माकर्ण्य गोस्वामिपादास्तं रघुनाथकम् ॥

द्वित्रानध्याप्य स्वाचार्यग्रन्थानाहुः प्रणालिकाम् ॥४८५॥

ततस्तु सर्वं बुबुधे प्रकारं भक्तिवर्त्मनः ॥

शास्त्ररीत्या बुधो जातु कान्यकुब्जे समागतः ॥४८६॥

मातरं पार्वतीं प्राह भविष्यामि पृथक् गृही ॥

प्रभोः सेवां करिष्यामि श्रुत्वेत्थं तं जगाद सा ॥४८७॥



बाढं कुर्वित्यथाऽप्येषा प्रभुं पर्यचरद्बहिः ॥  
 प्रत्यहं नीरमानिन्ये प्रातः पात्राण्यमार्जयत् ॥४८८॥  
 परिचारक्रियां कृत्वा राजभोगोत्तरं गृहे ॥  
 गत्वात्मनः पृथक् कृत्वा लीटिकाः प्रार्पयद्बृदा ॥४८९॥  
 प्रत्यहं प्रभवे तस्मै भुङ्क्तेऽस्यास्तु प्रसादतः ॥  
 पञ्चसप्तदिनान्ते श्रीमथुरेशेन सेरिता ॥४९०॥  
 वधु पार्वति मेत्यन्तं कण्ठः खरखरायते ॥  
 लीटिका भोजिताः शुष्का नित्यं, सूपं क्वचित् कुरु ॥४९१॥  
 तदाकर्ण्येति पार्वत्या प्रोक्तं भो भवता प्रभो ॥  
 भुज्यन्ते वै बहुविधाः सामप्रचोऽस्य गृहे सदा ॥४९२॥  
 कोऽयं हि तव निर्वन्धः शुष्कलोटीप्रभोजने ॥  
 तदोक्तं प्रभुणा भद्रे त्वद्भस्तकृतमद्भ्यहम् ॥४९३॥  
 इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं तद्भितार्थाय पार्वती ॥  
 सूपौदनं शाकमपि कृत्वा प्रार्पयदन्वहम् ॥४९४॥  
 ततोऽचिरादेव तेन पुत्रेणोक्ता च पार्वती ॥  
 त्वमेव तु प्रभोः पाकसेवां कुर्विति चासकृत् ॥४९५॥  
 तदा पुनः पाकसेवां कुर्वाणा पार्वती प्रभोः ॥  
 वत्सला वत्सलस्येव जननी सुखमन्वभूत् ॥४९६॥  
 इतिश्रीमद् वैष्णवकथासुमालायां सप्तमवार्तामणिः ॥

### वार्ता ८

किंचासीत् क्षत्रियाण्येका रज्जोनाम्नीति विश्रुता ॥  
 श्रीवल्लभाचार्यवर्यसेविका शरणं गता ॥४९७॥



नित्यं पक्वान्नसामग्रीं नूतनां विरचय्य सा ॥  
 नक्तं निवेदितवती श्रीमदाचार्यभुक्तये ॥४९८॥  
 तां भुञ्जते स्म ते नित्यं प्रीत्या तद्विनिवेदिताम् ॥  
 आचार्यास्तन्नियमतः कृतया सेवया वशाः ॥४९९॥  
 एकदाचार्यकैस्तात लक्ष्मणस्य क्षयाहनि ॥  
 श्राद्धे विप्रा यथाशक्ति भोजनार्थं निवेशिताः ॥५००॥  
 मानतः सर्वसामग्रीं पूर्णं प्रेक्ष्य घृतं विना ॥  
 तत्रोक्तमाचार्यवर्यैर्वैष्णवान्प्रति किंकरान् ॥५०१॥  
 हंहो रज्जोक्षत्रियाण्या घृतमानयताऽऽशु भोः ॥  
 ततो निशम्याऽऽशु गतस्तदर्थं ह्येकवैष्णवः ॥५०२॥  
 रज्जो देविः शृणु श्रीमदाचार्यैरर्थ्यते घृतम् ॥  
 तदाकर्ण्योक्तं च तया किमर्थं घृतमर्थ्यते ॥५०३॥  
 तेनोक्तं श्रीमदाचार्यैर्भोज्यन्ते ब्राह्मणाः सति ॥  
 विहितस्वपितृश्राद्धैस्तदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ॥५०४॥  
 तदा तयोक्तं न घृतं मेस्तीति प्रतिवर्तितः ॥  
 वैष्णवः स तदाऽगत्य स्वाचार्येषु व्यजिज्ञपत् ॥५०५॥  
 आकर्ण्य पुनराचार्यै रे वाच्या साऽथ मद्विरा ॥  
 घृतं देयमिति क्षिप्रं वैष्णवः प्रहितः पुनः ॥५०६॥  
 स आगतस्तदा रज्जोदेवोमित्यवदत्स्फुटम् ॥  
 भो भद्रे भर्त्सयित्वोक्तमाचार्यैर्देहि त्वं घृतम् ॥५०७॥  
 तदा तयोक्तं नहि मे घृतमस्तीति किं पुनः ॥  
 प्रत्याख्यातः समायातो यथावत्तेषु सोऽवदत् ॥५०८॥  
 तदाकर्ण्याऽचार्यवर्यैस्तूष्णींभूतैर्जनान्तरान् ॥  
 घृतमानाय्य ते विप्रा भोजिताः परमादरात् ॥५०९॥



रात्रौ रज्जोक्षत्रियाणी नित्यसेवापरायणा ॥

प्राप्ता पक्वान्नसामग्रीमादायाचार्यसंमुखम् ॥५१०॥

तां दृष्ट्वा श्रीमदाचार्याः पृष्ठं कृत्वाऽत्मनः स्थिताः

इत्यद्भुतं च सा प्रेक्ष्य विज्ञप्तिं कृतवत्यभूत् ॥५११॥

महाराजाः कोऽपराधो ममेति विनिरूप्यताम् ॥

तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः शृणु मे प्रियकारिणि ॥५१२॥

पितृलक्ष्मणभट्टस्य क्षयश्राद्धेऽद्य भोजिताः

विप्रास्तदर्थं हि मया घृतं त्वद्गृहतोऽर्थितम् ॥५१३॥

तत्त्वया न कथं दत्तमिति क्षिप्ताऽथ साऽवदत् ॥

नाऽस्मि लक्ष्मणभट्टस्य दासिका भवतामहम् ॥५१४॥

दद्यां यच्छ्राद्धभुग्विप्रभोजनार्थं घृतं प्रभो ॥

भवतां किं गृहे तन्न हरेश्चेद्रः समो विधिः ॥५१५॥

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वाऽऽचार्यास्तूष्णीं तदाऽभवन् ॥

ततस्तया पुरोन्यस्तां सामग्रीं नित्यवन् मुदा ॥५१६॥

वीक्ष्याचार्यैर्वचः प्रोक्तमद्य श्राद्धदिने मया ॥

भोक्तव्यं न पुनर्भद्रे द्विर्न भोज्यमिति स्मृतेः ॥५१७॥

तदाकर्ण्य तया प्रोक्तमाचार्याः सत्यमुच्यते ॥

वर्ज्यं पुनर्भोजनं तु स्वगेहजमिति स्मृतेः ॥५१८॥

व्यवस्थितिं विचार्याऽर्या भक्ष्यं ग्राह्यमिदं हि वः ॥

इत्याकर्ण्य ज्ञातहार्दिराचार्यै स्तत्सदाग्रहात् ॥५१९॥

भुक्तं प्रभोः प्रसादात् पक्वान्नं घृतपाचितम् ॥

एतादृक् श्रीमदाचार्यकृपापात्रं बभूव सा ॥

रज्जोनाम्नी क्षत्रियाणी कृष्णसेवा परायणा ॥५२०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालायामष्टमवार्तामणिः



श्रीद्वारकेशो जयति

[ श्रीद्वा. ग्र. माला का पुष्प १३ ]

# प्राचीन वार्ता-रहस्य

द्वितीय भाग

अष्ट-छाप

श्रीहरिरायजी कृन् भावप्रकाश, (ब्रजभाषा)  
मूल वार्ता एवं प्रासंगिक ऐतिहासिक  
विवेचन ( गुजराती ) सहित, सचित्र-

सम्पादक-प्रकाशक

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख  
श्रीविद्याविभाग-कांकरोली

वि. सं. १९९८

श्रीसूर शरणागति  
संवत् ४३१

श्रीवल्लभान्द ४६३

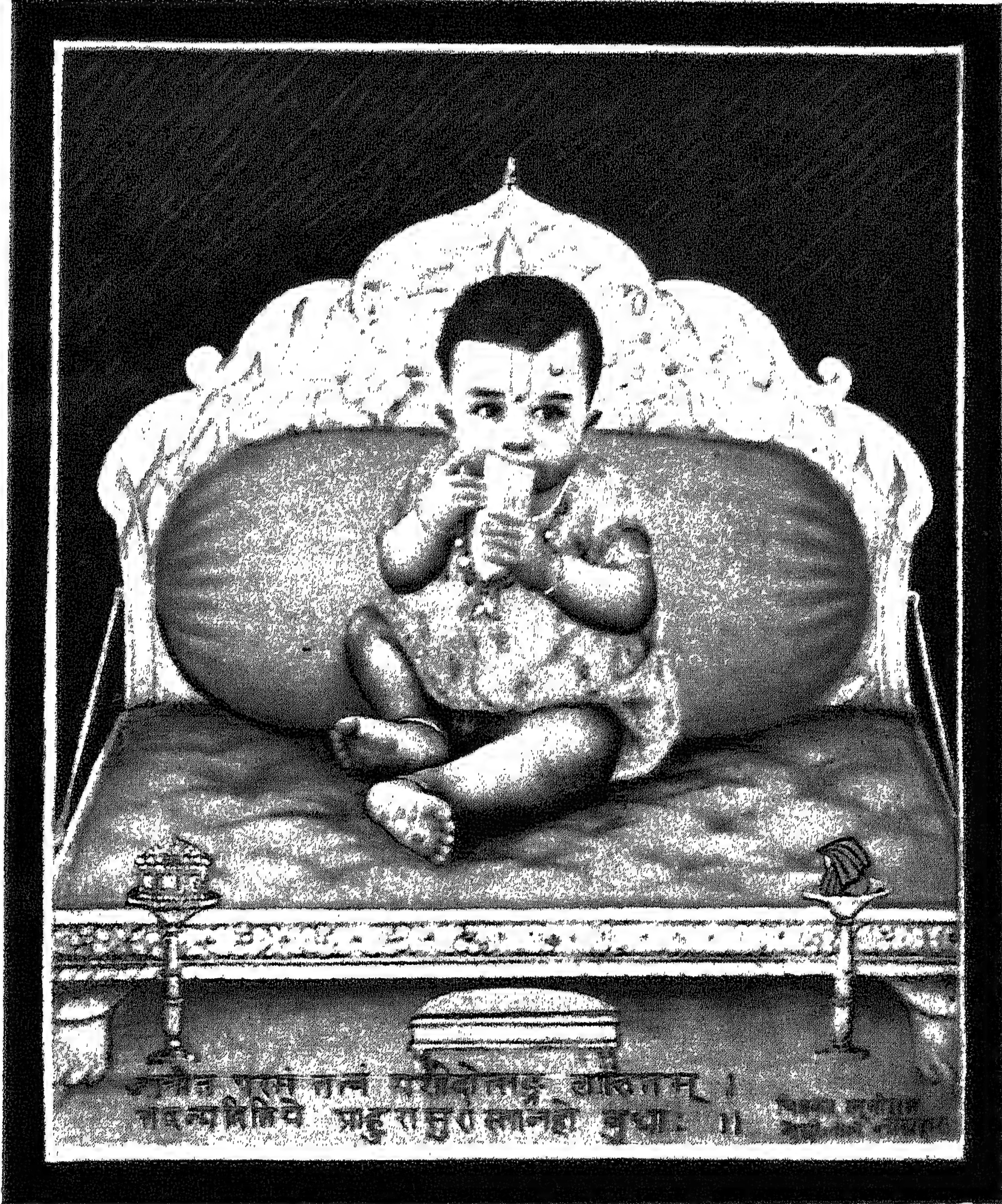


प्रकाशक—  
पो. कण्ठमणि शास्त्री विशारद  
संचालक  
विद्याविभाग, कांकरोली

प्रथमावृत्ति ५००	}	सर्व स्वत्व स्वाधीन श्रीसूर जयन्ती वैशाख शु. ५	}	मूल्य २)
---------------------	---	---------------------------------------------------	---	-------------

धी वीरविजय प्रीन्टिंग प्रेसमां, शाह कैशवलाल सांकलचंदे छाप्युं,  
ठेकाणुं: सलापोस कोसरोड : अमदावाद.





गो० श्रीव्रजभूषणात्मज

चि० श्रीनिरिधरगोपाल

गंगा-क्लाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ







## विषय-सूचिका



संख्या	वार्ता	पृष्ठ
१	सूरदासजी ...	१ से ५७
२	परमानन्ददासजी (तथा कपूरक्षत्री)	५८ से १००
३	कुंभनदासजी ( तथा तत्पुत्र कृष्णदास )	१०१ से १७५
४	कृष्णदासजी (तथा अद्भूतदास)...	१७६ से २४६
५	छीतस्वामी ...	२४७ से २६३
६	गोविन्दस्वामी ...	२६४ से २८९
७	चतुर्भुजदास (तथा तत्पुत्र राघवदास)	२९० से ३२५
८	नन्ददास...	३२६ से ३५२



## गुजराती विभाग-ऐतिहासिक विवरण-



१	श्रीसूर ...	१ से ५२
२	परमानन्ददासजी ...	५३ से ६८
३	कुंभनदासजी ...	६९ से ८०
४	कृष्णदासजी ...	८१ से ९०*
५	छीतस्वामी ...	९१ से ९३
६	गोविन्दस्वामी ...	९४ से ९६
७	चत्रभुजदास ...	९७ से ९८
८	नन्ददास ...	९९ से ११७



\* प्रेस की असावधानी से कृष्णदासजी की 'काव्यसुधा ऊपर एक दृष्टि' और चरित्र-विवरण पत्र ११८-१९ पर दिया जा सका है।

—सम्पादक।



## श्रीद्वारकेशो जयति ।

### वक्तव्य—

श्रीद्वारकेश प्रभु के अनुग्रह बलसे प्रेरित होकर आज हम फिर 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' का द्वितीय भाग 'अष्टछाप' के नामसे साहित्य-सेवियों के आगे उपस्थित कर रहे हैं । आज से लगभग १॥ वर्ष पूर्व प्रथम भाग को प्रकाशित कर जिस सत्प्रयत्न में हाथ लगाया गया था, आज वही अपने अग्रिम रूपमें पुष्पित हो रहा है, जिसके लिये हम श्रीप्रभुकी आन्तरिक प्रेरणा ही कारणरूप मानते हैं ।

प्रथम भाग में चौरासी वार्ताओं की आदि की आठ वार्ताएँ श्री हरिरायजी के 'भाव-प्रकाश' के साथ प्रकाशित की गई थी, और परिशिष्ट में 'श्रीनाथदेव' कृत संस्कृतवार्ता-मणिमाला ( जो अन्यत्र अप्राप्त थी ) यथामति संशोधित कर छपाई गई थी । यद्यपि नियमानुसार उसके आगेकी अन्य वार्ताएँ प्रकाशित करना उपयुक्त था, पर ऐसा न करने के लिये दो कारणों से बाध्य होना पड़ा है—

१ 'आधुनिक पुष्टिमार्गीय भाषा-साहित्य नी शोच्यस्थिति' नामक गुजराती पुस्तक में उपलब्ध वार्ता-संस्करणों के आधार पर उसका आन्तरिक रहस्य और उससे प्राप्त होनेवाली शिक्षा की ओर ध्यान न देकर अष्टसखाओं में से अन्यतम कृष्णदासजी और नन्ददासजी की वार्ता पर आक्षेप किया गया था । जिसका स्पष्टीकरण और समाधान प्राचीन वार्ता की लेखन-शैली तथा उस पर लिखे गये श्रीहरिरायजी के 'भावप्रकाश' से ही होता है । अतः सर्वप्रथम उसका प्रकाशन करना अत्यावश्यक समझा गया ।

२ वर्तमान हिन्दी साहित्य-जगतमें आज एक ऐसा भी स्वयंभू समालोचक समुदाय उत्पन्न हो गया है जो—प्राचीन साहित्य के साथ



जहां आंख मिचौनी खेलता है, वहां उसे विकृत कर देने में भी अपना परम पुरुषार्थ समझता है। इसी का परिणाम है कि—प्राचीन समय से सुव्यवस्थित अष्टसखाओं के जीवन चरित्र पर भी समालोचना और गवेषणा के नाम पर मनमाना लिखा जा रहा है, जिसका आज नहीं तो कल की भावी सन्तान पर बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना है। इस दूषित मनोवृत्ति एवं अन्वेषण की मिथ्या ख्याति—लोभ ने सत्य पर पड़दा डालने की कुचेष्टा की है। इस वृथा जलताडन से जहां वृथा साहित्यिक श्रम हुआ है, वहां उन महानुभावों के प्रति भी अन्याय हुआ है जो—हमारे साहित्य के उज्ज्वल रत्न थे। क्या इस साहित्यिक पापाचरण से उन लोगों की मुक्ति हो सकती है? जो ब्रज—भारती की आत्मा का हनन करते हैं!

संक्षेप में कहाजाय तो हमारी साहित्य के प्रकाशन में अभी वही मनोवृत्ति काम कर रही है जो—एक सोंठ कों लेकर पसारी कहलाने वाले की होती है। अनन्त एवं अप्रकाशित साहित्य आज भी अनन्त अज्ञात रहस्य को अपने भीतर छिपाये हुए हैं, इस सत्यकी हठाग्रही व्यक्ति ही उपेक्षा कर सकता है।

वास्तव में ऐतिहासिक वृत्तान्तों के लिये तात्कालीन अथवा निकटवर्ती व्यक्ति का लेख जितना प्रामाणिक ठहर सकता है, उतना वर्तमान कालिक का नहीं। हमें यह कहते हुए आत्मसन्तोष एवं गौरव होता है कि—वार्ता रचना के समसामयिक विद्वान लेखक श्री-हरिरायजीने हमारे उन बहुत से अन्धतम प्रश्नों को दूरीकरग अपने 'भाव-प्रकाश' द्वारा कर दिया है जो—साहित्य-सेवियों के

---

\* देखो 'साहित्य-सन्देश' (आगरा) वर्ष १९९७ अंक आषाढ, ११ पृष्ठ ४२५ 'सूरदासजी किसके शिष्य थे' (चुनीलाल शेषका लेख).



आगे चरित्रान्वेषण में विकट पहेली बने हुए हैं, और जिसका प्रस्तुत प्रकाशन किया जा रहा है।

प्रसंगोपात्त वार्ता के रचना-काल के सम्बन्ध में भी हम दो शब्द कहकर बहुत समयसे उलझे हुए इस प्रश्न को सुलझा देना चाहते हैं, जिस पर साहित्यिक महारथियों ने अपने २ तीर तरकसों का अस्थाने प्रयोग किया है।

हिन्दी साहित्य में जब भी गद्यसाहित्यका इतिहास लिखा जाता है, उसके धीरबुद्धि लेखक ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्ता-लेखक के नाम पर श्रीगोकुलनाथजी का नाम लिखा करते हैं, जो श्रीवल्लभाचार्य के पौत्र और श्रीगुसांइंजीके चतुर्थ पुत्र थे इनका समय सं. १६०८ से १६९७ के अंत तक है।

वल्लभाचार्य के चोराशी वैष्णवों के चरित्रात्मक प्रसंग श्रीगोकुलनाथजी के जन्म के पूर्व भी सम्प्रदाय-साहित्य में स्थान पा चुके थे, जिसका सर्वप्रथम दर्शन 'सम्प्रदाय प्रदीप' (रचना काल सं. १६१०) में संक्षिप्त रूप में होता है। इसके अनन्तर श्रीगोकुलनाथजीने कथा-शैली में उनको प्रसंगात्मक रूप दिया, जिसका उल्लेख उनके अनुज रघुनाथजी के पुत्र देवकीनंदनजी, सारचित 'प्रभु-चरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार करते हैं—

‘तदपि भगवत्सेवापरैः श्रीगोकुलनाथैः शयनभोग-सेवोत्तरलब्ध-गाथावसरैः, सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथा-कथनानंतरं श्रीमदाचार्य-तदात्मज-चरितकथापि नियमेन परिगृहीता वक्तुम् ×

---

× देखो विद्याविभाग कांकरोली द्वारा शिघ्र प्रकाशित होनेवाला 'श्रीविठ्ठलेश चरितामृत' तथा 'प्रभुचरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ।



इस से यह विदित होता है कि—श्रीगोकुलनाथजी कथा प्रवचनों में श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी के, प्रचलित निजवार्ता, बैठक चरित्र, घरुवार्ता और सेवकों से संबंध रखने वाले चरित्र (वार्ता के प्रसंग) वर्णन करते थे। यही समय है, जब वार्ताएँ कथानकरूप में वैष्णवों के समक्ष उपस्थित हुईं। आदर्श तथा शिक्षा के लिये इसी समय से वार्ताएँ वैष्णव-समाज में व्यापकरूप धारण करती गईं। इसके कुछ समय बाद संग्रह की साहजिक मानवीय लिप्सा वृत्तिने उन्हें सुरक्षित रखने की आवश्यकता का अनुभव किया। जिसके कारण वे अव्यवस्थित रूप में लिखी जाने लगीं।

श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी के यद्यपि चतुर्थ पुत्र थे, पर वे अपने अन्य छै भाइयों की अपेक्षा अधिक समय (सं. १६९७ फाल्गुन कृष्ण ९) तक विद्यमान रहे। इसी कारण वे तत्समय में शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य और नियामक पद पर प्रतिष्ठित रहे। ऐसी अवस्था में उनके द्वारा प्रवचन रूप में कही जानेवाली वार्ताओं के संरक्षण की आवश्यकता प्रतीत हुई और वे उन्हीं की विद्यमानता एवं उन्हीं के तत्वाधान में उन्हीं के शिष्य श्रीहरिरायजी के द्वारा व्यवस्थित रूपमें संग्रहीत की गईं। इस प्रकार वार्ता-साहित्य के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी सिद्ध होते हैं।

यह तो निर्विवाद है कि—उस समय किसी भी ग्रन्थ की लिपि हो जाने पर क्रमशः उसकी प्रतिलिपियों में परिवर्द्धन होना प्रारंभ हो जाता था, जिसका फल आज हमारे सामने यह है कि—मूल रूप में रचनाकाल की वार्ताएँ उपलब्ध नहीं होती। फिर भी यह तो छाती ठोक कर कहा जा सकता है कि—श्रीगोकुलनाथजी के समय वार्ता का जो रूप था, वह बहुत



थोड़े परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ हमें उसकी रचनाकाल के थोड़े ही समय के बाद की प्रतिलिपि से मिल जाता है ।

इस प्रकार मूल वार्ताओं का मौखिक प्रवचन समय सं. १६४२ से १६४५ तक निर्धारित होता है । जब श्रीगुसांईजी का तिरोधान हो जाता है और श्रीगोकुलनाथजी की उत्कृष्टता का समय आता है ।

कांकरोली-विद्याविभाग 'सरस्वती भंडार' में ८४ वैष्णव की वार्ता की एक प्रति मिलती है जिसका लेखनकाल सं. १६९७ चैत्र सुदी ५, स्थान श्रीगोकुल है, और जिसका ब्लॉक हम इस के साथ छाप रहे हैं । इस को हम सम्प्रदाय की सब से प्राचीन वार्ता की पुस्तक तक कह सकते हैं जब तक अन्य और कोई प्राचीनतम पुस्तक नहीं मिल जाती । जहां तक ध्यान है इससे प्राचीन और उसी स्थान की लिखित पुस्तक—जहां उन दिनों श्रीगोकुलनाथजी का निवास था—अन्यत्र है भी नहीं । अतएव इस ग्रन्थ को हम पूर्ण प्रामाणिक मानने को विवश है, और यह इसलिये भी कि—श्रीगोकुलनाथजी के तिरोधान के ११ मास पहिले ही यह लिखी गई है ।

यहसंभव नहीं है कि—यह ग्रन्थ श्रीगोकुलनाथजी के दृष्टिपथ में न आया हो । यह पुस्तक श्रीद्वारकाधीश प्रभु के 'सरस्वती-भंडार' के साथ गोकुल से कांकरोली में आई थी ।\*

अतः यह कहना प्रासंगिक होगा कि—कम से कम सं. १६९७ तक वार्ता की पुस्तकों का लिपिवद्ध संस्करण हो चुका था, और वे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगी थीं । इन वार्ताओं के आन्तरिक रहस्य और तात्कालीन परिज्ञान इतिहास को प्रकाश में लाने का श्रेय श्रीहरिराय महाप्रभु ( सं. १६४७ से १७७२ ) को है । यह



दीर्घजीवी और सम्प्रदाय के अन्यतम ख्यातनामा विद्वान् आचार्य थे । उन्होंने वार्ता के ऊपर 'भाव—प्रकाश' नामक टिप्पण किया, जिससे जहां उनके बहुत कुछ संदेहों का निरस हो गया वहां वार्ता का एक स्थितरूप भी निर्धारित हो गया । इसी कारण से उनके बाद वार्ताएँ प्रायः एक ही रूपमें लिखी मिलती हैं ।

इन सब कारणों को देख कर हम यह कह सकते हैं कि वार्ता के कितने लिखित संस्करण हुए—

**प्रथम संस्करण**—श्रीगोकुलनाथजी के कथा प्रवचन के समय का मूलरूप जो उनके हास्य प्रसंगों के समान वचनामृत रूप में प्राप्त होता है । न तो इस में ८४ और २५२ का वर्गीकरण ही हुआ है और न सभी वैष्णवों की वार्ताएँ ही इस में लिखी गई हैं । इसे हम संप्रहात्मक वार्ता साहित्य कह सकते हैं ।

इसकी कई प्रतियां कांकरोली विद्याविभाग में और अन्यत्र भी उपलब्ध होती हैं । इसी का अर्द्ध गुजरातीभाषा मिश्रित व्रजभाषात्मक रूपान्तर भी प्राप्त होता है, जो गुजरात में प्रचलित अथवा उसी देश के लेखकों द्वारा लिखी जाने से इस रूप में जहां तहां मिलता है । संभवतः इसी रूपान्तरवाली वार्ता को ग्रन्थ स्व. रामचन्द्रजी शुक्ल को प्राप्त हुआ होगा जिसके कारण वे वार्ताको प्रमाण कौटि में रखने से हिचकिचाते थे । और उसे गुजराती रचयिता की रचना मानकर बिचक गये थे । यद्यपि कई विद्वान् लेखक वार्ताओं को प्रमाण मानते हैं और उनके द्वारा बहुत कुछ उलझी हुई चरित्रसम्बन्धी समस्याओं का हल निकालते हैं । पर हमारे शुक्लजी इससे कनी काटते रहे हैं ।

---

\* इस संग्रहालय में १४ वीं शताब्दि तक के लिखित कई ग्रन्थ विद्यमान हैं—एक प्रतिलिपि तो ग्यारहवीं शताब्दी की भी उपलब्ध होती है ।



इसका समय सं. १६४५ से सं. १६९० तक माना जा सकता है।

**द्वितीय संस्करण**—श्रीगोकुलनाथजी के समय और तत्वावधान में श्रीहरिरायजी के द्वारा हुआ। इस समय वार्ताओंका वर्गीकरण और संकलन करते हुए 'चौरासी' तथा 'दोसौ बावन' वैष्णव संख्या का क्रम रक्खा गया X इस समय की वार्ताओं में प्रसंग आने पर 'श्रीगोकुलनाथजी' के नामका निर्देश होने लगा, जो श्रीहरिरायजीने अपनी ओर से संनिविष्ट किया है। उसी कारण कई इतिहास लेखकों को भ्रम हो गया है कि—“वार्ता में श्रीगोकुलनाथजी का नाम आनेसे—वह उनकी रचित नहीं है। यदि वार्ताएँ श्रीगोकुलनाथजी रचित होतीं तो वे अपने नाम के स्थान पर 'अस्मद्' शब्द का व्यवहार करते। अस्तु।

इस संस्करणका समय सं. १६९४ से सं. १७३५ तक माना जा सकता है। इस समय की उल्लिखित एक पुस्तक हमारे यहां सं. १६९७ की लिखि दिखान है। इस द्वितीय संस्करण के समय हरिरायजी की वय लगभग ४३ वर्ष की थी जो उनकी प्रौढ़ता की द्योतक है।

**तृतीय संस्करण**—श्रीगोकुलनाथजी के अनन्तर और श्रीहरिरायजी के समय इसका संकलन हुआ। इस समय वार्ता में ऐसे आवश्यक प्रसंग वाक्य भी सम्मिलित हो गये, जिनके बिना प्रसंग की अपूर्णता विदित होती थी। अथवा जो आवश्यक स्पष्टीकरण के लिये उपयुक्त जचते थे। इसी समय में श्रीहरिरायजीने अपना 'भावप्रकाश'

X सं. कल्पद्रुम पत्र १४७ दोहा:—“भाषा शिक्षापत्र किय, चौरासी नृपमान ! ७१। संख्या का रहस्य भी श्रीहरिरायजी ने ही अपने भाव प्रकाश में बतलाया है। (देखो प्राचीनवार्तारहस्य प्रथम भाग पत्र. १५-१६)।







जया श्री गोवर्धन नाथ जी सदा प्रसेन रहते। ताते  
 नकी वाती को पारनाही। सो कहता ई लिखिए॥ वा  
 नोदश मु॥ १५॥ अ न श्री गुरु मां ज्ञा के म न क नंद  
 दास मनो दिया ज्ञा ह्य गति न क प द गार् य त र स  
 वे पूर्व से रहते तिन का वाता॥ सो वे नंद दास और तु  
 लसी दास दो भाई रहते। ताने वडे तो तुलसी दास छो  
 रे नंद दास। सो वे नंद दास पटे वृजत हते। और तुलसी  
 दास तो रामानंदी के सेवक हते। सो नंद दास जी को ह्य  
 रामानंदी के सेवक की एहते। सो नंद दास को तो लौकिक  
 विषे वृजत आसक्ति हती। सो जो क ह भ वै याना वते  
 सो तहां जाय देखते। और जो को जगावते। तहां जा  
 एके सुनते। अपनो काम का ज छोडि के रा गर ग सुन  
 ते। तव वडे भाई तुलसी दास वृजत सम का वते। और  
 र कहते जो तू जहां तहां भटकत फिरत है। सो आछे  
 नाही। पर नंद दास जी माने नाही। सो एक दिन पूर्व को  
 संग श्री चरित्र को श्री गण छोड जी के दरसन को च

२२४

सो कहता ई लिखिये॥ व न श्री गण ॥ १६॥ इति  
 श्री गुरु मां ज्ञा के म न क नंद दास मनो दिया ज्ञा ह्य गति न क प द गार् य त र स  
 वे पूर्व से रहते तिन का वाता॥ सो वे नंद दास और तु  
 लसी दास दो भाई रहते। ताने वडे तो तुलसी दास छो  
 रे नंद दास। सो वे नंद दास पटे वृजत हते। और तुलसी  
 दास तो रामानंदी के सेवक हते। सो नंद दास जी को ह्य  
 रामानंदी के सेवक की एहते। सो नंद दास को तो लौकिक  
 विषे वृजत आसक्ति हती। सो जो क ह भ वै याना वते  
 सो तहां जाय देखते। और जो को जगावते। तहां जा  
 एके सुनते। अपनो काम का ज छोडि के रा गर ग सुन  
 ते। तव वडे भाई तुलसी दास वृजत सम का वते। और  
 र कहते जो तू जहां तहां भटकत फिरत है। सो आछे  
 नाही। पर नंद दास जी माने नाही। सो एक दिन पूर्व को  
 संग श्री चरित्र को श्री गण छोड जी के दरसन को च

२५३



नामक टिप्पण लिखा, जो वार्ता के हार्द को विशेषता के साथ समझाने में समर्थ है\*

इस संस्करण का समय सं. १७३५ के अनन्तर सं. १७८० तक आता है। इस प्रकार १३५ वर्षों के बीच में लगभग प्रति ४५ वर्ष पर होनेवाले संस्करणवाली विविध वार्ताओं के अध्ययन से स्पष्टतया विदित होता है कि—वार्ताओं में उत्तरोत्तर वाक्य बिन्यास बढ़ता चला गया है, और प्रायः स्पष्टीकरण के साथ उस के कथानक को समझाने की चेष्टाएँ की गई हैं। ऐसा होने पर भी उनका मूल अंश जहाँ का तहाँ सुरक्षित रखा गया है। अतएव उसका वास्तविक रूप विकृत हो गया है, इस प्रकार का आक्षेप करना केवल अज्ञान—विजृम्भण है।

इस के प्रमाण में द्वितीय और तृतीय संस्करण के रूपान्तर वाली वार्ता में से नंददासजी के कुछ प्रारंभिक प्रसंग को उद्धृत कर देना उचित प्रतीत होता है—

१ सं. १६९७ की वार्ता—जिसका चित्र दिया गया है—में लिखा है—

“अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददास सनोढ़िया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हैं, सो वे पूर्व में रहते तिनकी वार्ता। सो वे नंददास और तुलसीदास दोउ भाइ हते। तामें बड़े तो तुलसीदास, छोटे नंददास।

---

\* भावप्रकाश की रचना के बाद होने वाली वार्ता की प्रति लिपियों में लेखकों की असावधानीता से भावप्रकाश का बहुत कुछ अंश वार्ता के रूप में सम्मिलित हो कर प्रचलित हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप दोनों का सम्मिश्रण हो गया है। यह विना अध्ययन और परिश्रम के समझा नहीं जा सकता। चलती पंक्ति में विना स्थान छोड़े बराबर लिखते जाना भी इसका द्वितीय कारण हो सकता है।



सो वे नंददास पढ़े बहुत हंते । और तुलसीदास तो रामानंद के सेवक हते” ।

२ सं. १७५२ की ‘भावप्रकाश’ वाली पुस्तक—जिसके आधार पर यह पुस्तक प्रकाशित की गई है—में लिखा है—

“अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददासजी सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुर में रहते, जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं, तिनकी वार्ता । सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मण हते । सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नंददासजी हे । सो वे नंददासजी पढ़े बहुत हते । और तुलसीदास तो रामानंदीन के सेवक हते ।”

विद्वान् समालोचक देखें कि—दोनों संस्करणों में मूल वार्ता का रूप बिगड़ा नहीं है, प्रत्युत वह अर्वाचीन पुस्तक में विशेष स्पष्टीकरण के साथ दिया गया है । शब्दों का रूपान्तर जैसे बहुत का बहोत, गई का गयी, और नाम के साथ ‘जी’ का प्रयोग आदि दोनों संस्करणों के स्पष्टतः विभाजक हैं । प्रसंगों की संख्या की न्यूनता और वृद्धि भी इसी प्रकार का एक अन्यतम विभाजक है । जिससे प्रथम की अपेक्षा दूसरे संस्करण का रूप विशाल हो गया है ।

जैसा कि—प्रथम भाग प्रकाशित किया गया है और ग्रन्थ के नाम स्वरूप से अवगत होता है, वार्ताओं के रहस्य को प्रकाशित कर उस पर आनेवाले आक्षेपों का परिहार करना हमारा उद्देश्य है ।

इस प्रकार का सद्नुष्ठान श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश से ही संभव है । उन्होंने अनेक यात्राएँ कर बहुत कुछ उन उन स्थानों में अन्वेषण किया था, जहाँ चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों का निवास था । उनकी इसी खोज के बल पर आज नहीं तो कल इतिहास प्रेमी उन ऐतिहासिक अंश को सत्य सिद्ध होते देखेंगे जो—साहित्य जगत में आज विवादास्पद हो रहे हैं ।



इसो प्रकार एक विवाद का विषय नंददासजी और तुलसीदासजी का भ्रातृत्वभाव है। उक्त दोनों महानुभाव चाहे चचेरे भाई हों चाहे सोदर, पर थे वे भाई ही; उनके भ्रातृत्व का सर्वथा लोप नहीं किया जा सकता। उनका पारस्परिक भ्रातृत्व—साम्मुख्य ६३ के समान ही है ३६ के समान नहीं। ऐसा ही एक प्रश्न उनके सरयूपारोण अथवा सनाढ्य ब्राह्मण होने का है। आज जहां प्रस्तुत संशयापनोदन के लिये प्राचीन ग्रन्थ और उनके प्रमाण प्रकाशित किये जा रहे हैं, वहां हमारे यहां की सं. १९९७ की वार्ता उसका स्पष्ट निर्देश कर देती है।

तुलसीदासजी का अन्तिम समय सं. १६८० निर्धारित है। इसके १७ वर्ष बाद उक्त वार्ता का लेखनकाल (सं. १६९७) आता है। इस वार्ता के लेखन समय में तुलसीदासजी के समसामयिक इस वार्ता का लेखक चुन्नीलाल ब्राह्मण, श्रीहरिरायजी महानुभाव और शु. सम्प्रदाय के आचार्य श्रीगोकुलनाथजी यह तीन व्यक्ति तो अवश्य ही विद्यमान थे, जिन्हे किसी जाति विशेष से कोई ममत्व न था। इस स्वल्प समय में (१७ वर्ष के भीतर) ही तुलसीदासजी और नन्ददासजी के भ्रातृत्व और जाति के विषय में अंधाधुन्वी फैल जाना, किंवा उनके सम्बन्ध में इतनी अपरिचितता हो जाना इस बात को हठाग्रही के सिवाय स्थितप्रज्ञ विद्वान तो मानने को तयार नहीं होगा। अस्तु,

इस कथन से हमारा तात्पर्य वार्ता की उस प्रामाणिकता की ओर है जिस पर बिना देखे भाले कलम उठाई जाती है। वार्ता की इस प्रामाणिकता की सिद्धि बाद में लिखे गये श्रीहरिरायजी के भावप्रकाश से और भी होती है।



— ऐसी अवस्था में प्राचीनता अथच लोकप्रियता के नाते सं. १६९७ की पुस्तक के आधार पर प्रस्तुत द्वि. भाग प्रकाशित करना यद्यपि उपयुक्त था परन्तु ऐसा करने में हमारे सम्मुख कुछ कठिनाइयाँ थी और प्रस्तावित आयोजना में व्यतिक्रम हो जाने की संभावना भी । हां तो सबसे बड़ी कठिन समस्या हमारे उद्दिष्ट आयोजन की पूर्ति में यह है कि—हम उस सं. १६९७ की लिखित प्राचीन वार्ता को यथावत् रूप में इसलिये प्रकाशित नहीं कर सके, क्योंकि इस के ऊपर भावप्रकाश नहीं मिलता है, और जिस सं. १७५२ वाली प्रति पर भावप्रकाश मिलता है, उसके प्रसंग उस प्राचीन प्रति के क्रम से मेल नहीं खाते । इस कारण हमें सं. १७५२ की प्रति को ही प्रकाशित करने में विवश होना पड़ा है । इससे एक यह बात भी विदित होती है कि भावप्रकाश की रचना सं. १७३५ के आसपास हुई है ।\*

जैसा कि प्रसिद्ध एवं निश्चित है, वार्ताओं के रचयिता श्रीगोकुल-नाथजी और उसके सम्पादक श्रीहरिरायजी हैं । कहने का तात्पर्य यह कि—वार्ताओं का रचयिता गोस्वामि वंशोद्भव कोई समर्थ विद्वान् एवं सेवाशृंगार—प्रणाली का अतिशय विज्ञ और सम्प्रदाय का नियामक व्यक्ति ही हो सकता है ।

नीचे लिखी बातों पर ध्यान देने से हमारे कथन की सत्यता सिद्ध हो सकती है:—

१ वार्ताओं का अतिशय प्रचार और उनकी मान्यता ।

श्रीवल्लभाचार्य के सम्प्रदायानुयायियों के लिये यह प्रसिद्ध है कि—

---

\* सम्प्रदाय कल्पद्रुम—जिसकी रचना सं. १७२९ में हरिरायजी के शिष्य विठ्ठलनाथ भट्टने की है—में हरिरायजी के रचित ग्रन्थों की सूची में 'भावप्रकाश' का नाम नहीं दिया है ।



वे अन्य सब प्रमाणों की अपेक्षा अपने गुरुवाक्य पर अधिक श्रद्धा रखते हैं. वार्ताओं का जितना प्रचलन और मान्यता है उतनी श्रीवल्लभाचार्य रचित षोडश ग्रन्थों के सिवाय अन्य किसी सांप्रदायिक ग्रन्थ को नहीं है। किसी गोस्वामिमहानुभाव के सिवाय अन्य वैष्णव द्वारा रचित ग्रन्थ का इतना प्रचलन सर्वथा असंभव है। आज वार्ताओं को न केवल वैष्णवसमाज ही मानता है अपितु गोस्वामिवंशज भी उसको उतनी ही मान्यता प्रदान करता है, जितना आचार्यवाणी को। किसी वैष्णव की रची हुई वार्ताएँ सम्प्रदाय में इतनी लोक-प्रिय नहीं हो सकतीं.

२ वार्ताओं में सम्प्रदाय के सिद्धान्त की सूक्ष्म विवेचना और सेवाप्रणाली की आन्तरिक रहस्यमय विचारशैली की विद्यमानता।

वार्ताओं में जिस सूक्ष्म सेवाप्रणाली और आन्तरिक रहस्यमय सिद्धान्तों का वर्णन है, गोस्वामिवंशज के सिवाय अन्य का उनका परिज्ञान होना सर्वथा असंभव है, कोई साधारण वैष्णव उनका वर्णन नहीं कर सकता। इसी प्रकार समय समय पर गाये जाने वाले कीर्तन जिन्हें अष्टछाप के कवियों ने तत्कालीन समय बना कर गाया है, सेवा में रहने वाला व्यक्ति ही जान सकता है। यह सर्व विदित है कि—श्रीनाथजी की सेवा श्रीगुसांइजी और उनके सातों पुत्र एवं उनके वंशज ही किया करते थे।

ऐसी अवस्था में यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि—वार्ताओं के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी ही थे. वार्ता के कई इतिहास-लेखक यह शंका उठाया करते हैं कि—वार्ताओं की रचना श्रीगोकुलनाथजी के किसी सेवक ने की है, इसका कारण यह दिया जाता है कि—स्थान स्थान पर गोकुलनाथजी की प्रशंसा के वाक्य मिलते हैं। पर यह कथन



ठीक नहीं हैं। वार्ताओं के सतत अभ्यस से यह छिपा नहीं रहेगा कि—  
वार्ता में गोकुलनाथजी की अपेक्षा गुसांइजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी  
की कहीं अधिक प्रशंसा की गई है। \*

गोकुलनाथजी के शिष्य अपने गुरु की प्रशंसा करने के लिये  
सबसे अधिक प्रख्यात हैं, यहां तक कि—वे उन्हें श्रीप्रभु से  
कुछ कम नहीं मानते। ऐसी अवस्था में उनका कोई सेवक यदि वार्ता  
लिखता तो वह या तो श्रीगिरिधरजी के प्रशंसापरक कई प्रसंगों को  
उड़ाहीं जाता, अथवा वह उसे इस रूप में लिखता जिससे गिरिधरजी  
की कक्षा से गोकुलनाथजी को न्यून न बतलाना पड़ता। वास्तव में  
गोकुलनाथजी के सेवकों रचित अन्य ग्रन्थ देखे जावें तो उससे गिरि-  
धरजी की निन्दा ही मालूम पड़ेगी। अतः यह कहना कि गुरु की  
प्रशंसा लिखी होने के कारण गोकुलनाथजी के किसी गुजराती शिष्य ने  
वार्ता की रचना की है, अपरिपक्वबुद्धिका निदर्शन होगा।

हरिरायजी जिन्होंने वार्ता पर भाद—प्रकाश लिखा है, किसी  
साधारण वैष्णव की रचित वार्ता पर अपनी कलम नहीं उठा सकने थे,  
एसा तो वे उसी महानुभाव की वाणी के लिये कर सकते थे जिसके प्रति  
उनकी श्रद्धाभक्ति थी। अतः सिद्ध होता है कि वार्ता की रचना गोकुल-  
नाथजी ने ही की है, और बाद में उसके यथासमय संस्करण होते  
गये हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। +

---

\* देखो चतुर्भुजदासजी वार्ता

+ श्रीहरिरायजी अपने भावप्रकाश में इस का स्पष्ट उल्लेख करते हैं  
कि 'श्रीगोकुलनाथजी' चोराशी वैष्णव की वार्ता कहते थे। इसी की पुष्टि  
प्रभुवरित्र चिन्तामणि के उस अंश से होती है जिसका संकेत पहिले किया



प्रस्तुत ग्रन्थका प्रथम भाग जिस शैली से निकाला गया था, उससे इस द्वितीय भाग के पाठकों को विभिन्नता दृष्टि गोचर होगी। उसके शब्दों के स्वरूप, लेखनशैली पर अधिकांश तथा प्राचीनता का ध्यान रखा गया था, अर्थात् इसके सम्पादक ने जिस ग्रन्थ से उसकी प्रतिलिपि प्रैस कापी, की थी प्रकाशन में उसका ही अनुसरण किया गया था।

उस समय वर्तमान काल के अनुरूप प्रकाशन पद्धति के अभाव में मैंने सम्पादन सम्बन्धी संशोधन की न्यूनता तथा त्रुटि के लिये प्र. भागके प्रास्ताविक पत्र ९ में हिचकिचाहट व्यक्त की थी, परन्तु कई महानुभाव उसका अर्थ वार्ता-संपादन की ओर ले गये अर्थात् उन्होंने यह कह देने का साहस किया कि वार्ताका सम्पादन यथावस्थित नहीं हुआ है, जिसे प्रकाशक ( संचालक विद्याविभाग ) भी स्वयं स्वीकार करते हैं आदि परन्तु मेरा तात्पर्य केवल इसी से था और है कि—उस समय हम प्रथम भाग को जिस नवीन रंगढंगा अथवा शैली से निकालना चाहते थे, नहीं निकाल पाये। इसका कारण सम्पादक (श्रीद्वारका-दासजी) का और प्रकाशक (मेरा) का एकत्र संवास का अभाव एवं कार्यान्तर की व्यस्तता भी थी।

प्रस्तुत भाग की प्रैसकापी वार्तासाहित्य-सम्पादक ने सं. १७५२ की लिखित और सिद्धपुर और पाटन में विद्यमान प्रतिलिपि के सम्वाद से तैयार की है। जिसमेंसे यहां यथावस्थित प्रसंग दिये गये हैं और शब्दोंका रूप भी प्रायः वही रखा गया है। यद्यपि लेखक की त्रुटि से रह

---

जा चुका हैं. देखो प्राचीन वार्तारहस्य प्रथमभाग ( वार्ता पत्र १६ ).

“ यह भाव तें चोरासी वैष्णव श्रीआचार्यजी के है, सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी चोरासी वैष्णव की वार्ता करत कल्याणभट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होइ गये, सो श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहन की हू सुधि नाहीं.”



जानेवाली ह्रस्व दीर्घ की त्रुटियों को दूर कर दिया गया है, फिर भी गुजराती प्रेस कम्पोजीटर्स के अनुग्रह से यत्रतत्र दृष्टिगोचर हुए बीना न रहेगी। नीरक्षीर विवेकी पाठक उसका स्वयं संशोधन कर लेने की कृपा करें।

प्रस्तुत द्वितीयभाग में सम्पादक ने गुजराती भाषा भाषियों के लिये अष्ट सखाओं का ऐतिहासिक विवरण एवं वार्ता की प्रामाणिकताका विवेचन बड़े परिश्रम से तयार किया है—जो साहित्य के लिये एक नई देन है और जिसकी ओर हिन्दीसाहित्यज्ञों का ध्यान अवश्यही जाना चाहिये। किसी स्वतन्त्र लेख और “पुष्टिमार्गीय भक्तकवि” नामक आगे चल कर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ में हिन्दी में भी इस विषय की सप्रमाण चर्चा चलाइ जायगी जिससे साहित्य जगत में अच्छा प्रकाश पडने की संभावना है।

पुस्तक की सुचारुता और आवश्यकता की पूर्ति के लिये इसमें यथास्थान निम्नलिखित चित्र भी दिये जा रहे हैं:—

१. श्रीगिरिधर गोपाल—जिनके स्मारक में प्रस्तुत वार्तासाहित्य का प्रकाशन हो रहा है।

२. श्रीचि० ब्रजेश कुमार—जो श्रीगिरिधर गोपाल के ही अपरावतार हैं, और जिन्हें यह भाग समर्पित किया गया है।

३. श्रीहरिरायजी महाप्रभु—जो वार्तासाहित्य ही नहीं प्रत्युत संस्कृत, गुजराती और व्रजभाषा के भक्तिमार्गीय गद्यपद्यात्मक साहित्य के रचयिता, विवरणकर्ता और उन्नायक होने के साथ साथ अपने काल के एक महान् प्रतिभाशाली विज्ञ नियामक और अप्रतिम प्रचारक हुए हैं, जों विविध संकेतात्मक ‘हरिधन’ ‘हरिदास’ ‘रसिक’ ‘हरिराय’ आदि अनेक उपनामों के कारण सम्प्रदायेतर व्यक्तियों के लिये अपरिचित से बने हुए हैं।



४. अष्टछाप की स्थापना—जिसमें\* श्रीविठ्ठलेश्वर प्रभुचरण और अष्टसखा उपस्थित है ।

५. महानुभाव श्रीसूरदासजी का अन्तिम समय ।

६. सं. १६९७ की वार्ता की पुष्पिका

उपर के चार चित्र त्रिरंगी और अन्तिम चित्र एक रंगी है ।

इस प्रकार जहां तक हो सका है पुस्तक को आवश्यक सजावट के साथ उपादेय भी बनाया गया है । इसके प्रकाशन में जो त्रुटियां रह गई हैं उनके लिये हम क्षमायाचना करते हैं । इसके मुद्रण में जिन उदारशय दानी महानुभावों ने अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है, उनका उपकार—स्मरण गुजराती भूमिका में किया गया है । इसी प्रकार यदि कोई महानुभाव, अथवा ट्रस्ट फंड इस ओर ध्यान दे तो हम अष्टसखाओं के उस साहित्य को प्रकाशित करने का भी आयोजन करेंगे जो—विद्याविभाग कांकरोली में विद्यमान ओर अप्रकाशित है । यह कथन यद्यपि एक अप्रिय कटु सत्य होगा कि—अधिकांश द्रव्य उन्हीं व्यक्तियों को मिल जाता है, जो—अनुत्तर दायित्व ढंगसे चाहे जैसा साहित्य प्रकाशित किया करते हैं और जो येन केन उपायों से धनसंग्रह कर साहित्य प्रकाशन की सेवा भावना के पुण्यभागी बन जाने में प्रथम हो जाना चाहते हैं । अस्तु ।

विद्याविभाग तो श्रीद्वारकेश प्रभु के अनुग्रह का अभिलाषी है, जिनकी इच्छा से सभी अवस्थाओं में ग्रन्थों का प्रकाशन होता जा रहा है, और जिसके फलस्वरूप श्रीद्रा. ग्रन्थमाला में अब तक

---

\* श्रीगुसांईजी का चित्र द्वा. चित्रशाला कांकरोली और श्रीसूरदासजी का चित्र कृष्णगढ़ के राज्यसंग्रहालय के चित्र के आधार पर तयार कराया गया है । अन्य सात सखाओं के स्वरूप प्राचीन पुस्तकों में से एकत्रित कराकर नविन रूपसे तयार कराया गया है ।



कई ग्रन्थ मुद्रित कराये जा चुके हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ द्वा० प्र० माला के विगत १३ वें पुष्प का द्वितीय भाग है । इसके अग्रिम भाग इसी पुष्प में यथासमय प्रकाशित किये जावेंगे ।

प्रथम भाग में 'श्रीनाथ देव रचित संस्कृतवार्ता मणिमाला' का समावेश किया गया था, पर उक्त ग्रन्थ में अष्टछाप की वार्ताएँ हमारे यहां पूर्ण नहीं हैं अतः उन्हें यथास्थान प्रकाशित नहीं किया जा सका जिसका हमें पश्चात्ताप है ।

अष्टसखाओं के जीवन चरित्र सम्बन्ध में प्रस्तुत भाग, और हमारे यहां से प्रकाशित 'कांकरोली के इतिहास' में इन महानुभावों के प्रासंगिक चरित्रों से जो ऐतिहासिक नाम, संवत्, मितो का विभेद विदित होगा उसका अन्य अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये । प्रस्तुत सम्बन्ध में जैसी जैसी गवेषणा होती गई है, उसी प्रकार उसका संशोधन भी अगले ग्रन्थों में किया गया है ।

पुस्तक की उपादेयता अनुपादेयता के विषय में हम कुछ न कह कर पाठकों की सम्मतिपर ही उसे छोड़ते हैं । हां इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि—यदि इसी प्रकार प्रभु का अनुग्रह प्राप्त होता रहा तो क्रमशः सम्पूर्ण वार्ता 'भावप्रकाश' के साथ प्रकाशित करते रहने का आयोजन होता रहेगा । इस बीच में अन्य आवश्यक ग्रन्थ भी प्रकाशित करते रहने की शुभ कामना लिये हुए अपने इस वक्तव्य से विराम लेते हैं ।

कांकरोली  
श्रीमदाचार्य प्राकट्योत्सव  
वै. कृ. ११

विधेय....  
पो. कण्ठमणि शास्त्री  
संचालक विद्याविभाग, कांकरोली



# अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण\*

## (१) सूरदास

### जीवनी के आधार—

आत्मचारित्रिक उल्लेख—साहित्य-लहरी के दृष्ट-कूट पदों में एक पद सूरदास के जीवन चरित्रसे सम्बन्ध रखता है। उससे निम्न लिखित बातें ज्ञात होती हैं कि—(१) सूरदास चंद्र के वंशज, जगात वंशी थे। (२) वे सात भाई थे जिनमें से ६ युद्ध में मारे गये। (३) सातवें, सूरजदास जन्मान्ध थे, भगवानने कृपा करके उनको दर्शन दिये, तभी से वे कृष्ण-भक्त हो गये। श्रीगुसांईजीने उनकी गणना अष्टछाप में की।

इस पद को वार्तासे विरुद्ध होनेके कारण हम प्रमाणिक नहीं मानते।

साहित्य-लहरी में उसका रचना काल कविने संवत् १६०७ दिया है।

‘मुनि पुनि रस न केरस लेख, दसन गोरी नन्दको लिखि सुबल संवत् पेख’

सूर सारावली—इस ग्रन्थ के रचनाकाल के समय कविने अपनी आयु ६७ वर्षकी दी है।

‘गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।’

कई पदों में उन्होंने अपने अन्धे होने तथा श्रीवल्लभाचार्यजी के दीक्षागुरु होने का उल्लेख किया है।

---

\* विद्याविभाग, कांकरोली द्वारा किये गये अन्वेषण के आधार पर.



## अन्य प्रचलित बाह्य आधार —

१. भक्तमाल—यह सूरदास के समय का लिखा ग्रन्थ है इसमें कवि की भक्ति और काव्य की प्रशंसा की गई है। यह ग्रन्थ प्रमाणिक है।
२. चौरासी वार्ता—संवत् १७५२ की हरिगयजी के भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता का इस लेखमें हमने प्रयोग किया है। यह ग्रन्थ प्रमाणिक है।
३. आईने अकबरी—यह बताती है कि सूरदासजी अकबर के दरबार के गवैये, रामदास के पुत्र थे। और वे भी रामदास के साथ अकबरके यहां जाया करते थे।

यह वृत्तान्त अष्टछापी सूरदासका नहीं है।

४. मुन्शियान अबुलफजल—यह अकबर के समय के पत्रों का संप्रह है। इसमें बादशाह अकबर की आज्ञासे अबुलफजल का सूरदास के नाम एक पत्रका उल्लेख है और अकबरसे सूरदास के मिलनेका भी उल्लेख है।

यह वृत्तान्त अष्टछाप वाले सूरदासका नहीं है। अनुमानसे

यह वृत्तान्त मदनमोहन सूरदास का हो सकता है।

५. गोसाईं चरित—इस ग्रन्थ को हम प्रमाणिक नहीं मानते हैं।

**साहित्य क्षेत्र में तीन सूरदास हुए हैं।**

१. बिल्वमंगल सूरदास—एक रूपवती स्त्री के रूपको आसक्तिसे इन को ज्ञान मिला था, और आंख फोड़ कर अंधे हो गये थे। ये भी भक्त कवि थे।

इनकी भाषा में गुजराती शब्दोंका प्रयोग अधिक हुआ है।



इस चरित्र को लोगोंने भूलसे अष्टछापी कवि सूरदास के साथ जोड़ दिया है ।

२. सूरदास मदनमोहन—ये लखनउ के पास संडीला स्थान के दीवान थे । ये अकबर के एक राजकर्मचारी के पुत्र थे । अकबरी दरबारसे इन्ही सूरदासका सम्बन्ध था ।

३. सूरदास अष्टछाप वाले—हिन्दी ब्रजभाषा साहित्य के 'सूर्य' और वल्लभ सम्प्रदायके 'सागर' और 'जहाज' ये ही कहे जाते हैं ।

हरिरायजीकृत भावप्रकाशवाली वार्ता तथा अन्य प्रमाणों के आधारसे—

जन्मस्थान—दिल्ली के पास सीहों ग्राम में इनका जन्म हुआ था ।

प्रमाण—हरिरायजीकृत भावप्रकाश ।

जन्मकाल—संवत् १५३५ प्रमाण—निजवार्ता में उल्लेख है कि सूरदासजी और श्रीवल्लभाचार्यजी का जन्म एक ही संवत् में है । सम्प्रदायमें यह बात भी प्रचलित है कि सूरदासजी आचार्यजीसे दस दिन छोटे थे । सुना है कि श्रीद्वारिकेशजी के भाव-संग्रह में भी यही लेख है ।

कांकरौली की सं. १८५१ की निजवार्ता की प्रति में तथा छपी हुई निजवार्ता में भी लिखा है कि "सो सूरदासजी जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है ।" आचार्यजी का जन्म सं. १५३५ में हुआ था ।

जाति—सारस्वत ब्राह्मण । प्रमाण—१६९७ की ८४ वार्ता तथा हरिरायजीका भावप्रकाश ।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके मातापिता निर्धन ब्राह्मण थे ।



इनसे तीन बड़े भाई और थे । ये अन्धे थे । इसलिये माबाप की उनकी ओरसे उदासीनता रहती थी । घरकी उपेक्षा और निर्धनता के कारण इन्होंने घर छोड़ दिया । इनके विवाहका कहीं उल्लेख नहीं है ।

**शिक्षा**—सूरदासने साधु संगति से ज्ञान प्राप्त किया । ये गान्धर्व विद्यामें निपुण थे, और पदरचना भी करते थे । तथा इनको वाक्सिद्धि भी थी । इसलिये वल्लभसंप्रदाय में आने के पहले इनके बहुतसे शिष्य हो गये थे । उस समय ये भगवान की उपासना दासभावसे करते थे ।

**निवासस्थान**—१८ वर्ष की उम्र तक ये अपने गांवसे चार कोस दूर एक तालाब के किनारे के एक स्थान पर रहे । उसके बाद ये मथुरा चले गये । वहांसे आकर आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर आचार्यजी की शरण आने के समय तक रहे । जबतक गऊघाट पर इनकी कुटी इनके शिष्योंने नहीं बनाई तबतक सूरदासजी 'रुनकता' गांव में रहते थे । सम्भव है इसी आधार से लोगोंने उनका जन्मस्थान 'रुनकता' मान लिया हो । वल्लभसंप्रदायमें आनेके बाद ये श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा में पहुंचे । वहां ये गोवर्द्धन के पास चंद्र-सरोवर परासोली में रहा करते थे ।

**वल्लभसंप्रदाय में प्रवेश**—सं. १५६७ में गऊघाट पर श्रीआचार्यजीकी शरण आये । प्रमाण—८४ वार्ता तथा वल्लभदिग्विजय । तीसरी पृथ्वी-प्रदक्षिणा की पूर्ति के समय वार्ता के अनुसार दक्षिण दिग्विजय सं. १५६६ के अनन्तर (अडेल से व्रज आते समय) आचार्यजीने सूरदास को शरण में लिया । आचार्यजीने तीसरी प्रदक्षिणा



सं. १५६७ में समाप्त की थी। सूरदासजी आचार्यजी के विवाह बाद शरण आये इस बात का अनुमान वार्ता के एक कथन से होता है। सूरदासजी की वार्ता में लिखा है कि गऊघाट पर आचार्यजी “गादी ऊपर बिराजे।” आचार्यजीने विवाह बाद ही गादो के ऊपर बैठना आरम्भ कियाथा। उससे पहले वे ब्रह्मचर्य व्रतसे आसन पर ही बैठते थे।

**अन्त समय**—सूरदासजी की वार्ता के प्रसंग में लिखा है कि “सो बीचबीच में जब कुंभनदास, परमानंददासजी के कीर्तन के ओसरा आवते तब सूरदासजी श्रीगोकुल में नवनीतप्रियजी के दर्शनकुं आवते।” सूर का नवनीतप्रियजी के दर्शनों को जाना और नवनीतप्रियजी के नग्न शृंगार पर पद गाना ये कार्य सं. १६२८ के बाद होने चाहिये। क्योंकि गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी का गोकुल में स्थायी निवास सं. १६२८ में हुआथा। इससे सिद्ध है कि सूरदास लगभग १६३० तक तो जीवित थे।

८४ वार्ता के भावप्रकाशमें सूरदास के अन्त समय के वृत्तान्त में लिखा है कि जैसे कृष्णने पहले यादवों का अंतर्धान किया और फिर स्वयं अंतर्धान हुए उसी प्रकार गुसाईजी का श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम का प्राकट्य है। “आचार्यजीने आप अन्तर्धान लीला की और गुसाईजी को अंतर्धान लीला करनी है, सो पहले भगवदीयन कुं नित्यलीला में स्थापन करके आपु पधारेंगे।” इससे अनुमान होता है कि गुसाईजी की मृत्यु के कुछ साल पहले ही (अनुमानतः दो चार साल) सूरदासजी का निधन हुआ था। गुसाईजी का निधन सं. १६४२ में हुआ। श्रीद्वारिकादासजी कांकरौली



का सम्मति है कि सूरदासजीका निधन सं. १६४० में हुआ।  
बाबू राधाकृष्णदासने भी सं. १६४० का ही अनुमान लगाया है।

**मृत्युस्थान—**परासौलीग्राम।

**लीलात्मक स्वरूप—**कृष्णसखा, चंपकलता सखी।

**रचना—**

सूरसागर—इसके अंतर्गत अनेक लीलाएँ आ जाती हैं।

सूरसारवली—६७ वर्षकी अवस्था सं. १६०२ में।

साहित्य लहरी—सं. १६०७ में।

—०—

## (२) परमानन्ददास—

**जीवनी के आधार—**१ भक्तमाल। २ सं. १६९७ की ८४ वार्ता तथा श्रीहरिरायजी कृत ८४ वार्ता पर भावप्रकाश।

**आत्मचारित्रिक उल्लेख—**उपलब्ध पदों के देखने से ज्ञात होता है कि उन पदों में कविने अपने विषय में कुछ नहीं कहा। पदों में भक्तिभाव संबन्धी उल्लेख हैं। **जन्मस्थान—**कन्नोज, **जन्मकाल—**सं. १५५०।

**प्रमाण—**वल्लभसम्प्रदाय में यह प्रचलित है कि परमानन्ददासजी आचार्यजीसे १५ वर्ष छोटे थे।

**जाति—**कान्यकुब्ज ब्राह्मण। **प्रमाण—**चौरासी वार्ता।

**माता, पिता, कुटुम्ब—**इनके मातापिता निर्धन ब्राह्मण थे, परन्तु इनके जन्मदिन इनके पिता को बहुत सा द्रव्य मिला। इनका यज्ञोपवित्त बड़े समारोह के साथ हुआ। एकवार कन्नोज के हाकिमने इनके पिता का सब द्रव्य छूट लिया। तब इनके पिता फिर निर्धन हो



गये । इस समय परमानंददास बड़े हो गये थे । पिताने इनका विवाह करनेका आग्रह किया, परन्तु इन्होंने मना कर दी और फिर बाद को भी इन्होंने अपना विवाह नहीं किया । इनके पिताने इनसे धनोपार्जन के लिए आग्रह किया, परन्तु इनकी रुचि अब त्याग और वैराग्य की ओर हो चली थी । इनके मातापिता धनोपार्जन के लिये विदेश चले गये, परन्तु ये कन्नोज में ही रहे ।

**शिक्षा**—परमानंददासजी की शिक्षा कन्नोज में ही हुई । इनके शिक्षागुरु कौन थे, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता । वल्लभसम्प्रदाय में आनेसे पहिले ही गायन और कीर्तन में इनकी ख्याति हो गई थी । वार्ताकार कहता है कि ये बड़े योग्य व्यक्ति और कवीश्वर थे । गाना सीखने तथा कीर्तन में भाग लेने के लिये इनके पास बहुत लोग आते थे । इसीलिये ये स्वामी कहलाते थे ।

**वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश**—सं. १५७७ ज्येष्ठ शुक्ल १२ प्रयाग के पास अडेल में । प्रमाण—चौरासी वार्ता, बेठकचरित्र एवं वल्लभदिग्विजय ।

**अन्त समय**—परमानंददासजी ने गुसाईं विठ्ठलनाथजी के सातों बालकों की वधाई गाई है । सातवें पुत्र श्रीघनश्यामजी का जन्म सं. १६२८ में हुआ । इससे सिद्ध होता है कि परमानंददासजी सं. १६२८ तक तो जीवित ही थे । सात बालकों की वधाई के एक अन्तिम समय गाये हुए पद में इन्होंने श्रीघनश्यामजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—“श्रीघनश्याम, पूरण काम पोथी में ध्यान ।” श्रीघनश्यामजी को विद्याध्ययन करते देखा इससे उस समय घनश्यामजी की आयु लगभग बारह वर्ष की अवश्य रही होगी ! ‘पूरन काम’ विशेषण से भी इसी बातकी



पुष्टि होती है। इससे सिद्ध होता है कि वे लगभग सं. १६४०, ४१ तक विद्यमान थे। वार्ता से अनुमान होता है कि इनकी मृत्यु कुंभनदासजी के निधन के बाद हुई, जिनका मृत्यु सं. हमने लगभग १६४० माना है। अतः इनका अन्त समय हम सं. १६४०—१६४१ के बीच का मान सकते हैं।

**स्थायी निवासस्थान**—सुरभी कुंड, वार्ता के अनुसार परमानन्ददासजीने भादों वदी नौमी को मध्याह्न के समय देह छोड़ी।

**लीलात्मक स्वरूप**—तोक सखा और चन्द्रभागा सखी,

**रचना**—परमानंद सागर। वार्ता में परमानंद सागर का उल्लेख है। इस सागर की कई प्रतियां कांकरोली में विद्यमान हैं। सबमें मिलाकर लगभग २००० पद होंगे। हमने इनकी पदरचनाओं का अध्ययन कांकरोली से प्राप्त परमानंददासजी के कीर्तनों से किया है। इन्होंने ब्रज कृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर द्वारिकागमन लीला तक पद लिखे हैं। इन लीलाओं के कथाभाग की ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। भक्तिभाव और काव्य दोनों की दृष्टि से इनके विरहके पद उत्कृष्ट हैं।

### (३) कुंभनदास—

**जन्मस्थान**—गोवर्धन से कुछ दूर जमुनावर्ती ग्राम।

**जन्मतिथि**—सं. १५२५। प्रमाण—गोवर्धननाथजी की प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि जब श्रीनाथजी प्रकट हुए (सं. १५३५) उस समय कुंभनदासजी की आयु दस वर्षकी थी। वल्लभ सम्प्रदाय में किंवदन्ती है कि कुंभनदासजी के पिता एकवार कुंभस्नान करने गये



वहां उन्हें एक महा-मा की सेवा के फलरूप पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद मिला। उसी की स्मृति में कुंभनदास नाम रक्खा गया।

**जाति**—गोरवा क्षत्रिय।

**माता, पिता, कुटुम्ब**—इनके पिता का नाम अज्ञात है। इनके चाचा का नाम धर्मदास था। कुंभनदासजी का कुटुम्ब बहुत बड़ा था। इनके सात पुत्र और सात ही पुत्रवधुए थी। इनके एक पुत्र कृष्ण-दासको सिंहने मार डाला था। पांच बड़े पुत्र इन्होंने अलग कर दिये, केवल सबसे छोटे पुत्र, चतुर्भुजदासजी, जो इनकी तरह भक्त कवि थे, इनके साथ रहते थे। इनके यहां धन का सदैव अभाव रहता था। इनका व्यवसाय केवल खेती करना था। निर्धनी होकर भी ये त्यागी थे। एक-बार राजा मानसिंहने इन्हें द्रव्य दिया परन्तु इन्होंने नहीं लिया। बादशाह अकबरकी भी उन्होंने उपेक्षा कर दी थी। कांकरोली राज्य के एक कर्मचारी श्रीनरेन्द्रवर्मा, इन्हीं के वंशज हैं जो बड़े विद्यानुरागी और कवि हैं।

**शिक्षा**—ये गानविद्यामें बहुत निपुण थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के संसर्ग से इन्होंने भक्ति-ज्ञान प्राप्त किया था।

**वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश**—सं. १५५६।

**प्रमाण**—श्रीगोवर्धननाथजी के प्राकट्य की वार्तासे विदित है कि श्रीवल्लभाचार्यजीने सं. १५५६ बैसाख शुक्ल तीजको श्रीनाथजी को गोवर्धन पर छोटे मंदिर में पधराया, और वहीं कुंभनदासजी को स्त्री सहित शरण लिया था।

**अन्त समय**—कुंभनदासने भी श्रीगो० विठ्ठलनाथजी के सात बालकों की वधाई गाई है। इससे सिद्ध है कि वे सं. १६२८ (घन-



श्यामजीके जन्म—समय) में जीवित थे । गोंस्वामी विठ्ठलनाथजीने ब्रजसे गुजरात की दो यात्राएँ की, एक संवत् १६३१ में और दूसरी संवत् १६३८ में । गुसाईंजी की प्रथम यात्रा के समय इनको, ८४ वार्ता के अनुसार, श्रीनाथजीका विरह हुआ था । इससे सिद्ध है कि ये संवत् १६३१ तक तो अवश्य जीवित थे । हमारा अनुमान है कि फतहपुर सीकरी में अकबर बादशाह से कुंभनदासजी सं. १६३८ में मिले होंगे, क्योंकि श्रीओ-झाजीके लिखे हुए उदयपुरके इतिहास पृ. ४५९ में अकबर के दरबार का उल्लेख सं. १६३८ माघसुद ६ में होने का है । उसी समय बादशाहने कुंभनदासको फतहपुर सीकरी बुलाया होगा । वार्ता से यह भी विदित है कि सूरदासजी की मृत्यु के समय ये जीवित थे । इसलिये हम इनका मृत्यु समय भी लगभग सं. १६४० मान सकते हैं ।

**निवास स्थान**—ब्रजमें जमुनावतौ ।

**मृत्युस्थान**—आन्योर के पास संकर्षणकुंड

**लीलात्मक स्वरूप**—अर्जुन सखा और विशाखा सखी ।

**रचना**—कुंभनदासजी के लगभग २०० पद कांकरौली में संग्रहीत हैं । इनके पद गोचारण और गोदोहन लीला के उत्कृष्ट हैं । कृष्ण की किशोर लीला पर भी इन्होंने बहुत पद लिखे हैं ।

### (४) कृष्णदास अधिकारी—

**जन्मस्थान**—चिलौतर गुजरात में । **जाति**—कुनबी पटेल (शूद्र)

**जन्मतिथि**—लगभग सं. १५५४ । **प्रमाण**—८४ वार्ता हरि-रायजी के भावप्रकाशवालीमें, लिखा है कि कृष्णदास तेरह वर्ष की अवस्था में आचार्यजी की शरण आये । इनका शरण समय सं. १५६७ है ।



**माता, पिता, कुटुम्ब**—इनके पिता गांव के मुखिया थे, परन्तु वे एक धनलोलुप व्यक्ति थे, और अपने असत्याचरण से भी धनोपार्जन करते थे । कृष्णदास का स्वभाव बाल्यकाल ही से सत्य-प्रिय था । अपने पिता के असत्य आचरण के कारण ये १३ वर्ष की अवस्था में ही तीर्थयात्रा को निकल पड़े । इन्होंने अपना विवाह नहीं किया ।

**शिक्षा**—इनको आरम्भिक गुजराती भाषा की शिक्षा बाल्यकाल में चिलौतरा में ही हुई होगी, बाद में श्रीआचार्यजी की शरण आने पर इनकी शिक्षा वल्लभसम्प्रदाय में ही हुई और वहाँ पर इन्होंने ब्रज भाषा सीखी । व्यवहार में ये बहुत कुशल थे । और हिसाब किताब में प्रवीण थे, इसी लिये गुसाईजीने इन्हें श्रीनाथजी के मंदिरका अधिकारी बनाया था ।

### वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश—

वल्लभ—दिग्विजय में लिखा है कि आचार्यजी सूरदास को शरण ले कर जब मथुरा विश्वान्तघाटपर आये तभी उन्होंने कृष्णदास को शरण लिया । सूरदास को आचार्यजीने सं. १६६७ में शरण लिया था । अतः यही वर्ष इनके शरणागतिका निकलता है ।

सं. १५९० में गोंस्वामी विठ्ठलनाथजीने इनको मंदिरका अधिकार दिया । नाथद्वार में मंदिर के कृष्ण भंडारका नाम इन्हीं के नाम के आधार पर अब तक चला जाता है । और वहां अब भी अधिकारी का नाम कृष्णदासजी ही लिखा जाता है ।

**अंत समय**—इन्होंने भी गुसाईजी के सातों बालकों की वधाई गाई है । इस लिए सातवें पुत्र धनश्यामजी के जन्म समय सं. १६२८



तक ये जीवित थे । इन पदों में से एक में इन्होंने श्रीधनस्यामजी की बालक्रीडाका इस प्रकार वर्णन किया है:—

“ श्री बल्लभ—कुल मंडन प्रगटे श्रीविठ्ठलनाथ

×

×

×

श्रीधनस्याम लाल बल अविचल केलिकलोल

कुंचित केस कमल मुख जानो मधुपन के टोल । ”

इस पद रचना के समय धनस्यामजी की आयु हम ४ वर्ष की मान सकते हैं । इस हिसाब से कृष्णदास की स्थिति सं. १६३१ तक सिद्ध होती है ।

कृष्णदास के बाद श्रीनाथजी के मंदिर के, चांपाभाई अधिकारी हुए, जो पहिले गोस्वामी विठ्ठलनाथजी की विदेश यात्राओं में उनके साथ भंडारी रहा करते थे । गुसाईंजी के यात्राविवरण से पता चलता है कि उनकी, ब्रजसे गुजरात की सं. १६३१ की—प्रथम यात्रा में चांपाभाई उनके साथ थे, परन्तु उनकी दूसरी यात्रा (सं. १६३८) के विवरण में चांपाभाईका उल्लेख नहीं है । इससे अनुमान होता है कि इस दूसरी यात्रा से पहले कृष्णदासजी का निधन हो चुका था और चांपाभाई उनकी जगह अधिकारी बनादिये गये थे । इसीसे वे गुजरात यात्रा में गुसाईंजी के साथ नहीं गये । इस आधार से अनुमान है कि कृष्णदासका निधन सं. १६३१ के बाद और सं. १६३८ से पहले हुआ था ।

स्थायी निवास—बिलछूकुंड.

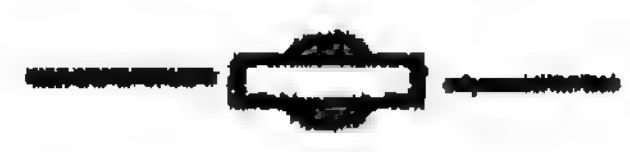
मृत्यु स्थान—पूछरी के पास । कुएँ में गिर कर इनकी मृत्यु



हुई । यह कुआ अभीभी विद्यमान है और 'कृष्णदासका कुआ' इस नामसे आज भी प्रसिद्ध है ।

**लीलात्मक स्वरूप**—ऋषभ सखा और श्रीललिता सखी ।

**रचना**—कृष्णदासजी के ६७६ पदोंका संग्रह कांकरौली में है । हमने इनके काव्यका अध्ययन इन्हीं पदों के आधार से किया है । इसमें राधा कृष्ण अनुराग के शृंगारादिक पद अधिक हैं और उन्हीं शृंगारात्मक दम्पति-लीला वर्णन में इनकी काव्यपटुता का स्रोत बहा है ।



## (५) छीतस्वामी

**जन्मस्थान**—मथुरा.

**जन्म संवत्**—श्रीद्वारिकादासजी, कांकरौली, इनका जन्म संवत् १५७२ मानते हैं ।

**जाति**—चतुर्वेदी ब्राह्मण और वीरबल के पुरोहित थे ।

**माता, पिता, कुटुम्ब**—इनके मातापिता के विषय में विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं । वार्तासे अनुमान होता है कि ये गृहस्थी थे ।

**शिक्षा और स्वभाव**—वल्लभसम्प्रदायमें आनेसे पहले ये एक लम्पट प्रकृति के पुरुष थे । वार्तासे यह भी अनुमान होता है कि ये शरण में आने से पहिले कविता भी करते थे । गोस्वामी विठ्ठल-नाथजी के प्रभावसे उनके चित्त की वृत्ति लौकिक विषयोंसे हट कर एकदम परमार्थ की ओर लग गई और उस के बाद श्रीनाथजी की कीर्तन सेवामें रहकर इन्होंने अष्टछाप में स्थान पाया ।



### वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—

सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ. ५५ के लेख के अनुसार ये सं. १५९२ में गुसाईजी की शरण आये ।

स्थायी निवास—गिरिराज पर पूंछरी स्थान ।

लीलात्मक स्वरूप—सुवल सखा और पद्मा सखी ।

रचना—अभी तक हमारे देखने में इनके करीब २०० पद आये हैं । इनके पदों की भाषा सरल और सीधी है ।

अन्त समय — संवत् १६४२.

श्रीगिरिधरलालजी के १२० बचनमृत में लिखा है कि जब श्री गुसाईजी का गोलोक वास हो गया, तब इस दुःखद समाचार को सुन कर छीतस्वामीको मूर्छा आ गई । उसी समय श्रीनाथजीने इन्हे दर्शन दिये और आज्ञा की कि अब तक तो मैं दो रूप से अनुभव कराताथा पर अब मैं सात रूपों द्वारा अनुभव कराऊंगा । इसी समय छीतस्वामीने गुसाईजी के सात बालकों का “ विहरत सातोरूप धरे ” यह पद गाया और देह त्याग कर दी ।

### (६) गोविन्दस्वामी

जन्मस्थान—भरतपुर राज्य के अंतर्गत आंतरी ग्राम ।

जाति—सनाढ्य ब्राह्मण ।

जन्म तिथि—अनुमानसे सं. १५६२.

माता, पिता कुटुम्ब—इनके माता पिता के विषयमें कोई वृत्तान्त



ज्ञात नहीं है । वार्ता से ज्ञात होता है कि ये बल्लभसम्प्रदायमें आने से पहले गृहस्थ थे और इनके एक लड़की भी थी । परन्तु शरणमें आने के पहलेही इन्होंने घरका मोह छोड़ दिया था । उनके एक बहन भी थी जो इनके साथ गोस्वामी विठ्ठलनाथजी की शिष्या हो गई थी, और इन्हीं के साथ गोकुल महाबनमें रहती थी ।

**शिक्षा**—वार्ता से ज्ञात होता है कि शरण में आनेसे पहले ये एक उच्च कोटिके कवि और गवैयाये थे । गानविद्या के ये एक बड़े आचार्य समझे जाते थे । इसलिये इनके बहुतसे शिष्य भी हो गये थे । इसी से ये स्वामी कहलाये थे । अकबर के दरबारके नवरत्नों में से एक रत्न तानसेनजी जो स्वामी हरिदासजी के शिष्य थे इनसे गाना सीखने के लिये इनके कथनानुसार श्रीगुसांइजीके शिष्य हुए थे ।

**बल्लभसंप्रदाय में प्रवेश**—संवत् १५९२ सम्प्रदाय—कल्पद्रुम पृ. ५५ के आधारसे । वार्ता से ज्ञात होता है कि, कुछ समय गृहस्थ आश्रम भोगने के बाद इनके चित्तमें भगवत्-प्राप्ति की इच्छा हुई उस समय तक इनकी ख्याति गाने और लिखने में हो चुकी थी, जिसके कारण बहुत से लोग इनके सेवक हो गये थे, और उस समय ये स्वामी कहलाते थे । भगवत्प्राप्ति की प्रेरणासे ये घर छोड़ कर व्रजमें आये और महाबन में रहने लगे । वहां पर भी ये पद बना कर कीर्तन करते थे । हमारे अनुमानसे इस समय इनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की अवश्य रही होगी । इसके बाद ये गोस्वामीजी की शरण में आये ।

**स्थायी निवास**—ये गोकुल और महाबन के टीला पर बैठकर बहुधा पद गाया करते थे । गिरिराजकी कदमखंडी पर इनका निवास



स्थान था । ये स्थान गोविंदस्वामी की कदमखंडीके नामसे अब भी प्रसिद्ध है ।

**अंत समय**—सं. १६४२ । गोविंदस्वामीने भी गुसाईजी के सात बालकों की वधाई गाई है, इस लिये इनकी स्थिति सं. १६२८ तक तो सिद्धही है । श्रीगिरिधरलालजी के १२० वचनामृत नामक ग्रन्थमें लिखा है कि जब सं. १६४२ में गोस्वामी विठ्ठलनाथजी लीला में पधारे तभी गोविंदस्वामीने भी देह सहित गोवर्द्धनकी कंदरामें प्रवेश किया और वे नित्यलीला में पहुंच गये ।

**मृत्युस्थान**—गोवर्द्धन की कंदरा ।

**लीलात्मक स्वरूप**—श्री दामा सखा और भामा सखी ॥

**रचना**—इनके दोसौ बावन पद सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है इनके २५२ पदों के दो संग्रह कांकरौली में हैं । २५२ पदोंका एक संग्रह हमारे पास भी है जिसका मिलान हमने कांकरौली वाली प्रतियों से कर लिया है । तीनों प्रतियों में कुछ थोड़े पाठ भेद से एकसे पद हैं । इन २५२ पदों के अतिरिक्त इनके कुछ फुट कर पद भी कीर्तन संग्रहों में हैं । २५२ पदों का विषय मुख्यतः राधा कृष्ण की श्रृंगारात्मक अनुरागी लीलाएं हैं ।

## (७) चतुर्भुजदास

**जन्मस्थान**—जमुनावतो गोवर्द्धन के पास ।

**जन्म तिथि**—सम्प्रदाय कल्पद्रुम अनुसार सं० १५९७ ।

**जाति**—गोरवा क्षत्रिय ।



**माता, पिता, कुटुम्ब**—अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि और भक्त कुंभनदासजी इनके पिता थे । इनके ६ भाई इनसे बड़े थे । एक स्त्री के देहान्त के बाद इन्होंने अपनी जातिप्रथानुसार 'धरेजा' किया था । इन के राघोंदास नामक एक पुत्र भी था ।

**वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश**—सम्प्रदाय कल्पद्रुम के पृष्ठ ५७ में लिखा है कि सं. १५९७ में गिरिधरजी के प्राकट्य के बाद गोस्वामी विठ्ठलनाथजी नंदमहोत्सव करके ब्रजमें आये, तभी चतुर्भुजदासको उन्होंने शरण में लिया । वार्ता से विदित होता है कि चतुर्भुजदास को इकतालीसवें दिन इनके पिताने गुसाईजी की शरण में दिया था ।

**शिक्षा**—इनकी शिक्षा वल्लभसम्प्रदाय में रह कर ही हुई । इनके पदों से ज्ञात होता है कि इनको संस्कृत का अच्छा ज्ञान था । गानविद्या और कविताशक्ति का उपार्जन इन्होंने अपने पिता के द्वारा किया था ।

**अन्त समय**—संवत् १६४२ गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के गोलोक-वास के बाद ही ।

**प्रमाण**—गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के सात बालकों की बधाई इन्होंने भी गाई है इसलिए सं. १६२८ तक इनकी स्थिति सिद्ध है । संवत् १६९७ की, गुसाईजी के चार सेवकन की वार्ता में लिखा है कि गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के परलोकवास पर इनको बहुत विरह हुआ । इस विरहमें इन्होंने गुसाईजी की प्रशंसा और स्मृति के पद गाये और फिर देह छोड़ दी । गुसाईजी की स्मृति में लिखे हुए इनके पद



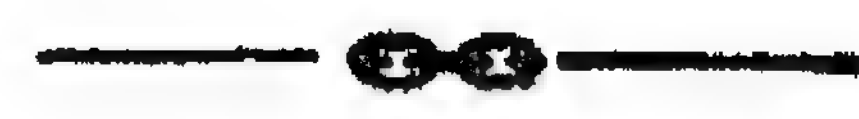
इस बातका प्रमाण देते हैं कि इनका देहान्त गोस्वामीजी के परलोक-वास के बाद हुआ ।

**स्थायी निवासस्थान**—जमुनावतो ।

**मृत्युस्थान**—रुद्रकुंड ऊपर इमली के वृक्ष के नीचे ।

**लीलात्मक स्वरूप**—विशाल सखा और विमला सखी ।

**रचना**—पद कीर्तन । इनके लगभग २०० पदों का संग्रह हमने कांकरौली विद्याविभाग में देखा है और उन्हीं पदों के आधार पर हमने इनके काव्य का अध्ययन किया है । इन्होंने अपने पदों में ब्रज कृष्ण की सभी भावात्मक लीलाओं का चित्रण किया है । कृष्ण जन्म के समय के पदों से लेकर गोपीविरह तक के पद उन्होंने लिखे हैं । इनके पदों से इनका पांडित्य और उच्चकोटि की कविताशक्ति प्रगट होती है ।



## ( ८ ) नंददास

**जन्म स्थान**—रामपुर ।

**जन्म संवत्**—सं. १५९४ अनुमान सिद्ध । श्रीद्वारिकादासजी कांकरौली का अनुमान है कि इनका जन्मसंवत् १५९० है ।

**जाति**—सनाढ्य ब्राह्मण । प्रमाण—सं. १६९७ की गुसाईंजी के चार सेवकन की वार्ता ।



**माता, पिता, कुटुम्ब**—वार्ता में इनके माता, पिता का कोई उल्लेख नहीं है। सं. १६९७ की वार्ता में तुलसीदास को इनका भाई लिखा है। सोरों में प्राप्त ग्रन्थों के आधारसे इनके पिताका नाम जीवाराम था, जो एक धर्मात्मा और विद्वान पुरुष थे। इनके पिताका देहान्त इनके वाल्यकाल में हो गया था। इनका विवाह हुआ और इनके संतान भी थी। सोरों की सामग्री के अनुसार इनके कृष्णदास नामक एक पुत्र भी था।

**शिक्षा**—वार्ता में लिखा है कि इनको गान विद्याका बड़ा शौक था और ये बहुत पढ़े हुए थे। इनके ग्रन्थों में कुछ उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि इनको संस्कृत भाषाका अच्छा ज्ञान था। वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहिले ये कविता भी करते थे, और ये रामानन्दी सम्प्रदाय के किसी महात्मा के शिष्य थे। सोरों में प्राप्त ग्रन्थों में इनके शिक्षागुरु का नाम पं० नरसिंह सूकरक्षेत्र—निवासी दिया हुआ है।

**वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश**—वार्ता से ज्ञात होता है कि पहले ये बहुत विलासी थे। एक स्त्री के रूप पर मोहित होने के बाद इनके मनकी लौकिक वृत्ति पलटी और गोस्वामी श्री विठ्ठलनाथजी के प्रभाव से ये परम भक्त बने। हमने अपने एक लेख में अनुमान किया था कि इनकी शरणागतिका समय लगभग सं. १६२८ है। परन्तु कांकरौली के श्री द्वारिकादासजी वार्तासाहित्य के विशेषज्ञ का कहना है कि ये सं. १६०६ में गोस्वामीजी की शरण आये और सूरदासजी के भविष्यदर्शी आग्रहसे



फिर ग्रहस्थ हो गए, वहां उनके संतान हुई और फिर लगभग सं. १६२४ अथवा इसके कुछ बाद वापिस श्रीनाथजी की सेवा में आए । वार्ता में लिखा है कि शरणागति के बाद गुसाईजीने इन्हें सूरदासकी संगति में रक्खा ।

“ नन्दनन्दनदास—हित साहित्यलहरी कीन ” सूरदास के इस कथन के अनुसार श्रीद्वारिकादासजी यह मानते हैं कि ‘नंद नंदनदास’ शब्द नंददासके लिये प्रयुक्त हुआ है और सूरदासने साहित्यलहरी की रचना सं. १६०७ में नंददास के लिये ही की थी ।\*

अन्त समय—वार्तासे विदित है कि नंददास की मृत्यु बाद-शाह अकबर और बीरबल के समक्ष हुई । बीरबल की मृत्यु सं. १६४७ में हुई । इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास की मृत्यु सं. १६४७ से पहिले हुई होगी । वार्ता में यह भी लिखा है कि नन्ददासकी मृत्यु के समय गोस्वामी विठ्ठलनाथजी जीवित थे । गोस्वामीजीका गोलोकवास सं. १६४२ में हुआ । इस लिए नन्ददासजीका परलोकवास सं. १६४२ से भी पहिले होना चाहिए । हमारा अनुमान है कि इनकी मृत्यु लगभग सं. १६४० में हुई । कदाचित् अकबर बादशाह बीरबलके साथ व्रजमें मानसी गंगा पर इसी समय आया था ।

**स्थायी निवास**—गोवर्धन मानसी गंगा ।

**मृत्यु स्थान**—गोवर्धन मानसी गंगा ।

**लीलात्मक स्वरूप**—भोज सखा और चंदरेखा सखी ।

**रचना**—नन्ददासने सूरदासजी की तरह छंद और पद दोनों शैलियों में रचनाएँ की हैं । इनकी छन्दरचनाएँ अधिकतर बहुत छोटे

---

\*विशेष देखिये उनके गुजराती अष्टछाप विभाग में.



आकार की हैं। कृष्णलीला के इनके कुछ लम्बे पदों को ही लोगोने इनके ग्रन्थरूपमें गगना कर ली है। हमने इनके निम्न लिखित उपलब्ध ग्रन्थ प्रमाणिक माने हैं। १. रास पंचाध्यायी २. सिद्धान्त पंचाध्यायी ३. भ्रमर गीत ४. पंचमंजरी ( विरहमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, अनेकार्थमंजरी और मानमंजरी ) ५. दशम स्कन्ध भाषा २८ अध्याय ६. रुक्मिणी मंगल ७. श्यामसगाई ८. सुदामा चरित ९. गोवर्धन लीला ।

इनके लगभग ४०० पद हमारे देखने में आये हैं। नन्ददासके रास और राधाकृष्णके अनुराग के शृंगारिक पद काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। रोला लिखने में नन्ददास सिद्धहस्त हैं। इनकी व्रजभाषा बहुत श्रुतिमधुर है इसी लिए इनके विषय में कहावत प्रसिद्ध है “ और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया । ”

**नोट**—नन्ददास की जीवनी के विषय में सोरों वाली सामग्री को एक बार हम देख चुके हैं। हमारा विचार फिरसे इस सामग्री की प्रमाणिकताको जांचने का है।

**दीनदयालु गुप्त**

एम. ए. एल. एल. बी.

हिन्दी लेक्चरर, लखनऊ—विश्वविद्यालय.





## ८४ और २५२ वैष्णव की वार्ता की प्रामाणिकता

वल्लभसम्प्रदायी कवियों की जीवनी का मुख्य सूत्र चौरासी वैष्णव तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता और अष्टसखान की वार्ता है । इन वार्ताओं को मुख्य सूत्र मान कर अष्टछाप कवियों के जीवन वृत्त देने से पहले उक्त वार्तासाहित्य की प्रामाणिकता तथा उसके रचना काल के विषय में विचार करना उचित होगा ।

उक्त वार्ताओं के विषय में जो प्रश्न उठते हैं उन को हम इस प्रकार रख सकते हैं ।

- ( १ ) ये वार्ताएँ श्रीगोकुलनाथजी कृत हैं अथवा नहीं ?
- ( २ ) इन वार्ताओं का रचनाकाल क्या है ? क्या ८४ वार्ता, २५२ वार्ता तथा अलग से अष्टसखाओं की वार्ता एक ही समय की लिखी है, अथवा किसी अन्तर से लिखी गई हैं ?
- ( ३ ) इन में दिये हुए वृत्तान्त कहां तक प्रमाण कोटि में गिने जा सकते हैं ?

पहले हम प्रथम प्रश्न को ही लेते हैं । वल्लभसम्प्रदायी वार्तासाहित्य तथा अन्य ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि यद्यपि श्रीवल्लभाचार्य के चरित्र सम्बन्धी प्रसंग श्रीगोकुलनाथजी के अल्पकालमें प्रचलित हो गए थे, फिर भी श्रीगोकुलनाथजीने ही—जो गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के चौथे पुत्र थे—इनको लिखित रूप दिलाया । ये मौखिक रूप से अपने सम्प्रदायी भावों को आचार्यजी के ८४ और अपने पिता श्रीगुसांईजी के शिष्यों को चारित्रिक कथाएँ सुनाया करते थे, जो बाद में उनके जीवनकाल में ही लिपि



बद्धकरली गई, इस के एक नहीं, अनेक प्रमाण हमें मिलते हैं ।

श्रीकण्ठमणिशास्त्रीजीने प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना में वार्तासाहित्य के तीन संस्करण माने हैं—

**प्रथम संस्करण**—श्रीगोकुलनाथजी के कथा प्रवचन के समय का मूल रूप जो उनके हास्यप्रसंगों के समान वचनामृत रूपमें प्राप्त होता है । इसमें ८४ और २५२ का वर्गीकरण नहीं हुआ है ” । शास्त्रीजीने इसको संग्रहात्मक वार्तासाहित्य कहा है ।

**द्वितीय संस्करण**—“ श्रीगोकुलनाथजी के समय में ही गो० श्रीहरिरायजी ( समय सं. १६४७ से सं १७७२ ) द्वारा वर्गीकरण । इसी समयसे इन लिपिबद्ध वार्ताओं पर “ श्रीगोकुलनाथजी कृत ” इन शब्दोंका प्रयोग होने लगा । शास्त्रीजीने इस संस्करण का समय सं. १६९४ से सं. १७३५ तक माना है । कांकरौली में सं. १६९७ चैत्र सुदी ५ की एक हस्तलिखित ८४ तथा गुसांईजीके चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता विद्यमान है । उसमें हरिरायजी का भावप्रकाश नहीं है । यह ग्रन्थ जैसा कि उसकी पुष्पिका से विदित है गोकुल में लिखा गया था, यह किसी और भी प्राचीन ग्रंथ की संक्षिप्त प्रतिलिपि है, क्योंकि बीच बीच में वार्ताओं के भीतर अमुक पंक्तियां छोड़ दी गई हैं जिनको लिखिया मूल प्रति से वांच नहीं पाया है । हमारे देखने में भी इससे अधिक प्राचीन ८४ वार्ता तथा गुसांईजी के चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता नहीं आई ।

**तृतीय संस्करण**—श्रीगोकुलनाथजी के बाद, श्रीहरिरायजीने ८४ तथा २५२ वार्ताओं पर कुछ प्रसंग बढ़ा कर स्पष्टीकरण किया



जो गोस्वामी हरिरायजी की भावना की वार्ताएँ हैं ।

भावप्रकाशवाली ८४ तथा अष्टसखानकी वार्ता की एक प्रति सं. १७५२ की है, जो कांकरौली विद्याविभाग को पाटन से प्राप्त हुई थी और जिसके आधार पर प्रस्तुत अष्टछाप का संकलन किया हुआ है। भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की एक सचित्र प्राचीन प्रति हमने गोकुल में मोरवाले मंदिर के मुखिया श्रीगौरीलाल साचीहरजी के पास देखी है, जिसमेंसे हमने सूरदास की वार्ता भी उतार ली है। इसके आदि में इस प्रकार लिखा है:—“श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजन वल्लभाय नमः अथ चौरासी वैष्णवन की वार्ता श्रीगोकुलनाथजी प्रगटि कीए ताको श्रीहरिरायजी भाव कहत हैं”। इसी की सं. १८५७ की एक प्रति हमारे पास भी है।

श्रीहरिरायजी के भावप्रकाश, ८४ तथा अष्टसखान की वार्ता पर तो देखने में आए हैं परन्तु २५२ वार्ता पर अभी तक हमने कोई भावप्रकाश नहीं देखा। कहा जाता है कि २५२ की वार्ता पर भी हरिरायजीका भावप्रकाश है, परन्तु यहां हमारा प्रयोजन केवल अष्टछाप के चारित्रिक वृत्तान्तों से है। उस पर हरिरायजी का भाव प्रकाश मिलता ही है।

छापे में आने वाली ८४ और २५२ वार्ताओं के वृत्तान्त और भाषा में बड़ा वैषम्य देखने में आता है। इसका कारण लिखियाओं की असावधानी तथा वैष्णव प्रेसवालों की स्वच्छन्दता है। इस बातका प्रमाण वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा बम्बईसे सम्पादित २५२ वार्ता की प्रस्तावनाका लेख है। सूरदास ठाकुरदास वाली वार्ताओं के आधारसे



ही बाद में इन वार्ताओंके संस्करण हिन्दी, गुजराती में छपे। इस प्रस्तावना का कुछ उद्धरण हम यहां देते हैं—

“ सर्व भगवदीय वैष्णवनकुं हाथ जोड़ के बीनती करूं हूं, मैंने २५२ वैष्णवन की वार्ता अल्प बुद्धिसुं सोधि के छपाई है..... और सब में विस्तार बहुत है परन्तु वो विस्तार कैसो है जो बांचि के वैष्णवन की वृत्ति स्थिर होवे और चित्त की वृत्ति श्रीप्रभुन में लगे सो वा विस्तारमें यह गुण नहीं है, सो ऐसो विस्तार काढ के संकोच करके लिखी है । ”

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अब तक छापे में आनेवाली वार्ताओं के बहुत से चारित्रिक, और विशेष रूप से ऐतिहासिक प्रसंग जो साम्प्रदायिक दृष्टि से भक्तिपक्ष में महत्वपूर्ण नहीं हैं, छोड़ दिये गए हैं। उदाहरणके लिए नंददास वाली वार्ता में, छपी प्रतियों में नंददास की जाति नहीं लिखी परन्तु प्रत्येक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में तथा पीछे कही हुई संवत् १६९७ वाली प्रति में भी नंददास को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है।

इन वार्ताओं के विषय में जैसा कि श्रीकंठमणि शास्त्रीजीने अपने वक्तव्य में कहा है, हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ये वार्ताएँ मूल रूप में श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं और ये वार्ताएँ उनके जीवनकाल में ही लिपिबद्ध हो गई थीं, जिनमें से ८४ और अष्ट-सखान की वार्ता तो गोकुलनाथजी के समयकी मिल चुकी है। २५२ की वार्ता भी खोज करने से अवश्य मिलनी चाहिये।

हिन्दी के कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस वार्ता—साहित्य का



किसी वैष्णवने साम्प्रदायिक गौरव बढ़ाने के लिये पीछेसे गोकुलनाथजीके नामसे लिख कर प्रचार कर दिया है। वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। वार्ताएँ श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं। इतना अवश्य है कि इनको उन्होंने लिखा नहीं था। इस बात के प्रमाणों को हम संक्षिप्त में नीचे देते हैं।

१. हस्तलिखित प्राप्त होनेवाली अधिकांश वार्ताओं में इन्हें श्री गोकुलनाथजी कृत लिखा है।

२. जैसा कि श्रीकंठमणि शास्त्रीजीने अपने वक्तव्य में कहा है, श्रीगोकुलनाथजी के समसामयिक श्रीदेवकीनन्दनजी रचित 'प्रभु चरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थमें भी श्रीगोकुलनाथजी द्वारा कही हुई वार्ताओं का सूक्ष्म उल्लेख है।

३. जैसा कि पीछे कहा गया है श्रीगोकुलनाथजी के शिष्य और उनके समसामयिक गो. श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाशवाली वार्ताओं में इन वार्ताओं को गोकुलनाथजीकृत लिखा है।

४. श्रीहरिरायजी के शिष्य श्रीविठ्ठलनाथ भट्ट द्वारा रचित सम्प्रदाय कल्पद्रुम में—जिसका रचनाकाल इसी ग्रन्थ में संवत् १७२९ दिया है और जो बेकटेश्वर प्रेस बम्बईसे सं. १९५० में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ १४१ पर—श्रीगोकुलनाथजी के बनाए ग्रन्थोंका उल्लेख है। वहां लेखक कहता है—

“ वचनामृत चौबीस किय, दैवी जन सुख दान ।

वल्लभ विठ्ठल वारता, प्रगट कीन नृप मान ”

इसमें श्रीवल्लभाचार्य और श्रीविठ्ठलनाथजी दोनों की वार्ताओं का उल्लेख है।



६. “ निजवार्ता घरूवार्ता और चौरासी बैठक के चरित्र ” नामक छपे हुए ग्रन्थ के पृष्ठ ६३ पर श्रीगोकुलनाथजी के भक्तों की चारित्रिक वार्ताओं का मौखिक रूपसे कहने का इस प्रकार उल्लेख है ।

“ श्री गोकुलनाथजी आप भगवदीयनतें इतनी कथा कहि विराम करत भए, तब भगवदीयनने बीनती कीनी, महाराज ! आपने श्री आचार्यजी महाप्रभुकी तीन पृथ्वी परिक्रमा के चरित्र संक्षेप में सुनाए । परि या चरित्रामृत में हमकों तृप्ति नाहि होत । तातें और हू श्रीआचार्यजी के चरित्र सुनाइवेकी कृपा करोगे । तब श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करत भए जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरित्र तो अनन्त हैं पर और हू संक्षेप सों तुमकों सुनावत हों । ऐसे कहिके आप और हू चरित्रामृत अपने भगवदीयन को पान करावत भए । ”

इसके बाद में ८४ वार्ताओं का उल्लेख है ।

७. इन वार्ताओं के प्रचारका ध्येय भक्तों के चारित्रिक उदाहरणों को उपस्थित करके भक्ति भावका हृदय में उद्रेक करना है । गोकुलनाथजी इसी विचारसे इन वार्ताओं को कथारूप से कहते थे । जगदीश्वर प्रेस से सं. १९५१ में छपी चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ. २९१ के लेख से तथा कांकरोली में श्रीद्वारिकादासजी के पास रक्षित निजवार्ताकी एक प्राचीन (सं. १८५१ की) प्रतिलिपि से भी इसकी पुष्टि होती है ।

“ और श्रीगोकुलनाथजी आप कथा कहते सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी आप दामोदरदास संभरवारे की वार्ता करत हुते, तब एक वैष्णवने पूछ्यो जो महाराज, आज कथा न कहोगे । तब श्रीगोकुल-



नाथजी आप श्रीमुखतें कह्यो जो आज तो कथा को फल कहत हैं। ताते भगवदीयन को अवश्य चौरासी वार्ता कहनी और सुननी, जातें भगवद्भक्ति होय और श्रीठाकुरजीके चरणारविंद में स्नेह होय और श्रीनाथजी प्रसन्न होय ।”

उपर्युक्त कथनसे यह सिद्ध है कि वार्ताएँ श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं, इसीलिए वे इनके कर्ता कहे गए हैं। वास्तव में गोकुलनाथजीने इन वार्ताओं को अपने हाथसे नहीं लिखा। इनके सम्पादक श्रीहरिरायजी हैं।

दूसरा प्रश्न है ८४ और २५२ वार्ता का रचनाकाल।

कंठमणि शास्त्रीजी के बर्गोकरण से वार्तासाहित्य के इतिहासका परिचय मिलता है। पीछे कहे प्रमाणों से पाठक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता २५२ वार्ता से अधिक पुरानी है। वास्तव में २५२ की हमें ८४ वार्ता के समान प्राचीन प्रति देखने को नहीं मिली। कहा जाता है कि कामवन में बहुत प्राचीन प्रति विद्यमान है। २५२ वार्ता की, लगभग १२० वर्ष पुरानी प्रतियां हमने गोकुल और मथुरा में देखी हैं। उनमें के बहुत से प्रसंग छपी हुई २५२ में छोड़ दिये गए हैं। अप्रैल सन् १९३२ में ब्रज-भाषा के विशेषज्ञ प्रो. डा. धीरेन्द्र वर्माजीने ‘हिन्दुस्तानी’ में एक लेख इन वार्ताओं पर लिखा था। डा. वर्माने भाषा की दृष्टि से चौरासी वैष्णवन की वार्ता को दोसौ बावन वार्ता की अपेक्षा अधिक पुराना बताया है। अनुमान हमारा भी यही कहता है कि श्रीगोकुलनाथजीके ८४ वार्ता वाले वचनों का संकलन पहले हुआ और २५२ वार्ताका



बाद में, परन्तु दोनों का संकलन हरिरायजी के सं. १७२६ में गोकुल छोड़ने से पहिले ही हो गया था। सं. १७२६ में औरंगजेब के अत्याचारसे वैष्णव, श्रीनाथजीको उनके सम्पूर्ण वैभव सहित गोवर्धनसे बाहर ले गए और दो वर्ष बाद सं. १७२८ में उनको नाथद्वारमें विराजमान किया। उनके साथ श्रीहरिरायजी भी आए थे। ज्ञात होता है कि श्रीहरिरायजीने अपने उत्तर जोवनकालमें वार्ता पर अपना भाव-प्रकाश लिखा होगा।

२५२ वार्ता में अजबकुंवर, गंगावाई, लाड़वाई और धारवाई के चरित्रों में कुछ प्रसंग ऐसे आते हैं जिनमें औरंगजेब के मंदिर तोड़नेका जिक्र है। इसी वार्ता में श्रीगोकुलनाथजी का नाम आदर प्रदर्शक शब्दों में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के वृत्तान्त स्वभावतः पाठकों के हृदय में शंका उत्पन्न कर सकते हैं कि यह २५२ वार्ता ग्रन्थ गोकुलनाथजी कृत नहीं हो सकता क्यों कि ये घटनाएं श्रीगोकुलनाथजी के समय के बाद की हैं। किन्तु इन प्रसंगों का समावेश प्रथम श्रीहरिरायजीने किया है, जो औरंगजेबके मंदिर तोड़ने के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। गोकुलनाथजी के कहे हुए प्रसंगों को उनके अनेक शिष्यों ने लिखा है, विशेष रूप से श्रीहरिरायजीने\*। २५२ वार्ता में हरिरायजीके बहुत

---

\* भावप्रकाश में हरिरायजीने ऐतिह्य साधनोंका भी संग्रह किया था जैसा कि सूरदास, परमानन्द आदि की प्रस्तुत ग्रन्थकी भावप्रकाश वाली वार्ताओंमें विद्यमान है। इससे यह भी निश्चित है कि वार्ता के तृतीय संस्करणके समय जो कि सं. क. के आधारसे सं. १७२९ के बाद हुआ है, श्रीहरिरायजीने लाड़वाई, धारवाई, अजबकुंवर और उस समय तक विद्यमान गंगा क्षत्रानी आदिके श्रीगोकुलनाथजी द्वारा प्रकटित अपूर्ण प्रसंगों को



समय बाद वैष्णवोंने अब वार्ताओंको छपवाया, उस समय उन्होंने मन मानी घटा बढ़ी कर ली, जैसा कि सूरदास ठाकुरदासके कथनसे सिद्ध होता है। २५२ वार्ता की प्रस्तावना में वैष्णव सूरदास ठाकुरदास आगे लिखते हैं, “ २५२ वैष्णवन की वार्ता सम्पूर्ण मिली नहीं, जासु मैंने बल्लभकुलके बालकन के मुखसों और प्राचीन वैष्णवन के मुख सूं सुनी है सो वार्ता मिलायके २५२ वार्ता संपूर्ण करी है। ”

अब प्रश्न है कि इन वार्ताओं में दिए हुए वृत्तान्त कहां तक प्रमाण कोटिमें गिने जा सकते हैं। हिन्दी के कई विद्वानोंने कहीं तो यह कहकर ८४ और २५२ को अप्रमाणिक कह दिया है कि ये साम्प्रदा-किय गौरव बढ़ानेके लिए गढ़ी हुई कपोल कल्पनाएं हैं। और कहीं कुछ विद्वानों ने छपी वार्ताओंमें श्रीगोकुलनाथजी के समय के बाद दो एक घटनाओं का समावेश तथा भाषा संबन्धी रूपान्तर देख कर सम्पूर्ण वार्ता को अप्रमाणिक सिद्ध कर दिया है।

पहले कथन की सहमति में हम इतना मानते हैं कि भक्तों के आध्यात्मिक चरित्रों में अलौकिक घटनाओं का समावेश किसी हद तक अवश्य हुआ है, वैसे भक्तों की दृष्टिसे यही अलौकिक घटनाएं अधिक महत्वकी हैं, परन्तु वार्ताके भौतिक चरित्र—प्रसंगों में घटा बढ़ी से सम्प्रदाय का कोई गौरव नहीं बढ़ता। चाहे कोई भक्त क्षत्रिय हो और चाहे ब्राह्मण। वैसे आचार्यजी और गुसाईंजी के शिष्यों में चूहड़ जाति

---

पूर्ण किया है, और इसी अरसे में श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता की भी रचना की है जिसका उल्लेख गंगाबाईकी वार्ता में मिलता है।



से लेकर ब्राह्मण तक, सभी जाति के लोगों का समावेश है। मेरे विचारसे भक्तों के चरित्रों में अलौकिक चरित्र के कारण प्रसंगों में ऐतिहासिक महत्ता अग्राह्य नहीं होनी चाहिए। विशेष रूप से वहां, जहां अन्य विश्वस्त प्रमाणों का अभाव है।

दूसरे आक्षेप पर हम पहले ही कह चुके हैं कि वास्तवमें चौरासी वार्ता अष्टसखाओं की वार्ता, २५२ वार्ता तथा अन्य कई ग्रन्थ श्री गोकुलनाथजी के हाथ के लिखे हुए नहीं हैं। भाषा का रूपान्तर ८४ और २५२ वार्ताओं में अवश्य है। परन्तु यह रूपान्तर हमें केवल चौरासी में भी जिसको डा. धीरेन्द्र वर्मा और रामकुमार वर्मन भी प्रामाणिक माना है, भिन्न भिन्न समय की प्रतिलिपियों में बहुत मिलता है। प्रतिलिपिकारों का तथा प्रतिलिपि कराने वाले वैष्णवों का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर नहीं रहा। उनका ध्यान केवल वृत्तान्त के भाव की ओर रहा है, इसी लिये लिखियाओंने अपने अपने प्रान्त और अपनी अपनी शिक्षा बुद्धि के अनुसार भाषा का रूपान्तर कर मारा है। इसलिए जिस वैष्णव ग्रन्थ में जो तिथि दी हो हम केवल उसी समय की भाषा का अनुमान उस ग्रन्थसे लगा सकते हैं। इस प्रकार भाषा के आधारसे साधारण लोगों की नवीन प्रतिलिपियों को महत्व पूर्ण नहीं समझना चाहिये।

हम पहले कह चुके हैं कि ये वृत्तान्त श्रीहरिरायजीने संगृहीत किये हैं और उन्होंने अपनी टिप्पणीयोंसे उनको स्पष्ट किया है। हरिरायजी सम्प्रदाय के बहुत विद्वान्; बड़े भारी लेखक और उच्चायक हुए



हैं, उन्होंने बहुत सी यात्राएं की थीं। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह हमारा अनुमान है अधिकांश में विश्वस्त सूत्र से सूचना लेकर लिखा होगा। अष्टछाप कवियों पर हरिरायजी की अलग से भावना है। इस लिये हम अष्टकवियों की जीवन सामग्री के लिए भावनावाली ८४ और अष्ट वार्ताओं की प्रतियों को कांकरोली की १६९७ की प्रतिकों प्रामाणिक मानते हैं। २५२ वार्ता की भावनावाली प्रति मिले तो उसकी प्रामाणिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा अन्यथा अष्ट कवियों की जीवनी के प्रमाण स्वरूप तो उपर्युक्त ग्रन्थ उस समय तक पर्याप्त है जब तक लोगों को कोई अन्य अधिक विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता।

कांकरोली

ता. २५।६।१९४१

दीनदयालु गुप्त

एम. ए. एल. एल. बी.

दीन्दी लेक्चरर लखनऊ विश्वविद्यालय





विद्याविभाग कांकरोलीद्वारा प्रकाशित—

## अष्टछाप पर अभिप्राय



हिन्दी साहित्यमें व्रजभाषा के अष्टछाप कवि एक विशेष महत्व का स्थान रखते हैं। इन कवियों की जीवनियों का अधिकांश में विश्वस्त आधार '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा '२५२ वैष्णवन की वार्ता' है।

सन १९१९ में हिन्दी के प्रोफेसर, आचार्य डा० धीरेन्द्रवर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय, ने डाकौरजी से सं. १९६० में प्रकाशित ८४ और २५२ वार्ताओं के आधार पर अष्टछाप कवियों की वार्ताओं का, 'अष्टछाप' नाम से संकलन किया था। प्रस्तावना में उन्होंने इन वार्ताओं की ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बन्धी महत्ता पर प्रकाश डाला है। श्री वर्माजी का यह संग्रह विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में हिन्दी गद्यसाहित्य की पाठ्य पुस्तक रूप में पढ़ाया जाता है। हिन्दीसाहित्य के इतिहासकारों ने 'अष्टछाप' कवियों का वृत्तान्त अधिकांश में इन वार्ताओं के सहारे पर ही दिया है।

बल्लभसंप्रदायी साहित्य-संग्रहालयों में तथा वैष्णव घरों में वार्ताओं के उपर्युक्त वृत्तान्त के अतिरिक्त, इन वार्ताओं पर गो० हरिरायजी (समय सं. १६४७ से सं. १७७२ तक) कृत 'भावप्रकाश' भी मिलता है, जिनमें पुष्टिमार्गीय भक्तों के वृत्तान्त कुछ विशेष सूचना के साथ दिये हुए हैं। गो० हरिरायजी के 'भावप्रकाश' की सूचना का सबसे प्रथम प्रसार सं. १९९६ में कांकरोली से प्रकाशित 'प्राचीन वार्ता'



रहस्य' प्रथम भाग नामक पुस्तक से हिन्दी-संसार में हुआ। अष्टभक्त कवि के भावप्रकाश वाले वृत्तान्त की सूचना जब कुछ विद्वानोंने पत्रिकाओं निकलवाई तो हिन्दी संसार का ध्यान इस 'भावप्रकाश' की ओर विरू से आकृष्ट हुआ। हरिरायजी की भावनावाली ८४ वार्ता (सं. १८५७ की प्रतिलिपि) तथा २५२ वार्ता के चार 'अष्टछाप' वाले कवियों की वार्ता की हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे भी गोकुल पिछले वर्ष प्राप्त हुई थी। मैंने उन्हें डा० वर्मा तथा अन्य हिन्दू प्रेमियों को दिखाया तो उन्होंने मुझे उनके 'अष्टछाप' सम्बन्ध वृत्तान्त को, अलग से छपवाने की सम्मति दी। अष्टछाप पर नवीन सामग्री की मांग का अनुभव कांकरौली विद्याविभागने भी किया।

कांकरौली विद्याविभाग में वल्लभ-सम्प्रदायी तथा अन्य प्राचीन हस्तलिखित साहित्य का, एक बृहत और सुव्यवस्थित संग्रह सुरक्षित है। जिसका अवलोकन आजकल मैं कांकरौली में रहकर कर रहा हूँ। विद्वद्वर श्रीकण्ठमणि शास्त्री इस विभाग के संचालक हैं और इस बहुमूल्य संचित निधि का उपयोग अपनी लेखनी द्वारा कर रहे हैं। उन्होंने तथा साम्प्रदायिक साहित्य और सेवाविधि के विशेषज्ञ श्रीद्वारिकादासजीने बड़ी योग्यता पूर्वक गो० हरिरायजी कृत 'भावप्रकाश' के साथ प्रस्तुत 'अष्टछाप' वार्ता का संकलन किया है। उन्होंने अपने इस कार्य से वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक आवश्यकता की पूर्ति की है।

उक्त संकलनका आधार, जैसा कि ग्रन्थ की प्रस्तावना में सूचित है, सं. १७५२ का 'अष्टसखान की वार्ता' पर गो० हरिरायजी का



भावप्रकाश है। अष्टसखा तथा ८४ वार्ता की सं. १६९७ की लिखी एक प्रति कांकरौली विद्याविभाग में विद्यमान है। इस प्रति का मैंने निरोक्षण किया है और इस की प्राचीनता पर मुझे संदेह नहीं है। यह वार्ता गो० गोठुलनाथजी के समय की ही लिखी हुई है। सं. १६९७ की यह वार्ता और सं. १७५२ की प्रस्तुत वार्ता भाषा की दृष्टि से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रस्तावना श्रीकण्ठमणि शास्त्रीजी ने बड़ी खोज के साथ लिखी है, जिससे संस्कृत और साम्प्रदायिक साहित्य के विद्वान शास्त्रीजी के हार्दिक हिन्दी साहित्यानुराग और विद्वत्ता का परिचय मिलता है। शास्त्रीजी प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक, श्रोदारिकादासजी के सहयोग से अष्टछाप कवियों के काव्य का तथा अन्य वल्लभ-सम्प्रदायी कवियों का, उनके परिचय सहित संप्रह निकालने वाले हैं। मैं, उनके इस विचार और कार्यकी हृदय से प्रशंसा करता हूं। प्रस्तुत 'अष्टछाप' के संकलन और प्रकाशन के लिये कांकरौली विद्याविभाग हिन्दी संसार की प्रशंसा का भागी है। मुझे ज्ञात हुआ है कि इस साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में कांकरौली के विद्या और कलाके प्रेमी महाराजश्री गो० ब्रजभूषणलालजी तथा उनके अनुज गो० श्री विठ्ठलनाथजी विशेष प्रोत्साहन दे रहे हैं। श्री महाराजों का यह कार्य वास्तव में स्तुत्य है।

दीनदयालु गुप्त

एम, ए. एल. एल. बी.

हिन्दी लेक्चरर, लखनऊ विश्वविद्यालय,



## शुद्धि-पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ-पंक्ति	
करनफूल कछु	करनफूल और कछु	३१	१२
सूरदयाम पके	सूरस्याम छापके	४५	१५
सूरजदास	सूरज	५६	९
भगवद् वर्णन	भगवद्जश वर्णन	७३	१७
नन्द खेलत	नन्द के खेलत	७५	१०
१६०५	१६२५	९३	२१
औरे सब	औरे तो	९५	२
कान	करनफूल	१२४	१९
करत नहीं	नहीं करते	१२८	२१
श्रीअकरजी	श्रीकृष्णजी	१८६	२२
गाय सों	गाय वा सों	२०६	१७
होयकी	होयवे की	२१७	२०
कछू	जो कछू	२२४	२
पहिची	पहोंचि	२२९	७
सब बालकन सहित	x	२५५	२०
ब्राह्मण	ब्राह्मण जाके पद अष्टछापमें गाइयत हैं	२६४	३
रहे जो	रहे और विचारे जो-जो	२६४	१४
लोगन सों	लोगन ने	२६९	१
आज और.....	सुभग सिंगार आज.....	३०३	४
उहनो	उराहनो	३१८	२१
पढै	पठे	३२३	२१
तूम	तू	३२६	१९
जब	तब	३२७	१६







શ્રીહરિણય મહાપ્રભુ.



પ્રાકટય સંવત્ ૧૯૪૭ ભાદ્રપદ વદી ૫

સરયા આર્ટ પ્રીન્ટરી, અમદાવાદ.



# अष्टछाप

## (१) महानुभाव श्रीसूर

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सूरदासजी  
सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सींहीं<sup>१</sup> गाम है  
तहां रहते, तिन की वार्ता—

### श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

सो ये सूरदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के अष्टसखा हैं, सो तिन  
में ये 'कृष्ण सखा' को प्राकट्य हैं। तहां यह संदेह होय जो—निकुंज  
आधिदैविक लीला में तो सखीजनन को अनुभव है, जो  
मूलस्वरूप सखा तहां नाही हैं। सो सूरदासजीने रहस्य-  
लीला, विना अनुभव कैसे गाई ?

तहां कहत है जो श्रीभागवत में कहे हैं जो—जब श्रीठाकुरजी ओप  
वन में गोचारन लीला में सखान के संग पधारत हैं, सो सगरी गोपी-  
जन लीला को अनुभव करत हैं। सो घर में सगरी लीला वन की गान

---

१. सींहीं गामने सींहोरा अने शेरगढना नामथी पणु डेटलाइ  
प्राचीन ग्रन्थोमां लख्यु छे.



करत हैं । ता पाछें जब श्रीठाकुरजी संध्या समय वन ते घरकूं आवत हैं, ता पाछें रात्रिकों गोपीजन सों निकुंज में लीला करत हैं । सो त अंतरंगी सखान कां विरह होत है, तब वे निकुंजलीला को गानं करत हैं,\* अनुभव करत हैं । सो काहेतें ? कुंज में सखीजन हैं सो तिन के दोय स्वरूप हैं, सो कहत हैं:—पुंभाव के सखा और स्त्री भाव के सखी । सो दिन में सखा द्वारा अनुभव और रात्रि कों सखी द्वारा अनुभव है । सो काहेतें ? जो वेद की ऋचा हैं सो गोपी हैं । और वेद के जो मंत्र हैं सो सखा हैं । परंतु गोपीजन देखिवे मात्र स्त्री है, सो इनके पति हैं, परंतु ये स्त्री नांही हैं । सो एसे—(जैसे) भुज्यो अन्न होय सो घरती में बोज नाही ऊगे । तेसेही इनको लौकिक विषय नांही है । सो यहां तो रसरूपलीला सदा सर्वदा एक रस हैं । सो तेसेही अंतरंगी सखा श्रीठाकुरजी के अंगरूप हैं । सो सखी रूप, सखा रूप दोउ रूप सों रात्रिदिन लीलारस करत हैं.

सो तासों सूरदास 'कृष्ण सखा' को प्राकट्य हैं । और कृष्ण सखा को दूसरो स्वरूप सखी है, सो लीला कुंज में है तिनको नाम चंपकलता है । सो तासों सूरदास को सगरी लीला को अनुभव श्री आचार्यजी महाप्रभुन की कृपा ते होयगो ।

सो प्रकार कहत हैं । तहां यह संदेह होय, जो—लीला संबंधी है सो पहले तें अनुभव क्यों नाही भयो । सो इन कों मोह क्यों भयो ? तहां कहत हैं जो—श्रीठाकुरजी भूमि के ऊपर प्रकट होय के लौकिक

\* भुज्यो श्रीमद्भागवत दशमस्कंधना वेणुगीत उपरनी कारिका १-२, अने श्रीमती टिप्पणी.



की नाई लीला करत हैं, सो जस प्रकट करनार्थ । सा लीला गाइ जगत में लौकिक जीव कृतार्थ होत हैं । तैसेई श्रीठाकुरजी के भक्त हू जगत में लौकिक लीला करि अलौकिक दिखावत हैं । जैसे श्रीरुक्मिणीजी साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी को स्वरूप हैं, परंतु जब जन्मी तब देवी पूजि के वर मांग्यो । फेरि श्रीठाकुरजी के पास ब्राह्मण व्याह के लिये पठायो । सो यह जग में लीला प्रकट करणार्थ । जैसे कालिंदीजी सूर्यद्वारा प्रकट होय के श्रीयमुनाजी में मंदिर करि तपस्या करि, अर्जुन सेां कही जो— मैं श्रीठाकुरजी को बखंगी । तब श्रीठाकुरजी आपु विवाह कियो । सो ये लीलामात्र, (क्यों जो) ये सदा श्रीठाकुरजी की प्रिया हैं । सो ब्रजमें श्रीस्वामिनीजी और श्रीठाकुरजी आपु ये दोउ एक रूप हैं, परंतु ब्रजलीला प्रकट करिवे के लिये श्रीठाकुरजी श्रीनंदरायजी के घर प्रकटे और श्रीस्वामिनीजी श्रीवृषभानजी के घर प्रकट होय के अनेक उपाय मिलिवे को रात्रदिन किये । सो यह लीला (केवल) जगत में प्रकट करिवे के लिये (ही) । (नातर) ये तो सदा एक रस लीला करत हैं ।

सो तैसेई सूरदासजी श्रीआचार्यजी के सेवक होय के भगवल्लीला गाये । सो यामें स्वामी को जस बढै । सो जिन के सेवक सूरदास ऐसे भगवदीय, तिन के स्वामी श्रीआचार्यजी आपु तिन की सरन जैये । सो या प्रकार जगत में लीला करि जस प्रकट किये, सो आगे लौकिक जीव को गान करि भगवत्प्राप्ति होय । सो सूरदासजी जगत पर अब ही प्रकटे, परंतु लीला को ज्ञान नांही है ।

सो सूरदासजी दिल्ली के पास चारि कोस ऊरे में एक सीहीं गाम



હૈ, જહાં રાજા પરીક્ષિત કે બેટા જન્મેજય ને સર્પ યજ્ઞ કિયો હૈ । સો  
 ગામ મેં એક સારસ્વત\* બ્રાહ્મણ કે યહાં પ્રકટે  
**સૂરદાસજી કા પૂર્વ** સો સૂરદાસજી કે જન્મત હી સોં નેત્ર નાહી હૈ  
**ચરિત્ર** ઓર નેત્રન કો આકાર ગઠેલા કહ્યૂ નાહ  
 ડપર મોંહ માત્ર હૈ । સો યા માંતિ સોં સૂરદાસ  
 કો સ્વરૂપ હૈ । સો તોન બેટા યા સારસ્વત બ્રાહ્મણ કે આગે કે હૈ

+ ઉક્ત રામદાસને સીંહી ગામના દરિદ્ર બ્રાહ્મણ તરીકે અહીં વર્ણવ્યા છે. જ્યારે ‘આઈનેઅકબરી’વાળા ‘રામદાસ ગ્વાલેરી’ સંબંધ મિષ્ટર બ્લોકમૈન સાહેબ પોતાના ‘આઈનેઅકબરી’ના અનુવાદમાં ‘બાબા રામદાસ’ સંબંધી નોટ કરતાં આ પ્રમાણે લખે છે—

“Note—Badaoni (II 42) Says Ramdas came from Lakhnau. He appears to have been with Bairamkhan during his rebellion and he received once from him one lakh of tankahas, empty as Bairam’s treasure chest was. He was first at the court of Islamshah and is looked upon as second only to Tausen. His son Surdas is mentioned below.”

આ લેખથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે ‘બાબા રામદાસ’ પહેલાં દિલ્હીના બાદશાહ ઇસલામશાહ કે જે સન ૧૫૪૫ ઇસ્વીમાં ગાદી ઉપર બેઠો હતો, અને સન ૧૫૫૩ ઇસ્વીમાં મરી ગયો. ( સં. ૧૬૦૨ થી ૧૬૧૦ ) તેના દરબારમાં હતા. પછી બાદશાહ હુમાયુના રાજ્ય-કાળમાં એના વજીર બેરામખાંની પાસે તે રહેવા લાગ્યા, અને વિ. સં. ૧૬૧૬-૧૭ માં બેરામખાં હુમાયુના બેટા અકબરથી બંડ



और घर में बहोत निष्किंचन हतो । वा सारस्वत ब्राह्मण के घर चौथे सूरदासजी प्रकटे । सो तब इनके नेत्र न देखे, आकार (हू) नांही । सो या प्रकार देखि के वा ब्राह्मण ने अपने मनमें बहोत सोच कियो, और दुःख पायो ।

जो देखो—एक तो विधाता ने हमकों निष्किंचन कियो, और दूसरे घर में एसो पुत्र जन्म्यो । जो अब याकी कौन तो टहल करेगो ? और कौन याकी लाठी पकरेगो ? सो या प्रकार ब्राह्मण ने अपने मन में बहोत दुःख पायो । सो कहैतैं जो— जन्मे पाछे नेत्र जांय तिनको आंधरा कहिये, सूर न कहिये । और ये तो सूर हैं, सो मातापिता घर के सब

करी लउयो त्यारे ते वञ्चते तेओ साथे हुता. आ रामदास लखनौधी आवेला हुता.

हुवे सांप्रदायिक इतिहास तरङ्ग दृष्टिपात करतां ओ विस्पष्ट छे के न्यारे योथा पुत्र तरीके श्रीसूरनो जन्म सं. १५३५ भां छे त्यारे तेमना पिता ओके हरिद्र आत्मणु सारस्वत रामदासनो जन्म ओछामां ओछो सं. १५१५ ना लगभग होवे नोष्ठये. ओ हिसाये उक्त इतिहासने मेणवे तो १६२० थी शङ्क थता अकबरना दरबारभां आ रामदास ने आव्या होय तो ते वञ्चत तेमनी उमर सो वर्षथी पणु उपरनी होवी नोष्ठये.

ओ तदन असंभवित छे के ओटली उमरनो ओके प्राकृत मनुष्य तानसेन आदि महा गवैयाओमां जीज्ज नंअरे होई शके ! केमके ते उमरे राग, कंठ आदि सुमधुर ओके सरभां गावाने योग्य रहेतां नथी. वणी अकबर आदशाहुने त्यां रहेवाथी तेओ हरिद्र पणु संभवे नही ते आपणु प्रत्यक्ष नोष्ठ शकीये छीये. तेथी अहिं आर्धनेअकबरी-वाणा रामदास केई जीज्ज होवा नोष्ठये.



कोई इनसों प्रीति करें नाहीं । जानें, जो— नेत्र बिना को पुत्र कह  
तासों इनसों कोई बोलतो नाहीं ।

सो एसे करत सूरदासजी वरस छह के भये । तब पिता  
वा गाम के एक द्रव्यपात्र क्षत्री जजमान ने दोय मोहोर दान में दीनी  
तब यह ब्राह्मण उन मोहोरन को ले के अपने घर आयो, और अप  
मन में बहोत प्रसन्न भयो, और स्त्री तथा घर में देह संबंधी बेटा बे  
हते सो तिन सवनसों कही जो— भगवान ने दोय मोहोर दीनी हैं ।  
कालि इनको बटाय के सीधो सामान लाऊंगो । तातें अपने घर में दो  
चार महीना को काम चलेगो । सो या प्रकार सबन को वे दोय मोहे  
दिखाई । ता पालें रात्रिकों एक कपडा में बांधि के ताक में धरि  
सोयो । तब रात्रि को दोय मोहोरन कों मूसा ले गये, सो घर क  
छांतिन में भिह्ये में धरि दीनी ।

तब सबारे उठि के देखे तो मोहोर नाही है । सो तब तो सूरदास  
के माता पिता छाती कूटन लागे, और रोवन लागे, और अपने मन में  
अति कलेश करन लागे । सो बा दिन खानपान नाहीं कियो । सो द  
भांति सों घनो विलाप करन लागे । सो देखि के सूरदासजी मातापित  
सों बोले जो— तुम एसो दुख विलाप क्यों करत हो ? जो श्रीभगवान  
को भजन सुमिरन करो तासों सब भलो होय । सो या भांति सूर-  
दास उनसों बोले । तब मातापितान ने सूरदास सों कही जो— तू एसी  
घडी को सूर जनम्यो है, सो हम कों वाही दिन सों दुख ही मे जनम  
बोतत है । जो हम कों काहू दिन सुख नाही भयो, और हमकों भरपेट  
अन्नहू नाही मिलत है । जो श्रीभगवानने हमकों दोय मोहोरो दीनी हती  
साहू योही गई ।



तब सूरदासजी बोले जो—तुम मोकों घर में न राखो तो मैं अब ही तिहारी मोहोर बताय देऊं। परि पाछे मोकों घर में राखियो मति और तुम मेरे पीछे मति परियो। तब यह सुनि के मातापिता ने सूरदास से कह्यो जो—और हमकों कहा चाहियत है? जो तू हमकों मोहोर बताय देउ, और हमारी मोहोर पावे फेरि तेरे मन में आवे तहां तू जाइयो। हम तोकों बरजेंगे नांही। तब सूरदास बोले जो—छांति में भिल्लो है सो भिल्ले के मोहोडे पर धरी है। तब वह ब्राह्मण खोदि के मोहोर पाये।

तब सूरदासजी घरमें ते चलन लागे। मातापिता कों मोह उत्पन्न भयो। जो देखो, या सूरदास को सगुन बहोत आछो भयो। याके कहे प्रमान मोकों तुरत ही मोहोर मिली है। सो यह बिचारि के मातापिता ने सूरदासजी से कह्यो—जो सूरदास! अब तुम घरतें क्यों जात हो? अब तो यह मोहोर पाय गई है, तातें जहां तांई यह मोहोरन को अनाज रहै तहां तांई तुमहू खावो, पाछें जहां जानो होय तहां तुम जैयो। तब सूरदास बोले जो—मोकों अब तुम घर में मति राखो, जो मोकों घर में राखोगे तो तिहारी मोहोर फेरि जायगी। और तुम दुख पावोगे।

यह सुनि के माता पिता कलु बोले नाही, और सूरदासजी तो हाथ में एक लाठि लेकर घर से निकसे। सो सांही तें चले, सो चार कोस ऊपर एक गाम हतो, तहां एक तलाव गाम बाहिर हतो। सो वहां एक पीपर के वृक्ष नीचे सूरदासजी आय बैठे और वा तलाव को जल पियो। तहां दोय चार घडी दिन पाछलो रह्यो हतो, तब ता गाम को ब्राह्मण जमींदार तहां आय के सूरदासजी को पहचान के कहन लाग्यो जो—मेरी १० गाय तीन दिनतें मिलत नाही, कोई बतावे तो दो गाय वाको दऊं।



देयगो, ताई तहां मै तुमकां लाउंगो, और सवेरे या तलाव पर तथा गाम में जहां तुम कहोगे तहां छापरा डार दऊंगो.

पाछे सवेरो भयो, तब यह जमींदारने आय के कयो— जो तिहारो मन कहां रहेवोको है ? तब सूरदासने कही— जो अब तो याही तलाव पर पीपरा नीचे कछुक दिन रहवे को मन है । तब वा जमींदारने वहां एक झोंपडी छवाय दीनी और टहल करिवेकुं एक चाकर राखि दियो ।

ता पाछे वा जमींदारने दसपांच जनेके आगे बात करी— जो फलानेको । बेटा सूरदास बडो ज्ञानी है । हमारी गाय खोय गई हती सो बताय दीनी सो वह सगुन में आछो जाने है । सो मै वाकों तलाव के उपर पीपरके नीचे झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियो है । और नित्य पूरी दहीं दूध पठावत हूं, सो तासों काहूकों सगुन पूछनो होय तो वाकूं जाय के पूछि आइयो ।

यह सुनि के सब लोग गाम के आवन लागे । सो जो कोइ पूछे तिनकां सगुन बतावे सो होई । तब सूरदास की बडी पूजा चली, भीर लगी रहै । खानपान भली भांति सो आवन लाग्यो । सो तब कछुक दिनमें सूरदास को रहिवे के लिये एक बडो घर तलाव पर बनाय दियो, और वह झोंपरी हू दूरि कीनी । और वस्त्र द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो । सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये । जाके कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय । सो सूरदास विरह के पद सेवकनको सुनावते । सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो.

या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे वरस अठारे के भये । सो एक दिन रात्रिको सोवत हते, ता समय सूरदास को



तब सूरदासजी ने कही जो— मोकों तेरी गाय कहा करनी है ? पर तू पूछत है तब कहत हूं जो— यहां सो कोस ऊपर एक गाम है । सो वा गाम के जमींदार के मनुष्य रात्रि को आय के तेरी १० गाय ले गये हैं । वा जमींदार के घर के भीतर एक दूसरो घर है, सो तहां जमींदार के घोडा बंधे हैं, सो उन घोडान के पास तेरी गाय बंधी हैं । तब वे जमींदार दस आदमी संग ले जाइ देखे तो गाय सब बंधी हैं, सो ले आय के सूरदासजी सो कह्यो जो— सूरदास ? तिहारे कहे प्रमान मेरी दस गाय पाय गई हैं, सो येदोय गाय तुम राखो । तब सूरदासजी ने कही जो— मैं अपनो ही घर छोडि के श्री ठाकुरजी को आश्रय करि के बेठो हूं सो मैं तेरी गाय काहेको लेऊं ।

तब वह जमींदार सूरदास को बालक जानि के शिक्षा की बात करन लाग्यो, जो अरे ! तू फलाने सारस्वत को बेटा है, और नेत्र तेरे हैं नाही, और कोऊ मनुष्य हू तेरे पास नाहीं है, सो तू अपने घर को छोडि के रूठि के यहां क्यों बेठ्यो है ? नेत्र हैं नाही, कैसे दिन कटेंगे ?

तब सूरदासने कह्यो जो— मैं तेरे ऊपर तो घर छोड्यो नाहीं । मैं तो नारायण के ऊपर घर छोड्यो है, सो वे सगरे जगत को पालन करत हैं, सो मेरो हू करेंगे । और जो होनहार होयगी सो होयगी ।

तब जमींदार ने कही, मैं हू ब्राह्मण हौं, दारि रोटी मेरे घर भई है, कहे तो लाउं । तब सूरदास ने कही जो— मैं तो गैल की चली रोटी नाही खात । तब वह जमींदार अपुने घर जाइ पूरी कराइ और दूध ले जाइ सूरदास को जल भरि दे के कह्यो जो— सूरदास ! तुम कोई बात को दुःख मति पाइयो । जो जहां ताई भगवान मोकों खायवेकों



देयगो, ताई तहां भै तुमकां लाउंगो, और सवेरे या तलाव पर तथा गाम में जहां तुम कहोगे तहां छापरा डार दऊंगो,

पाछे सवेरो भयो, तब यह जमींदारने आय के कह्यो— जो तिहारो मन कहां रहेवोको है ? तब सूरदासने कही— जो अब तो याही तलाव पर पीपरा नीचे कछुक दिन रहवे को मन है । तब वा जमींदारने वहां एक झोंपडो छवाय दीनी और टहल करिवेकुं एक चाकर राखि दियो ।

ता पाछे वा जमींदारने दसपांच जनेके आगे बात करी— जो फलानेको । बेटा सूरदास बडो ज्ञानी है । हमारी गाय खोय गई हती सो बताय दीनी सो वह सगुन में आछो जाने है । सो मै वाकों तलाव के उपर पीपरके नीचे झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियो है । और नित्य पूरी दहीं दूध पठावत हूं, सो तासों काहूकों सगुन पूछनो होय तो वाकूं जाय के पूछि आइयो ।

यह सुनि के सब लोग गाम के आवन लागे । सो जो कोइ पूछे तिनकां सगुन बतावे सो होई । तब सूरदास की बडी पूजा चली, भीर लगी रहै । खानपान भली भांति सो आवन लाग्यो । सो तब कछुक दिनमें सूरदास को रहिवे के लिये एक बडो घर तलाव पर बनाय दियो, और वह झोंपरी हू दूरि कीनी । और वख्र द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो । सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये । जाके कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय । सो सूरदास विरह के पद सेवकनको सुनावते । सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो ।

या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे वरस अठारे के भये । सो एक दिन रात्रिको सोवत हते, ता समय सूरदास को



वैराग्य आयो । तब सूरदासजी अपने मनमें विचारे जो— देखो, मैं श्री भगवान के मिलन अर्थ वैराग्य करि के घरों निकस्यो हतो, सो यहां माया ने ग्रसि लियो । मोकूँ अपनो जस काहेको बढावनोह तो ? जो मैं श्रीप्रभुको जस बढावतो तो आछो । और यामें तो मेरो विगार भयो, तासों अब कब सवारो होय और मैं यहां से कूंच करूं ।

सो ऐसे करत सवारो भयो । तब एक सेवकको पठाय मातापिता को बुलाय सब घर उनको सांपि दियो । पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरिके लाठी ले के उहां ते कूंच किये । सो तब जो सेवक माया के जंजाल में हते, सो संसारमें लपटे और उहांई रहे । और कितनेक सेवक जो संसार से रहित हते, सो सूरदास की संग ही चले । सो सूरदास मनमें विचारे जो— ब्रज है सो श्रीभगवानको धाम है, सो उहां चलिये । तब सूरदास उहां ते चले, सो श्रीमथुराजी में आये । तहां विश्रान्तघाटपे रहिके सूरदासने विचार कियो जो— मैं मथुराजीमें रहूंगो सो यहां हू मेरो माहात्म्य बढेगो और यह श्रीकृष्णकी पुरी है, सो यहां मोकों अपनो माहात्म्य प्रकट करना नाही । और संसारमें अनेक लोग सुख दुख पावें हैं सो सब पूछिवे आवेंगे । और यहां मथुरिया चौबे हैं सो यहां माहात्म्य बढेगो तो ये दुख पावेंगे, तासों यहां रहनो ठीक नाही ।

सो यह विचारि के सूरदास मथुरा के और आगरेके बीचोंबीच गउघाट है, तहां आयके श्रीयमुनाजी के तीर स्थल बनायकें रहे ।

सूरदासको कंठ बहोत सुन्दर हतो । सो गान विधामें चतुर, और सगुन बतायवे में चतुर । सो उहां हू बहोत लोग सूरदासजी के पास आवते । उहां हू सेवक बहोत भये सो सूरदास जगत में प्रसिद्ध भये ।



### वार्ता प्रसंग-१

सो गऊघाट ऊपर सूरदास रहते, तब कितनेक दिन पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आपु अडेल तें ब्रजकूपधारत हते । सो कछुक दिनमें श्रीआचार्यजी आप गऊघाट पधारे । ता समय श्रीआचार्यजी के संग सेवकन को बहोत समाज हतो । सो सब वैष्णव सहित श्रीआचार्यजी आपु श्रीयमुनाजी में स्नान किये । ता पाछें संध्यावंदन करि पाक करन को पधारे और सेवक हू सब अपनी अपनी रसोई करन लगे । ता समय एक सेवक सूरदास को तहां आयो । सो वाने जायके सूरदास को खबरि करी जो—सूरदासजी ! आज यहां श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं । जो जिनने काशीमें तथा दक्षिन में मायावाद खंडन कियो है, और भक्तिमार्ग स्थापन कियो है ।

तब यह सुनि के सूरदास ने अपने सेवक सों कह्यो जो—जब श्रीवल्लभाचार्यजी भोजन करिकें निश्चितता सों गादी तकियान के ऊपर विराजें ता समय तू हमको खबरि करियो । जो—मैं श्रीवल्लभाचार्यजी के दर्शन को चलूंगो । तब वह सेवक दूरि आय के बैठि रह्यो । सो जब श्रीआचार्यजी आपु भोजन करि के गादी तकियान पे विराजे, और सेवक हू सब आस-पास आय बैठे, तब वा सेवक ने जाय के खबरि करी । तब सूरदास वाही समय अपने संग सगरे सेवकन को लेकर श्रीआचार्यजी के दर्शन को आये । सो तब आयके श्रीआचार्यजी को साष्टांग दंडवत करी ।



तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो— सूर ! कछू भगवत्जस वर्णन करो । तब सूरदासने श्रीआचार्यजी को दंढवत करि कह्यो जो— महाराज ! जो आज्ञा । ता पाछें सूरदास ने यह पद श्रीआचार्यजी आगें गायो । सो पदः—

। राग धनाश्री ।

हौं हरि सब पतितन को नायक + ।  
फेरि दूसरो पद गायो, सो पदः—

‘ प्रभु हौं सब पतितन को टीको ’ +

सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु सूरदास सों कहे, जो—  
सूर है कें एसो घिवियात काहे को है ? सो तासों कछू भगवल्लीला वर्णन कर ।

ताको आशय यह है जो— जीव श्रीभगवान सो विछुरचो, सो तब श्रीहरिरायजीकृत पतित तो भयो । सो ताकों बहोत कहा कहनो, भावप्रकाश तासों भगवल्लीला गावो, जासों सुद्र होय ।

तब सूरदास ने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो—  
महाराज ! मैं कछू भगवल्लीला समुझत नांही हूं । तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख तें कहे जो— सूर ! श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो, जो हम तुम कों समुझाय देंगे । तब सूरदास प्रसन्न होय कें श्रीयमुनाजी में स्नान करि के अपरस ही में श्रीआचार्यजी पास आये । तब श्रीआचार्यजो ने कृपा करि

+ विस्तार लयथी आ प्रसिद्ध पदो अही सम्पूर्ण आभ्यां नथी.



कैं सूरदास कों नाम सुनायो, तापाछें समर्पन करवायो ।  
पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूर-  
दास को सुनाये ।

अष्टाक्षर मंत्र सुनायो तासों सूरदास के सगरे जनम के दोष  
श्रीहरिराय कृत मिटाये, और सात भक्ति भई । पाछें ब्रह्मसं-  
भावप्रकाश बंध करवायो, तासों सात भक्ति और नवधा  
भक्ति की सिद्धि भई । सो रही प्रेमलक्षणा, सो दसम स्कन्ध की अनु-  
क्रमणिका सुनाये । तब संपूरन पुरुषोत्तम की लीला सूरदास के हृदय में  
स्थापन भई, सो प्रेमलक्षणा भक्ति सिद्धि भई ।

सो सगरी श्रीसुबोधिनीजी को ज्ञान श्रीआचार्यजीने  
सूरदास के हृदय में स्थापन कियो । तब भगवल्लीला जस बर्णन  
करिवे को सामर्थ्य भयो । तब अनुक्रमणिका तें सगरी लीला  
हृदय में स्फुरी । सो कैसे जानिये ? जो श्रीआचार्यजी आप  
दसम स्कन्ध की सुबोधिनीजी में भंगलाचरण की प्रथम कारिका  
किये हैं, सो कारिका कहत हैं । श्लोक :—

“ नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि-शायिनं ।

लक्ष्मीसहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥ ”

सो या भंगलाचरण के अनुसार सूरदासने श्रीआचा-  
र्यजी के आगे यह पद करिके गायो । सो पदः—



## राग विलावल :—

‘चकईरी ! चल चरणसरोवर जहां नहिं प्रेम वियोग’  
 सो यह पद दसमस्कंध की कारिका के अनुसार किये हैं ।

‘लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिं ।’ जैसे  
 श्लोक में कह्यो है, तैसेही सूरदासने या पदमें कही जो—

“जहां श्रीसहस्र सहित नित क्रीडत शोभित सूरजदास ।”

सो यामें कहे । तामें जानि परी जो— सूरदास कों सगरी  
 लीला श्रीसुबोधिनीजी की स्फुरी ।

सो सुनिके श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये । और  
 जाने जो— अब लीला को अभ्यास भयो । सो तब श्रीआचा-  
 र्यजी आप श्रीमुख तें सूरदास सो आज्ञा किये जो— सूर !  
 कछू नंदालय की लीला गावो । तब सूरदासनें नंदमहोत्सव  
 को कीर्तन वर्णन करिके गायो । सो पद :—

## राग देवगंधार :—

‘व्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ।’

सो यह बड़ी बधाई गई । सो श्रीनंदरायजी के घरको  
 वर्णन किये, तहां ताई तो श्रीआचार्यजी आप सुने । ता पाछे  
 गोपीजन के घर को वर्णन करने लागे तब श्रीआचार्यजी  
 आपु श्रीमुख तें सूरदास सों कहे जो—

‘सुन सूर सवन की यह गति जो हरि—चरन भजे ।’

सो या भोग की तुक आपु कहि कें सूरदास कों चुप  
 करि दिये ।



सो यातें जो ब्रजभक्तन को आनंद है सो भगवदीयन के हृद-  
 श्रीहरिरायजी कृत यमें अनुभव-योग्य है । सो बाहिर प्रकाश  
 भावप्रकाश होय तासों सूरदास को थांमि दिये । और  
 सूरदासजी के हृदय में यह भी आयो हतो, जो मैने सेवक किये हैं  
 तिन की कहा गति होयगी ? तब श्री आचार्यजीने कही:—‘ सुन सूर !  
 सबन की यह गति जो हरिचरन भजे ।’

तब श्रीआचार्यजी आप प्रसन्न होय के कहे, जो— मानों  
 सूर नंदालय की लीला में निकट ही ठाड़े हैं । सो एसो  
 कीर्तन गायो ।

तापाछे श्रीआचार्यजीने सूरदास कूं ‘ पुरुषोत्तम  
 सहस्रनाम ’ सुनायो । तब सगरे श्रीभागवत की लीला  
 सूरदास के हृदय में स्फुरी । सो सूरदासने प्रथम स्कंध  
 श्रीभागवत सों द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये ।  
 तामें अनेक दानलीला, मानलीला आदि वर्णन किये हैं ।

तापाछे गऊघाट ऊपर श्रीआचार्यजी आप तीन  
 दिन रहे । सो तब सूरदासने जितने सेवक किये हते, सा  
 सब श्रीआचार्यजी के सेवक कराये । तापाछे श्रीआचा-  
 र्यजी आप ब्रजमें पधारे । तब सूरदास हू श्रीआचार्यजी के  
 संग ब्रज में आये ।

सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप गोकुल पधारे ।  
 तब श्रीआचार्यजीने श्रीमुख सों कही जो— सूर ! श्रीगोकुल



को दर्शन करो । तब सूरदासजी ने श्रीगोकुल को साष्टांग दंडवत किये । सो दंडवत करत ही श्रीगोकुल की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी ।

तब सूरदासजी अपने मनमें विचारे, जो-श्रीगोकुल की लीला मैं बरनन कैसें करौं । सो काहे तैं- जो श्रीआचार्यजी को मन श्रीनवनीतप्रियाजी के स्वरूप के ऊपर आसक्त है, सो श्रीनवनीतप्रियाजी को कीर्तन श्री गोकुल की बाललीला को बरनन, एसो पद सूरदासजी ने गायो । सो पदः—

राग बिलावलः—

‘ शोभित कर नवनीत लिये ’ ।

सो यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आप सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये । सो तापाछें सूरदासने और हू पद बाल-लीला के श्रीआचार्यजी को सुनाये । ता पाछें श्रीआचार्यजी ने विचारयो— जो श्रीगोवर्द्धननाथजी को मंदिर तो समरायो, और सेवा हू को मंडान भयो । तातैं सूरदास कूं श्रीनाथजी के पास राखिये । तब समे समे के सगरे कीरतन को मंडान और भयो चाहिये । सो आगे वैष्णवजन सूरदास के पद गाय के कृतार्थ बहोत होंयगे ।

तब यह विचारि के सूरदास कूं संग लेके श्रीआचार्यजी



आप श्रीगोवर्द्धन पधारे, सो ऊपर पधारके श्रीनाथजी के दर्शन किये । तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख सों सूरदास सों कहे जो—‘सूर ! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करो और कीर्तन गावो’ । तब सूरदासजी ने श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये । तापाछे सूरदासजी ने प्रथम विज्ञप्ति को पद दैन्यता सहित गायो । सो पदः—

राग धनाश्रीः—

‘अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल’

x

x

x

सूरदास की सबै अविद्या दूर करहु नंदलाल !

सो यह पद सूरदासजी ने श्रीनाथजी कां सुनायो । सो सुनि—के श्रीआचार्यजी आप सूरदास सों कहे जो—सूरदास ! अब तो तिहारे मन में कछू अविद्या रही नांही, जो तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथजी ने दूरि कीनी है । तासों अब तुम भगवल्लीला गावो जामें माहात्म्य पूर्वक स्नेह होय ।

परंतु भगवदीय जितने हैं सो तितनेन की यही बोली है जो—श्रीहरिरायजी कृत अपुने को हीन कहत हैं । सो यह भगवदीयन भावप्रकाश को लक्षण है । और जो कोई अपने को आछे कहै और आपुनी बडाई करे, सो भगवान तें सदा बहिर्मुख है ।

तब श्रीआचार्यजी के और श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे सूरदासजी ने माहात्म्य स्नेह युक्त कीर्तन किये । सो पदः—



### राग गोरी:-

‘कौन सुकृत इन व्रजवासिन को वदत विरंचि शिव शेष’  
 सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आप बहोत प्रसन्न भये ।

क्यों जो-जैसो श्रीआचार्यजी आपु पुष्टिमार्ग प्रकट किये,  
 श्रीहरिरायजी कृत ताही अनुसार सूरदासजी ने यह कीर्तन  
 भावप्रकाश गाये ।

सो श्रीआचार्यजी के मारग को कहा स्वरूप है ? जो माहात्म्य  
 ज्ञान पूर्वक दृढ स्नेह सो सर्वोपरि है, सो श्रीठाकुरजी कों बहोत प्रिय  
 हैं । परन्तु जीव माहात्म्य राखे । सो काहेतें ? जो माहात्म्य बिना  
 अपराध को भय मिटि जाय । तासों प्रथम दशा में माहात्म्य युक्त  
 स्नेह आवश्यक चाहिये । और व्रजभक्तन को स्नेह है सो सर्वोपरि है ।

तासों भक्तन के स्नेह के आगे श्रीठाकुरजी को माहात्म्य रहत नांही ।  
 सो श्रीठाकुरजी स्नेह के वस होय भक्तन के पाछें २ डोलत हैं ।  
सो जहां तांई एसो स्नेह नांही होय तहां तांई माहात्म्य  
राखनो । सो जब स्नेह को नाम ले के माहात्म्य छोडे और  
श्रीठाकुरजी के आगे बैठे, बात करे और पीठि देय तो भ्रष्ट  
होय जाय । तासों माहात्म्य बिचारे, और अपराध सों  
डरपे × तो कृपा होय । और जब (सर्वोपरि) स्नेह होयगो तब  
आपही तें । स्नेह एसो पदार्थ है जो-माहात्म्य कूं छुटाय देयगो ।  
 सो दसम स्कंध में वरनन है—

+ देखो श्रीहरिरायजी कृत शिक्षापत्र.



जो श्रीभगवान वारंवार माहात्म्य ब्रजभक्तन को और श्रीयशोदाजी को दिखायो । सो पूतना वध करि, सकट, तृनावर्त करि, यमलार्जुन करि, बकासुर, धेनुक, कालीदमन करिकें लीला में माहात्म्य दिखायो । परंतु ब्रजभक्तन को स्नेह परम अद्भुत अनिर्वचनीय है । तासों माहात्म्य तथा ईश्वरभाव न भयो । सो एसो स्नेह प्रभु कृपा करि दान करें ताको आपही तें माहात्म्य छूटि जायगो । और जाको स्नेह पति, पुत्र, स्त्री, कुटुंब में तथा द्रव्य में है, और अपने देह सुख में है सो भगवान को माहात्म्य छोडि लौकिक रीति करे तो श्रीभगवान को अपराधी होय । तासों वेद मर्यादा सहित श्रीठाकुरजी के भय सहित सेवा करे, और सावधान रहे । सो यह श्रीआचार्यजी महाप्रभु के मार्ग की रीत है । तासों माहात्म्य पूर्वक स्नेह करिये । और माहात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो— समय समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहै, ताको नाम माहात्म्य पूर्वक स्नेह कहिये ।

पाछे श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—सूर ! तुमकों पुष्टिमार्ग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धनधर के यहां समय समय के कीर्तन करो । ता समय सेन भोग सरि चुक्यो हतो, सो तब मान के कीर्तन सूरदासने गाये । सो पदः—

राग बिहागरोः—

‘ बोलत काहे न नागर बैना ’ । २ ‘ सुखद सेज में पोढे रसिकवर ’ । ३ ‘ पोढे लाल राधिका उर लाय ’ ।



सो पाछे या प्रकारसों कीर्तन सूरदासजी ने नित्य  
प्रातःकाल के जगायवे तें लेके सेन पर्यंत के हजारन किये।

वार्ता प्रसंग-२.

और एक समय सूरदासजी पांच सात वैष्णवन के संग  
मारग में चले जात हते। सो तहां दस पांच जने चोपडि  
खेलत हते। सो चोपडि के खेल में ऐसे लीन भये हते सो  
मारग में गैल में काहू आवते जाते मनुष्य की कछू खबरि  
नांही।

सो या प्रकार उनकों मगन देखिकें सूरदासजी ने  
अपने संग के वैष्णवन के आगे एक पद गायो। और उन  
वैष्णवन सो सूरदासजी ने कह्यो जो- देखो, यह प्राणी मनुष्य-  
जन्म वृथा खोवत है। जो श्रीभगवान ने मनुष्य-देह अपने  
भजन करिवेके लिये दीनी है। सो या देह सो यह प्राणी  
वृथा हाड कूटत है। सो यामें लौकिक में तो निंदा है जो- यह  
जुबारी है। और अलौकिक में भगवान सो बहिर्मुखता है।  
तासों भगवान ने तो एसी इनकों मनुष्य-देह दीनी है,  
तिनको एसी चोपडि खेली चाहिये। सो तासमय सूरदास-  
जीने यह पद करि के संग के वैष्णव हते, तिन को सुनायो।  
सो पद:-

राग केदारो-

मन ! तू समझ सोच विचार।

भक्ति विना भगवान दुर्लभ कहत निगम पुकार ॥



साधु संगत डार पासा फेरि रसना सार ।

दाव अब के पर्यो पूरो, उतरि पहली पार ॥

छांडि सत्रह सुन अठारे, पंचही को मार ।

दूरि तें तज तीन का ने चमक चोंक बिचार ॥

काम क्रोध मद लोभ भूल्यो ठग्यो ठगिनी नार ।

सूर हरि के पद भजन बिन चल्यो दोउ कर झार ॥

सो सुनिके उन वैष्णवननैं सूरदास सों कह्यो जो— सूर-  
दासजी ! या पदमें समुझ नांही परी है । तासों हमकों अर्थ  
करिके समुझावो, सो तब समुझ्यो जाय ।

तब सूरदासजी उन वैष्णवन सों कहे, जो— तीन वस्तु  
चोपडि में चाहियें, समुझ, सोच और बिचार । सो ये तीन्यो  
वस्तु भगवान के भजन में हू चाहिये (क्यों ?) जो— जैसे पहले  
समुझे तब चोपडि खेलेगो, सो तैसे ही भगवान कों जानेगो  
तो भजन करेगो । और चोपडि में सोच होय जो— एसो फांसा  
परे तो मैं जीतूं । सो तैसे ही या जीव कों काल को सोच होय,  
तब यह जीव प्रभु की सरन जाय । और (तीसरी वस्तु जो)  
बिचार, सो यह जो— बिचारके गोठ कों फांसा के दावकूं चले  
जो— यहां नांही मारी जायगी इत्यादि । सो तैसेही बिचार  
वैष्णव को होय, जो— यह कार्य मैं करत हूं सो आछो है, के  
बुरो है ? तब यह जीव बुरो काम छोडिकें भगवत्धरम की  
चाल में चले । और चोपडि में फांसा के दाव परें तब दोऊ  
ओर के मनुष्य पुकारत हैं । सो तैसे ही जगत में निगम जो



वेद, पुराण सो पुकारिके कहत हैं जो—भक्ति बिना भगवान् दुर्लभ हैं, सो तासों कोटि साधन करो। और चोपडि में दूसरो संग मिले तब चोपडि खेली जाय, सो तैसे ही भगवान् की भक्ति में भगवदीय वैष्णव की संगति होय तब भक्ति बढे। और चोपडि खेलिवेवारे के मन में (जैसे) अपने दाव को सुमिरन रहत है जो— यह दाव परे तो मैं जीतूं, सो तैसे ही रसना सों यह जीव भगवद्वाता में मन लगायके सब रस को सार रूप (एसो भगवन्नाम) कह्यो करे। और (जैसे) चोपडि में सुंदर पूरो दाव परे तब गोट पार जाय, और तब उतरि के घर में आवे, और मरिवे को भय मिटे। सो तैसे ही मनुष्य देह संसार सों पार उतरिवेकों पूरो दाव बडी पुन्याई सों मिले है, सो तो या देह सों भगवदाश्रय करि संसार तें पार उतरि जाय। ‘राखि सत्रे सुनि अठारे’ चोपड में सत्रे अठारे बडे दाव हैं, सो तैसे ही जगत में सब पुशान हैं, सो तिनही कों राखि, सुनि अठारे जो—श्रीभागवत सुनन को (और) पुरान हू को धरि राख। और पांचों जो इन्द्रिय, पंचपर्वा अविद्या है, सो इनकूं मार। सो काहेतें ? जो शास्त्र के वचन हैं सो—

पतंग—मातंग—कुरंग—भृंग—मीना हताः पंचभिरेव पंच ।

एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच ॥१॥

१ पतंग—नेत्र विषय तें दीपक में परे। २ हाथी—स्पर्श विषय करि मरे। ३ कुरंग—श्रवण विषय तें मरे। ४ भृंग—गंध नासिका विषय तें मरे, ५ मीन—जिभ्या विषय तें मरे।



सो एक एक विषय तें मरि परै, तो मनुष्य तो पांचन को सेवन करत है, सो निश्चय काल इनको भक्षण करे ।

तासों नाद पांचो मारि । सो जेसे चोपडि में गोठ मारत हैं । और चोपडि में सब तें छोटी दाव तीनि काने हैं, सो कोऊ नाही चाहत है । तैसे ही तू तीन-तामस, राजस, सात्त्विक यह माया के गुण हैं, सो सगरो संसार सोइ चोक है, सो यामें चतुराई सों डार । चतुराई यह जो-इनकों डारि पाछे इनकी ओर देखे मति । सो जेसे चोपडि में सब की सुध बुध भूलि जात हैं, सो तब ठग्यो गयो । सो तेसे काम क्रोधादि जंजाल है, और स्त्रीरूप भगवद्माया है । सो यह सगरे जगत को ठगेगी । सो जैसे चोपडि खेलि के हारिकें सब दोऊ हाथ झारिके उठें, सो तेसे ही श्रीठाकुरजी के पदकमल के भजन बिना दोऊ हाथ झारिके या मनुष्यने देह खोई । जो कछु भलो परोपकार संग नाहीं कियो ।

सो या प्रकार वैष्णव सुनि के सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये ।

### वार्ता प्रसंग-३

और सूरदास कों जब श्रीआचार्यजी देखते तब कहते जो-आवो सूरसागर ! सो ताको आशय यह है, जो-समुद्र में सगरो पदार्थ होत है । तेसे ही सूरदासने सहस्रावधि पद किये हैं । तामें ज्ञान वैराग्य के न्यारे न्यारे भक्ति भेद, अनेक भगवद् अवतार, सो तिन सबन की लीला को वरनन कियो है ।



पाछे उनके पद जहां तहां लोग सीखि के गावन लागे ।  
 सो तब (एक समय) तानसेनने एक पद सूरदास को सीखिके  
 अकबर पात्शाह के आगे गायो । सो पदः—

राग नट—‘ यह सब जानो भक्त के लक्षण ’

यह सुनि देशाधिपति अकबरने कह्यो जो— एसे लक्षण  
 वारे भक्तन सों मिलाप होय तो कहा कहिये ? सो तानसेनने  
 कही जो— जिनने यह कीर्तन कियो है सो ब्रज में रहत हैं ?  
 और सूरदासजी उनको नाम है ।

यह सुनि देशाधिपति के मन में आई जो— कोई उपाय  
 करि के सूरदाससों मिलिये । पाछे देशाधिपति दिल्ली तें  
 आगरा आयो । तब अपने हलकारान सों कह्यो जो—  
 ब्रज में सूरदासजी श्रीनाथजी के पद गावत है, सो  
 तिनकी ठीक पारिके मोकों श्रीमथुराजी में खबरि दीजियों,  
 और (जो) यह बात सूरदास जानें नाहीं ।

तब उन हलकारानने श्रीनाथजीद्वार में आयके खबरि  
 काढी । तब सुनी जो— सूरदासजी तो मथुराजी गये हैं । सो तब  
 वे हलकारा श्रीमथुरा में आयके सूरदास को नजरि में राखे, जो—  
 या समय यहां बैठे हैं । तब उन हलकारानने देशाधिपति को  
 खबरि करी जो—अजी साहब ! सूरदासजी तो मथुराजी में हैं ।

तब सूरदासकूं अकबर पात्शाहने दस पांच मनुष्य बुलाय-  
 वेकों पठाये । सो सूरदासजी देशाधिपति के पास आये ।  
 तब देशाधिपतिने उनको बहोत आदर सन्मान कियो । पाछे



सूरदासजी सों देशाधिपतिने कह्यो जो-सूरदासजी ! तुमने विष्णु-  
पद बहोत किये हैं, सा तुम मोकों कछु सुनावो ।

तब सूरदासने अकबर पात्साह आगे यह पद गायो । सो पदः—  
राग बिलावलः—‘ मनारे तू कर माधो सों प्रीत ’ ।+

सो यह पद केसो है, जो या पद को सुमिरन रहै तब भगवत्  
अनुग्रह होय, और मनकूं बोध होय । और  
श्रीहरिरायजीकृत संसार सों वैराग्य होय और श्रीभगवान के  
भावप्रकाश चरणारविंद में मन लगे । तब दुःसंग सों भय  
होय, सत्संग में मन लगे । सो देहादिक में ते  
स्नेह घटे, और लौकिक आसक्ति छूटे । जो भगवान को प्रेम है, सो  
अलौकिक है । सो ताके उपर प्रीति बढे ।

यह सुनि देशाधिपति बहोत प्रसन्न भयो । पाछे देशाधि-  
पति के मन में आई जो-सूरदासजी की परीक्षा देखूं । सो  
भगवान् को आश्रय होयगो, तो ये मेरो जस गावेगो नांही ।

सा यह विचारके देशाधिपतिने सूरदास सों कही जो-  
श्रीभगवानने मोकों राज्य दियो है, सो सगरे गुनीजन मेरो जस  
गावत हैं, सो तिनकों मैं अनेक द्रव्यादिक देत हौं । तासों  
तुमहू गुनी हो, सो तुमहू मेरो कछु जस गावो । सो तिहारे  
मनमें जो इच्छा होय सा मांगि लेहु ।

सो यह देशाधिपति ने कह्यो । तब सूरदासजी ने यह  
पद गायो । सो पद—

---

+ यह पद ‘सूरपञ्चीषी’ नाम से प्रसिद्ध है ।



राग केदारो :— ' नाहिन रह्यो मन में ठौर '

सो यह पद सुनिके देशाधिपति ने अपने मन में विचार्यो जो— ये मेरो जस काहेको गावेंगे ? जो इनकों कछु लेवे को लालच होय तो ये मेरो जस गावें । ये तो परमेश्वर के जन हैं, सो ये तो ईश्वर को जस गावेंगे ।

सो सूरदासजी या कीर्तन में पिछले चरन में कहे हैं, जो— 'सूर ! ऐसे दरसकों ये मरत लोचन प्यास '

सो देशाधिपति ने सूरदास सों कह्यो जो—सूरदास ! तुमारे तो नेत्र हैं नाही, सो प्यासे कैसे मरत हैं ? सो यह तुम कहा कहे ? तब सूरदासजीने कही जो— या बात की तुमकों कहा खबरि है ? जो ये लोचन तो सब के हैं, परंतु भगवान के दरसन की प्यास काहूकों है ? जो श्रीभगवान के दरसन के जे प्यासे नेत्र हैं, सो तो सदा भगवान के पास ही रहत हैं । सो स्वरूपानंद को रसपान छिन छिन में करत हैं, और सदा प्यासे मरत हैं ।

यह सुनि अकबर पात्साह ने कही जो— इनके नेत्र तो परमेश्वर के पास हैं, सो परमेश्वर को देखत हैं, औरकों देखत नाही ।

तब पात्साहने सूरदास के समाधान की इच्छा कीनी । दोय चारि गाम तथा द्रव्य बहोत देन लाग्यो, सो सूरदासने कछु नांही लियो । तब अकबर पातशाह सूरदासजी सों कहे, जो—बावा साहिब ! कछु तो मोकों आज्ञा करिये ।



तब सूरदासजीने कही जो— आज पाछे हमकों कबहू फेरि मति बुलाइयो, और मोसों कबहू मिलियो मति ।

सो अकबर पातशाह विवेकी हतो । सो काहेतें ? जो ये योगभृष्ट तें म्लेच्छ भयो है । सो पहले जन्ममें ये बालमुकुंद ब्रह्मचारी— श्रीहरिरायजीकृत हतो सो एक दिन ये बिना छाने दूध पान भावप्रकाश कियो, तामें एक गाय को रोम पेट में गयो । सो ता अपराध तें यह म्लेच्छ भयो है ।

सो सूरदास को दंडवत करि के समाधान करि के बिदा किये ।

#### वार्ता प्रसंग-४

तापाछे सूरदास श्रीनाथजीद्वार आये । पाछे देशाधिपतिने आगरे में आयके सूरदास के पदन की तलास कीनी । जो कोऊ सूरदासजी के पद लावे तिनकूं रुपैया और मोहोर देय । सो वे पद फारसी<sup>x</sup> में लिखायके बांचे । सो मोहोर के लालच सों पंडित कवीश्वर हू सूरदास के पद बनाय के लाये । तब अकबर पातशाह ने उनसों कह्यो जो— यह पद सूरदासजी को नांही । सो ये पैसा के लिये पद की चोरी करत हैं ।

तब पंडित कवीश्वरन ने कही, जो— तुम कैसे जाने जो यह सूरदास को पद नांही ? जो यह तो सूरदास को ही पद है ।

---

<sup>x</sup> जुओ नागरीप्रचारिणी प्रकाशित अक्षरी दरपार पेज १६४.



तब पातसाह ने अपने पास सों सूरदास को पद अपने कागद के ऊपर लिखायो । और वे पंडित कवीश्वर सूरदास को भोग (छाप) को बनाय के लाये सो दोऊ कागद जल में धरिके कहीं जो—ईश्वर सांचे होय तो या बात को न्याव करि दीजो ।

सो यह कहि जल में डारि दिये । सो उन पंडित जोतसीन को पद बनायो हतो सो कागद गळिके जल में भीजि गयो; और सूरदास को पद हतो सो कागद जल में नांही भींज्यो ।

सो या भांति साँ, जो—जिन भगवदीयन कों भगवान मिले श्रीहरिरायजीकृत हैं, उनके पदजोगायगो सो संसार सों तरेगो ।

भावप्रकाश— और चतुराई करि लौकिक मनुष्य के काव्य के कीर्तन कवित्तजो गावेगो, सो या प्रकार सों संसार में डूबेगो ।

तब सगरे पंडित कवीश्वर लज्जा पायके नीचो माथो करिके अपने घरकों गये ।

सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हत ।

---

संभव छे के आ प्रवृत्तिना अंगे श्रीसूरनी शुद्ध वल्लभाषामां 'महेलात' आदि क्षरसी शब्दानुं संमिश्रण थया उपरांत क्षरसीमां तेनी अनुवादात्मके रच्यना पण थछि होय. जे हाल प्राप्त छे—



### वार्ता प्रसंग-५

सो इन सूरदासजी नें श्रीनाथजी के कीर्तन की सेवा बहोत दिन तांई करी । सो बीच बीच में जब कुंभनदासजी, परमानंददासजी के कीर्तन के ओसरा आवते, तब सूरदासजी श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी के दरशन कूं आवते ।

सो एक दिन सूरदासजी श्रीगोकुल आये हते, सो बाललीला के पद बहोत गाये । सो सुनिकें श्रीगुसांईजी आप बहोत प्रसन्न भये ।

तब श्रीगुसांईजी आप एक पलना कों कीर्तन करिकें संस्कृत में सूरदासजी कों सिखायो । सो तासमय श्रीनवनीतप्रियाजी पालने में बिराजे, तब सूरदासने श्रीगुसांईजीकृत यह पलना गायो । सो पद—

राग रामकली:— ‘प्रेख पर्यंक शयनं’.

सो यह पद सूरदासने श्रीनवनीतप्रियाजी के आगे गयो । पाछे या पद के अनुसार सूरदासजीने बहुत पद करिके गाये । सो पद—

‘प्रेख पर्यंक गिरिधरन सोहं’

सो यह पलना को कीर्तन सूरदासजीने गायो । पाछे बाललीला के पद बहोत गाये । तापाछे यह पद गाये । सो पद—

राग बिलावल:— १ ‘देख सखी इक अद्भुत रूप’  
२ सोभा आज भली बनि आई’

इत्यादिक पद सूरदासजीने श्रीनवनीतप्रियाजी के



आगे गायें । तब श्रीगुसांईजी और श्रीगिरधरजी आदि सब बालक कहन लागे जो— हम जा प्रकार श्रीनवनीतप्रियाजी को सिंगार करत हैं, सो ताही प्रकारके कीर्तन सूरदासजी गावत हैं । तातें इन सूरदास के ऊपर बहोत ही कृपा है ।

### वार्ता प्रसंग—६

तापाछे श्रीगुसांईजी आप तो श्रीनाथजीद्वार पधारे । सो सूरदासजीने हू श्रीनाथजीद्वार जाइवे को विचार कियो । तब श्रीगिरधरजी आदि सब बालकन ने कह्यो, जा —सूरदासजी ! दोय दिन श्रानवनीतप्रियाजी कों और हू कीर्तन सुनावो, पाछे तुम जाइयो । तब सूरदासजी श्रीगोकुल में रहे ।

सो तब श्रीगिरधरजी सों श्रीगोविंदरायजी, श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी ये तीनों भाई कहे जो— ये सूरदासजी, जेसा श्रृंगार श्रीनवनीतप्रियाजी को होत है, तेसेही वस्त्र आभूषण वरणन करत हैं । सा एक दिन अद्भुत अनोखो श्रृंगार करो, और सूरदासजी कों जनावो मति । सो देखें, ये कीर्तन केसो करत हैं ?

तब श्रीगिरधरजीने कह्यो जो— ये सूरदासजी भगवदीय हैं, सो इनके हृदयमें स्वरूपानंदको अनुभव है । तासों जेसो तुम श्रृंगार करोगे, सो तेसोही पद सूरदासजी वरणन करिके गावेंगे । तासों भगवदीय की परीक्षा नांही करनी ।





तब उन तीनों बालकने श्री गिरधरजी सों कही जो—  
हमारे मन है, सो यामे कछु बाधा नांही है । तब श्रीगिर-  
धरजी कहे जो—सवारे श्रीनवनीतप्रियाजी को शृंगार करेगें  
सो अद्भुत शृंगार करेगे ।

तापाछे सवारे श्रीगिरिधरजी तीनों बालकन सहित  
श्रीनवनीतप्रियाजी के मंदिर में पधारे, और सेवा में न्हाये ।

पाछें श्रीनवनीतप्रियाजी कों जगाये, तापाछें मंगल भोग धर्यो ।  
फेरि न्हाय के शृंगार धरावन लागे । सो अषाढ के दिन हते  
तातें गरमी बहोत । सो श्रीनवनीतप्रियाजी कों कछु वस्त्र  
नांही धराए । सो मोतीन के दोयलर मस्तक पर, मोती  
के बाजू पोहोंची, कटि—किंकिनी, नूपुर, हार, सब मोतिन के,  
तिलक नकवेसर करनफूल कछु नांही ।

सो सूरदासजी जगमोहन में बेठे हते, सो इनके हृदय में  
अनुभव भयो । तब सूरदासजी अपने मन में बिचारे जो—आजु  
तो श्रीनवनीतप्रियाजी को अद्भुत शृंगार कियो है । एसो  
शृंगार तो मैंने कबहू देख्यो नांही, और सुन्योहू नांही, जो  
केवल मोती धराए हैं, और वस्त्र तो कछु धराए हैं नांही ।  
तासों आज मोकों कीर्त्तन हू अद्भुत गायो चाहिये ।

जब शृंगार के दर्शन खुले, तब श्रीगिरिधरजीने सूर-  
दासजी कों बुलाये, और कह्यो जो—सूरदासजी ! दर्शन करो,  
और कीर्त्तन गाओ । तब सूरदासजी ने बिलावल में यह



कीर्त्तन करिके श्रीनवनीतप्रियाजी को सुनायो । सो पद—  
‘ देखेरी हरि नंगम नंगा ’

सो सुनिके श्रीगिरिधरजा आदि सगरे बालक अपने मन में बहोत प्रसन्न भये । और सूरदास सों कहन लागे जो—  
सूरदासजी ! यह तुम कहा गाये ? तब सूरदासजीने विनती कीनी, जो— महाराज ! जेसो आपने अद्भुत शृंगार कियो, तेसो ही मैं अद्भुत कीर्त्तन गायो है ।

तब सगरे बालक यह सुनिके सूरदासजी के ऊपर बहोत प्रसन्न भये ।

सो ये सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभु के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय होते, सो इनकों श्रीठाकुरजी नित्य हृदय में अनुभव करावते ।

तापाछे श्रीगिरिधरजी आप सूरदासजी को संग लेके श्रीनाथजीद्वार आये । तब श्रीगिरिधरजी ने सब समाचार श्रीगुसांईजी सों कहे जा—या प्रकार अद्भुत शृंगार श्रीनवनीतप्रियाजी को सगरे बालकन के मनोरथ सों कियो । सो सूरदासजी ने एसो ही कीर्त्तन कियो । सो इनके हृदय में अनुभव है ।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरिधरजी सों कहे—जो सूरदासजी की कहा बात है ? जो— ये पुष्टिमार्ग के जहाज है । सो भगवल्लीला को अनुभव इनकों अष्ट प्रहर हैं । सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय होते ।



### वार्ता प्रसंग-७

और सूरदासजी के पास एक ब्रजवासी को लरिका हतो, सो सब कामकाज सूरदासजी को करतो । ताको नाम गोपाल हतो । सो एक दिन सूरदासजी महाप्रसाद लेन को बैठे, तब वा गोपाल सों सूरदासजी कहे जो— मोकूं तू लोटी में जल भरि दीजो । तब गोपाल ब्रजवासी ने कह्यो जो— तुम महाप्रसाद लेनको बेठो जा मैं जल भरि देऊंगो ।

सो यह कहिके गोपाल तो गोबर लेन कों गयो । सो तहां दोय चारि वैष्णव हते सो तिनसों बात करन लाग्यो, तब सूरदास कों जल देनो भूलि गयो । और सूरदासजी तो महाप्रसाद लेन बैठे, सो गरे में कोर अटक्यो । तब बांये हाथ सों लोटा इतउत देखन लागे, सो पायो नांही । तब गरे में कोर अटक्यो सो बोल्यो न जाय । तब सूरदास व्याकुल भये । सो इतने में श्रीनाथजी सूरदासजी के पास आयके अपनी झारी धरि आए । तब सूरदासजीने झारी में ते जल पियो ।

तब गोपाल ब्रजवासी कों सुधि आई, जो— सूरदासजी कों मैं जल नांही भरि आयो हूं । सो दोरचो आयो । इतने में सूरदास महाप्रसाद लेकें आये । तब गोपाल ब्रजवासीने आयके सूरदास सों कह्यो जो— सूरदासजी ! तुम महाप्रसाद ले उठे ? सो तुमने जल कहांते पियो ? जो मैं तो गोबर लेन गयो



हतो, सो वैष्णव के संग बात करतमें भूलि गयो । तासो अब मैं दोरचो आयो हूं ।

तब सूरदासने ब्रजवासी सों कह्यो जो— तेने गोपाल नाम काहेकों धरायो ? जो गोपाल तो एक श्रीनाथजी हैं । सो तासों आज मेरी रक्षा करी । नातर गरे में एसो कोर अटक्यो हतो, सो जल बिना बोल निकसे नांही । तब मैं व्याकुल भयो, तब हाथ में जल की झारी आई, सो मैं जल पान कियो । तासों मैने जान्यो जो तेने धरचो होयगो । और अब तू आइके कहत है— जो मैं नांही हतो । सो तातें मंदिर चारो गोपाल होयगो । जो देखि तो झारी केसी है ?

तब गोपाल ब्रजवासी जहां सूरदासजी महाप्रसाद लिये हते तहां आय के देखें तो सोने की झारी है । सो उठाय के गोपाल सूरदासजी के पास आय के कह्यो जो— ये झारी तो मंदिर की है । सो तब सूरदासने वा गोपाल ब्रजवासी सों कह्यो जो— तेने बहोत बुरो काम कियो, जो श्रीठाकुरजी को इतनो श्रम करवायो । जो मेरे लिये झारी लेकें श्रीठाकुरजी कों आनो परयो ।

सो या प्रकार सूरदासजीने अपने मन में बहोत पश्चात्ताप कियो । तापाछे सूरदासजीने गोपालदास सों कह्यो जो— ये झारी तू जतन सों राखियो । और जब श्रीगुसांईजी आपु पोंढि के उठें तब उन कों सोंपि आइयो । तब गोपालदासने झारी



लेके श्रीगुसांईजी के पास आय, दंडवत करि आगे राखी । तब श्रीगुसांईजी आपु कहे— ये झारी तेरे पास कैसे आई ? जो ये झारी तो श्रीगोवर्द्धनधर की है । तब गोपालदासने श्रीगुसांईजी सों विनती कीनी जो— महाराज ! यह अपराध मोसों परयो है । पाछे सब बात कही ।

तब यह बात सुनिके श्रीगुसांईजी आप तत्काल स्नान करिके झारी को मंजवाय दूसरो वस्त्र लपेटिके मंदिर में बेगि ही झारी लेके पधारे । पाछे श्रीगोवर्द्धनधरकूं जलपान कराइके कहे जो— आज तो सूरदास की बड़ी रक्षा कीनी । सो तुम बिना कोन वैष्णव की रक्षा करे ? तब श्रीनाथजीने कही जो— सूरदास के गरे में कोर अटक्यो सो व्याकुल भये, तासों झारी धरि आयो ।

सो काहेते ? जो सूरदास व्याकुल भये, सो मैही व्याकुल भयो । जो श्री हरिरायजीकृत भावप्रकाश भगवदीय है सो मेरो स्वरूप है ।

तापाछे उत्थापन के किंवाड खोले । सो सूरदासजी आइ के उत्थापन के दर्शन किये । सो उत्थापन समे को भोग श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकों धरि सूरदास के पास आइके कहे जो—आज गोपालने तिहारे ऊपर बड़ी कृपा करी है । तब सूरदासजीने कह्यो जो— महाराज ! यह सब आप की कृपा है । नाहि तो श्रीनाथजी मो सरीखे पतितन कों कहा जानें ? जो सब श्रीआचार्यजी की कानि तें अंगीकार करत हैं ।



तब यह वचन सुनिके बनिया अपने मन में बहोत ही खिस्सानो हाय गयो, और वह बनिया सूरदास सों बोल्यो जो— सूरदासजी ! तुम यह बात और काहू के आगे मति कहियो । जो मैं यासों दरशन कों नाहि आवत हों, जो हाट छोडि दरसन कों जाऊं तो यहां वैष्णव सोदाकों फिरि जाय, जो और की हाट सों लेन लागें, तब मैं खाऊं कहांते ? और कोऊ मेरे पास एसो मनुष्य नाहि है, जो जा समय दरशन के किंवाड खुलें ता समय मोकों आय के खबर करे, जातें मैं बेगि ही दोरिके दरशन करि आऊं

तब वा बनियातें सूरदासने कहो जो— मैं जा समय आइके खबरि करूं सो ता समय तू चलेगो ? तब वा बनियाने कही जो— तुम आइके खबरि करियो, जो— मैं चलूंगो । जो मेरे मन में दरशन की बहोत है ।

तब सूरदासजी कहे जो— मैं उत्थापन के समय आऊंगी । सो यह कहिके सूरदासजी तो गये । पाछे जब उत्थापन को समय भयो तब शंखनाद भये, तब सूरदासजीने आइके वा बनियासों कही जो— अब शंखनाद भये हैं, तासों दरशन को समय है, सो अब चलो । तब वा बनियाने सूरदासजी सों कह्यो जो— या समय गांव के लोग सोदा लेन आवत हैं, सो भोग के किंवाड खुलें ता समय तुम मोकों खबरि करियो.

तब सूरदासजीने पर्वत ऊपर आइके श्रीनाथजी के दर्शन किये, और कीर्तन किये । तापाछे श्रीनाथजीके भोग के दरशन



को समय भयो, तब सूरदासजी परवत सों नीचे उतरिके वा बनिया सों कहे जो— दरशन को समय है, तासों अब तो दरशन कों चल । तब वा बनियाने सूरदास सों कह्यो जो— सूरदासजी ! अब तो बनतें गाय आइवे को समय भयो है, तासों मंदिर में चलूं तो गाय आइके मेरो सगरो अनाज खाय जाँय । तासों अब तुम सेन आरती के समय जताइयो सो तहां ताई गाय सब अपने २ घर जाँयगी ।

तब सूरदासजी फेरि भोग के समय जाइके दरशन किये । तापाछें संध्या के दरशन किये । पाछें सेन आरती के दरशन को समय भयो, तब सूरदासजीने आइके बनिया कों खबरि कीनी जो—चल अब सेन आरती के दरशन को समय है ।

तब वा बनियाने सूरदास सों कही जो— सूरदासजी ! आज तुम कों बहोत श्रम भयो है । परंतु अब दीवा बारिवे को समय है, सो काहेतें जो— अब या समय लक्ष्मी आवत है, तासों दीवा न होय तो लक्ष्मी पाछी फिरि जाय । और कोई मेरी हाटतें अब चुराय लेय तो मैं कहा करूं ? तासों अब मैं सवारे प्रातःकाल दरशन करि ता पाछें हाट खोलूंगो । तासों मोकों मंगला के समय आइके खबरि करियो । आज मैंने तुम सों बहोत फेरा खवाये ।

तब सूरदासजी मंदिर में आइके श्रीनाथजी के दरशन किये । तापाछें सेन समय कीर्तन गाये



पाछें प्रातःकाल भयो, तब न्हाइके सूरदासजीने आइ-  
के वा बनिया सों कही जो— मंगला को समय है, सो अब तो  
चल । तब वा बनियाने कही जो— सूरदासजी ! अब ही तो  
हाट बुहारिके मांडनी है । तासों बोहनी के समय कोई गाहक  
फिरि जाय तो सगरो दिन खाली जाय । तासों हाट लगायके  
शृंगार के दरशन कों चलूंगो । तासों शृंगार के समय कहियो ।

तब सूरदासजीने मंगला आरती के दरशन किये । पाछें  
सूरदासजी शृंगार के समय फेरि आये । तब वा बनियाने  
कही जो— अब ही मैं आछी काहू की बोहनी कीनी नांही है,  
और गाय डोलत हैं । तासों अब राजभोग के दरशन अवश्य  
करूंगो । सो देखो तुम कालि तैं मेरे लिये बहोत फिरत हो,  
जो तुम बडे भगवदीय हो ।

सो सूरदासजी फेरि श्रीनाथजी के दरशन कों परवत पर  
आए । तब श्रीनाथजी के शृंगार के दर्शन किये कीर्तन किये ।  
ता पाछें राजभोग आरती को समय भयो । तब सूरदासजीने  
वा बनिया सों कह्यो जो— अब चलोगे ? तब वा बनियाने कह्यो  
जो— या समय मैं कैसे चलूं ? जो अब वैष्णव राजभोग के  
दरशन करि के नीचे आवेंगे । सो सब या समय सीधा सामग्री  
लेत हैं । जो मैं बूढो, कब आऊं परवत सों उतरि कैं, कैसे  
बेगि आयो जाय ? और याही बखत विक्री को समय है । जो  
याही समय कछु मिले सो मिले । तासों उत्थापन के समय  
दरशन करूंगो ।



या प्रकार सूरदासजी वा बनिया के साथ तीन दिन ताई रहे । परंतु वह बनिया एसो लोभी सो दरशन कों नांहि गयो । ता पाछे चोथे दिन न्हायके सूरदासजी प्रातःकाल मंगला के दरशन कों चले । तब सूरदासजी अपने मन में बिचारे— जो देखो या बनिया कों तीन दिन भये, परंतु दरशन कों नांहि गयो । तासों आज जो यह न चले, तो याको भय दिखावनो, और दरसन करावनो ।

यह बिचारिके सूरदासजी वा बनिया की पास आय के कह्यो— जो तीन दिन बीति चुके मोकों फिरते, परितू दरशन को नांहि चलयो । जो आज तो चल । तब वा बनियानें कह्यो— जो कछु बोहिनी करि शृंगार के दरशन करुंगो । तब सूरदासजीने वा बनिया सों कही— जो अब तो मैं तेरी बात सगरे वैष्णवन में प्रकट करुंगो । जो यह बनिया झूठो बहोत है, सो कबहू याने श्रीनाथजी को दरशन नांहि कियो । और यह वैष्णव हू नांहि है । अब तेरे पास कोई वैष्णव सोदा लेंन आवेगो तो मैं तेरे दोहा, चोपाई, पद कुटिलता के करिके वैष्णवन कों सुनाऊंगो । सो या भांति कहिके भैरव राग में एक पद गायो । सो पदः—राग भैरव ।

‘ आज काम कालि काम परसों काम करनो ’०

सो यह पद सूरदासजीने वा बनिया को बाही समय करिके सुनायो, सो तब तो वा बनिया अपने मन में डरप्यो । पाछें सूरदासजीके पावन परि वा बनियाने बिनती



कीनी—जो तुम मेरे दोहा कबित्त कछु बरनन मति करो, और तुम मेरी बात कोई सों प्रकट मति करो । जो मैं अब ही तिहारे संग चलूंगो ।

पाछे वह बनिया सूरदासजी के संग आयो । तब मंगला के किंवाड खुले, तब सूरदासजीने श्रीनाथजी सों कह्यो जो—महाराज ! यह बनिया दैवी जीव है, सो तासों अब याके मनको आकर्षन करिके याको उद्धार करो । सो काहेते ? जो यह तिहारी ध्वजा के नीचे रहत है । तब श्रीनाथजी कहे जो—मेरे पास रहत है, सो कहा मोकों जानत है ? तुम सब भगवदीयन की कृपा होय सो तब ही मोकों पावे ।

सो काहेते ? जो गंगा यमुना में अनेक जीव हैं सो कश कृतार्थ हरिरायजी कृत हैं ? जो माखी मच्छर चेंटी आदि श्रीप्रभु के भावप्रकाश बहोत जीव हैं, सो कहा कृतार्थ हैं ? जो भगवदीयन को संग होय तब ही कृतार्थ होय । सो तब ही श्रीप्रभून को पावे । भगवदीयन के संग सों दासभाव होय तब ही कृपा होय ।

पाछे श्रीनाथजीने वा बनिया को एसो दरशन दियो, सो वाको मन हरिलीनो । सो जब मंगला के दरशन होय चुके तब वा बनियाने सूरदासजी के चरन पकरि के वीनती कीनी जो—महाराज ! मेरो जनम सगरो वृथा गयो द्रव्य जोरवे में, मेरे पास द्रव्य बहोत हैं, सो अब तुम चाहो तहां या द्रव्य को खरच करो । और मोकों श्रीगुसांईजी को सेवक करायके वैष्णव करो ।



तब सूरदासजीने वा बनिया सों कह्यो— जो तू न्हायके काहू को छुड़यो मति, यहां आय बैठियो । सो इतने में श्रीगुसांईजी आपु शृंगार करि चुके, तब सूरदासजीनें श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो—महाराज ! या बनिया कों शरण लीजिये ।

तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख सों सूरदासजी सों कहे जो— सूरदासजी ! तुमने मलो साठि वरस को बूढो बेल नाथ्यो । तुम बिना या बनिया को सगरो जनम योंही जातो ।

पाछे श्रीगुसांईजी आप वा बनिया को बुलाय कें श्रीनाथजी के सन्निधान बेठायके नाम—ब्रह्मसंबंध करवायो । सो वा बनिया की बुद्धि निरमल होय गई । सो तब सगरे दरसन नित्य नेमसों करन लाग्यो । और वा बनिया नें श्रीगुसांईजी कों बहोत भेट करी । और श्रीनाथजी के वागा वस्त्र सामग्री कराय आभूषण कराये, और अंगीकार कराये ।

ता पाछे एक दिन वा बनिया ने सूरदासजी सों कही जो— सूरदासजी ! तिहारी कृपातें मैं श्रीगोवर्धननाथजी के दरसन पायो, और वैष्णव भयो । तासों अब एसी कृपा करो, जो — याही जनम में मेरो अंगीकार करै, और मोकों संसार को दुख सुख बाधा न करे ।

तब सूरदासजीने एक पद करि के वा बनिया को सिखायो । सो पद । राग बिलावल :—

‘ कृष्ण सुमिर तन पावन कीजे ’ ।<sup>१</sup>

१ आ. पद सूरसाहीना नामथी प्रसिद्ध छे.



तब वा बनिया कों दृढ भक्ति भई । लौकिक की  
बासना सब दूरि भई । सो ज्ञान वैराग्य सर्वोपरि भक्ति भई ।  
सो श्रीनाथजी के चरण कमल में दृढ आसक्ति और  
स्वरूपानंद को अनुभव भयो । तब रस में मगन होय गयो ।

सो या प्रकार सूरदासजी के संगतें एसो लोभी बनियाहू  
कृतार्थ भयो । सो वे सूरदासजी ऐसे भगवदीय हते ।

सो काहे तें ? जो—मूल में दैवी जीव है । सो श्रीललिताजी की  
श्रीहरिरायजी कृत सखी है । सो लीला में याको नाम 'विरजा'  
भावप्रकाश है । सो सूरदास को संग पायके लीला को  
अनुभव भयो । तातें भगवदीयन को संग सर्वोपरि है ।

### वार्ता प्रसंग—९

और एक समय श्रीगोकुल तें परमानंद आदि सब वैष्णव  
दस पंद्रह सूरदासजी सों मिलवेकों और श्रीगोवर्धननाथजी के  
दर्शन कों आये । सो सेनआरती के दर्शन करि सूरदासजी  
के पास आये । तब सूरदासजी ने सगरे वैष्णवन को बहोत  
आदर सन्मान कियो और ताही समय कीर्तन गाये ।

### राग कान्हरोः—

१ 'हरिजन संग छिनक जो होई' २ 'प्रभु जन पर  
प्रसन्न जब होई' । ३ 'हरि के जन की अति ठकुराई'  
राग हमीरः— ४ 'जा दिन संत पाहुने आयें'

सो या प्रकार सूरदासजी ने अनेक पद वैष्णवन कों  
सुनाये । तब सब वैष्णव बहोत प्रसन्न भये । पाछे सूरदासजीने



उन वैष्णवन सों कह्यो जो— कछ मो पर कृपा करिके आज्ञा करिये । तब सब वैष्णवन ने सूरदासजी सों कह्यो जो— ज्ञान, योग, परमतत्व और श्रीठाकुरजी को प्रेम, स्नेह को स्वरूप सुनाओ । तब सूरदासजीने यह कीर्तन सुनायो । सो पद ।

राग बिहागरोः—

‘जोग सों कोउ नांही हरि पाये’

सो या भांति अनेक कीर्तन करि वैष्णवन कों समुझाये । तब सगरे वैष्णव प्रसन्न होयकें कहे, जो— सूरदासजी के ऊपर बड़ी भगवत् कृपा है । ता पाछें सवारे भये सगरे वैष्णवन ने श्रीनाथजी के दर्शन किये । ता पाछें सूरदासजीसों विदा होय के श्रीगोकुल आये । सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग—१०

सो या प्रकार सूरदासजी नें बहोत दिन ताई भगवत् ‘सूरङ्ग्याम’ पके सेवा कीनी । ता पाछें जानें जो— २५ हजार पद भगवद् इच्छा मोकों बुलायवे की है ।

सो काहेते ? जो प्रभुन की यह रीति है, जो जब वैकुण्ठ सों श्रीहरिरायजीकृत भूमि पर प्रकट होयवे की इच्छा करत हैं, भावप्रकाश तब वैकुण्ठवासी जो भक्त हैं, सो पहले भूमि पर प्रकट करत हैं । ता पाछें आपु श्रीभगवान प्रकट होय भक्तन के संग लीला करत हैं । पाछें अपुने भक्तन को या जगत सों तिरोधान होय ता पाछें वैकुण्ठमें लीला करत हैं । सो जैसे नंद, जसोदा,



गोपीजन, सखा, वसुदेव, देवकी, यादव, सब प्रकट पहले ही किये । ता पाछे आप प्रकट होयके लीला भूमि पर करिके पाछे जादवनकू मूसल द्वारा अंतर्ध्यान करि लीला किये । सो श्रीनंदरायजी, श्रीज-सोदाजी, गोपीजन को अंतर्ध्यान लौकिक लीला नाहि दिखाये । सो तैसेही श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को प्राकट्य है । सो लीला-संबंधी वैष्णव प्रकट किये । अब श्रीआचार्यजी आप अंतर्ध्यान लीला किये । और श्रीगुसांईजी कों करना है ।\* सो पहले भगवदीयन कू नित्यलीला में स्थापन करिके आपु पधारेंगे । सो भगवदीयन को ( अपनी ) लौकिक अंतर्ध्यानलीला दिखावत नांही । सो जैसे चाचा हरिवंशजी सों कहे जो-तुम गुजरात जावो । सो या प्रकार गुजरात पठाय के अंतर्ध्यान लीला किये । सो सूरदासजी कू नित्यलीला में बुलायवे की इच्छा श्रीगोवर्धनधर की है ।

सो तब सूरदासजी मन में विचारे जो -मैं तो अपने मन में सवा लाख कीर्तन प्रकट करिवेको संकल्प कियो है, सो तामेतें लाख कीर्तन तो प्रकट भये हैं । सो भगवद् इच्छा तें पचीस हजार कीर्तन और प्रकट करने । ता पाछे यह देह छोडि के अंतर्ध्यान होय जानो ।

सो या प्रकार सूरदासजी अपने मनमें विचार करत हते । वाही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु प्रकट होयके दर्शन दे के कह्यो जो-सूरदासजी ! तुमने जो सवा लाख कीर्तन को मन

\* आ शब्दोभां सूरदासजीने लीलाप्रवेश १६४० नो २५९ जणाय छे. जे प्रतिष्ठासनी दृष्टिसे सिद्ध छे.



में मनोरथ कियो है, सो तो पूरन होय चुक्यो है, जो पचीस हजार कीर्तन मैंने पूरन करि दिये हैं । तासों तुम अपनो कीर्तन को चोपडा देखो.

तब सूरदासजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो— तुम मेरे कीर्तन के चोपडा देखो । सो तब वह वैष्णव देखे तो सूरदासजी के कीर्तन के बीच बीच में 'सूरश्याम' को भोग (छाप) है । सो ऐसे कीर्तन सगरी लीला में है । सो पचीस हजार हैं सो बात वा वैष्णवने सूरदास सों कही जो —काल तक तो 'सूरश्याम' के कीर्तन हते नांही, और आज सगरी लीला की बीच में है ।

तब सूरदासजी श्रीनाथजी को दंडवत करिके कहे जो— अब मेरो मनोरथ आप की कृपातें पूरन भयो । तासों अब आपु आज्ञा देउ सो करें ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो—अब तुम मेरी लीला में आयके लीलारस को अनुभव करो । सो यह आज्ञा करिके श्रीनाथजी अंतर्धान भये ।

तब सूरदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके मन में बहोत प्रसन्न भये । परंतु पास दोय वैष्णव साधारन हते, सो जाने नाहीं जो—श्रीठाकुरजी आपु सूरदासजी के पास पधारे, और कहा आज्ञा दीनी । सो काहेतें जो—श्रीठाकुरजी के स्वरूप को अनुभव भगवदीय विना और काहू को नांहि ।



## वार्ताप्रसंग-११

सो तब सूरदासजी अपने मन में यह विचार करिके  
 सूरदास का अंतिम परासोली आये । सो तहां अखंड  
 समय रासलीला ब्रह्मरात्र करि भगवानने  
 रासपंचाध्याई की सगरी लीला उहां करी है । सो जहां  
 उडुराज चंद्रमा प्रकट्यो है । सो तहां चंद्रसरोवर है, ऐसे  
 अलौकिक स्थल में आये ।

जो ये अष्टसखा हैं । सो श्रीगिरिराज में आठ द्वार हैं । सो तहां  
 श्रीहरिरायजीकृत के ये अधिकारी हैं । तासों आठों सखा  
 भावप्रकाश अपने अपने द्वार पर श्रीगिरिराज में हो देह छोडी  
 है । और अलौकिक देह धरिके सदा सर्वदा लीला में विराजमान हैं ।  
 (१) सो गोविंदकुंड ऊपर एक द्वार है । ताके सन्मुख परासोली चंद्रसरोवर  
 है, तहां सूरदासजी सेवा में मुखिया हैं । (२) और अप्सराकुंड ऊपर  
 एक द्वार है, तहां सेवामें छीतस्वामी मुखिया हैं । (३) सुरभीकुंड ऊपर  
 द्वार है, सो तहां परमानंददास सेवा में मुखिया हैं । (४) और  
 गोविंदस्वामी की कदमखंडी पास एक द्वार है, तहां गोविंदस्वामी  
 मुखिया हैं । (५) और रुद्रकुंड के पास एक द्वार है तहां चत्र-  
 भुजदास सेवा में मुखिया हैं । (६) बिलछू सन्मुख एक बारी है, सो जा  
 मारग होय के रासलीला कों पधारत हैं सो तहां की सेवा के कृष्णदास  
 अधिकारी मुखिया हैं । (७) और मानसी गंगा के पास एक द्वार है  
 सो तहां की सेवा में नंददास मुखिया हैं । (८) और आन्योर के सन्मुख



एक द्वार है, सो तहां जमुनावतो गाम है, सो ता द्वार के मुखिया कुंभनदास हैं ।

या प्रकार श्रीगिरिराज में नित्य निकुंज-लीला है । सो ता निकुंजलीला के आठ द्वार हैं । तहां के आठ सखा सखी रूप हैं, सो सेवा में सदा तत्पर हैं । तासों सूरदासजी को ठिकानो परासोली है ।

सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजा कों साष्टांग दंडवत् करि के ध्वजा के सन्मुख मुख करिके सूरदासजी सोये, परंतु मन में यह आई जो—श्रीआचार्यजी और श्रीगुसांईजी आपु मेरे ऊपर बड़ी कृपा करी है । श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला को याही देह सों अनुभव कराये । परंतु या समय एकवार श्रीगुसांईजी आपु मेरे ऊपर कृपा करिके दर्शन देंय, तो मेरे बड़े भाग्य हैं । श्रीगुसांईजी को नाम कृपासिंधु हैं, सो भक्तनको मनोरथ पूरन कर्ता हैं, सो पूरन करेंगे ।

सो या प्रकार सूरदासजी श्रीगुसांईजीके स्वरूप को चिंतवन करत हते, और यहां श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रृंगार करत हते । सो वा दिन श्रीगुसांईजीने सूरदासजी कों जगमोहन में बैठे कीर्तन करत न देखे । सो ता समय श्रीगुसांईजी आपु सेवकन सों पूछे जो—सूरदासजी कहां है ?

तब एक वैष्णवनें श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो—महाराज ! सूरदासजी तो आज मंगला आरती के दर्शन करिके परासोली में सगरे सेवकन सों भगवत्-स्मरण करिके गये हैं ।



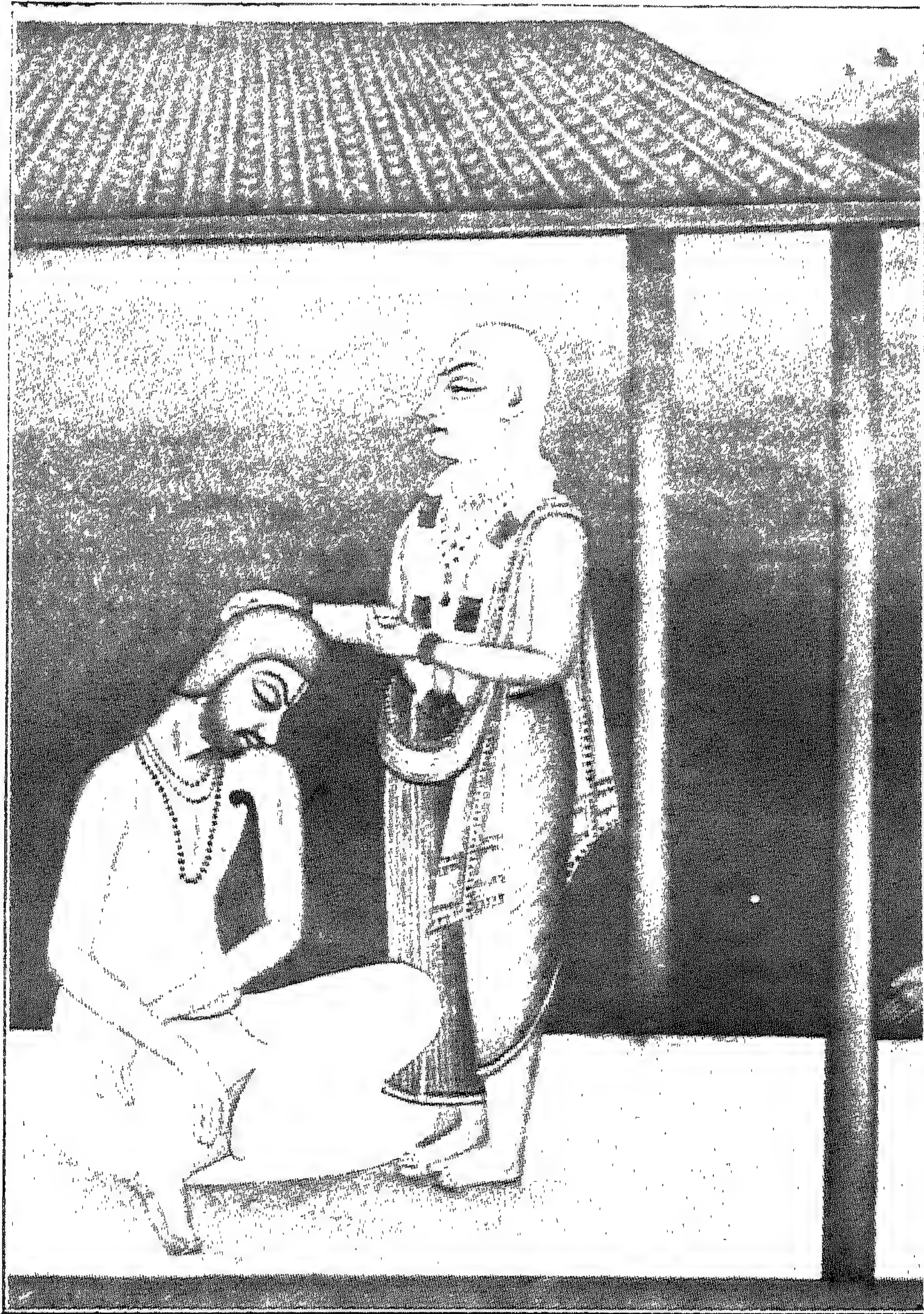
तब श्रीगुसांईजी आप जाने जो—भगवद् इच्छा सूरदासजी को बुलायवे की भई है, तासों आज सूरदासजी परासोली को गये हैं। सो तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख सों सगरे वैष्णवन सों यह आज्ञा किये जो—‘पुष्टिमार्ग को जहाज जात है सो जाकों कछु लेनो होय सो लेऊ, और उहां जायके सूरदासजी को देखो। सो या भांति सों जो राजभोग आरती उपरांत रहत हैं तो मैं हू आवत हों।’ सो तब सगरे वैष्णव सूरदासजी की पास आये।

सो यहां ‘जहाज’ कहिवे को आशय यह है जो—जैसे कोई जहाज श्रीहरिरायजीकृत में काहू व्योपारीने व्योपार अर्थ अनेक वस्तु भावप्रकाश जहाज में भरी है, सो तैसे ही सूरदासजीके हृदय में अलौकिक वस्तु नाना प्रकारकी भरी है।

ता समय सूरदासजीने श्रीगुसांईजी के और श्रीगोवर्द्धननाथजी के स्वरूप में मन लगायके बोलिवो छोड़ि दियो सो तब श्रीगुसांईजीने पंद्रह ब्रजवासी दोराये। जो घडी २ वें हमसों सूरदासजी के समाचार आय कहियो। तब वे ब्रजवासी आयके श्रीगुसांईजी सों कहे जो—महाराज ! अब तं सूरदासजी काहू सों बोलत नांही हैं। सो ऐसे करत २ राजभोग आरती को समय भयो। सो राजभोग आरती श्रीगोवर्द्धननाथजी की करिके श्रीगुसांईजी आपु परासोली में जह सूरदासजी हते तहां पधारे।



अष्टाङ्ग



श्रीसूरका अंतिम समय

सं० १६४०

रघुनाथ, पालीवाल  
नाथद्वारा







तब श्रीगुसांईजी के संग रामदास, कुंभनदास, गोविंद-स्वामी, चत्रभुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी के पास आये । तब देखे तो सूरदासजी अचेत होय रहे हैं, कछु देहको अनुसंधान नांही है ।

सो तब श्रीगुसांईजी आप सूरदासजी को हाथ पकरिके कहे जो—सूरदासजी ? कैसे हो ? तब सूरदासजी तत्काल उठिके दंडवत् करिके कहे जो—बाबा ! आये ? जो मैं आपु की वाट ही देखत हतो । या समय आपने बड़ी कृपा करिके दर्शन दियो । जो महाराज ! मैं आप के स्वरूप को ही चिंतन करत हतो ।

ताही समय सूरदासजीने यह कीर्तन सारंग राग में गायो । सो पद—

‘ देखो देखो हरिजू को एक सुभाव ’.

यह पद सूरदासजीने श्रीगुसांईजी के आगे गायो । तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीमुख सों कहे जो—या प्रकार श्रीठाकुरजी आपु अपने भगवदीयन कों दीनता को दान करत हैं, सो ताकों पूरन कृपा जानिये । सो दैन्यतारस के पात्र यही हैं ।

सो ता समय सगरे वैष्णव श्रीगुसांईजी के पास ठाडे हते । उनमें ते चत्रभुजदासने कह्यो जो—सूरदासजी परम भगवदीय हैं, और सूरदासजीने श्रीठाकुरजी के लक्षावधि पद किये हैं ।



परंतु सूरदासजीने श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को जस वरनन नांही कियो ।+

यह सुनिके सूरदासजी कहे जो— मैं तो सगरो जस श्री-आचार्यजी को ही वरनन कियो है, जो मैं कछु न्यारो देखतो तो न्यारो करतो । परि तेने मोसों पूछी है, सो मैं तेरे पास कहत हों, सो या कीर्तन के अनुसार सगरे कीर्तन जानियो । सो पद—

राग बिहागरो—‘भरोसो दृढ इन चरणन केरो’०।

सो या कीर्तन में सूरदासजीने अपने हृदय को भाव खोलि दियो । श्रीहरिरायजीकृत जो भरोसो सो जीव को विश्वास, दृढ चरण के भावप्रकाश. शरण को । सो मोकों (सूरदासकों) दृढता श्री-आचार्यजी के शरण की है । सो श्रीआचार्यजी के नख जो दसों चरणा-रविंद के अलौकिक मणिरूप नख को प्रकाश, सो ता बिना सगरे त्रिलोकी में अंध्यारो दीखे है । सो तब भरोसो दृढ जानिये । सो या कलि में श्रीआचार्यजी के चरण के आश्रय बिना और उपाय फलसिद्धि को नांही है । तासों मैं न्यारो कहा वर्णन करों ? जो श्रीगोवर्द्धनधर में और श्रीआचार्यजी के स्वरूप में भिन्न, जो द्विविध तामें तो मैं अंध हों ।

सो जैसे श्रीकृष्ण और श्रीस्वामिनीजी में न्यारो स्वरूप जाने सो अज्ञानी । सो तैसैं श्रीगोवर्द्धनधर और श्रीआचार्यजी हैं । सो तिनको मैं

---

+ सूरनी छापनां श्रीमहाप्रभुजना ने पढे। प्रचलित छे ते अष्टछापना श्रीसूरनां नथी. विशेष जुओ अमारा तरङ्गधी प्रकट थते। ‘पुष्टिभार्गीय लक्ष्मणवि’ नामक ग्रन्थ.



बिना मोल को चेरो हों। सो बिना मोल कहा ? जो केवल भाव करि के। जैसे रासपंचाव्याई में व्रजभक्त गोपिकागीत में कहे हैं जो— ‘शुक्क दासिका’ सो बिना मोल की दासी, अलौकिक, जाको मोल नांही। सो काहे ते ? जो भक्ति करिके प्रभुन सों (अर्थ) चाहै, सो सगरे, मोल के दास कहिये। उनकी भक्ति श्रेष्ठ नांही। तासों निष्काम भक्ति सर्वोपरि है। सो ताकां अमोलिक दास कहिये। ता भाव के प्रभु वस होय। सो जैसे पंचाव्याई में श्रीभगवान कहे हैं जो—तिहारो भजन एसो है, जो मोसों पलटो दियो न जाय। जो मैं सदा तिहारो रिनियाँ रहूंगो। सो यह अमोलिक दास के लक्षण हैं। सो यह पद गायो।

सो यह पद केसो है ? जो या कीर्तन के भाव तें, सवा लाख कीर्तन सूरदासजी ने किये हैं, सो सब को पाठ होय।

तब चत्रभुजदास प्रसन्न भये। पाछें सगरे वैष्णव और श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—सूरदासजी के हृदय को महा अलौकिक भाव है, तासों श्रीआचार्यजी आपु सूरदासजी सों ‘सागर’ कहते। जैसे समुद्र अगाध है, तैसे सूरदासजी को हृदय अगाध है। सो तब चत्रभुजदास कहे जो—सूरदासजी ! तुम बिना अलौकिक भाव कोन दिखावे ? जो अब थोरे में, श्रीआचार्यजी को यह पुष्टिभक्ति मारग है, ताको स्वरूप सुनावो। सो कोन प्रकार सों पुष्टिमारग के रस को अनुभव करिये।

तब वा समय सूरदासजीने यह पद गायो। सो पद—राग सारंग—‘भज सखी भाव भाविक देव’०



सो षड सूरदासजीने सगरे वैष्णवन को सुनायो ।

सो या षड में यह जताये—जो गोपीजन के भाव से जो प्रभु को श्रीहरिरायजीकृत भजे । सो तिनके भाविक जो—श्रीगोवर्द्धनधर, सो भावप्रकाश तिनको गोपीन के भाव करि सखीभाव से भजिये । कुंजलीला में सखीजन को अधिकार है । तासें (यहां) सखी कहे । और कोटि साधन वेदके करो, परंतु एक हू सेवा नांही मानत हैं । ताको दृष्टांत :—जो सोलह हजार अग्निकुमारिका ऋचा हैं । ‘धूम्र—केतु’ एसी जो अग्नि ताके पुत्र जो सोलह हजार ऋषि, सो वे रामचंद्रजी के स्वरूप ऊपर मोहित होय दंडकारण्य में कहे जो—हमसें विहार करो । तब उनसें श्रीरामचंद्रजी यह आज्ञा किये जो—व्रज में तुम स्त्री होय प्रकटोगी तब तिहारो मनोरथ पूरन होयगो ।

तासें स्त्री को वेद कर्म में अधिकार नांही है । और श्रीपूर्णपुरुषोत्तम की लीला में मुख्य स्त्रीभाव को अधिकार है । यह भक्तिमार्ग की वेद से उलटी रीत है । जैसे रास पंचाव्याई में व्रजभक्त उलटे आभूषन वस्त्र धारन करे, सो लोक में उनसें ‘बावरो’ कहें, सो स्नेह में सर्वोपरि कहिये । जैसे जा छाप में उलटे अक्षर होय सो शरीर में सृष्टे आछे अक्षर होय, तैसे या जगत में अज्ञानी, प्रभु की लीला में चतुर होय सो प्रपंच भूले, सो ताको प्रेम कहिये । मुख्य भक्ति-रस में वेदविधिको नेम नांही है । तासें एसी जो प्रेम होय सो श्रीठाकुरजी को वस करे, जैसे गोपीजननने श्रीठाकुरजी वस किये । सो श्रीठाकुरजी कैसे हैं, जो सबही को मोहि डारें । और सूर है, सो काहू सो जीते जाय नाहीं । और वेही चतुर शिरोमणि हैं, सो काहू के वस होय



नांही, तोऊ प्रेम के वस हैं । सबकुं मूलि जाय । यह पुष्टिमार्ग की भक्ति और पुष्टिमार्ग को स्वरूप है । सो या भांति सों सूरदासजी कहे ।

सो तब चत्रभुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी कों धन्य धन्य कहे जो—इनके ऊपर बड़ी मगवत् कृपा है, तब सूरदासजी चुप होय रहे ।

तब श्रीगुसांईजी आप सूरदासजी सों पूछो जो—सूरदासजी ! अब या समय चित्त की वृत्ति कहां है ? तब वाही समय सूरदासजीने एक पद गायो । सो पद—

‘बलि २ हौं कुंवर राधिका नंदसुवन जासों रति मानी०’.

पाछें दूसरो यह पद गायो—

राग बिहागरो—खंजन नैन रूप रस माते०’.

सो यह पद सूरदासजीने गायो । पाछे सूरदासजी जुगल स्वरूप को ध्यान करिके यह लौकिक शरीर छोडि लीला में जाय प्राप्त भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आप तो गोपालपुर पधारे । तब सगरे वैष्णवनने मिलिके सूरदासजी की देह को अग्निसंस्कार कियो । ता पाछे सगरे वैष्णव श्रीगुसांईजी की पास आये ।

सो इन सूरदासजी के चारि नाम हैं । श्रीआचार्यजी आप श्रीहरिरायजीकृत तो ‘सूर’ कहते । जैसे सूर होय सो रणमें

भावप्रकाश सो पाछो पांव नांहि देय, जो सबसें आगे चले । तैसेई सूरदासजी की भक्ति दिन दिन चढ़ती दिशा भई । तासें श्रीआचार्यजी आप ‘सूर’ कहते ।



और श्रीगुसांईजी आप 'सूरदास' कहते। सो दासभाव में कबहू घटे नांही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयो, त्यों त्यों सूरदासजी कों दीनता अधिक भई। सो सूरदासजी कों कबहू अहंकार मद नांही भयो। सो 'सूरदासजी' इन को नाम कहे।

और तीसरो इन को नाम 'सूरजदास' है। जो श्रीस्वामिनीजी के ७ हजार पद सूरदासजीने किये हैं, तामें अलौकिक भाव वर्णन किये हैं। तासों श्रीस्वामिनीजी कहते जो ये 'सूरज' हैं। जैसे सूरज सों जगत में प्रकास होय, सो या प्रकार स्वरूप को प्रकास कियो। सो जब श्रीस्वामिनीजीने 'सूरजदास' नाम धर्यो, तब सूरदासजीने बहोत कीर्तनमें 'सूरज' भोग धरे।

और श्रीगोवर्द्धननाथजीने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदासजी कों करि दिये। तामें 'सूरश्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदासजी के चारि नाम प्रकट भये। सो सूरदासजी के कीर्तन में ये चारो 'भोग' कहे हैं।

या प्रकार सूरदासजी मानसी सेवा में सदा मग्न रहते। तातें इनके माथे श्रीआचार्यजीने भगवत् सेवा नांही पधारये<sup>x</sup>। सो काहेतें ? जो—सूरदासजी कों मानसी सेवा में फल रूप अनुभव है। सो ये सदा लीलारस में मग्न रहत हैं।

---

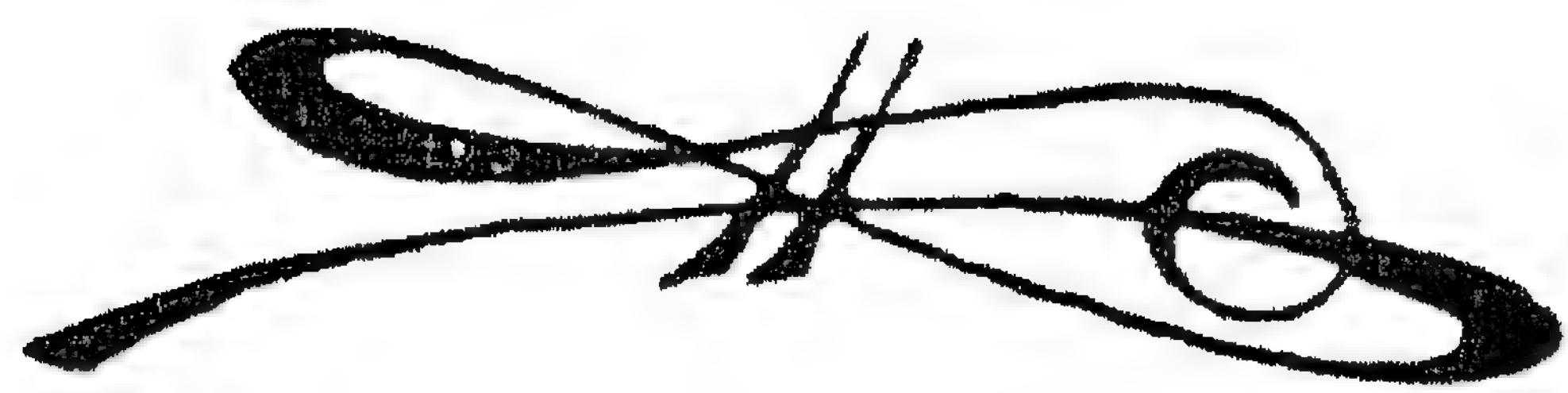
<sup>x</sup>चापासेनीमें विराजमान श्रीश्याममनोहरजी ठाकुरजी सूरदासजी के कहे जाते हैं, पर इस वार्ता के उल्लेख से वे किसी अन्य सूरदासजी के होना चाहिये। क्या इस पर कोई प्रकाश डालेगा ? —सम्पादक:



सो सूरदासजी की वार्ता में यह सर्वोपरि सिद्धांत है, जो—दैन्यता समान और पदारथ कोई नांही है, और परोपकार समान दूसरो धर्म नांही है। जो वा बनिया के लिये सूरदासजीने इतनो श्रम कियो। परि वाको अंगीकार करवाय वाको उद्धार करि दियो।

तासों श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी आपु और सगरे वैष्णव जीवमात्र सूरदासजी के ऊपर बहोत प्रसन्न रहते। सो जो सूरदासजी सों आयके पूछतो, तिनकों प्रीति सों मारग को सिद्धांत बतावते, और उनको मन प्रभुन में लगाय देते। तासों सूरदासजी सरीखे भगवदीय कोटिन में दुर्लभ हैं।

सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते। तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं सा कहां ताई लिखिये।





## (२) श्रीपरमानन्ददासजी



अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक परमानंदस्वामी, कनोजिया ब्राह्मण कनौज में रहते, जिनके पद गाइयत हैं अष्टछापमें, तिनकी वार्ता—



### श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

सो ये परमानंददासजी लीला में अष्टसखान में 'तोक' सखा को आधिदैविक मूल प्राकट्य हैं। सो तोक सखा को दूसरो स्वरूप स्वरूप निकुंज में सखीरूप है। ता स्वरूप को नाम 'चंद्रभागा' है। सो सुरभीकुंड के पास श्रीगिरिराज के एक द्वार+ है ताके मुखिया हैं।

सो ये कनौज में कनोजिया ब्राह्मण के यहां जन्मे। जा दिन परमानंददासजी जन्मे, वा दिन उनके पिता काँ एक सेठ ने बहोत द्रव्य दान दियो। तब वा ब्राह्मण ने बहोत प्रसन्न होय के कह्यो जो— श्रीठाकुरजी ने मोकों पुत्र दियो, और धन हू बहोत दियो। तासों यह पुत्र बडो भाग्यवान है, जाके जनमत ही मोकों परम आनंद भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम 'परमानंददास' हो धरूंगो।

---

+ श्यामतमाल वृक्ष के नीचे है।



पाछे जब नाम करन लागे तब वा ब्राह्मण ने कही जो—नाम तो मैं पहले ही या पुत्र को 'परमानंद' बिचारि चुक्यो हों। तब सब ब्राह्मण बोले जो—तुमने बिचारचो है सोइ नाम जन्मपत्रिका में आयो है। तब तो वह ब्राह्मण बहोत ही प्रसन्न भयो। पाछे वा ब्राह्मणने जातकर्म करि दान बहुत ही कियो। एसे करत परमानंददास बडे भये। तब पिताने बडो उत्सव कियो। और इनको यज्ञोपवीत कियो।

सो ये परमानंददास बडे कृपापात्र भगवर्दीय हैं, लीलामध्यपातो श्री-ठाकुरजी के अत्यंत (अतरंग) सखा हैं। सो जब श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्धननाथजी की आज्ञातेँ दैवी जीवन के उद्धारार्थ भूतल पर प्रकट भये, तेसेही श्रीठाकुरजी सहित सगरो परिकर प्रकट भयो। सो दैवी जीव अनेक देशांतर में प्रकट भये।

सो गोपालदासजी वल्लभाख्यान में गाये हैं जो—'अनेक जीवने कृपा करवा देशांतर प्रवेश'० सो कनौज में परमानंददासजी बहोत ही प्रसन्न बालपने तेँ रहते।

पाछे ये बडे योग्य भये, और कवीश्वर हू भये। वे अनेक पद बनायके गावते। सो 'स्वामी' कहावते और सेवक हू करते। सो परमानंददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनीजन संग रहते।

एक समय कनौज में अकाल परचो सो हाकिम की बुद्धि बिगरी। सो गाममें सों दंड लियो और परमानंददास के पिता को सब द्रव्य छुटि लियो। तब मातापिता बहोत दुःख पाय के परमानंददास



सों कहे जो — हम तेरो ब्याह हू न करन पाये, और सब द्रव्य योंही गयो, तासों अब तू कमायवे को उपाय कर । सो काहेतें ? जो—तू गुनी और तेरे द्रव्य बहोत आवत है । सो तू वा द्रव्य कों इकठोरे करे तो हम तेरो ब्याह करें ।

तब परमानंददासने मातापिता सों कह्यो जो— मेरे तो ब्याह करनो नाहीं है, और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषारथ कियो ? सगरो द्रव्य योंही गयो । तासों द्रव्य आये को फल यही है जो— वैष्णव ब्राह्मण कों खवावनो । तासों मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहू नाहीं करूंगो । और तुम खायवे लायक मोसों नित्य अन्न लेहू, और बेठे २ श्रीठाकुरजी को नाम लियो करो । जो अब निर्धन भये हो तासों अब तो धन को मोह छोडो ।

तब पिताने परमानंददास सों कह्यो जो— तू तो वेरागी भयो । तेरी संगति वेरागीन की है, तासों तेरी एसी बुद्धि भई । और हमतो गृहस्थी हैं । तासों हमारे धन जोरे बिना कैसे चले ? जो कुटुंब में जाति में खरचें, तब हमारी बडाई होय ।

पाछें पिता धन के लिये पूरव को गयो । तहां जीविका न मिली तब दक्षिन कों गयो, और तहां द्रव्य मिल्यो सो तहां रह्यो । और परमानंददासने अपने घर कीर्तन को समाज कियो । सो गाम गाम में प्रसिद्ध भये । सो परमानंददास गान—विद्या में परम चतुर हते ।





### वार्ता प्रसंग-१

सो एक समय+ परमानंददास कनौज तें मकरस्नान कों प्रयाग में आये, सो तहां रहे । और कीर्तन को समाज नित्य करें, सो बहोत लोग इनके कीर्तन सुनिवे कों आवते ।

सो पार अडेल में श्रीआचार्यजी बिराजत हते । अडेल तें लोग कछु कार्यार्थ गाममें आवते । सो परमानंददास के कीर्तन सुनिके अडेल में जायके श्रीआचार्यजी सों कहते जो-एक परमानंददास कनौज तें आयो है, सो कीर्तन बहोत आछो गावत है ।

तब श्रीआचार्यजी कहे जो-परमानंददास दैवी जीव है, जो इनको गुन होय सो उचित ही है ।

सो श्रीआचार्यजी को सेवक एक 'कपूर क्षत्री' जलघरिया हतो, बाकी राग ऊपर बहोत आसक्ति हती । सो यह बात सुनि के बाके मनमें आई जो-मैं श्रीआचार्यजी न जानें एसे परमानंदस्वामी को गान सुनूं । काहेतें जा-श्रीआचार्यजी आपु सुनेंगे तो खीजेंगे, जो-तू सेवा छोडिके क्यों गयो ? तासों प्रयाग न जाय सके । परंतु वा जलघरिया 'क्षत्री कपूर' को मन परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवे कों बहोत हतो ।

सो काहेतें ? जो इनको पूर्व को संबंध है । जो लीला में यह श्रीहरिरायजीकृत क्षत्री परमानंददास की सखी है, सो ये चंद्रभागा भावप्रकाश को सखी 'सोनजुही' याको नाम है ।



सो यह क्षत्री सुदामापुरी में एक क्षत्री के घर प्रकटे,  
 क्षत्री कपूर का इन को पिता महाविषयी हतो । सो जहां  
 प्रसंग तहां परस्त्री को संग करतो । और द्रव्य  
 बहोत हतो, सो सब विषय में खोयो । ता

पाछे गाम के राजाने सगरो घर लूटि लियो । सो या क्षत्री के  
 मातापिता पुत्र सहित बंदीखाने में दिये । तब याको पिता  
 एक सिपाई का कछु देके रात्रिकों स्त्रीपुरुष और या पुत्र  
 सहित बंदीखाने में सों भाजे । सो दिन दोय तीन ताई भाजे,  
 सो तहां एक बन में जाय निकसे । तहां नाहरने याके माता-  
 पिता कों मारचों, और यह पुत्र वरस चौदह को बच्यो । सो  
 बन में बैठयो रुदन करे, सो भूरूयो प्यासो चलयो न जाय ।

सो भागिजोग तें पृथ्वीपरिक्रमा करत श्रीआचार्यजी  
 गहवरवन(सघन वन) में आये । तब या क्षत्री सों पूछी जो—  
 तू कौन है ? जो अकेलो वनमें रुदन करत है । तब इनने  
 दंडवत करिके अपनो सब वृत्तांत कह्यो ।

तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास मेघन सों कहे—जो कछु  
 महाप्रसाद होय तो याकों खवायके बेगि जलपान करावो,  
 जो याके प्राण बचें । तब कृष्णदास मेघन के पास प्रसाद  
 हतो, सो या क्षत्री कों न्हायके खवायके जल पिवायो ।  
 तब या क्षत्री को मन ठिकाने आयो । तब या क्षत्रीने श्री-  
 आचार्यजी सो विनति कीनी जो— महाराज ! मोकों आप  
 पास राखों । जो मैं जनम भरि आप को गुलाम रहूंगो । अब  
 मेरे मातापिता भगवान आपु हो ।



तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों कहे जो-तू चिंता मति करे, और तू हमारे संग ही रहियो । तब यह क्षत्री श्री-आचार्यजी के संग ही रह्यो । ता पाछें दूसरे दिन श्रीआचार्यजी आपु वा क्षत्री को नाम ब्रह्मसंबंध करवायो, और जल लायवे की सेवा याकों दिये ।

पाछे कछूक दिन में श्रीआचार्यजी आपु अडेल पधारे तब, वह क्षत्री श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करिके अपने मनमें बहोत प्रसन्न भयो । और कह्यो जो-मैं अनाथ हतो, सो श्रीआचार्यजी आपु मोकों कृपा करिके शरण लेके संग लाये, सो मोकों साक्षात् श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन भये । तब वा क्षत्री कपूर जल-घरिया कों मन श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप में लगि गयो ।

सो तब या क्षत्रीने अपने मन में विचारी जो-अब मोकों श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा कछू मिले, तब मैं सदा सेवा करूं और दरशन करूं । सो श्रीआचार्यजी आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, सो या क्षत्री के मन की जानि याकों पास बुलाय के कह्यो जो-तेरे मन में सेवा की आई, सो तेरे बड़े भाग्य हैं । तासों अब तू श्रीनवनीतप्रियजी के जलघरा की सेवा कियो कर ।

तब वा क्षत्रीने प्रसन्न होयकें श्रीआचार्यजी कों दंडवत करिकें बिनती कीनी-जो महाराज ! मेरे हू मन में एसें हती, सो आपु तो परम कृपालु हो, तासों मेरो सर्व मनो-रथ पूरन कियो ।



ता पाछें अति प्रीति सों वह क्षत्री वैष्णव प्रसन्न होयते  
खारो तथा मीठो जल भरन लाग्यो । सो कलक दिन में श्री-  
नवनीतप्रियजी आपु सानुभावता जतावन लागे । परंतु सेव  
में अवकाश नांही, जो ये परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवें  
कों जाय ।+

सो एक दिन एकादशी को दिन हतो । ता दि-  
प्रयाग सों एक वैष्णव श्रीआचार्यजी के दर्शन कों अडेल  
आयो । तब वा क्षत्री जलघरियाने वा वैष्णव सों परमानंद-  
स्वामी के समाचार पूछे । तब वा वैष्णवनें कह्यो जो-  
नित्य तो चारि घडी तथा पहर को समाज होत है रात्रि के समे  
और आज तो एकादशी है, जो सगरी रात्रि परमानंदस्वामी के  
यहां जागरन होयगो ।

सो ये बचन सुनिके वह क्षत्री वैष्णव अपने मन में  
बहात प्रसन्न भयो, और विचार कियो जो-आजु परमानंद-  
स्वामी के कीर्तन सुनिवे को दाव लग्यो है । तासों जब श्री-  
आचार्यजी आपु रात्रि कों पोढ़ेंगे तब मैं रात्रि कों प्रयाग  
में जायके परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनूंगो ।

ता पाछें रात्रि भई । तब वह क्षत्री कपूर जलघरिय  
अपनी सेवा सों पहोंचिके श्रीआचार्यजी के श्रीमुख तें कथ  
सुनिके रात्रि प्रहर डेढ़ गई, ताही समय अडेल सों प्रयाग कं

+ क्षत्री कपूर जलघरिया का प्रसंग हरिरायजीकृत भावप्रकाश का है,  
वार्ता का नहीं है ।



चल्यो । तब अपने मन में विचार्यों जो-या समय घाट ऊपर तो नाव मिलनी नांही है, तासों पैरिके जाऊं ।

सो वे पेरिवे में बड़े निपुन हते । पाछे घाट ऊपर आय परदनी एक छोटीसी पहरिके, धोती उपरना माथे सों बांधे । सो उष्णकाल गरमी के दिन हते सो पैरिके परमानंदस्वामी कीर्तन करत हते तहां आये ।

सो इनको पहलें परमानंदस्वामी सों मिलाप तो कब हू भयो न हतो, तासों दूरि बैठि गये । उहां श्रीआचार्यजी के सेवक प्रयाग के वैष्णव बैठे हते सो इन कों जानत हते । सो तहां अपने पास ही इन क्षत्री कपूर को बेठारि लिये । सो वे जहां परमानंदस्वामी बैठे हते तिनके पास जाय बैठे । और और गुनीन ने पद गाये पाछें परमानंदस्वामीने गायवे को आरंभ कियो । सो परमानंदस्वामी विरह के पद गावते ।

सो कहेंतें ? जो ऊपर इनको स्वरूप कहि आये हैं जो-ये श्रीहरिरायजीकृत परमानंददास लीला में सों विछुरे हैं, सो अबही

**मावप्रकाश** श्रीआचार्यजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन भये नांही हैं । सो जब श्रीआचार्यजी श्रीनाथजी को दर्शन करावेंगे तब परमानंददास कों लीला को ज्ञान होयगो । श्रीआचार्यजी के मारग को यह सिद्धांत है जो-भगवदीयन को संग होय तब श्रीठाकुरजी कृपा करें । ताके लिये श्रीआचार्यजी परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करने के अर्थ अपने कृपापात्र भगवदीय क्षत्री कपूर जलधरिया कों पठाये ।



सो क्षत्री कपूर जलघरिया कैसे हते जो-जिनको श्रीठाकुरजी एक क्ष  
ह्र नांही छोड़त हैं, जो सदा वैष्णव के संग ही रहत हैं ।

तासों सूरदासजी गाये हैं— जो भक्तविरहकातर करुणाम  
डोलत पाछें लागें०' और ऊपर जगन्नाथजोषी की वार्ता\* में कहि आ  
हैं जो— जब वा रजपूत नें तरवार काढी तब श्रीठाकुरजी आपु पाछे  
आयके तरवार सहित हाथ ऊपर ही थांभि दीयो, सो हाथ चलन न दियो

तासों श्रीभागवत में सब ठौर वरणन है जो— भगवदी  
वैष्णव के संगही श्रीठाकुरजी डोलत हैं । सो परमानंददास को अबह  
वियोग है । तासों विरह के कीर्तन नित्य गावते ।

सो विरह के पद परमानंददासने गाये । सो पद :-

राग बिहागरो । १ 'ब्रजके विरही लोग बिचारे०'  
२ 'गोकुल सब गोपाल उपासी०' ।

राग कान्हरो-३ 'कोन रसिक है इन बातनको' ।

राग सोरठ-४ 'माइरी ! को मिलिवे नंदकिशोरै'

इत्यादि बहोत कीर्तन परमानंददास नें गाये सगरी रात्रि  
ता पाछें चार घडी रात्रि रही तब कीर्तन राखे । सो जो को  
जागरन में आये हते वे सब अपने अपने घर कों गये । पादे  
यह जलघरिया क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी सो भगवत्स्मर  
करिके उठिके तहांते चल्यो । सो परमानंदस्वामी के  
कीर्तन सुनिके अपने मनमें बहोत प्रसन्न होयके कह्यो जो—  
जैसो परमानंदस्वामी को गुन सुनत हते सो तैसेई हैं ।



सो या प्रकार परमानंदस्वामी की सराहना करत करत वह क्षत्री कपूर श्रीयमुनाजी के तट आइके वाही प्रकारसों पैरिकें पार आय, धोवती उपरना परदनी सहित न्हायके अपरसही में आये । ताही समय श्रीआचार्यजी आपु पोंढिके उठे हते, सो श्रीआचार्यजी के दरशन करि, दंडवत करि अपने जलघरा की सेवा में तत्पर भये ।

सो या प्रकार ये क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा श्रीहरिरायजीकृत करिवे के अर्थ परमानंदस्वामी के पास गये ।

**भावप्रकाश.** नांही तो इनको श्रीठाकुरजी आप सानुभाव हते, सो एसे भमवदीय काहेकों काहू के घर जांय ? परंतु परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा होनहार है, तासों श्रीनवनीतप्रियजा वा क्षत्री कपूर जलघरिया को मन प्रेरिकें याके संग आपुही पधारि, याही की गोद में बैठिके परमानंदस्वामी के कीर्तन सुने ।

सो या प्रकार वह क्षत्री जलघरिया परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनि जब प्रयाग सों अडेल कों चले, सो तब परमानंदस्वामी सगरी रात्रि के श्रमित हते, सो येहू सोये ।

सो तर्हा यह संदेह होय जो— परमानंदस्वामी सगरी रात्रि जाग-  
**श्रीहरिरायजीकृत** रण करिके चारि घडी पिछली रात्रि रही तब  
**भावप्रकाश** सोये । सो सोये तें जागस्न को फल जात रहत है । जो परमानंदस्वामी तो सुज्ञान हैं, और चतुर हैं । तासों



वे क्यों सोये ? तहां कहत हैं जो— परमानंदस्वामी लीला संबंधी पुष्टि जीव हैं । सो एक श्रीठाकुरजीकों चाहत हैं और जागरन के फल क चाहत नांही है ।

सो ये परमानंद स्वामी एकादसी के जागरन को मिस मात्र लें भगवन्नाम अधिक लियो जाय ताके लिये जागरन करत हते । सो इनकों विधि रीति सों कछू जागरन करिवे के फल कों कारन नांही है । तासों परमानंददास चारि घडी रात्रि पिछली रही तब सोये । सो यातें जो—जागरन को फल जायगो, परंतु भगवन्नाम लियो, सो गुन त कोई काल में जायगो नांही । तासों भगवन्नाम लेंयवेके अर्थ चारि घडी रात्रि पाछिली कों सोये । सो काहे तें ? जो— सोवें नांही तो द्वादसी के दिन आलस शरीर में रहे । फेरि द्वादशी की रात्रि कों डेढ पहर रात्रि ताई कीरतन करने हैं । तासों जागरन को आश्रय छोडिकें भगवन्नाम को आश्रय करिकें सोये ।

सो नींद आवत ही परमानंदस्वामी कों स्वप्न आयो । सो स्वप्नमें देखे तो श्रीआचार्यजी के सेवक क्षत्री जागरन में बे हैं । और इनकी गोद में श्रीनवनीतप्रियजी बैठे देखे । और श्रीनवनीतप्रियजी स्वप्न में मुसिकयाय के परमानंदस्वामी का आज्ञा कीये जो—आज मैंने तेरे कीर्तन सुने हैं । सो श्रीआचार्यजी के कृपापात्र सेवक कपूर क्षत्री जलघरिया तेरे य रात्रि कों जागरन में आये । तासों इनके साथ मैंहू आयो । सो इतने दिनन में आजु तेरे कीर्तन सुन्यो हों ।



सो यह कहे, तहां यह संदेह होय जो—श्रीठाकुरजी तो सदा श्रीहरिरायजीकृत सुनत हैं, और सब ठोर व्यापक हैं । सो कहे

भावप्रकाश जो—‘आज मैं सुन्यो’ ताको कारन कहा ? तहां कहत हैं—जो इतने दिन सों अंगीकार में ढील हती, सो अंतर्यामी साक्षिरूप सों सुने । तासों अब अंगीकार करना है और कृपा करनी है, सो बेगि कृपा करन को लक्षण बताये । तासों कहे जो—आजु मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हों सो आज मैं तोपर पूरन कृपा करी । तासों अब बेगि मोकों पावोगे । सो यह आशय जाननो ।

तब परमानंदस्वामी की नौद खुशी । सो नेत्रन में श्री नवनीतप्रियजी को स्वरूप कोटिकंदर्पलावण्य, जो स्वप्न में दर्शन भयो । तासों नेत्रन में हृदय में ज्ञान भयो । तब परमानंदस्वामी के मनमें बड़ी चटपटी लगी, और आर्ति भई, जो—अब मैं कब श्रीनवनीतप्रियजी को दरशन करों ?

ता पाछें परमानंदस्वामीने अपने मनमें विचार कियो जो—मैं इतने दिन तें जागरन कियो और कीर्तन हू गाये, परंतु मोकों ऐसा दर्शन कबहू न भयो । जो आज भयो है सो—श्री आचार्यजी को सेवक जलघरिया क्षत्री कपूर आयो, तासों उनकी गोद में भयो । क्षत्री कपूर बिना श्रीनवनीतप्रियजी को दरशन न होयगो, तासों उनके पास चलिये, और उनसों मिलिये तब अपनो कार्य सिद्ध होय ।

सो यह विचार मनमें करिके परमानंदस्वामी तत्काल उठि



के अडेलकों चले । इतने में प्रातःकाल भयो । सो श्रीयमुना के तीर पे आये, सो प्रथम ही नाव पार चली, तामें बैदि परमानंदस्वामी पार आये ।

ता समय श्रीआचार्यजी श्रीयमुनाजी में स्नान करि प्रातःकाल की संध्या करत हते । सो परमानंदस्वामी कों आचार्यजी के दरसन अत्यद्भुत अलौकिक साक्षात् श्रीकृष्ण के स्वरूप सों भयो । सो जैसो श्रीगुसांईजी श्रीवल्लभाष्ट्र में वर्णन किये है जो— 'वस्तुतः कृष्ण एव०'

एसो दर्शन करिके परमानंदस्वामी चकित होय रहे सो कछु बोल न निकस्यो । तब परमानंदस्वामीने अपने मन में विचार कियो जो— श्रीआचार्यजी के सेवक कपूरक्षत्रीय गोदमें बैठिके श्रीनवनीतप्रियजी मेरे कीर्तन क्यों न सुनें जिनके माथे श्रीआचार्यजी आपु ऐसे धनी विराजत हैं तासों मैं हूँ इनको सेवक होऊंगो । परि मेरो सामर्थ्य नांही है जो—मैं इनसों सेवक होंन की विनती करों । तासों वह क्षत्र फेर मिले तो उनसों सगरी बात कहिके सेवक होंन की विनती करों ।

यह विचार परमानंदस्वामी अपने मनमें करत हते, इतने में श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखते परमानंदस्वामी सों आज्ञा किये जो—परमानंददास ! कछु भगवल्लीला गावो । तब परमानंददासजीने श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके यह पद गायो :—



राग सारंग—१ कौन बेर भई चलेरी। गोपालें०'। २ जियकी साध जियही रही री०'। ३ 'बहु बात कमलदलनैन की०'।

४ 'सुधि कस्त कमलदलनैन की०'।

या भांति सी परमानंददास ने विरह के पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये। सो सुनिके श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो—परमानंददास ! कछु बाललीला के पद गावो। तब परमानंददास ने हाथ जोरिके श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो—महाराज ! मैं बाललीला में कछु समुझत नाहीं हों।

तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास सों आज्ञा किये जो—तुम श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो; जो हम तुमकों समुझाय देयगें।

पाछें परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो—महाराज ! आपुको सेवक क्षत्री कपूर कहाँ है ? सो तब श्रीआचार्यजी आप कहे जो—कछु सेवा टहल में होयगो। तब परमानंददास श्रीयमुनाजी में स्नान करनकों चले, और श्रीआचार्यजी तो सेवा को समय इतो सो वेगिही उहां ते मंदिर में पधारे। \* और श्रीनवनीतप्रियजा कों जगाये।

---

\* इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि—आचार्यश्री के समय से प्रातः संध्या के अनन्तर भगवत्सेवा करनेकी मर्यादा थी। आजभी बहुतसे गोस्वामि बालक इसी मर्यादानुसार चलते हैं किंतु भगवत्सेवा के समय के पूर्वही आचार्यश्री प्रातःसंध्या कर लेतेथे, जिससे श्रीठाकुरजी के सेवासमय का अतिक्रम एवं परिश्रम न हो। यह बात खास लक्ष्य में रखने की है।



इतने ही में वह क्षत्री जलघरिया श्रीयमुनाजल भरिवे कों गागर लेके श्रीयमुनाजीके पार आयो। सो उनकों देखि के परमानंदस्वामी परम आनंद सों दोऊ हाथ जोरिके भगवत् स्मरण करिके कह्यो, जो— रात्रि कों तुम कृपा करके जागरन में पधारे हते, सो नवनीतप्रियजीने तिहारी गोदि में बैठिके मेरे कीर्तन सुने। सो मैं सोयो तब श्रीनवनीतप्रियजीने दरशन दीयो, और कृपा करिके आज्ञा किये जो—आज मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हूं। तासों तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा करी। सो अब तिहारे दरशन कों आयो हों। तासों अब आप जा प्रकार श्रीआचार्यजी आपु मोकों शरण लेंय और श्रीठाकुरजी कृपा करिके मोकों नित्य दरशन देंय, सो प्रकार कृपा करिके बतावो। और मोकों श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके श्रीकृष्णजी के स्वरूपको दरशन दियो है, सो यह तिहारे सत्संग को प्रताप हैं।

तब यह बात सुनिके क्षत्री कपूरनें उनसों कह्यो जो— तिहारी ऊपर श्रीआचार्यजी की कृपा भई है। तासों तुमको एसो दरसन भयो हैं। और तुमसों आपने आज्ञा करी है, शरण लेवे के लिये, सो जासों तुम बेगिही न्हायके अपरस ही में श्रीआचार्यजी के पास चलो। सो तुमकों प्रभु कृपा करिके शरण लेंयगे, तब तिहारो सब मनोरथ सिद्धि होयगो। और रात्रि कों मैं जागरन में तिहारे पास गयो, सो बात तुम



श्रीआचार्यजीके आगे मति करियो। नांहि तो आपु मेरे ऊपर स्वीजेंगे जो- तू सेवा छोड़िके क्यों गयो हता ?

यह वचन परमानंदस्वामी सों कहिके वा क्षत्री वैष्णव ने तो श्रीयमुनाजलकी गागर भरी, और परमानंददास स्नान करिके अपरसही में श्रीआचार्यजी के पास उन जल-घरिया क्षत्री के पाछे पाछे आये। ता समय श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को शृंगार करिके श्रीगोपीबल्लभ भोग धरिके विराजे हते।

ता समय परमानंददास न्हाय के आये। तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो- परमानंददास ! बेठो। तब परमानंददास श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके बेठे। पाछे श्रीआचार्यजी आपु भीतर पधारि भोग सरायके परमानंददास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी की सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे ब्रह्मसंबंध करवायो। पाछे श्रीभागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये।

सो ताको हेतु यह है जो- प्रथम परमानंददास सों श्रीआचार्यजीने श्रीहरिरायजीकृत कह्यो जो-कछु भगवद् वर्णन करो। तब पर-

भावप्रकाश मानंददासने विरह के पद गाये। पाछे श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों कहे जो- बाल्लीला गावो। सो ताको हेतु यह है जो- बाल्लीला श्रीनंदरायजी के घर की लीला है, सो संयोग रस है। सो एकवार संयोग होय ता पाछे विरह फलरूप होय। सो काहेतें



जो— रासपंचाध्यायी में व्रजभक्तन को बुलायके लीला किये । ता पाछे अंतरध्यान में विरह फलरूप भयो । तासों भगवान कहे—‘यथाऽधनो लब्ध धने विनष्टे तच्चिन्तया०’

जैसे धन पायके धन जाय, तब धन को चिंतन बहोत होय । सो पहले श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—बाललीला गावो । क्यो ? जो—अनुभव करिके विरह को गान वेगि फले । परि परमानंददासने विनती कीनी जो— महाराज ! मैं कछू समुझत नांही हों ।

ताको आशय यह है जो— संयोग रस अब ही है नांही । जो मूल लीला में हतो सो विस्मृत भयो है । परि लीला में तें बिछुरे हैं, और दैवी जीव हैं, तासों विरह जनम ही तें गाये । सो अब नाम समर्पन करायके अज्ञान प्रतिबंध दूरि कियो, ता पाछे श्रीभागवत दसस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये । सो तब साक्षात् श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप को अनुभव भयो और दशम की सगरी लीला स्फुरी ।

परमानंददास को दसम की अनुक्रमणिका सुनाये ताको कारण यह है जो— सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीगुसांईजी प्रकट किये हैं । तामें श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं जो— ‘श्रीभागवत प्रीयूषसमुद्र—मथन क्षमः’ । सो श्रीभागवतको श्रीगुसांईजी अमृत को समुद्र करिके वर्णन किये, सो श्रीआचार्यजी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवतरूपी समुद्र परमानंददास के हृदयमें स्थापन कियो । सो तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदयमें अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवतरूपी समुद्र स्थापन कियो हतो । तासों वैष्णव तो अनेक श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हैं, परंतु सूरदास और



परमानंददास ये दोऊ 'सागर' भये । इन दोऊन के कीर्तनकी संख्या  
नांही, सो दोऊ सागर\* कहवाये ।

सो श्रीआचार्यजीने आज्ञा करी जो— बाललीला गावो । अब  
संयोग रस को अनुभव भयो ।

तब परमानंददासजीने श्रीआचार्यजी के आगे बाल-  
लीला के पद गाये । सो पद—

राग आसावरी—१ 'माइरी ! कमलनैन श्यामसुंदर झूलत  
हैं पलना० '

राग बिलावल—२ ' जसोदा तेरे भाग की कही न  
जाइ० । ' ३ मणिमय आंगन नंद खेलत दोऊ भैया० '

राग कान्हरो—४ ' प्यारे को जस गावत गोपांगना० '

सो ऐसे पद परमानंददासने बाललीला के बहोत ही  
गाये । सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत ही प्रसन्न भये ।  
ता पाछें परमानंददास अडेल में श्रीआचार्यजी के पास रहे ।  
तब श्रीआचार्यजी परमानंददास सों कहें जो—अब समय समय  
के पद नित्य श्रीनवनीतप्रियजी कों सुनायो करो, सो यह  
सेवा तुम कों दीनी ।

तब परमानंददास नित्य नये पद करिके समय समय  
के श्रीनवनीतप्रियजी कों सुनावते । और जब श्रीनवनी-

---

\* परमानंदसागर की हस्तलिखित ३ प्रतियां कांकरोली विद्याविभाग  
में विद्यमान हैं ।



तप्रियजी कों अनोसर होय, तब परमानंददास श्रीआचार्यजी के आगे अनेक ब्रजलीला के कीर्तन करते । और श्रीआचार्यजी आपु श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहते । सो जा समय (जा) प्रसंग की कथा श्रीआचार्यजी के श्रीमुखते सुनते ताही प्रसंग के कीर्तन कथा भये पीछे परमानंददास श्रीआचार्यजी कों सुनावतेX

### वार्ता प्रसंग-२

एक दिन परमानंददासने श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य कथा में श्रीआचार्यजी के श्रीमुखतें सुन्यो । सो ता समय परमानंददासने श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य सहित कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो । सो पद—

राग कान्हरो—‘ चरणकमल वंदों जगदीस० ’

ता पाछे श्रीआचार्यजी के आगे प्रार्थना को पद गायो । सो पद—

राग कान्हरो—‘ यह मागों गोपीजन वल्लभ० ’

सो यह पद परमानंददासने गायो सो सुनिके श्रीआचार्यजी महाप्रभु आपु जाने, जो या पदमें ब्रज के दर्शन की प्रार्थना

---

X इस से ज्यादा कीर्तन की प्रामाणिकता क्या हो सकती है ? इससे दो बात स्पष्ट होती हैं । एक यह जो-कीर्तन में कल्पितता का आरोप नहीं आ सकता है । और दूसरा उस समय जो भी कुछ सांप्रदायिक भाषारूप साहित्य प्रकट होता था, आचार्य के निवेदित होकर ही उसका प्रचार होता था ।



कीनी है। तासों परमानंददास कों ब्रज के दरशन अवश्य करवा-  
वने। तब \*श्रीआचार्यजी आपु ब्रजमें पधारिवे को उद्यम किये।

सो तब दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, परमा-  
नंददास, और यादवेन्द्रदास आदि सब वैष्णवनकों संग लेके  
श्रीआचार्यजी आपु अडेलतें ब्रज कों पधारे।

सो ब्रज कों आवत मारग में परमानंददास को गाम कनौज  
आयो। तब परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों विनती करि  
अपने घर पधराये।

पाछे परमानंददास अपने भाग्य मानिके परम प्रीति सों  
अपने घर पधरायकें सब सामग्री बजारतें लाये। और जो  
वैष्णव हते सो तिनसों बहोत विनती दैन्यता करिके सबनकों  
सीधो सामान देके रसोई करवाई। पाछे श्रीआचार्यजी आपु  
सखड़ी अनसखड़ी पाक सामग्री सिद्ध करिके श्रीठाकुरजी  
कों भोग धरि भोग सराय आपु भोजन किये। ता पाछे पर-  
मानंददास आदि सब वैष्णव कों महाप्रसाद देकें आपु गादी  
तकीयान के ऊपर बिराजे। पाछे परमानंददास महाप्रसाद ले  
आचार्यजी के पास आय दंडवत करिके बैठे। तब आपु आज्ञा  
किये जो परमानंददास ! कछु भगवद्जस गावो।

तब परमानंददास अपने मनमें विचारे जो—या समय श्री  
आचार्यजी को मन तो ब्रजलीला में श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास



हैं। तासों विरह को पद गाऊं, जामें एक एक क्षण कल्प समान जाय। सो पद—

राग सोरठ—‘हरि तेरी लीला की सुधि आवै०’।

यह पद परमानंददासने गायो। सो यामें यह कहें जो—  
‘हरि तेरी लीला की सुधि आवै०’। सो ताही समय श्रीआचार्यजी आपु लीला में मग्न होय गये।

सो तहां श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी को स्वरूप श्रीवल्लभाष्टक में श्रीहरिरायजीकृत वरणन कियो है जो—‘श्रीमद् वृंदावनेंदु प्रकटित भावप्रकाश रसिकानन्द सन्दोहरूप—स्फूर्जद्रासादिलीलामृत० एसे रस सों भरे हैं। और सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आचार्यजी को नाम कहे—‘रसलीलैकतात्पर्याय नमः’। सो श्रीआचार्यजी को कार्य कहियत हैं, जो जो ग्रन्थ किये सो तामें रसलीला ही तात्पर्य है। और कछु काहू बात में आपु को तात्पर्य नांही है। सो तासों रसलीला में मग्न होय गये।

सो ऊपर सरीर को—देह को—अनुसंधान हू रखो नांही। सो तीन दिनलों श्रीआचार्यजी कों मूर्छा रही। सो नेत्र मूदि के गादी तकियान पें बिराजे हते, और दामोदरदास हरसानी आदि वैष्णव (जो) श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप कों जानत हतें सो जाने। सो कोई वैष्णव बोले नांही। बैठे बैठे चुप होय के श्रीआचार्यजी को दरशन कियो करें।



सो काहेतें ? जो जैसे श्रीआचार्यजी आप पूरन पुरुषोत्तम हैं सो श्रीहरिरायजीकृत इनको शरीरधर्म बाधक नाहीं । जो मनुष्य देह भावप्रकाश धारण किये तासों मनुष्य की क्रिया जगत में दिखावत हैं, परि इनको देह को धर्म बाधक नाहीं है । तासों सब सेवक तीन दिनलों बैठे रहे ।

सो पाछे चौथे दिन सावधान होयकें श्रीआचार्यजीने नेत्र खोले, तब सब वैष्णव प्रसन्न भये ।

सो तहां यह पूर्व पक्ष होय जो—रासादिक लीला में मगन तीन श्रीहरिरायजीकृत दिन ताई क्यों रहे ? सो तहां कहत हैं जो—रासा-भावप्रकाश दिक लीला में तीन ही ठोर मुख्य हैं । जो श्री गिरिराज, श्रीवृंदावन और श्रीयमुनाजी । १ श्रीगिरिराज स्वरूप होय सगरी लीला की सामग्री सिद्धि करत हैं । २ श्रीवृंदावनकी लीला रसात्मक कुंजविहार में । ३ और श्रीयमुनाजी सब रास को मूल.

या प्रकार जल स्थल की लीला हैं । सो एक दिन श्रीगिरिराज संबंधी लीला रस को अनुभव किये, जो कंदरा में नाना प्रकार के विलास, चत्रभुजदासजी गायें हैं—‘श्रीगोवर्द्धनगिरि सघन कंदरा०’ आदि । दूसरे दिन वृंदावन लीला, और तीसरे दिन श्रीयमुनाजी की पुलिम (में) रास जलविहारादि । या प्रकार तीन दिनलों तीनों रस को अनुभव किये । ता पाछे भूमि पर भक्तिमार्ग प्रकट करिकें अनेक जीवन को सरन लेकें लीलारस को अनुभव करवावनो है, सो चौथे दिन श्रीआचार्यजी आपु नेत्र खोलिकें सावधान भये ।



तब परमानंददासजी अपने मनमें डरपे, जो-एसो पद फेरि कबहुं नांही गाऊंगो ।

सो परमानंददासजी यासों डरपे जो-श्रीआचार्यजी आपु रस के श्रीहरिरायजीकृत अनुभव करिके कदाचित् लीलारस में मगन भावप्रकाश होइ जांय । सो भूमि पर पधारिवे को मन न करें तो यह दैवीजीवन को उद्धार कौन भांति सों होयगो ? तासों परमानंददासने अपने मन में विचार कियो जो-अब मै फेरि विरह को पद आचार्यजी आगे नांही गाऊंगो ।

सो काहेते ? जो-श्रीआचार्यजी आपु विरहात्मक स्वरूप हैं सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आपु श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं 'जो विरहानुभवैकार्थ सर्वत्यागोपदेशकः' सो विरहरस के अनुभव के अर्थ सर्व लौकिक में त्याग किये, सो उपदेश करत हैं । यामें विरह को स्वरूप जताये । विरह दशा में लौकिक वैदिक की कछू सुधि न रहे, सो तब विरह भयो जानिये ।

ता पाछें परमानंददासने सूधे पद गाये । सो पद-

राग रामकली- 'माईरी ! हौं आनंद मंगल गाऊं०' ।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु भोजन करिके पोदे, तब सब वैष्णव महाप्रसाद लिये । ता पाछें परमानंददास महाप्रसाद लेके श्रीआचार्यजी आगे यह पद गायो-

राग गोरी-१ 'विमल जस वृंदावन के चंदको०' ।

ता पाछे परमानंददासने यह पद गायो । सो पद-



राग सारंग—‘चल सखी ! नंदगाम जाय बसिये०’।

यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो— अब ब्रजकों चलिये ।

पाछें परमानंददासने जो सेवक किये हते, तिन सबन कों श्रीआचार्यजी के पास लाय विनती कीनी जो— महाराज ! इन जीवन कों अंगीकार करिये । तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो—इनकों तुम नाम सुनाय के सेवक किये हैं, तातें अब हम पास तुम इनकों सेवक क्यों करावत हो ?

तब परमानंददास कहे जो—महाराज ! यह तो पहली दशा में स्वामीपनो हतो, तासों सेवक किये हते । और अब तो मैं आपु को दास हों । ‘स्वामीपद’ तो जो स्वामी हैं तिनही को सोहत है । दास होय स्वामीपद चाहे सो मूरख है । तासों में अज्ञान दशा में सेवक किये, सो अब आप इनकों शरन लेके उद्धार करिये ।

तब सबन कों श्रीआचार्यजीने नाम सुनाय सेवक किये । ता पाछे सब वैष्णवन को संग ले कनौज सो ब्रज में पधारे । कछुक दिन में श्रीगोकुल में पधारे । सो गोविंदघाट ऊपर स्नान करिके छोंकर के नीचे श्रीआचार्यजी आपु अपनी बेठक में आय बिराजे । सो एक भीतर बेठक श्रीद्वारकानाथजी के मंदिर के पास है, तहां रात्रि कों श्रीआचार्यजी के विश्राम करिवे की ठोर है । सो आपु जब श्रीगोकुल पधारते, तब आपु उहां



उतरते । सो यह भीतर की बेठक है । सो श्रीआचार्यजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने झुलाय दधिकांदो जन्माष्टमी को उत्सव किये हैं । सो ऊपर गज्जनधावन की वार्ता में वरणन करि आये हैं ।

सो श्रीआचार्यजी आपु स्नान करि छोंकर के नीचे अपनी बेठक में बिराजे हते । तब सब वैष्णव परमानंददास सहित स्नान करि प्रभुन के (श्रीआचार्यजी के) पास बैठे हते । पाछे श्रीआचार्यजीने श्रीयमुनाष्टक को पाठ परमानंददासको सिखाये । तब परमानंददास के हृदय में यमुनाजी को स्वरूप स्फुरयो । सो श्रीयमुनाजी को जस वर्णन कियो । सो पद—

राग रामकली—१ ‘श्रीयमुनाजी यह प्रसाद हौं पाओं०’ ।  
२ ‘श्रीयमुनाजी दीन जान मोहि दीजे०’ । ३ ‘कालिंदी कलि कल्मष—हरनी०’ ।

एसे पद परमानंददासने श्रीआचार्यजी के आगे श्री यमुनाजी के तटपे गाये । तब श्रीआचार्यजी आपु प्रसन्न होय के परमानंददास कों श्रीगोकुल की बाललीला के दर्शन करवाये । सो बाललीला विशिष्ट परमानंददास कों एसे दर्शन भये जो—ब्रजभक्त श्रीयमुनाजल भरत हैं, और श्रीठाकुरजी आपु ब्रजभक्तन सों नाना प्रकारकें ख्याल लीला करि सुख देत हैं । सो परमानंददास लीला के दर्शन करि एसे ही पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये । सो पद—



राग बिलावल-१ 'श्रीयमुनाजल घट भरि ले चली श्री चंद्रावलि नारी०' ।

राग सारंग-२ 'लाल नेक टेको मेरी बहियां०' ।

ता पाछे परमानंददासने श्रीगोकुल की बाललीला के पद बहोत किये । सो जामें श्रीगोकुल को स्वरूप जान्यो परे, सो पद-

राग कान्हरो-१ 'गावत गोपी मधु मृदु बानी०'

२ 'रानी जसुमति गृह आवत गोपीजन०' ।

राग हमीर-३ 'गिरधर सब ही अंग को बांको०'

या भांति परमानंददासने बहोत कीर्तन किये । सो श्री गोकुल के दर्शन करिके परमानंददास कों श्रीगोकुल पे बहोत आसक्ति भई । तब श्रीआचार्यजी के आगे ऐसे प्रार्थना के पद गाये जो-मोकों श्रीगोकुल में आप के चरणारविंद के पास राखो, जासों नित्य श्रीठाकुरजी के दर्शन करों, और सगरी लीला को अनुभव होय । सो पद-

राग सारंग-१ 'यह मार्गों जसोदानंदन०' ।

राग कान्हरो-२ 'यह मार्गों संकर्षन वीर०' ।

सो ऐसे कीर्तन परमानंददासने प्रार्थना के गाये सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये ।

वार्ता प्रसंग-३

पाछे श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सहित सब वैष्णव समाज लेके श्रीगोकुल तें गोवर्द्धन पधारे । सो उत्थापन के समय श्रीआचार्यजी आपु गिरिराज पधारे । तहां स्नान करि



श्रीआचार्यजी श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर पधारे । तब परमानंददास न्हायके श्रीगिरिराज को साष्टांग दंडवत करिके पर्वत के ऊपर मंदिर में आय, उत्थापन के दर्शन किये । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करत ही परमानंददास आसक्त होय रहे । तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखतें परमानंददास सों कहे जो—परमानंददास ! कछु भगवल्लीला के कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी को सुनावो ।

तब परमानंददास अपने मन में विचार किये जो—मैं कहा गाऊं ? क्यों जो रसना तो एक है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप तो अपार है, और इनकी लीला हू अपार है । जो वस्तु स्मरण करों सो ताही में बुद्धि विक्षिप्त होय जात है । परंतु श्रीआचार्यजी की आज्ञा है, तासों कछु गावनो तो सही । सो एसो पद गाऊं जामें प्रथम तो अवतार—लीला, पाछें कुंज—लीला, पाछें चरणाविंद की वंदना, पाछें स्वरूप को वर्णन, ता पाछे माहात्म्य सहित श्रीठाकुरजी की लीला होय । सो एसो पद गायो । सो पद—

राग विलावल-१ ' मोहन नंदरायकुमार० ' ।

सो यह प्रार्थनाको पद गायके पाछे आसक्ति को पद गायो ।

राग आसावरी-२ ' माई मेरो माधो सों मन मान्यो० ' ।

राग गोरी-३ ' मैं अपुनो मन हरि सों जोरचो० ' ।

राग कान्हरो-४ ' तिहारी बात मोही भावत लाल० ' ।

ता पाछे श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन-आरती किये । ता समय परमानंददासने यह पद गायो । सो पद—



राग केदारो-१ 'पोढे रंग महल गोविंद०'

सो एसे पद परमानंददासजीने बहोत गाये, सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पोढायके अनोसर करि पर्वत नीचे पधारे। तब श्रीआचार्यजीने रामदास भीतरिया सों कह्यो जो-परमानंददास कों प्रसादी दूध पठाय दीजो। तब रामदासने वह प्रसादी दूध पठायो। परमानंददास प्रसादी-दूध लेंन लागे, सो तातो लाग्यो। तब सीरो करिके लियो।

पाछे परमानंददास श्रीआचार्यजी पास आय दंडवत करिके बैठे। तब श्रीआचार्यजी आप परमानंददास सों पूछे जो-परमानंददास! महाप्रसादी दूध लियो सो कैसो हतो? तब परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो-महाराज! दूध तो तातो हो। तब श्रीआचार्यजीने सब भीतरियान सों बुलाय के पूछ्यो, जो-दूध तातो क्यों भोग धरत हो? सो आछो सुहातो होय तब भोग धरनो। तब सगरे भीतरियानने कही जो-महाराज! अब तें सुहातो सीरो करिके भोग धरेंगे।

सो परमानंददास कों श्रीआचार्यजी आपु प्रसादी दूध यासों दिवायो, श्रीहरिरायजीकृत जो-श्रीठाकुरजी कों दूध बहोत प्रिय है। तासों

भावप्रकाश सेवक कों दूध निकुंज-लीला संबंधी रस के दान करन कों, और सामग्री बिगरी सुधरी वैष्णव द्वारा श्रीठाकुरजी कहत हैं। जो-सामग्री वैष्णव सराहें तब जानिये जो-श्रीठाकुरजी भली भांति सों अनुभव किये। सो या भावतें दूध पिये।



ता पाछें परमानंददास कों दूध अधरामृत पिये तें सगरी रात्रि लीला-रस को अनुभव भयो । तब रात्रि की लीला में मगन होय के ये पद गाये । सो पद—

राग कान्हरो-१ 'आनंदसिंधु बढ्यो हरि तन में०' ।  
२ 'पिय मुख देखत ही रहिये०' ।

राग गोरी-३ 'कौन रस गोपिन लीनो घूंट०' ।  
४ 'यातें माई ! भवन छांडि बन जइये०' ।

राग हमीर-५ 'अमृत निचोड़ कियो इकठोर०' ।

राग बिहागरो-६ 'यह तन नवलकुंवर पर वारों०' ।

सो या भांति परमानंददासने सगरी रात्रि लीला को अनुभव कियो, सो बहुत कीर्तन गाये । ता पाछे प्रातःकाल भयो, तब श्रीआचार्यजी आपु स्नान करिके पर्वत ऊपर पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगाये । तब परमानंददास ने यह पद गायो । सो पद—

राग रामकली-१ 'जागो गोपाललाल ! देखों मुख तेरो०' ।  
२ 'लाल को मुख देखन कों आई०' । ३ 'ग्वालिन पिछवारे व्हे बोल सुनायो०' ।

सो या प्रकार के पद परमानंददासने बहोत गाये । ता पाछे श्रीआचार्यजीने परमानंददास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा दीनी । सो नित्य नये पद करिके परमानंददास श्रीनाथजी कों सुनावते ।



### वार्ता प्रसंग-४

एक दिन\* एक राजा अपनी रानी को संग लेके ब्रज में यात्रा करिवे आयो । वह राजा श्रीआचार्यजी को सेवक हतो । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिके डेरान में आयके वा राजानें अपनी रानी सों कह्यो जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी को दर्शन बहुत सुंदर है, सो तू श्रीगिरिराज पर जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिआव ।

तब रानीने राजा सों कह्यो जो—जैसे हमारी रीत है सो परदान में दर्शन होय तो मैं करूं । तब राजा ने रानी सों कही जो—ये ब्रज के ठाकुर हैं सो श्रीठाकुरजी के दर्शन में परदा को कहा काम है ? सो ये ठाकुर ब्रज के हैं सो काहूको परदा राखत नांही ।

या प्रकार राजाने रानी कों बहोत समझाई, पर रानीने राजा को कह्यो मान्यो नांही ।

तब राजाने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो—महाराज ! मैंने रानी कों बहोत समझायो, परंतु वह मानत नांही, जो वह परदा में दर्शन कियो चाहत है ।

तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—वाको परदा में ही ले आव, जो सबतें पहले दर्शन करवाय देंगे । तब रानी परदान में आई और श्रीनाथजी के दर्शन करन लागी । तब श्रीनाथजी ( भक्तोद्धारक स्वरूप सों ) सिंहासन सों उठिके सिंहपोरि के



किंवाड खोलि दिये, सो भीड वा रानी के ऊपर परी ।  
 सो वाके देह के सब वस्त्र निकसि गये । तब रानी बहुत  
 लज्जित भई । जब राजा सों रानी ने डेरान में आयके  
 सब समाचार कहे । तब राजाने रानी सों कही जो—मैं तोसों  
 पहले ही कह्यो हतो, जो—ये श्रीनाथजी ब्रज के ठाकुर हैं, सो  
 इनने काहूको परदा राख्यो नांही है ।

ता समय परमानंददास यह पद गावत हते, सो वाकी  
 एक तुक कही हती । सो पद :—‘कोन यह खेलिवे की बान,  
 मदनगोपाललाल काहूकी राखत नांहिन कान० ।’

सो यह सुनिके श्रीआचार्यजी परमानंददास कों बरजे जो—  
 ऐसे न कहिये, यासों ऐसे कहो जो— ‘भली यह खेलिवे  
 की बान’ ।

सो काहेतें ? जो अब ही परमानंददास कों दास पदवी दिये हैं ।  
 श्रीहरिरायजीकृत सो दासभाव सों रहे, और बोले, तो प्रभु आगे कृपा  
 भावप्रकाश करें । जब परम भाव दृढ होय, तब बराबरी सों  
 वार्ता होय । तासों बिना अधिकार अधिक भाव नांही है । जो करे तो  
 नीचे गिरे । सो जब श्रीठाकुरजी सरल भाव को दान करें, तब ही बने ।

दूसरो आशय—श्रीआचार्यजी आपु अपनो स्नेह श्रीगोवर्द्धननाथजी  
 में राखे सो सर्वोपरि दिखाये, जो—स्नेही सों ऐसे न बोले । जो  
 कार्य सनेही प्रीति सों न करे सो तासों हू कहिये जो—भलो कार्य किये ।  
 एसी सनेह की रीति है ।



तासों श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास को बरजे—‘कौन यह खेलिवे की बान०’ या भांति सों कबहू न कहिये। कहिवे, बरजिवे लायक तो ब्रजभक्त हैं, सो तासों चाहैं तैसैं बोलैं। तासों तुम ऐसे कहो जो—‘भली यह खेलिवे की बान०’

तब परमानंददासने एसै ही पद गाये। सो पद—

राग सारंग—‘भली यह खेलिवे की बान०’।

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये।

या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानंददासने किये। तासों परमानंददास के पदन में बाललीला भाव, (और) रहस्य हू श्लक्त है। सो जा लीला को अनुभव परमानंददास को भयो, ताही लीला के पद परमानंददास गाये। परंतु श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास को बाललीला रस को दान हृदय में कियो है, तासों बाललीला गूढ पदन में हू श्लक्त है।

### वार्ता प्रसंग-५

और एक दिन सगरे भगवदीय सूरदासजी, कुंभनदासजी तथा रामदास आदि सब वैष्णव मिलिके जहां परमानंददास रहत हते तहां इनके घर आये। सो सब भगवदीय को अपने घर आये देखिके परमानंददास अपने मन में बहोत प्रसन्न भये जो—आज मेरो बडो भाग्य है। सो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिके पधारे, ये भगवदीय कैसे हैं जो—साक्षात् श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप ही हैं। तासों आज मो ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजीनें बडी कृपा करी है।



सो काहेतें ? जो—अनेकरूप होयके श्रीठाकुरजी मेरे घर पधारे हैं।  
 श्रीहरिरायजीकृत सो भगवदीय के हृदय में श्रीठाकुरजी आपु  
 भावप्रकाश विराजत हैं, तासों मेरे बडे भाग्य हैं। अब  
 मैं कृतकृत्य होय गयो, जो सब भगवदीय कृपा किये हैं। सो प्रथम  
 तो इन भगवदीयन की न्योछावरि करी चाहिये। सो एसी कहा  
 वस्तु है ? जासों सब भगवदीयन की न्योछावर होंय।

पाछे परमानंददासने भगवदीय वैष्णवन सों मिलिके  
 ऊंचे आसन बेठारिके यह पद गायो। सो पद—

राग बिहागरो— १ ‘आये मेरे नंदनंदन के प्यारे०’।

ता पाछें दूसरो पद गायो। सो पद—

राग बिहागरो— २ ‘हरिजन-संग छिनक जो होई’।

सो एसे पद परमानंददासने गाये। सो सुनिके सब भग-  
 वदीय परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। तब परमा-  
 नंददासने सब वैष्णवन सों बिनती कीनी, जो—आजु कृपा करिके  
 मेरे घर पधारे सो कछु आज्ञा करिये। तब रामदासजीने पूछी,  
 जो—परमानंददास ! ब्रज में सगरो प्रेम ब्रजभक्तन को हैं, सो  
 श्रीनंदरायजी, गोपीजन, ग्वाल, सखान को। तामें सब तें श्रेष्ठ  
 प्रेम किन को है ?

सो काहेते ? जो—तिहारी बाललीला में लगन बहुत है। ओर  
 श्रीहरिरायजीकृत तुम कृपापात्र भगवदीय हो, तासों यह  
 भावप्रकाश संदेह है सो दूरि करो। सो या प्रकार  
 रामदासजीने परमानंददास सों यो पूछी जो—श्री आचार्यजीके अभिप्रायमें



तो गोपीजनको प्रेम बहोत है । और परमानंददासने नंदालय की लीला और बाललीला बहोत वर्णन किये हैं, तासों श्रीआचार्यजी के हृदय के अभिप्राय की खबरि परीके नांही ? तासों परमानंददास की परीक्षा लेनी ।

ता समय परमानंददासने यह पद गायो । सो पद—

राग नायकी—१ ‘गोपी प्रेमकी ध्वजा०’ ।

राग कान्हरो—२ ‘ब्रजजन सम धर पर कोउ नांही०’ ।

सो यह पद परमानंददासने गाये । तब सगरे वैष्णव कहे जो—परमानंददास ! तुम धन्य हो ।

या प्रकार सगरे वैष्णव प्रसन्न होयके परमानंददास की सराहना करत बिदा होय अपने घर आये । ता पाछे परमानंददासने बहोत दिन ताई श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा कीनी ।

### वार्ता प्रसंग-६

ता पाछे एक दिन परमानंददास श्रीगुसांईजी के और श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शनकों गोपालपुर तें श्रीगोकुल आये, सो दर्शन करिके रात्रि तहां रहे ।

पाछे प्रातःकाल श्रीगुसांईजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे तब परमानंददासकों बुलाये । तब परमानंददास आगे आय दंडवत किये । सो तब श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों कहे जो—श्रीठाकुरजी कों सगरी लीला ब्रज की बहोत प्रिय है । सो नित्यलीला ब्रज की श्रीठाकुरजी कों सुनावे, सो तो कोई काल में हू पार पावे नांही । सो काहेतें ?



जो-एक लीला को पार पैये, तो सगरी लीला कोन गावे ।  
परंतु मै एक कीर्तन करि देत हों, तामें सगरी ब्रज की लीला  
को अनुभव है । सो तुम या समय नित्य गाईयो ।

तब परमानंददास कहे जो-महाराज ! वह पद कृपा करि  
के बताइये । सो श्रीगुसांईजी तो मारग के चलायवे वारे हैं  
सो भाषा के पद करे नांही\* । तासों संस्कृत में कीर्तन  
गायो । सो पद—

१ 'मंगल मंगलं ब्रजभुवि मंगलम्'० ।

सो यह पद श्रीगुसांईजी आपु गायके परमानंददास कों  
गवाये । सो परमानंददास 'मंगल मंगलं०' गाये । तब  
मंगलरूप परमानंददास ने और हू पद गाये । सो पद—

राग भैरव—१ 'मंगल माधो नाम उच्चार'० ।

सो यह पद परमानंददासने गायो, ता पाछें श्रीगुसांईजी  
आपु मंगल भोग सरायके मंगला आरती किये । ता समय  
परमानंददासने यह पद गायो । सो पद—

राग भैरव—'मंगल आरती करि मन मोर०'

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी कृत 'मंगल मंगलं०' के अनु-  
सार परमानंददासने बहोत कीर्तन किये, और श्रीगुसांईजी  
कृत मंगल मंगलं० पद नित्य गावते ।

\* इस विषयमें देखो 'पुष्टिमार्गीय भक्तकवि' नामक ग्रन्थ । विद्याविभाग कांकरोली ।



यामें सगरी ब्रजलीला है, सो ठाकुरजीको नित्य सुनावत हैं, । और  
 श्रीहरिरायजीकृत मंगल मंगलं० के पाठतें ब्रजलीला को सब  
 भावप्रकाश पाठ होय । सो तहां मंगला को पद परमा-  
 नंददासने कियो सो तामें कहे—‘मंगल तन वसुदेवकुमार०’ । सो तहां  
 यह संदेह होय जो—परमानंददास तो नंदनंदनके उपासक हैं । सो  
 वसुदेवकुमार ब्रजलीलामें कहे, ताको कारन कहा ?

तहां कहत है, जो—वेणुगीत और युगलगीत में ‘देवकीसुत’ गोपिकान  
 ने कहे, सो ये कुमारिकाके भावतें । सो काहेतें ? जो—कुमारिका श्रीयशो-  
 दाजी कों माता कहते, तासों श्रीठाकुरजी में पतिभाव है । याही  
 सों वसुदेव—सुत कहि पतिभाव दृढ करत हैं । जो यशोदा सुत कहें,  
 तो भाइ वहन को भाव होय ।

पाछे परमानंददास श्रीगोवर्द्धनधर के दर्शन कों श्रीगोकुल  
 तें श्रीगिरिराज आये । सो तहां मंगला आरती पहलें ‘मंगल  
 मंगलं०’ पद परमानंददासनें गायो । सो तब तें\* श्रीगोवर्द्धनधर  
 के यहां ‘मंगल मंगलं०’ की रीत भई । सो वे परमानंददास ऐसे  
 कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-७

और जब जन्माष्टमी आवती तब श्रीगुसांईजी आपु श्री-  
 नवनीतप्रियजी को पंचामृत स्नान करवायके शृंगार करि  
 श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर पधारिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के

\* सं. १६०५ के आसपास में



शृंगार करते । ता पाछे राजभोग सों पहुँचिके फेरि श्री गिरिराज तें श्रीगोकुल आवते । सो तहां श्रीनवनीतप्रियजी कों मध्यरात्रि कों जन्म की रीति करिके पलना झुलाय श्री नाथजी के यहां नंदमहोत्सव करते ।

सो जब जन्माष्टमी आई, तब श्रीगुसांईजी आप परमानंददासजी को संग लेय के श्रीगिरिराज सों श्रीगोकुल पधारे । सो जन्माष्टमी के दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराये । ता समय परमानंददासने यह बधाई गाई । सो बधाई—

राग धनाश्री— १ ‘ मिलि मंगल गावो माई० ’

ता पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीनवनीतप्रियजी के शृंगार करिके तिलक कियो, ता समय परमानंददासने यह पद गायो । सो पद—

राग सारंग— १ ‘ आज बधाई को दिन नीको० ’ ।

२ ‘ घरघरतें ज्वाल देत है हेरी० ’ ।

या प्रकार परमानंददासने बहोत पद गाये । ता पाछे अर्द्धरात्रिके समय श्रीगुसांईजी आपु जन्म करायके श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने में पधरायके श्रीनंदरायजी श्रीयशोदाजी, गोपी ज्वाल को भेष धराये । ता समय परमानंददासने यह पद गायो । सो पद—

राग धनाश्री— १ ‘ सोवन फूलन फूली जसोदा० ’ ।



सो या पदमें परमानंददासजी यह कहे जो—‘ एसे दशक होय श्रीहरिरायजीकृत जो ओरे सब कोऊ सुख पावे ’ । सो भगवदी-भावप्रकाश यनके वचन सत्य करिवे के लिये श्रीगुसांईजी के बालक सातों और श्रीगुसांईजी तथा श्रीआचार्यजी तथा श्रीगोवर्द्धननाथजी सो ये दस स्वरूप प्रकट होयके सबको सुख दिये हैं । सो ‘सब’ माने सगरे दैवी पुष्टिमार्गीय । सो या प्रकारसों भाव सहित परमानंददासजीने कीर्तन गाये ।

पाछें श्रीनंदरायजी और गोपी ग्वाल वैष्णवनके जूथ अपने लालजी सब ( कों ) लेके दधिकांदो किये । तब परमानंददास को चित्त आनंद में विक्षिप्त होय गयो । वा समय परमानंददास नाचन लागे और यह पद गायो । सो वा प्रेम में परमानंददास रागको हू क्रम भूलि गये । सो रात्रिको तो समय और सारंग में गाये । सो पद—

राग सारंग— ‘ आजु नंदराय के आनंद भयो० ’

यह पद गाये पाछे परमानंददास प्रेम में मूर्छा खायके भूमि में गिरि पडे । तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तकमल सों परमानंददास कों उठायके अंजुलि में जल लेके वेदमंत्र पढिके आपु परमानंददास के ऊपर छिरके । सो तब उच्छलित प्रेम जो विकल करतो, सो हृदय में स्थिर भयो । सो परमानंददास सगरी लीला को अनुभव किये, और गान किये ।



या प्रकार परमानंददास के उपर श्रीगुसांईजीने कृपा करी । ता पाछे यह पद पलना को परमानंददासने गायो । सो पद—

राग बिलावल— १ ‘हालरो हुलरावत माता०’ ।

सो या भांति सों ‘अखिल भुवनपति गरुडगामी’ ऐसे परमा-  
श्रीहरिरायजीकृत नंदजीने कह्यो । सो अखिल भुवन—पति यातें  
भावप्रकाश जो श्रीभगवान गरुड प विराजमान सो (तो)  
सब जगतके पति है, और नंदसुवन सबन के ठाकुर, सो परमानंद-  
दासने कही, जो—ये मेरे स्वामी हैं ।

सो यह कीर्तन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास  
की उपर बहोत प्रसन्न भये । ता पाछे परमानंददासने यह  
पद कान्हरो राग में करिके गायो । सो प्रेम में राग को क्रम  
नांही, लीला को क्रम । सो जेसी लीला करी, सो स्फुरी । सो  
तैसी परमानंददास गाये । सो पद—

राग कान्हरो— १ ‘रानी तिहारो घर सुबस बसो०’

सो यह असीस को पद परमानंददासने गायो । तब  
श्रीगुसांईजी आपु अपने पुत्र श्रीगिरधरजी कों श्रीनवनीतप्रियजी  
के पास राखिके दधिकांदों किये ।

ता पाछे परमानंददास को संग लेके श्रीगुसांईजी आपु



श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये । सो दधिकांदों देखिके परमानंददास लीलारस में मग्न होय गये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजीकों राजभोग धरिके बाहिर आये । तब श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास की अलौकिक दशा देखिके कहे जो-जैसे कुंभनदास को किशोर लीला में निरोध भयो, सो तैसे बाललीला में परमानंददास को निरोध भयो है ।

पाछे परमानंददास श्रीगुसांईजीकों दंडवत करि, पर्वत तें अंतिम समय नीचे उतरे सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजाकों दंडवत करि, सुरभीकुंड ऊपर आयके अपने ठिकाने कुटीमें आय बोलिवो छोडि दियो । सो नंद-महोत्सव के रस में मग्न होयके परमानंददास अपनी देह छोडिवे को विचार करि के सुरभीकुंड ऊपर आयके सोये । और यहां श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की राजभोग आरती करिके अनोसर करवाये ।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु सेवकन सो पूछे जो-आज राजभोग आरती के समय परमानंददास को नांही देखे, सो कहां गये ?

तब एक वैष्णवने श्रीगुसांईजी सों आय विनती कीनी जो-महाराज ! परमानंददासजी तो आजु विकल से दीसत हैं, और काहू सों बोलत नांही, और सुरभीकुंड पैं जायके



सीये हैं । तब श्रीगुसांईजी आपु वा वैष्णव को संग ले सुरभी कुंड ऊपर पधारिके परमानंददास के पास आये । सो पर-  
नंददास के माथे पर श्रीहस्त फेरिके श्रीगुसांईजी आपु परमानंद-  
दास सों कहे जो—परमानंददास ! हम तिहारे मनकी जानत हैं ।  
जो अब तिहारो दरसन दुर्लभ भयो । तब परमानंददास उठिके  
श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत किये । ता समय यह पद  
परमानंददासने गायो । सो पद—

राग सारंग—‘ प्रीति तो श्रीनंदनंदन सों कीजे० ’ ।

सो यह पद परमानंददासने श्रीगुसांईजी को सुनायो ।

सो परमानंददासजीने या पदमें श्रीगुसांईजीसों प्रार्थना कीनी,  
श्रीहरिरायजीकृत जो—प्रीति हू तुमसों करना सो सदा कृपा  
भावप्रकाश एक रस करो । सो परम कृपालु, अपने  
हस्त कमलकी छायातें जनकों राखत हैं । या समय हू मोकों दरशन देय  
मेरे मस्तक ऊपर श्रीहस्तकमल धरे । सो मेरे अंतःकरणमें जो मेरो मनोरथ  
हतो सो पूरन किये । सो वेद पुरान सबही कहत है जो—सदा भक्तनको  
भायो करि भक्तनको आनंद दिये हैं ।

जैसे एक समें इन्द्रकी पदवी लायक जीव कोई न देखे तब भग-  
वान ही इन्द्र होयके इन्द्रको कार्य चलाये । सो प्रसाद वैष्णव सुदामा  
भक्त कों दिये । तामें सुदामा को वैभव पाये हू मोह न भयो ।  
सो तेसैं आपु जो ब्रज में लीला करत हैं सो—परमानंदरूप सों कृपा करिके



मोकों दान दिये । सो आपके गुन में कहां तई कहौं । सो एसी प्रार्थना परमानंददासजी श्रीगुसांईजी सों किये ।

यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आपु बहोत प्रसन्न भये । ता समय एक वैष्णव नें परमानंददास सों कह्यो, जो मोकों कुछ साधन बतावो सो मैं करों । तातें श्रीठाकुरजी आपु मेरे ऊपर प्रसन्न होयके कृपा करें ।

तब परमानंददास वा वैष्णव सों प्रसन्न होयके कहे जो—तुम मन लगाय के सुनो । जो सुगम उपाय है सो मैं कहूं । या बात को मन लगायके सुनोगे तो फलसिद्धि होयगी । सो या प्रकार प्रीति सों समाधान करिके परमानंददासने एक पद वा वैष्णव कों सुनायो । सो पद—

राग भैरव—‘ प्रात समे उठि करिये श्रीलक्ष्मनसुत गान० ’

सो या प्रकार यह कीर्तन परमानंददासने गायो । यह सुनिके श्रीगुसांईजी और सगरे वैष्णव प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों पूछे जो— परमानंददास ! अब तिहारो मन कहां है ? तब परमानंददासने यह कीर्तन सारंग राग में गायो । सो पद—

राग सारंग—१ ‘ राधे बेठी तिलक संमारति० ’ ।

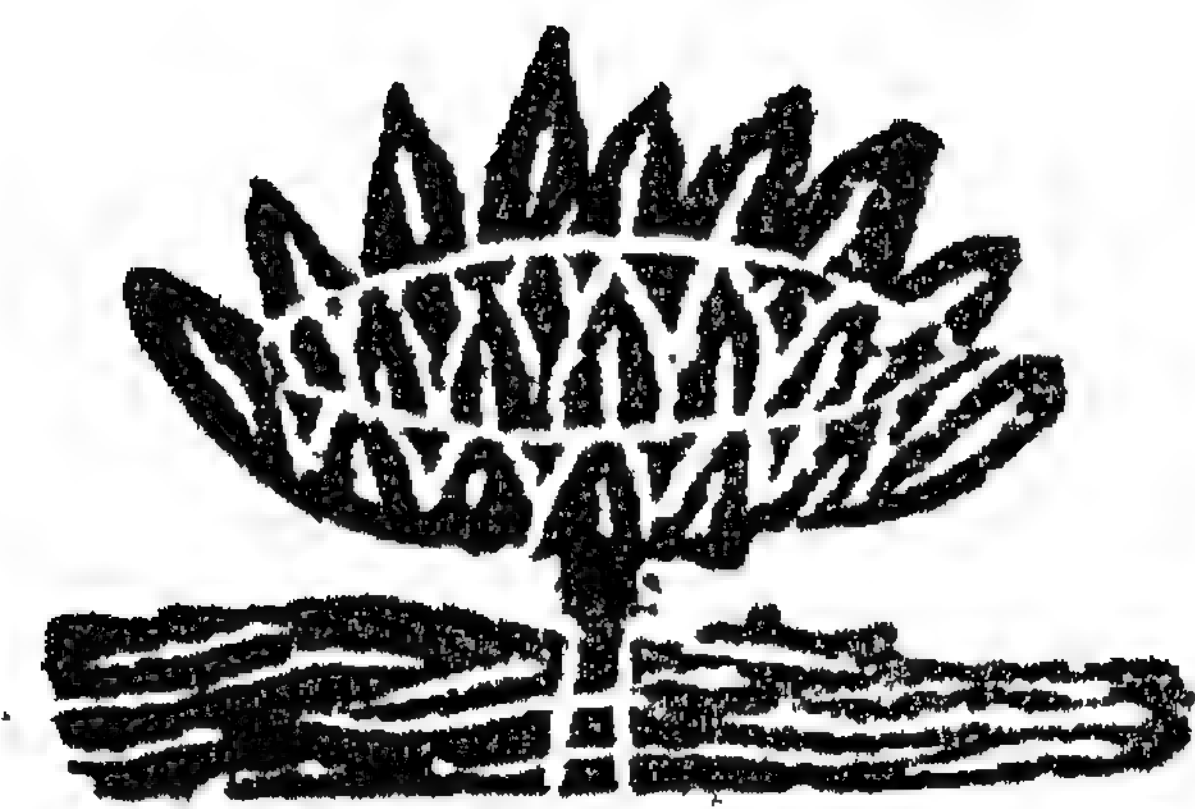
सो या प्रकार जुगल स्वरूप की लीला में मन लगायके परमानंददास देह छोडिके श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला में जायके प्राप्त भये ।



पाछे श्रीगुसांईजी गोपालपुर में आयके स्नान करि पर्वत के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी को उत्थापन कराये । पाछे से पर्यंत सेवा सों पहोंचिके अनोसर करवाय पर्वत तें उत अपनी बैठक में आय बिराजे । तब सब वैष्णवननं परमानंददा की देह कों अग्निसंस्कार कियो और पाछे गोपालपुर में अ के श्रीगुसांईजी के आगे बहोत बडाई करन लागे ।

सो ता समय श्रीगुसांईजी आपु उन वैष्णवन के अ यह वचन श्रीमुख सों कहे, जो-ये पुष्टिमार्ग में दोइ 'सार' भये । एक तो सूरदास और दूसरे परमानंददास । सो तिन कों हृदय अगाध रस, भगवल्लीला रूप जहां रत्न भरे हैं सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास व सराहना किये ।

सो वे परमानंददासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपाप भगवदीय हते । जिन के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी सदा प्र रहते । तातें इनकी वार्ता को पार नांही सो अनिर्वचनीय सो कहां ताई कहिये ।





## (३) श्रीकुंभनदासजी



अब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुन के सेवक कुंभन-  
दासजी गोरवा क्षत्री, जमुनावते में रहते,  
तिनकी वार्ता—



श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

ये कुंभनदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के 'अर्जुन' सखा अंतरंग  
तिनको प्राकट्य हैं । सो दिवस की लीला में  
आधिदैविक तो अर्जुन सखा है और रात्रि की लीला में  
मूल स्वरूप विशाखा सखी हैं, सो श्रीस्वामिनीजी की । सो  
तिनको (विशाखाजीको) दूसरो स्वरूप कृष्णदास  
मेघन, सदा पृथ्वीपरिक्रमा में श्रीआचार्यजी के संग रहते, और कुंभन-  
दासजी सदा श्रीगोवर्द्धननाथजी के संग रहते । सो या भावतें कुंभन-  
दासजी सखाभावमें अर्जुन सखारूप, और सखीभावमें विशाखारूप  
हैं । सो गिरिराज में आठ द्वार हैं । तामें एक द्वार आन्योर पास है ।  
सो तहां की सेवा के ये मुखिया हैं ।

और गाम को नाम 'जमुनावता' यासों कहत हैं, जो—श्रीयमुनाजीके  
प्रवाह, सारस्वत कल्पमें दौय हते । एक तो जमुनावता होय के आगे



के पास जात हतो, और एक चीरघाट होय श्रीगोकुल होय के ।  
दोऊ धारा एक मिलि सारस्वत कल्प में बहती ।X

और ता समय आगरा आदि गाम नांही हतो । दोऊ धारा एक मिलि  
आगे कों गई हती । सों चीरघाट तें धारा होयके गिरिराज आवत  
तासों पंचाध्याई को रास 'परासोली' में चंद्रसरोवर ऊपर किये ।  
व्रजभक्त, अंतरध्यान के समय चंद्रसरोवर सों द्रुमलतान सों पूछ  
चली । सो गोविंदकुंड के पास होयके अप्सराकुंड ऊपर आय  
श्रीठाकुरजी के चरणारविंद के दर्शन भये । तासों अप्सराकुंड ऊपर  
चरनचिन्ह हैं ।

तहां ते आगे चलिके राधा सहचरी की बेनी गुही, सो सिंदूर  
काजर सगरो शृंगार+ कियो तासों वहां सिंदूर, कजली और बाजनी सिंदूर  
है । ता पाछे जब रुद्रकुंड ऊपर आयके राधा सहचरी को मान भये  
सो श्रीठाकुरजी सों कह्यो जो—मोसों तो चल्यो नांही जात है । त  
श्रीठाकुरजी के कांधे चढ़न के मिष वृक्ष तरे ही अंतर्ध्यान भये । तब  
राधा सहचरी रुदन कियो, जो—

---

X गो. ति. श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज आज्ञा करते थे, कि—लीला में  
श्रीयमुनाजी की सौ धारा है और श्रीगोवर्द्धन पर्वत के शिखर भी सौ है ।  
परंतु अब पृथ्वी पर तीन ही शिखर प्रकट दर्शन देते हैं । ऐसे श्रीयमु-  
नाजी धारा भी एक ही विद्यमान हैं ।

+ यह स्थल आज भी 'शृंगार स्थल' के नाम से प्रसिद्ध है जहां  
लीलास्थ गोस्वामिबालकों के तुलसीव्यास और समाधियाँ हैं ।



‘हा नाथ रमणप्रेष्ठ क्वासि २ महाभुज !

दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्’ ।

तासों वा कुंड को नाम ‘रुद्रकुंड’ है । सो अब तांई लोग वासों रुद्रकुंड कहत है । पाछें तहां सब गोपी आय मिली । पाछे आगे चलि के ‘जान’ ‘अजान’ वृक्ष सों पूछते पूछते जमुनावता श्रीजमुनाजी की पुलिन में गोपिका गीत ( ‘जयति तेऽधिकं’ ) गाय के सब भक्तनने रुदन कियो ।÷ तब श्रीठाकुरजी आपु प्रकट होय के फेरि ‘परासोली’ चंद्रसरोवर पैं रास किये, सो श्रम भयो । तब श्रीयमुनाजी के जल में जलविहार किये । सो या प्रकार सारस्वतकल्प की पंचाध्याई को रास श्रीगिरिराज के पास है ।\*

और व्रजभक्त ढूँढत २ श्रीठाकुरजी के मिलनार्थ दूरि गई । सामई ओर श्यामढाक सो अंधियारो देखि के उहांते फिरे ।

‘तमः प्रविष्टमालक्ष्यततो निववृतु हरेः’ । । इति ।

सो यह अंधियारो श्यामढाक के आगे ‘सामई’ गाम हैं । सो तहां श्यामवन है, सो महासघन । ताते वहां पंचाध्याई के अनुसार सगरे स्थल दर्शन देत हैं ।

÷ इसी भाव से आजभी गोस्वामिबालक व महानुभाव भक्तगण श्रीगिरिराजकी परिक्रमा करते हैं ।

\*इस प्रसंग का श्रीवल्लभाचार्यजी कृत रासप्रकरण कीपंचाध्याय सुबोधिनी और नंददासजीकृत भाषा पंचाध्यायी से मिलान कीजिये ।



और कालीदह के घाट तें हू श्रीवृंदावन कहत हैं । तहां हू बंसीबट है । तहां अनेक श्वेतवाराह कल्प में पंचाध्याई को रास उहां ही किये हैं । और सारस्वतकल्प में शरद ऋतु किए सो 'परासोली' श्रीगिरिराज ऊपर किये । पाछें वसंत चैत्र वैशाख को रास केसीघाट पास बंसीबट नीचे किये ।+ सो या प्रकार रास दोऊ ठिकाने । परंतु मुख्य पंचाध्याई सारस्वत कल्प को रास गिरिराज को ।

या प्रकार लीला के भेद हैं । तासों 'जमुनावता' में एक धारा श्रीयमुनाजी की सारस्वतकल्प में वहती, तासों वा गाम को नाम 'जमुनावता' है । सो नंदगाम बरसाने के मध्य संकेत पास धारा होयके श्रीयमुनावता आई । तासों संकेत के पास श्रीयमुनाजी के पधारिवे को चिन्ह हैं ।×

सो या प्रकार यातें कह्यो जो—अबके जीव को विश्वास दृढ होत नांही है । सो सब चिन्हनकों देखे, सुने तब विश्वास होय । और जब फल सिद्ध होय, तब भाव बढे, तासों खोलिके कहे ।

### वार्ता प्रसंग-१

सो जमुनावता में कुंभनदास रहते । सो परासोली चंद्र-सरोवर के ऊपर कुंभनदास के बापदादान के खेत हते\* तहां

+ इसीसे दोनो स्थलों में श्रीआचार्यजी विराजते थे ।

× श्रीयमुनाजी के पधारने का एसाही चिन्ह 'पूछरी' परभी अभीतक विद्यमान है ।

\* अबभी ये खेत और पेड़ विद्यमान है जहां श्रीनाथजी खेलते थे । ये खेत चंद्रसरोवर से कुछ दूर श्रीनाथजी के बगीचा के पास हैं ।



कुंभनदास खेती करते । सो परासोली में कुंभनदास खेत अर्थ बहोत रहते होते । उन कुंभनदास को बालपने में गृहासक्ति नांही, और झूठ बोलते नांही, और पापादिक कर्म नांही करते । सूघे ब्रजवासी की रीति सों रहते ।

सो जब कुंभनदास<sup>x</sup> बड़े भये । तब 'जेत' (गांव) के पास बहुलावन है तहां कुंभनदास को ब्याह भयो, सो स्त्री साधारन आई, लीला-संबंधी तो नांही । परंतु कुंभनदासजी सरिखे वैष्णव भगवदीयन को संग निष्फल जाय नांही, सो उद्धार होयगो । परंतु अब ही श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिराज ऊपर प्रकटे नांही । जब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिराज ऊपर प्रकट होयके श्री-आचार्यजी को अपने पास बुलावेंगे, तब श्रीआचार्यजी आपु सरन छेयगें, और तब ये भगवदीय प्रसिद्ध होयगें ।

सो एक समय श्रीआचार्यजी आपु पृथ्वी-परिक्रमा करत दक्षिन में झारखंड में पधारे । सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्री-आचार्यजी सों कहे जो-हम श्रीगोवर्द्धन में प्रकटे हैं, सो आपु यहां आयके हम को बाहिर पधरायके हमारी सेवा जगत में प्रकट करि प्रकास करो ।

तब श्रीआचार्यजी आपु पृथ्वीपरिक्रमा उहां झारखंडम राखिके सूघे ब्रज को पधारे । तब दामोदरदास हरसानी,

---

<sup>x</sup> कुंभनदासजी के काका का नाम धरमदास था । कुंभनदासजी का जन्म सं. १५२५ में हुआ था ।



कृष्णदास मेघन, माधवभट्ट, नारायणदास और रामदास सिकंदरपुरवारे ये पांच सेवक श्रीआचार्यजी के संग होते। सो तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत के नीचे 'आन्योर' में 'सदूपांडे' के द्वारपे एक चोतरा हतो तापे आय बिराजे।

पाछें श्रीगोवर्द्धननाथजी के प्राकट्य को प्रकार श्रीआचार्यजी सदूपांडे, और उनके भाई माणिकचंद पांडे, नरो भवानी, ये सब सेवक भये होते तिन सों पूछ्यो। सो सब प्रकार ऊपर सदूपांडे की वार्ता में कहि आये हैं।

पाछें रामदास चौहान पूछरी के पास गुफा में रहते सो सेवक भये, तिन कों श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सोंपी। सो रामदास ब्रजवासी आदि औरहू सेवक भये। सो कुंभनदास 'जमुनावता' गाम में रहते। तहां ये समाचार सुने जो एक बड़े महापुरुष 'अन्योर' में आये ह। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीठाकुरजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत म सों प्रकट करे हैं, और सदूपांडे आदि ब्रजवासी बहोत लोग सेवक भये है।

तब कुंभनदास सुनिके अपनी स्त्री सों कहे जो—'आन्योर में चलिके श्रीआचार्यजी के सेवक हजिये, सो इनकी कृपातें श्रीठाकुरजी कृपा करेंगे। सो तब स्त्रीने कही, जो—महू चलूंगी, जो मेरे कोई संतति बेटा नहीं है, सो वे महापुरुष देंय तो होय।

सो या प्रकार बिचार करिके दोऊ जनें श्रीआचार्यजी



के पास आयके दंडवत करी । सो तब श्रीआचार्यजी आपु पूछे जो-कुंभनदास ! आये ? सो तब कुंभनदासने दंडवत करि बिनती करी जो-महाराज ! बहोत दिनते भटकतो हतो, सो अब आपु मो ऊपर कृपा करो । सो कुंभनदास तो दैवीजीव हैं, सो श्रीआचार्यजी के दरशन करत ही श्रीआचार्यजी के स्वरूप को ज्ञान होय गयो ।

तब श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदास सों कहे जो-तुम स्त्री पुरुष दोउ जने न्हाय आवो । तब दोऊ जने संकर्षणकुंड में न्हायके श्रीआचार्यजी के पास आये । तब श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदास और उनकी स्त्री कों नाम सुनायो ।

तब वा स्त्रीने आचार्यजी सों बिनती करी जो-महाराज ! आपु बडे महापुरुष हो, मेरे बेटा नांही है, तासों आपु कृपा करिके देऊ । तब श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके प्रसन्न होयके कहे जो-तेरे सात बेटा होयगें, तू चिंता मति करे । सा तब वह स्त्री अपने मन में बहोत प्रसन्न भई ।

तब कुंभनदासन अपनी स्त्री सों कही जो-यह कहा तेने श्रीआचार्यजी के पास मांग्यो । जो श्रीठाकुरजी मांगती तो श्रीठाकुरजी देते । तब वा स्त्रीने कही जो-मोको चहियत हतो सो मने मांग्यो, और जो तुम को चाहिये सो तुम मांगि लेहु ।

तब कुंभनदास चुप होय रहे । ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धनधर को छोटी सो मंदिर बनवायके ता मंदिर



में श्रीगोवर्द्धनधर कों पधरायके रामदास चौहान कों सेवा की आज्ञा दीनी ।

सो रामदास, सदूपांडे आदि ब्रजवासी सब सीधो सामग्री ले आवते । सो दूध दही माखन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भोग धरिके ता महाप्रसाद सों रामदास निर्वाह करते । और ब्रजवासी जो सेवक कुंभनदास आदि भक्त, तिन कों श्री आचार्यजीने आज्ञा दीनी जो—ये श्रीगोवर्द्धननाथजी हमारो सर्वस्व हैं, तासों इनकी सेवा में तुम तत्पर रहियो, और श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये बिना महाप्रसाद मति छीजियो । और श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सावधानी सों करियो ।

सो कुंभनदास कीर्तन बहुत सुंदर गावते । कंठहू इनको वहीत सुंदर हतो । तासों कुंभनदास सों श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—तुम समय समय के कीर्तन नित्य श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सुनाइयो ।

सो प्रातःकाल श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगायके कुंभनदास कों कहे जो—कछु भगवल्लीला वरणन करो । तब कुंभनदास श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके पहले यह पद गायो । सो पद—

राग विलावल । ‘ सांझ के सांचे बोल तिहारे० ’

सो यह कीर्तन कुंभनदास के मुखतें सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—कुंभनदास ! निकुंज—लीलासंबंधी रस को



अनुभव भयो ' ? तब कुंभनदासने दंडवत कीनी और कहा जो-महाराज ! आपु की कृपातें । तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो-तिहारे बडे भाग्य हैं । जो प्रथम प्रभु तुम को प्रमेय बल को अनुभव बताये, तासों तुम सदा हरिरस में मगन रहोगे । तब कुंभनदासने विनती कीनी जो-महाराज ! मोकों तो सर्वोपरि याही रस को अनुभव कृपा करिके कीजिये ।

सो कुंभनदास सगरे कीर्तन जुगल स्वरूप संबंधी किये । सो वधाई, पलना, बाललीला गाई नाहीं । सो एसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

या प्रकार कुंभनदासजी आदि वैष्णवन ऊपर कृपा करि श्री-आचार्यजी दक्षिन के झारखंड में पृथ्वी-परिक्रमा छोडिके पधारे हते, सो फेरि जीवन की ऊपर कृपा करन के अर्थ परिक्रमा करन पधारे ।

### वार्ता प्रसंग-२

और यहां कुंभनदासजी नित्य सवारे ' जमुनावता ' गाम तें श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धनाथजी के दरशन को आवते, सो समय २ कीर्तन करते । श्रीगोवर्द्धनाथजी आपु कुंभनदास सों सानुभावता जनावते, सो संग खेलन लागे । और खेल की वार्ता करते ।

पाछे कछुक दिनमें एक म्लेच्छ को उपद्रव भयो, सो सगरे गाम को लूटत मारत पश्चिमतें आयो । ताके डेरा श्री-गिरिराजतें पांच कोस आगे भये । तब सदूपांडे, माणिकचंद पांडे,



रामदासजी, कुंभनदासजी ये चारि वैष्णवनें अपने मनमें विचार कियो जो—यह म्लेच्छ बुरो आयो है, जो—भगवद्धर्म को द्वेषी है । तासों कहा विचार करना ?

सो ये चारों वैष्णव श्रीनाथजी के अंतरंग होते, सो इन सों श्रीगोवर्द्धननाथजी वार्ता करते । तासों इन चार्यों वैष्णवनें मंदिरमें जायके श्रीनाथजी सों पूछी जो—महाराज ! अब कैसी करें ? जो धर्म को द्वेषी म्लेच्छ लूटत आवत है । तासों आपु कृपा करिके आज्ञा करो सो करें ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी यह आज्ञा किये जो—हमकों तुम टोड के घने में पधराय के ले चलो । हमारा मन वहां पधारिवे को है ।

तब चार्यों वैष्णवनें विनती कीनी जो—महाराज ! या समय असवारी कहा चाहिये ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो—सदूपांडे के घर भैंसा है, सोई ले आवो, तापे चढिके चलूंगो । पाछे सदूपांडे वा भैंसा को ले आये । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी वा भैंसा पे चढिके पधारे ।

सो वह भैंसा दैवी जीव हतो । सो वह लीला में श्रीवृषभानजी के श्रीहरिरायजीकृत घर की मालिन है । सो नित्य फूलन की माला

भावप्रकाश. श्रीवृषभानजी के घर करिके ले आवती । सो लीला में ' वृंदा ' याको नाम है । एक दिन श्रीस्वामिनीजी बगीची में पधारी । ता समय वृंदा के पास एक बेटी हतो, सो ताको खवावती हती । सों याने उठिके न तो दंडवत कीनी ओर न समाधान कियो । तो भी श्रीस्वामिनीजीने यासों कछु कह्यो नांही ।



ता पाछे श्रीस्वामीनीजीने वृंदा सों कही, जो—तू श्रीनंदरायजी के घर जायके श्रीठाकुरजी सों समस्या सों हमारो यहां पधारिवो कहियो । तब श्रीस्वामिनीजी के वचन सुनिके वृंदा ने कही, जो—अभी मेरे माला करिके श्रीवृषभानजी कां पठावनी है, तासो मैं तो जात नांही ।

यह वचन सुनिके श्रीस्वामिनीजीने यासों कही जो—मैं यहां आई तब तेने उठिके सन्मान हू न कियो, और एक कार्य कह्यो सोऊ तोसों नांही बन्यो । तासों तू या बगीची में रहिवे योग्य नांही है । और तू यहां सो गिरिके भैंसा को जन्म लेहु ।

सो यह श्राप श्रीस्वामिनीजीने वा मालिन को दियो । तब तो यह मालिन श्रीस्वामिनीजी के चरणारविंद में जाय परी, और बहोत ही बीनती स्तुति करन लागी । और कही जो—अब ऐसी कृपा करो, जो फेरि में यहां आऊं ।

तब श्रीस्वामिनीजीने यासों कही जो—जब तेरे ऊपर चढिके श्रीठाकुरजी वनमें पधारेंगे, तब तेरो अंगीकार होयगो । सो भैंसा को देह छोडिके सखी—देह धरिंके फेरि या बाग की मालिन होयगी । सो या प्रकार वह मालिन सदूपांडे के घर में भैंसा भई ।

सो वाही भैंसा के ऊपर श्रीनाथजी आपु चढिके 'टोड' के घने में पधारेX, सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी काँ एक ओरतें रामदासजी पकडे चले, और एक ओरतें सदूपांडे पकडे रहे । और कुंभनदास और मानिकचंद पांडे बीच में थांभे जाय । सो



मार्ग में कांटा बहोत लागे, वस्त्र सब फाटि गये, बहोत दुःख पायो । मार्ग आछो न हतो ।

सो वा 'टोड' के घना में बीच में एक निकुंज है । तहां नदी (?) है, सो कुंभनदास और मानिकचंद पांडे ये दोउ जने श्रीनाथजी के आगे मार्ग बतावें, लता कांटा टारत जांय । सो या प्रकार 'टोड' के घने में भीतर एक चोतरा है तहां छोटोसो सरोवर है, और एक गोल चोक मंडलाकार है । तहां रामदासजी और कुंभनदासजी श्रीनाथजी सों पूछे जो—आपु कहां बिराजोगे ? तब श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये जो—याही चोतरा पे बिराजेंगे । सो तब श्रीनाथजी के नीचे भैंसा के ऊपर गादी डारे हते सो वही गादी चोतरा ऊपर डारि बिछाई, तापें श्रीनाथजी कों पधराये ।

पाछे श्रीनाथजी रामदासजी सों आज्ञा किये जो—तू कछ भोग धरिके न्यारे ठाडे होउ । तब रामदासजी तथा कुंभनदासजी मन में विचारे जो— कोई ब्रजभक्तन के मनोरथ पूरन करिवे के लिये यहां लीला करी है । पाछें रामदासजी थोड़ी सामग्री भोग धरे । सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें जो—सब सामग्री धरि देउ । सो रामदासजी उतावली में दोय सेर चून को सीरा कर लाये हते सो सगरो भोग धरे ।+

---

+ कहतें हैं कि इस समय विष्णुस्वामि—मतानुयायी नागाओं का महंत 'चतुरा' नामक एक व्यक्ति यहां पर रहता था. उसने उसी समय ककोडा का दिये सो रामदासजीने सिद्ध करके सीरा के संग भोग धरे, तब से संप्रदाय में श्रा. सु. १३, सीरा और ककोडा के भोग के लिये प्रसिद्ध हुई ।



पाछे रामदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी तें कहे जो—सगरी सामग्री भोग धरी, परि यहां रहनो होय तब कहा करेंगे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो—यहां रहनो नांही है। जो इतनो ही काम हतो।

पाछे कुंभनदास सहित सदुपांडे मानिकचंदपांडे और रामदासजी ये चारों जन एक वृक्ष की ओट में जाय बैठे। सो तब निकुंज के भीतर श्रीस्वामिनीजी अपने हाथ सों मनोरथ की सामग्री करी हती सो लेके श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास पधारी। पाछे मिलिके भोजन करनो विचार कियो। सो सामग्री करत रंचक श्रीस्वामिनीजी को श्रम भयो। तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु श्रीमुखतें कुंभनदास सो आज्ञा किये जो—कुंभनदास! तू कछु या समय कीर्तन गावे तो मन प्रसन्न होय। और मैं सामग्री अरोगत हों, तासों तू कीर्तन गाउ।

सो कुंभनदास अपने मनमें विचारे, जो—प्रभुन को मन कछु हास्य प्रसंग सुनिवेको है। और कुंभनदास आदि चारचों वैष्णव भूखे हते और कांटाहू लगे हते, सो ता समय कुंभनदासने एक पद गायो। सो पद—

राग सारंग । ‘भावत है तोहि टोंड को घनो०’।+

---

+ ‘टोंड के घने’ का स्थान जतीपुरा सें गुलालकुंड हो कर नहर की पटली पटली सात फर्लंग पर है। वहां कोटास्थ गो. श्रीद्वारकेश-लालजी महाराज की सम्मति ले कर प. भ. श्रीजदुनाथदासजीने श्रीनाथजी की बैठक उसी स्थल पर सं; १९८४ में बनवाई है, और छोटा सा कुंड



सो यह कीर्तन सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीस्वामिनीजी बहोत प्रसन्न भये । और सब वैष्णव हू प्रसन्न भये । ता पाछे माला के समय कुंभनदासने यह पद गायो । सो पद—

राग मालकोस । १ ‘ बोलत स्याम मनोहर बैठे कमल-  
खंड और कदम की छैंया० ’ ।

यह पद कुंभनदासने गायो, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु बहोत प्रसन्न भये ।

तब श्रीस्वामिनीजीनें श्रीगोवर्द्धनधर सों पूछी जो—तुम कौन प्रकार पधारे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने कही जो—सदुपांडे के घर भैंसा हतो सो वा उपर चढिके पधारे हैं । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी के वचन सुनिके श्रीस्वामिनीजी आपु वा भैंसा की और देखिके कृपा करिके कहे जो—यह तो मेरे बाग की मालिन है, सो मेरी अवज्ञा तें भैंसा भई परंतु आज याने भली सेवा करी, तासों अब याको अपराध निवृत्त भयो ।<sup>x</sup> सो या प्रकार कहि, नाना प्रकार की केलि टोड के घने में करिके श्रीस्वामिनीजी तो बरसाने में पधारे ।

---

सी खुदवाया है । वहां गोलकार मंडल चोक में अति प्राचीन श्यामतमाल, कदम आदि दर्शनीय वृक्ष हैं । जब से बैठक बनी है तब से प्रत्येक यात्रा का रास वहां होता है ।

<sup>x</sup> सेवा का अपराध सेवा से ही निवृत्त होता है । देखो श्रीगोकुलनाथजी तथा श्रीदेवकीनन्दनजी के हास्यप्रसंग ।



सो तहां कांटा बहोत हते, सो श्रीस्वामिनीजी ऊहां कैसे पधारे ?  
 श्रीहरिरायजी कृत यह शंका होय तहां कहत हैं । जो—ये व्रज के  
 भावप्रकाश. वृक्ष परम स्वरूपात्मक हैं, सो जहां जैसी इच्छा  
 होय सो तहां तैसी कुंज लता फल फूल होय जात हैं । सो कबहू सकल  
 कांटा तो यह लौकिक लोगन को दीसत हैं । सो तहां कुंज में सब  
 व्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आप लीला करत हैं । सो तहां गोपन को  
 और मर्यादा वारेन को यह कांटन की आड होत है, (नातर) सघनवन  
 होत है । सो व्रज के भक्त सदा सेवा में तत्पर रहत हैं, सो तासों यह  
 संदेह नांही है ।

और श्रीगोवर्द्धननाथजी भैंसा ऊपर चढिके टोड के घना में पधारे ।  
 सो ता समय चार वैष्णव संग हते । सो मारग में व्रजवासी लोग बहोत  
 मिलते, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी को देखे नांही, जाने जो—भेसा लिये  
 चारि जन जात हैं । सो कांटा न होय तो सगरे व्रजवासी तहां आवें ।  
 या प्रकार केवल व्रजभक्तन को सुख देनार्थ श्रीठाकुरजी की लीला रस है ।  
 सो लौकिक में डरिके छिपिके पधारनो, सो यह रस है । ईश्वर-  
 ताको भाव नांही विचारनो है । ईश्वरतामें कहे तो भजनो कहा ?  
 डर, जहां माधुर्य रस में है सो प्रेमसों; ईश्वर तामें डरत नांही  
 है । या प्रकार रसिक जन नेत्रन सां जो देखत हैं सो तिन को  
 आनंद उपजत है, सो ज्ञाननेत्रन—अलौकिक नेत्रन—सां लीलारस को  
 अनुभव होत है ।

सो जब श्रीस्वामिनीजी बरसाने पधारे, तब चार्यों  
 भगवदीयन को श्रीगोवर्द्धननाथजीने अपने पास बुलाये ।



सो तहां यह संदेह होय जो ये भगवदीय तो अंतरंग हैं । सो श्रीहरिरायजीकृत जब लीला को अनुभव है तो फेरि श्रीगोवर्द्धन-भावप्रकाश. नाथजी इन कों न्यारे ओट में क्यों विदा किये ? तहां कहत हैं जो—ये भगवदीय जद्यपि सखीरूप सों लीला को दर्शन करत हैं, तोऊ श्रीचामिनीजी कों अपने श्रीहस्त सों हास्यविनोद करत आरोगावनो है, सो पास सखी होय तो लज्जा, संकोच रहे । सो ताही सों निकुंज में जब स्वरूप लीला करत हैं, तब सखी सब जालरंध्र ब्हेके लतान की ओट लीला को सुख अवलोकन करत हैं । सो तासों श्रीगोवर्द्धननाथजीने भगवदीयन को नेक ओट में बैठाये हते, सो बुलाये ।

सो जब चार्यों वैष्णव आये, तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने सदूपांडे सों कह्यो जो—अब देखो उपद्रव मिट्यो ? तब सदूपांडे टोंडके घने सों बाहिर आये, सो इतने में श्रीगोवर्द्धन सों समाचार आये जो—वह म्लेच्छ की फौज आई हती सो पाछी गई हैं । तब सदूपांडेने आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो—वह फौज तो म्लेच्छ की भाजि गई । तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे जो—अब तुम मोंको गिरिराज ऊपर मंदिर में पधरावो । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भैंसा ऊपर बेठाये । पाछे चार्यों वैष्णवनने श्रीनाथजी कों श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर मंदिर में पधराये । तब भैंसा पर्वत सों उतरिके देह छोडके फेरि लीला में प्राप्त भयो ।



पाछे सगरे ब्रजवासी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिके बहोत हरषित भये, और कहन लागे जो—धन्य है, देवदमन ! जो इनके प्रतापसों, एसो उपद्रव भयो हतो सो एक क्षण में मिटि गयो सो कछु जान्यो हू न पर्यो ।

तब कुंभनदासने श्रीनाथजी के आगे यह पद गायो ।  
सो पद—

राग श्रीराग । १ ‘जयति २ श्रीहरिदासवर्यधरने०’ ।  
२ ‘कृष्ण तरनि—तनया तीर रास मंडल रच्यो०’ ।

सो ऐसे कीर्तन कुंभनदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों बहोत सुनाये । सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये । सो कुंभनदासजी के पद जगत में प्रसिद्ध भये ।

### वार्ता प्रसंग—३

सो कुंभनदासजीने बहोत पद बनाये, सो जहां तहां लोग गावन लागे । ता पाछे एक कलावतने एक पद कुंभनदासजी को सीख्यो, सो देशाधिपति के आगे गायो । सो सीकरी फतेपुर में देशाधिपति के डेरा हते सो तहां यह पद गायो ।  
सो पद—

राग धनाश्री । ‘देखिरी आवनि मदन गुपालकी०’ ।

सो यह कीर्तन सुनिके देशाधिपति को मन वा पद में



गडि गयो, सो माथो धुन्यो ओर कह्यो जो— एसे एसे महापुरुष भूमि पर होय गये, सो जिन को एसे दर्शन परमेश्वर के होते ।

तब वा कलावतने देशाधिपति सों कही जो साहिब ! वे महापुरुष पद के करिवे वारे यहां ही हैं । सो तब यह देशाधिपति वा कलावत के ऊपर बहोत प्रसन्न होयके पूछ्यो जो— वे महापुरुष कहां हैं ? तब कलावतने कही जो— श्रीगोवर्द्धन के पास 'जमुनावतो' गाम है, सो तहां वे महापुरुष रहत हैं, और कुंभनदासजी उन को नाम है । तब देशाधिपति ने कही जो उन को यहां ही बुलावो जो— हम उन सों मिलेंगे ।

पाछे देशाधिपतिने अपने मनुष्य ओर सब तरह की असवारी कुंभनदास कों लेवे कों पठाई । सो जमुनावता गाम में भेजी तब वे मनुष्य असवारी लिवाये जमुनावता गाम में आये । ता समय कुंभनदासजी तो जमुनावता में हते नांही, परासोली चंद्रसरोवरमें अपने खेत ऊपर बैठे हते । सो तब उन मनुष्यनने जमुनावता में आयके पूछी । पाछे खबरि पायके गाम में ते एक मनुष्य को संग लेके वे लोग कुंभनदासजी के पास आये ।

तब देशाधिपति के मनुष्यनने आयके कुंभनदास सों कह्यो जो— तुमको देशाधिपतिने बुलाये हैं । तब कुंभनदासने कही, जो— हमतो गरीब ब्रजवासी हैं, सो काहूके चाकर नांही हैं । तासों हमारो देशाधिपति सों कहा काम है ? जो मैं चलूं ।

तब देशाधिपति के मनुष्यनने कह्यो जो— बाबा साहिब !



हम तो कछु समुझत नांही हैं । सो हम कों तो देशाधिपति को हुकम है— जो तुम कुंभनदासजी कों ले आवो, सो ये घोडा पालकी तिहारी असवारी के लिये आये हैं । सो तिनके ऊपर तुम असवार होयके चलिये । हम आये हैं जो— देशाधिपतिने भेजे हैं, सो हम तुम कों लेके जायंगे । और जो हम न ले जाय तो देशाधिपति को हुकम टरें, तो देशाधिपति हम कों मरवाय डारे । तासों आपु चलिये, ओर उन सों मिलिके चले आईये ।

तब कुंभनदासने अपने मन में विचार कियो जो— यह आपदा जो आई है, तासों अब गये बिना चले नांही । तासों आपदा होय सोऊ भुगतनो ।

सो कुंभनदास कों देशाधिपतिने असवारी पठाई हती, सो तिनके संग मनुष्य आये हते सो उनने कह्यो जो— बाबा-साहिब ! घोडा तथा पालकी पर चढिके बेगि चलिये । तब कुंभनदासने उन मनुष्यन सों कह्यो जो— मैं तो कबहू असवारी में बैठयो नांही । हम सों तुम कछु बोलो मति, जो हम जोडा पहरिके पायन चलेंगे । तब उन मनुष्यनने बहोत विनती कीनी, परि कुंभनदास तो असवारी में बैठे नांही, सो जोडा पहरि के पायन चले । सो फतेपुर सीकरी में देशाधिपति के डेरान की पास गये । तब देशाधिपति कों खबरि करवाई, जो कुंभनदासजी महापुरुष आये हैं ।



तब देशाधिपतिने कुंभनदास को भीतर बुलवाये, तब भीतर गये । पाछे देशाधिपतिने कही जो— बाबा साहिब ! आगे आवो । तब कुंभनदासजी तनिया पहरे, फटी मेली पाग, पिछोरा, टूटे जोडा सहित देशाधिपति के आगे जाय ठाढे भये ।

तब देशाधिपतिने कही जो— बाबा साहिब ! बैठो । सो तहां जडाउ रावटी ही, तामें मोतिन की झालरि लागि रही है, ओर सुगंध की लपट आवत है । परंतु कुंभनदासजी के मन में महादुख, जो—जीवते मानो नरक में बैठ्यो हूं । ( ओर बिचारे जो ) यासों तो मेरे ब्रजके हींसन के रूख आछे हैं । जहां साक्षात श्रीगोवर्द्धनधर खेलत हैं ।

सो या प्रकार कुंभनदासजी अपने मन में विचार करत हते. इतने में देशाधिपति बोल्यो जो— बाबा साहिब ! तुमने विष्णु-पद बहोत किये हैं । तासों तिहारे मुखतें मैं कछ् विष्णु पद सुनूंगो तासों आप कोई विष्णु-पद गावो ।

तब देशाधिपति के वचन सुनिके एक तो कुंभनदास मन में कुठि रहे हते, और दूसरे देशाधिपति ने गायवे की कही । तब कुंभनदास के मन में बहोत बुरी लगी । तब कुंभनदास अपने मन में विचार कियो जो— गाये बिना छुटकारो होयगो नांही । और या म्लेच्छ के आगे तो श्रीठाकुरजी की लीला के पद गाये जाय नाही । सो तासोंमें कहा गाऊ ? जो



मेरी बानी के सुनिवे वारे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं, और या म्लेच्छने मोकों बुलायके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिछोयो करायो है । तासों याको कछु एसो सुनाऊं जो— यह बुरो माने तो आछो । और बुरो मानि के मेरो कहा करेगो ?

तब कुंभनदासजी के मन में यह बात आई—‘जाको मनमोहन अंगीकार करें; एको केस खसै नही सिरतें जो जग बैर परे ।

सो यह विचारिके एक नयो पद करिके कुंभनदासने देशाधिपति के आगे गायो । सो पद—

राग सारंग—‘ भक्त कों कहा सीकरी काम । आवत जात पन्हैया टूटी विसरि गयो हरिनाम० ’ ॥

सो यह पद कुंभनदासने गायो सो सुनिके देशाधिपति अपने मन में बहोत कुठयो\* ।

सो पाछे उनने अपने मन में विचारी, जो— इनकों कछु लेवे को लालच होय तो ये मेरी खुसामद करें । जो इनको तो अपने ईश्वर सो काम हैं ।

यह विचारिके अकबर पात्साहने कुंभनदास सों कह्यो जो—बावासाहिब ! मोकों कछु आज्ञा फरमावो सो मैं करूं । तब कुंभनदासने कही जो—आज पाछे मोकों कबहूँ बुलाइयो मति । तब देशाधिपतिने कुंभनदास कों विदा किये ।

---

\* यहां अकबर बादशाह के पूर्व स्वरूप का वर्णन हैं जो सूरदासजी की वार्ता में आ जानेसे यहां नहीं दिया है । —सम्पादक



सो तब कुंभनदास ऊहां ते चले, सो मारग में आवत कुंभनदास के मनमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को विरह कलेश (भयो) जो-अब मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी को मुख कब देखौं ? सो ऐसे विचार करत मारग में आवत कुंभनदासने विरहको पद गायो । सो पद-

राग धनाश्री-‘ कब हौं देखि हौं इन नेनन० ’

सो ऐसे पद मारग में गावत कुंभनदास श्रीगिरिराज ऊपर आय श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये । सो दोय प्रहर बीते सो कुंभनदास कों मानो दोय जुग बीते । ता पाछे श्री-गोवर्द्धननाथजी को श्रीमुख देखत ही सगरो दुख बिसरि गयो । ता समय कुंभनदासने एक पद गायो । सो पद-

राग धनाश्री-१ ‘ नेन भरि देखौं नंदकुमार० ’ ।

२ हिलगन कठिन है या मनकी० ’

सो ऐसे पद कुंभनदासने बहोत ही गाये । सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कहे जो- कुंभनदास ! तू धन्य है । जो-मेरे बिना एक छिन तोकों कल नाहीं है । तासो मोहूकों वो बिना कछु मुहात नांही है । सो या प्रकार कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी की परस्पर प्रीति हती ।

वार्ताप्रसंग-४

और एक समय मानसिंह देसदेस में दिग्विजय करिके जीतिके आगरे में देशाधिपति के पास आयो । तब देशाधि-



पति सों सीख मांगिके अपने देस को चल्यो । तब राजा मानसिंहने अपने मन सों विचारयो जो— बहोत दिन में आयो हूं, सो श्रीमथुराजीमें न्हायके अपने देश जाऊं तो आछो है ।

सो राजा मानसिंह यह विचारिके श्रीमथुराजी में आयो । तहां विश्रांत घाट ऊपर न्हायो । तब चोबेनने मिलिके कह्यो जो—श्रीकेसोरायजी ठाकुरजी के दरशन कों चलो । सो गरमी ज्येष्ठ मास के दिन और मथुरिया चोबेनने<sup>x</sup> राजा को आवत जानिके श्रीकेसोरायजी कों जरीकी ओढनी, वागा, पिछवाई, चंदोवा सब जरी के किये । सोने के आभूषण पहिराये । सो दरसन करिके राजा मानसिंहने अपने मनमें कह्यो, जो—इनने मेरे दिखायवे के लिये श्रीठाकुरजी को इतनी जरी लपेटी है । पाछे भेट धरि के चले ।

पाछे उनने कही जो—वृंदावन में श्रीठाकुरजी के मंदिर है, सो तहां दरशन कों चलेंगे । पाछे राजा मानसिंह श्रीवृंदावन में आयो । सो श्रीवृंदावन के संत महंतनने सुनिके मन में विचारी जो—यहां राजा मानसिंह दरशन को आवेगो । यह जानिके अपने श्रीठाकुरजी के लिये भारी भारी जरीके चीरा, वागा, पटका, सूथन जरी की ओढनी भारी भारी उढाई और सोने के आभूषण पहराये ।

---

<sup>x</sup> इस समय ( सं. १६२० से ३० लगभग ) श्रीकेसोरायजी की सेवा मथुरिया चौबे करते थे ।



पाछे राजा मानसिंह आयके दोय चार ठिकाने बडे २ मंदिरन में दरसन करि भेट किये । गरमी बहोत लगी सो डेरान पे आयो और कह्यो जो—ये मोकों दिखायवे के लिये कियो है ।

ता पाछे राजा मानसिंह वृंदावन सों चलयो, सो तीसरे प्रहर श्रीगोवर्द्धन में आयो । तब काहूने कही जो—श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के दर्शनको चलोगे ? तब राजा मानसिंहने कह्यो जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन तो अवश्य करने हैं ।

सो तब गोपालपुर में आय के दर्शन को समय पूछ्यो, तब काहूने कही जो—उत्थापन के दर्शन होय चुके है । और भोग के दर्शन की तैयारी है । तब यह सुनि के राजा मानसिंह पर्वत की ऊपर चढ्यो, सो महा गरमी पैडे । सो उधारे पांव राजा गरमी में व्याकुल होय ऊपर गयो । सो तब ही भोग के किंवाड खुले हते । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करत ही राजा मानसिंह के नेत्र सीरे होय गये । सो उन दिनन में श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा बडे वैभव सों होत ही । सो ऊष्णकाल के दिन हते, तातें गुलाब के जल सों छिरकाव भयो हतो, और अरगजा की लपट आवत है, और सुगंध आवत है, और दोहरो पंखा होत है । सुपेद पाग परदनी को शृंगार, श्रीकंठ में मोतीन की माला, और मोतीन के करन और मोतीन के मूक्ष्म आभूषन । सो सुगंध सहित सीरी ब्यारि लागी । सो राजा मानसिंह को रोम २ सीतल भयो । सेवा



रीति देखि के राजा मानसिंहने कह्यो जो— सेवा तो यहां है । जो श्रीठाकुरजी सुख सों विराजे है । सो साक्षात् श्रीकृष्ण प्रकट भये सुने हते श्रीभागवत में । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी यही हैं । तासों आजु मेरे बड़े भाग्य हैं जो— मेने एसो दरशन पायो है ।

ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे कुंभनदासजी पद गावत हते । सो जैसे श्रीगोवर्द्धनधर कोटि कंदर्प लावण्य स्वरूप मन हरन, और तैसे ही रसरूप कुंभनदासजीने पद गाये । सो पद—

राग नट—१ ‘रूप देखि नेनां पलक लगे नाही’ । २ ‘पूतरी पोरिया इनके भये माई’ । राग गोरी—३ ‘आवत गिरिधर मनजू हर्यो हो’ ।

सो एसे पद कुंभनदासजीने गाये । ता पाछे भोग को समय होय चुक्यो तब टेरा आयो । पाछे राजा मानसिंह दंडवत करि के अपने डेरान में आयो । ता पाछे सेनआरती की समे कुंभनदासजीने यह पद गायो । सो पद—

राग केदारो । ‘लाल के वदन पर आरती वारों’ ।

सो या प्रकार सनेह के कीर्तन गाय अपनी सेवा सों पहोंचि के कुंभनदासजी अपने घर जमुनावता में आये । सो ऊहां राजा मानसिंह अपने डेरान में जाय के अपने मनुष्यन के आगे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा श्रृंगार की वार्ता कहन



लाग्यो । और कह्यो जो—श्री गोवर्द्धननाथजी के आगे विष्णु पद गावत हते, सो कोन हतो ? जो ऐसे पद गाये सो मनमें पेठि गये हैं । ऐसे पद आज ताई मैंने कबहू सुने नाही ।

तब एक ब्रजवासीने कह्यो जो—ए गोरवा हैं और कुंभनदासजी इनको नाम हैं । जो अपनी खेती में अन्न होय सो ताही सों निर्वाह करत हैं । जो तुमने सुनेही होयगें जो आगे देशाधिपति ने बुलाये हते, परंतु कुंभनदासजी कछु लिये नांही । जो ये महापुरुष हैं ।

सो तब राजा मानसिंहने कह्यो जो—आज तो रात्रि भई हैं यातें काल सवारे हमहू इनसो मिलेंगे । सो तब प्रातकाल राजा मानसिंह उठि के श्रीगिरिराज की परिक्रमा करत परासोली में आयो । सो परासोली में चंद्रसरोवर हैं । तहां कुंभनदासजी न्हाय के खेत ऊपर बैठे हते सो इतने ही में श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कुंभनदास के पास पधारे । सो श्रीमुख देखत ही कुंभनदासजी श्रीनाथजी सों कहे जो—बाबा ! आगे आवो । तब श्रीनाथजी आपु कुंभनदासजी की गोद में बैठि के कहे जो—कुंभनदास ! मैं तोसों एक बात कहन आयो हूं ।

सो या प्रकार कहत हते, इतने में राजा मानसिंह कुंभनदास के पास आयो । सो ताही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भाजि के डरि के एक वृक्ष की ओट में जाय के ठाढे भये । सो ताही समय कुंभनदासजी की दृष्टि तो एक श्रीगोवर्द्धननाथजी



के संग गई । सो जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाड़े हते सो ताही और कों देख्यो करें । तब राजा मानसिंह कुंभनदास को प्रणाम करि के पास बेठयो, परंतु कुंभनदासजी तो राजा मानसिंह की और दृष्टि हू नाही किये ।

सो कुंभनदासजी की एक भतीजी हती । सो जमुनावते सो बेझिरि को चूँन कठोटी में करि, लेके कुंभनदास को रसोई\* करिवे के लिये लावत हती । सो या भतीजी सों एक ब्रज-वासीने कह्यो जो—तू बेगि जा । जो कुंभनदासजी की पास राजा गयो हैं सो वह कछ देवे तो तू लीजियो । क्यों, जो कुंभनदासजी तो छूवेंगे हू नाही । तब यह भतीजी बेगि ही कुंभनदासजी के पास आई । तब कुंभनदासजी की दृष्टि एक वृक्ष के और देखि के कहे जो—बाबा ? राजा बैठयो है । जो कछू इनको समाधान करो । तब कुंभनदासजी कहे जो—मैं कहा करू जो बैठयो हैं तो । जो कछू बात कहत हते सोऊ भाजि गये । सो अब बात कहेंगे के, नाही कहेंगे.

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु सेनही में कुंभनदासजी सों कहे, जो—मैं तिहारे ऊपर बहोत प्रसन्न हूं । जो मैं बात कहूंगो तू चिंता मति करे । तब कुंभनदासजी को चित्त ठिकाने आयो । सो कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी की वार्ता राजा आदि काहूने जानी नाही ।

---

\* इस से यह सिद्ध होता है कि कुंभनदासजी स्वयंपाकी थे । श्री साधारण होने के कारन उस के हाथ की भी रसोई नहीं लेते थे ।



पाछे कुंभनदासजीने भतीजी सों कह्यो जो-बेटी ! आसन और आरसी लावे+ तो मैं तिलक करि लेऊं । तब भतीजीने कह्यो जो-बाबा ! आसन (घासको) पडिया (भेंसकी पाडी) खाय के आरसी (कठोटी को जल) पी गई । तब कुंभनदासजीने कह्यो जो-और आसन आरसी करि ले आज तो आछो ।

यह बात सुनि के राजा मानसिंहने अपने मनमें कह्यो जो-आसन खाय के आरसी पडिया पी गई ! (सो कहा ?) सो इतने ही में भतीजी एक पूरा घास को और एक कठोटी में पानी भरि के ले आई । सो पूरा को आसन बिछाय दियो सो ता पूरा पर कुंभनदासजी बैठि के कठोटी में पानी में मुख देखि के तिलक करन लागे ।

तब राजा मानसिंहने अपने मनमें जान्यो जो-कुंभनदासजी के द्रव्य को बहोत संकोच हैं, जो आसन आरसी तिलक करवे की नाही है । सो कुंभनदासजी त्यागी सुनत हते सो देखे । तब राजा मानसिंहने आरसी सोने की जडाऊ घर में जडी एसी मनुष्य सों मंगाई । और पाछे वह आरसी कुंभनदासजी के आगे धरि के कह्यो जो-बाबासाहिब ! या मे मुख देखि के तिलक करिये । तब कुंभनदासजी कहे जो-अरे मैया ! मैं याकों धरुंगो कहां ? हमारे तो यह छानि के घर हैं । जो यह आरसी

---

+ भगवदभक्त अपनी बानी में कमी हुकुमत के शब्दों का प्रयोग करत नहीं है । इससे यहां 'लावो' ऐसे न कह कर 'लावे तो' ऐसे शब्द को उपयोग कियो है ।



हमारे घर में होय तो याके पीछे कोई हमारो जीव लेय, तासों हमारे नांही चाहियत है । तब राजा मानसिंहने मनमें विचारी जो— ये आरसी लेके कहा करेंगे ? जो कहा याकों बेचन जायंगे ? यह तो इन के काम की नांही है । तासों कछू एसो द्रव्य देऊं जो जनमादि भरिके खायो करें । तब हजार मोहोर की थेली कुंभनदासजी के आगे धरी ।

तब कुंभनदासजीने कही जो— यह हमारे काम की नांही है । हमारे तो खेती होत है, तामें जो धान उपजत है सो हम खात हैं । और कछू हम कों चाहियत नांही ।

तब राजा मानसिंहने कह्यो जो—तिहारो गाम जमुनावता है, सो ताको मैं तुम कों लिख्यो करि देऊं । तब कुंभनदासजीने राजा मानसिंह सों कह्यो जो—मैं ब्राह्मण तो नांही जो—तेरो उदक लेऊं । और जो— तेरे देनो होय तो और काहू ब्राह्मण कों दीजियो, मोकों तिहारो कछू नांही चाहियत है ।

तब राजा मानसिंहने कह्यो जो— तुम मोकों अपनो मोदी बतावो, सो ताके पास सों सीधो सामान लियो करो । तब कुंभनदासजीने कही जो—जैसे हम हैं सो तैसे ही हमारो मोदी है । तब राजा मानसिंहने कह्यो जो— बतावो तो सही, जो मैं वाको देऊंगो । तब कुंभनदासजीने एक करील को वृक्ष दिखायो, और एक बेर को वृक्ष दिखायके कह्यो जो—उष्ण-काल में तो मोदी करील है, - सो फूल और टेंटी देत है । और



सीतकाल को मोदी बेर को झाड़ है, सो बेर बहोत देत है । सो एसे काम चल्यो जात है ।\*

तब राजा मानसिंहने कही जो— धन्य है । जिनके वृक्ष मोदी हैं, जो मैने आज ताई बडे २ त्यागी बैरागी देखे, परंतु ये गृहस्थ सो एसे त्यागी हैं । सो एसे धरती पर नांही हैं ।

सो तब राजा मानसिंह कुंभनदासजी कों प्रणाम करिके कबो जो— बाबा साहेब ! मोसों कछु तो आज्ञा करो । तब कुंभनदासजी कहे जो—हम कहेंगे सो करोगे ? तब राजा मानसिंहने कही जो—तुम आज्ञा करो सोई में अपनो परम भाग्य मानिके करुंगो । तब कुंभनदासजीने कही जो— आज पाछे तुम हमारे पास कबहू मति आइयो X, और हम सों कछु कहियो मति ।

तब राजा मानसिंहने दंडवत करिके कही जो—तुम धन्य हो, माया के भक्त तो मैं सगरी पृथ्वी में फिरयो, सो बहोत देखे, परंतु श्रीठाकुरजी के सांचे भक्त तो एक ही तुम देखे ।

---

\* मोदी के प्रसंग से यह सिद्धांत स्पष्ट होता है कि—भक्तजन कभी कोई वस्तु उधार नहीं लेते, ईश्वर सहज में जो दे देता है उसी पर निर्वाह करते हैं । इस प्रसंग में निस्पृहता, त्याग, तथा आश्रय भी स्पष्ट किया है । कुंभनदासजी का निर्वाह ईश्वर के ही आश्रय पर निर्भर है न कि किसी मोदी आदि के ।

X कुंभनदासजीने यहां संप्रदाय का परमोत्कृष्ट सिद्धांत—जिस वस्तु से प्रभु के स्मरण ध्यान और सेवा आदि में विक्षेप पड़े उस का संपूर्ण त्याग —‘तत्त्यागे दुषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः’—स्पष्ट किया है ।



सो यह कहिके राजा मानसिंह चल्यो गयो । तब भतीजीने पास आयके कुंभनदासजी सों कही जो— घर में तो कछ हतो नांही, सो राजा देत हतो सो क्यों न लियो ? तब कुंभनदासजी कहे जो—बैठि रांड ?\* गोवर्द्धननाथजी सुनेगे तो स्वीजेंगे, जो— कुंभनदास की भतीजी बडी लोभिन है । तब भतीजीने कह्यो जो— मैने तो हसिके कह्यो हतो, जो—मोको तो कछ नांही चाहियत है । तब कुंभनदासजीने कह्यो जो—बेटी ! काहू सों लेवेकी वार्ता हांसी में हू कबहू न कहिये ।

सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आयके कुंभनदासजी की गोद में बैठिके कहे जो—तू एक छिन में एसो क्यों होय गयो ? तेरे मन में कहा है ? सो तू मोसों कहे ? तब कुंभनदासजीने यह पद गायो । सो पद—

राग सारंग—१ ‘ परमभावते जियके मोहन, नैनन तें मति टरो० ’

सो यह कीर्तन कुंभनदासजी को सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी गरे सों लपटिके कहे जो—कुंभनदास ! मैं तोसों एक बात कहन कों आयो हूं । तब कुंभनदासने कही, जो— कहिये । आपु वा समय बात कहत हते सो ता समय तो राजा अभागिया आय गयो, सो आपु भाजि गये । सो तब सों मेरो मन वा

---

\* यह शब्द कुंभनदासजी का सहज प्रतीत होता है क्योंकि “ कौन रांड ढेढिनी को जन्यो० ” आदि कीर्तनों में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है ।



बात में लागि रह्यो है, सो वह बात आपु कृपा करिके कहिये ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कुंभनदास सों कहे जो—  
कुंभनदास ! आज सखान में होड परी है, जो भोजन सब  
के घर को न्यारो न्यारो देखिये । तामें सुन्दर कोन  
के घर को है ? सो तुमहू कछु मनोरथ करोगे ? सो मैं यह  
बात तोसों कहिये आयो हूं । तब कुंभनदासजी पूछे जो—  
आप की रुचि काहे पे है ?

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे—जो ज्वार की महेरी, दही,  
दूध, बेझरि की रोटी और टेंटी को साक संधानो\* । तब कुंभन-  
दासजी कहे जो—यह तो घर में सिद्ध है । तब श्रीगोवर्द्धनना-  
थजी कहे जो—बेगि मंगावो । सो तब कुंभनदासजी भतीजी सों  
कहे जो—घरतें बेझरि को चून, टेंटी को साक, संधानो, दही,  
दूध बेगि ले आउ । तब भतीजीने कही जो—बेझरि को चून  
टेंटी को साक, संधानो, दही इतनो तो मैं ले आई हूं और दूध  
जमायवेके ताई तातो होत है । तब कुंभनदासजी कहे जो—  
आज दूध जमावे मति । दूध की हांडी और ज्वार घरतें  
दरिके ले आव सो तहां ताई में रसोई करत हों । सो न्हायके

---

\* श्रीनाथजीने कुंभनदासजी से यह इस लिये कहा कि—उनके यहां  
और कुछ नहीं था, यदि अन्य सामग्री का नाम लेते तो प्रभु की प्रसन्नता  
के अर्थ वे दुख उठकर भी उद्यम करते और यदि वह सिद्ध न होता तो  
कष्ट पाते । पर प्रभु भक्त को प्रसन्न ही देखना चाहते हैं और प्रेम की  
वस्तु को अंगीकार करते हैं ।



तो कुंभनदासजी बैठे ही हते । तासों वेशरि की रोटी लौन डारिके ठीकरा पे किये । इतने में भतीजी जमुनावता गाम में जायके ज्वारि दरिके दूध की हांडी ले आई । तब कुंभनदासजी हांडी में पानी डारिके ज्वारकी सामग्री सिद्ध किये । इतने में घर घरतें सखान की छाक आई, सो कुंभनदास की सामग्री श्रीगोवर्द्धननाथजी पास राखे । पाछे घर के सखानको चखाय आपु आरोगे ।

कुंभनदासजी की सामग्री विशाखार्जने दूध में मिश्री डारि श्रीहरिरायजीकृत श्रीस्वामिनीजी को आरोगाय अति मधुर कर भावप्रकाश दीनी । सो काहते ? जो— विशाखाजी को प्राकट्य कुंभनदासजी हैं ।

और जब श्रीठाकुरजी कों कुंभनदासजी की सामग्री बहोत स्वाद लगी, ता समय कुंभनदासजीने ये कीर्तन गाये । सो पद—

राग सारंग—१ ‘ ब्रजमें बडो मेवा एक टेंटी । ’ २ ‘ घरतें आई है छाक । \* ’

---

\* घर तें आई है छाक ॥ खाटे मीठे और सलोने विविध भांत के पाक ॥ १ ॥ मंडल रचना करि जमुनातट सघन लता की छांहि । गोपी ग्वाल सकल मिलि जेमत मुख हि सराहत जांहि ॥ २ ॥ बांटत बल, मोहन दोउ भैया कर दोना अति सोहे । चाखत आपुन सखन मुखन दे के गोपीजन मन मोहे ॥ ३ ॥ टेंटीं, साक, संधानो, रोटी, गोरस सरस महेरी । कुंभनदास गिरधर रसलंपट नाचत दे दे फेरी ॥ ४ ॥



सो यह कुंभनदासजी अति आनंद पायके गाये । और अपने मन में कहे जो—श्रीगोवर्द्धननाथजीने भली एक बात कही, जो यामें या लीला को अनुभव भयो ।

या प्रकार श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदासजी की ऊपर कृपा करते ।

वा दिन कुंभनदासजी रस में मग्न होय गये । सो सांझ को सरीर की सुधि नाहीं । तब परासौली तैं दोरे जो—आज मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन नाहीं पायो । विरह मनमें उठि आयो सो सेन भोग सरत हतो ता समय कुंभनदासजी मंदिर में आये । मनमें यह जो—कब दरशन पाऊं ।

इतने में सेन के किंवाड खुले । तब कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करि नेत्र इकटक लगायके यह कीर्तन गाये । सो पद—

राग बिहागरो— १ ' लोचन मिलि गये जब चारचों० ' ।  
२ ' नंदनंदन की बलि २ जइये० ' । राग केदारो— ३ ' छिबु छिबु बानिक और ही और० ' ।

सो या प्रकार रस के कीर्तन कुंभनदासने बहोत गाये । सो वे कुंभनदासजी ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग—५

और एक समय\* वृंदावन के संत महंत कुंभनदासजी सों मिलिवे कों श्रीगिरिराज पे आये । सो यासों आये जो—जाने जो इनसों श्रीठाकुरजी साक्षात् बोलत हैं । और कुंभनदासजी

\* सं. १९१५ के अगहन मासमें ( देखो—विठ्ठलेश्वर चरितामृत )



श्रीस्वामिनीजी की बधाई गाये हैं, तासों इनसों मिलिके पूछें जो—श्रीस्वामिनीजी को वर्णन हमहू किये हैं । और देखें जो— कुंभनदासजी कैसो वर्णन करत हैं ?

सो यह विचारिके हरिवंश, हरिदास प्रभृति महंत, स्वामी आय कुंभनदासजी सों मिलिके पूछे जो—कुंभन-दासजी ! तुमने जुगल स्वरूप के कीर्तन किये हैं, सो हमने तिहारे कीर्तन बहोत सुने, परि कोई श्रीस्वामिनीजी को कीर्तन नांही सुन्यो, तासों आपु कृपा करिके कोई पद श्री स्वामिनीजी को सुनावो ।

तब कुंभनदासजीने श्रीस्वामिनीजी को एक पद करिके उनकों सुनायो । सो पद—

राग रामकली— १ ‘ कुंवरि राधिके ! तुव सकल सौभाग्य सीमा, या वदन पर कोटिशत चंद वारि डारों ’ ।०

यह पद कुंभनदासजीने गायो सो सुनिके श्रीवृंदावन के संत महंत बहोत प्रसन्न भये । और कहे जो— हमने श्रीस्वामिनीजी के पद बहोत किये हैं, तामें चंद्रमा आदि की उपमा बहोत दी हैं । परि कुंभनदासजी ! तुमने तो शतकोटि चंद्रमा वारि डारें हैं । तासों कुंभनदासजी कों श्रीस्वामिनीजी आगे जगत में कोऊ उपमा देवे योग्य नांही । सो या प्रकार अद्भुत स्वरूप को वर्णन किये हैं ।



ता पाछे कुंभनदासजी सों बिदा होयके सिगरे वृंदावन में आये ।

सो ये कुंभनदासजी भावना, लीलारस में मग्न रहते । सो एसे कृपापात्र भगवदीय हैं ।

### वार्ता प्रसंग-६

और एक समय:- श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में श्रीनव-नीतप्रियजी सों बिदा मांगिके श्रीद्वारिकाजी पधारिवे को विचार किये सो परदेश में दैवी जीवन के उद्धारार्थ, श्रीगोकुलतें श्रीनाथजीद्वार आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी के सेवा शृंगार किये । ता पाछे अनोसर करायके आपु भोजन करि के अपनी बैठक में गादी तकियान के ऊपर विराजे हते, सो तहां सिगरे वैष्णव आयके पास बैठे हते । सो बात चलत में कुंभनदासजी की बात चली ।

तब काहू वैष्णवनें श्रीगुसांईजी के आगे यह बात कही जो-महाराज ! कुंभनदासजी के घर आजकाल द्रव्य को बहोत संकोच है, सो काहेतें ? जो घरमें परिवार बहोत है, जो सात बेटा हैं, और सातों बेटानकी बहू है । और आपु स्त्रीपुरुष और एक मतीजी । सो ताहूमें आये गये वैष्णवन को समाधान करत हैं, और आमदनी तो थोरीसी है । जो परासोली में खेती है, तामें निर्वाह टेंटी फूलन सों करत हैं ।



यह बात सुनिके श्रीगुसांईजीने अपने मनमें राखी । ता पाछे (जब) कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी के दरशन कूं आयें, तब दंडवत करिके ठाड़े होय रहे । तब श्रीगुसांईजी कहे जो—कुंभनदासजी ! बैठो । तब कुंभनदासजी बेंठे ।

पाछे श्रीगुसांईजी सिंगरे वैष्णवनकों विदा करिके कुंभनदाससों कहे, जो—कुंभनदासजी ! हम श्रीद्वारिका के मिस परदेशकों जात हैं, तहां अनेक वैष्णवनसों मिलाप होयगो । सो वैष्णवननें बहोत विनती पत्र लिखे हैं, तासों अवश्य जानो है, सो तुम हमारे संग चलो । सो भगवदीयनको विरहको कलेश बाधा न करे, और भगवदीयन को काल आछे व्यतीत होय । सो तिहारे संग तें कछू जान्यो न परे । और हमने सुन्यो है जो— तिहारे घर द्रव्यको संकोच है, सोऊ कार्य सिद्ध होयगो । तासों तुमकों सर्वथा चलयो चाहिये ।

तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजीसों विनती कीनी जो—महाराज ! आपु के साम्हे हमसों बहोत बोल्यो नांही जात है, जो— आपु आज्ञा करो सोई हमकों करनो ।

इतने में उत्थापन को समय भयो । तब श्रीगुसांईजी स्नान करिके, श्रीगोवर्द्धननाथजी कों उत्थापन करायकें, सेन पर्यंतकी सेवासों पहोंचिके आपु बैठकमें पधारे । तब श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदास सों कहे जो— अब तुम घर जाऊ, जो सवारे घर सों विदा होयके आइयो, राजभोग आरती पाछे परदेश कों चलेंगे ।



पाछे कुंभनदासजी श्रीगुसांईजीकों दंडवत करिके अपुने घर जमुनावता में आये । ता पाछे सवारे घरतें श्रीगुसांईजी के पास आये ।

तब श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके परवत ऊपर पधारि के श्रीनाथजी कों जगाये । पाछे सेवाशृंगार करि राजभोग धरि समयानुसार भोग सरायके, राजभोग आरती करि श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिदा होय परवत सों नीचे पधारे ।

सो अप्सराकुंड ऊपर डेरा अगाऊ भये हतै । तब कुंभन-दाससों कहें जो— अब हम अप्सराकुंड ऊपर डेरान में जायकें सोवेंगे । सो तब सब वैष्णव तथा कुंभनदासजी अप्सराकुंड ऊपर आये । तब कुंभनदासजी अपने मनमें विचार करन लागे जो—हे मन ! अब कहा करिये ?

‘ कहिये कहा कहिवे की होय ? प्राननाथ बिलुरन की वेदन जानत नांहि न कोय ’ ॥ १ ॥

या प्रकार विचार करत श्रीगोवर्द्धननाथजी को बिरह हृदयमें बढ़ि गयो । तब श्रीगुसांईजी आपु डेरान के भीतर जागे । सो जब उत्थापन को समय भयो, तब कुंभनदासजी कों श्रीनाथजी के दरशन की सुधि आई<sup>x</sup> नेत्रनमें सों आंसुन

---

<sup>x</sup> प्रेम में जब कभी याद आती है, तब विव्हलता होती है । आसक्ति में समयानुसार याद आने पर विकलता प्राप्त होती है । और व्यसन में चोबीसों घंटा याद आने पर अस्वास्थ्य होते ही तन्मयता से एक रूपता



की धारा चली, सो सगरे सरीर में पुलकावली होन लागी ।  
पाछे कुंभनदासजी डेरान के पासही एक वृक्ष\* तरें ठाड़े २  
धीरे २ गावन लागे । सोपद—

राग सारंग—‘ कितेक दिन व्हे जु गये विनु देखे० ’ ।

यह कीर्तन कुंभनदासजीने अत्यंत विरह क्लेश सों  
गायो । सो श्रीगुसांईजी आपु डेरान के भीतर बैठके कुंभन-  
दासजीको सगरो कीर्तन सुने । सो कुंभनदासजी को क्लेश  
श्रीगुसांईजी आपु सही नांही सके । सो आपु डेरानतें बाहिर  
पधारिके कुंभनदासजी की यह दशा देखे, जो— नेत्रन सों जल  
बहो जात है, महाविरह करिके दुखी होय रहे हैं ।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखतें कुंभनदाससों कहे जो—  
कुंभनदास ! तुम मंदिर में जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन  
करो, जो तिहारो विदेश होय चुक्यो ।

सो काहेतें ? जो जैसी तिहारी दशा यहां है, सो तैसी दशा उहां  
श्रीहरिरायजीकृत श्रीगोवर्द्धननाथजी की होयगी । सो कैसे जानिये ?

भावप्रकाश. जो—जैसे ‘गज्जनधावन’ को श्रीअक्काजी ने पान लेवे  
कों पठायो सो गज्जन कों तो श्रीनवनीतप्रियजीके विरहको एक क्षन सहो

---

हो जाती है । इस प्रकार प्रेम की अवस्था यें हैं । कुंभनदासजीं कों आसक्ति थी  
जिससे उन्हें उत्थापन के समय सेवा का समय जानकर विकलता प्राप्त हुई ।

\* पूछरी पर रामदासजी की गुफाके सामने ‘धों’के वृक्षके नीचे । यहां  
यदुनाथदासजीने एक चोंतरा सं. १९८१ में बनवा दिया है ।



न जातो, सो पान लेवे कों द्वारसों बाहिर जात ही विरह ज्वर चढ़  
सो द्वार पास ही दुकान में परि रह्यो मूर्च्छा खाइके । और यहां  
में श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को राजभोग धरे । तब श्रीनवनीत  
प्रियजी ने महाप्रभुन सों कही जो—मेरो गज्जन आवेगो तब मैं आरोगूंगे

तब श्रीआचार्यजी सवनसों पूछे जो—गज्जन कहां गयो है ?

तब श्रीअक्काजी कहे जो— पान न हते तासों गज्जन को पान  
पठायो है । तब श्रीआचार्यजी कहे जो—तुम जानत नांही जो—गज्जन  
बिना श्रीनवनीतप्रियजी एक छिन नांही रहत हैं ? तासों गज्जन  
पान लेनको क्यों पठायो ? ।

ता पाछे गज्जन को बुलायेवे कों ब्रजवासी पठायो, सो गज्जन  
बुलायके ले आयो । तब गज्जनने श्रीनवनीतप्रियजी की पास अ  
के कह्यो जो— बाबा ! आरोगो । तब श्रीनवनीतप्रियजी आरोगे । स  
गज्जन बिना आपु विरह करिकें बैठि रहे ।x

सो यह श्रीआचार्यजीके मार्ग की मर्यादा है । जो—जैसो सेवक व  
एक चित्त सों स्वामी के ऊपर ( अनन्य ) भाव होय, तैसेही स्वामी कें  
भाव दास विषे ( विशेष ) सेवक के ऊपर होय । तासों श्रीभगवान्  
अर्जुन प्रति कहे हैं जो—

‘ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तौस्तथैव भजाम्यहम् ’ ।

तासों श्रीगुसांइजी आपु कुंभनदासजी सों कहे जो—जैसो तुम यह  
श्रीगोवर्द्धनाथजी के लिये विरह दुःख करत हो, तैसे उहां श्री-



गोवर्द्धननाथजी तिहारे लिये विरह दुःख करत हैं। तासो तुम बेगि जायकें श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करो, तिहारो विदेस होय चुक्यो।

या प्रकार श्रीगुसांईजीने कुंभनदासकों आज्ञा दीनी। तब कुंभनदासको रोम रोम सीतल होय गयो। तब मनमें प्रसन्न होय श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि बेगि अप्सराकुंडतें दोरिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में आये।

ता समय उत्थापन के दर्शन को समय हतो, सो किंवाड खुले। तब कुंभनदासजी ने यह पद गायो। सो पद—

राग नट—‘जो पै चोंप मिलन की होय०’।

यह पद सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी प्रसन्न होयके कुंभनदास सों कहे जो—कुंभनदास ! मैं तेरे मनकी बात जानत हूं। जो तू मेरे विना रही नाहि सकत है। तैसें मैं हू तो विना रहि नाहि सकत हों। तासों अब तू सदा मेरे पास ही रहेगो।

तब कुंभनदासजीने बहोत प्रसन्न होयके साष्टांग दंडवत कीनी, और हाथ जोरिके कुंभनदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों विनती कीनी जो—महाराज ! मोकों यही चाहियत हतो, और यही अभिलाषा हती, जो—तुमसों विछोयो न होय।

सो कुंभनदासजी ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।

### वार्ता प्रसंग—७

और एक समय श्रीगुसांईजी के पास कुंभनदास बैठे हते, और सगरे वैष्णव हू बैठे हते। सो श्रीगुसांईजी



आपु हसिके कुंभनदासजी सों पूछे जो— कुंभनदास ! तिह  
बेटा कितने हैं । तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी सों क  
जो— महाराज ! बेटा तो मेरे डेढ़ है ।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो— हमने तों सात बेटा सुने  
और तुम डेढ़ बेटा कहे, ताको कारन कहा ? तब कुंभनदास  
ने कबो जो— महाराज ! यों तो सात बेटा हैं, तामें पांच  
लौकिकासक्त हैं, जो वे बेटा काहे के हैं ? और पूरो एक बे  
तो चत्रभुजदास है । और आधो बेटा कृष्णदास है । सो श्रीगं  
वर्द्धननाथजी की गायन की सेवा करत है ।

सो तहां यह संदेह होय जो—गायन की सेवा तो सर्वोपरि है  
श्रीहरिरायजीकृत और गायन की सेवा किये तें बहोत वैष्ण  
भावप्रकाश. श्रीठाकुरजी कों पाये हैं, और कुंभनदास  
कृष्णदास कों आधो बेटा क्यों कहे ?

तहां कहत हैं, जो— श्रीआचार्यजी आपु यह पुष्टिमार्ग प्रक  
किये हैं । सो पुष्टिमार्ग ब्रजजन को भावरूप मार्ग है । सो भगवदो  
गाये हैं जो—‘सेवा रीति प्रीति ब्रजजन की जनहित जग प्रकटाई’ ।

सो ब्रजभक्त की कहा रीति है ? जो श्रीठाकुरजी के सन्निधान में  
तो सेवा करें, सो स्वरूपानंद की अनुभव करि संयोग रस में मग्न रहैं  
और जब श्रीठाकुरजी गोचारन अर्थ ब्रज में पधारैं तब ब्रजभक्त विरह  
रस की अनुभव करि गान करें.



सो या प्रकार संयोग रस और विप्रयोग रस को अनुभव जाकों होय सो पूरो वैष्णव होय । और ( जामे ) एक न होय सो आधो वैष्णव है । सो कृष्णदास तो गायन की सेवा करत है । और श्रीगोवर्द्धन-नाथजी को दरशनहू होत है । परंतु व्रजभक्तन की रहस्य लीला को अनुभव नांही है । तासों ये आधो है । और चत्रभुजदास संयोग और विप्रयोग दोऊ रस के अनुभवयुक्त सेवा करत हैं, सो लीलासंबंधी कीर्तन हू गान करत हैं । तासों कुंभनदासजी चत्रभुजदास को पूरो बेटा कहे ।

यह कुंभनदासजी के वचन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके कहे, जो—कुंभनदास ? तुम सांची बात कही । जो भगवदीय है सोई बेटा है । और बहोत भये तो कौन काम के ?

सो चत्रभुजदासजी की वार्ता तो श्रीगुसांईजी के सेवकन में लिखी है, और अब कृष्णदास की वार्ता कहत हैं—

### वार्ताप्रसंग-८

सो ये कृष्णदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के गायन की सेवा कृष्णदास ग्वाल करते, सो गायन के ग्वाल हते । सो की श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास को गायन की सेवा दीनी हती । सो सगरे खिरक की सेवा करिके आछे झारि बुहारिके ता पाछे गायन के संग बन में जाते, सो सगरे दिन गाय चरावते । सो संध्या समय गायन को घेरिके ले आवते ।



एक दिन कृष्णदास गाय चरायके घर आवत हते स पूंछरी के पास आये । सो सगरी गाय तो खिरक में ग और एक गाय बहुत बड़ी हती, ताको एन बहोत भा हतो । सो दूध हू बहोत देती, और थन हू बडे हते । सो व गाय हरुवे हरुवे चलती । वा गाय के पाछे कृष्णदा आवत हते सो पूंछरी के पास श्रीगिरिराज की कंदरा में त एक नाहर निकस्यो । सो वे सगरी गाय तो भाजिके खिरक में आई । और वह गाय धीरे चलती, सो वा गाय के ऊपर नाहर दोरयो । तब कृष्णदासने नाहर सों ललकारिके कह्यो जो—अरे अधर्मी ! यह श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय है, और तू भूख्यो होय तो मेरे ऊपर आव ।

सो नाहर की यह रीति है जो—ललकारे सो ताही पे आवे । तब नाहर निकट आयो । सो जब कृष्णदासने वा गाय को हांकी सो वह गाय डरपिके भाजी सो खिरक में आई, और कृष्णदास कों नाहरनें मारयो । और सब गाय भाजिके खिरक में आई हती सो गायन कों गोपीनाथ आदि सब ज्वाल दुहन लागे ।

गोपीनाथ ज्वाल बडे कृपापात्र भगवदीय हते । सो देखे तो—श्रीगोवर्द्धननाथजी वा बड़ी गाय को दुहत हैं । और कृष्णदास वा गाय को बछरा पकरें ठाड़े हैं, सो कुंभनदासजी हू वहां ठाड़े हते । सो गाय बछराकों कों चाटत है । सो कुंभनदासजी कों खिरिक में एसो दर्शन मयो ।



ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी वा बड़ी गाय कों दुहिके आपु तो मंदिर में पधारे ।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सेन भोग धरे । सो कुंभनदास हू खिरक में ते मंदिर में चले, सो दंडोती सिला के पास आये । इतने में सब समाचार आये, जो कृष्णदास ग्वाल कों नाहरने मारयो ।

तब कृष्णदास की बात काहूने कुंभनदास सों कही, जो— तिहारे बेटा कृष्णदास कों नाहरने मारयो है । यह बात सुनिके कुंभनदासजी मूर्च्छा खाइके गिर पडे । सो एसे गिरे जो कछ देहानुसंधान न रह्यो । सो कुंभनदास कों ब्रजवासी वैष्णव बहोतेरो बुलावें सो कुंभनदासजी बोले नांही ।

तब ये समाचार काहूने श्रीगुसांईजी सों जायके कहे जो—महाराज ! कुंभनदास को बेटा कृष्णदास ग्वाल नाहरने मारयो है, और कृष्णदासने गाय बचाई । आपु नाहर के आडे परि देह छोडी, सो कृष्णदास पूछरी की और परे हैं ।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो—एसे मति कहो । क्यों ? जो गाय कृष्णदास को कबहू छोडि आवे नांही । सो काहेतें जो—अंत समय गाय संकल्प करत है, सो ताकों गाय उत्तम लोक में ले जात है । और कृष्णदासने तो श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय बचाई है, सो श्री गोवर्द्धननाथजी की गाय कृष्णदास कों कबहू न छोड़ेगी ।



तब श्रीगुसांईजी आप पूछे जो-कुंभनदासजी क है ? तब काहू वैष्णवने विनती कीनी जो-महाराज कुंभनदास कों तो पुत्र को शोक बहोत व्याप्यो है, सो दंडोत्त सिला के पास मूर्च्छा खायके गिरपरे हैं । सो कितने लोग पुकारत हैं, परि कुंभनदासजी काहू सों बोलत नांही । ज अचेत परे हैं ।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की सेवासों पहुँचि अनीसर कराय परवत तें नीचे पधारि दंडोत्त सिला के पास कुंभनदासजी परे हते तहां पधारे । ता समय वैष्णवने सब समाचार कहे । सो श्रीगुसांईजी आपु देखें तो कुंभनदासजी की पास सब लोग ठाड़े हैं । ता समय लोगननें कहे जो- महाराज ! कुंभनदासजी बडे भगवदीय हैं, परंतु पुत्र को शोक महा बुरो होत है, सो या पीडा सों कोई बच्ये नांही है ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-इनकों पुत्र को शोक नांह है, जो इनको और दुःख है । सो तुम कहा जानो ? इनको यह दुख है जो-मृतक में श्रीनाथजी के दरशन केसें होयगे । \* सो या दुःख सों गिरे है । सो अब तुमारो संदेह दूर होयगो

---

\* ऐसे महानुभाव भी संप्रदाय की मर्यादा रखते थे इसके दो कारण हैं । एक तो देखादेखी अन्य साधारण जीव मर्यादा का अतिक्रम न करे, दूसरा मृतक के मिष विप्रयोग की सिद्धि । आजकल जो लोग मृतक में भी सेवा करते हैं, सो मर्यादा का अतिक्रम करते हैं, और विप्रयोग के परमोत्कृष्ट फल से भी विमुख होते हैं ।



तब श्रीगुसांईजी आपु भगवदीयन को स्वरूप प्रकट करिवेके लिये कुंभनदासजी को पुकारिके कहे जो-कुंभन-दास ! सवारे श्रीनाथजी के दर्शन को आइयो, जो तुमको श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करवावेंगे ।

तब श्रीगुसांईजी के यह वचन सुनिके कुंभनदासजीने तत्काल उठिके श्रीगुसांईजी को साष्टांग दंडवत कीनी, और विनती कीनी । जो-महाराज ! आपु विना मेरे अंतःकरण की कोन जाने ? तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-हम जानत हैं, तुमको संसार संवंधी दुःख लगे नाहीं । जो कोई वैष्णव तिहारो एक क्षण संग करे तो वाको लौकिक दुःख न लागे । तो तुम को कहा ? तासों जावो, जो कृष्णदास के शरीर को संस्कार करो । पाछे सवारे दर्शन को आइयो । तब कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी को दंडवत करिके जायके कृष्णदास के शरीर को क्रियाकर्म किये ।

और श्रीगुसांईजी आप वेठक में जायके विराजे, तब सगरे वैष्णव वेठक में आयके बैठे । सो इतने में गोपीनाथदास ग्वाल (नें) आयके कह्यो जो-महाराज ! कृष्णदास को तो पूछरी पास नाहरने मार्यो, और मैं खिरक में गोदोहन करत हतो, सो ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वा बडी गाय को दुहत हते, और कृष्णदास वा गाय को बछरा थांभे हते । सो गाय बछरा को चाटत हती । सो एसो दर्शन खिरक में मोको भयो ।



तब श्रीगुसांईजी श्रीमुख सों कहे जो— यामें आश्चर्य कहा ? ये कृष्णदास ऐसे भगवदीय हैं जो आपु नाहर के आडे परे और श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय कों बचाई । से कृष्णदास के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु प्रसन्न होयके अपनी लीला में कृष्णदास कों प्राप्त किये । सो तुम भगवदीय हो, तासों तुमकों दर्शन भयो । ओर कों तो लीला के दर्शन दुर्लभ हैं ।

यह बात सुनिके सगरे वैष्णव ब्रजवासी बहोत प्रसन्न भये, जो सेवा पदार्थ एसो है ।

ता पाछें प्रातःकाल कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कों आये । तब श्रीगुसांईजीने सेवकन सों आज्ञा कीनी, जो—सबतें पहले कुंभनदासजी कों दरसन करवाय देउ, ता पाछे और सगरे लोग दरसन करेंगे । पाछें श्रीगुसांईजीने सबतें पहले कुंभनदासजी को दरसनकरवाय दियो । सो या प्रकार कुंभनदासजी के ऊपर श्रीगुसांईजी आपु अनुग्रह किये ।

सो काहेतें ? जो सूतकी को भगवत्—मंदिर में कोन आयवे देतो ! श्रीहरिरायजी कृत सो कुंभनदास कों सूतक में दरसन कराये । सो

भावप्रकाश. यह रीति वा दिन तें राखी । जो सूतक जाको होय सोहू दर्शन पावे. X

---

X आज भी प्रायः म्वाल के समय श्रीनाथद्वार आदि स्थानों में सूतकियों को दर्शन मिलते हैं ।



सो या प्रकार कुंभनदासजी की कृपातें सूतकीनको दरसन होन लागे । सो यह रीति श्रीगुसांईजी आपु यासों किये जो—वैष्णव के हृदय में स्नेह है, सो आगे कोई जानेगो नांही । तासों आगे के वैष्णवन को दरसन की छुट्टी रहे । तब वैष्णव हू सुख पावें, और श्रीगोवर्द्धननाथजी हू सुख पावें । तासों आगे दरसन की छुट्टी राखे ।

सो कुंभनदासजी भोग पर्यंत दरसन करि पाछे परासोली में जायके विरह के पद गावते । सो पद—

राग विहागरो—१ ‘तिहारे मिलन बिनु दुखित गोपाल’० ।  
२—‘अब दिन रात पहार से भये ।’

राग केदारो—३ ‘औरन के समीप विछुरनो आयो एक मेरे ही हीसा ।’

सो या प्रकार विरह के पद गायके कुंभनदासजीनें सूतक के दिन व्यतीत किये । ता पाछे शुद्ध होयके कुंभनदासजी अपनी सेवा में आये, सो जैसे नित्य नेम सों सेवा करते ताही प्रकार सों करन लागे । सो या प्रकार को स्नेह कुंभनदासजी को श्रीगोवर्द्धननाथजी में हतो ।

### वार्ताप्रसंग-९

और एक दिन श्रीगोकुलनाथजी और श्रीबालकृष्णजी ये दोउ भाई मिलिके श्रीगुसांईजी सों कहे जो—कुंभनदासजी कबहू श्रीगोकुल नांही गये हैं । सो ये कोई प्रकार श्रीगोकुल तांई जांय तब श्रीनवनीतप्रियजी के दरसन कुंभनदासजी करें ।



तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—कुंभनदासजी तो श्री-  
गोवर्द्धननाथजी की रहस्य लीला में मगन हैं, सो इनकों  
श्रीगोवर्द्धननाथजी किये हैं । तब श्रीगोकुलनाथजी कहे जो—  
इनको ले जायवे को उपाय तो करिये । पाछे न आवें तो  
भगवद् इच्छ । तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—उपाय करो,  
परंतु कुंभनदासजी श्रीयमुनाजी पार कबहू न उतरेंगे ।

पाछे कछुक दिन में श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल पधारे  
हते, और श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी श्रीनाथजी-  
द्वार में हते । सो वैशाख सुदि ११ के दिन श्रीगोकुलनाथजी  
श्रीबालकृष्णजी सों कहे जो—श्रीगोकुल में श्रीगुसांईजी हैं और  
आपुन दोउ जने यहां है । तासों कुंभनदासजी कों श्रीगोकुल  
ले चलिये ।

तब श्रीबालकृष्णजीने कह्यो जो—कैसे ले चलोगे ? जो  
कुंभनदासजी तो असवारी पर बैठत नाहीं हैं । सो तब श्रीगोकुल-  
नाथजीने कह्यो जो—कुंभनदासजी असवारी पें तो बैठेंगे नाहीं,  
और दिन में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन छोड़िके कहां जायंगे  
नाहीं । तासों रात्रि उजियारी है, सो हमहू पावन सों  
चलेंगे सो या प्रकार सों चले चलेंगे । सो देखें कहा कौतुक  
होत है ? जो कुंभनदासजी सरिखे भगवदीय को संग तो या  
मिष तें होयगो, सो यही बडो लाभ होयगो ।

पाछे दोनो भाई श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती ताई



सेवा सों पहुँचिके श्रीनाथजी कों पोंढाय अनोसर करवाय बाहिर आये और कुंभनदासजी को हाथ जोडिके भगवद् वार्ता लीला को भाव कहन लागे । सो कुंभनदासजी लीलारस में मगन होय गये, सो कछु सुधि न रही जो— हम कहाँ हैं ?

तब श्रीगोकुलनाथजी भगवद् वार्ता करत कुंभनदासजी को हाथ पकरिके अन्योर की ओर परवत सों उतरिकें श्रीगोकुल कों चले । सो रहस्य वार्ता में मगन हैं । और श्रीबालकृष्णजी दोय चारि वैष्णव संग चुपचाप होयके कुंभनदासजी की और श्रीगोकुलनाथजी की वार्ता सुनत श्रीगोकुल कों चले । तब मारग में श्रीगोकुलनाथजी वार्ता करिके कुंभनदासजी सों पूछे । जो—श्रीस्वामिनीजी को शृंगार कबहु श्रीगोवर्द्धनधर हू करत हैं ? तब कुंभनदासजी प्रेम में मगन होयके कहे जो—हां, हां, करत हैं ।

जो—“ एक दिन आश्विन महिना में श्रीनाथजी और श्रीस्वामिनीजी ललितादिक सखी संग रात्रि कों वन में फूल बीने । ता पाछे समाज सहित रासमंडल के पास सिंगार को चोतरा हैं सों ता ऊपर आपु विराजे । तब विसाखाजी सिंगार करन लागी । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो—आजु सिंगार में करुंगो । ”

“सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीस्वामिनीजी के पास ठाडे भये । सो मुखादिक के दर्शन विना रह्यो न जाय दोउन



सों। तब विसाखाजी परम चतुर दोउन के हृदय को अभि-  
जानि श्रीस्वामिनीजी के आगे एक दर्पन धरयो। तब वा द  
में दोउन के श्रीमुख सन्मुख भये, सो अवलोकन लागे।  
श्रीठाकुरजी बडे लंबे बार स्याम सचिकन श्रीहस्त में कांक  
सों सम्हारि, एक एक बार में झीने मोती परम चतुराई  
पिरोयके श्रीस्वामिनिजी के मुखचंद-शोभा दर्पन में देखि  
प्रसन्न होय गये, सो हाथ सों केश छुटि गये। तब स  
मोती बार में सो निकसि शृंगार को चोतरा हैं रतन खचि  
तहां फेलि गये। तब बडो हास्य भयो। जो इत  
वारलों शृंगार किये सो एक छिन में बडो होय गयो। सो र  
सखीनने कही। ”

“तब श्रीठाकुरजीने विसाखाजी सों कह्यो जो-तुम बेन  
पकरे रहो, मैं मोती पिरोऊं। तब श्रीविसाखाजीने बेन  
पकरी। सो तब फेरि बेनी मोतीन सों शृंगार करि मोती  
सों मांग संवारी। पाछे फूलन के आभूषन सखीजनने बनाय  
के श्रीठाकुरजी कों दिये। सो श्रीठाकुरजी पहरावत जांर  
और छिन छिन में मुखचंद की शोभा देखिके रोम रोम  
आनंद पावें। सो या प्रकार सब शृंगार श्रीगोवर्द्धननाथर्ज  
करिके काजर, बेंदी, तिलक और चरणमें महाबर किये। पाछे  
श्रीस्वामिनीजी श्रीगोवर्द्धनधर को शृंगार किये। ता पाछे  
रासविलास आदि अनेक लीला करी ”।



सो या प्रकार वार्ता करत २ श्रीगोकुल साम्हे श्रीजमुनाजी के तीरलों कुंभनदासजी आये । पाछे पार श्रीगोकुल तें नांव पर चढिके श्रीगुसांईजी आपु या पार आये\* । सवारो हू भयो । सो कुंभनदासजी कों शरीर की सुधि नांही, लीलारस में मगन हते ।

तब कुंभनदासजी सावधान होयके देखे तो सवारो भयो है । सो इतने में श्रीगुसांईजी कों देखिके श्रीगोकुलनाथजी सों हाथहू छूटि गयो । सो कुंभनदासजी महा उतावल सों भाजे जो श्रीगोवर्द्धननाथजी के यहां कीर्तन कोन करेगो ? जो—हाय हाय मेरी सेवा गई ।

सो या प्रकार मनमें कहत दोरे, सो अति बेगि दोरे । तब श्रीगोकुलनाथजी और श्रीबालकृष्णजी और सब वैष्णव कुंभनदासजी कों पकरिवे कों पीछे ते दोरे । सो कुंभनदास तो भाजे दोड़े गये । इन कोई कों पाये नांही । पाछे श्रीगुसांईजी की पास आये । तब श्रीगुसांईजी कहे जो—अब कहा कुंभनदास कों पावोगे ? जो इनको यहां काहेकों ले आये हों ? जो ये श्रीजमुना के पार कबहू न उतरेंगे । सो हमने तुमसों पहलेही कह्यो हतो ।

तब श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी सों कहे जो—पार न उतरे तो कहा भयो ? परंतु सगरी रात्रि भगवद्वार्ता के भावमें

---

\* श्रीबालकृष्णजीने पहिले से वैष्णव द्वारा समाचार भेजाथा, उसे सुनकर ।



महा अलौकिक सिद्धि मिले तें भई । सो वह बडो लाभ भ  
है, जो भगवदीयन को सत्संग एक क्षण हू दुर्लभ हैं ।

यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—यह तो तुम ठ  
कहे, परंतु अब या समय तो कुंभनदास को दोरनो परचो  
और जहां ताई कुंभनदास श्रीगिरिराज ऊपर न जायंगे, त  
ताई श्रीगोवर्द्धननाथजी जागेंगे नाहीं । जो कुंभनदास जगाय  
के कीर्तन गावेंगे तब जागेंगे । सो एसे, भक्त के आधी  
श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं । तासों तुमकों भगवद्वाता सुन  
होय तो परासोली में जमुनावता में जायके कुंभनदास स  
पूछियो । सो तहां कुंभनदासजी तुम सों कहेंगे ।

ता पाछे श्रीगोकुलनाथजी श्रीबालकृष्णजी सब वैष्ण  
सहित श्रीगोकुल पधारे । सो श्रीगुसांईजीको घोड़ा जीन सहि  
पार बंध्यो हतो, सो ता पर आप श्रीगुसांईजी बेगि ही असवा  
होयके घोड़ा दोरायके चले । और कुंभनदासजी तो दोरे जा  
हते, सो तहां आयके श्रीगुसांईजी कुंभनदासजी सों कहे जो—  
तुमने कबहू यह मारग देख्यो नाहीं, सो तुम भूलि जाओगे  
तासों घोड़ा के पीछे पीछे दोरे आवो ।

तब कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी के पीछे दोरे चले  
जाय । सो यहां रामदास भीतरिया आदि जो न्हायके पर्वत  
ऊपर आवें सो (ये) छुप जाय । सो एसें करत चार घड़ी दिन  
चढ्यो । तब श्रीगुसांईजी आपु गिरिराज पधारिके घोड़ा पर



तैं उतरिके तत्काल स्नान करि पर्वत ऊपर मंदिरमें पधारे ।  
तब देखे तो सगरे भीतरिया रामदास सहित न्हायके मंदिर  
में आये हैं ।

तब श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो—रामदास ! आज इतनी  
अवार क्यों भई है ? तब रामदासने वीनती कीनी जो—महा-  
राज ! आज न जानिये कहा भयो है ? जो चारि बेर न्हाये  
और चार्यों बेर सगरे भीतरिया छुवाने । सो अब पांचमी वार  
न्हायके आये हैं, सो कारन जान्यो न परचो ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—यह कुंभनदासजी के  
लिये श्रीगोवर्द्धननाथजी कौतुक किये हैं ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु शंखनाद करवायके श्रीगोव-  
र्द्धननाथजी को जगाये । ता समय कुंभनदासजीने जगायवे के  
पद गाये । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी उठे । तब कुंभनदासजीने  
अपने मन में बहोत हरष मान्यो । जो—मेरी कीर्तन की सेवा  
मिली । ता पाछें राजभोग पर्यंत श्रीगुसांईजी सेवा सों पहोंचे ।  
सवारे नृसिंह चतुर्दशी हती । सो केसरी पिछोडा कुलह  
सिद्ध कियो । ता पाछें सेन पर्यंत सेवा सों पहोंचे ।

सो या प्रकार कुंभनदासजी कवहू श्रीगोकुल कों न गये ।  
सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीलारस में मगन रहते । सो वे  
कुंभनदासजी ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हते ।



## वार्ता प्रसंग-१०

और एक समय परासोली में कुंभनदासजी खेत ऊँ बैठे होते,—और श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदास के आगे खेत खेलत होते। इतने में उत्थापन को समय भयो तब कुंभनदास उठिके श्रीगिरिराज चलिबे को कियो। तब श्रीनाथजी कुंभनदासजी सों कही जो—तू कहां जात है ? सो तू इन (नैं) कही जो—उत्थापन को समय भयो है, सो गिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कों जात हों। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो— मैं तो तिहारे पास खेलत हों, तासों तू ऊँ क्यों जात है ?

तब कुंभनदासजी ने कही जो— महाराज ! यहां तु खेलत हो और दर्शन देत हो सो तो अपनी ओर तैं कृपा का के, और अबही तुम भाजि जाव तो मेरी तुमसों कछू चं नांही। और मंदिर में तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के पथरा हो सो उहां सों कहूं जावो नांही, और उहां सब को दर्शन दे हो। और मंदिर में दर्शन की आसक्ति जो मोकों है, तासों तुम घर बैठेहू मोकों कृपा करि दर्शन देत हो। य समय तुम कृपा करि दर्शन दे अनुभव जतावत हो सो मंदिर की सेवा दर्शन के प्रताप सों। तासों उहां गये बिन न चले।\*

\* श्रीआचार्यजी के सेवक अलौकिकतामें भी कैसे अडग, निर्लोभी, स्वतंत्र और श्रीआचार्यजी के संबंध को दृढत। पूर्वक धारण करने वाले थे सो



तब श्रीगोवर्द्धननाथजी हसिके कहे जो— कुंभनदास ! तेरो भाव महा अलौकिक है, तासों में तोकों एक छिन नांही छोडत हों ।

ता पाछे श्रीनाथजी और कुंभनदासजी परासोली सों संग चले । सो गोविंदकुंड ऊपर आये तब शंखनाद भये । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिर में आये, और कुंभनदासजी आन्योर ताई संग आये । सो तहां तें पर्वत ऊपर आप चढि मंदिर में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये । सो कुंभनदासजी ऐसे भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-११

और एक दिन माली दोयसे आम बडे बडे महा सुंदर टोकरा में लेके परासोली चंद्रसरोवर है तहां आयो, पाछे टोकरा उतारि के कुंड के पास सगरे आम भूमि में धरि कें कपडा तें पोंछि पोंछि मेल छुडावन लाग्यो । ता समय कुंभनदासजी राजभोग आरती के दर्शन करिके श्रीगिरिराज तें चले, सो चंद्रसरोवर ऊपर जल पीवन कों आये । सो आम बहुत सुंदर श्रीगोवर्द्धननाथजी के लायक देखिके कुंभनदासजी वा माली सों पूछे

---

यहां प्रत्यक्ष है, ऐसे ही अन्यत्रभी यह पाठक प्रत्येक शब्दों के तल-स्पर्शी ज्ञान से जान सकते हैं । मर्यादा और पुष्टिभक्तों में इतनाही तार-तम्य है । मर्यादाभक्त भगवत् प्राप्ति से बिब्हल हो जाते हैं । और पुष्टि-स्थ भक्त भगवत्प्राप्ति होने पर भी उस आनंद को हृदय में सावधानता पूर्वक स्थापित कर आचार्य के कृपाबल का बिचार करते हैं ।



जो—ये आम तू कहां ले जायगो ? वा माली ने कही जं मथुरा ले जाऊंगो, वहां इनके दस रुपैया लेऊंगो ।

सो कुंभनदास के पास तो कछू पैसाहू न हते । सो व करें ? तब मनमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्मरण करिकें व जो—महाराज ! यह सामग्री परम सुंदर है, और आपु ला है, (क्यों ?) जो उत्तम वस्तु के भोक्ता आपुही ह तासों ये आम आपु आरोगो ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी सगरे आम आयकें आरोगे सो वा माली कों खबरी नाहीं । सो यह माली टोकरामे उ भरिके मथुरा गयो । सो सांझ होय गई ।

सो एक रजपूत मांट गाम में ते मथुरा कछू कार्यार्थ आ हतो, सो वाने आम देखिके कही जो—कहा लेयगो ? तब माली कही जो—दस रुपैया तें घाट न लेऊंगो । तब वह रजपूत दस रुपै देके आम सगरे लेके श्रीयमुनाजी के तट पर आयो । वा रजपूत के संग एक सनोडीया ब्राह्मण हतो सो वाकों सौ आ दिये । सो दोऊ जनेन ने पचास २ आम घर के लिये धरि पचास २ आम दोउनने श्रीयमुनाजी के किनारे बैठिके चूस ता पाछे श्रीमथुरा में एक हाट ऊपर दोऊ जने सोये । दोऊन को स्वप्न में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन भये । सो ये जागे

---

X महानुभाव भक्त के द्वारा अरोगाई हुई वस्तु कोई आदमी भूल से न ले तो उसमें इसी प्रकार की कृपा होती है ।



तब वा रजपूत ने कही जो—ब्राह्मणदेव ? तुमने कछू देख्यो । तब वा ब्राह्मणने कह्यो जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाकुर को दर्शन भयो है । तब वा रजपूतने वा ब्राह्मण सों पूछी जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कहां विराजत हैं ? तब वा ब्राह्मण ने कही जो—यहां ते सात कोस ऊपर श्रीगोवर्द्धन पर्वत है, तहां विराजत हैं ।

तब वा रजपूतने ब्राह्मण सों कही जो—तू महा मूरख है, जो—एसे स्वरूप कों साक्षात दर्शन करि पाछें ओर ठोर क्यों भटकत है ? सो मैने स्वरूप के दर्शन स्वप्न में पाये । सो मोसों रह्यो नांही जात है । जो सवारे तू सगरे आम ले और मैं तोकों रुपैया पांच देऊंगो जो मोकों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कराय दे । तब वा ब्राह्मण ने कही जो—आछो ।

ता पाछें सवेरो भयो । तब वा रजपूतने पचास आम वा ब्राह्मण कों दीने । तब वह ब्राह्मण मथुराजी में अपने घर आयके अपने पास के दू आम सौ देके वा रजपूत के पास आयके दोउ जने चले । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती के दर्शन दोउ जनेन ने किये । सो श्रीनाथजीने वा रजपूत को मन हरलीनो ।

ता पाछे दर्शन होय चुके । तब रजपूत ने अपने हथियार कपडा पांच रुपैया वा ब्राह्मणको दिये, और दस रुपैया और हते सो पास राखे । तब वह ब्राह्मणने कही जो—मैं घर जाऊंगो । सो वह ब्राह्मण तो मथुरा अपने घर आयो ।



पाछे वह रजपूत एक धोवती पहरे दंडोती सिला के प  
ठाड़ो होय रह्यो । सो इतने ही में श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अने  
करायके श्रीगुसांईजी आपु पर्वत तें नीचे पधारे । तब रज  
नें दंडवत करिके कही जो-महाराज ! मैं बहोत दिनन तें भ  
क्त हतो, सो मेरो अंगिकार करि मोकों अपने चरण प  
राखिये । तब श्रीगुसांईजी कहे जो-तुम पर कुंभनदासजीव  
कृपा भई है, तासों तिहारी यह दशा है । जो तेरे व  
भाग्य हैं ।

सो तब श्रीगुसांईजी आपु अपनी बैठकमें पधारि व  
रजपूत कों नाम सुनायो । तब वा रजपूत ने दस रुपैया श्री  
गुसांईजीकी भेट किये । तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-तू अप  
पास रहन दे । क्यों जो-तेरे पास खरची नांही हैं, (तेंने  
सब वा ब्राह्मण को दीनी । तब वा रजपूतने दंडवत् करिके  
वीनती कीनी जो-महाराज ! अब मेरे रुपैयान सों कहा का  
है ? मैं तो अब आपुकी शरण हूं, जो टहल बतावोगे सो  
करुंगो । पाछे वा रजपूतने विनती कीनी जो-महाराज ! पू  
जन्म को मैं कोन हूं, और कोन पुन्य तें मोकों आप को दर्शन  
मयो है ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कृपा करि वासों कहे जो-तुम पहले  
राजपूत का व्रजमें गोप हते । सो तुम शस्त्र बांधिके  
मूलस्वरूप श्रीनंदरायजीकी गायन के संग जाते, सो  
एक दिन तुमने सर्प मारयो, सो अपराध तें तुमने या संसारमें  
बहोत जन्म पाये ।



पाछे ये आम कुंभनदासजीने देखे सो मन करिके श्री-गोवर्द्धननाथजी को समर्पन किये । सो वा माली के सगरे आम कुंभनदासजीने श्रीनाथजी को अंगीकार करवाये । ता पाछे वा माली के पासतें दस रुपैया देके तुमने आम लिये, सो पचास तुमने राखे । तुमने वे महाप्रसादी आम लिये, और तुम दैवी जीव हते, सो तिहारो मन फेरिके श्रीनाथजीने स्वप्न में दर्शन दियो । और वह ब्राह्मण दैवी जीव न हतो, सो वाकों स्वप्नमें श्रीनाथजीने दर्शन दियो, परंतु तो हू वाको ज्ञान न भयो । सो लीला में तेरो नाम 'नेना' हतो ।

अब तुम श्रीनाथजीकी गायन के संग शस्त्र बांधिके जायो करो । और श्रीनाथजीकी रसोई में महाप्रसाद लेऊ । जो शस्त्र कपड़ा हम तुमकों देंगे । और आज तुम व्रत करो, जो कालि तुमकों समर्पन करवावेंगे । तब वा रजपूतने दंडवत कीनी ।

ता पाछे दूसरे दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी को श्रृंगार करि वा रजपूत को न्हायके श्रीनाथजी के साम्हे ब्रह्मसंबंध करवाये । तब वा रजपूतकी बुद्धि निर्मल होय गई । ता पाछे वा रजपूत कों जूठनि की पातरि धरी पाछे शस्त्र दे के श्रीगुसांईजी आपु वाकों प्रसादी कपडा दिये, सो लेकें घोड़ा ऊपर चढिके गायन के संग गयो । सो वाको मन श्री-गोवर्द्धननाथजी के स्वरूप में लग्यो, सो कछुक दिन में श्री-नाथजी गायन में वा रजपूत कों दर्शन देन लागे । ता पाछे वह रजपूत बड़ो कृपापात्र भगवदीय भयो ।



सो यामें यह जताये जो—कुंभनदासजी मानसी सेवा में भोग  
 भीहरिरायजीकृत सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगे । सो महाप्र  
 भावप्रकाश. आम लियेतें वा रजपूत के ऊपर भगवद्भक्त  
 भयो । तासों जो भगवदीय अपने हाथसों भोग धरत हैं, सो  
 सर्वथा ही श्रीठाकुरजी प्रीति सों आरोगत हैं । सो महाप्र  
 अलौकिक होय तामें कहा कहनो ?

ता पाछे वा रजपूत के दोय बेटा हते, सो वा रज  
 के पास आये । तब वा रजपूतने अपने दोय बेटानसों क  
 जो—बेटा ! आपुन तो सिपाई हैं । सो कहूं लराई में बृथा प्र  
 जाते, तासों मो पर प्रभु कृपा करी है, तासों अब ह  
 यह जानियो जो—मेरो पिता मरि गयो । तासों अब तुम ज  
 के अपनो घर सम्हारो, हमारी वाट मति देखियो । हम  
 नांही आवेंगे.

पाछे वा रजपूत के दोऊ बेटा अपने घर आये, अ  
 सब समाचार कहे जो—हमारो पिता बेरागी भयो है  
 तासों अब हमारो कहा काम है ? पाछे सब घर के मो  
 छाड़िके बेठि रहे ।

या प्रकार महाप्रसाद तथा भगवदीयन को दर्शन (जे.  
 देवी जीव होय तिनकों फलित होय । सो यह सिद्धांत जताये  
 सो वे कुंभनदासजी ऐसे भगवदीय हैं जो सहज में आंबा  
 द्वारा रजपूत ऊपर कृपा किये । तासों भगवदीय जो कृत



करत हैं सो अलौकिक जानिये । क्यों ? जो श्रीगोवर्द्धननाथजी भगवदीय के वश हैं ।

और कुंभनदासजी की स्त्री और पांचो बेटा नाममात्र पाये । सो कुंभनदासजी के संग तें उद्धार भयो । और कुंभनदास की भतीजी, (जो) भाई की बेटी हती सो ब्याह होत ही विधवा भई । सो लौकिक संबंध यासों न भयो ।

क्यों ? जो मूल में दैवी जीव है । सो श्रीविशाखाजी की सखी श्रीहरिरायजी कृत है । सो लीला में याको नाम 'सरोवरि' है ।

भावप्रकाश. याके मातापिता मरि गये यासों ये कुंभनदास के घर में रहती । लीला में विशाखाजी की सखी है । सो यहां (हू) कुंभनदासजी की आज्ञा में तत्पर । सो श्रीआचार्यजी की कृपापात्र और कुंभनदासजी (जैसे) भगवदीय को संग । ताते भतीजी को हू श्रीगोवर्द्धननाथजी दर्शन देते, और सानुभाव जनावते ।

### वार्ता प्रसंग-१२

और एक समय श्रीगुसांईजी को जन्म दिवस आयो । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने मनमें विचारे जो-मेरो जनम-दिवस श्रीगुसांईजी सब वैष्णवन सहित जगतमें प्रकट किये । तासों मैं हू अब श्रीगुसांईजी को जन्म दिवस प्रकट करूं ।

सो यह विचारिके जब पूस वदी ८ कूं रामदासजी श्रीनाथजी को श्रृंगार करत हते, ता समय कुंभनदासजी श्रृंगार के कीर्तन करत हते । और श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में हते । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी रामदासजी सों कहे जो-मेरे



जनम-दिवस कों श्रीगुसांईजी आपु बडो उत्साह करते तासों मोकों श्रीगुसांईजी को जनम-दिवस माननो है । सो सगरे मिलिके श्रीगुसांईजी के जनम-दिन को मंडान जो मोकों सामग्री आरोगावो । सो कालि जनम-दिन है

तब रामदास ने विनती कीनी जो- महाराज ! सामग्री करें ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो-जलेबी रस करो । तब रामदास, कुंभनदासजी ने कह्यो जो-बहुत आह

पाछे रामदासजी सेवा सों पहुँचिके सगरे सेवकन भेले करिके कह्यो जो- सवारे श्रीगुसांईजीको जनम-दिन है, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सामग्री करनी । तब सद्गुरु ने कही जो- घी चून चहिये इतनो मेरे घरसों लीजिये पाछे कुंभनदासजी तत्काल घर आये । तब घरतो न हतो नांही, सो दोय पाडा और दोय पडिया एक ब्रवासी के पास बेचिके पांच रुपैया लायके कुंभनदासजी रामदासजी कों दिये । और सब सेवकनने एक रुपैया, कोई दोय रुपैया ऐसे दिये, सो ताकी खांड मंगाये । और घी में सद्पांढे लाये । सो सगरी रात्रि जलेबी किये ।

ता पाछे प्रातःकाल भयो । तब रामदास अभ्यंग करायके केसरी पाग, केसरी वस्त्र, वा कलह, श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुलसों अपने श्रीहस्तसों सि करिके पठाये हते सो धराये । पाछे भोग धरे ।



तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदासजी सों कहे जो—तुम श्रीगुसांईजीकी बधाई गावो । तब कुंभनदासजी बधाई गाये । सो पद—

राग देवगंधार-१ ‘ आजु बधाई श्रीवल्लभद्वार० ’ ।

राग सारंग-२ प्रकट भये श्रीवल्लभ आय० ’ ।

सो या भांति सों कुंभनदासजीने बहोत बधाई गाई, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी बहोत प्रसन्न भये । और यहां श्री-गुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराय, केसरी बागा कुलह<sup>x</sup> धराय, राजभोग धरिके श्रीनाथजीद्वार पधारे’ ।

तब रामदास कहे जो— राजभोग आये हैं । तब श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके परवत के ऊपर मंदिरमें पधारे । तब समय भये भोग सरायवे जायके देखे तो जलेबी के अनेक टोकरा धरे हैं ।

तब श्रीगुसांईजी आपु रामदासजी सों पूछे जो—आज कहा उत्सव है, जो यह सामग्री इतनी अरोगाये हो ? तब रामदासजीने कही जो—आज आपु को जनम-दिन श्रीगोवर्द्धनधर माने हैं, और सब सेवकन सों सामग्री कराइ है । तब श्रीगुसां-

<sup>x</sup> कुलह का शृंगार श्रीगुसांईजीने प्रकट किया है । (देखो भावभावना) ।

१ श्रीगुसांईजी खास भगवदुपयोगी कार्य बिना श्रीगिरिराज या गोकुल में लगातार तीन रात्रि उपरांत निवास नहीं करते थे । इसी लिये आप नित्य प्रति गोकुल से गोवर्द्धन और गोवर्द्धन से गोकुल सेवार्थ एक एक रात्रि व्यतीत कर पधारते थे ।



ईजी आपु भोग सराय आरती किये । ता पाछे अनोसर कराय के आपु अपनी बेठकमें पधारे और बिराजे । तहां रामदासजी सों बुलायके श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो-सामग्री बहोत है, और सेवक ( मंदिर के ) तो थोरे हैं और निष्कंचन हैं, सो सामग्री कौन प्रकार सों भई है ?

तब रामदासजी कहे जो-महाराज ! घी मेंदा तो सद्-पांढे दिये, और पांच रुपैया कुंभनदासजी दिये हैं । और ये वैष्णव कोई एक, कोई दोय, जो जासों बनि आयो सो दियो । सो एसे रुपैया २१) भये । ताकी खांड आई । सो श्री-प्रभुजीने अंगीकार कीनी ।

इतने में कुंभनदासजीने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत कीनी । तब कुंभनदासजी सों श्रीगुसांईजी पूछे जो- कुंभन-दास ! तुम पांच रुपैया कहां सों लाये ? जो-तिहारे घरकी बात तो हम सब जानत हैं । तब कुंभनदासजी कहे जो-महाराज ! मेरो घर कहां है ? मेरो घर तो आप के चरणारविंद में है, जो यह तो आप को है । दोय पाडा और दोय पडिया अधिक हती सो बेचि दीनी है । अपनो शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचिके आपके अर्थ लागे, तब वैष्णवधर्म सिद्ध होय । जो महाराज ! हम संसारी गृहस्थ हैं, सो हमसों वैष्णवधर्म कहा बने ? यह तो आपकी कृपा, दीन जानके करत हो ।

सो यह कुंभनदासजी के वचन सुनिके श्रीगुसांईजी को हृदो भरि आयो । तब आपु कहे जो-श्रीआचार्यजी आप



जाकों कृपा करिके एसी दैन्यता दें सो पावे । सो तब श्री-  
गोवर्द्धननाथजी सदा इनके वस रहें ।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी की बहोत  
सराहना करे । सो वे कुंभनदासजी ऐसे कृपापात्र हते ।

वार्ता प्रसंग-१३.

और एक समय कुंभनदासजीने श्रीआचार्यजी सों पुष्टि-  
मारग को सिद्धान्त पूछ्यो । तब श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके  
चोरासी अपराध, राजसी, तामसी, सात्त्विकी भक्तनके लक्षण  
और प्रातःकालतें सेन पर्यंतकी सेवा को प्रकार कहे, बाल-  
लीला किशोरलीला को भाव कहे । पाछे कहे जो- जा पर  
श्रीगोवर्द्धननाथजी की कृपा होयगी सो या काल में पूछेंगे  
और करेंगे । जो तुम सरिखे भगवदीय पूछेंगे और करेंगे ।  
आगे काल महाकठिन आवेगो, और न कोई पूछेगो और न  
कोई कहेगो । सो या प्रकार सों श्रीआचार्यजी आपु  
कुंभनदासजी सों कहे ।

सो काहेतें ? जो सिंघिनी को दूध सोने के पात्र विना रहे नांही ।  
श्रीहरिरायजी कृत तैसे हों भगवद्लीला को भाव और भगवद्धर्म  
भावप्रकाश, भगवदीय विना और के हृदय में रहे नांही ।

वार्ता प्रसंग-१४

और एक दिन कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी सों विनती  
कीनी जो-महाराज ! मेरे घरमें स्त्री है और सात में तैं पांच  
बेटा हैं, और सात बेटानकी बहू हैं । परंतु भगवद्भाव काहूको



दृढ़ नांही है । और एक भतीजी है सो ताको भगवद्भाव दृढ़, ताको कारन कहा ?

तब श्रीगुसांईजी आपु सगरे वैष्णवन कों सुनायके कुंभनदासजी सों कहे जो— कुंभनदास ! तुम मन लगायके सुनियो, जो सावधान होउ । मैं एक पुरान को इतिहास कहत हों । तब सगरे वैष्णव सावधान भये ।

पाछे श्रीगुसांईजी कहे । जो— एक ब्राह्मण हतो ताके एक कन्या हती । सो जब वह कन्या ब्याह लायक भई तब ब्राह्मणने एक और ब्राह्मण कों बुलायके कह्यो जो— मेरी कन्या को वर ठीक करिके आछो ठिकानो देखिके सगाई करि आवो । तब वह ब्राह्मण तो सगाई करिवे कों गयो । ता पाछे दूसरो ब्राह्मण आयो, सो बाहूसों ऐसेही कह्यो । तब दूसरो ब्राह्मण हू सगाई करिवे कों गयो । पाछे तीसरो ब्राह्मण आयो, सो बाहूसों ऐसेही कह्यो । सो तीसरो हू ब्राह्मण सगाई करिवे गयो । पाछे चोथो ब्राह्मण आयो, सो बाहूसों ऐसेही कह्यो । सो तब चारों ब्राह्मण चार दिशानमें भगवद् इच्छातें गये । सो दोय २ तीन २ कोस ऊपर एक गाम हतो, तहां न्यारे २ गामन में चारों ब्राह्मणने सगाई करी । सो एक महीना पीछे सगाई ठेराई । पाछे वरन कों तिलक करि के चारों ब्राह्मण या ब्राह्मण की आगे आयके कह्यो जो— सगाई करि तिलक करि आये हैं । सो एक महिना पीछे प्रातः-काल की लगन है । या प्रकार चारों ब्राह्मणनने कही ।



तब बेटी के पिताने कह्यो जो- यह तुमने कहा कियो। जो बेटी तो मेरी एक है। सो तुम चारों जने चार वर करि आये सो कैसे बनेगी ? तब उन चारों ब्राह्मणनने कही जो- तेनैं कह्यो तब हमने सगाई करी है। जो महीना पीछे बेटी को ब्याह न करेगो तो हम तेरे ऊपर जीव देंयगे। जो- हम तिलक करि सगाई करी सो कबहू छूटे नांही।

तब वा ब्राह्मणनैं कह्यो, जो- भलो, महीना है सो ता वखत की दीखेगी, जो कहा होनहार है। तब चारों ब्राह्मणने कही जो- जब एक दिन ब्याह को रहेगो, सो तब हम ब्याह करावन आवेंगे। सो यह कहिके चारों ब्राह्मण अपने घरकों गये। पाछे या बेटी के पिता कों महा चिंता भई। जो-अब मैं कहां निकसि जाऊं ? जो प्राण छूटे तोऊ कन्या की खराबी है। तासों अब मैं कहा करूं ?

सो मारे चिंता के खानपान सब छूटि गयो, सो एसे चारि दिन भूखे गये। ता पाछे पांचमे दिन नदी ऊपर यह ब्राह्मण संध्यावंदन करत हतो सो एक भगवदीय फिरत २ आय निकस्यो, सो नदी में न्हायो। इतने ही में यह ब्राह्मण महादुःख सों पुकारिके रोयो। सो भगवद् भक्त को हृदय कोमल, सो वा ब्राह्मण को दुःख सही नांही सके। तब उन भगवद्-भक्तनने वा ब्राह्मण सों पूछी जो- ब्राह्मण ! तुमकों एसो कहा दुःख है ? जो तेने पुकारिके रुदन कियो है।



तब वा ब्राह्मणने अपनी सब बात कही । यह सुनिके वा भगवद्भक्तने कही जो— मैं तो एक ठिकाने रहत नांही हों, परंतु तेरे लिये या नदी पे बैठ्यो हूं । जो मोकों प्रकट मति करियो । और जा दिन को ब्याह होय तासों एक दिन पहलें मोकों आयके कहियो, जो ठाकुरजी भली करेंगे । और अब तुम घर जायके खानपान करो । तब वा ब्राह्मणने कही जो— भलो ।

पाछे जब ब्याह को एक दिन रह्यो, सो प्रातःकाल को समय हतो । तब वा ब्राह्मण वा भगवद्भक्त के पास आयो, और विनती कीनी जो— प्रातःकाल को ब्याह है, तातें अब कछु उपाय बतावो ।

तब वा वैष्णवनं कही जो— संध्या कों आइयो । पाछे सांझकों ब्राह्मण वा भगवद्भक्त की पास गयो । तब वा भक्तने कही जो— तिहारे आगे जो पशु पक्षी आवें सों तिनको तुम पकरि लीजो । तब वह ब्राह्मण नदी के ऊपर बैठ्यो । सो बिलाड़ी आई सो पकरी । ता पाछे एक कुत्ती आई सो पकरी । पाछे एक गदही आई, सो पकरी । सो तब वा भक्तने कही जो— इन तीन्योंन को एक कोठामें मूंदि देऊ । सो कोठा में मूंदि दिये । तब वा भक्तने कही जो— तेरी बेटी सोय जाय तब बाहू कों यामें मूदी दीजियो । ता पाछे बेटी सोई, तब वा बेटी कों खाट सहित कोठा में मूंदिके ताला लगायके कहे जो— ब्याह की तैयारी करो ।



सो तब प्रहर रात्रि गये चारों वर आये। पाछे सगाई करिवे वारे चारों ब्राह्मणने समाधान करिके उनकों बैठाए। इतने में ब्याह को समय भयो तब ब्राह्मणने भगवद्भक्त सों कही जो—अब ब्याह को समय भयो है। तब भक्तने कह्यो जो—कोठरी खोलिके चारों वरन कों चारों कन्या देऊ, और ब्याह करि देउ।

पाछे वह ब्राह्मण तालो खोलिके देखे तो चारों कन्या एक रूप, एक बय, बराबरी पहिचानि न परे। सो चारों कन्या चारों वरन कों ब्याह, विदा करि दीनी।

पाछे चारों ब्राह्मण कों दक्षिणा दे विदा किये। पाछे भगवद्भक्तने कही जो—हम चलेंगे। तब ब्राह्मणने पायन परि के कह्यो जो—तुमने मोकों जीवदान दियो है, सो यह घर तिहारो है। तातें आपको जो चाहिये सो लेउ। तब भक्तने कही जो—हम कों कछु चाहियत नांही है। तेरो दुख श्री-ठाकुरजीने दूरि कियो है, सो यही बड़ी बात भई है।

तब वा ब्राह्मणने पूछी जो—चारों कन्या एक सरखी भई हैं, सो अब मोकों खबरि कैसे परे जो—मेरी बेटी कोनसे वरकों ब्याही है? सो वा बेटी को बुलावनी होय तो कैसे खबरि परेगी? तब वा भक्तने कही जो—तेरे चारों जमाई हैं सो उनही सों बेटीन के लक्षन पूछि लीजियो। तब तोकों खबरि परेगी। जो मनुष्य के लक्षन होय सोई तेरी बेटी जानियो। सो यह कहिके द्भगवभक्त तो चले गये।



तब ब्राह्मणने कछुक दिन पीछे चारों जमाईन को घर बुलाये, और चारों जमाईन कों रसोई करवाई । सो एक जने को भोजन कों बैठायो तब भोजन करत में वासों पूछी जो—मेरी बेटी अनुकूल है के नांही ? वामें कैसे लक्षण हैं ? तब उनने कही जो—सब गुन हैं परि कुत्ती की नांइ भूसत है । जो जीभ ठिकाने नांही, और आचार क्रिया नांही है, सो तासो प्रिय नांही है ।

ता पाछे दूसरे जमाई कों बुलायो । वासो पूछी, जो—कहो, मेरी बेटी के लक्षण कैसे है ? तब वाने कही जो—तिहारी बेटी में आछे लक्षण है परंतु चटोरी है, जो ठाकुर के लिये जो वस्तु लावे सोइ वह चोरिके खाय जाय । बिलाई की दशा है, जो—पांच घर को खाये बिना चेन नांही परे ।

ता पाछे तीसरे जमाई कों बुलायके पूछी जो—मेरी बेटी के लक्षण कैसे हैं ? तब वाने कही जो—तिहारी बेटी में सब लक्षण आछे हैं, परंतु घर में आवे जाय, तब गदही की नांइ भूसे, सदा मलीन रहे । और जाकों ताकों तथा मोहू कों गदही की नांइ दोउ पावन सों लात मारे है ।

पाछे चौथे जमाई को बुलायके पूछी जो—मेरी बेटीके लक्षण कहो । तब उनने कही जो—तिहारी बेटी की कहा बात है ? जो मानो लक्ष्मी है, कोऊ देवता है । जो सब को प्रिय वचन, मीठो बोलनो, उत्तम क्रिया, आचार विचार, पति, गुरु, ठाकुर



और वैष्णव में प्रीति । सो तब ब्राह्मणनें जानी जो—यही मेरी बेटी है । ता पाछे वाही बेटी जमाई कों बुलावतो ।\*

सो तासों कुंभनदास ! जा मनुष्य में वैष्णव के लक्षण हैं सोई मनुष्य है<sup>x</sup> । और कहा भयो जो मनुष्य देह भई ? जो—रावण कुंभकरण खोटी क्रियातें राक्षस कहाये । यासों जाकी जैसी क्रिया, सो वाको तैसो ही रूप जाननो । जो भतीजी बड़ी भगवदीय है सोई मनुष्य है । तासों तिहारे संगतें कृतार्थ होयगी ।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी आदि सब वैष्णवन कों समुझाये । सो ये कुंभनदासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

#### वार्ताप्रसंग—१५

पाछे कुंभनदासजी की देह बहोत अशक्त भई । सो तहां आन्योर की पास संकर्षणकुंड ऊपर कुंभनदासजी आयके बैठि रहे । तब चत्रभुजदासने कही जो—गोदमें करिके तुम कों जमुनावता गाममें ले चलें । तब कुंभनदासजी कहे जो—अब तो दोय चार घड़ी में देह छूटेगी । तासों अब तो मैं इहांई रहंगो ।

---

\* ऐसी कितनीही प्राचीन गाथाओंके द्वारा श्रीआचार्यचरण, प्रभुचरण और श्रीगोपीनाथजी अपने सेवकोंको चारित्र्य संबंधी उपदेश देते थे । श्रीगोपीनाथजीकी ८ वार्ता विद्याविभाग में विद्यमान हैं ।

<sup>x</sup> देखो एक ब्राह्मण की वार्ता—जिनकों चाचाजीने उपरणा दिया था । (२५२ बै. की वार्ता ।)



तब चत्रभुजदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग आर्ति के दर्शन किये । तब श्रीगुसांईजी आपु चत्रभुजदास सों पूछे जो—कुंभनदास कैसे हैं ? और कहां है ? तब चत्रभुजदासने कही जो—संकर्षण कुंड ऊपर बैठे हैं । तब श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी के पास पधारे ।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु पधारिके कुंभनदासजी सों कहे जो—कुंभनदास ! या समय कौन लीला में मन है ? सो कहो ।

ता समय कुंभनदासजी सों उठ्यो तो गयो नांही, सो माथो नवाय मनसों दंडवत करि यह कीर्तन गाये । सो पद —

राग सारंग—१ ‘बिसरि गयो लाल करत गो—दोहन ।’  
२ ‘लाल ! तेरी चितवन चितही चुरावत’ ।

सो ये पद कुंभनदासजीने गाये । तब श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो—कुंभनदास ! यह लीला तुम सुनाये परि अंतःकरण को मन जहां है सो बतावो ।

तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी के आगे यह पद गायो । सो पद—

राग बिहागरो—१ ‘तोय मिलन कों बहोत करत है मोहन-लाल गोवर्द्धनधारी’ । २ ‘रसिकनी रस में रहत गड़ी’ ।

यह पद गायके कुंभनदासजी देह छोडि निकुंज लीलामें जायके प्राप्त भये ।



पाछे श्रीगुसांईजी आपु गोपालपुर में पधारे । सो चत्र-भुजदासजी आदि सब बेटानने कुंभनदासजीको संस्कार कियो । सो कुंभनदासजी लीलामें आन्योर के पास गाम है, तहां द्वार पर प्राप्त भये । पाछे श्रीगुसांईजी उत्थापन तें सेन पर्यंत की सेवा सों पोहोंचे । परंतु काहू वैष्णवसों बोले नांही, उदास रहे । तब रामदासजीने श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो— महाराज ! ऐसे क्यों हो ? तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों कहे जो— ऐसे भगवदीय अंतर्ध्यान भये । अब भूमि में भक्तन को तिरोधान भयो ।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी अपने श्रीमुखसों कुंभनदासजीकी सैराहना किये । सो वे कुंभनदासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते, जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी तथा श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते । ताते इनकी वार्ता को पार नांही । इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है, सो कहां ताई लिखिये ।





## (४) श्रीकृष्णदासजी



अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक कृष्णदास  
अधिकारी, सो ये अष्टछाप में हैं, जिनके  
पद गाईयत हैं। तिनकी वार्ता—



श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

सो ये कृष्णदासजी लीलामें ऋषभसखा श्रीठाकुरजी के अंतरंग,  
आधिदैविक तिनको ये प्राकट्य हैं। सो दिनकी लीला में तो  
मूल स्वरूप ऋषभ सखा हैं, और रात्रि की लीला में श्रील-  
लिताजी अंतरंग सखी हैं। सो ललिता हू चारि रूप, आपु तो मध्या  
और श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीस्वामिनीजी की लीलानिकुंज संबंधी अनुभव  
करें। और श्रीललिताजी को दूसरो स्वरूप ऋषभ सखा होयके बन में  
संग जांय, दिवस की लीला रस को अनुभव करें। और तीसरो स्वरूप  
दामोदरदास हरसानी होयके श्रीआचार्यजी के संग सदा रहते।  
तिनसों श्रीआचार्यजी आपु दमला कहते। सो तो दामोदरदासजी की  
वार्ता में भाव विस्तार करिके लिख्यो है। और ललिताजी को चोथो  
स्वरूप कृष्णदास। सो श्रीगोवर्द्धनधर के पास रहिके अधिकार किये।  
सो श्रीगिरिराज के आठ द्वार हैं तामें 'बिलछू' बरसाने सन्मुख द्वार  
एक वारी है। सो ता मारग होयके श्रीगोवर्द्धननाथजी रास करन को  
पधारते। सो ता द्वार के मुखिया हैं।



सो ये कृष्णदास गुजरात में एक 'चिलोतरा' गांव है।  
 कृष्णदास का भौतिक तहां एक कुनबी के घर जन्मे। सो वह  
 इतिहास कुनबी वा गाम को मुखी हतो। सो वा  
 गाम में हाकिमी करतो।

जा समय कृष्णदास या कुनबी पटेल के घर जन्मे, सो ता समय  
 या कुनबीने अनेक पंडित ब्राह्मण गाम गाम मे तें बुलायके मेले करि  
 उनसों पूछ्यो, जो—मेरे यह बेटा भयो है, सो याके सगरे लक्षण कहो।  
 और या बेटा की आरबल कहो, सो मैं वाकों जनम भरि में जीवों तहां  
 ताई खरची देऊं।

तब सगरे ब्राह्मणन ने या कुनबी सों कह्यो जो—हमकों चाहे तू  
 कछू देय, चाहे मति देय। जो यह तेरो बेटा तो श्रीभगवान को भक्त  
 होयगो। जो कृष्णदास याको नाम होयगो और यह तिहारे घरमें न रहेगो।

यह सुनिके वह पटेल कुनबी बहोत उदास भयो। और दान  
 पुन्य बहोत कियो और कृष्णदास नाम धर्यो।

पाछे कृष्णदास पांच बरस के भये तबही तें भगवद्वाता कथा में  
 जान लगे। सो मातापिता न जान देंय तो रोवें, खानपान नाहीं करें।  
 तब माता पिताने कहो जो—याको जान देऊ। जो यह अबही तें वेरा-  
 गीन सों प्रीति करत है, सो यह वेरागी होयगो। जो मोसों ब्राह्मणननें  
 आगे कह्यो हतो। तासों या बेटामें प्रीति करि मोह मति लगावो। सो  
 यह सबकों दुःख देयगो। पाछे कृष्णदास जहां तहां कथा सुनते।

एसे करत कृष्णदास बरस बारह तेरह के भये। तब एक वन-  
 जारा एक दिन गाम के बाहिर आयके उतरचो, सो किनारो माल सब



‘चिलोतरा’ गाममें बेचिके रुपैया चौदह हजार किये । सो रात्रि को चोर(ने) कृष्णदास के पिता के भेद में, वनजारा के सब चौदह हजार रुपैया छटे । सो चौदह हजार रुपैयान में ते तेरह हजार रुपैया कृष्णदास के पिताने राखें । सो यह बात कृष्णदासने जानी।

तब कृष्णदासने अपने पितासों कह्यो जो—तुमने बुरो काम कियो है । क्यों ? जो— तुमने रुपैया पराये वनजारा के छुटायके लिये । सो तुम वाकों दे डारोगे तब तिहारो कल्याण होयगो । तब पिताने कृष्णदास को मारच्यो, और कह्यो जो—तू काहू के आगे मति कहियो । जो—हम गाम के हाकिम है, सो हाकिम को यही काम है । तब कृष्णदासने कह्यो जो—अब तुम स्वराब होउगे । सो यह कहिके चुप होय रहे ।

जब सवारो भयो, तब वह वनजारा चोतरा ऊपर रोवत आयो । सो आयके कृष्णदास के पिता सों कह्यो जो—हमको चोरनने छटचो है । तब कृष्णदास के पिताने कह्यो जो—तू गाम में क्यों न रह्यो ? जो अब हमसों कहा कहत है ? सो एसे कहिके वा हाकिमने अपने मनुष्यन सों कही जो—या वनजारा को गामतें बाहिर काढ़ि देउ, जो सवारे ही रोवत आयो है ।

तब मनुष्यनने काढ़ि दियो । सगरी पूंजी गई, सो यह महा-विलाप करे । सो कृष्णदास दूरितें दोरिके वाके पास आये । तब कृष्णदास को दया आय गई । तब कृष्णदास मनमें विचारे जो—पिता को बुरो होय तो सुखेन होउ, परन्तु या वनजारा परदेशी को भलो करनो ।

पाछे कृष्णदास वा वनजारा के पास आयके कहे जो—तू एकांत में चलिके बैठ, जो—मैं तोसों एक बात कहूं । पाछे एकांतमें वनजारा



को ले जायके कृष्णदासने कहा, जो— तेरो माल रुपैया सब गयो, मेर पिता यहां को हाकिम है, सो ताने चोरी कराई है । सो हजार रुपैया चोरन को देके सगरो माल मेरे पिताने राख्यो है । तासों या गाम में तेरी न चलेगी । तासों तू जायके राजनगर ( अहमदाबाद ) राजा के यहां फरियाद करियो । सो मोकुं तू साक्षी में बुलाय लीजियो । परन्तु मेरे पिता के प्राण हू न जाय, और चोरन के हू प्राण न जाय, और तेरो भलो होय जाय सो एसो तू करियो । सो या भांति राजा पास मोकों बुलाइयो, मैं सब बताय देउंगो । तासों तेरो माल रुपैया सब या भांति सों मिलेगे ।

पाछे वा वनजारा राजनगर में आइके राजा के पास सब बात कही । और कहा जो— पिताने तो चोरी कराई और बेटानें बतायो । परन्तु कोइ के प्राण न जाय, और मेरी वस्तु मिले, एसो उपाय करो ।

तब राजाने कहा— धन्य वह बेटा जो— पिताकी चोरी बताई । सो वाकुं तो मैं राखूंगो । सो यह कहिके पचास मनुष्य और सिपाई बुलायके कहा जो— तुम ‘चलोतरा’ में जायके उहां के हाकिम को बेटा सहित पकरि लावो । सो या भांति सों जावो जो—कोई जानें नांही । सो वे पचास मनुष्य आये, सो लगे रहे ।

एक दिन संध्या समय वह हाकिम घर के द्वार पर टाड़ो हतो और वाको बेटाहू टाड़ो हतो । सो राजा के मनुष्य वा हाकिम को पकरि के राजनगर में लाये । तब राजानें यासों पूछी जो— तू हाकिम होय परदेसी को बूझत है ? जो या वनजारे को माल रुपैया देउ ।

तब वा हाकिमने कही जो— तुमसों कोईने झूठेही लगाई होयगी ।



मैं तो या बात में जानत ही नांहीं हूँ । तब वा राजाने कह्यो जो—  
तेरो बेटा सोंह स्वायके कहे सो सांचो । तब पिताने कही जो—बेटा  
कहि देय तो सांच है । तब राजाने कृष्णदास सों पूछी जो—तू सांच  
बोलियो । तब कृष्णदासने वा राजा सों कही जो जीव है, तासों  
चूक्यो तो सही । जो हजार रुपैया चोरन कों दिये और तेरह हजार  
रुपैया मेरे पिताने राखे हैं । तासों मैने वाही समय पिता कों समुझायो,  
परन्तु मान्यो नांही, सो ताको फल पायो । परन्तु यासों माल रुपैया  
ले लेहु और यासों कछु कहो मति ।

तब कृष्णदास के पिता सों राजाने कही जो—अजहू चेत,  
नातर तेरे प्राण जायगें ।

तब कृष्णदास को पिता बोल्यो जो—काम तो बुरो भयो है ।  
परन्तु या वनजारा कों मेरे संग करि देउ । सो याकों सब रुपैया  
घरतें दे देउंगो । तब राजाने दोइसे मनुष्य संग करिके वनजारा कों  
और कृष्णदास के पिता कों घर पठायो । और कृष्णदास सों वा राजाने  
कह्यो जो—तुम मेरे पास रहो, जो तुम सतवादी हो ।

तब कृष्णदास कहे जो—मोकों राखिके तुम कहा करोगे ?  
मैं सांच कहूंगो, सो सबको बुरो लूंगो । जो आजु को समय तो  
ऐसो है, तासों मैं तो बेरागी होउंगो । जो मैं पिता के काम को  
नांही रह्यो ।

सो या प्रकार वा राजाने कृष्णदास के राखिवे को बहोत जतन  
कियो । परि कृष्णदास रहे नांही, पाछे पिताने संग घर आये ।

तब पिताने चोरन कों बुलायके सब पुत्र के समाचार कहे, जो—



या पुत्रने हमारी खराबी करी है, तासों हजार रुपैया लावो । नातर तिहारे और हमारे प्राण जायगें । तब उन चोरने हजार रुपैया लाव दिये । सो तेरह हजार घर में सों लेके वा वनजारा को चौदह हजार रुपैया दिये और माल छूटि को देके वा वनजारा को विदा कियो ।

ता पाछे वा राजाने दूसरो हाकिम ' चिलोतरा ' गाम में पठाव्यो । तब कृष्णदास के पिताने कह्यो जो—पुत्र ! तेरो एसो बुरो कर्म भयो सो हाकिमी हू गई, और आयो करचो द्रव्यहू गयो । तब कृष्णदासने पितासों कही जो—पिता ! तैने एसो बुरो कर्म कियो हतो जो—येहू लोक जातो और परलोक हू विगारतो, जो जीव तो बच्यो । सो हाकिमी छूटी सो तो आछो भयो । जो हाकिमी होती तो और पाप कमावते ।

तब पिताने कह्यो जो—तू वा जन्म को फकीर है । तासों तैने हमको हू फकीर कियो है । अब तेरे मन में कहा है ? तब कृष्णदासने कही जो—अब तुम मोकों घर में राखोगे तो फकीर होउगे, याते मोकों विदा ही करो । तब पिताने कही जो—तू कछू खरचि ले घरमें ते कहूं दूरि चलयो जा । न तोकों देखेंगे न दुख होयगो ।

तब कृष्णदास पिता कूं नमस्कार करिके उठि चले । पाछे मनमें विचारे जो—ब्रज होय सगरे तीरथ करनो । तब कछूक दिनमें कृष्णदास श्रीमथुराजी में आयके विश्रांत घाट न्हायके ब्रज में निकसे तब फिरते २ श्रीगोवर्द्धन आये । सो तहां सुनी जो—देवदमन को मंदिर बन्यो है जो—अब दोय चारि दिन में विराजेंगे तो ब्रजवासीन को बडो आनंद होयगो । देवदमन जब तैं बाहिर प्रकटे जो श्री-



गिरिराज श्रीगोवर्द्धन में ते, तब तें सबन को सुख दियो है । और सबन के मनोरथ पूरन करत हैं ।

तब यह सुनिके कृष्णदासजी अपने मनमें विचारे जो—मैं हू देव-दमनको दरशन करूं । सो तब आयके कृष्णदासने देवदमन के दर्शन किये । सो श्रीआचार्यजी आपु राजभोग आरती किये । सो दर्शन करत ही कृष्णदास को मन श्रीगोवर्द्धनधर ने हरि लियो । सो कृष्णदास की ओर श्रीगोवर्द्धनधर देखि रहे.

पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों कहे जो—यह कृष्णदास आयो है । सो बहोत दिन को बिछुरयो है, सों मैं याकों देखत हों ।

तब कृष्णदास के पास आयके श्रीआचार्यजी कहे जो—कृष्णदास ! तू आयो ! तब कृष्णदास नें दंडवत करिके बिनती कीनी जो—महाराज ! आपु की कृपा तें आयो हूं । तासों अव मोकों शरण राखो ।

तब श्रीआचार्यजी कहे जो—जाव, बेगि न्हाय । आवो जो तेर साग्हें श्रीगोवर्द्धननाथजी देखि रहे हैं । तासों बेगि आय जावो ।

तब कृष्णदास दोरिके रुद्रकुंड में न्हाय आये । पाछे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के पास मंदिर में आये । तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास को श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्निधान बैठायके नाम समर्पन करायो । सो कृष्णदास दैवीजीव हैं, सो तत्काल सगरी लीला को अनुभव भयो । सो ताही समय कृष्णदास ने यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग सारंग—। ‘ वल्लभ पतित उधारन जानो० ’ ।



सो यह पद कृष्णदासने गायो, सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये । ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी को अनोसर करायो ।

ता पाछे मंदिर सिद्ध भयो । सो तब सुंदर अक्षयतृतीया को दिन देखिके श्रीगोवर्द्धननाथजी को नये मंदिर में पाट बेठाये । तब पूरनमल्ल के सब मनोरथ सिद्ध किये । तब श्रीआचार्यजी आपु सदूपांडे को बुलायके कहे जो—मंदिर तो बडो भयो, जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी बिराजे । परंतु अब इनकी सेवा को मनुष्य ठीक करचो चाहिये, तातें तुम सेवा करो । तब सदूपांडे ने विनती कीनी जो—महाराज ! हम तो ब्रजवासी हैं, जो—आचार विचार सेवा की रीति कछू समुझत नांही हैं । और घर के अनेक काम हैं, तासों आपु आज्ञा देउ तो राधाकुंड ऊपर बंगाली रहत हैं, सो अष्ट प्रहर भजन करत हैं । तासों उनको राखो तो बुलाय लाऊं । तब श्रीआचार्यजी आपु कहे, जो—बुलाय लवो । सो सदूपांडे बंगाली बीस पचीस बुलाय लाये । तब उनको रुद्रकुंड ऊपर झोंपरी बनवाय दीनी, और श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा दीनी । और कृष्णदास को भेटिया किये । जो—तुम परदेस तें भेट लायके बंगालीन को दीजो । सो या भांति सो सेवा करोगे ।

या प्रकार सब बंगालीन को रीति भांति बतायके सेवा सौंपी । और कृष्णदास परदेस तें भेट ले आवते सो बंगालीन को देते । सो रामदास चोहान रजपुत जब नयो मंदिर बन्यो, तब देह छोडिके लीला में जायके प्राप्त भये । तब सगरी सेवा बंगाली करते ।



### वार्ता प्रसंग-१

पाछे एक समय कृष्णदास श्रीद्वारिकाजी की ओर भेट लेन को गये । सो श्रीद्वारिका श्रीरणछोडजी के दरशन करि के वैष्णवन सों भेट लेके आवत हते । सो एक वैष्णव कृष्णदास के संग हतो । मारग में मीरांबाई को गाम आयो, सो कृष्णदासजी मीरांबाई के घर गये । तहां संत, महंत अनेक स्वामी और मारग के बैठे हते । सो काहूको आये दस दिन, काहूको आये बीस दिन भये हते, परंतु काहूकी बिदा न भई हती । और भेट के लिये बैठे हते । और कृष्णदास तो आवत ही कह्यो जो—मैं तो चलंगो । तब मीरांबाईने कह्यो जो—कछुक दिन कृपा करिके रहो ।

तब कृष्णदासने कही जो—हमारे तो जहां हमारे वैष्णव श्रीआचार्यजी के सेवक होयंगे सो तहां रहेंगे । और अन्य-मार्गीय के पास हम नांही रहत हैं । तब मीरांबाई ११ मोहोर श्रीनाथजी की भेट देन लागी सो कृष्णदास नांही लिये । और कृष्णदासने मीरांबाई सों कह्यो जो—तू श्रीआचार्यजी के सेवक नांही है, सो हम तेरी मोहोर हाथ तें न छुवंगे ।

सो एसे कहिके उठि चले । तब संग के वैष्णवने कृष्णदास सों कही जो—तुमने श्रीगोवर्द्धननाथजी की भेट क्यों फेरि दीनी ? तब कृष्णदासने वा वैष्णव सों कही जो—भेट की कहा है ? जो बहोतेरी भेट वैष्णवन सों लेंयगे । श्री-



गोवर्द्धननाथजी के यहां कोई बात को टोटा नाहीं है । परंतु सगरे मारग के स्वामी महंत इतने इकठोरे कहां मिलते ? तासों सब की नाक नीची तो करी, जानेंगे जो—हम भेट के लिये इतने दिन सों बैठे हैं, और श्रीआचार्यजी को एक सेवक शूद्र इतनी मोहोर भेट न लीनी । सो जिन के सेवक ऐसे टेकी हैं, तिनके गुरुकी कहा बात होयगी ? सो ये सब या भांति सों जानेंगे । और आपुन अन्यमार्गीय की भेट काहे कों लेय ?

तार्ते शिक्षापत्र में कह्यो है—‘तदीयानां महद्दुखं विजातीयेन श्रीहरिरायजी कृत संगमः’ तदीय जो भगवदीय है, तिनको भावप्रकाश. और दुख कछु नाहीं है । सो जेसो अन्यमार्गीय विजातीय को संग को दुख होय । तासों श्रीअकुरजी तो निवाहें । जो विजातीय सों बोलनो नाहीं तब ही सुख है । और जो वार्ता करे तो रस को तिरोधान रसाभास निश्चय होय । तासों कृष्णदासजी मीरांबाई के घर गये, इतनो कहनो परचो ।

तासों मुख्य सिद्धान्त यह जतायो जो—स्वमार्गीय बिना काह तें मिलनो नाहीं । और कदाचित् मिलनो परे तो अपने धर्म कों गोप्य राखे ।

सो श्रीगुसांईजी आपु चतुःश्लोकी में कहे हैं—

‘विजातीयजनात् कृष्णे निजधर्मस्य गोपनं ।

देशे विधाय सततं स्थेयमित्येव मे मतिः’ ॥ १ ॥

सो ऐसे देश में जाय जहां कोई वैष्णव नाहो होय, तहां



अपने धर्म को प्रकट न करे, तब अपना धर्म रहे । सो काहेते ? जो-  
लौकिक हू में पनारो है । सो तासों, न्हायो होइ सो बचिके चले  
तासों उत्तम जन को सब प्रकारसों बचनो परे । जैसे उत्त-  
सामग्री है ताकों अनेक जतनसों बचावे, तब श्रीठाकुरजी के भो-  
जोग रहे । तैसेही वैष्णव धर्म है । तासों या धर्म की रक्षा रां-  
तो रहै । यह सिद्धान्त प्रकट कियो.

सो वे कृष्णदास ऐसे टेकी परम कृपापात्र भगवदीय हते  
वार्ता प्रसंग-२

और श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार बंगाली करते । सो  
श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी को मीना के सब आभरण  
संभराय दिये हते । और मोरपक्ष को मुकुट, काछिनी, बाग  
सब बनवाय दिये हते । बंगाली श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेव  
करते । जो भेट श्रीगोवर्द्धननाथजी के आवती सो बंगाली  
जोरिके सब अपने गुरुन के यहां पठावन लागे । सो जब  
श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में कृष्णदास को  
अधिकारी किये, तब कृष्णदास मथुरा आगरे तें सामग्र्य  
लाय देते ।

और एक अवधूतदास श्रीआचार्यजी के सेवक हते । सो व्रज में  
अवधूतदासजी की फिरचो करते, सो वे बडे कृपापात्र भगवदीय हते  
वार्ता सो अर्द्धांग के वासी हते ।

सो अवधूतदासजी कुमारिका के जूथ में है । सो रासपंचध्या-  
में जब श्रीअकूरजी प्रकट भये, तब ये भक्त सगरे स्वरूप को



दर्शन करिके नेत्र मूँदिके योगी की नाई मगन होय गये ।  
 सो ये भक्त को प्राकट्य अवधूतदासजी को है । सो लीला में इन  
 को नाम 'केतिनी' है ।

सो अडोंग में एक सनोढ़िया ब्राह्मण के घर जन्मे । जब ब्रज में  
 अकाल परचो, तब मा बाप बनिया कों बेटा देके आपु तो पूरव कों  
 गये । पाछे अवधूतदास वरस पंद्रह के भये । तब वह बनिया को घर  
 छोड़िके मथुरा में आयके श्रीआचार्यजी के दर्शन करि विनती कीनी।  
 जो—महाराज ! मोकों शरण लीजिये । तब श्रीआचार्यजी आपु  
 कहे जो—हमारे संग श्रीगोवर्द्धन कों चलो जो—श्रीनाथजी के सान्निध्य  
 शरण लेयंगे ।

तब अवधूतदास श्रीआचार्यजी के संग श्रीगिरिराज आये । पाछे  
 श्रीआचार्यजी आपु अवधूतदास तें कहे जों—तुम गोविंदकुंड न्हाय लेहु ।  
 तब अवधूतदास गोविंदकुंड में न्हाय आये । पाछे श्रीआचार्यजी आपु  
 गोविंदकुंड में स्नान करिके मंदिर में पधारे ।

ता समय श्रीगोवर्द्धनधर को राजभोग आयो हतो । तब समय भये  
 भोग सराय, अवधूतदास को बुलाइके श्रीगोवर्द्धनधर के सान्निध्य  
 बेठाय नामनिवेदन करवायो । तब अवधूतदासने श्रीआचार्यजी सों  
 विनती कीनी जो—महाराज ! मेर मन में तो यह है जो—मैं श्रीगोवर्द्धन-  
 नाथजी कों हृदय में धरिके ब्रज में फिरों । तब श्रीआचार्यजी आपु  
 हाथ में जल लेके अवधूतदास के ऊपर छिरके । तब अवधूतदासजी की  
 अलौकि कदेह होय गई । सो भूख प्यास कछू देहाध्यास बाधा नांही करे,  
 सो मानसी सेवा में मगन होय गये । पाछे श्रीआचार्यजीने राजभोग



आरती कीनी । सो श्रीगोवर्द्धनघर को स्वरूप अपने हृदय में नख शिख पर्यंत धरिके व्रज में सदा फिरते । सो स्वरूपानंद में सदा मगन रहते ।

सो ऐसे करत बहोत दिन बीते । तब एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने अवधूतदासकों जताई जो—तुम कृष्णदास अधिकारी सों कही जो—इन बंगालीन कों निकासो । जो मोकों अपनो वैभव बढ़ावनो है । और ये बंगाली मोकों भोग धरत हैं । सो इनकी चुटिया में एक देवी को स्वरूप है, सो मेरे पास बैठावत हैं । तासो इन बंगालीन कों बेगि काढो ।

तब अवधूतदासने यह बात अपने मनमें राखी । सो एक दिन कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन सों मथुरा कों जात हते, सो मारग में अवधूतदास मिले । तब अवधूतदासने कृष्णदास सों पूछी जो—तुम कहां जात हो ? तब कृष्णदासने अवधूतदास सों कह्यो जो—मथुरा जात हों, जो कछू सामग्री चाहियत है ।

तब अवधूतदासने पूछी जो—श्रीनाथजी की सेवा कोन करत है ? तब कृष्णदासने कही जो—बंगाली सेवा करत हैं । तब अवधूतदासने कृष्णदास सों कह्यो जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा बंगालीन कों काढिवे की है । सो तुम बंगालीन कों काढो । जो बंगालीन की चुटिया में एक देवी को स्वरूप है । सो जब बंगाली श्रीनाथजी को भोग धरत हैं, तब चुटिया में ते निकासिके देवी कों पास बैठावत हैं । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी



कों सुहात नांही है । तासों बंगालीन को बेगि काढ़ो । जो मोसों आपुने आज्ञा करी है । तब मैं तुमसों कह्यो है ।

तब कृष्णदासने कह्यो जो—ये बंगाली श्रीआचार्यजीने राखे हैं । तातें श्रीगुसांईजी आज्ञा करें, तब काढ़े जांय । तब अवधूतदास कहें जो—तुम अड़ेल में जायके गुसांईजीकी आज्ञा ले आवो । तासों जैसे बने तैसे इन बंगालीन कों काढ़ो ।

तब कृष्णदास मथुरा जात हते सो अडौंग ते फिरि के श्रीगोवर्द्धन आये । सो आयके सगरे बंगालीन सों कही जो—मैं अड़ेल में श्रीगुसांईजी के पास जात हों, सो कछू काम है । पाछे सगरे सेवक, पोरिया, ब्रजवासिन सों कहे जो—तुम सावधान रहियो । मैं श्रीगुसांईजी के पास अड़ेल जात हों ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिदा होयके कृष्णदास अड़ेल कों चले । सो दिन पंद्रह में कृष्णदास अड़ेल में श्रीगुसांईजी के पास आये । तब श्रीगुसांईजी कों दंडवत किये ।

पाछे श्रीगुसांईजी पूछे जो—कृष्णदास ! तुम श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके क्यों आये ? तब कृष्णदासने कही जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अपनोवैभव बढ़ावनो है, और बंगालीन की चुटिया में एक देवी है, सो राजभोग के समे बैठावत हैं । और जो भेट आवत है सो सब वृंदावन में अपने गुरून कों पठाय देत हैं । सो अबहीतें काहूकों मानत नांही हैं । सो आगे बहोत दिन ताई बंगाली रहेंगे तो झगड़ो बढ़ेगो । तासों



बंगालीन कों आपु काढ़िबे की आज्ञा दीजिये, सो मैं जा के काढ़ंगो ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास सों कहे जो—श्रीगोपीनाथजीनें पहेलो परदेश पूरवको कियो हतो, सो एक लक्ष रुपैय पूरव सों भेट आई हती । सो श्रीगोपीनाथजी प्रथम अड़ेल में आयके कहे जो— यह पहले परदेश की भेट श्रीगोवर्द्धननाथजी की है । सो यह कहिके लक्ष रुपैया लेके श्रीगोपीनाथजी श्रीजीद्वार पधारे, सो तहां रूपे सोने के थार, कटोरा श्रीनाथजी कों कराये । ता पाछे सेवा शृंगार करि श्रीगोपीनाथजी अड़ेल में आये । तब बंगाली सब मिलिकें सगरे थार कटोरा द्रव्य वृंदावन में अपने गुरून के यहां पठाय दिये । सो सब समाचार हमारे पास आये परि हम कहा करें ? जो बंगालीन कों श्रीआचार्यजीने राखे हैं । सो तासों बंगाली कैसे निकसेंगे ।

तब कृष्णदासनें कह्यो जो—महाराज ! श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा एसी है जो—बंगालीन कों निकासिबे की । तासों आपु या बात में बोलो मति । तासों मैं जैसे बनेगी वैसे बंगालीन कों काढ़ंगो ।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो—अवश्य बंगालीन कों निकास्यो चाहिये । जो—बहुत दिन रहेंगे तब झगरो करेंगे । तब कृष्णदासने कही जो—महाराज ! मोकों दोय पत्र लिखि दीजिये । सो एक तो राजा टोडरमल्ल के नाम को, और एक राजा बीरबल के नाम को ।



तब श्रीगुसांईजी आपु दोय पत्र लिखि दिये । जो कृष्ण-  
दास श्रीगोवर्द्धन में है सो ये तुमसों कहे, सो करि दीजो । जो  
हमकों बंगाली काढ़ने हैं, और सेवक राखने हैं । और कृष्ण-  
दास श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी हैं, तासों ये करें सो  
हमकों प्रमाण है ।

सो यह लिखिके कृष्णदास कों दोऊ पत्र दिये । तब  
कृष्णदास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके चले, सो कछुक  
दिन में आगरे में आये । तब राजा टोडरमल्ल कों और वीरबल  
कों दोऊ पत्र श्रीगुसांईजी के हस्ताक्षर के दिखाये, तब उन  
कह्यो जो—तुम कहो सो हम करें ।

तब कृष्णदासने कही जो—अब तो मैं श्रीनाथजीद्वार  
बंगालीनकों काढ़िबे कों जात हूं । जो कदाचित् बंगालीन के  
गुरु श्रीवृंदावन में है सो देशाधिपति के आगे पुकारें तब उन-  
की ठीक राखियो ।

तब उन दोऊ जननने कही जो—तुम जाउ । तुमकों  
श्रीगुसांईजी की आज्ञा होय सो करो । जो हम ठीक राखेंगे ।

पाछे कृष्णदास आगरे तें चले सो मथुरा आये । पाछे मथुरा  
तें श्रीगोवर्द्धन आये । तहां मारगमें अवधूतदास मिले । तब  
अवधूतदासने कही जो—कृष्णदास ! ठील क्यों करि राखी है ?  
जो— श्रीनाथजी कों अपनो वैभव बढ़ावनो है । तासों बंगालीन  
कों बेगि काढो । जो श्रीगोवर्द्धनधर की इच्छा है ।

तब कृष्णदासने कही जो—मैं श्रीगुसांईजी की आज्ञा ले



आयो हूं। और अब जातही बंगालीन कों काढत हूं। सो यह कहिके कृष्णदास चले, सो श्रीनाथजीद्वार आये।

सो रुद्रकुंड ऊपर आय बंगालीन की झोंपरी में आंच लगवाय दीनी। तब सोर भयो सो सगरे बंगाली श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके परवत तें नीचे उतरिके अपनी २ झोंपरी में आये, सो अग्नि बुझावन लागे।

तब कृष्णदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में सब ठौर अपने मनुष्य ब्रजवासी दोयसे राखे (हते) सो बेठारि दिये। और कह्यो जो—कोई बंगाली पर्वत ऊपर चढ़ें ताकों तुम चढ़न मत दीजो। और ब्राह्मण सेवक भीतरियान सों कहे जो—तुम श्रीनाथजी की सेवामें सावधान रहियो। तब यह कहिके कृष्णदास परवत तें नीचे हाथ में लकुटी लेके ठाड़े भये।

पाछे बंगाली अग्नि बुझाय के सगरे आये सो पर्वत ऊपर मंदिरमें चढ़न लागे। तब कृष्णदासने उन बंगालीन सों कह्यो जो—अब तिहारो काम सेवा में नांही है। जो हमने और चाकर राखे हैं, सो सेवा करन कों गये हैं।

तब बंगालीनने लरिवे की तैयारी करी, ओर कह्यो जो—हमारे ठाकुर हैं जो हमकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें राखे हैं। सो तब लड़ाई भई। पाछे कृष्णदासने बंगालीन कों भजाय दिये। तब सगरे बंगाली भाजे। तब मथुराजी में आय के रूपसनातन सों सगरी बात कही। जो—कृष्णदास जाति को



शूद्र, सो सगरेनकी शोपरी जराय दीनी। और सबनकों मारि के सेवा में ते बाहिर काढ़ि दिये हैं।

सो या प्रकार बात करत हते, इतने में कृष्णदास हू रथ पर चढ़िके पचास ब्रजवासी हथियारबन्ध संग ले श्रीमथुराजी में आये; सो पहले रूपसनातन के पास आये।

तब रूपसनातनने कृष्णदास सों खीजिके कह्यो जो—क्योंरे ! शूद्र ! तेने इन ब्राह्मणन कों क्यों मारयो है ? जो—यह बात देशाधिपति सुनेगो, तब तू कहा जुवाब देयगो ?

तब कृष्णदासने कह्यो जो—हूँ तो शूद्र हौं। परि मैं ब्राह्मणन कों सेवक तो नांही करत हौं। तुमहू तो अग्निहोत्री ब्राह्मण नांही हो। तुमहू तो कायस्थ हो, कायस्थ होयके इन

ब्राह्मणन कों दंडवत कराय सेवक करत हो, सो तुमहू जवाब देत में बहोत दुःख पावोगे। जो—तुम सों जुवाब न बनेगो। और मैं तो जुवाब दे लेऊंगो, जो—तिहारो मन होय तो चलो। देखो तो सही जो तुम सों जुवाब होत है ? जो कैसे करत हौं।

सो यह कृष्णदास के वचन सुनिके रूपसनातनने कही, जो—तुम जानो और ये जाने। जो हमतो कछु जानत नांही है।

सो या प्रकार रूपसनातन सगरे बंगालीन के गुरु हते, सो तिनने यह बात कही। तब सगरे बंगाली निरास होय के मथुरा के हाकिम के पास जायके यह बात कही। जो—कृष्णदासने हमकों श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवामें ते काढ़ि दिये हैं। तासों तुम कोई प्रकार सों हमकों रखाय देउ।



यह बात करत होते, इतनेही में कृष्णदास हाकिम के पास आये। सो कृष्णदास को तेज देखतही वह हाकिम उठि के कृष्णदास को पूछि, पास बेठायके कही जो—तुम बडे हो, और श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी हो। तासों तुम इन बंगालीन को गुन्हा माफ करो। अब भई सो तो भई। परि अब इन को फेरि राखो जो—सेवा करें।

तब कृष्णदासने कही जो—अब तो हम इनको नांही राखेंगे, अब ये हमारे चाकर नांही। ये चाकर होय लरिवे को तैयार भये। इनकी झोपरी जरि गई, तो हम इनकी झोपरी और बनवाय देते। परंतु ये सगरे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा छांड़ि पर्वत ते नीचे क्यों उतरि आये? तासों अब इनको सेवा में काम नांही है। और आपु कहत हो, जो—इन को राखो। सो अब हम या बात को पत्र श्रीगुसांईजी को लिखेंगे। सो वे कहेंगे, तेसो करेंगे।

तब वा हाकिमने कही जो—आछी बात है, जो तुम श्रीगुसांईजी को लिखो, तब कृष्णदास श्रीनाथजीद्वार आये।

ता पाछे वे बंगाली वृंदावन में रहे। सो ता पाछे फेरि एक दिन सगरे बंगाली मेले होय देशाधिपति के पास आगरे में आयके कृष्णदास की चुगली करी। तब देशाधिपति अकबर पात्साहने कही जो—कृष्णदास कोन है? जो—इन ब्राह्मणन को पूजामेंते काढ़े। सो उनको बुलावो।

तब राजा टोडरमल्लने और बीरबलने अकबर पात्साह



सों कह्यो जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाकुर श्रीविठ्ठलनाथजी श्री-  
गुसाईजी के हैं । सो पहले ये बंगाली सेवा में राखे हते सो  
इनकों खरची देते । जो अब इन कों काढ़ि दिये है ।

तब देशाधिपति ने कही जो— बंगाली झूठि चुगली करत  
हैं । जो चाकर को कहा है ? तासों कृष्णदास कों बुलायके  
कहो जो— उनकों मन होय तो राखो ।

तब देशाधिपति के मनुष्य कृष्णदास को लेवे कों  
श्रीगिरिराज आये । सो कृष्णदासने तो पहले ही सुनी हती,  
सो रथ ऊपर चढ़िके दस बीस आदमी लेकें देशाधिपति के  
मनुष्यन के संग आगरे में आये । तब कृष्णदास राजा टोडर-  
मल्ल और बीरबल सों मिले । तब राजा टोडरमल्ल और बीर-  
बलने कह्यो जो— बंगालीनने चुगली करी हती, सो हमने  
कहि दीनी है । और फेरि हू आज कहि देंगें, जो— आजु  
को दिन तुम यहां रहो ।

तब कृष्णदास उहां रहे । तब राजा टोडरमल्ल और  
बीरबल दरबार के समय देशाधिपति के पास आय  
अकबर सों कहे जो— कृष्णदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के  
अधिकारी आये हैं, और उनको मन बंगालीन कों राखिवे  
को नांही है । जो और चाकर राखे है, और ये तो काढ़े हैं ।

तब देशाधिपतिने कही, जो— आछो उनको मन होय सो  
ताकों चाकर राखें । यामें झूठो झगरो कहा है ? तासों  
बंगालीन कों काढ़ि देऊ ।



तब राजा टोडरमल्ल और बीरबलने आयके बंगालीन सों कही जो-देशाधिपति को हुकम तुमकों काढ़ि देवे को भयो है, तासों तुम चुप होयके चले जाउ । जो- झगरो करोगे तो दुख पावोगे । तासों हमने तुमकों समुझाय दियो है ।

तब सगरे बंगाली निरास होयके चले आये । सो श्री-वृन्दावन में रहे । और कृष्णदास राजा टोडरमल्ल और बीरबल सों विदा होयके चले आये, सो श्रीगिरिराज ऊपर आयेX ।

ता पाछे दोय कासिद बुलायके श्रीगुसांईजी कों बिनती पत्र लिख्यो, तामें यह लिख्यो जो-बंगालिन कों आपु की आज्ञातें काढ़े, ताको देशाधिपति सों जुवाब होय चुक्यो है, जो अब झगरो मिटि गयो है । और बंगाली झूठे राजद्वार तें पारि चुके हैं । तासों अब आपु कृपा करिके पधारिये ।

सो दोय जोडी कासिद की श्रीगुसांईजी के पास गई । तब श्रीगुसांईजी आपु पत्र बांचि अडेल तें बेगि ही पधारे, सो श्रीनाथजीद्वार आयके कृष्णदास कों बुलाय श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के सन्मुख अधिकारी को दुसालो उढायो । और श्री-गुसांईजी आपु श्रीमुखतें कहे जो- कृष्णदास ! तुमने बड़ी सेवा करी है, जो-यह काम तुमहीतें बने जो बंगालीन कों काढ़े । तासों अब सगरो अधिकार श्रीगोवर्द्धननाथजी को तुमही करो ।

X यह प्रसंग सं. १६३० के लगभग का है । वार्ता की प्राचीन कथात्मक शैली के कारण इस में समय का सम्मिश्रण होगया है । ( विशेष देखिये श्रीविठ्ठलेश चरितामृत ).



हमहू चूकें तो कहियो जो— कोई बात को संकोच मति राखियो । जो सगरे सेवक टहलवान के ऊपर तिहारो हुकम, और की कहा है ! जो एसी सेवा तुम ही करी, जो तुम श्रीगोवर्द्धन-नाथजी सों कहोगे सोई करेंगे । तुम श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हो, सो तिहारी आज्ञामें (जो) चलेंगे तिन सबन को भलो होयगो । तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धननाथजीकी सेवा भली भांति सों करियो । सो सावधान रहियो ।

पाछे कृष्णदास श्रीगुसांईजी (और) श्रीगोवर्द्धननाथजी कों साष्टांग दंडवत करिके अधिकार की सगरी सेवा करन लागे । ता दिनतैं श्रीनाथजी के अधिकार की गादी बिछवे लगी । श्रीगुसांईजी की आज्ञा तें कृष्णदास गादी उपर बैठते । X

ता पाछे बंगालीनने सुनी जो—श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धन पधारे हैं, और सिंगार करत हैं । सो सगरे बंगाली मिलके श्रीगुसांईजी के पास आये । पाछे विनती करिके कहे जो—हमकों श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में राखे हते, सो कृष्णदासने काढ़े हैं, तासों आपु फेरि हमकों सेवा में राखो ।

---

X आज भी निस्वार्थ तथा शुद्ध हृदयसे श्रीनाथजी के अधिकार की सेवा करनेवाले को ही इस गादी पर बैठनेका सौभाग्य महाराजश्री तिलकायत की आज्ञासे ही प्राप्त होता है । कृष्णदास का उस समय ऐसा प्रभाव था कि—उन्हीं के नामसे आज तक भंडार का नाम भी 'श्रीकृष्ण भंडार' चला आ रहा है और नामा इत्यादि में भी गुजराती भाषा का प्रयोग किया जाता है ।



तब श्रीगुसांईजी कहे जो—तुम सगरे श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके परवतते नीचे उतरि आये, सो दोष तिहारो है । और अब श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा तुमकों राखिवे की नांही है, तासों अब तुमकों राखे न जाय ।

पाछे सगरे बंगाली बहोत विनती करन लागे जो— तुम हमसों सेवा मति करावो, परंतु अब हम खांय कहा ? जो— श्रीनाथजी की सेवा पीछे हमारो खानपान को सब सुख हतो, तासों हमकों कछु और सेवा टहल बतावो । तथा कोई और श्रीठाकुरजी बतावो, जासों हमारो निर्वाह चल्यो जाय ।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोपीनाथजी के सेव्य श्रीमदनमोहनजी कों देके कहे जो—इनकी सेवा तुम करो । सो तब बंगाली श्रीमदनमोहनजी कों\* लेके श्रीवृंदावन में आयके सेवा करन लागे ।

सो काहेतें ? जो— बलदेवजी मर्यादारूप । सो तिनके सेव्य श्रीहरिरायजी कृत ठाकुर हू मर्यादारूप । सो बंगालीन कों मर्यादा भावप्रकाश की पूजा है, तासों दिये । और श्रीगुसांईजीने झगरो हू मिटाय दियो ।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने सांचोस गुजराती ब्राह्मण भीतरिया सेवामें राखे । सो मुखिया भीतरीया रामदास कों किये ।

---

\* मथुरा के नारायण भाट के ठाकुरजी, जो—श्रीवृंदावन के राधाबाग में से उनको प्राप्त हुए थे—सम्प्रति करोली राज्य में विराजमान हैं—



सो रामदास ब्राह्मण सांचोरा गुजरात में रहते । ये लीलामें श्री-  
बड़े रामदासजी की चंद्रावलीजी की सखी हैं । सो लीलामें इनको  
वार्ता नाम 'मनोरमा' है । सो सात्त्विक भाव । श्रीचंद्रा-  
वलीजी की आज्ञाकारी । जैसे श्रीस्वामिनीजी श्रीठाकुरजी की लीला  
में ललिता मध्याजी परम चतुर । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के कृपापात्र  
ललितारूप कृष्णदास सब ठोर हुकम करें, तैसे मनोरमा रूपसों  
रामदास मुखिया भीतरिया श्रीगुसांईजी के आगे सब टहल करें ।

सो (मनोरमा) रामदास गुजरात में एक सांचोरा ब्राह्मण के यहां  
जनमे । सो वरस बीस के भये । तब माता पिताने देह छोड़ी ।

ता पाछें रामदासजी श्रीरणछोडजी के दर्शन कों गये । सो श्री-  
आचार्यजी के दर्शन भये, ता समय श्रीआचार्यजी कथा कहत हते ।  
सो कथा श्रीआचार्यजीके श्रीमुखर्ते सुनिके रामदास को ज्ञान भयो, जो—  
श्रीआचार्यजी आपु साक्षात ईश्वर हैं, इनको शरण रहिये तो कृतारथ  
होय । सो यह मनमें निश्चय कियो ।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु कथा कहि चुके । तब रामदासने  
दंडवत करिके विनती कीनी जो—महाराज ! मोकों शरण लीजे । तब  
श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—जाओ न्हाय आओ । तब रामदास न्हाय  
आये । तब श्रीआचार्यजीने रामदास कों नामनिवेदन करवायो ।

ता पाछे रामदास सों कहे जो—अब तुम भगवत्सेवा करो । तब  
रामदासने कही जो— मेर पिता के ठाकुर मेरे पास है, सो आपु आज्ञा  
देऊ तेसैं मैं सेवा करूं । तब श्रीआचार्यजी आपु रामदास के श्री-



ठाकुरजी को पंचामृतस्नान कराय दिये । ता पाछे रामदास कछूक दिन श्रीआचार्यजी की पास रहे, सो सेवा की रीति भांति सीखे ।

ता पाछे रामदासने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो—महाराज ! शास्त्र तो मैं कछु पढ्यो नांही हों, परंतु आप के ग्रन्थ पढ़िवे की इच्छा अभिलाषा है । तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुनर्ने रामदास को अपने ग्रन्थ पढ़ाये । तब रामदासजी के हृदय में ब्रज की लीला स्फुरी, सो रामदास ने यह कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो । सो पद—

राग गोरी—‘चलि सखी चलि अहो ब्रज पेंठ लगी है, जहां बिकत हरिरस प्रेम’

या प्रकार के रसरूप पद रामदासने बहुत गाये, सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये । तब रामदास श्रीआचार्यजीसों विदा होयके दंडवत करि गुजरात में अपने घर आयके बहोत दिन तांई सेवा कीनी ।

ता पाछे एक दिन एक वैष्णव रामदास के घर आयो । तब रामदासने प्रीतिसों वैष्णवको अपने घरमें राख्यो । पाछे रामदासने कही जो—वैष्णव को संग दुर्लभ है । सो तुमने बड़ी कृपा करी जो—तुम मेरे घर पधारे । सो तब वैष्णवने कही जो—संग करिवे लायक तो पद्मनाभदासजी हैं, जो एक क्षण हू संग होय तो भगवत्कृपा होय ।

सो सुनत ही रामदासजी के मन में यह आई जो—पद्मनाभदास को संग करूं । ता पाछे चारि दिन रहिके वह वैष्णव तो गयो । तब रामदासजी श्रीठाकुरजी को पधरायके पद्मनाभदास के घर कनोज में



आये । सो पद्मनाभदास प्रीति सों रामदास कों महीना एक राखे, सो भगवद्वार्ता में मगन होय गये ।

तब रामदासजीने कही जो—जेसी तिहारी बड़ाइ सुनी हती, तेसेही तिहारे संगतें सुख पायो । सो अब मैं श्रीगोवर्द्धननाथजीके दर्शन करि आऊं । तासों मेरे ठाकुर कों तुम राखो । तब पद्मनाभदासजीने रामदास के ठाकुर श्रीमथुरेशजी के सय्याजी के पास बैठाये । और इहां श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके रामदासको मुखिया किये, सो जनमभरि श्रीनाथजीकी सेवा रामदासने मन लगायके कीनी । सों या प्रकार रामदासजी रहे ।

ता पाछे (जब) पद्मनाभदासजी की देह छूटी तब श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास श्रीठाकुरजी<sup>x</sup> को बैठाये । सो सदा श्रीनाथजी की पास रहे ।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीगोवर्द्धननाथजीकी सेवा को विस्तार बढ़ायो । सो राजसेवा करन लागे, जो—भोग सामग्री को नेग कियो, सेवक बहोत राखे, सो दरजी, सुनार, खाती सगरेन को नेग करि दियो । और भंडारी (अधिकारी) राखे, सो भंडारी को गादी तकिया ।

या प्रकार श्रीगोवर्द्धननाथजी की ईश्वरता बढ़ाये । और सगरे सेवकन की ऊपर कृष्णदास अधिकारी कों मुखिया

---

<sup>x</sup> श्रीमुकुन्दरायजी ।



किये, सो जो काम होय सो पूछनो । सो श्रीगुसांईजी सेवा श्रृंगार करि जांय, और काहूसों कछु कहें नहि कोई बात कोई सेवक श्रीगुसांईजी सों पूछे तब श्रीगुसांई आपु कहें जो— कृष्णदास अधिकारी के पास जावो । जो जाने नहिं । सो या प्रकार मर्यादा राखी ।

या मांति सों कृष्णदास को वैभव भारी और हु भारी । सो जहां चलें तहां रथ, घोडा, बैल, ऊंट, गाडी, पचास मनुष्य संग । सो कृष्णदास अधिकारी सब देसन प्रसिद्ध भये ।

सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्रीगोवर्द्धनधर सुनावते । सो एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-३

और एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने कृष्णदास कों आ दीनी, जो— स्यामकुंभार को मृदंग समेत संग लेके परासो सेन आरती पीछे जैयो, तहां रासलीला करेंगे । श्रीगोवर्द्धननाथजी को दंडवत करिके कृष्णदास परवत तें न आये । ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी स्यामकुंभार सों कहे जे तुमकों जहां कृष्णदास कहें, तहां मृदंग लेके जैयो । या प्रकार स्यामकुंभार कों श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये ।



सो या प्रकार स्यामकुमार को श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये सो श्रीहरिरायजी कृत यातें, जो लीलामें स्यामकुमार विशाखाजी की सखी भावप्रकाश है । तहां लीलामें इनको नाम 'रसतरंगिनी' है । सो इनकी मृदंग की सेवा है ।

एक समय रसतरंगिनी सेन किये हते, सो विशाखाजी को मन गान करिवे को भयो । तब रसतरंगिनी को जगायके कहे जो—तू मृदंग बजाव, सो तब मृदंग बजायो । तब विशाखाजी गान करन लागी । सो अल्सातें रसतरंगिनी चूकि जाय । तब विशाखाजी क्रोध करिके कहे जो—आज कैसें बजावत है ? तब रसतरंगिनीने कह्यो जो—मोको नौद आवत है । और तिहारो मन तो गान करिवे को है, और मोको नौद आवत है सो कैसे बने ? तब विशाखाजी मृदंग आपुही लिये और क्रोध करिके विशाखाजीने रसतरंगिनी सो कह्यो जो—तू मेरी सखी नाहीं है । सो जायके तू भूमिमें जनम लेउ । अहंकार करिके बोली सो ताको यही दंड है ।

तब ये महावन में एक कुम्हार के घर जन्मे । सो स्यामकुमार नाम परयो । सो सगरे समाज में चतुर हते । श्रीगुसांईजी आपु इनको बुलायके श्रीनवनीतप्रियाजी के पास राखे । तब इन स्यामकुमार को नामनिवेदन करवायो ।

जब श्रीगोवर्द्धननाथजी को वैभव बढ्यो, तब कृष्णदास के मनमें आई जो मृदंगी चाहिये । तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे जो—श्रीगोकुल में स्यामकुमार है, सो मृदंग आछी बजावत है । ताको श्रीगुसांईजी को कहिके यहां राखो । तब कृष्णदासने श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो—स्याम-



कुंभार को श्रीगोवर्द्धनधर की सेवा में राखो । जो—यह इच्छा प्रभुन है । तब श्रीगुसांईजी आपु स्यामकुंभार को श्रीगोकुल तें बुलायके नाथजी की सेवामें राखे । सो ता दिन तें स्यामकुंभार श्रीनाथजी आगे मृदंग बजावतो । सो या प्रकार स्यामकुंभार श्रीगिरिराज में रह

तब कृष्णदासने स्यामकुंभार को बुलायके कह्यो जे श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा आजु परासोली में रास का की है, सो मृदंग ले आवो, सेन आरती पीछे चलेंगे । त स्यामकुंभारने कह्यो जो—मोहूकों आज्ञा दीनी है, तासों मृदं छेके तिहारे पास आयोहूं । सो जब सेन आरती श्रीगोवर्द्धननाथजीकी होय चुकी, तब कृष्णदास स्यामकुंभार को ले परासोली में चंद्रसरोवर है, तहां आये । तहां देखे श्रीगोवर्द्धनधर और श्रीस्वामिनीजी सगरी सखीन सहि विराजे हैं ।

तब श्रीगोवर्द्धनधरने स्यामकुंभार सों कही जो—तू तो मृदंग बजाव, और कृष्णदास सों कह्यो जो—तू कीर्तन गाव । सो चै सुद १५ \* पून्यो के दिन रात्रि प्रहर डेढ गई, उजिया फैल गई सो अलौकिक रात्रि भई । तब स्यामकुंभार मृदंग बजायो । सो वसंत ऋतु के सुन्दर फूल लतानसों फूल रहे हैं । सो श्रीगोवर्द्धनधर श्रीस्वामिनीजी सहित नृत्य कर लागे । ता समय कृष्णदासने यह पद गायो । सो पद—

\* श्रीनटवरलालजीके यहां इसीदिन रात्रि कों रास के दर्शन होते हैं ।



राग केदारो-१ 'श्रीवृषभाननंदनी नाचत लाल गिरि-  
धरन संग, लाग डाट उरप तिरप रास रंग राच्यो' ।

सो यह पद सुनिके श्रीगोवर्द्धनधर प्रसन्न होयके अपने  
श्रीकंठ की प्रसादी कुंदकुसुमन की माला दीनी । सो कृष्णदास  
अपनो परम भाग्य माने सो रोमरोम में आनंद भरि गयो ।  
सो तब रस में मगन होयके यह पद गायो । सो पद-

राग मालव-१ 'अलाग लागिन उरप तिरप गति नट  
वत ब्रजललना रासैं × × × ×  
अपने कंठ की श्रमजलदलपलि माला देत कृष्णदासैं' ।  
२ 'तताथेई रास मंडल में' । ३ 'चंद गोविंद गोपी तारामन' ।  
४ 'सिखवत पिय को मुरली बजावत' ।

सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदासजीने गाये ।  
तब स्यामकुंभार मृदंग बहोत सुंदर बजायो । सो श्रीगोवर्द्धनधर,  
श्रीस्वामीनीजी सगरे ब्रजभक्तन सहित परम अदभुत नृत्य  
किये । सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की कानि तें कृष्णदास  
पर श्रीगोवर्द्धनधर एसी कृपा करते ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धनधर श्रीस्वामिनीजी सहित सगरे ब्रज-  
भक्त अंतर्ध्यान भये । तब कृष्णदास और स्यामकुंभार मृदंग  
छेके गोपालपुर आये, सो कृष्णदासने समे २ के कीर्तन  
बहुत किये ।

वार्ता प्रसंग-४

और एक दिन सूरदासजीने कृष्णदास सों कही जो-



कृष्णदास ! तुमने जितने कीर्तन किये तामें मेरी छाया आ-  
है । तब कृष्णदासने कही जो-अब के एसो पद करुं सो त  
तिहारी छाया न आवे ।

पाछे कृष्णदास एकांत में बेठिके विचार किये एक  
मन करिके, जो-सूरदास जो वस्तु न गाये होय सो गावने  
यह विचार किये । सो जा लीला को विचार कि-  
ताही लीला के पद सूरदासजी (नें) गाये हैं । सो दान, मान  
और गायन को वर्णन सब लीलाके पद सूरदासजीने गाये हते  
सो कृष्णदासजी विचार करत हारे । मनमें महाचिंत भई  
सो कृष्णदासजी कों प्रहर एक गयो, सो हारिके उठि बैठे  
जो कागद लेखनी द्वात कलम धरिके महाप्रसाद लेन गये  
तब श्रीगोवर्द्धनधर आयके पद पूरो करि गये । सो पद—

राग गोरी-१ 'आवत बने कान्ह गोप बालक सं-  
नेचुकी-खुर-रेनु छुरित अलकावली' ।

यह पद लिखिके आपु तो पधारे । सो 'नेचुकी  
गायन को वर्णन सूरदासजीने नांही कियो हतो । जो 'नेचुकी  
गाय सों कहिये जो- पहले ब्यांत होय, ताको स्नेह बछर  
ऊपर बहोत होय । सो एसी नेचुकी गाय काहू सखा ग्वा-  
सों घिरत नांही हैं, सो बारंवार अपने बछरा के ताई घ-  
कों ही भाजत है । जो एसी नेचुकी के जूथ में श्रीठाकुरज  
आपु पधारे हैं । तब नेचुकी गाय की खुर रेनु मुख प



अलकन पर लगी है। सो यह श्रीठाकुरजी आपु एक तुक करि कागद के ऊपर लिखिके पधारे।

ता पाछे कृष्णदास महाप्रसाद आनंद सो लेके आये सो कीर्तन पूरो किये। सो पद—

राग गोरी—१ ‘ आवत बने० ’।

सो या प्रकार कीर्तन पूरो करिके कृष्णदासजी प्रसन्न होयके सूरदासजी की पास आये, हसत २। तब सूरदासजीने पूछी जो— आज बहोत प्रसन्न हसत आवत हो, सो कहा नौतन पद किये ? तब कृष्णदास ने कह्यो जो— आजु एसो पद कियो है, तामें तिहारे पदन की छाया नांही है। जो वस्तु तुमने गाई नहीं है।

तब सूरदासजी कहे जो— तुम मोकों बांचिके सुनावो तो सुनों। तब कृष्णदास (ने) पहली ही तुक कही जो— ताही कों सुनिके कृष्णदास सों सूरदासजी बोले जो— कृष्णदास ! मेरे तिहारे वाद है। कछू तिहारे वापसों विवाद नांही है। सो यामें तिहारो कहा है ? जो मैने नेचुकी नांही गाई सो प्रभु कहि दिये। और तो श्रीअंगके वरनन के मेरे हजारन पद हैं, सोई तुमने गायके पूरन किये हैं। यह सूरदासजी के वचन सुनि के कृष्णदासजी चुप होय रहे।

सो तहां यह संदेह होय जो— कृष्णदासजी तो ललिताजी को श्रीहरिरायजी कृत स्वरूप हैं, और श्रीगोवर्द्धननाथजी कृष्णदास की भावप्रकाश, पक्ष किये, सो पद बनाये। तोह सूरदासजी सों न जीते। ताको कारण कहा है ?



तहां कहत हैं जो—कृष्णदासजी ललितारूप हैं । सो तैसेही सुरदासजी चंपकलतारूप हैं । परंतु आपुनो अधिकार—भेद है । सो लीलाह में श्रीललिताजी की सेवा श्रेष्ठ है । तैसेही यहां सेवा की भात ते' कृष्णदास श्रेष्ठ । सो सगरे सेवकन की सेवा में चोकसी, सगरी वस्तु समारनी, सेवा को मंडान विस्तार करनो । यामें कृष्णदास परम चतुर । जैसे सुनार सों दरजी की सेवा न होय और दरजी सों सुनारके आभूषन को काम न होय । सो सब अपनी २ सेवा में चतुर हैं । और श्रीस्वामिनीजी की सखी दोऊ प्रिय हैं । तासों श्रीगोवर्द्धन-नाथजी की प्रीति तो दोउन के ऊपर है । परंतु कृष्णदास के मन में रंचक अहंकार आयो, जो—मैं हू कीर्तन बहोत किये हैं ।

सो वे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगव-दीय हते ।

#### वार्ता प्रसंग—५

और एक समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में सामग्री चाहियत हती, सो तब कृष्णदास गाड़ा लिवाय आपु रथ पर असवार होयके श्रीगोवर्द्धन सों, आगरे आये । सो जब आगरे के बजार में गये, तहां एक वेश्या अपनी छोरी कों नृत्य सिखावत हती । सो वह छोरी परम सुंदर वरस बारह की हती, कंठहू परम सुंदर हतो । सो गाननृत्यमें चतुर बहोत हती । सो वह वेश्या ताल टप्पा गावत हती । सो वह छोरी को गान कृष्णदास के कानपें परयो हतो सो कृष्णदास के मनमें बैटि गयो, सो प्रसन्न होय गये । तब कृष्णदासने तहां अपनो रथ



ठाढ़ो कियो । सो भीड़ सरकायके वा छोरी को रूप देखे,  
सो तहां गान सुनिके मोहित होय गये ।

तहां यह संदेह होय जो—कृष्णदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के  
श्रीहरिरायजी कृत कृपापात्र सेवक वेस्या के गान पर मोहित क्यों भये ?

भावप्रकाश. जो ये तो श्रीठाकुरजी के ऊपर मोहित हैं । सो  
इनको अप्सरा देवांगना तुच्छ दीसत हैं । और श्रीआचार्यजी आपु  
जलभेद ग्रन्थ में कहे हैं जो—

‘वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्तसंज्ञिताः ।

जलार्थमेव गर्तस्तु नीचा गानोपजीविनः ॥’

वेश्यादि सहित गायक भाट, डोम, नीच को गान सूकर के गड़ेलाके  
जलवत है । सो वामें न्हाय, पीवे सो जैसें नीचको गानरस पीवे ।  
या प्रकार के दोष श्रीआचार्यजी कहे हैं ।

सो कृष्णदास परमज्ञानवान मर्यादा के रक्षक । सो ये वेश्या के  
गान पर रीझे ? सो इनकी देखादेखी करे सो बहिर्मुख होय ।  
ये तो सब को शिक्षा देवे को उद्धार करन को प्रकटे हैं, तासों ये  
कृष्णदास वेश्या के ऊपर क्यों रीझे ?

यह संदेह होय तहां कहत हैं जो—यहां कारन और है ।  
जो—यह वेश्या की छोरी लीला संबंधी दैवी जीव ललिताजी की सखी  
है, सो लीला में इनको नाम ‘बहुभाषिनी’ है ।

सो एक दिन ललिताजी श्रीठाकुरजी के लिये सामग्री करत हती,  
तब ललिताजी ने बहुभाषिनी सों कही जो—तू मिश्री पीसिके ले  
आउ । सो बहुभाषिनी मिश्री को डंबरा भरिके ले चली । सो दूसरी सखी



सों बात करते करते छांटा उड्यो, सो मिश्री में परचो । सो बहुभाषिनी को खबरि नांही ।

पाछे मिश्री को डबरा लेके ललिताजी के पास आई, तब ललिताजी परम चतुर हती सो जानि गई । पाछे बहुभाषिनी सों कही जो— यह सामग्री छुड़ गई । जो— तेरे मुख तें छांटा परचो है । सो भगवद् इच्छा होनहार । तब बहुभाषिनी ने कही जो— तुम झूठ कहत हो, छींटा तो नांही परचो । ओर श्रीठाकुरजी सखामंडली में सब की जूठनि हू लेत हैं ।

सो तब ललिताजी ने कह्यो जो— प्रभुन की लीला तू कहा जाने ? प्रभु प्रसन्न होय चाहे सो करें, सोई छाजे । जो अपने मन तें कछु हीन क्रिया करे सोई भ्रष्ट । तासों तू हीन ठिकाने जनमेगी । तब बहुभाषिनी ने कही जो— तुमहू शूद्र के घर जनम लेके मेरो उद्धार करो । जो तुमकों छोड़िके मैं कहां जाऊं ?

सो या प्रकार परस्पर श्राप भयो । तब कृष्णदास शूद्र के घर जन्मे, और बहुभाषिनी को जनम वेश्या के घर मात्र भयो, सो लौकिक पुरुष को मुख नांही देख्यो । सो कृष्णदास को श्रीगोवर्द्धनधर प्रेरिके आगेरे में वा वेश्या के अंगीकार के लिये पठाये । तासों कृष्णदास के हृदय में वेश्या को गान प्रिय लय्यो ।

सो ठाड़े होयके गान नृत्य सुनिके मनमें विचारे जो— यह सामग्री तो अति उत्तम है, और दैवी जीव है, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के लायक है । तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वाको अंगीकार करें तो आछो है ।



सो यह कृष्णदासजी अपने मनमें विचार करिके इस रुपैया वा वेश्या कों देके कहे जो—हमारे डेरान पर रात्रिकों आइयो । यह कहिके कृष्णदासजी जहां हवेलीमें हमेस उतरते ताही हवेलीमें उतरे, और सामग्री जो लेनी हती सो गाड़ा लदाय दिये ।

ता पाछे रात्रि ग्रहर एक गई, तब वह वेश्या समाज सहित आई, सो तब नृत्य गान कियो । सो कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये । तब वा वेश्या कों रुपैया १००) सो दिये । और वा वेश्या सों कहे जो—तेरो रूप, गान, नृत्य सब आछे हैं । तासों—सवारे हम श्रीगोवर्द्धन जायगें, और हमारो सेठ तो उहां हैं जो—तेरो मन होय तो तू चलियो । तब वा वेश्याने कही जो—हमको तो यही चाहिये । पाछे वह वेश्या अपने मनमें बहोत प्रसन्न भई, जो—ये इतने रुपैया दिये तो सेठ न जाने कहा देयगो ?

सो तब वेश्याने घर आयके अपनी गाड़ी सिद्ध कराई, सो गायवेको साज सब आछे बनाय गाड़ी ऊपर धरि राख्यो । तब सवारे भये कृष्णदास के पास आई । पाछे कृष्णदास वा वेश्याकों लिवायके ले चले, सो मथुरा आय रहे । तब दूसरे दिन मथुरा तें चले सो मध्यान्ह समय गोपालपुर में आये । पाछे वा वेश्याकों न्हायके नवीन वस्त्र पहरेवेकों दियो, सो वाने पहरयो । तब कृष्णदास अपने मनमें विचारे जो—यह ख्याल टप्पा गायगी सो श्रीगोवर्द्धनधर सुनेंगे ।



तासों मैं याकों एक पद सिखाऊं । तब कृष्णदासने वा  
वेश्या कों एक पद सिखायो । और कह्यो जो—ये पद तू  
पूरवी राग में गाइयो । सो पद—

राग पूरवी—‘मेरो मन गिरधर छवि पर अटक्यो०’ ।  
यह पद कृष्णदासने वा वेश्या कों सिखायो ।

ता पाछे उत्थापन के दर्शन होय चुके, तब भोग के  
दर्शन के समय वा वेश्या कों समाज सहित कृष्णदास पर्वत के  
ऊपर ले गये ।

सो भोग के समय यातें ले गये, जो—उत्थापन के समय निकुंज  
में जागिके ( श्रीठाकुरजी ) उठत हैं । तातें उत्थापन भोग बेगि  
भीहरिरायजी कृत आयो चाहिये । और भोग के दर्शन—ब्रजके  
भावप्रकाश, मारग में पधारत हैं, सो अनेक भक्तन को अंगीकार  
करत हैं । तासों याहू कों अंगीकार करनो है । तासों भोग के समय  
कृष्णदास वेश्या को पर्वत ऊपर ले गये ।

पाछे भोग के किवाड़ खुले । तब वह वेश्याने पहले नृत्य  
कियो, ता पाछे गान करन लागी । सो कृष्णदासने पद  
करिके सिखायो हतो सो गायो । सो गावत २ जब छेली  
तुक आई जो—‘कृष्णदास कियो प्रान न्योछावरि यह तन  
जग सिर पटक्यो ’

या पद को गान करत ही वा वेश्या की देह छूटि गई,  
सो दिव्य देह होय लीलामें प्राप्त भई ।

सो तब सगरे समाजी तथा वा वेश्या की माता रोवन  
लागी । जो—हम यासों कमाय खाते, अब हम कहा



करेंगे ? तब कृष्णदासने उनकों नीचे ले जायके कह्यो जो— अब तो भई सो भई, जो याकी इतनी आरबल हती । सो— या बात को कोऊ कहा करे ? अब तुम कहो सो तुमकों देऊं । तब उन कही जो— हजार रुपैया देऊ जो— कछुक दिन खांय । पाछे जो— होनहार होयगी सो सही । तब कृष्णदासनें हजार रुपैया देके उन सबनकों विदा किये ।

सो या प्रकार वा वेश्या की छोरी कों श्रीगोवर्द्धननाथजी कृष्णदास की कानि तें आपु अंगीकार किये ।

तहां यह संदेह होय , जो— श्रीआचार्यजी के संबंध बिना लीला की प्राप्ति कैसे भई ? तहां कहत है जो—कृष्णदास के हृदयमें श्रीहरिरायजी कृत श्रीआचार्यजी विराजत हैं । सो कृष्णदासने पद

भावप्रकाश. वेश्या की छोरी कों सिखायो, सो देखिबे मात्र है । या पद द्वारा श्रीआचार्यजी को संबंध कराये । तासों यह पहिली तुक में कहे जो— ‘ मेरो मन गिरधर—छवि पर अटक्यो ’ सो सगरो धरम, मन लगायवे की रीत करी है । जीव अपनी सत्ता मानि ली, पुत्र, देह में मन लगायो ( है ) तासों समर्पन करावत हैं ।

तहां कोऊ कहे, जो— जीव सब दे चुक्यो है, जो अपनी सत्ता छोडिके प्रभुनकी सत्ता सब है । तासों मोकों तो एक श्रीकृष्ण ही गति हैं । तासांया पद में कहे जो—मेरो मन श्रीगोवर्द्धनधर की छवि पर अटक्यो,सो सब छोडिके, या प्रकार कृष्णदास द्वारा श्रीआचार्यजी आपु संबंध कराये, यह जाननो ।



तोह संदेह होय, जो—गुरु बिना लीला में कैसे प्राप्ति भई ?  
 सो अलीखान को प्रभु दरसन दिये । ता पाछे अलीखान को  
 और अलीखान की बेटी को सेवक होयवे की कही, सो सेवक कराये ।

यहां नांही कराये, यह संदेह होय, सो काहेते ? जो ब्रह्मसंबंध में  
 श्रीगोवर्द्धनधर की हू यही आज्ञा है जो—जाको तुम ब्रह्मसंबंध करवा-  
 वोगे, ताकूं मैं अंगीकार करूंगो । तासों इन को श्रीआचार्यजी महाप्रभु,  
 श्रीगुसांईजी द्वारा ब्रह्मसंबंध न भयो और लीला की प्राप्ति कैसे भई ?  
 उद्धार होय, परंतु लीला की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ । सो ब्रह्मसंबंध को  
 दान करिवे के लिये श्रीआचार्यजी के कुल को विस्तार भयो ।

सो काहे तें ? जो—सेवकन कां श्रीआचार्यजी आपु नाम सुनायवेकी  
 आज्ञा दीनी, परि ब्रह्मसंबंध की नांही । तासों ब्रह्मसंबंध को दान  
बलभकुलही तें होय । सो औरतं फलित नांही है ।

यह संदेह होय, तहां कहत है, जो—वेश्याकी छोरी देह तजिके  
 लीला में गई । तहां लीला में ललिता, श्रीगुसांईजी सदा विराजत हैं ।  
 सो कृष्णदासजी लीला में ललितारूप होय जगत तें काढिके लीला  
 में पठाये, सो लीला में श्रीललिताजी ने श्रीस्वामिनीजी द्वारा ब्रह्मसंबंध  
 कराय अपनी सेवा में राखे । सो काहेतें ? जो—ललिताजी की सखी है ।

या प्रकार ब्रह्मसंबंध भयो । सो जैसे मथुरा में नागर की बेटी  
 को लीला में ब्रह्मसंबंध श्रीगुसांईजी कराये, यह भाव जाननो ।

सो वे कृष्णदास एसे भगवदीय हते । जो वेश्या को  
 अंगीकार करायो ।



### वार्ता प्रसंग-६

और एक समय सगरे वैष्णव मिलिके कुंभनदासजी के पास आये । सो उनकों प्रीति सों बैठारिके पूछे जो—आजु बड़ी कृपा करी, जो—कछु आज्ञा करिये ।

तब वैष्णवनने कही जो—तुमसों कछु मारग की रीति सुनिवे कों आये हैं । तब कुंभनदासजीने कह्यो जो—मारग की रीतिमें तो कृष्णदास अधिकारी निपुण हैं, सो उनसों पूछो ।

तब उन वैष्णवनने कही जो—हमारी सामर्थ्य नांही है, जो—कृष्णदास सों पूछि सकें । तब कुंभनदासजीने कह्यो जो—तुम मेरे संग चलो, जो तिहारी ओरतें हम पूछेंगे । तब सगरे वैष्णव कुंभनदासजी के संग गये ।

सो कुंभनदासजी यातें नांहों कहे, जो—कुंभनदासजी को मन श्रीहरिरायजी कृत रहस्य लीला में मगन है । सो कहा भावप्रकाश जानिये जो प्रेममें कहा वस्तु निकसि पडे ; और कीर्तन में गूढ रीति सों लीला वरणन करत हैं । तासों जाको जैसे अधिकार है, ताकों तैसो कीर्तन में भासत है । और वैष्णवन सों कहनो परे सो खोलिके समुझावनो परे । तासों कुंभनदासजी कृष्णदास के पास सारे वैष्णवन को संग लेके आये ।

सो तब सब वैष्णवन कों देखिके कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये, और सबन कों आदर करिके बैठारे । ता समय कृष्णदासनें यह कीर्तन गायो । सो पद—



राग सारंग-१ ' गिरधर जब अपुनो करि जानें० ' ।

यह पद कृष्णदासने कह्यो । पाछे कृष्णदासने पूछी जो-आज मो पर सगरे भगवदीय कृपा करे सो-मेरे पास पधारे । तासों अब जो प्रसन्न होयके आज्ञा करो सो मैं करूं । तब कुंभनदासजीने कह्यो जो- सगरे वैष्णवन को मन पुष्टिमारग की रीति सुनिवे को है । सो कहा कहिये ? कहा सुमिरन करिये, सो एसे पुष्टिमारग को अनुभव होय सो कृपा करिके सुनावो ।

तब कृष्णदासने कह्यो जो-कुंभनदासजी ! तुम सगरे प्रकार करिके योग्य हो, जो-श्रीआचार्यजी के कृपापात्र भगवदीय हो, सो उचित है । तुम बड़े हो, जो तिहारे आगे मैं कहा कहूं ? तुमसों कछु छानी नांही है । तब कुंभनदासजी कृष्णदाससों कहे जो-तुम कहो, हमारी आज्ञा है । जो-सगरे सेवकन में तुम मुख्य हो । सेवकन को कार्य तिहारे हाथ है, जो-यह पुष्टिमारग के अधिकारी तुम हो, तातें तुम कहो ।

तब कृष्णदासने पहले अष्टाक्षर को भाव कीर्तन में कह्यो, सो पद-

राग सारंग-' कृष्ण श्रीकृष्ण शरणं मम उच्चरे० ' ।

सो यह अष्टाक्षर को भाव कहिके अब पंचाक्षर को भाव कीर्तन में गाये । सो पद-

राग सारंग-' कृष्ण ये कृष्ण मन मांह गति जानिये० ' ।

सो ये दोय कीर्तन कृष्णदासने गाय सुनाये । तब सगरे



वैष्णव प्रसन्न होयके कहे जो—कृष्णदास ! तुम धन्य हो । जो—दोय कीर्तन में संदेह दूर कियो । और मारग को सब सिद्धांत बतायो ।

ता पाछे कृष्णदास सों विदा होयके सगरे वैष्णव अपने घर कों गये । सो वे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपा-पात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-७

और कृष्णदास को गंगाबाई क्षत्रानी सों बहोत स्नेह हतो ।

सो काहेतें ? जो लीला में गंगाबाई श्रुतिरूपा के जूथ में तामसी श्रीहरिरायजी कृत भक्त हैं । सो मथुरा के एक क्षत्री के घर भावप्रकाश जन्मी । पाछे वरस ११ की भई । तब गंगाबाई कों मथुरा में एक क्षत्री के बेटा सों ब्याह भयो । पाछे गंगाबाई क्षत्राणी के जो बेटा होय सो मरि जाय, सो नो बेटा भये । ता पाछे एक बेटा भई । सो बेटा को विवाह गंगाबाई क्षत्राणीने कियो । गंगाबाई की बेटा के गहनो बहोत हतो । सो वह बेटा मरी । सो बेटा को गहनो लाख रुपैया को दावि राख्यो, सो कछू मथुरा के हाकिम को देके गहनो सब राख्यो ।

ता पाछे वरस ५५ की भई तब झगडा के लिये श्रीनाथजीद्वार आयके रही । सो कृष्णदास सों मिलिके श्रीआचार्यजी सों सेवक होय को कही । तब कृष्णदासने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी, जो—महाराज ! गंगाबाई क्षत्राणी कों शरण लीजिये । तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—जीव तो दैवी है, परन्तु अभी मन श्रीठाकुरजी में नांही है ।



तब कृष्णदासने बिनती कीनी जो— महाराज ! आपकी कृपा तें श्रीगोवर्द्धननाथजी कृपा करेंगे । पाछे श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास के आप्रह सों गंगाबाईकों नामनिवेदन करवायो ।

सो कृष्णदास पहले श्रीगोवर्द्धननाथजी के भेटिया होयके परदेस कों जाते, तब गंगाबाई क्षत्राणी मथुरा कों आवती । पाछे कृष्णदास श्रीनाथजीद्वार आवते तब गंगा क्षत्राणी हू मथुरा सों सगरी वस्तु ले श्रीजीद्वार आवती । सो कृष्णदास गंगाबाई को मन भगवद्धर्म में ल्प्यायवेके ताई दोऊ समे को महाप्रसाद श्रीनाथजी को वाके घर पठावते । क्यों ? जो गंगाबाई की खानपान में प्रीति बहोत हती । सो कृष्णदास बहोत सुन्दर सामग्री श्रीनाथजी को आरोगावते, और गंगाबाई कों भगवद्धर्म समुझावते । पाछे कृष्णदास गंगाबाई कों श्रीनाथजी के सगरे दरशन हू करावते । सो कृष्णदास के संग तें गंगाक्षत्राणी को मन अलौकिक भयो ।

सो एक दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राजभोग समर्पत हते, सो सामग्री के ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी\* । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु राजभोग आरोगे नांही । ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु भोग सरायो । पाछे राजभोग आरती करि अनोसर करि आपु परवत तें नीचे पधारे । सो सेवक भीतरिया महाप्रसाद लिये । और श्रीगुसांईजी आपहू महाप्रसाद लेके पौढे ।

---

\* श्रीगुसांईजी के समयमें श्रीनाथजीकी सामग्री आदि की सब सेवा मंदिर के नीचे जो बारह कोठ थे, उसमें होतीथी. और सिद्ध होने के बाद ऊपर लाकर निजमंदिर में भोग आती थी ।



ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी आय रामदास भीतरिया कों लात मारिके जगाये । तब रामदासजी जागे । सो देखे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं । सो रामदासजी दंडवत करिके हाथ जोड़िके ठाढ़े भये । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु रामदास सों कहे जो—मैं तो भूख्यो हूं ।

पाछे रामदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों विनती कीनी जो—महाराज ! श्रीगुसांईजीने राजभोग सम्प्यों हतो, और तुम भूखे क्यों रहे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने कही जो—राजभोग में तो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी, तासों मैं नांही आरोग्यो हूं ।

तब रामदासजी भीतरिया श्रीगुसांईजी के पास जाय चरणारविंद दाविके जगाये, और विनती कीनी जो—महाराज ! श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भूखे हैं । सो राजभोग में गंगाबाई की दृष्टि परी है, तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु राजभोग नांही आरोगे हैं ।

सो यह सुनत ही श्रीगुसांईजी आपु तत्काल उठिके स्नान करिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में पधारे । पाछे रामदासजी न्हायके आये, इतने में सब भीतरिया हू स्नान करिके आये । तब श्रीगुसांईजी आपु सीतकाल देखिके भीतरियान सों कहे जो—बड़ी और भात करो । सो बेगि सिद्ध होय जायगो, तातें तैयार करो ।



तब भीतरियानने बड़ी और भात कियो । सो श्री-गुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भोग धरे । ता पाछे राजभोग की सगरी सामग्री सिद्ध भई, और सेनभोग की हू सगरी सामग्री सिद्ध भई । सो राजभोग, सेनभोग दोउ भोग संग ही श्रीगुसांईजीने धरे ।

पाछे समय भये भोग सरायो । ता पाछे श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों पोढ़ायके अनोसर करवायके बाहिर पधारे । सो एक डबरा में बड़ीभात श्रीगुसांईजी अपुने श्रीहस्त में लेके परवत तें नीचे पधारे । पाछे सगरे सेवकन कों बड़ीभात अपने हाथ सों रंच रंच दियो, और रंचक श्रीगुसांईजी आपु आरोगे । बड़ीभात महाप्रसाद बहुत स्वाद भयो, सो श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों बहोत सरहायो ।

पाछे रामदास आदि सब सेवकनने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो— महाराज ! यह सामग्री तो सीतकाल में कितनीक बार करी है, परंतु आजु बहोत स्वाद भयो । तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भूखे हते सो प्रीति सों आरोगे, तासों स्वाद अद्भुत भयो ।

ता समय कृष्णदास पास ठाड़े हते । सो कृष्णदासने कही जो— महाराज ! आपुही करनहारे और आपुही आरोगन-हारे, सो स्वाद क्यों न होय ? तब श्रीगुसांईजी आपु वा समय श्रीमुख सों कहे जो— ये तिहारे ही किये भोग भोगत हैं ।



तहां यह संदेह होय जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगे नांही ।  
 श्रीहरिरायजी कृत सो श्रीगुसांईजी आपु भोग सराये, आचमन मुख  
 भावप्रकाश. वस्त्र करायो पाछे श्रीगोवर्द्धनधर को बीरी आरोगे—

गाये । सो भूखे श्रीगुसांईजीने न जानें ? और बीरी आरोगत श्रीगोव-  
 र्द्धनधर श्रीगुसांईजी सों न कहे, जो— मैं राजभोग नांही आरोग्यो ।  
 ताको कारण कहा ? जो रामदास भीतरिया सों क्यों कहे ?

सो यह संदेह होय तहां कहत हैं, जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी वा दिना  
 श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी के यहां श्रीगिरधरजीने बड़ीभात करायो  
 हतो, श्रीशोभावेटीजी किये । सो तब श्रीगिरधरजी और श्रीशोभावेटीजी  
 के मन में आई, जो— श्रीगोवर्द्धनधर आपु पधारे और नौतन  
 सामग्री आरोगें । तासों उहां वह दूसरो स्वरूप ( भक्तोद्धारक ) श्री-  
 गिरिराजतें पधारिके श्रीगोवर्द्धनधर बड़ीभात आरोगे । और श्रीगिरिधरजी,  
 श्रीशोभावेटीजी को तो मनोरथ, सो भक्तन को अनुभव करत हैं । सो  
 स्वरूप तो आरोगि पाछे श्रीगिरिगज पर्वत के ऊपर पधारे । सो उहां  
 ( गिरिराजपें ) सगरे सेवक महाप्रसाद ले चुके । और श्रीगुसांईजी  
 आपु पोढ़े । ता समय मंदिर में श्रीस्वामिनीजीने पूछी जो— कहो, कहां होय  
 आये हो ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो— बड़ीभात श्रीगोकुल में  
 श्रीगिरिधरजी श्रीशोभावेटीजी को मनोरथ (हतो) सो आरोगके आयो हूं ।  
 यह सुनिके श्रीस्वामिनीजीने हू बड़ीभात आरोगवे को मनोरथ कियो, जो—  
 बड़ीभात आरोगें तो आछो । सो यहां (तो) (राजभोग) होय चुके ।

तब श्रीस्वामिनीजीने श्रीनाथजी सों कह्यो, जो— जायके रामदास  
 सों कहो जो— सामग्रीपे गंगावाई क्षत्राणी की दृष्टि परी है । सो काहेतें ?



जो—लीलामृष्टि के वचन हूँ सिद्ध करने हैं । जो— श्रीगुसांईजी को छे महिना को विप्रयोग है ।

यातें जो—लीला में एक समय श्रीठाकुरजी ललिताजी सो कहे जो— मैं तेरी निकुंज में पधारूंगो । यह बात श्रीचंद्रावलीजीने सुनी । सो श्रीचंद्रावलीजीने श्रीठाकुरजी को विविध चतुराई करि सेवा द्वारा ललिताजी के यहां छ मास तक पधारवे सो बरजे । सो ललिताजी विरह करि महा क्रस होय गई । पाछें यह बात श्रीस्वामिनीजीने जानी, सो श्रीस्वामिनीजी ललिताजी को संग लेके श्रीठाकुरजी की पास वाही समय आई । और श्रीठाकुरजी सो कह्यो जो— तुम (नैं) छे महिना लों मेरी सखी को विरह दियो, अब तुम छे महिना लों ललितासखी के बस में रहोगे । और जाने मेरी सखी को दुख दियो हैं, सो छ महिना लों दुःख पावो, और वाकों तिहारो दरसन हूँ न होय । सो यह बात सुनिके श्रीठाकुरजी आपु चुप होय रहे ।

यह बात एक सखीने श्रीचंद्रावलीजी सो कही । सो सुनिके श्रीचंद्रावलीजी कहे जो— श्रीस्वामिनीजी श्रीठाकुरजी तो बड़े हैं । तासों इनसों तो कछू कही जाय नांही । परंतु ललिता सखी होय एसो खोटो कियो, जो श्रीस्वामिनीजी की सखी, सो मेरी सखी बराबरी है । सो इन (नैं) मोको श्राप दिवायो जो छे महीना लों मोको प्रभुन को दरसन हूँ नांही ? सो ललिताने स्वामिनी—द्रोह कियो ।

सो काहेते ? जो श्रीठाकुरजीतें श्रीस्वामिनीजी प्रकटी हैं । और स्वामिनीजी के मुखचंद्रतें श्रीचंद्रावली प्रकटी । श्रीचंद्रावलीजीतें सगरी स्वामिनी सखी प्रकटी हैं । तासों श्रीठाकुरजी के दक्षिण भाग श्रीचंद्रावलीजी



बिराजत हैं । याते जो— सगरी सखीन के स्वामिनीरूप, श्रीचंद्रावलीजी ( सो सर्व में ) श्रेष्ठ हैं । तासों श्रीचंद्रावलीजीने कही जो ललिताने स्वामिनी—द्रोह कियो है । तासों ललिता की अकाल मृत्यु होऊ, और प्रेतयोनि कूं पावो । सो श्रीठाकुरजीहू, श्रीस्वामिनीजीहू रक्षा न करि सके । और काहूतें प्रेतयोनि निवृत्त न होय । जो मोकों श्राप दिवायो ताको यह फल भोगो ।

यह बात काहू सखीने ललिता सों कही । सो सुनत ही ललिता महा कंपायमान होयके तत्काल दोरि के श्रीस्वामिनीजी के चरणन में आयके गिरि परी । पाछे अपनी सब बात ललिताने कही ।

तब श्रीस्वामिनीजीने श्रीठाकुरजी को बुलायके कह्यो जो— ललिता अपने हाथ सों गई, तासों अब कछू उपाय करो । पाछे श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को संग ले ललितादि समाज सहित श्रीचंद्रावलीजी के यहां पधारे । सो श्रीचंद्रावलीजी तत्काल उठिके श्रीठाकुरजी को स्वामिनीजी को नमस्कार करिके ऊंचे आसन पधराये । पाछे परम प्रीति सों दोउ स्वरूपन की पूजा करिकें सुन्दर सामग्री आरोगाये । ता पाछे बीरी आरोगाय श्रीचंद्रावलीजी हाथ जोरि के ठाड़ी भई । सो तब दोऊ स्वरूपनने प्रसन्न होयके श्रीचंद्रावलीजी को हाथ पकरिके पास बैठारी ।

ता पाछे श्रीस्वामिनीजी कहे जो— सुनो श्रीचंद्रावलीजी ! तिहारी प्रीति तो महा अलौकिक है, और हमारे तिहारे में कछू भेद नांही है । और यह ललिता अपनी सखी है, सो यह तिहारी है । तासों अब याको श्राप भयो है, सो ताको छुटकारो करो ।



तब श्रीचंद्रावलीजी कहे जो— ललिता अपनी है । तासों यह कछू भयो है सो यह जगत पर लीला करन अर्थ भयो है । सो यह ललिता प्रेत होयगी ताको मैं ही उद्धार करुंगी । जो यह मेरो निश्चय बचन है ।

तब ललिता श्रीचंद्रावलीजी के चरणन में गिरिके कह्यो, जो— मैं तिहारो अपराध कियो सो पायो है । तब श्रीस्वामिनीजीने कही जो— यह सगरो परिकर, कलियुग में श्रीगिरिगज ऊपर लीला करनी है, तहां सब प्रकट होयगो । सो श्रीस्वामिनीजी के यह बचन सुनिके श्रीठाकुरजी, श्रीचंद्रावलीजी ललिता आदि सब प्रसन्न भये ।

सो लीलासृष्टि में अलौकिक स्नेह है, और अलौकिक श्राप है, और अलौकिक ही ईर्षा है, जो माया कृत तहां नांही है । सो उहां ही करिके है । सो भूमि पर जस प्रकट करन के अर्थ ईर्षा श्राप को मिष मात्र । भूमि के जीव लीलागान करि प्रभुन को पावें, सो यही अलौकिक करनो । सो लौकिक ईर्षा श्राप जाने ताको बुरो होय, और अपराधी होय । सो लीला सृष्टि में सब अलौकिक क्रिया है । यह जाननो ।

या प्रकार श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी की इच्छातें श्रीगोवर्द्धन गिरिराज में प्रकट भये, और श्रीस्वामिनीजीरूप श्रीआचार्यजी महा-प्रभु श्रीगोवर्द्धनधर को प्रकट किये । सो लीला में श्रीस्वामीनीजीतें चंद्रावलीजी को प्राकट्य । ताहो भांति सो यहां श्रीआचार्यजी सों श्रीगुसांईजी को प्राकट्य, और ललिता सो कृष्णदास अधिकारी भये ।



और श्रीगोवर्द्धनधर के अनेक स्वरूप हैं, परन्तु दोय रूप सदा रहत हैं । सो एक तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुनने उहां पधराये सो तहां बिराजमान हैं, और एक स्वरूप ( भक्तोद्धारक ) सो सगरे भक्तन को सुख देत हैं । जो कुंभनदास, गोविंदस्वामी, के संग खेलते । सो जहां जहां भगवदीय हैं, तिनको अनुभव करावत हैं ।

तातें जा समय श्रीगुसांईजी आपु भोग समर्पते हते और गंगाबाई क्षत्राणी की दृष्टि परी, ता समय श्रीगुसांईजी राजभोग धरे हैं सो आरोगे । (क्यों?) जो श्रीगोवर्द्धनधर आरोगे नांही, तो असमर्पित स्वाय के सगरे सेवक भ्रष्ट होय जाय ? तातें श्रीआचार्यजी के मंदिरमें पधराये सो स्वरूप ने आरोग्यो ।

यातें श्रीस्वामिनीजीने श्रीगोवर्द्धनधर सो कह्यो जो—श्रीगुसांईजी को छ महीना को वियोग है, तासों गंगाबाई को नाम लीजियो । सो कृष्णदास की और गंगाबाई की प्रीति है, सो गंगाबाई सो श्रीगुसांईजी कहेंगे । और कृष्णदासको बोली मारेंगे । तब कृष्णदास को बुरी ल्योगी ।

सो काहेते ? जो यह कार्य करनो जो—कृष्णदास के मनमें बुरी लगे, तब श्रीगुसांईजी को वियोग होय । तासों तुम जाय के कहो जो मैं भूख्यो हूं । सो तब श्रीनाथजीने रामदास सो जाय कही । परि रामदास यह मेद जाने नांही । सो रामदासने श्रीगुसांईजी सो जाय कह्यो, तब श्रीगुसांईजी मनमें जाने जो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी । अब हमसों और कृष्णदास सो लीला में बात भई हती सो पूरन करिवे की श्रीनाथजी की इच्छा है सो निश्चय होयगो, यह जानि



परत है । सो तासों अब जो सेवा बने, सो प्रीति सों करना । क्यों ?  
जो— सेवा अब दुर्लभ है ।

यह विचारके तत्काल न्हाय बड़ीभात यहां नांही भयो हतो  
और श्रीगोकुल तें आरोगिके आयै, तासों गिरिराज के ठाकुर को  
हू धरनो, सो बेगि सिद्ध करि धरे । ता पाछे सेनभोग की संग राजभोग  
धरे । ता पाछे सेन आरती करि अनोसर करायके मनमें विचारे,  
जो— अब श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरसन महाप्रसाद सबही दुर्लभ भयो ।  
सो बड़ीभात को डबरा उठाय मृतिका के पात्र ही में ठलायके  
परवत तें उतरि रंचक रंचक सबनकों दिये, सो आपुही लिये । सो  
बहोत सराहे ।

तब कृष्णदासने भगवद् इच्छा तें बोली मारी ( व्यंग ) जो  
आपुही करनहारे, और आपुही आरोगनहारे । सो क्यों न स्वाद होय ?

सो यामें यह जताये जो—हमसों न पूछे, जो— तुम ही जाय  
सामग्री किये, और तुमही जायके आरोगे । एसो सौभाग्य तिहारो  
ही है, सो बड़ाई करत हो । सो सब प्रकार सों तिहारी ही बनी है ।  
यह बोली कृष्णदास मारे ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—यह तिहारो ही कियो भोग भोगत  
हैं । सो यह कहिके दोऊ बात जताये, जो—गंगाबाई क्षत्राणीसों प्रीति  
करि वाको बैठारि राखे, सो वाकी राजभोग की सामग्री पे दृष्टि परी ।  
सो यह तिहारो कार्य है । नाहो तो गंगाबाई ऊहां ताई कैसे जाय ?  
और तुमने लोत्र में श्रीस्वामिनीजी सों श्राप दिवायो, सो तिहारो कार्य  
है । सो तिहारे ही किये भोग भोगत हैं ।



यामें यह जताये जो हमको खबरि परि गई जो— अब तिहारो भाग्य खुल्यो, सो तुम करो सो भोगोगे । जो मनमें तो आय चुकी है । अब उपर तें करनो है, सो करोगे ।

सो यह बात सुनिके कृष्णदास के मन में बहोत बुरी लगी । तब कृष्णदास मनमें विचारे जो— श्रीगुसांईजी के दर्शन बंद करने । सो या बातको कोन प्रकार सों उपाय करनो ।

तब श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांईजी के बड़े भाई तिनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी हते । सो तिनसों कृष्णदास मिलि के कहे जो— तुम श्रीआचार्यजी के बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी हैं, तिनके पुत्र हो । सो तुम क्यों चुप बैठि रहे हो ? जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी को सेवा श्रृंगार सब करो । जो— श्रीगुसांईजीने अपनो सब हुकम करि राख्यो है । टीकेत तो तुम हो ।

तब श्रीपुरुषोत्तमजीने कही जो— हमारी सामर्थ्य नाही है जो— श्रीगुसांईजी सों विगारें । तब कृष्णदासनें कह्यो, जो— हमारे संग न्हायके चलो, जो— परवत के ऊपर मंदिर में जायके श्रीनाथजी को सेवा श्रृंगार करो, जो— हम सब करि लेंगे ।

पाछे श्रीपुरुषोत्तमजी उत्थापन तें दोय घडी पहले न्हाये, सो कृष्णदास के संग परवत ऊपर जायके मंदिर में बैठि रहे । और कृष्णदास दंडोती शिला पे जायके बैठि रहे । इतने में श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिकें दंडोती शिला के पास आये ।



तब कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों कही जो- श्रीपुरुषोत्तमजी न्हायके मंदिर में पधारे हैं । टीकेत तो वे हैं, तासों जब वे आप को बुलावेंगे, तब आपु परवत ऊपर आइयो । तासों अब आपु परवत ऊपर मति चढो, जो- श्रीगोवर्द्धनधर के दरशन न होयगे ।

तब श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की ध्वजा कों दंडवत करि लीला की बात सुमरन करिके परासोली कूं पधारे, तहां रहे । सो तहां विप्रयोग को अनुभव करन लागे ।

सो श्रीगोकुल हू श्रीनवनीतप्रियजी के यहां याते नहिं पधारे जो- श्रीस्वामिनीजी के वचन हैं । जो हमहूं को और श्रीठाकुरजी को हू श्रीहरिरायजी कृत विप्रयोग होयगो । तासों श्रीगोकुल जायेंगे तो मावप्रकाश, कहा जानिये केसी होय ? तासों अब छे महिना

छो मिलाप श्रीठाकुरजी सों दुर्लभ हैं, तासों परासोली में बैठि रहें ।

और श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में परासोली की और एक बारी हती, सो जा पर श्रीगोवर्द्धननाथजी आयके श्रीगुसांईजी कों दरसन देते । सो श्रीगुसांईजी आपु सगरे दिन परासोलीतें बारी कों देखते । कृष्णदास मंदिर में ते नीचे जांय तब श्रीगोवर्द्धननाथजी बारी पर आय बैठते ।

सो कृष्णदास एक दिन आन्योर में आये, तब बारी पर श्रीगोवर्द्धननाथजी कों बैठे देखे । तब कृष्णदास प्रातःकाल मंदिर में आयके बारी चिनवायके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो



जो- मैं तो श्रीगुसांईजी के दर्शन की मने कियो हूं, सो तुम बारी पर क्यों बैठे ? और अब उतकी ओर मति जैयो । सो कृष्णदास परासोली की ओर श्रीनाथजी को खेलिवेको हू न जान देते ।

सो श्रीगोवर्द्धनधर को श्रीगुसांईजी बैठि बैठिके विज्ञप्ति करते । सो रामदास मुखिया भीतरिया जब श्रीगुसांईजी के पास राजभोग आरती सो पहिची के जाते सो आपु कों श्रीनाथजी को चरणोदक देते । तब श्रीगुसांईजी आपु फूल की माला करि राखते सो माला के भीतर विज्ञप्ति को श्लोक लिखि देते । सो रामदासजी ले जाते । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी को माला पहिरावते, तब माला में ते विज्ञप्ति को कागद निकासिके श्रीनाथजी बांचते । पाछे वाको प्रति उत्तर श्रीनाथजी बीड़ा के पान की ऊपर अपनी पीक सों सीकते लिखि देते । सो रामदास कों देते ।

सो रामदास दूसरे दिन राजभोग सों पहोंचिके जाते, तब श्रीनाथजी को लिख्यो पत्र श्रीगुसांईजी कों देते । सो श्रीगुसांईजी आपु बांचिके पाछे जल में घोरिके पान करते । यातें श्रीनाथजी के किये श्लोक जगत में प्रकट न भये । श्रीगुसांईजी आपु विज्ञप्ति किये सो श्रीनाथजी आपु बांचिके रामदासजी कों देते, तासों विज्ञप्ति प्रकटी है ।

एक दिन श्रीगुसांईजी को बहोत विरह भयो, सो यह लिखे । श्लोक-‘ त्वद्दर्शन विहीनस्य ०



सो यह श्लोक लिखिके पठाये, जो- तिहारे भक्त हैं सो तिहारे बिना जीवत हैं सो वृथा ही जीवत हैं। सो दुर्भगावत्। सो यह श्रीगोवर्द्धननाथजी बांचिके यह लिखे जो- मेघ को लक्षण यह है, जो- समय होय वर्षा को, तब आयके वर्षे। सो सबरो जगत जानत है। सो एसे अबही कृष्णदास को समय होय चुकेगो तब मिलाप होयगो। सो यह तुमहू जानत हो, और हमहू जानत हैं। तासों धीरज धरि समय होन देउ, जो इतनो विरह क्यों करत हो ?

सो यह पत्र रामदासजी लेके आये। तब श्रीगुसांईजी आपु बांचिके यह लिखे जो-

‘अंबुदस्य स्वभावोयं समये वारि मुञ्चति,

तथापि चातकः खिन्नं रटत्येव न संशयः’ ।

सो मेघ को यह स्वभाव है जो- समय होयगो, तब ही वरसेगो ( मिलाप होयगो ) परंतु चातकने मेघ सों प्रीति करी है। सो एसे भक्त हैं सो तो तिनको ( मेघरूप श्रीकृष्ण को ) रटत है, सो चेन नाही है। सो ( आपु ) चाहो तब समय होय। तुम बिना धीरज हम कों नाही है। सो भक्तन को यही धर्म है, जो- चातक की नाई सदा तिहारी चाह करिवो करें। सो यह लिखि पठाये।

या प्रकार रामदासजी नित्य आवते, सो श्रीगुसांईजी के पास सब सेवक आवते, सो कृष्णदासजी जानते। परंतु सेवकन सों कछु चलती नाही। रामदासजी कों बरजे हू



सही, जो- तुम श्रीगुसांईजी के पास पत्र ले जात हो, और पत्र ले आवत हो, सो यह बात ठीक नांही है ।

तब रामदासजी कहे, जो- हम तो नित्य श्रीगुसांईजी के दर्शन को जांयगे, चाहे हम कों सेवा में राखो चाहे मति राखो । तब कृष्णदास चुप होय रहे । सो काहेतें ? जो- एसो सेवक फेरि कहां मिले ? तासों कृष्णदास कछु बोले नांही ।

सो पौष सुदी ६ तें आषाढ़ सुदी ५ तांई श्रीगुसांईजी ने विप्रयोग कियो । पाछे अषाढ़ सुदी ५ आई, ता दिन राजा बीरबल श्रीगोकुल आयो । सो श्रीगुसांईजी तो परासोली हते, और श्रीगिरधरजी घर हते ।

तब बीरबल श्रीगिरधरजी के पास आयके दंडवत करि के पूछे जो- श्रीगुसांईजी कहां है ? हमकों दरशन किये बहोत दिन भये । हमने उनके दरशन पाये नांही ।

तब श्रीगिरधरजी बीरबल सों कहे जो- श्रीगुसांईजी तो परासोली में बैठि रहे हैं, जो- कृष्णदास अधिकारीने श्रीगुसांईजी के दरशन बंद किये हैं । सो श्रीगुसांईजी छे महिना तें बड़ो खेद करत हैं ।

तब बीरबलने कह्यो जो- अबही मैं जायके कृष्णदास कों निकासत हों । सो यह कहिके बीरबल श्रीमथुराजी आयो । सो मथुरा की फोजदारी बीरबल की हती, सो मथुरातें पांचसे मनुष्य बीरबलने पठाये और बीरबलने उनसों कह्यो जो- श्रीगोवर्द्धन में जायके कृष्णदास कों पकरि लावो ।



तब मनुष्य गये, सो सांझ के समय श्रीगोवर्द्धनमें आये। पाछे कृष्णदास कों पकरिके वे मनुष्य मथुरा ले आये। तब बीरबलने अर्द्धरात्रि ही कों मनुष्य श्रीगोकुल पठायके कह्यो जो—कृष्णदास कों पकरिके बंदीखाने में दिये हैं, जो—तुम श्रीगुसांईजी कों लेके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में जावो।

तब ये समाचार मनुष्यननै श्रीगिरधरजी सों कहे। सो रात्रिही कों श्रीगिरधरजी घोड़ा ऊपर असवार होयके परा-सोली कूं पधारे, सो प्रातःकाल ही अषाढ़ सुद ६ आई। सो श्रीगिरधरजीने जायके श्रीगुसांईजी कों नमस्कार करिके कही जो—आपु श्रीगोवर्द्धनधर के मंदिर में पधारो, और सेवा श्रृंगार करो।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरधरजी सों कहे जो—कृष्ण-दास की आज्ञा होय तो चलें। तब श्रीगुसांईजी सों श्रीगिर-धरजीने कही जो—कृष्णदास कूं तो मथुरा में बंदीखाने में दियो है।

यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—हाय हाय ! श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के कृपापात्र सेवक भगवदीय कृष्ण-दास को इतनो दुःख, और इतनो कष्ट। श्रीगुसांईजीने श्रीगिर-धरजी सों कही जो—तुमने बीरबल सों कह्यो होयगो। तब श्रीगिरधरजीने कही जो—हम तो सहज ही बीरबल सों कह्यो हतो जो—श्रीगुसांईजी के दर्शन कृष्णदासने बंद किये हैं, इतनो कह्यो हतो। और तो कछु नाही कह्यो।



तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—कृष्णदास आवेगो, तब ही भोजन करूंगो । सो इतनो सुनतही श्रीगिरधरजी तत्काल घोडा ऊपर असवार होयकें श्रीमथुराजी आये । तब बीरबल तें जायके श्रीगिरधरजीने कह्यो जो—काकाजी तो भोजन तब करेंगे जब कृष्णदास वहां जायंगे । तासों कृष्णदास को छोडि देउ ।

तब बीरबलने कृष्णदास कों बंदीखानेमें तें बुलायके कह्यो जो—देखि श्रीगुसांईजी की कृपा, जो—तेरे बिना भोजन नांही करत हैं और तैनें उनसों एसी करी । तासों अब तोकुं छोडत हूं, और आजु पाछे जो तू श्रीगुसांईजी सों बिगारेगो, तब मैं तोकों फेरि कबहू नांही छोड़ूंगो । सो या प्रकार बीरबलने कहिके कृष्णदास कों श्रीगिरधरजी के हवाले करि दिये ।

तब श्रीगिरधरजी कृष्णदास कों लेके परासोली में पधारे । तब श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास कों देखिके श्री-गोवर्द्धननाथजी को अधिकारी जानिके उठि ठाडे भये । तब कृष्णदास दीन होयके श्रीगुसांईजीको दंडवत करि चरण-परस करिके यह पद गायो । सो पद—

राग सारंग ।—‘ ताहीको सिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पद रज रति होय ’ । × × × × ‘ कृष्णदास सुर तें असुर भये, असुर तें सुर भये चरणन छोय ’ ।



यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आपु बहोत प्रसन्न भये ।  
तब कृष्णदासने विनती कीनी जो—महाराज ! मेरो अपराध  
क्षमा करिये, और अब आप श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में  
पधारिये ।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—तिहारी आज्ञा भई  
हे, सो अब चलेंगे । तब कृष्णदास को संग लेके श्री-  
गुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में पधारे । और  
श्रीगोवर्द्धनधर को दंडोत करि । पाछें शृंगार को समय हतो  
और आषाढ़ सुद ६ को दिन हतो सो कसूमल कुलह पिछोडा  
धराये । तब राजभोग सों पहुँचे । पाछे उत्थापन तें सेन  
पर्यन्त की सेवा सों पहुँचिके सेन आरती करि श्रीगुसांईजी  
आपु श्रीनाथजी के सन्मुख कृष्णदास कों दुसाला उढ़ाये ।  
और कहे जो—श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार करो । तुम धन्य  
हो । तब वा समय कृष्णदासने यह पद गायो । सो पद—

राग कान्हरो—‘ परम कृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा  
निज हाथ दे माये० ’ ।

सो यह पद कृष्णदासने गायो, और विनती कीनी जो—  
महाराज ! मेरो अपराध क्षमा करिये । तब श्रीगुसांईजी आपु  
श्रीमुखसों कहे जो—तिहारो अपराध श्रीनाथजी क्षमा करेंगे ।

ता पाछें श्रीगुसांईजी अनोसर करायके सबन को  
समाधान कियो, तब सगरे वैष्णव सेबक प्रसन्न भये । पाछें



जैसे नित्य सेवा शृंगार आप श्रीगोवर्द्धनधर को करते, तैसेही करन लागे । और कृष्णदास श्रीगुसांईजी की आज्ञा तें अधिकार की सेवा करन लागे ।

सो वे कृष्णदास ऐसे कृपापात्रभगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-८

और एक समय श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में हते, सो कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन तें श्रीगोकुल आये । तब श्रीगुसांईजी उठिके श्रीगोवर्द्धननाथजी को अधिकारी जानि कृष्णदास कों बहोत प्रसन्नता पूर्वक समाधान कियो, और अपने पास बैठाये । पाछे श्रीगोवर्द्धनधर के कुशल समाचार पूछे और कृष्णदास कों अपने श्रीहस्तसों श्रीनवनीतप्रियजी को महाप्रसाद धरे । ता पाछे सेनभोग को महाप्रसाद लिवाय के रात्रिकों सुंदर सेज पर सेन करायो ।

सो जब प्रातःकाल भयो तब कृष्णदास चलन लागे । ता समय कृष्णदासने श्रीगुसांईजीसों वीनती कीनी जो—महाराज ! मेरो मन वृंदावन देखिवे को बहोत है । तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—आछो, जावो, परंतु दुःख पावोगे ।

तब कृष्णदास श्रीयमुनाजी पार गये, जो श्रीगुसांईजीने मने किये तोऊ मन न मान्यो, श्रीवृंदावन कों चले । सो मध्यान्ह समये वृंदावन आये । तब वृंदावन के संत महंत कृष्णदास सों मिलन आये, सो कृष्णदास कों वा समय ज्वर



चढ्यो, सो प्यास लागी । तब कंठ सूखन लाग्यो । सो कृष्ण-  
दासनें कही जो— प्यास बहोत लगी है, सो कंठ सूख्यो जात है ।

तब संत महंतनने कही जो— बेगि जल लावे । सो कृष्णदास  
अकेलेही रथ पर बैठिके गये हते । कृष्णदासनें कही जो—  
श्रीगोकुल को बलुभी वैष्णव होय सो वासों कहो, जो— वह  
जल लावे तो मैं पिऊं । तब सगरे संतमहंतनने कृष्णदास सों  
तर्क करिके कह्यो जो— यहां तो कोई वैष्णव नांही है, जो श्रीगो-  
कुल को भंगी यहां ब्याहो है, सो वह यहां आयो है, सो  
बाको तुम कहो तो बुलावें ।

तब कृष्णदासने कही जो— वह श्रीगोकुल को भंगी सब  
तें श्रेष्ठ हैं । सो वासों कहियो जो— कुमार के घर तें कोरो वासन  
लेके श्रीयमुनाजीमें न्हाय के जल भरि लावे । सो तब  
उनने जायके वा भंगी सों कह्यो जो— कृष्णदास कों ज्वर  
चढ्यो है, वह प्यासे हैं । सो कहत हैं सो तू उनको जल  
ले जा । तब वह भंगी उहां सो दोरयो । सो श्रीगुसांईजी  
आपु श्रीनवनीतप्रियाजी की राजभोग आरती करि श्रीनाथजी-  
द्वार पधारिवे कूं घाट ऊपर आये हते । सो इतने ही में वा  
भंगीने कपडा की आड करिके मुख तें कह्यो, जो महाराज !  
कृष्णदास श्रीवृंदावन में हैं । तहां उनकों ज्वर चढ्यो है, सो  
प्यासे हैं । जल मोसों मांग्यो है, सो मैं वृंदावन तें यहां दोर्यो  
आयो हूं ।

तब श्रीगुसांईजी खवास सों झारी जल की लेके,



घोडा ऊपर असवार होयके वेगिही आपु वृंदावन पधारे ।  
 सो तब कृष्णदास कों रथ उपर तें उठायके जल प्याये ।  
 पाछे कृष्णदास सावधान भये । सो ज्वरहू उतरि गयो ।  
 तब कृष्णदास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके यह पद  
 गाये । सो पद—

राग कान्हरो—१ ‘ श्रीविठ्ठलजू के चरणन की बलि,  
 हमसे पतित उद्धारन कारन परम कृपाल आपु आये चलि ’ ।

सो यह पद गायके कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों विनती  
 कीनी जो—महाराज ! मैंने आप को कबो न मान्यो तासों इतनो  
 दुख पायो । ता पाछे श्रीगुसांईजी के संग कृष्णदास श्रीगोव-  
 र्द्धन आये, तब सेन आरती को समो भयो, तब श्रीगुसांईजी  
 न्हायके सेन आरती किये । तब कृष्णदासने यह पद गायो ।  
 सो पद—

राग कान्हरो—‘ आजु को दिन धनि २ री माई नैनन भरि  
 देखे नंदनंदन० ’ ।

पाछे श्रीगुसांईजी अनोसर करायके परवत तें नीचे  
 पधारे । सो या प्रकार कृष्णदासने वहीत दिन लों श्रीगोवर्द्ध-  
 ननाथजी को अधिकार कियो ।

वार्ता प्रसंग—९

पाछे एक दिन एक वैष्णवने आयके कृष्णदास सों कही  
 जो— मोक्षं यहां एक कुवा बनवावनो है, और मोकों अपुने



देस जानो है, सो मैं तो अपने देशको जाउंगो, तासों तुम या द्रव्य कों राखो ।

सो ऐसे कहिके वह वैष्णव तीनसे रुपैया देके अपुने देशकों गयो । तब कृष्णदास वा वैष्णव के रुपैयान में ते एक सो रुपैया एक कूलहरा में धरिके बागमें एक आंब के बृक्ष नीचे गाडी राखे ।

ता पाछे आछो महूरत देखिके पूछरी के पास बागमें कुवाको आरंभ कियो । तब कितनेक दिन पाछे कुवा बनिके तैयार भयो, और दोय से रुपैया लगे । पाछे कुवा को मोहडो बनवावनो रह्यो, सो कृष्णदासजी मन में बिचारे, जो— सो रुपैया में मोहोडो आछो बनेगो ।

ता पाछे श्रोगोवर्द्धनधर के उत्थापन के दरसन करिके कृष्णदास वा कुवा कों देखवे कूं गये, सो वा कुवा को देखन लागे । सो कृष्णदास के हाथमें आसा (लकड़ी) हतो, सो आसा टेकके कृष्णदास वा कुवा पर ठाडे भये । इतने में आसा सर क्यो, सो कृष्णदास आसा सहित वा कुवा में जाय परे । तब सगरे मनुष्य पास ठाडे हते. सो तिनने सोर कियो । जो— कृष्णदास कुवा में गिरे । पाछे कितेक मनुष्य दोरे, सो रस्सा टोकरा लाये, और दोय मनुष्य कुवा के भीतर उतरे । सो बहोत हूँदे, परि कृष्णदास को सरीर हू न पायो । तब वे मनुष्य पाछे फिरि आये ।



ता समय श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धनधर कों सैनभोग धरिके बाहिर विराजे हते, सो रामदास भीतरिया श्रीगुसांईजी के पास बैठे हते । ता समय मनुष्यनने जायके कही । जो- महाराज ! कृष्णदास कुवा कों देखत हते, सो आसा सरक्यो । सो कुवा में गिरे । पाछे मनुष्य कुवा में दृढिवे कों उतरे । सो कृष्णदास को सरीर हू पायो नांही है ।

ता समय रामदासजी उहां ठाढे हते, सो कहे 'तामसाना मधो गति:-' तब यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे, जो- रामदासजी ! ऐसे न कहिये । जो कृष्णदास तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के कृपापात्र वैष्णव हते, जो यह लीला है । कूप में गिरे तो कहा भयो ? कहा जानिये कहा है ?

सो याको कारण श्रीगुसांईजी आपु तो जानत हते, जो प्रेतयोनि श्रीहरिरायजी कृत को श्राप है । तासों आपु प्रकट न किये । सो भावप्रकाश कृष्णदास या देह सुद्धां प्रेत भये । सो पूछरी के पास एक पीपर को वृक्ष है ।\* ताके ऊपर जायके बैठे ।

### वार्ताप्रसंग-१०

और श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों कहे जो- कृष्णदास श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार मलो ही किये और अब ऐसे सेवक कहां मिले ? और अधिकारी बिना काम चलेगो नांही सो विचार करनो । सो या भांति कहे ।

---

\*सं. १९९० में यह वृक्ष सूख गया । अभी भी उस वृक्ष के अवशेष उसी प्रसिद्ध और विशाल कूप के पास विद्यमान हैं ।



तब रामदासजीने विनती कीनी जो— महाराज ! जाकों तुम आज्ञा करोगे, सोई करेगो । जो श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा भाग्य सों मिलत है । तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो— हम कोनसे जीव कों कहें, जो कोनसे जीव को बिगार करें । सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारवो तो तत्काल है ।

सो याहीसों श्रीआचार्यजी श्रीसुबोधिनीजी में कहे है । जो— श्रीभागवत नारायनने ब्रह्मा सों कह्यो है, परब्रह्मा सृष्टि करन को श्रीहरिरायजी कृत अधिकारी है । तासो श्रीभागवत फलित न भावप्रकाश. भयो । पाछे ब्रह्मा नारदजी सों कही, सो नारद कों सगरे देसन में फिरवे को अधिकार है तासों फलित न भयो । तब नारदने वेदव्यासजी सों कह्यो । सो वेदव्यासजी शास्त्र करन के अधिकारी हैं, तासों व्यासजी कों हू फलित न भयो । पाछे व्यासजीने श्रीशुकदेवजी सों कह्यो । सो शुकदेवजी सर्वत्याग कियो है । सो यही त्याग में लो । पाछो परीक्षित कों सर्व त्याग भयो । तब अधिकारी श्रीभागवत के भये । ( जव ) श्रीशुकदेवजी रातदिन तांई कथा कहे । तब सातमें दिन भगवत् प्राप्ति भई ।

सो तेसे ही यह श्रीभागवतरूप पुष्टिमार्ग हैं । सो याके अधिकारी निरपेक्ष होय, ताही के माथे यह मारग होय । और जाकों अधिकार पाये अहंकार बड़े, सो ताकों कछू फल सिद्ध न होय ।

तासों श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार हम कौन कों देंय ? कौन को बिगार करें । तब रामदासजी सुनिके चुप होय रहे । इतने में सेनभोग को समय भयो, सो सेनभोग श्री-गुसांईजी सराये ।



सो सेन आरती करे पाछे श्रीगुसांईजी आपु गोवर्द्धनधर सों पूछे, जो-महाराज ! कृष्णदास की तो देह छूटी और अधिकारी विना चलेगी नांही, सो हम कोनकों अधिकार देके विगार करें ? तासों आपु कहो ताकों अधिकारी करें ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो-हमहू कौन जीवको विगार करें ? जो-कोई अधिकार लेयगो ताको विगार होयगो । तासों तुम एक काम करो, जो-अधिकार को दुसाला छेके सब के आगे कहो, जाकों अधिकार करनो होय सो दुसाला ओढो । तब जो आयके कहे ताकों देऊ । सो जाकों गिरनो होयगो सो आपुही आवेगो ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सेन कराये । पाछे दूसरे दिन राजभोग आरती के समय सगरे ब्रजवासी वैष्णव भेले करिके श्रीगुसांईजी आपु दुसाला हाथ में लियो । पाछे सबन कों सुनायके कह्यो जो-जाकों श्रीनाथजी के घर को अधिकार करनो होय सो या दुसाला कों ओढो । यह सुनिके कितनेकने कही जो- हम करेंगे । सो पहले एक क्षत्री बोल्यो हतो, सो ताकों दुसाला उढायो । ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी की आरती करि अनोसर कराय श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल पधारे ।

पाछे कछुक दिन बीते तब एक समय श्रीगोवर्द्धननाथजी की भैंस खोय गई, सो बरहे में निकसि गई । तब भैंसि हूँढिवे के लिये गोपीनाथदास ग्वाल और पांच सात ग्वाल पूछरी की



और गये । वे सब परमकृपापात्र भगवदीय होते । सो तब देखे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी सखान सहित पूछरी पास एक पीपरके नीचे खेलत हैं । और पीपरके नीचे कृष्णदास अधिकारी प्रेत होयके बैठे हैं । तब कृष्णदास अधिकारीने गोपीनाथदास ग्वाल सों जैश्रीकृष्ण कियो और कह्यो जो—अरे भैया ! गोपीनाथदास ग्वाल ! तू मेरी विनती श्रीगुसांईजी सों करियो, और कहियो जो—आपके अपराधते मेरी यह अवस्था भई है । और श्रीगोवर्द्धनधर दरसन देत हैं सो आप की कृपा तें देत हैं ।

सो जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे अधिकार को दुसाला श्रीगुसांई-श्रीहरिरायजी कृत जीने कृष्णदास कों (दुवारा) उढ़ायो । तब कृष्णदासने भावप्रकाश. यह पद गायो—‘ परमकृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दे माथे ’ ।

सो यह पद गायके कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों कही जो—महाराज ! मैं छ महिना लों आपको विप्रयोग करायो, सो आपु मेरो अपराध क्षमा करिये । तब श्रीगुसांईकी आपु कहे जो—तिहारो अपराध श्रीनाथजी क्षमा करेंगे ।

सो यह श्रीगुसांईजी आपु कहे, तासों श्रीगोवर्द्धनधर दरसन देत हैं, और बोलत हैं, बातें करत हैं । परन्तु श्रीगुसांईजी आपु अपराध क्षमा नांही किये हैं, तासों प्रेतयोनि छूटत नांही है ।

और कृष्णदास श्रीगोवर्द्धनधर सों हू कहते जो महाराज ! मोको दरसन देत हो, सो प्रेतयोनि क्यों नांही छुड़ावत हो ! तब श्री-



गोवर्द्धननाथजी कहे, जो—यह हमारे हाथ है नांही, उद्धार तो तेरो श्रीगुसांईजी के हाथ है ।

सो काहेतें ? जो—लीला में श्रीचंद्रावलीजी को श्राप है, जो—प्रेतयोनि होय । सो कौन छुडावे ? तासों जयपि श्रीस्वामिनीजी की सखी ललितारूप (कृष्णदास) हैं । परन्तु आगे को बचन बिचारि न छुडावत हैं । तासों कृष्णदासने गोपीनाथदास ग्वाल सों कह्यो जो—  
तू मेरी विनती श्रीगुसांईजी सों करियो, जो— श्रीगुसांईजी की  
कृपा विना मेरी गति नांही है ।

और बिलछ की ओर बागमें आम के वृक्ष के नीचे रुपैया सौ एक कूलरा में भरिके गाड़े हैं, सो निकासिके कूपके ऊपर को मोहड़ो बनवाय दीजियो । यह श्रीगुसांईजी सों कहियो । और श्रीनाथजी की भैंसि तुम दूंदिवे कों आये हो सो उह घनामें चरत है ।

पाछे गोपीनाथदास ग्वाल घनामें तें भैंस लेके गोपाल-पुर आये । सो भैंस बांधि गोदोहन गाय भैंस को किये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की सेन आरती करिके अनोसर कराय परवत तें उतरे और अपनी बैठक में आयके विराजे । तब गोपीनाथदास ग्वालने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके कह्यो जो—महाराज ! आज श्रीनाथजी की भैंस खोय गई हती सो दूंदन कों पूछरी की और गये हते । तहां कृष्णदास अधिकारी प्रेत भये देखे हैं । सो कृष्णदास



पीपर के वृक्षके ऊपर बैठे हैं। कृष्णदासने मोकों भगवत्-स्मरण कियो हतो। और कृष्णदासने आपसों यह बिनती करी हैं जो—मैं प्रेत हूं, मैंने आप को अपराध कियो है, तासों मोकों प्रेतयोनि प्राप्त भई है। आपुके हाथ मेरो उद्धार है। और बागमें आमके वृक्ष के नीचे कूलरा में रुपैया सौ गड़े हैं। सो निकासिके कुवा को मोहोड़ो बनवायवे को कह्यो है। और भेंस हू कृष्णदासने बताय दीनी है, सो हम ले आये हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु अपने मनमें विचारे जो—कृष्णदास कों बड़ो दुख है। सो अब याकों प्रेतयोनिमें सों छुटावनो, यह कहिके तत्काल उठिके बागमें पधारे। तब रुपैया १००) निकासिके नयो अधिकारी कियो हतो, सो वाकों देके कह्यो जो—ये रुपैयानसों कृष्णदासवारे कुवा को मोहड़ो बनबाइयो।

ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु वाही रात्रि कों असवार होयके मथुराजी पधारे। पाछे प्रातःकाल भये श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तसों कृष्णदास को क्रिया—कर्म करि, ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध कियो, और कृष्णदास की प्रेतयोनि छुटायके दिव्य शरीर करिके लीला में प्राप्त किये। सो बिलछू सामें गिरिराज में बारी, ता द्वार के मुखिया कृष्णदास हैं, सो तहां जायके बिराजे। सो या प्रकार कृष्णदास की लीला-प्राप्ति श्रीगुसांईजी आपु किये।



तहां यह संदेह होय जो— श्रीगुसांईजी की कृपातें उद्धार श्रीहरिरायजी कृत न भयो ? सो आपु मथुराजी पधारे और ध्रुवघाट भावप्रकाश ऊपर श्राद्ध किये ! सो कृपातें (कहा) श्राद्ध अधिक है ?

तहां कहत हैं जो— गोपीनाथदास ग्वाल कृष्णदास को प्रेत भये देखिके आये । सगरे सेवक ब्रजवासीन के आगे गोपीनाथदास ग्वाल नें श्रीगुसांईजीतें कह्यो, जो— कृष्णदास प्रेत भये हैं । सो आपु सो बिनती करी है, जो— आप मोको प्रेतयोनि सों छुड़ावो । जो श्रीगुसांईजी चाहें तो रंचक मन में विचारतें छुटकारो होय । परन्तु पाछे जो सेवक ब्रजवासी कोई प्रेत होय सो श्रीगुसांईजी सों कहे, जो— आपु छुड़ावो । सो तब न छुड़ावें तो दोषबुद्धि होय, तब जीव को विगार होय । तासों श्रीगुसांईजी आपु श्रीमथुराजी में पधारिके ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध कियो, सो या मिष तें छुड़ाये । सो सबनने जानी जो— ध्रुवघाट को श्राद्ध एसो ही है, सो यह महिमा बढ़ाये । सो अपुनो माहात्म्य काल—कठिनता जानि छिपाये । सो याको कारण यह है ।

और दूसरो कारण यह है जो— कृष्णदास एसे भगवदीय हते जो इनके कोटानकोटि पुरुषान को उद्धार होय, सो काहेतें ? जो श्री-भागवत में नृसिंहजी तें प्रह्लादनें कह्यो है जो— महाराज ! मेरे पिता को उद्धार होय, तब श्रीनृसिंहजी कहे जो— जा कुत्रमें भगवद्भक्त होइ सो वाके इकीस पुरषा तरे । तासों तुम संदेह क्यों करत हो ?

सो प्रह्लादजी तो मर्यादाभक्त भये, और कृष्णदासजी पुष्टिमार्गीय



भगवदीय भये । सो इनके तो कोटानकोटि पुरुषान को उद्धार है ।  
परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के संबंध बिना लीला में प्रवेश न होय ।  
तासों कृष्णदास के मिष करि सृष्टि में मुक्त किये । सो काहेतें ?  
जो कृष्णदासजी, श्रीगुसांईजी सगरो श्रीगोवर्द्धनधर को परिकर  
अलौकिक है । सो इहां ईर्ष्या नांही है । सो भूमि पर हू भगवद्-  
लीला जानि कहनो सुननो ।

सो या प्रकार कृष्णदास की वार्ता महा अलौकिक है ।  
तासों श्रीगुसांईजी कहे जो—कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे  
अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होय । और श्रीआचार्यजी  
के सेवक होयके सेवा हू ऐसी करी, जो दूसरे सों न बनेगी ।  
और श्रीनाथजी को अधिकार हू एसो कियो जो दूसरे सों  
न होयगो ।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखसों कृष्णदास की  
सराहना किये । सो वे कृष्णदास अधिकारी श्रीआचार्यजी के  
एसे कृपापात्र भगवदीय हते । जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धनधर  
सदा प्रसन्न रहते । तातें इनकी वार्ता को पार नांही । तातें  
इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है सो कहां ताई लिखिये ।









# अष्टछाप

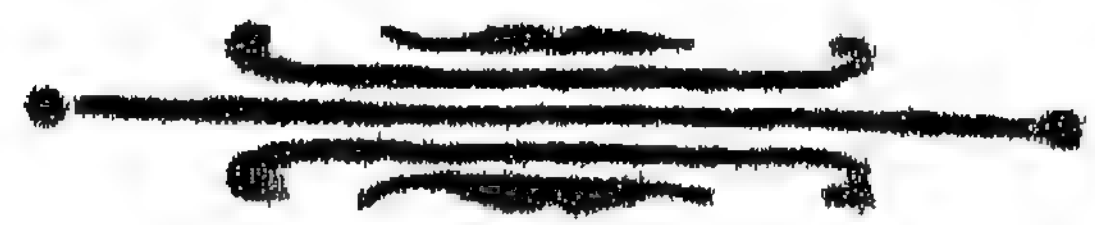


अष्टछाप - संस्थापना सं० १६०२, स्थान "पूँछरी" (गिरिगज)

वासभागमें - श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण, १ श्रीसूर, २ परमानंद, ३ कुंभन ४ कृष्णदास ५ नंददास,  
६ चतुर्भुजदास, ७ क्रीतस्वामी ८ गोविंदस्वामी ।



## (५) छीतस्वामी



अब श्रीगुसांईजी के सेवक छीतस्वामी,  
मथुरिया चोबे, अष्टछाप में जिनके पद  
गाइयत है, तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश



ये छीतस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'सुबल' सखा, तिनको  
आधिदैविक मूल प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये  
स्वरूप 'सुबल' सखा हैं, और रात्रि की लीला में  
'पद्मा' हैं। सो पद्माकी श्रीचंद्रावलीजी ऊपर बहुत ही आसक्ति है, सो  
इहां हू छीतस्वामी को श्रीगुसांईजीपे बहुत ही भरभाव है।

### वार्ता प्रसंग—१

सो वे छीतस्वामी मथुरिया चोबे हते। तिनसों सब कोउ  
'छीतू' कहते। सो सब मथुरा में पांच चोबे सिरनाम हते।  
पांचनहू में छीतू बड़े सिरनाम हे।

सो वे स्त्रीन कों देखते, उनसों मस्करी करते। सो एक  
दिन उन पांचों चोबेननें मिलिके विचार कियो जो—माई!  
गोकुल के गुसांई टोंना टामन बहुत करत हैं। जो कोउ उनके  
पास जात है, सो उनके बस होय जात है। चलो जो—उन  
कों देखिये, जो वे कैसे टोंना करत हैं?

सो वे पांचो आपुस में मित्र हते, परि वे गुंडा हते।



तब उन पांचोंननें मिलिके एक खोटो रुपिया लियो, और एक थोथो नारियल लियो, तामें राख भरी । और यह विचार कियो जो-माई ! गोकुल जायके श्रीगुसांईजी सों आपुन कुटिल विद्या करिये ।

तब उन चारोंन सों छीतूने कही जो-सगरेन के पहिले में जायके अपनी कुटिल विद्या करि आउं, ता पाछे तुम जइयो । तब विन चोबेननें कही जो-आछी बात है । तब छीतूने कुटिल विद्या को ठाठ ठठयो । सो वा थोथे नारियल कों गांठि में बांधिके और वह खोटो रुपैया लेके पांचो जनें मथुरा तें चले, सो नाव में बैठिके श्रीगोकुल में आये । तब छीतस्वामीने कही जो-तुम तो सब बाहिर रहो, बेठो । और मैं भीतर जात हों, जायके उनके टोंना टमना देखों, पाछे तुम भीतर आइयो ।

सो छीतू तो थोथो नारियल लेके अरु खोटो रुपैया लेके भीतर गये, और साथ के चोबे तो बाहिर रहे । सो उत्थापन के समे पहिले श्रीगुसांईजी पोंढिके उठे हते । सो गादी ऊपर विराजे हते, हाथ में पुस्तक हतो सो देखत हते ।

ता समें छीतस्वामी आये । सो श्रीगुसांईजी कों देखे तो श्रीगिरधारीजी होयके बैठे हैं । तब तो ये मन में पश्चात्ताप करन लागे । (क्यों जो) मैं तो इनसों मसकरी करन आयो हो । सो ए तो साक्षात् पूरण पुरुषोत्तम हैं, ये ईश्वर हैं । मोकों धिकार है, जो-मैं ईश्वर सों कुटिल विद्या करन कों आयो ।



या भांति सों सोच करत रहे । पाछें छीतस्वामी वह नारी-  
यल लाये हते सो दुबकायके श्रीगुसांईजी सों दंडवत करी ।

सो इतने में छीतस्वामी सों श्रीगुसांईजी बोले जो— छीत-  
स्वामी ! तुम नीके हो ? आवो, तुम तो बहोत दिनन में दीखे  
हो । तब छीतस्वामीने हाथ जोडिके विनती कीनी जो—  
महाराज ! हम आपके हैं । ऐसे कहिके साष्टांग दंडवत करी ।  
और श्रीगुसांईजी सों फेरि विनती कीनी जो— महाराज ! मोकों  
आपकी शरण लीजे, अब तो आप मेरो अंगीकार करोगे ।

तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो जो— तुम तो  
चोबे हो, हमारे पूजनीक हो । तुमकों तो सब आपहीतें सिद्ध  
है । तुम हमकों दंडवत काहेको करत हो ? और ऐसे कहा  
कहत हो ?

तब छीतस्वामीने फेरि हाथ जोरिके विनती करी जो—  
महाराज ! मेरो अपराध क्षमा करो । और मोकों शरण लीजे ।  
हम नाहि जानत जो— कोन अपराधतें स्वामी भये हैं ।  
हमारे अब भाग्य खुले हैं जो— आप के दरशन पाये । अब  
एसी कृपा करो जो— स्वामित्व छूटे । जो आपके दास कहायवे  
की इच्छा है । और मनकी कुटिलता तो बहोत हुती, परि  
आपके दरशन करत ही सब कुटिलता दूर भाजि गई ।  
तातें अब हौं, आप के हाथ बिकानो हों, तातें  
अब तो आप जो चाहो सोई करो । आप तो दाता हो, प्रभु  
हो, दीनानाथ हो, दयासिंधु हो । या जीव की ओर प्रभुन



को कहा देखनो ? तातें महाराज ! अब मोकों आपको ही करि जानिये, आपुनो सेवक करिये ।

तब छीतस्वामी को शुद्ध भाव जानिके श्रीगुसांईजी तो परम दयालु हैं, सो आप कृपा करिके कहे जो— छीतस्वामी ! आगे आवो । तब ये दंडवत करिके आगे आय बैठे । ताही समे श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों नाम सुनायो । ता समे छीतस्वामीने यह पद गायो—

‘मई अब गिरधरसों पहिचान—

कपटरूप धरि छलिवे आयो, पुरुषोत्तम नहि जान ॥ १ ॥

छोटो बड़ो कछु नहि जान्यो, छाय रह्यो अज्ञान ।

छीतस्वामी देखत अपनायो, श्रीविठ्ठल कृपानिधान’ ॥ २ ॥

तब तो और वे चारो जने, जो बाहिर ठाड़े हते, वे आपुस में विचार करन लागे जो—भाई ! छीतू कों तो टोना लग्यो, जो अब आपुन रहेंगे तो आपुनहू कों टोना लगोगो, तातें अब इहां ते भाजो । सो वे चारो जने उहां तें भाजे सो मथुराजी में आये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो जो—तुम हमारी भेट लाये हो सो लावो । तब छीतस्वामी अपने मनमें विचारे जो—नारियल रुपैया तो खोटो है, सो भेट कैसे धरों ? पाछे विचारे जो—मंडार में परचो रहेगो, कहा मालूम होयगो, जो कहाँते आयो है ?



और फेरि आपु कहे श्रीमुख त जो- छीतस्वामी !  
भेट को नारियल लाये हो, सो तुम काहेको दुक्काये हो ?

तब तो छीतस्वामी को मुख मुकाय गयो, और यह  
बिचारयो जो- यह तो प्रभु हैं । मैं नारियल लायो, सो  
जान गये तो नारियल की क्रिया क्यों न जाने होंयगे ?

तब श्रीगुसांईजीसों छीतस्वामीने वीनती करी जो-  
महाराज ! आप तो सब मेरो कृत्य जानत हो ! सो वह बात  
तो मेरी अब छानी राखो । तब श्रीगुसांईजी ने कही जो-  
छीतस्वामी ! तुमारो जस तो जगत में विख्यात है । तुम कछु  
अपने मन में संदेह मत करो, तुम तो अब हमारे हो । तातें  
डरपत क्यों हो ? वह नारियल ले आवो ।

तब छीतस्वामी तो सोच करत रहे । और श्रीगुसां-  
ईजीने हरिदास खवास सों आज्ञा करी जो- हरिदास !  
इनकी गांठिमें सों वह नारियल है सो खोलि लाऊ । सो  
श्रीगुसांईजी की आज्ञा मानिके हरिदासने वह नारियल  
और खोटो रुपैया छीतस्वामी की गांठिमें ते लेके श्रीगुसांईजी  
की आगे धरयो ।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने हरिदास खवास सों कछो जो-  
आधो नारियल तो इन छीतस्वामी कों देउ । तब हरिदास  
खवासने वा नारीयल की गरी की दोय फाड़ करी, सो एक  
फाड़ तो छीतस्वामीकों दीनी, और एक फाड़में तें रंचक २  
सबन कों बाँट दीनी ।



इतने में श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों आज्ञा दीनी जो—  
छीतस्वामी! तुमारे साथके जो चारों जने हैं तिनकों यामें तें  
थोरी २ बांटी दीजो । तब छीतस्वामीने दंडवत करिके वह  
गठरी में बांधि राखी ।

सो एसी कृपा श्रीगुसांईजी की देखिके छीतस्वामी मनमें  
विचारे जो—मैं संसार—समुद्र में बह्यो जात हतो, सो मोकों  
बांह पकरिके काढ़े । और मेरे मनमें खोटे नारीयल को और  
खोटे रुपिया को पश्चात्ताप हतो सोउ ताप मेरो दूरि करचो ।  
जो मो पर तो श्रीगुसांईजीने बड़ी कृपा करी ।

पाछे छीतस्वामीने प्रसन्न होयके एक नयो पद ता समे  
बनायो । सो पद—

‘हों चरणातपत्र की छैयां ।

कृपासिंधु श्रीवल्लभनंदन बह्यो जात राख्यो गहि बहियां॥

नव नख शरद चन्द्रमा मंडल X त्रिविध ताप मेटत छिन महियां ।

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल सुजस बखान सकत श्रुति नहियां॥

यह कीर्तन वाही समे श्रीगुसांईजी के आगे छीतस्वामीने  
गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये ।

तब छीतस्वामीने दंडवत करिके कही जो— महाराज! आप  
तो प्रभु हो । आप को श्रुति जो वेद है सोउ पार पावत नांही,  
तो और की कहा सामर्थ्य है? जो आप को जस गान करे ।

---

X नव नखचन्द्र सरद राकाससि हरत ताप सुमिरत मन महियां ।  
एसाभी पाठ है ।



ता पाछे संध्याति को समय भयो । तब श्रीगुसांईजी छीतस्वामी सों कहे जो— जाओ दर्शन करो । तब छीतस्वामी मंदिर में जायके तिवारी में तें श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन किये । तब देखे तो मंदिर में श्रीगुसांईजी ठाड़े हैं । तब छीतस्वामी मन में कहे जो— श्रीगुसांईजी कों तो मैं बैठक में छोड़ आयो हतो और ये मंदिर में कहाँते ठाड़े हैं ? बहुरि मन में कहे जो— भीतर और राह होयगी, ता राह पावधारे होंयगे ।

ता पाछे आरती के दर्शन करिके छीतस्वामी बाहर आये । तहां देखे—तो श्रीगुसांईजी गादी ऊपर विराजे हैं । तब तो छीतस्वामी कों बड़ो आश्चर्य भयो, परि ठीक न परी । ता पाछे सेन आरती भई । तब छीतस्वामी कों महाप्रसाद लिवाये पाछे श्रीगुसांईजीने आज्ञा करी जो— सवारे ही तुम श्रीगिरिराज जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करि आवो ।

तब छीतस्वामी रात में तो सोय रहे । प्रातःकाल होत ही सातों स्वरूपन के मंगला के दर्शन करिके श्रीगुसांईजी के दर्शन किये, पाछे श्रीयमुनाजी उतरिके मूवे ही श्रीगिरिराज कों चले, सो राजभोग के समय जाय पहुँचे । श्रीगोवर्द्धननाथजीके राजभोग आरती के दर्शन किये । तब देखे—तो उहां श्रीगुसांईजी ठाड़े हैं, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास ही देखे । तब छीतस्वामी मन में विचारे जो— श्रीगुसांईजी कब पधारे हैं ?



ता पाछे छीतस्वामी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करि के नीचे उतरे । तब उहां लोगन तें पूछे जो— श्रीगुसांईजी इहां कब पधारे हैं ? तब उन सेवकनने कही जो— श्रीगुसांईजी तो श्रीगोकुल में हैं, इहां तो नांही पधारे हैं ।

तब छीतस्वामी मन में विचारे जो—मैं तो श्रीगुसांईजी को श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास ही देखे हैं, और कालहू श्रीनवनीतप्रियजी के पास ही ठाड़े देखे हैं । और बैठक हू मैं बिराजे देखे सो सब ठोर येही दरशन देत हैं, तातें ये ईश्वर हैं ।

यह विचारिके छीतस्वामी श्रीगोकुल की सुरति बांधि चले, सो उत्थापन भोग के समय श्रीगोकुल आय पहुंचे । श्रीगुसांईजी अपनी बैठक में गादी ऊपर बिराजे तब छीतस्वामीनें आयेके दंडवत कीनी । तब श्रीगुसांईजीने पूछी जो— छीतस्वामी ! तुम श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करि आये ? तब छीतस्वामीने कही जो—महाराज ! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन किये, और उनके पास ठाड़े आपहू के दरशन किये । तब श्रीगुसांईजी मुसिकाये ।

तब छीतस्वामीने अपने मनमें विचारि यह निश्चय कियो जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी को और श्रीगुसांईजी को स्वरूप एक है । यह जानिके ताही समें छीतस्वामीने यह पद करिके गायो । सो पद—राग सारंग ।

‘ जे वसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्रीवल्लभदेव ।  
जे गोपाल हुते गोकुल में सोई अब आनि बसे निज गेह ॥



जे वे गोपवधू ही ब्रजमें सो अब वेदकृचा मई येह ।

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीबिठल तेई एई एई तेई कछु न संदेह ॥’

यह कीर्तन सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये ।

पाछे श्रीगुसांईजीने सेन आरती उपरांत बाहू दिन छीत-  
स्वामी कों अपने यहां महाप्रसाद लिवायो ।

ता पाछे तीसरे दिन छीतस्वामी देहकृत्य करि श्री-  
जमुनाजी में स्नान करिके अपरसहीमें आय श्रीगुसांईजी के  
आगे हाथ जोरिके ठाड़े भये । और श्रीगुसांईजी सों बिनती  
करी जो—महाराज ! मोकों कृपा करिके समर्पन करावो ।

तब श्रीगुसांईजीने श्रीनवनीतप्रियजी के आगे समर्पण  
करवायो । ता पाछे छीतस्वामीने बिनती कीनी जो— महाराज !  
आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊं । तब श्रीगुसांईजी आपु  
आज्ञा किये जो—राजभोग आरती के दर्शन करिके पाछे  
तुमकों बिदा करेंगे ।

ता पाछे राजभोग आरती मई । पाछे श्रीगुसांईजी  
अपनी बेठक में अपरस ही में बिराजे, तब छीतस्वामीने  
आयके दंडवत करी । पाछे बिनती करी जो— महाराज ! आज्ञा  
होय तो मैं अपने घर जाऊं । तब श्रीगुसांईजी कहे जो—महा-  
प्रसाद लेके अपने घर जइयो ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी सब बालकन सहित आपु भोजन  
कों पधारे । सो छीतस्वामी कों अपने श्रीहस्त सों  
पातर धरी । ता पाछे आपु भोजन कों पधारे । पाछे जब भोजन



करिके आचमन लेके श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में बिराजे । तब छीतस्वामी हू आचमन करिके श्रीगुसांईजी के पास आये । तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी को महाप्रसादी बीड़ा दिये । और कह्यो जो—छीतस्वामी ! अब तुम अपने घर जाओ ।

तब श्रीगुसांईजी को छीतस्वामी दंडवत करके चले सो मथुरा आये । तब वे चारों कुटिल हते, सो छीतस्वामी सो मिले । तब उन(ने) छीतस्वामी सो पूछी जो—तुमने उहां कहा कियो ? और हम तो जब ही जान्यो जो—तुमको टोंना लग्यो । तब छीतस्वामीने कह्यो जो—अब तो मैं श्रीगुसांईजी को सेवक भयो, तातें अब तो मैं तुमारे काम तें गयो ।

यह बात छीतस्वामी की उन चारों जनेनने सुनी । ता पाछे वे चुप होय रहे ।

तातें श्रीगुसांईजी को एसो प्रताप है । सो वे श्रीगुसांईजी की कृपा तें बड़े कवीश्वर भये, सो बहुत कीर्तन किये । सो वे छीतस्वामी ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

### वार्ता प्रसंग—२

और एक समें छीतस्वामी बीरबल के घर गये । छीतस्वामी बीरबल के प्रोहित हते । सो अपनी बरसोंड छेवे को गये हते ।

सो बीरबलने अपने घरमें रहवे को स्थल दियो, सो छीतस्वामी तहां रहे । सो पिछली घड़ी एक रात्रि रही, तब छीतस्वामी उठिके प्रभुनको नाम लेके एक पद गायो । सो पद—



राग देवगंधार—

जै जै श्रीवल्लभराजकुमार ।

परमानंद कपट खंडन करि सकल वेद उद्धार ॥

×

×

×

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल प्रकट कृष्ण अवतार ॥

यह छीतस्वामीने गायो, सो बीरबलने सुन्यो । सो बीरबल कों आछी न लागी । ( और ) मनमें कह्यो जो— देखो इन ( ने ) कहा बरनन कियो है ? परि बीरबलने छीतस्वामी सों कछु कह्यो नांही । जो यह बात मनमें धरि राखी ।

तापाछे छीतस्वामी उठि देहकृत्य करि श्रीयमुनाजी में स्नान करि, श्रीठाकुरजी कों भोग समरप्यो, ता पाछें भोगसरायके आप प्रसाद लिये ।

पाछे बेठे बेठे छीतस्वामी कीर्तन गावत हते 'जे वसुदेव किये पूरण तप ०' । तामें छेली कड़ी में कह्यो जो— 'छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल येई तेई तेई येई कछु न संदेह' ।

यह पद छीतस्वामीने गायो । सो सुनिके बीरबल कों व्होत बुरी लगी । तब तो बीरबलने छीतस्वामी सों कह्यो जो—छीतस्वामी ! तुम ( ने ) अब तो यह पद गाये ' येई तेई तेई येई कछु न संदेह ' और सवारे गाये जो ' प्रकट कृष्ण अवतार ' सो यह तुमने गायो सो देशाधिपति म्लेच्छ है, जो—यह सुन पावेगो तो तुम कहा जुवाब दोगे ?

तब बीरबलसों छीतस्वामीने कही जो—मोसों देशाधिपति पूछेगो तब मैं जुवाब दऊंगो । परि अब तो मेरे भाये तुई



म्लेच्छ है। (क्यों) जो— तेरे मनमें यह दुर्बुद्धि उपजी। तातें मैं तो आज तें तेरो मुंह न देखूंगो। ऐसे वीरबल को तिरस्कार करिके उहां तें छीतस्वामी श्रीगोकुल में श्रीगुसांईजी के पास आये।

सो यह बात देशाधिपति सों जायके हलकारे ने कही जो—साहिब ! वीरबल का प्रोहित मथुरासे आया था, सो किसी बात के ऊपर वीरबल से रूठकर गया है।

एसे सब समाचार विस्तार सों देशाधिपति के आगे हलकारे ने कहे। ता पाछे जब वीरबल दरबारमें आयो तब देशाधिपतिने कह्यो जो— वीरबल ! तेरा प्रोहित तुझ से क्यों रूठ गया है'। तब वीरबल ने देशाधिपति सों कही जो— साहिब ! ब्राह्मण एसेही होते हैं। जो सहजकी बात ऊपर रूठ जाते हैं।

तब देशाधिपतिने वीरबल सों कह्यो जो—बात तो कहो क्या थी ? तब वीरबलने कही जो—साहिब उन्होंने दो पद दीक्षितजी के गाये थे। सो मैंने इतना कहा कि—जब देशाधिपति सुन पावेंगे तब क्या जबाब दोगे ? इस पर वे रूठ गये।

तब देशाधिपतिने वीरबल सों कही जो—वीरबल ! तेरे प्रोहित ने झूठ क्या कहा ? तुझे उस बातकी सुधी आती है, जो मैं नावड़े में बैठा जाता था, सो नावड़ा गोकुल के नीचे जा निकला, उस समय दीक्षितजी वहां घाट के ऊपर बैठे थे। तब दीक्षितजीने मुझे आसीरवाद दिया। मेरे पास मणि थी जिससे पांच तोला सोना नित्य होता था, वह मणि मैंने दीक्षितजी को दी।



सो दीक्षितजीने वह मणि हाथमें ले कर मुझसे पूछा जो—तुमने मणि हमको दी ? ऐसे तीन बार पूछा, तब मैंने तीन बार कहा, जो—मणि दी। तब दीक्षितजीने वह मणि लेकर जमनामें डाल दी। तब मैं फिर बैठा (और कहा) जो—मेरी मणि मुझे पीछे दो। तब दीक्षितजीने यमुना में हाथ डाल के दोनों हाथ की अंजलि भर कर मणि लाकर मुझे दी। और कहा जो—इन में तुम्हारी मणि होय सो काढ़ लो। जब मैंने न ली, तब फिर मुझे तीन बेर पूछा जो—अब तो फेर न लोगे ? तब मैंने तीन बार नांही की। तब तो दीक्षितजीने अंजलि भरी की भरी मणि फिर यमुनामें डाल दी। जो वीरवल ! यह बात तो तू भूल गया। सो यह बात ईश्वर की कृपा बिना नहीं होती। इससे तुमको ऐसा संदेह न करना चाहिये। जो तुमने अपने प्रोहित से ऐसा कहा, सो दीक्षितजी तो साक्षात् ईश्वर हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं।

या भांति सों देसाधिपतिने वीरवल सों कह्यो, सो मुनिके वीरवल चुप होय रह्यो, जो—कहा उत्तर देय ?

तातें गुसांईजी को एसो प्रताप है। जो—देसाधिपति म्लेच्छ है श्रीहरिरायजी कृत सोऊ जानत है, जो—श्रीगुसांईजी तो साक्षात् भावप्रकाश, ईश्वर हैं। और वीरवल तो बहिर्मुख है। तातें श्री गुसांईजी के स्वरूप को ज्ञान नांही है। श्रीगुसांईजी कबहुं २ कहते जो—वीरवल तो बहिर्मुख है।

सो वे छीतस्वामी श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।



## वार्ता प्रसंग-३

और जब बीरबल को तिरस्कार करिके छीतस्वामी श्रीगोकुल आये, ता दिन श्रीगुसांईजी, श्रीगिरधरजी श्री-नाथजीद्वार हते । सो जब छीतस्वामी आये सो बात श्रीगुसांईजीने सुनी, जो- छीतस्वामी या प्रकार अपनी वृत्ति छोड़िके श्रीगोकुल आये हैं, बैठे है । और यह हू बात श्रीगुसांईजीने पहले ही सुनी (हती) जो-छीतस्वामी बीरबल के पास बरसोंड़ लेवे कों गये हते, सो अब या तरह सों बीरबल को तिरस्कार करिके छोड़ि आये हैं ।

सो तहां श्रीनाथजीद्वार में श्रीगोवर्द्धननाथजी के तथा श्रीगुसांईजी के दरशन कों दूर के वैष्णव जो आये हे, तिनसों श्रीगुसांईजी ने कह्यो जो- तुमारे पास में छीतस्वामी कों पठावत हों, सो तुम इनकी भली भांति सों सेवा कीजो ।

ता पाछे वैष्णव तो श्रीगुसांईजी सों विदा होयके अपने देस कों चले ।

ता पाछे बीरबल सों रिसायके छीतस्वामी श्रीगोकुल आये हते, सो उहां श्रीगुसांईजी के दरसन श्रीगोकुल में न पाये, तब दोय चार दिन ताई रहिके फेरि छीतस्वामी तरहटी में आये, श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन किये । सो अपने मनमें बहोत आनंद पाये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धननाथजी को अनोसर



करवायके पर्वत तें नीचे उतरे, सो अपनी बैठक में बिराजे । तब श्रीगुसांईजी की आगे आयके छीतस्वामीने सब समाचार विस्तार पूर्वक वीरवल के कहे । तब श्रीगुसांईजी छीतस्वामी के वचन सुनिके बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने लाहोर के जो वैष्णव आये हते, तिनकों एक पत्र लिख्यो अपने श्रीहस्त सों, 'जो-ए छीतस्वामी (को) हमने तुमारे पास पठाये हैं सो इनकी टहल तुम आछी भांति सों कीजो' ।

सो वह पत्र श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों दियो, और कह्यो जो-छीतस्वामी ! तुम लाहोर जावो । तब छीतस्वामीने कही जो महाराज ! मैं लाहोर जायके कहा करुंगा ? तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो, जो-मैंने उन सब वैष्णवन सों कही है, सो वैष्णव तुमारी बिदा आछी तरह सों करेंगे ।

तब श्रीगुसांईजी के वचन सुनिके छीतस्वामीने यह पद गायो । सो पद-

राग नट-हम तो श्रीविठ्ठलनाथ उपासी ।

सदा सेवों श्रीवल्लभ-नंदन कहा करें जाय कासी ॥

छांडि नाथ जो और रुचि उपजन सो कहियत असुरासी ।

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल बानी निगम प्रकासी ॥

जो यह पद छीतस्वामीने गायो । सो सुनिके श्रीगुसांईजी ( ने ) छीतस्वामी के हृदयकी जानी जो- एतो कहूं जानहार नांही हैं ।



तब छीतस्वामीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो—महाराज ! मैं वैष्णव भयो सो कछु वैष्णव के पास तैं भीख मांगन कों नांही भयो । और बीरवल पैं तो मेरी बरसोंड़ हती सो मैं वाको मुंह तोड़िके लेतो । परि महाराज ! वाने तो म्लेच्छ बुद्धि को जुवाव दियो, तातैं मैं यहाँ उठि आयो । जो महाराज ! मेरे तो राज के चरणकमल छांडिके कछु काम नांही, और कहूं न जाऊंगो । और अब कहा ऐसे कर्म करूंगो, जो वैष्णव होयके कहा भीख मागूंगो ?

सो छीतस्वामी के वचन सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये, और कह्यो जो—वैष्णव को यही धर्म है, जो—एसे ही चाहिये ।

ता पाछें श्रीगुसांईजीने वह पत्र लाहोर के वैष्णवनकों लिख पठायो जो—छीतस्वामी तो इहां ते आय सकत नांही है, तासों यह ब्राह्मण गरीब है । जो तुमतें याकी टहल बनि आवे तो इहां ही मनुष्य के हाथ हुंडी कराय पठाय दीजो । सो वह पत्र श्रीगुसांईजी को एक मनुष्य लाहोर ले जायके उन वैष्णवन कों दियो । तब उन वैष्णवनने वह पत्र बांचिके रुपिया १००) की हुंडी करायके पठाई । और उन वैष्णवनने श्रीगुसांईजी को यह पत्र वीनती को लिख्यो, जो—महाराज ! इतनी हुंडी तो हम वर्ष पर्यंत पठावेंगे, आपकी हुंडी के साथ इनकी हुंडी पठावेंगे सदा ।

सो पत्र श्रीगुसांईजी के पास आयो, तब बांचिके श्री-



गुसांईजीनें वा पत्र के समाचार सब छीतस्वामी सों कहे । तब छीतस्वामी अपने मनमें बहोत प्रसन्न भये, और श्रीगुसांईजी हू उन वैष्णवन पर बहोत प्रसन्न भये ।

ताते.छीतस्वामी उन बीरबल को त्याग करिके श्रीगुसांईजी को जस बढ़ायो । तो आपुने हू बीरबल की वरसोड़ जितनो छीतस्वामी कों कगय श्रीहरिरायजी कृत दीनो । ताते वैष्णवन कों तो दृढ विश्वास राखनो श्री

भावप्रकाश गोवर्द्धननाथजी की ऊपर । जो विश्वास राखे तो प्रभु वाकी क्यों न खबर राखें ? ताते वैष्णवन कों तो एसी अनन्यता राखी चाहिये । और छीतस्वामी जो श्रीगुसांईजी की आज्ञा मानिके लाहोर जाते, तो एकही वार द्रव्य लावते । परि आगे कहा करते ? सो उन छीतस्वामीने जो विश्वास राख्यो, तो जनम भरिके द्रव्य और ठोर जाचनो न पड्यो ।

ताते या जीवकों एसी एक प्रभुन को आश्रय राखनो । एक आश्रय श्रीवल्लभाधीश को करनो जाते सब फल की प्राप्ति होय ।

पाछे वे लाहोर के वैष्णव छीतस्वामी कों प्रतिवर्ष श्रीगुसांईजी की हुंडी के साथ न्यारी हुंडी पठावते, सो वे वैष्णव हू श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र हते । और छीतस्वामी हू श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये । सो उनकी बार्ता कहां ताई लिखिये ।





## (६) गोविन्दस्वामी

अब श्रीगुसांईजी के सेवक गोविन्दस्वामी सनोड़िया  
ब्राह्मण, महावनमें रहते तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश—

ये गोविन्दस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'श्रीदामा' सखा तिनको  
आधिदैविक प्राकट्य हैं। सो दिवसकी लीला में तो ये श्रीदामा  
मूलस्वरूप सखा हैं, और रात्रि की लीला में ये 'भामा'  
सखी है, श्रीचंद्रावलीजी की। ताते यहां हू ये श्रीगुसांईजी के  
स्वरूप में आसक्त है।

वार्ता प्रसंग—१

सो वे प्रथम आंतरी गाममें रहते। तहां वे स्वामी  
कहावते, सो वे सेवक करते। परि गोविन्दस्वामी परम भग-  
वदीय हते। सो वे गोविन्दस्वामी आंतरी में ते ब्रज आये।  
तब महावनमें रहे, जो— यह ब्रजधाम है। इहां श्रीभगवान  
के चरणारविंद की प्राप्ति केस न होइगी ?

सो गोविन्दस्वामी कवीश्वर हते, सो आप पद करते।  
जो कोई इनके पद सीखिके श्रीगुसांईजी के आगे  
गावतो, ताको श्रीगुसांईजी प्रसाद दिवावते, और बहोत  
प्रसन्न होते। सो वे गावनहारे गोविन्दस्वामी के आगे जायके



कहते, जो-तुमारे किये पद हम श्रीगोकुल के गुसाईजी के आगे गावत हैं, सोवे बहुत प्रसन्न होत हैं, और हमकों प्रसाद दिवावत हैं। तातें तुम अपने किये पद हमकों और सिखावो।

सो यह सुनिके गोविंदस्वामी अपने मनमें कहते जो-जो कछु है, सो श्रीगोकुल है, और श्रीगोकुल के गुसाईजी है। परि मिलनो बनत नाहि।

सो ऐसे करत करत कितनेक दिन भये तब एक समे कोऊ एक श्रीगुसाईजी को सेवक कछु कार्यार्थ श्रीवृन्दावन में जाय निकस्यो। सो भगवद्इच्छा सों गोविंदस्वामी को मिलाप भयो। गोविंदस्वामी और वह वैष्णव एकांत ठौर में बैठे हते, तहां कोई वार्ता के प्रसंग में गोविंदस्वामीने कह्यो जो-श्रीठाकुरजी की साक्षान् लीला कैसे जानि परे ?

तब वा वैष्णव नें कह्यो जो-पाछे कहंगो। तब गोविंदस्वामीने वा वैष्णवसों कह्यो जो-भोकों बहुत दिनन तें या बातकी आतुरता है, और तुम कहत हो जो-काल कहंगो। जो याहूतें फेर एकांत कहां मिलेगी। तातें मेरे ऊपर कृपा करिके अवही कहो।

तब वा वैष्णवनें गोविंदस्वामी की बहुत आतुरता देखिके उनत कह्यो जो-आज के समे तो श्रीठाकुरजी कों श्रीगुसाईजी श्रीविठलनाथजी नें बस करि राखे हैं। तातें श्रीठाकुरजी के चरणारविंद की प्राप्ति पाइये तो इनही तें पाइये, और को आश्रय करना बृथा है।



सो यह बात सुनिके गोविंदस्वामीकों अत्यंत आतुरता मई, और अति उत्साह भयो । तब तो गोविंदस्वामीने उन वैष्णव सों कह्यो जो—तुम मेरे साथ चलो । तब रात्रि तो उहांई सोय रहे । पाछे प्रातःकाल भयो । तब तहांतें दोऊ जने चले सो श्रीगोकुल आये । ता समें श्रीगुसांईजी श्रीठाकुरजी कों राजभोग धरिके श्रीयमुनाजी पे संध्यावंदन करत हे । सो ताही समय ये आय पहुँचे ।

तब वा वैष्णवन कही जो—श्रीगुसांईजी यही हैं । तब देखि के गोविंदस्वामी के मन में आई जो—ये कोई बड़े कर्मष्ट हैं । कर्मकांड करत हैं, इनकों श्रीठाकुरजी क्यों कर मिलत होंयगे । एसे चित्त में सोच विचार करन लागे ।

इतने में श्रीगुसांईजी संध्यावंदन तर्पण करि चुके । तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो—गोविंददास ! कब आये ? तब इन ( ने ) कही जो प्रभु ! अब ही आयो हों ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी उहांतें मंदिरमे पधारे. सो साथ गोविंदस्वामी हू चले । पर गोविंदस्वामी अपने मनमें विचार करत हुते, जो इन ( ने ) मोकों कबहू देख्यो नांही, जो इन ( ने ) मोकों कैसे पहिचान्यो । ताते कछुक कारण दीसत है ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तो जाइके मंदिरमें भोग सराये । ता पाछे दरशन के किंवाड खुले । तब गोविंदस्वामीने राजभोग आरती के दरशन किये । सो साक्षात् बाललीला



रसमय रसात्मक स्वरूपको दर्शन कराये । ता समे श्रीगुसांईजी ने गोविंददास को यह दान किये ।

ता पाछें श्रीगुसांईजी बाहिर आये । तब गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी, जो-महाराज ! आप तो कपटरूप दिखावत हो । और आप के यहां तो साक्षात् प्रभु विराजत हैं । ( और ) बाहिर तो वेदोक्त कर्म करत हो ।

तब श्रीगुसांईजीने गोविंदस्वामी सों कह्यो, जो-भक्ति-मार्ग है, सो तो फूलरूपी है, और कर्ममार्ग कांटेरूपी है ।

सो फूल तो रक्षा बिना फूले न रहे । तातें वेदोक्त कर्ममार्ग है सो भक्तिरूपी फूलन को कांटेनकी बाड़ है । तातें कर्ममार्ग की बाड़ श्रीहरिरायजी कृत बिना भक्तिरूपी फूल को जतन न होय, तब

भावप्रकाश, जतन बिना फूल हु न रहें । तातें यह वस्तु है सो गोप्य है । तातें प्रकट प्रमाण त्योंही है ।

तब ये वचन सुनिके गोविंदस्वामी बहोत प्रसन्न भये । तब गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजी सों फेरि बिनती कीनी जो-महाराज ! कृपा करिये ।

तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो-तू स्नान करि आव । तब गोविंदस्वामी तत्काल स्नान करिके अपरस ही में आये । तब श्रीगुसांईजी ने इन ऊपर कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे समर्पन करवायो । पाछें अनोसर कराय । श्रीगुसांईजी तो भोजन कों पधारे । तब गोविंदस्वामी कोहू महाप्रसादकी पातर श्रीगुसांई-



जीने अपने श्रीहस्तसों धरी। पाछे प्रसाद लेके गोविंदस्वामी  
आचमन करके श्रीगुसांईजी कों दंडवत करी।

ता पाछे गोविंदस्वामी श्रीगोकुल ही में आय रहे  
सो वे गोविंदस्वामी पे श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। इ  
ऊपर बहुत कृपा करते। सो गोविंदस्वामी ऐसे कृपापा  
भगवदीय हते।

### वार्ता प्रसंग-२

सो पहिले गोविंदस्वामी आंतरी में सेवक करते, सो  
उहां गोविंदस्वामी कहावते। आंतरी में इनके सेवक बहोत  
हते। एक समे आंतरी के लोग श्रीगोकुल में आये।  
सो गोविंदस्वामी जसोदाघाट के ऊपर बैठे हते। सो उन  
सुनी ही जो- गोविंदस्वामी श्रीगोकुल में रहे हैं। सो सुनि  
के नाम पायवे के लिये आये हे। तब उन लोगनने पूछी  
जो-गोविंदस्वामी कहां रहत है ?

तब वे लोग पूछत २ गोविंदस्वामी के घर आये। तब  
गोविंदस्वामी की बहिन कान्हवाईने कही जो-गोविंददास तो  
स्नान करन कों गये हैं। तब वे लोग जसोदाघाट पे आये,  
गोविंददास सों पूछी जो-गोविंदस्वामी कहां है ? तब  
गोविंददास ने कही जो-वे तो मरे बहोत दिन भये। तब  
वे लोग फेर घर आये। इतने में गोविंददास हू घर आये।  
तब उन लोगनने उनकों पहिचाने, जो इन तो हमसों ऐसे  
कही जो-वे ता मरे। सो एतो आप ही हैं।



तब उन लोगन सों कही जो—स्वामी ! तुम हमसों यों क्यों कहे जो—वे तो मरे । तब उन गोविंददास ने कही जो—मरे नांही तो अब मरेंगे ।

जो या भांति सों गोविंददासजीने कही, ताको कारन कहा ? (क्यों) जो भगवदीय को मिथ्या न बोलनो । ताको हेतु यह जो— उन श्रीहरिरायजी कृत लोगनने तो इनसो पूछ्यो सो—गोविंदस्वामी कहि भावप्रकाश. के पूछ्यो । तासों इन (ने) कही जो—वे स्वामी तो मरे । (क्यों) जो अब तो हम 'दास' हैं ।

पाछे गोविंददासने कही जो— तुम अब श्रीगुसांईजी के पास नाम पावो । तब उनने कही जो—हमकों श्रीगुसांईजी की पास ले चलो तब उन लोगन कों गोविंददास अपने साथ ले जायके श्रीगुसांईजी की पास नाम दिवायो । तब वे लोग दिन चार श्रीगोकुल रहिके पाछे आंतरी कों गये । सो वे गोविंददासजी श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

### वार्ता प्रसंग—३

और गोविंददास श्रीजमुनाजी में कबहू न्हाते नांहीं, पांव हू श्रीजमुनाजी में बुड़ावते नांही, कूप के जलसों स्नान करते, श्रीजमुनाजी की रेती में लोटते, अंजुली मरि जल लेते सो पी जाते, और आचमन हू न करते । जो— उनको श्रीजमुनाजी पर एसो भाव हतो । श्रीजमुनाजी कों साक्षात् स्वामिनी को स्वरूप जानते । और यह कहते जो—यह अप्र-योजक सरीर यामें मैं कैसे करि डारों । ऐसे श्री यमुनाजी को



स्वरूप अगाध भाव संयुक्त है, ताको विचार करते । सो वे गोविंददास ऐसे भावसंपन्न होते ।

सो एक दिन श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी ए दोऊ भाई श्रीयमुनाजी में स्नान करत होते । ता समे श्रीजमुनाजी के तीर गोविंददास ठाड़े होते । तब श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी दोऊ भाई आपुस में विचार करन लागे, जो-आज तो गोविंददास कों श्रीजमुना में स्नान कराइये । सो इन दोऊ भाई गोविंददास कों पकरिके श्रीजमुनाजी में ले जान लागे । तब गोविंददास ने कह्यो जो-महाराज ! माकों श्रीयमुनाजी में मति डारो, मोकों श्रीयमुनाजी में डारोगे तो मेरो दोष नांही है, आप जानो । ये श्रीयमुनाजी हैं, सो साक्षात् श्रीस्वामिनीजी हैं । ये लीलात्मक स्वरूप है । तातें यह मेरो अप्रयोजक सरीर में यामें कैसें डारों ?

सो गोविंददासने जब एसें कह्यो, तब इनने उन कों छोड़ि दिये । तब इन दोऊ भाईन कों श्रीजमुनाजी के लीलात्मक स्वरूप को ता समय दरसन भयो । तब गोविंददासने कह्यो जो- महाराज ! इहां तो उत्तम तें उत्तम सामग्री होय सो समर्पिये । सो निज स्वरूप जानिके कह्यो ।

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय होते ।



## वार्ता प्रसंग-४

और एक समय रात्रि कों श्रीभागवत दसमस्कंध के अष्टादस अध्याय वेणुगीत के अंत के श्लोकको व्याख्यान श्रीगुसांईजी करत हते । सो श्लोक—

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार—

वेणुस्वनैः कल्पदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां

निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥

सो या श्लोक को व्याख्यान गोविंददास के आगे श्रीगुसांईजी करत हते । सो करत २ अर्द्धरात्रि गई । ता पाछे श्रीगुसांईजी तो आप पोंढिवे कों उठे । तब गोविंददास कों आज्ञा दीनी जो— अब तुमही जायके सोय रहो ।

तब गोविंददास श्रीगुसांईजी को दंडवत करिके उठि चले । सो अपनी बेठक में श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी और श्रीगोविंदरायजी बेठे हते, सो आपुस में खेलत हसत हते । और हू वैष्णव पास बेठे हते, सो तहां गोविंददास हू आये ।

तब गोविंददास तें श्रीगोकुलनाथजीने पूछी जो—कहो गोविंददास ! या विरियां कहां ते आये हो ? तब गोविंददासने कही जो—महाराज ! श्रीगुसांईजी के पास हो, तहां ते आयो हूं । तब गोविंददास तें श्रीगोकुलनाथजीने कही, उहां कहा प्रसंग होत हतो ? तब गोविंददासने कही जो—महाराज ! वेणुगीत के अंत के श्लोक को व्याख्यान भयो । तब श्री-



गोकुलनाथजीने गोविंददास तें कह्यो जो— कहा व्याख्यान भयो हो ? तब गोविंददासने कह्यो, जो महाराज ! अपनी बात आपु कहे, ताको कहा कहिये, ताकी पटतर कहा दीजिये ?

तब गोकुलनाथजीने कह्यो जो— श्रीगुसांईजी को स्वरूप गोविंददासने नीके जान्यो है ।

ता पाछे गोविंददास तो अपने घर कों आये । सो वे गोविंददास ऐसे भगवदीय भये ।

#### वार्ता प्रसंग-६

और एक दिवस श्रीनाथजी और गोविंददास दोउ अप्सरा कुंड के ऊपर साथ ही खेलत हते । सो तहां ते गोविंददास तो श्रीगिरिराज परवत पर आये, तब उहां देखे तो राजभोग आरती होय चुकी है । तब गोविंददासने कही जो—इहां राजभोग कोन ने आरोग्यो है ? श्रीनाथजी तो अबही आबत हैं, एसें कह्यो । तब श्रीगुसांईजीने फेर सामग्री कराइ, और फेर राजभोग धर्यो । फेर आरती भई पाछे अनोसर भयो ।

यहां यह संदेह होय जो—श्रीनाथजी तहां हते नांही तो सेवा श्रीहरिरायजी कृत कोनकी भई ?

भावप्रकाश. तहां कहत हैं जो— श्रीआचार्यजी के पुष्टिमार्ग में श्रीठाकुरजी मर्यादा पुष्टि रीति सों बिराजत हैं । (तोभी) सगरे (सब स्थल में) पुष्टि पुरुषोत्तम के भाव सों सगरी सामग्री आरोगत हैं । सगरी वस्तु वस्त्र आभूषन को अंगीकार करत हैं । और दर्शन देवे में मर्यादा रीति सों



विराजत हैं, बोलत नाहि । सो भगवत्स्वरूप में दोय प्रकार को स्वरूप है । एक भक्तोद्धारक, और एक मर्यादा-पुष्टिरीति सो सब को दर्शन दे सो सर्वोद्धारक ।

भक्तोद्धारक स्वरूप के विषे सब को दर्शन नाहीं । सो जहां ताई वैष्णव को प्रेम न होय तहां ताई मर्यादा-पुष्टिरीति सो अंगीकार ( और ) दर्शन है । भक्तोद्धारक स्वरूप, सर्वोद्धारक मर्यादा-पुष्टिरूप सो सिंहासनपे विराजिके सब को दर्शन देत हैं सो स्वरूप में ते बाहर प्रकट होय । सो जहां तरुन, वृद्ध, गाय आदि, जैसो कार्य करनो होय ता प्रकार को रूप करि उह भक्त सो बोलें, अनुभव करावें । तथा मर्यादा-पुष्टि स्वरूप है, उनही के मुख सो बोलें, अनुभव जतावें ।

सो यहां भक्तोद्धारक स्वरूप को अनुभव गोविंदस्वामी को है । और श्रीगुसांईजी ने जो राजभोग धरचो सो श्रीआचार्यजी को मर्यादा अनुसार श्रीनाथजीने सर्वोद्धारक रूप सो आरोप्यो । तोहू गोविंदस्वामी जैसे भक्त के विशेष अनुभव सो श्रीगुसांईजीने फेरि राजभोग धरचो, एसे जाननो ।

प्रत्यक्ष अथवा वैष्णव द्वारा विशेष आज्ञा होवे तो भगवत्कृपा भई जाननी । सो यातें श्रीगुसांईजीने हू भगवद् इच्छा समझ करि फेरि राजभोग धरचो ।

और गोविंदस्वामी, कुंभनदासजी और गोपीनाथदास ग्वाल ये तीनों जने श्रीनाथजीके एकांत के सखा हैं । श्रीगुसांईजीने इनको सब बात दिखाई ही । सो एकांत के



समे श्रीनाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर खेलते हैं। सो गोविंददास सदैव श्रीनाथजीकी साथ रहते।

सो एक दिन राजभोग को समो हतो तातें श्रीनाथजी राजभोग आरोगवे को पधारे। सो पूछरी की ओर तें आवत हते, गोविंददास साथ हे। सो गोपालदास भीतरिया अप्सरा कुंडते स्नान करिके आवत हते गिरिराज ऊपर, सो उनने देखे।

तब गोपालदासने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो—महाराज! गोविंददास और श्रीगोवर्द्धननाथजी पूछरी की ओर तें आये सो तो मैंने देखे। तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप करि रहे। ता पाछे राजभोग सम्प्यो।

सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के एकांतके ऐसे सखा है। सो वे श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये।

#### वार्ता प्रसंग—६

और एक समे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार में अपनी बैठक में बिराजे हते। ता समय श्रीनाथजी के उत्थापन को समय भयो। सो गोविंददास तो ऊपर दर्शन कों गये। सो जायके देखे तो श्रीनाथजी के पाग के पेच खूट रहे है। सो वा समे श्रीनाथजीने पाग सांधिकर बांधी है।

सो वे गोविंददास पाग आछी बांधत हुते। तब गोविंददासने श्रीनाथजी सों पूछी जो—महाराज! पाग के पेच क्यों खुलि रहे हैं? तब श्रीनाथजीने गोविंददास सों कह्यो जो—तू पाग के पेच संवार दे।



तब गोविंददास भीतर जायके पाग के पेच संवारे ।  
 श्रीगोवर्द्धननाथजी की पाग ढीली, सो संवार दी । इतने में  
 श्रीगुसांईजी ऊपर पधारे । तब भीतरियाने श्रीगुसांईजी  
 तें कही जो— महाराज ! गोविंददास श्रीनाथजी को छुये  
 हैं । ( जो ) मंदिर के भीतर जाय श्रीनाथजी के पाग के पेच  
 संवारे हैं ।

तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप होय रहे, कछु बोले  
 नांही । तब तो भीतरियाने फेरि कही जो— महाराज ! अपरस  
 छुड़ गई । तब श्रीगुसांईजी ने कही— गोविंददास के छुये तें  
 श्रीनाथजी छुये न जाय, तातें संध्याभोग धरो । या भांति  
 सों श्रीगुसांईजीने आज्ञा दीनी ।

ताको हेतु कहा ? जो— अनोसर में श्रीनाथजी गोविंददासजी  
 श्रीहरिरायजी कृत सों खेलत हैं, लिपटत हैं, ऊपर चढ़त हैं । यातें  
 भावप्रकाश. उन के छुये तें अपरस छुड़ जाय नांही । और  
 वैसे हू ब्राह्मण हैं, तातें वेद मर्यादा हू में हानि आवत नांही ।

सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-७

और एक समय गोविंददास जगमोहन में ठाड़े २  
 कीर्तन करत हते । तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोविंददास की  
 पीठ में कांकरी की मारी । सो एक बेर दीनी, दोय बेर  
 दीनी । तब गोविंददासने एक बेर अंगुरीनतें फेर के दीनी ।  
 तब तो श्रीनाथजी चोंकि उठे । तब श्रीगुसांईजी फिरिके देखे



तो गोविंददास जगमोहन में ठाड़े है, और दूसरो कोऊ नांही है। तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो— गोविंददास ! यह तुमने कहा कियो ? तब गोविंददासने कही जो— महाराज ! “आपनो सो पूत, परायो ढठींगर” मोकों इननें जबतें तीन कांकरी मारी हैं। आप मेरी पीठ तो देखो। पाछे गोविंददासने अपनी पीठ दिखाई। और कह्यो जो— “खेलत में को काको गुसैयां” तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप होय रहे।

ता पाछे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी को शृंगार करन लागे। तब गोविंददास कीर्तन करन लागे।

या भांति गोविंददास सदैव श्रीगोवर्द्धननाथजी के साथ खेलते। सो वे गोविन्ददास श्रीनाथजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।

#### वार्ता प्रसंग—८

और एक समे वसंत के दिन हते। सो श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी को सेनभोग सरायके बीड़ी आरोगावत हते। और गोविंददास ठाड़े ठाड़े मणिकोठा में कीर्तन करत धमार गावत हते। सो एक नई धमार करिके गावन लागे। सो धमार। राग रायसो—

श्रीगोवर्द्धनराय लाला. × × × × ×

सो याकी तीन तुक करके चुप होय रहे। गोविंददास तें आगे कही न गई। तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो— गोविंददास ! धमार क्यों नांही गावत हो ? तब गोविंददासने कही जो—



महाराज ! धमार तो भाजि गई अरु मन उरझाय गयो ।  
 'अचका अचकी आयके भाजि गिरधर गाल लगाय' । सो  
 वह तो भाजी गये तातें ख्याल उतनो ही रह्यो । जो-महाराज !  
 भाजि गये तो आगे खेल कहातें होय ?

तब श्रीगुसांईजी मुनिके बहुत प्रसन्न भये ।  
 ता पाछे सेन आरती करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ायके  
 श्रीगुसांईजी आपु तो नीचे उतरे । ता पाछे धमारि की एक  
 तुक रही हती सो, श्रीगुसांईजीने पूरी करी । सो तुक-इहि  
 विधि होरी खेलिके .....

सो वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते-

वार्ता प्रसंग-९

बहुरि सीतकाल में श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे  
 हते । तब एक समे श्रीगोवर्द्धननाथजी और गोविंद-  
 दास पूछरी की ओर श्यामढांक है, तहां ढांक की नीचे  
 श्रीनाथजी और ग्वालवाल सब मिल के खेलत हैं । सो कबहुं  
 वा ढांक पर चढ़िके मुरली बजावते, सब ग्वालवालन कों बुला-  
 वतें । तहां श्यामढांक तें थोरी सी दूर एक चोंतरा है, तहां  
 गोविंददास बैठे २ कीर्तन करत हते । सो श्रीठाकुरजी  
 श्यामढांक के ऊपर बैठे हतें । गाय सब आसपास गदेली  
 घास चरत हती बन में ।

ता समे श्रीगुसांईजी स्नान करिके उत्थापन करिवे कों  
 ऊपर पधारे । तब श्रीनाथजीने गोविंददासतें कही जो-



मैं तो अब अपने मंदिर में जात हों। तहां उत्थापन को समयो मयो है। श्रीगुसांईजी स्नान करिके उपर पधारे हैं। जो-उहां श्रीगुसांईजी मोकों मंदिर में न देखेंगे तो मोसों कहा कहेंगे, जो-तुम कहां गये हे? तातें मैं तो जातहों।

एसे गोविंददास सों कहिके श्रीनाथजी वा ढांकपे तें उ-तावले ही कूदे, सो कवाय को दांवन तहां ढांकमें अरुइयो। सो दांवन को टूक तहां ही फटिके रहि गयो। सो श्रीनाथजी ने न जानी। सो गोविंददासने दूर सों देख्यो जो श्रीनाथजी की कवाय को दांवन फटिके अरुझि रह्यो है।

पाछे श्रीनाथजी तो जायके अपने मंदिरमें सिंहासन पर विराजे, और श्रीगुसांईजीने जायके श्रीनाथजी के मंदिर के किंवाड़ खोले, उत्थापन किये। सो जब झारी भरन लागे ता समे श्रीगुसांईजी देखें तो श्रीनाथजी को दांवन फटि रह्यो है। तब श्रीगुसांईजी झारी भरिके उत्थापन भोग धरिके बाहिर आये। तब रूपा पोरिया कों बुलायके श्रीगुसांईजीने पूंछी जो-रूपा! इहां कोउ आयो तो नांही? तब रूपा पोरिया-ने कही जो-महाराज! इहां तो कोउ आयो नांही। तब श्री-गुसांईजी चुप करि रहे।

पाछे श्रीनाथजीके उत्थापन भोग सरायके श्रीगुसांईजी श्रीगिरिराज तें नीचे उतरे, सो अपनी बेठक में आये। और भीतरियानकों आज्ञा दीनी जो-तुम आरती करियो। और सब सेवा तें पहुंचियो, तुम मेरो पेंडो मति देखियो।



इतनो कहिके आपतो नीचे आय अपनी बेठक में विराजे । तब सब वैष्णव दर्शन कों आये । सो आप काहूसों बोले नांही ।

इतने में ही गोविंददास आये । तब गोविंददासने श्रीगुसां-ईजी सों कही जो—महाराज ! आपु अनमने क्यों बेंठे हो ?

तब श्रीगुसांईजीने कही जो—कछु नांही । तब गोविंददासने कही जो—महाराज ? कछु तो मनमें भ्रम है । तातें यह बात तो कही चाहिये । तब श्रीगुसांईजीने गोविंददास सों कही जो—श्रीनाथजीको कवाय को दांवन फट्यो है । जो—न जानिये कोन अपराध पड्यो है ?

तब गोविंददासने हँसिके कह्यो जो—महाराज ! या बात के लिये तो राज भले अनमने होत हो ! (क्यों जो) तुम कहा लरिका को सुभाव जानत नांही हो ? तुम्हारो लरिका ढांक के ऊपर बेठ्यो हतो । सो तुम जब न्हाय के गिरिराज ऊपर पधारे तब लरिका वा ढांक ऊपर तें कूद्यो । सो वा ढांक में वा दांवन को टूक फटिके अरुझि रह्यो है, जो—महाराज ! आपु पधारो तो मैं दिखाऊं ।

तब तो श्रीगुसांईजी गोविंददास की बाँह पकरिके पूछरी की ओर चले । परि काहु सेवक कों संग न लीने । सो जब ढांक के नीचे आये तब श्रीगुसांईजी देखे तो वा कवाय की लीर लटकत है ।

तब श्रीगुसांईजीने अपने श्रीहस्त सों उतारि लीनी । ता



पाछे आप उहांते अपसरा कुंड ऊपर आये, सो स्नान करिके अपरस ही में गिरिराज ऊपर पधारे। तब वह लीर श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकी कवाय के ऊपर धरिके देखे तो कवाय वह साजी होय गई। तब श्रीगुसांईजी गोविंददास के ऊपर बहुत ही प्रसन्न भये। पाछे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की साम्हें देखिके मुसिकाये। तब श्रीनाथजी हू मुसिकाए।

ता पाछे श्रीगुसांईजी सेन आरती करिके सेवा तें पहोंचिके आपु नीचे पधारे, सो अपुनी बेठक में विराजे। तब और वैष्णव हू श्रीगुसांईजी की पास आयके बेठे। तब गोविंददास हू श्रीगुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजीने उन वैष्णवन सों कही जो—अब कछु तुम्हारे मनमें रह्यो है ? तब सब वैष्णव चुप करि रहे। तब श्रीगुसांईजीने कही जो—अब कछु उपाय करिये, जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रम न करनो पड़े।

तब श्रीगुसांईजी आपही मनमें बिचारि के भीतरियान सों कही, और सब सेवकन कों आज्ञा दीनी, जो—आज पाछे संखनाद तीन बेर करिके, ता पाछे क्षण एक रहिके, श्रीनाथजी के मंदिर के किंवाड़ खोलने।

यह सुनत ही गोविंददास बहुत ही प्रसन्न भये। सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय भये।



### वार्ता प्रसंग-१०

और श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास को घोड़ा करते । और आप गोविंददास की पीठ ऊपर असवार होय वन में पधारते । सो एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास के ऊपर चढ़े चले जात हे, ता समे गोविंददास को लघी की शंका आई, सो मारग में ठाड़े ठाड़े लघी करे जात हे ।

सो एक दिन एक वैष्णवने कबो जो-गोविंददास ! यह कहा है ? तब गोविंददास कछु बोलेहू नांही, वाको उत्तर हू न दियो । सो प्याऊ के ढांक की ओर चले ही गये ।

सो सेन आरती उपरांत श्रीगुसांईजी नीचे अपनी बेठक में विराजे हते, तब उहां वा वैष्णवने कही जो- महाराज ! गोविंददास तो आज ठाड़े २ निहरे निहरे जात हते और लघी करत जात हते ।

इतने में श्रीगुसांईजी की पास गोविंददास हू आये । तब श्रीगुसांईजीने गोविंददास तें पूछी जो- यह वैष्णव कहा कहत है ? जो तुम मारग में निहरे २ ठाड़े २ लघी करत जात हते ? तब गोविंददास ने कही जो- महाराज ! घोड़ा हू कहूं बेठिके लघी करत है ? और याकों तो सूझे नांही (जो) श्रीनाथजी तो मोकों घोड़ा करिके मेरी पीठ पर असवार होत हैं । और ता समें जो मोकों लघी आई तब मैं बेठिके कैसे लघी करूं ? तातें मैं ठाड़े ही लघी करी सो तो याने देखी, परि श्रीनाथजी मेरी पीठ ऊपर असवार हते सो तो याकों सूझे नांही ।



तब वा वैष्णवने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके कही जो-धन्य ! ए गोविंददास ! जीन पे महाराज की एसी कृपा है ।

सो वे गोविंददास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपा-पात्र भगवदीय भये ।

### वार्ता प्रसंग-११

और एक समे श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजीद्वार पधारे हते । सो श्रीनाथजी की सेन आरति करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ाय आपु नीचे अपनी बेठक में पधारे । पाछे गादी ऊपर बिराजे और वैष्णव सब आगे बेठे । तब श्रीगुसांईजी सों सब वैष्णवनने बिनती करी जो- महाराज ! गोविंददासजी तो श्रीनाथजी के राजभोग आरती के पहेले महाप्रसाद लेत हैं ?

तब इतने में ही गोविंददास तहां आये । तब श्रीगुसांईजी ने पूछी जो- गोविंददास ! ये वैष्णव कहत हैं- जो तुम राजभोग की आरति के पहेले महाप्रसाद लेत हो ? तब गोविंददास ने श्रीगुसांईजी सों बिनती करी जो- महाराज ! मैं परबस लेत हों, काहेतें जो आप तो राजभोग आरति करि के अनोसर करत हो, और तुमारो लरिका आय के ठाड़ो होत हैं और कहेत हैं जो- गोविंददास ! खेलिवे कों चल । तातें हों पहेले ही प्रसाद लेत हों । तब श्रीगुसांईजी कहे जो- राजभोग पहेले तो महाप्रसाद लीजे नाहीं । तातें राजभोग की आरति उपरांत



प्रसाद लेवे कों आयो करि । तब गोविंददास ने कही जो-  
महाराज ! जो आज्ञा ।

तब दूसरे दिन गोविंददास राजभोग आरति श्रीनाथजी की होय चुकी तब दर्शन करि के ही तुरत आये । सो गोविंददास तो महाप्रसाद लेवे कों बेठे । और इहां श्रीगोवर्द्धननाथजी अनोसर भये पाछें जगमोहन में आय के ठाड़े भये और गोविंददास की राह देखत भये ।

इतने ही (में) महाप्रसाद लेके गोविंददास आये । तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोविंददास सों पूछ्यो जो-  
गोविंददास ! तु इतनी बार लों कहां गयो ? मैं तीन बेर जगमोहन में गयो, और तीन ही बेर पाछो आयो । और अब आय के तेरी राह देखत हों ।

तब गोविंददासने कह्यो जो- महाराज ! मैं तो तुमारो राजभोग सरतो तब तुरत ही महाप्रसाद लेत हतो । सो कालि रात्रि को श्रीगुसांईजीने यह आज्ञा दीनी हैं जो-राजभोग की आरति पाछें महाप्रसाद लियो कर । सो अबही आरति पाछें आयो हो । सो सुनि के श्रीनाथजी चुप करि रहे । ता पाछें गोविंददास की पीठ पर असवार होय के श्रीनाथजी तो बन कों पधारे ।

ता पाछें उत्थापन को समय भयो तब श्रीगुसांईजी स्नान करि कें श्रीगिरिराज उपर जाय के संखनाद कराये । ता पाछे मंदिर में पधारे तब गड़वा भरन लागे । तब



श्रीनाथजीने श्रीगुसांईजी सों कही जो— तुमने गोविंददास को राजभोग आरति भये पाछे प्रसाद लेवेकी आज्ञा दीनी है, सो मोकों आज बन में खेलवे कों अवार भई। सो तीन बेर तो जगमोहन में आय के फिरि गयो। ता पाछें कितनीक बेर लों जगमोहन में ठाड़ो रह्यो। जब गोविंददास प्रसाद ले के आयो तब याकी पीठ पर असवार होय के खेलन कों गयो। तातें याकों आज्ञा दीजो जो—जा भाँति नित्य प्रसाद लेत है तेसे ही लियो करे।

ता पाछे उत्थापन भाग धरे। सो भोग धरि के अपरस ही में श्रीगुसांईजी नीचे पधारे, पाछे तुरत ही गोविंददास को नीचे बुलाये। तब गोविंददासने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि। तब श्रीगुसांईजी गोविंददास कों देखि के मुसिकाने।

पाछे गोविंददास सों कह्यो जो— गोविंददास ! तुम नित्य प्रसाद लेत हो तेसेही ताही भाँति सों प्रसाद लेवो करो, तुम कों कछु दोष नाही है। तुम कों प्रसाद लेत अवार भई तासों श्रीनाथजी कों गेल देखनी परी। तब गोविंददासने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि कें कही जो—आज्ञा।

ता पाछें श्रीगुसांईजी फेरि श्रीगिरिराज पें पधार के श्रीनाथजी को भोग सरायो। ता पाछें आरती करि कें अनोसर कराये।

सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय अंतरंगी सखा हुते।



### वार्ता प्रसंग-१२

और एक समे गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते । तहां प्रातःकाल को समो हतो सो गोविंददासने भैरव राग अलाप्यो । सो गोविंददास को गरो बहोत आछो हतो । और आप गावत ही बहोत आछें हते । सो भैरव राग एसो जाम्यो जो कछु कहिवे में नांही आवे ।

सो एक म्लेच्छ चलयो जात हुतो सो वानें गोविंददास को अलाप सुनि के माथो धुन्यो । और कह्यो जो—वाह वाह ! कैसा भैरव अलाप्या है ।

जो एसें वा म्लेच्छने कह्यो । सो वा म्लेच्छ की बात गोविंददासने सुनी । तब सुनिके गोविंददासने कह्यो जो—अरे ! राग तो छी गयो । (और) कह्यो जो—म्लेच्छने सरायो है, सो राग श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे कैसे गाऊं ? राग तो छी गयो । सो ता दिनतें गोविंददासने भैरव राग में कोई पद कियो नांही । जो वे गोविंददास एसे टेक के कृपापात्र भगवदीय भये ।

### वार्ता प्रसंग-१३

और एक समे गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते । सो कोउ जल भरिवे को आवतो तासों बतरावते । और अपने हृदय विषे भगवदभाव, तातें जो चतुर होय तासों टोक करते ।

सो एक दिन गोविंददास बैठे हते तहां एक बैरागी आय के बेठ्यो और गावन लाग्यो । सो कहूं तो सुर, कहूं ताल,



कहूं अक्षर कहूं राग । तब गोविंददासने सुनिके वा वैरागी  
सों कह्यो जो—अरे वैरागी ! तू मति गावे । गायवे को खराब  
मति करें, न तो तेरो सुर सुद्ध, न तेरो राग सुद्ध, न तेरो  
गायवे को ठिकानो । ऐसे काहेकों गावत हैं ? तो पे  
गायवो न आवे तो मति गावें ।

तब उन वैरागीने कह्यो जो— हों तो अपने रामकों रिझा-  
वत हूं । मोकों गायवो नांही आवे तो कहा भयो ? मेरे राग  
सों मेरो राम तो रिझत हैं ।

तब गोविंददासने कही जो— तेरो राम कछू मूरख नांही  
जो तेरे गायवे पे रिझेगो, तातें तू मति गावे । तब वे वैरागी  
चूप करि रह्यो ।

जो उन गोविंददास उपर ऐसी कृपा हती जो सबसों  
निशंक बोलते । वे गोविंददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग—१४

और वे गोविंददास पाग आछी बांधते । सो एक दिन  
महावनतं श्रीगोकुल आवत हते । सो मारग में काहू ब्रजवासीने  
माथेपेंते पाग उतार लीनी । तब तासों गोविंददासने कही  
जो— सारे ! सोलह टूक हैं समारि लीजो, हों सकारे तेरे घर  
आय के ले जाउगो । पाछे वह ब्रजवासी पावन पड़ि के गोविं-  
ददास कों पाग दे गयो ।

सो वे गोविंददास ऐसे भगवदीय भये ।



### वार्ता प्रसंग-१५

और गोविंददास महावन में महावन के टीलन पर एक समे कीरतन करत हते । सो तहां श्रीगोकुलनाथजी कीर्तन सुनिवे कों आवते । तब आपने अपने खवास सों कही जो—सावधान रहियो । जब श्रीगुसाईजी भोजन करिवे कों पधारे (तब) समें होय तब तू मोकों बुलाय लीजो ।

सो भीतर राजभोग आवते ता समय आप तहां पधारते, और इहां सावधान मनुष्य जो बेठारयो हतो सो जब समो होय तब बुलावन कों आवतो, ऐसे नित्य करते ।

सो उहां एक दिन जो मनुष्य रहतो सो कछु काम कों गयो हतो, सो जब श्रीगुसाईजी भोजन को पधारन लागे तब सब बेटान कों बुलाये, तब तहां श्रीवल्लभ नांही हते । तब आप श्रीगुसाईजी कहे जो—महावन की ओर जाउ, तहां गोविंददास कीर्तन करत हैं, तहांते श्रीवल्लभ कों बुलायके ले आवो ।

ता पाछें मनुष्य दोरे, सो तहां ते श्रीगोकुलनाथजी कों ले आये । तब श्रीगुसाईजी भोजन कों पधारे । सो गोविंददास गावत आछो हते ताते श्रीगोकुलनाथजी सुनिवे कों जाते । सो वे गोविंददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

### वार्ता प्रसंग-१६

और एक दिन श्रीगुसाईजी मथुराजी में केशोरायजी के दर्शन कों पधारे, जो साथ गोविंददास हू हते । सो उहां केशोरायजी को श्रृंगार बहुत ही भारी भयो हतो, सो जरी को वागा, चीरा, ताके उपर जरी की ओढ़नी उढ़ाये ।



सो श्रीगुसांईजी तो केशोरायजी के (निज) मंदिर में ठाड़े भये और गोविंददास द्वार सों लागे दरसन करत हते। (सो) बागा जरी को ताके उपर ओढ़नी जरी की ओढ़ें देखि कें गोविन्ददासने केशोरायजी सों कह्यो जो—महाराज ! नीके तो हो ?

तब श्रीगुसांईजी गोविन्ददास की ओर देखि के मुसिक्याये । ता पाछें श्रीगुसांईजी तो केशोरायजी के दरशन करि कें बाहिर आये, तब श्रीगुसांईजी गोविन्ददास सों कहे जो—गोविंददास ! ऐसे न कहिये ।

तब गोविंददासने कही जो—महाराज ! उष्णकाल के तो दिन और तेसी गरमी पड़े, और जरीन को बागा उपर जरीन की ओढ़नी उढाई है, जब कहा कहूं ? तब श्रीगुसांईजी मुसिक्याय के चुप होय रहे ।

सो वे गोविंददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग—१७

और एक समे गोविंददासकी बेटी आंतरी तें आई । जो वह थोरीसी रही । परि गोविंददासने कबहू वासों संभाषनहू न करचो, जो कानवाई गोविंददास की बहेन हती ताने कही जो—गोविंददास ! तू कबहू बेटी सों बोलत ही नांही, कबहू कछू कहेत ही नांही, योहूं न पूछे जो—तू कब आई है, सो यह कहा ?

तब गोविंददासने कानवाई सों कही जो—कन्हीयां ! मन तो एक हैं । सो श्रीठाकुरजी में लगाउं के बेटी में लगाउं ? तब कान्हवाई मुनि के चुप होय रही ।



पाछे कितनेक दिन रहिके जब गोविंददास की बेटी आंतरी कों चली, तब कान्हवाई बाकों बहूबेटीन के पास ले गई । तब बहूबेटीनने गोविंददास की बेटी जानि कें कछु चोली साडी लहेंगा श्रीपारवती बहूजीने दियो । और घरनते औरन ने हू थोरो थोरो दिनो ।

ता पाछे बहूबेटीन सों विदा होय के गोविंददास की बेटी चली । ता पाछे गोविंददास जब घर आये तब कान्हवाईने कही जो—गोविंददास ! बेटी तो चली गई । तब गोविंददासने कही जो—काहूने कछु दीनो ? तब कान्हवाईने कही जो—बहूबेटीनने साडी चोली दीनी हैं ।

तब तो यह बात सुनि कें गोविंददास बेटी के पाछे दोरे, सो कोस एक ऊपर जाय पहुँचे । तब बेटीसों गोविंददासने कही जा—तोकों बहूबेटीनने जो कछु दीनों है, सो फेरि दे आउं, याके लियेतें आपुनो बुरो होयगो ।

तब बेटी जो लाई हती सो सब फेरि दे आई, ता पाछे कान्हवाई सों आय के गोविंददासने कह्यो जो—कन्हीयां ! तेनें घरसों क्यों न दीनो ? एसे न करिये । तब कान्हवाई सुनिके चुप होय रहि ।

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।




---

रूपा पोलिया आदि के जगबिख्यात दो तीन प्रसंग अन्य प्राचीन प्रतियें में प्राप्त होने परभी इस प्रति में न होने से एवं स्थल संकोच के कारण दिया गया नहि है । उनका सम्पूर्ण विवरण 'पू. भक्तकवि' नामक ग्रन्थमें दिया जायगा.

—सम्पादक



## (७) चत्रभुजदास

अब श्रीगुसांईजी के सेवक चत्रभुजदास; कुंभन-  
दासजी के बेटा, जिन के पद अष्टछाप में गाइयत  
है, तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश—

ये चत्रभुजदासजी लाला में श्रीठाकुरजी के 'विशाल' सखा को  
आधिदैविक मूल प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये  
स्वरूप 'विशाल' सखा हैं, और रात्रि की लीला में  
'विमला' सखी हैं।

### वार्ता प्रसंग—१

सो वे चत्रभुजदास जमुनावता में कुंभनदासजी के यहां  
जन्मे। सो कुंभनदासजी के प्रथम पांच बेटा हुते, तिनको मन  
लौकिक में बहोत आसक्त देखि के कुंभनदासजी के मनमें  
बहुत ही दुःख भयो। और मन में विचारे जो— मेरे कोउ  
एसो पुत्र न भयो जातें हों अपने मन को भेद कहों।

पाछे कुंभनदासजीने पांचो बेटान कों न्यारे कर  
दिये। और कुंभनदासजी की बहू श्रीआचार्यजी महाप्रभु की  
सेवक हती, और एक बेटी ही सोउ परम भगवदीय हती,  
सो वह बेटी हू श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकी सेवक हती। ब्याह  
होत ही याको पुरुष तो मरि गयो। तातें वह बेटी हू



( भतीजी ? ) कुंभनदासजी के घर रहेती । सो तीनों जने जमुनावते गाम में रहतें ।

ता पाछे एक बेटा कुंभनदासजी के और भयो । ताको नाम कुंभनदासजीने कृष्णदास धरयो । सो कृष्णदास बडे भये । तब श्रीनाथजी की गायन की सेवा करतें । और कीर्तन कोई न आवते । सो कृष्णदास नें श्रीनाथजी की गाय बचाई, और आपु नहार के सन्मुख होयके अपनो सरीर दियो सो उनकी वार्ता में प्रसिद्ध है ।

परि कुंभनदासजी के मनमें यह मनोरथ जो— कोई एसो पुत्र न भयो । जासों मैं अपने मन को भाव सब कहों, और सब भगवद्वाता करों । तासों कुंभनदासजी उदास रहते ।

ता पाछे एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी ने परासोली में कुंभनदास सों पूछी जो— कुंभना ! तु उदास क्यों है ? तब कुंभनदासने कही महाराज ! सत्संग नाहि हैं । फेरि श्रीगोवर्द्धननाथजीने मुसिक्याय के कह्यो जो— अरे कुंभना ! सत्संग को फल जो “ मैं,” सो तो तेरे पाछे पाछे डोलत हों, तोहू तोको सत्संग की चाहना है ?

तब कुंभनदासने कही जो—महाराज ! भगवदीयन के संग बिना जीव आपके स्वरूपानंद को कैसे जाने ? आप के स्वरूप में रह्यो जो— आनंद, सोतो भगवदीय हू जानत हैं, और जानत नाहीं । तातें भगवदीयन के संग बिना आपके स्वरूप में मन उरझत नाहीं है ।



तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने हँसिके आज्ञा करि जो- कुंभना ! तू धन्य है, जा, मैंनें तोकों सत्संग के लिये भगवदीय पुत्र दियो ।

तो हू कुंभनदासजी यह विचारि के उदास रहते जो कब पुत्र होयगो, फेरि कबतो वो बडो होयगो ? और न जाने वो कौनसे भाव में मगन रहेगो ? ऐसे करत करत पुत्र होयवे को फेर समय भयो । सो कुंभनदासजी की स्त्री को फेर गर्भ-स्थिति भई ।

सो एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने आय के श्रीमुखतें कुंभनदासजी सों कही जो- कुंभनदास ! तू मेरे संग चल । तब कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के संग चले, सो एक ब्रज-भक्त के घरमें श्रीनाथजी पधारें । ये ब्रजभक्त दहीं माखन की मथनियां दोऊ ऊंचे छींका पें धरिकें आपु कछु कार्य कों गई हती । सो ताही समें श्रीगोवर्द्धननाथजी तहां आय के आप एक हाथ तें दहीं की मथनियां लई । तबही श्रीगोवर्द्धननाथजी को पीतांबर खुल गयो, सो भूमि में गिरन लाग्यो । सो श्रीगोवर्द्धननाथजीने आप तत्काल दोय भुजा और नीचे प्रकट करिके पीतांबर थांभ्यो । और दोय भुजान में माखन दहीं की मथनियां लिये रहे, ता समें चत्रभुज स्वरूप को कुंभनदासजी कों दरशन भयो ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी तो सखान सहित दूध दहीं माखन सब आरोगे, बच्च्यो सो सब बनचरन कों खवाय



दियो । ताही समें वह गोपिका अपने घर में दौरि आई, सो उहां देखे तो—दहीं माखन श्रीठाकुरजी आरोगत हैं । तब वह गोपिका श्रीठाकुरजी कों पकरिवे कों दोरी । तब सखा तो सब भाजि गये । तब कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाड़े रहि गये ।

सो जब वह गोपिका निकट आई तब श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने श्रीमुख में दूध भरिके वा गोपिका के मुख उपर डारे, सो वाके सगरे मुख में नेत्रन में दूध भरि गयो । सो वह ठाडी होय रही ।

तब कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी वहां तें भाजे । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आप तो अपने मंदिर में पधारे, और कुंभनदासजी जमनावते गाममें अपने घर गये । ता समें मारग में जातें यह पद कुंभनदासजीने गायो । राग सारंग—

आनि पाये हो हरि नीकें ।

चोरि २ दधि माखन खायो गिरधर दिन प्रतिहो के ॥

रोक्यो भवन द्वार ब्रजमुन्दरि नुपुर मोर अचानकही के ।

अब कैसें जईयत घर अपनेमें भाजन फोरि दुध दधि पीके ॥

कुंभनदास प्रभु भळे परे फंद जानन देहों भावतें जीयके ।

भरि गंडूप छोट दे नैननमें गिरिधर धाय चले दे कीके ॥

यह कीर्तन कुंभनदासजी करत चले । चत्रभुज स्वरूप को जो दर्शन भयो हतो, सो कुंभनदासजी ताके भाव में रस सों मरे अपने आप घर आये । ताही समें कुंभनदासजी की स्त्रीके



बेटा भयो । सो सुनिके कुंभनदासजीने कह्यो जो— या लरिका को नाम चतुरभुजदास हैं ।

पाछे उत्थापन के समें श्रीगुसांईजी के पास आयके कुंभनदासजीने दंडवत कियो । तब श्रीगुसांईजी मुसिक्याय के कुंभनदासजी सों पूछे जो— चत्रभुजदास आछे हैं ? तब कुंभनदासजीने विनती कीनी जो— महाराज ! जाके उपर आप एसी कृपा करत हो सो तो सदा ही आछे हैं । ताको सब ठोर कल्याण ही हैं ।

तब श्रीगुसांईजी कुंभनदासजी सों कहे जो— या पुत्र सों तुमकों बहोत ही सुख होयगो । सो तुमारे मनमें जैसो मनोरथ हतो ताही भांति सों तुमारे मनोरथ सब सिद्ध भये हैं ।

पाछे जब पिंडरू होय चुक्यो, तब कुंभनदासजी आछे सुद्धि होय पुत्रको स्नान करायो । और वाकों अपनी गोदिमें ले, श्रीगुसांईजी कों आय के कुंभनदासजीने दंडवत करी । पाछे चत्रभुजदास को मस्तक श्रीगुसांईजी के चरणकमल सों परस कराय के कुंभनदासजीने विनती करी जो— महाराज ! कृपा करि के चत्रभुजदास को नाम सुनाईये । तब श्रीगुसांईजी आप मुसिक्याय के कहे जो— राजभोग सरे पाछें नाम निवेदन दोइ संग करवावेंगे ।

यह सुनि के चत्रभुजदास ताही समे किलक के हसे । तब कुंभनदासजी हुं मन में बहोत प्रसन्न भये । पाछे राजभोग सरे को समय भयो तब माला बोली । तब श्रीगुसांईजी



भीतरियान कों आज्ञा दिनी जो— तुम बाहिर जावो । तब सब भीतरिया, पोरिया सब बाहिर जाय बैठें । ता समें मंदिरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी और कुंभनदासजी ( रहे ) । ता समय श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास को नाम सुनाय, पाछे तुलसी ले के कुंभनदास तें कहे, जो— चत्रभुजदास कों ( आगे ) लावो । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्मुख चत्रभुजदास कों ब्रह्मसंबंध करवायो । पाछे तुलसी श्रीगोवर्द्धननाथजीके चरणकमल पर समर्पे । जो ताही समय सगरी लीला की स्फुरति चत्रभुजदास कों भई, और श्रीगुसांईजी को स्वरूप हृदयारूढ भयो । तब ताही समें चत्रभुजदासने यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग सारंग—

सेवक की सुखरास सदा श्रीवल्लभराज कुमार ।

× × × ×

यह कीर्तन चत्रभुजदास ने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये । और कुंभनदासजी हू प्रसन्न भये । अपने मनमें आनंद पाये, और कहे जो मोकों जैसो मनोरथ हतो तेसेही भगवदीय को संग मिल्यो ।

ता पाछे मंदिरके किंवाड़ खुले । सब लोगन कों दरसन भये । पाछे श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की आरती उतारि के, श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर करवाये । और माला बीडा लेके श्रीगुसांईजी परवत तें नीचे उतरि, अपनी बैठक में पधारे । तहां सब वैष्णव हू आये । तहां कुंभनदासजी हू चत्र-



भुजदास कों लेके आये । तब सबन के आगे चत्रभुजदास मुग्ध बालक होय चुप करि रहे । ता पाछें श्रीगुसांईजी सब वैष्णवन कों विदा किये ।

पाछे आप श्रीगुसांईजी भोजन करिवे को पधारे । ता पाछे श्रीगुसांईजी आप कृपा करि के अपने श्रीहस्त सों कुंभनदास, चत्रभुजदास कों अपनी जूठन की पातर धरी, सो उन दोउ जनै नें महाप्रसाद लियो ।

पाछे श्रीगुसांईजी गादी उपर विराजे, सो आप बीडा आरोगत हते, तब कुंभनदासजी, चत्रभुजदासजी आचमन करि के श्रीगुसांईजी के पास आये । तब श्रीगुसांईजी कृपा करिके दोउन कों न्यारो २ उगार दिये, सो कुंभनदास चत्रभुजदासने लियो । ता पाछे श्रीगुसांईजी विसराम करन कों पधारे । तब कुंभनदासजी चत्रभुजदास कों गोद में ले के श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि के जमनावते गाम में अपने घर में आये ।

सो जब एकांत में कुंभनदासजी बैठे होई तब चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी की वार्ता लीला को भाव और श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी की वारता करें । तब दोउ जने परस्पर आनंद को पावे । और जब कोउ तीसरो जनो आवे तब चत्रभुजदास बालक की नाई मुग्ध होय रहें । और जा दिनतें चत्रभुजदास नाम समर्पन पाये हते, ता दिन तें श्रीगोवर्द्धननाथजी के



दरशन किये बिना चत्रभुजदास दूध हुं न पीवते । ऐसे करत करत वरस पांच के भये ।

सो चत्रभुजदास नेम सों दरशन करते । सो वे चत्रभुजदास ऐसे भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-२

और एक दिन श्रीनाथजीने कह्यो जो- चतुरभुजदास ! आज तू मेरे संग गाय चरावन कों चलियो । तब चत्रभुजदास राजभोग आरती के दरसन करि के आप गोविंदकुंड ऊपर जाय के बैठे रहे । तब मंदिर में कुंभनदासजीने सबनसों पृच्छी जो- चत्रभुजदास आज कहां गयो । तब सबन नें कह्यो जो- दरसन में तो देखे हैं, और पाछे तो हमने देखे नाहीं ।

तब कुंभनदासजी अपने मनमें विचार करन लागे जो- चत्रभुजदास कहां गयो ? पाछे श्रीगुसांईजी (जब) श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर कराय के अपनी बैठक में विराजें तब कुंभनदासजीने आय के दंडवत कीनी । जब श्रीगुसांईजीने कुंभनदास सों कह्यो जो-कुंभनदास ! तुम उदास क्यों हो ? तब कुंभनदासजीने कह्यो जो- महाराज ! चत्रभुजदास आज दरसन में तो हतो सो अब नाहीं देखियत है, सो कहां गयो ?

तब श्रीगुसांईजीने कुंभनदास सों कह्यो-जो-तुम आज पाछे चत्रभुजदास की चिंता मति करो । श्रीगोवर्द्धननाथजी वाकों आज्ञा किये हैं जो-तू मेरे संग गाय चरावन को चलि हों । तातें चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करिके तत्काल गोविंदकुंड के ऊपर जाय के बैठयो है ।



सो अब श्रीगोवर्द्धननाथजी गायन कों सखान संग लेके बन में पधारत हैं, श्रीबलदेवजी सखान सहित । सो अब कोई घड़ी एक में श्यामढांक को पधारेंगे । जो तुमकों जानो होय तो सूधे श्यामढांक कों जाव । तहां श्रीगोवर्द्धननाथजी, चत्रभुजदास समाज सहित मिलेंगे ।

यह सुनि के कुंभनदासजी तहां ते चले, सो सूधे श्यामढांक कों आये । तहां देखे तो—श्रीठाकुरजी श्रीबलदेवजी सहित विराजत हैं । सो सखा तो सब बैठें हैं, और चहुं दिस गाय सब चरत हैं ।

तब कुंभनदासजी ने जाय के दंडवत कीनी । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ने कुंभनदासजी तें हसि के कह्यो जो—कुंभनदास ! आवो बैठो । तब कुंभनदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत कीनी । फेर विनती कीनी जो— महाराज ! आज चत्रभुजदास पर बड़ी कृपा करी । तातें याके परम भाग्य हैं । यह सुनि के श्रीगोवर्द्धननाथजी चुप होय रहै । सो या भांति श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास के उपर कृपा करन लागे ।

वार्ता प्रसंग—३

और एस समे श्रीगोवर्द्धननाथजी ब्रजवासीन के घर दूध दहीं माखन की चोरी करन कों पधारे । तब चत्रभुजदास कों यह आज्ञा करें जो— कुंभनाके ! तू हू चलियो । सो जाय के एक ब्रजवासी के घर में पैठे । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी दूध दहीं माखन सब खाये ।



ता पाछे वा ब्रजवासी की बेटीने चत्रभुजदास को देखे । श्रीठाकुरजी तो वासों दीसे नहीं । तब वह अपने बाप को पुकारी, जो—या कुंभना के बेटाने हमारो दूध, दही, माखन सब खायो है । तब यह बात सुनिके दस पांच ब्रजवासी दोरि-आये । तब श्रीठाकुरजी तो सखान सहित भाजि गये, वेतो चोरी की रीत जानत हते । और चत्रभुजदास तो प्रथमही इनके साथ आये हते । सो ये तो कछु जानत नांही । तातें उहां ठाढ़े होय रहें । सो सब ब्रजवासी आय के चत्रभुजदास को पकरिके भलिभांति सों मार्यो । पाछे वे ब्रजवासी चत्रभुजदासतें कहे जो—आज पाछे तू कबहू चोरी करन को पड़ेगो तो हम तेरे बाप कुंभना को पकरि लावेंगे ।

एसे कहि के ब्रजवासीने चत्रभुजदासको छोड़ि दियो । तब चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास आये । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी सखान सहित बहोत ही हँसे । तब चत्रभुजदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो—महाराज ! दूध, दही, माखन तो सखान सहित आप आरोगे, और मार मोको खवाई ?

तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो—तैंने हू दूध, दही, माखन क्यों न खायो ? और जहां मैं भाज्यो और सब सखा भाजे, तहां तूहू क्यों न भाज्यो ? तू क्यों मार खाय रह्यो । तब चत्रभुजदास सुनिकर चुप होय रहे । सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के तथा श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये ।



### वार्ता प्रसंग-४

और एक समे कुंभनदासजी और चत्रभुजदास 'जमु-नावता' गाममें अपने घरमें बैठे हुते, सो अर्द्धरात्रि के समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में दीवा बरत देख्यो। तब कुंभन-दासजीने चत्रभुजदास सों यह सुनाय के कही जो—'वह देखो बरत झरोखन दीपक हरि पोढ़ें ऊंची चित्रसारी'।

सो कुंभनदासजी इतनो कहि के चुप होय रहे। तब यह सुनिके चत्रभुजदासने कही जो—'सुंदर बदन निहारन कारन राखे हैं बहुत जतन करि प्यारी'।

यह सुनिके कुंभनदासजी बहोत प्रसन्न भये। और पूछ्यो जो—'तोकों या लीला को अनुभव भयो?' तब चत्रभुज-दासने कुंभनदासजीतें कही जो—'श्रीगुसांईजी की कृपातें और श्रीआचार्यजी महाप्रतुन की कान ते यह लीला को अनुभव श्रीगोवर्द्धननाथजी आप जनावत हैं'।

तब कुंभनदासजी यह सुनिके आपु बहोत प्रसन्न भये। और यह कीर्तन संपूर्ण करिके भाव सहित चत्रभुजदास कों सुनायो। और चत्रभुजदास सों कुंभनदासजीने कही जो—'श्रीगोवर्द्धननाथजी आप तोसों छिपाये नाहीं तो मैंहू तोसो न छिपाऊंगो। ता दिन ते कुंभनदासजी रहस्य-लीला वार्ता सब चत्रभुजदास सों करते। कहु गोप्य न राखते'।

सो वे कुंभनदासजी, चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के ऐसे अंतरंगी सखा हते, कृपापात्र भगवदीय हते।



## वार्ता प्रसंग-६

और एक दिवस श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको जनम दिवस आयो । तब श्रीगुसांईजी श्रीजीद्वार हते । सो नाना प्रकार की सामग्री सिंगार सब जन्माष्टमी की रीति करि ।

ता समये श्रीगोवर्द्धननाथजी के सिंगार के दरशन करिके चत्रभुजदासने यह कीर्तन सुनायो सो पद—

राग विलावल । ‘सुभग सिंगार निरखि मोहनको ले  
दर्पन कर पिय हिं दिखावें’ ।

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, सो मुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये । ता पाछे श्रीगुसांईजी राजभोग धरिके गोविंदकुंडपे संध्यावंदन करिवे कों पधारे । तब चत्रभुजदास और एक वैष्णव श्रीगुसांईजी के साथ हते । तब श्रीगुसांईजी सों वा वैष्णव ने पूछयो जो—महाराज ! आप तो नित्य ही भांति २ सों सिंगार करत हो, दरसन करावत हो, दर्पन दिखावत हो । और चत्रभुजदासने तो आज कीर्तन में कह्यो जो—‘आज की छवि कछु कहत न आवे’ जो—महाराज ! ताको कारन कहा ?

तब श्रीगुसांईजीने आप श्रीमुखतें वा वैष्णव सों कह्यो, जो—तुम यह बात चत्रभुजदास ही तें पूछो । तब वा वैष्णवने चत्रभुजदास सों पूछयो, जो—तुम आज यह कीर्तन किये, ताको कारण कहा ?



तब चत्रभुजदासने वा वैष्णव सों कह्यो जो— सुनो । ता पाछें चत्रभुजदासने तहां गोविंदकुंड ऊपर दूसरो पद गायो । सो पद—

राग बिलावल । ‘ माईरी आज और काल और नित्यप्रति छिनु और और देखिये रसिक गिरिराजधरण ’ ।

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, तब श्रीगुसांईजी आप चत्रभुजदास की और देखिके मुसिकाये ता पाछें वह वैष्णव कों और ही संदेह भयो । जो— चत्रभुजदासजीने दोय कीर्तन किये ताको भेद मैंने न जान्यो ।

पाछें श्रीगुसांईजी आप संध्यावंदन करि चुके तब राजभोग को समय भयो हतो सो श्रीगुसांईजी तो मंदिर में पधारे । ता पाछें श्रीगोवर्द्धननाथजीको राजभोग सरायके राजभोग आरति करिके श्रीगोवर्द्धन परवत तें नीचे उतरे । पाछें बेठक में आय के श्रीगुसांईजी आप गादी उपर बिराजे । पाछें सब वैष्णवन कों विदा करिके श्रीगुसांईजी आपु भोजन कों पधारे । सो भोजन करिके आचमन लेके श्रीगुसांईजी आप गादी ऊपर बिराजे, बीडा आरोगत हते । तब सब वैष्णव तो अपने २ डेरा गये हते, और श्रीगुसांईजीसों वा वैष्णवने विनती करी जो— महाराज ! आज चत्रभुजदासने दोय कीर्तन सिंगार के समे किये तिनको भेद मैं न समझ्यो, जो— आप कृपा करिके मेरो संदेह दूरि करो ।

तब श्रीगुसांईजी आप वा वैष्णव सों कहे जो— आज श्रीआचा-



र्यजी महाप्रभुन को जनम उत्सव हतो । तातें आज श्रीस्वामि-  
नीजी अपने मनोरथ की सामग्री, सिंगार, सब अपने हाथ  
सों धराये हैं । तातें श्रीगोवर्द्धननाथजी आप बहोत ही प्रसन्न  
भये हैं । यातें चत्रभुजदासने कबो जो—“आज और काल  
और, जो आज की छवि कलु कहत न आवे ।”

और गोविंदकुंड पें दूसरो कीर्तन कियो, ताको भाव ये है,  
जो— नित्य जितने ब्रजभक्त हैं सो अपने २ मनोरथ की  
सामग्री धरावत हैं । अपने २ वस्त्र आभूषण धरावत हैं । तातें  
आज और, सो क्षण २ में अनेक ब्रजभक्तन को सनमान करत  
हैं । सो जैसो ब्रजभक्तन को भाव हैं, जो उनके मनोरथ  
हैं, तैसे श्रीगोवर्द्धननाथजी आपहु विनके मनोरथ सिद्ध करत  
हैं । ताते क्षण क्षण में श्रीगोवर्द्धननाथजी की सोभा होत हैं ।

जा या भांति सों श्रीगुसांईजी आप वा वैष्णव सों कहे ।  
तब वा वैष्णव को संदेह दूरि भयो । तब वा वैष्णवने अपने  
मनमें कही, जो— या चत्रभुजदासको बडो भाग्य है । जो—  
श्रीगोवर्द्धननाथजी सब लीला सहित दरशन देत हैं । सो वे  
चत्रभुजदास श्रीगुसांईजीके ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

### वार्ता प्रसंग-६

और एक समय ‘आन्योर’ में रासधारि आये हते । सो  
श्रीगुसांईजी तो श्रीगोकुल हते, और श्रीगिरधरजी, श्रीगोविंद-  
रायजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीगोकुलनाथजी और श्रीरघुनाथजी  
ए पांचो बालक श्रीजीद्वार हते । और श्रीजदुनाथजी, श्री-



गोकुलमें हे । और श्रीघनश्यामजी को प्राकट्य भयो न हतो ।

सो ए रासधारी श्रीगोकुलनाथजी के पास आए । और बहोत विनती कीनी जो— आप पधारो तो हम रास करें । तब श्रीगोकुलनाथजी नें रासधारीन तें कह्यो जो— मैं श्रीगिरिधरजी तें पूंछि के कहुंगो ।

ता पाछे जब श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती होय चुकी और अनोसर भये, पाछे श्रीगोकुलनाथजी श्रीगिरिधरजी सों पूंछ्यो जो— तुम कहो तो मैं रास कराउं, और हू बालकन को मन हैं, और तुम हू रास में आओ, तो आछो है ।

तब श्रीगिरिधरजी नें कह्यो जो—इहां श्रीगुसांईजी तो है नांही, होतें तो उनतें पूछ के रास करावते । तातें मति (कहुं) मेरे ऊपर श्रीगुसांईजी आप खीजें तो । तातें तुमारो मन होय तो परासोली चंद्रसरोवर के ऊपर रास करावो । और मेरो आवनो तो न होयगो ।

तब श्रीगोकुलनाथजी आदि दे के सब बालक रासधारिन कों ले के संग परासोली चंद्रसरोवर पें आये । सो श्रीगोकुलनाथजी चत्रभुजदास हू को अपने संग ले गये हते । और श्रीगिरिधरजी तो आप श्रीगुसांईजी की बैठक में सेन कर रहे हते ।

सो जब प्रहर एक रात्रि गई तब चंद्र सरोवर पें रास को मंडान भयो । चैत्र सुदी पूर्णमासि को दिन हुतो । सो जब तीन प्रहर रात्रि गई और एक प्रहर रात्रि रही, तब श्रीगोकुल-



नाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो— चत्रभुजदास ! कछु गावो । तब चत्रभुजदासने कह्यो, जो— मैं तो श्रीगोवर्द्धननाथजीकों रास करत देखों तब गाऊं, जो रासके करनवारे तो श्रीगिरधरजी के निकट हैं ।

तब श्रीगोकुलनाथजीने चत्रभुजदास सों कही जो— अब कहा करिये ? रात्रि तो प्रहर एक बाकी रही है, और अब जो बुलायवे जइये तो जात आवत ही में भोर होय जाय, फेर उनके मनमें आवे तो वे आवें, नहीं तो न भी आवें । जो अब कहा करिये ?

तब चत्रभुजदासने कह्यो जो—चिंता मति करो । कोई एक वड़ी में श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीगिरधरजी इहां पधारत हैं ।

ताही समे श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरधरजी की बैठक में श्रीगिरधरजी की पास पधारे, और उनसों कह्यो जो—परासोली चंदसरोवर ऊपर चलें, जो उहां रास करिये । तब श्रीगिरधरजी तहां तें अकेले ही चले, सो दोऊ जने चंदसरोवर ऊपर आये । तब रासधारीनकों श्रीगिरधरजी के दर्शन भये, और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन न भये, और सब बालकनकों दर्शन भये । पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने ब्रजभक्तनके संग रासलीला करी, सो रात्रि हू बढ़ि गई, और चंद्रमा हू और भांति सों सोभा देन लाग्यो ।

ता समे चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो । सो पद—  
राग केदारो । चरचरी ( ताल )—



‘अद्भुत नट भेख धरे जमुनातट स्यामसुंदर,  
गुननिधान, गिरिवरधर रास रंग राचे ।’

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, तब सुनिके श्री-  
गोवर्द्धननाथजी आज्ञा करे जो – चत्रभुजदास ! यह बिरियां  
कौन है ? तब चत्रभुजदासने यह दूसरो पद गायो । सो पद—  
राग भैरव ।

‘प्यारी ग्रीवा पें भुज मेलि निरतत पिय सुजान० ।’

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, सो सुनिके श्रीगोवर्द्ध-  
ननाथजी बहुत प्रसन्न भये, और चत्रभुजदास के सामने मुसि-  
क्याए । तब चत्रभुजदासने जान्यो जो—धन्य मेरो भाग्य है ।

सो एसे २ बहोत कीर्तन चत्रभुजदासने रास के गाये । ता  
पाछे रात्रि घड़ी दोय रही तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मंदिर  
में पधारे ।

पाछे श्रीगिरधरजी चत्रभुजदास कों संग लेके गोपालपुर  
आये । ता पाछे रासधारीन कों श्रीगोकुलनाथजीने कछु द्रव्य  
देके विदा किये, पाछे सब बालकन सहित आप गोपालपुर आये ।  
ता पाछे कछुक दिन रहिके श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुल पधारे ।

पाछे जब श्रीगुसांईजी श्रीगोकुल तें श्रीजीद्वार पधारे, तब  
श्रीगिरधरजीने रास के समाचार सब कहे, श्रीगुसांईजी सों ।  
तब श्रीगुसांईजी आप आज्ञा किये जो – आपुन कों श्रीगोव-  
र्द्धननाथजी सों हठ करना योग्य नाहीं । श्रीगोवर्द्धननाथजी  
कों श्रम होत है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी तो अपनी इच्छा तें  
नित्य ही रास करत हैं ।



सो या भांति सों श्रीगुसांईजी श्रीगिरधरजी सों कह्यो ।  
तब सुनिके श्रीगिरधरजी चुप करि रहे । सो वे चत्रभुजदास  
श्रीगोवर्द्धननाथजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-७

और एक दिन श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास सों कहे, जो-  
तुम 'अपछरा' कुंड ऊपर जायके रामदासजी को इहां पठाय  
दीजो, और तुम रामदास को पठायके कछु फूल मिले तो  
लेते आइयो । तब चत्रभुजदास आप अपछरा कुंड ऊपर आये,  
तहां इनकों रामदासजी मिले । तिनसों चत्रभुजदासने कही  
जो - तुम कों श्रीगुसांईजी बुलावत हैं, सो तुम बेगे जाओ ।

यह सुनिके रामदासजी श्रीगुसांईजी के पास चले ।  
सो चत्रभुजदास अकेले ही फूल वीनत २ श्रीगोवर्द्धन की कंदरा  
के पास आय निकसे । तहां देखे तो-श्रीगोवर्द्धननाथजी और  
श्रीस्वामिनीजी कंदरा में ते उनींदे पधारे हैं सो चत्रभुजदास  
कों ता समय ऐसे दर्शन भये ।

तब यह पद चत्रभुजदासने गायो, सो पद—

राग विभास । 'श्रीगोवर्द्धन-गिरि सघन कंदरा रेन  
निवास कियो पिय प्यारी० ।'

यह कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी आप सुनिके आज्ञा किये  
जो - चत्रभुजदास ! कछु और गावो । तब चत्रभुजदासने  
यह दूसरो कीर्तन ताही समे गायो । सो पद—

राग विलावल । 'रजनी राज कियो निकुंज नगर की रानी ।'



यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो । पाछे श्रीगोवर्द्धन-  
नाथजी कों दंडवत करिके ताही समें चत्रभुजदास आनंद में  
फूल लेके, श्रीगुसांईजी कों आयके दंडवत करी । तब श्री-  
गुसांईजी कहे जो — चत्रभुजदास ! तू फूल लेन कों गयो  
सो अब ताई कहां रह्यो ? तब चत्रभुजदासने सब समाचार  
श्रीगुसांईजी सों कहे । तब श्रीगुसांईजी सुनिके चत्रभुजदास के  
ऊपर बहोत प्रसन्न भये ।

ता दिन तें श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख तें आज्ञा किये  
जो — चत्रभुजदास ! जब श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार होय,  
ता समे तू नित्य दरसन कों आयो कर । पाछे जब श्रीगोवर्द्धन-  
नाथजी को शृंगार होतो तब चत्रभुजदास ठाड़े दरसन करते ।

एसी कृपा श्रीगोवर्द्धननाथजी तथा श्रीगुसांईजी  
चत्रभुजदास के ऊपर करते । वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजी  
के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

#### वार्ता प्रसंग-८

फेर ता पाछे चत्रभुजदास ब्याह न करते । तब श्री-  
गोवर्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो — चत्रभुजदास !  
तू ब्याह कर । तब चत्रभुजदासने कही जो — महाराज !  
मैं यह सुख छांडिके आपदा में क्यों पड़ूं ? तब श्रीगोवर्द्ध-  
ननाथजीने फेर आज्ञा करी जो — बेगि ब्याह कर ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञा मानिके चत्रभुजदास-  
ने ब्याह करयो ।



सो कछुक दिन पाछे चत्रभुजदास की बहू मरि गई ।  
तब चत्रभुजदास को अटकाव (मृतक) भयो, तब वे  
अत्यंत विरह करिके आतुर भये । तब चत्रभुजदास  
के अंतःकरण की श्रीगोवर्द्धननाथजीने जानी । सो वन में  
चत्रभुजदास बैठे २ विरह करते, श्रीगोवर्द्धननाथजी सों  
प्रार्थना करते । सो कीर्तन करि करिके दिन वितीत किये ।  
ता समे चत्रभुजदासने कीर्तन गायो । सो पद—

राग भैरव । ‘भोर भावतो श्रीगिरिधर देखों० ।’

राग विलावल । ‘श्याममुंदर प्राणप्यारे छिन जिन  
होउ न्यारे० ।’

राग धनाश्री । ‘गोपाल को मुखारविंद जिय में विचारो ।’

एसे २ प्रार्थना के चत्रभुजदासने बहोत कीर्तन करि  
के सूतक के दिन वितीत किये । ता पाछे थुद्ध होयके  
श्रीनाथजी के शृंगार के दरसन चत्रभुजदासने किये । तब  
साष्टांग दंडवत करिके हाथ जोरिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के  
सामे चत्रभुजदास ठाड़े भये । तब श्रीनाथजी उनकी सामने  
देखिके मुसिक्याये । ता पाछे ग्वाल के, राजभोग के दर्शन  
करिके चत्रभुजदास मन में विचारे जो — घर चलिये । तब  
फेर श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों कहे जो — चत्रभुज-  
दास ! तू दूसरो विवाह कर । तब चत्रभुजदासने कही जो —  
महाराज ! जात में तो लरिकिनी कोई नांही है । तब श्रीगोव-



र्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों फेरि कह्यो जो - तू धरेजो कर।  
तब यह बात सुनिके चत्रभुजदास कछु बोले नांही।

ता पाछे नित्य दिन ५-७ लों आय श्रीगोवर्द्धननाथजी  
कहे, परंतु चत्रभुजदास के मन में यह बात न आई। तब यह  
बात श्रीनाथजीने सदूपांडे सों जताई, जो - तुम दूंदिके  
चत्रभुजदास को धरेजो कराय देउ।

तब सदूपांडे ने चत्रभुजदास तें, कही जो -  
श्रीगोवर्द्धननाथजीने यह आज्ञा करी है, तातें अवश्य  
श्रीप्रभुजी की आज्ञा करी चाहिये। तब चत्रभुजदासने  
कही जो- वे तो मेरे पाछे परे हैं, अब कहा करें ?

ता पाछे एक मुकदम की बेटी रांड हती, सो वासों  
सदूपांडेने कहिके चत्रभुजदास को धरेजो करायो। ता पाछे  
श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों हसन लागे, जो- यह  
देखो कुंभनदासजी सारिखे को बेटा होयके स्त्री मरि गई  
तोऊ दोई च्यारि महिनाहू न रह्यो गयो, सो तुरत ही धरेजो  
कियो, और तोहू संतोष नांही। सो या भांति सों चत्रभुजदास  
की हांसी श्रीगोवर्द्धननाथजी सखा सहित नित्य करते।

सो एक दिन चत्रभुजदासने हू यह सुनि श्रीगोवर्द्धननाथजी  
सों कह्यो जो- मोकों तो तुम नित्य एसे कहत हो, परंतु तुमहू तो  
घरघर ब्रजबधून के संग लागे रहत हो, (और) संग डोलत हो।

यह सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी लज्या पाये। सो चत्र-  
भुजदास तें तो कछु बोले नांही, परि श्रीगोवर्द्धननाथजीने



श्रीगुसांईजी सों जायके कह्यो, जो-मोको चत्रभुजदास या भांति सों कहत है । तातें तुम वाको बरज दीजो, जो-अब ऐसे कबहु न कहे ।

पाछे जब चत्रभुजदास मंदिर में दरसन करन को आये, तब श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास को बुलायके कहे जो-तू श्रीगोवर्द्धननाथजी सों ऐसे क्यों कह्यो ? तब चत्रभुजदासने श्रीगोवर्द्धननाथजीकी बात सब श्रीगुसांईजी के आगे कही जो-महाराज ! ये मेरी नित्य हांसी करत हैं, जो एक बार मैंने हू ऐसे कह्यो । तब श्रीगुसांईजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो-आज पाछे ऐसे तुम मति कहियो ।

ता दिनतें श्रीगोवर्द्धननाथजी कहते, परि चत्रभुजदास कछु न कहते । और श्रीनाथजी आप तो हांसी करते । ऐसी कृपा श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास की ऊपर करते ।

सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी सों ऐसे सानुभावता सों बात करते । तातें वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-९.

और एक समय श्रीगुसांईजी आप परदेस पधारे । सो फागुन वद ७ को श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मथुरा में श्रीगुसांईजी के घर पधारे हते । तब श्रीगिरधरजी आदि सब बालक बहु बेटीनने सगरो घर, गहेना, बस्त्रादि सब श्रीगोव-



र्द्धननाथजी की भेट करि दियो । तब एक बेटीजीने सोनेकी मुदरी छिपाय राखी हती ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिधरजी सों कहे जो— मेरी भेट फलानी बेटी के पास है, सो तुम ले आओ । तब श्रीगिरिधरजी ने आयके कह्यो जो— अपना घर श्रीगोवर्द्धननाथजी की भेट करचो है, तामें तें तुम कछु राख्यो है सो देहु । तब उन ने मुदरी राखी हती सो दीनी । ता पाछे सब बहू बेटी बहोत ही प्रसन्न भये । जो— हमारी सत्ता की वस्तु श्रीगोवर्द्धननाथजीने अत्यंत प्रीति सों मांगिके अंगीकार कीनी, सो अपना बड़ो भाग्य है ।

जा समे श्रीगोवर्द्धननाथजी मथुरा पधारे, ता समे चत्रभुजदास जमुनावता गाम में अपने घर हते । सो जान्यो नांही जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मथुरा पधारे हैं । सो चत्रभुजदास उत्थापन के समे श्रीनाथजी के मंदिर में आये । तब श्रीगिरिराज पर्वत की ऊपर श्रीनाथजी कों न देखें तब सबन सों पूछे जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी आज कहां पधारे हैं ? तब पोरियाने और सब सेवकनने कह्यो, जो— श्रीनाथजी तो मथुराजी पधारे हैं । यह सुनिके चत्रभुजदासके मन में बहोत विरह भयो । तब श्रीगिरिराज के ऊपर बैठिके विरह के कीर्तन करन लागे । सो पद—

राग गोरी—‘बात हिलग की कासों कहिये० ।’

एसे एसे कीर्तन चत्रभुजदासने बहोत किये ।



ता पाछे नृसिंह चतुर्दशी को एक दिवस बाकी रह्यो, तब तेरस के दिन संध्या आरती के समय चत्रभुजदास गिरिराज परवत के ऊपर आये, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी बिना मंदिर देख्यो न गयो । तब चत्रभुजदास के मन में अत्यंत विरह भयो । तब यह कीर्तन चत्रभुजदासने कियो । सो पद—

राग गोरी—‘ श्रीगोवर्द्धनवासी सांवरे लाल ! तुम बिन रह्यो न जाय हो ।

या भांति सों अत्यंत विरह के कीर्तन चत्रभुजदासने किये । सो प्रथम तो गायन के झुंड के दर्शन चत्रभुजदास कों भये । ता पाछे सखान के मध्य श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीबलदेवजी के दर्शन भये ।

तब चत्रभुजदासने निकट जायके दंडवत करिके श्रीनाथजी सों बिनती कीनी जो— महाराज ! आप कृपा करि के मोकों श्रीगोवर्द्धन पर्वत ऊपर दर्शन कब देउगे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों कहे, जो— मैं काल श्रीगोवर्द्धन परवत ऊपर पधारूंगो ।

एसे चत्रभुजदास कों धीरज देके श्रीनाथजी आप तो अंतर्ध्यान भये । सो चत्रभुजदासने सगरी रात्रि विरह के पद गाये ।

ता पाछे प्रहर एक रात्रि गई । तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने श्रीगिरधरजी सों जताई जो— कालि प्रात मोकों गोवर्द्धन



पर्वत के ऊपर पधरावो । जो कालि श्रीगुसांईजी उहां पधारेंगे, तातें तुम अब ढील मति करो ।

पाछे श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगिरिधरजी सों कह्यो जो— श्रीगुसांईजी दोय चार दिन में पधारिवे वारे हैं, सो अपने घरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरशन श्रीगुसांईजी करें तो आछो । तातें श्रीनाथजी कों चारि दिन और राखो । तब श्रीगिरिधरजीने कह्यो, जो— तुम कहो सो तो सांच, परंतु श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा एसी है, तातें प्रातःकाल अवश्य श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रीगोवर्द्धन परवत ऊपर पधरावने ।

पाछे रात्रि कों सब तैयारी करि राखी । ता पाछे रात्रि घड़ी ४ रही, तब श्रीनाथजी कों जगायके मंगल भोग समर्पे । पाछे मंगला आरती करि, रथ पर श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पधरायके सब बालक, बहू, बेटी सब संग चले । और इहां चत्रभुजदास गिरिराज परवत के ऊपर ऊंचे चढिके वारं-वार देखत हैं, जो—अब श्रीगोवर्द्धननाथजी पधारेंगे । तब चत्रभुजदासने ता समय यह कीर्तन गायो—

राग सारंग—‘ तबतें जुग समान पल जात० । ’

यह कीर्तन चत्रभुजदासने कह्यो । इतने म श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन चत्रभुजदास कों भये । ता पाछे श्रीगिरिधरजी आदि सब बालकन कों दंडवत किये । पाछे श्रीगिरिधरजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रृंगार कियो और राजभोग की तैयारी होन लागी ।



ता पाछे श्रीगुसांईजी आप गुजरात के परदेशतें पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के उत्थापन भोग को समो हतो। तब श्रीगुसांईजी आयके अपनी बैठकमें पधारे, सो श्रीगिरिधरजी आदि सब बालक आयके मिले।

ताही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग की माला बोली। तब श्रीगुसांईजीने श्रीगिरिधरजी सों पूछी जो-श्री-गोवर्द्धननाथजी के इहां राजभोग की इतनी अवार काहेकों है? तब श्रीगिरिधरजीने श्रीगुसांईजी सों कब्यो, जो- आज श्री-गोवर्द्धननाथजी मध्याह्न समे मथुरातें इहां पधारे हैं। तातें आज इतनी ढील भई है।

तब श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजी सों कब्यो, जो- हम तो दादा तें कहे हुते, जो- दोय दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अपने घर और राखो, तातें श्रीगुसांईजी आपु अपने घरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करें तो आछो। परि दादाने न मानी, सो आज ही गोवर्द्धननाथजी कों पधराये हैं।

तब श्रीगुसांईजी श्रीगिरिधरजी के ऊपर बहुत प्रसन्न भये। और श्रीगिरिधरजी सों कहे जो- तुमने मेरे मन को अभिप्राय जान्यो। जो मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर न देखतो तो मोसों रह्यो न जातो।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तुरत ही स्नान करिके श्रीनाथजी के मंदिर में पधारे, सो नृसिंह जयंती को उत्सव कियो।



ता दिन तें प्रतिवर्ष नृसिंह जयंती के दिन सेन आरती के समय फेरि श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राजभोग आवे, फेरि माला बोले, जो यह रीत भई\* ।

सो चत्रभुजदास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करिके बड़ो आनंद भयो । ता पाछे अनोसर करिके श्रीगुसांईजी अपनी बैठक में पधारे । तब चत्रभुजदास ने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके सब समाचार कहे, जो—या भांति सों श्रीगोवर्द्धननाथजी मथुरा पधारे । ता पाछे आज यहां श्रीगोवर्द्धन परवत पे पधारे हैं ।

तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख तें कहे, जो—श्रीगोवर्द्धननाथजी परम दयाल हैं । अपने जनकी आरति सहि सकत नांही हैं । पाछे आप श्रीगुसांईजी पोंढि रहे ।

सो वे चत्रभुजदास श्रीनाथजी तथा श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग—१०

और एक समय श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजी सों पूछ्यो जो—आप आज्ञा करो तो एक बार चत्रभुजदास कों श्रीगोकुल ले जाऊं । तब श्रीगुसांईजी कहे, जो—चत्रभुजदास आवे तो ले जावो ।

---

आज भी उसके स्मरण रूप में इस दिन शयन में भी राजभोग आते हैं ।

—सम्पादक



ता पाछे श्रीगोकुलनाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो — पेंछ्यो गाम है ( तहां ) हम कों कछु काम है, सो तुम हमारे संग चलो ।

तब चत्रभुजदास श्रीगोकुलनाथजी के साथ चले । जब पेंछ्यो गाम में श्रीगोकुलनाथजी आये तब चत्रभुजदास सों ये कह्यो, जो — हम कों श्रीगोकुल जानो है, जो हमारे संग खवास कोऊ नांही है, तातें तुम हमारे संग श्रीगोकुल ताई चलो । तहां श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन करिके तुमको फेरि हम यहां ले आवेंगें ।

तब श्रीगोकुलनाथजी घोड़ा ऊपर असवार होयके पधारे । तब चत्रभुजदास हू संग चले । पाछे श्रीगुसाईंजी यह सुनिके श्रीगिरिधरजी कों श्रीनाथजी की पास राखिके आप हू घोड़ा ऊपर असवार होयके श्रीगोकुल पधारे । सो उत्थापन को समय हतो, सो श्रीगुसाईंजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी कों जगाये ।

ता पाछे संध्याति के समय श्रीगोकुलनाथजीने और चत्रभुजदासने सुन्यो, जो — श्रीगुसाईंजी आप इहां पधारे हैं । तब श्रीगोकुलनाथजी और चत्रभुजदास बहोत प्रसन्न भये । सो तत्काल श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में आये । तब श्रीगुसाईंजी कों दंडवत करिके चत्रभुजदास बाहिर ठाड़े रहे । तब श्रीगुसाईंजी श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे । और चत्रभुजदास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी



के दर्शन करवाये । सो दर्शन करिके ता समे चत्रभुजदासने गायो । सो पद— राग बिलावल ।

१ महा महोत्सव श्रीगोकुल गाम० ।

२ अंगुरी छांडि रंगत अरग थरग० ।

या भांति सों लीलासहित चत्रभुजदासने और हू कीर्तन गाये । सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये । तब श्रीगुसांईजी ने चत्रभुजदास तें कह्यो, जो — चत्रभुजदास ! तोकों चाहिये सो मांग । तब चत्रभुजदासने श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरिके बिनती कीनी जो — महाराज ! आप तो अंतरगतकी जानत हो, तातें आप मोकों कृपा करि के श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कराओ ।

तब श्रीगुसांईजी ने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो — काल्हि श्रीनवनीतप्रीयजी को शृंगार करिके, पालना झुलाय के हम हू चलेंगे, तब तुम हू संग चलियो । तब तो चत्रभुजदास मन में बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे रात्रि कों तो चत्रभुजदास सोय रहे । पाछे प्रातःकाल होत ही चत्रभुजदासने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत किये । ता समे मंगला के दर्शन भये, तहां चत्रभुजदासने यह पद गायो । सो पद—

१ राग बिलावल । हौं वारी नवनीतप्रिया० ।

२ राग देवगंधार । दिन दिन देन उहनो आवत०



एसे एसे कीर्तन चत्रभुजदासने तहां गाये ।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी को भोग सराय  
के शृंगार करिके पालने झूलाये । ता समय चत्रभुजदासने  
यह पालना को पद गायो—

राग रामकली ।

१ अपने री वाल गोपाले हो, रानी जू पालने झुलावे०

२ झूलो पालने गोविंद० ।

यह पालना चत्रभुजदासने गाये, सो सुनिके  
श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी घोड़ा मंगाय, ता ऊपर सवार  
होयके चत्रभुजदास कों संग लेके आपु गिरिराज पधारे ।

उहां श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग को समय हतो ।  
सो श्रीगुसांईजी आप तत्काल स्नान करिके श्रीगोवर्द्धननाथजी  
के राजभोग समर्प्यो । पाछे समो भयो, भोग सरायो । जब  
दर्शन के किवांड़ खुले, तब चत्रभुजदास सों कुंभनदासने  
कही, जो — कछु कीर्तन गाव । तब चत्रभुजदास ने यह  
कीर्तन गायो । सो पद—

राग सारंग । तब तें और कछुन मुहाय० ।

यह सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास के साम्हे  
देखि के मुसिक्याये । तब चत्रभुजदास ने दंडवत करिके  
कह्यो, जो— आज मेरो धन्य भाग्य है, जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी  
के दर्शन भये ।

पाछे इतने में टेरा आयो । तब चत्रभुजदास दंडवत



करिके बाहिर आये । तब कुंभनदास चत्रभुजदास तें पूछे, जो — चत्रभुजदास ! तू कहां गयो हतो । तब चत्रभुजदासने कुंभनदास सों कह्यो जो — श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुल लिवाय गये हते । सो अवहि श्रीगुसांईजी के संग आयो हूं ! तब चत्रभुजदास तें कुंभनदासजी ने कह्यो, जो — तू प्रमान में जाय परचो ।

तब यह बात कुंभनदास के मुख तें सुनिके श्रीगुसांईजी आप मंदिर में हँसे । ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर करिके श्रीगुसांईजी आप अपनी बैठक में पधारे । तब चत्रभुजदास ने श्रीगुसांईजी सों विनती करी, जो — महाराज ! कुंभनदासजी ने मोतें कह्यो जो — तू कहां गयो हतो ? तब मैं कह्यो, जो — श्रीगोकुलनाथजी के संग श्रीगोकुल गयो हतो । तब उन मोतें कह्यो, जो — तू प्रमान में जाय परचो । सा श्रीगोकुल कों प्रमान क्यों गिने ?

तब श्रीगुसांईजी आपु चत्रभुजदास सों कहे, जो — कुंभनदास को मन श्रीगोवर्द्धननाथजी में लाग्यो है । जो एक क्षण हू न्यारे नाहि होत हैं । तातें ए और लीला कों प्रमान जानत हैं, और हैं तो — दोऊ लीला एक ही ।

ता दिन तें चत्रभुजदास श्रीगिरिराजजी की तलेटी छांडिके कहूं न जाते । ता पाछे श्रीगुसांईजी आप तो भोजन करिके विसराम किये । तब चत्रभुजदास दंडवत करिके अपने घर आये ।



श्रीगोवर्द्धननाथजी हू चत्रभुजदास पे परम कृपा करते ।  
सो वे चत्रभुजदास ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हते ।

### वार्ता प्रसंग-११

और कितेक दिन पाछे श्रीगुसाईजी आप श्रीगिरिराजकी कंदरा में होयके, लीला में पधारे, तब श्रीगिरिधरजी को अपनो उपरना दिये । और यह कहे, जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञा में रहियो । जामें श्रीगोवर्द्धननाथजी प्रसन्न रहें सोई कीजो, और सब बालकनको समाधान राखियो । श्रीनाथजी के सेवक, जो वैष्णव हैं इन सबन को समाधान राखियो । और जो मेरे अंग को उपरना है, ताको सब लौकिक संस्कार कीजो । काहेतें जो-संस्कार न करोगे, तो फिरि कोई कर्मसंस्कार न करेगो । तातें तुम अवश्य करियो और काहूवातकी चिंता मति करियो । सब वस्तुके कर्ता श्री-गोवर्द्धननाथजी हैं ।

एसे श्रीगिरिधरजी को समाधान करिके श्रीगुसाईजी आप तो गिरिराजकी कंदरा में होयके लीला में पधारे ।

ता पाछे श्रीगिरिधरजी आदि दे सब बालकन सहित, सब सेवकन सहित महाविरह करिके महाव्याकुल भये । सो ता समय को विरह कछु कहिवे में न आवे ।

पाछे फेर धीरज धरिके श्रीगुसाईजीने जो उपरणा की जैसे आज्ञा कीनी हती, तैसेई श्रीगिरिधरजी ने वा उपरना को अग्निसंस्कार कियो । पाछे वेदोक्त विधि सों सब कर्म



दस गात्र-विधान कियो, और हूँ लौकिक विधि सब करि शुद्ध होये । ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में सावधान भये ।

सो जा समय श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत की कंदरा में होयके लीला में पधारे, ता समे चत्रभुजदास जमुनावता गाममें अपने घरमें हुते । सो सुनिके चत्रभुजदास दोरेही आये, सो आयके महाव्याकुल होयके कंदरा के आगे गिरि परे; और महाविलाप करन लाने । जो-महाराज ! पधारत समें मोकों आपके दरसन हूँ न भये । और मैं आप बिना या पृथ्वी ऊपर कोनकों देखूंगो, तातें अब या पृथ्वी ऊपर मोकों मति राखो । मोहूकों आपके चरणारविंद के पास निकट ही राखो, मोहूकों बुलाय लीजे ।

एसे महाविरह संयुक्त होयके चत्रभुजदासने तहां यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग केदारो ।

फिर व्रज वसहू श्रीविठ्ठलेस ।

कृपा करिके दस दिखावहु वह लीला वह वेस ॥

संग गाय अरु गोकुल गांव करहु प्रवेस ।

नंदराय जो विलसी संपति बहु ऊर नरेस ॥

भक्तिमार्ग प्रकट करि कलिजन देहु उपदेस ।

रचो रास विलास वह सब गिरि गोवरधन देस ॥

वदन इन्दु तें विमुख नैन चकोर तपत विसेस ।

सुधापान कराई भेटहु विरह को लखलेस ॥

श्रील्लभनंदन, दुःख-निकंदन, सुनहु चित्तसंदेस ।

चत्रभुज प्रभु घोखकुल के हरहु सकल कलेस ॥



जो ऐसे विरह के कीर्तन चत्रभुजदासने बहुत किये ।

तब श्रीगुसांईजीने चत्रभुजदासकी वहीत आरति जानिके महाआनंद स्वरूप ( सों ) चत्रभुजदास के हृदय में आयके आपु दर्शन दिये । और कहे जो-चत्रभुजदास ! तू इतनो विरह काहेकों करत हैं ? मैं तो सदा तेरे पास ही हूं तातें तू अब इतनो खेद अपने मनमें मति करे ।

और अब तो मेरो दर्शन तू श्रीगोवर्द्धननाथजी के निकट ही करयो कर । जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं ( वहां ) मदैव मोह को तिनके पास जान्यो कर, तहां ही मैं रहत हों ।

एसें चत्रभुजदास को समाधान करिके श्रीगुसांईजी तो आप अन्तर्ध्यान भये । पाछे चत्रभुजदास ताही स्वरूपानन्द में मगन होयके तहां यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग केदारो ।

श्रीविष्टल प्रभु भये न है हैं ।

पाछे सुने न अगें देखे यह छवि फेर न बनि है ॥ १ ॥

मनुषदेह धरि भक्त—हेत कलिकाल जनम को लै हैं ।

को फिरि नंदाय को वैभव ब्रजबासिन बिलसै हैं ॥ २ ॥

को कृपज करुणा सेवक—नन कृपा मुदृष्टि चितै हैं ।

ग्वाल गाय सब संग लेके को फिरि गोकुल गाम बसै हैं ॥ ३ ॥

धर्मश्रंभ तोय ज्ञान कर्म, को जगति भक्ति प्रकटै हैं ।

को करकमल सीस धरकें अधमनि वैकुण्ठ पटै हैं ॥ ४ ॥

रासविलास महोछव हरि को रागभोग सुख दैहैं ।

को सादर गिरिराजधरग को सेवा सार दटै हैं ॥ ५ ॥



भूषण बसन गोपाललाल के को सिंगार सिखै हैं ।  
 को आरति वारत श्रीमुख पर आनंद प्रेम बढैं हैं ॥ ७ ॥  
 मथुरा—मंडल खग मृगकी को महीमा कहि वरनै हैं ।  
 को वृन्दावनचंद्र गोविंद को प्रकट स्वरूप दिखै हैं ॥ ७ ॥  
 काको बहोरि प्रताप जु एसो प्रकट पुहुमि में छै हैं ।  
 काको गुन कोरत लीला जसु सकल लोक चलि जै हैं ॥ ८ ॥  
 श्रीवल्लभसुत दरसन कारन अब सब कोउ पछितै हैं ।  
 चत्रभुजदास आस इतनी जो यह सुमिरित जन्म सिरे हैं ॥ ९ ॥

एसे एसे बहोत कीर्तन चत्रभुजदासने करिके, श्री-  
 गुसांईजी के चरणारविंद में मन राखि, अपनी देह छोड़ीके  
 आप हू लीलामें जाय प्राप्त भये । सो चत्रभुजदासकी यह  
 लीला देखिके और जो वैष्णव हते तिनके (और) सेवकन  
 के मनमें बहोत दुःख भयो ।

ता पाछे चत्रभुजदास के एक बेटा हतो राघोदास सो  
 आयो, और वैष्णव सब आये । तिन सबनने मिलके चत्र-  
 भुजदास को अग्निसंस्कार कियो । और क्रियाकर्म दसगात्र  
 करि शुद्ध होये ।

ता पाछे वे राघोदास जो हे चत्रभुजदासजी के बेटा,  
 राघोदास की वार्ता सो तिनहू श्रीगुसांईजी सो नाम  
 पायो हो ।

सो राघोदास एक समे गांठोली की कदमखंडी में श्रीगोवर्द्धननाथजी  
 की गायन को चरावत हते, सो उनको गायन के मध्य श्रीगोवर्द्धन-  
 नाथजी के दर्शन भये । होरी खेलत गोपीन के जूथ के मध्य दरसन



भये । सो ऐसे दरशन करिके तहां राघोदासने एक धमार करिके गाई, जो—‘अरीचल जाइये जहाँ हरि खेलत होरी ।

यह धमार राघोदासने संपूर्ण करिके गाई, ता पाछे तहां ही राघोदासने देह छोड़ि दीनी ।

तब तहां जो गांठोली के वैष्णव हते तिन मुनी जो सबन मिलिके राघोदास को अग्निसंस्कार कियो ।

ता पाछे वे वैष्णव आयके श्रीगिरिधरजी सां कहे, जो—महागज ! राघोदासने या प्रकार सां यह धमारि गाइके अपनी देह छोड़ि दीनी । तब श्रीगिरिधरजी हँसे और कहे, जो—राघोदास बडे भगवदीय भये । सो उनकां श्रीगोवर्द्धननाथजीनं हारी के खेल के दर्शन दिये गोपीन सहित ।

ता समे राघोदासने यह धमारि गाइके अपनी देह छोड़ि दीनी श्रीहरिरायजी कृत सो ताको कारण यह है, जो—श्री गोवर्द्धननाथजी

भावप्रकाश के लीला—सुखको अनुभव राघोदास या देह सां ताको प्रकार सह्यो न गयो । ताते या देह छोड़िके राघोदास हू जायके लीला में प्राप्त भये ।

और श्रीगिरिधरजी हँसे ताको कारण यह जो—जिनके बापदादाननं या देह सां लीलासुखको हृदय में अनुभव करि दूसरेन कां हू ताके पद गाइके अनुभव करायो, ताको वेटा यह राघोदास । तासां इतना सुख हू हृदय में धारण कियो न गयो ।

पाछे रामदास की बेटांने डेढ़ तुक बनाइ वा धमार पूरी कीनी ।

सो वे राघोदास और उनकी बेटा श्रीगोवर्द्धननाथजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते ।





तब वा मुखियाने कह्यो जो—आछो, या बात की चिंता मति करो ।

ता पाछे वह संघ चलयो, सो वाके संग नंददास हू चले । सो कछुक दिनमें वह संघ मथुराजी में आय पहुँच्यो । तब संघ तो मधुपुरी में रह्यो, और नंददास तो मधुपुरी की सोभा देखत देखत विश्रान्त ऊपर आये । सो तहां अनेक स्त्री पुरुष स्नान करत देखे, और सुंदर स्वरूप के देखे । सो नंददास तो मनमें देखिके बहुत ही मोहित भये । और मनमें विचार कियो जो—एसी जगह में कछुक दिन रहिये तो आछो है । सो या भांति नंददास अपने मनमें लुभाये ।

ता पाछे नंददासने अपने मनमें यह विचार कियो जो—एकवार श्रीरणछोडजी के दरशन करि आऊं । ता पाछे आइके विश्रान्त घाट ऊपर रहेंगे ।

पाछे नंददासने सुनी जो—संघ तो मथुराजी में दस दिन और रहेगो । तब इन ने विचार कियो जो—संग तो अब ही मथुराजी में बहुत दिन लों रहेगो । तो मैं इतने अकेलो होयके श्रीरणछोडजी के दरशन कों जाऊंगों ।

एसो विचार अपने मनमें नंददास करिके रात्रिकों तो सोय रहे । ता पाछे नंददास प्रातःकाल उठिके चले, सो काहू तें कछु कही नाहीं । पाछे वा संघमें जो—मुखिया हतो ताने अपने संगमें नंददास कों जब न देख्यो, तब सगरी मथुराजी में हूँव्यो ।



जब नंददास कहूं नजर न पड़े, तब हूंढि के बैठि रहे ।  
और नंददासने तो काहूसों पूछी हू नांही । वे तो अकेले  
चलेही गये । सो श्रीद्वारिकाजी को तो मारग भूलि गये,  
और चले २ सिंहनंद में जाइ निकसे ।

सो गाम के भीतर चले जात हते । तहां एक क्षत्री  
श्रीगुसांईजी को सेवक रहतो हतो । सो ताकी बहू अत्यन्त  
सुंदर हती । सो वह स्त्री अपने घरमें नहायके ऊपर ठाड़ी २  
केश सुखावत हुती । सो चले जात में वह स्त्री नंददास की  
दृष्टि परी । सो नंददास तो बाकों देखिके मोहित भये ।  
और मनमें कह्यो जो-या पृथ्वी ऊपर ऐसे हू मनुष्य हैं ?  
और वह स्त्री तो उतरि के अपने घर के कामकाज में लगी ।  
और नंददास तो तहीं ठाड़े ठाड़े मनमें विचार करन लागे,  
जो-अब तो एकवार याकों मुख देखों तब जलपान करूंगो ।

पाछे ता दिन तो नंददास गये सो कोउ स्थल में जायके  
सोय रहे रात्रि कों ।

ता पाछे दूसरे दिन नंददास प्रातःकाल उठिके वा स्त्री  
के द्वार पर आइके बेठे । सो नंददास कों तो बेठे बेठे  
तीन ग्रहर व्यतीत होय गये । तब वा क्षत्री के एक लोंडी हती  
ताने बहूसों कह्यो जो- एक ब्राह्मण प्रातःकाल को अपने घर  
के द्वार ऊपर बेठ्यो है । सो वाने पानी हू नांहीं पियो । तब  
बहूने लोंडी सों कह्यो जो-वा ब्राह्मण सों पूछो तो सही जो-  
तुम द्वार ऊपर काहेकों बेठे हो ?



तब वा लोंडीने आइके नंददास सों कह्यो जो—तुम इहां हमारे द्वारपे क्यों बेटे हो ? तब नंददासने वा लोंडी सों कह्यो जो—मैं तो तेरी बहू को एक बार मुख देखूंगो । ता पाछे जलपान करूंगो, तब जाऊंगो । तब वा लोंडी यह सुनिके अपनी बहू पास गई । और यह सब बात बहू सों कही जो—वह ब्राह्मण तो त्रिहारो मुख देखिके जायगो । तब बहूने लोंडी सों कह्यो जो—मैं तो बाकों अपनो मुख दिखाऊंगी नाहीं । वह तो आपही ते उठि जायगो ।

सो एसेही नंददास कों हू साज (हठ ?) पड़ि गई । तब वा लोंडीने बहूतें फेरि कही जो—तुम मेरी एक बात सुनो ।

“ एक समे श्रीगोकुल श्रीगुसांईजी के दरशन कों अपनो सगरो घर गयो हो । तब संग में मैं हुती और तुम ही हे । सो श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलतें श्रीजीद्वार पधारत हते । और मैं, तुम, तुमारो ससुर सब संग हते । ज्येष्ठ को महीना हतो । सो मारग में एक म्लेच्छानी प्यासी होयके विकल भई परी हती, वह मेवा फरोसिनी हती । सो ताही मारग में होयके श्रीगुसांईजी पधारे । श्रीगुसांईजी निकट आये, तब खवासने वासों कह्यो—तू मारग छोडि के न्यारी उठि बेट, सो बाकों तो उठिवे की सकती नाहीं । बाको तो कंठ पानी विना मूखि गयो, सो नेत्रन में प्राण आय रहे हते, सो बापें बोल्यो हू न जाय ।

तब श्रीगुसांईजी पूछे जो—यह कहा है ? तब खवासने



श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो— महाराज ! एक म्लेच्छानी है, सो मारग में परी है । जो— बहोतेरो वासों कहत है परि वह उठत नांही ।

तब श्रीगुसांईजीने वा म्लेच्छानी की ओर देख्यो । तब उन म्लेच्छानीने श्रीगुसांईजी की ओर हाथ सों बतायो जो— मैं तो प्यासी हों । तब श्रीगुसांईजीने खवास सों कह्यो जो— याकों बेगही जल प्यावो । तब खवासने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो— महाराज ! इहां तो काहूके पास जल नांही है, और तलाव कुत्रा हू निकट नांही है, सो पानी कहांते पाईये ।

तब श्रीगुसांईजीने खवास सों कह्यो जो— हमारी झारी में जल होयगो । तब खवासने कही महाराज ! झारी छुई जायगी । तब श्रीगुसांईजीने खवास तें कह्यो जो— झारी तो और आवेगी, परंतु फेरि या म्लेच्छानी के ग्रान कहांते आवेंगे ? तातें बेगि जल प्यावो, जीव मात्र पर दया राखनी ।

सो वह श्रीनवनीतप्रियजी को महाप्रसादी जल हतो सो वा म्लेच्छानी कों प्यायो, सो वह जल पी गई । तब वा म्लेच्छानी के अंग २ में सीतलता होय गई ।

तब वा म्लेच्छानीने उठिके श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो— महाराज ! मैंने कन्हैयाजी सुने हते, सो आज मैंने नेनन सों देखे । तातें तुम 'गुसांईया' सांचे हो, सो मोकों जिवाई ।

तापाछें वह गोकुल आय रही । सो वह सुंदर मेवा लायके श्रीगुसांईजी के द्वार ले के आवे । सो वह म्लेच्छानी



श्रीगुसांईजी के मनुष्यनतें कहे जो-ए मेवा तुम राखो। तब वे मनुष्य कहें जो-तू मोल कहे तो लेंय, नांही तो यह हमारे काम न आवे। तब वह थोरे पैसा कहें, सो वा भांति सों वाने अपनो जनम व्यतीत कियो। सो वा म्लेच्छानी के ऊपर श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न रहते।

ता पाछे वह म्लेच्छानीने देह छोडी। सो वाने महावन में जायके ब्राह्मण के घर जनम पायो। सो फेर वे श्रीगुसांईजी की सेवकनी भई, और वह कृतार्थ भई।”

सो या भांति सों लोंडीने अपनी बहूसों कह्यो जो- जीव मात्र ऊपर दया राखनी। तातें ब्राह्मण प्रातःकाल को भूख्यो प्यासो बैठ्यो है, सो यह बात आछी नांही है। तब वह बात बहू के हृदे में आई। पाछे वा लोंडी के संग बहू द्वार ऊपर गई। तब नंददास वाको मुख देखिके उठि गये।

सो या भांति सों वे नंददास नित्य आवें सो वाकों मुख देखिके चले जाय। तब पाछे वाके घर के धनी क्षत्रीने सुनी जो- यह ब्राह्मण हमारे घर याकों देखवे कों आवत है। तब वा क्षत्रीने आयके नंददास सों कह्यो जो- तुम हमारे घर के द्वार पर नित्य आवत हों, सो हमारी जगत में हाँसी बहोत होत हैं।

तब नंददासने वा क्षत्री सों कह्यो जो- मैं तुमतें मागत नांही, कछु तुमारो विगारत नांही। ता पाछे और तुम कहत हों मोसों, तो मैं तुमारे माथे मरुंगो।



तब यह नंददास के वचन सुनिके यह क्षत्री डरप्यो,  
जो- अब यातें मैं बोलूंगो तो- यह ब्राह्मण हत्या देयगो, सो  
कछु कहे नांही। और नंददास तो वेसेई नित्य आवें सो  
वाको मुख देखिके परे जाय ।

ता पाछे कितेक दिन में यह बात सगरे गाममें भई ।  
जो- फलाने क्षत्री की बहू को एक ब्राह्मण देखिवे कों नित्य  
आवत है। सो यह बात सुनिके वा क्षत्रीकों लाज आई। जब क्षत्रीने  
अपने पुत्रसों कह्यो जो- अब हमकों यह गाम छोड़नो आयो ।

ता पाछे घरमें की सब वस्तु भाव बेचिके सब की हुंडी  
कराई । ता पाछे एक गाड़ी भाड़े करि दस-पांच मनुष्य  
मारग के लिये चाकर राखे। प्रातःकालतें नंददास वा बहूको  
म्होडो देखिके गये हते । ता पाछे वह क्षत्री, क्षत्री को बेटा,  
क्षत्री की बहू और चौथी लौंडी, सो ये चारों जने वा गाड़ी में  
बैठिके श्रीगोकुलकों चले ।

ता पाछे दूसरे दिन नंददास वाके घर आये । सो  
देखे तो-वाके घरको ताला लग्यो है। तब नंददासने वाके  
परोसीन सों पूछी, जो- आज या घरके ताला लग्यो है, सो  
या क्षत्री के घरके लोग कहां गये ?

तब और लोगनने कही जो- जा भले आदमी ! तेरे  
दुःखतें तो वा क्षत्रीने अपनो गाम हू छोड़ि दीनो है । सो वह  
तो काल प्रातः ही को श्रीगोकुल कों गयो है।

यह वचन सुनते ही नंददास तो अपने डेरा में आये ।



जो अपनी वस्तुभाव लेके ताही समें श्रीगोकुल कों चले।  
 सो चलत २ सांझ के समय जहां वा क्षत्री की गाड़ी उतर  
 रही, तहां नंददास हू जाय पहोंचे। सो जायके वा क्षत्री  
 की गाड़ी के निकट ही बैठि गये।

तब वा क्षत्रीने नंददास कों देखिके कह्यो, जो- जा  
 दुखतें हमने अपनो घर छोड्यो, देश छोड्यो, सो दुख तो  
 हमारे संग ही लग्यो आयो। ता पाछें वा क्षत्री के मनुष्य  
 वासों लइन लागे जो- तू हमारे संग काहे कों आवत है ?  
 तब नंददास उठिके दूरि जाय बैठे, और कह्यो जो- हम  
 तुम सों मांगत तो नांही कहू, और यह गामहू तुमारो नांही,  
 ता पाछे रात्रि को तो तहां सोय रहे।

प्रातःकाल होत ही वह क्षत्री तो गाड़ी में बैठके तहांते  
 चल्यो। तब वासों नेक दूरि के नंददास हू चले। सो याही  
 भांति कछुक दिन में श्रीगोकुल के घाट ऊपर आये।

तब उन क्षत्रीने विचार कियो जो- हम तो या ब्राह्मण  
 के दुःखके मारे गाम छोड़िके आये। तोहू वह तो हमारे  
 संग ही आयो है। तातें एसो जतन होई जो- यह हमारे संग  
 श्रीजगुनाजी उतरिके श्रीगोकुल न चले तो आछो है, नांही (तो)  
 हमारी हाँसी श्रीगोकुलमें हू होयगी। और श्रीगुसांईजी यह  
 बात सुनेंगे तो-यह बात आछी नांही है।

तब उन मलाहन सों कहे, (ओर) घटवारेन सों वा क्षत्रीने  
 कह्यो जो- हम तुमकों कछुक द्रव्य देंगे, परि या ब्राह्मण को



पार मति उतारो। पाछे वह क्षत्री नाव में बैठ्यो, तब नंददास हू नाव पर बैठन लागे, तब उन मलाहनने हाथ पकरिके उतार दियो नाव पें तें। तब नंददास तो श्रीजमुनाजी के तीर ठाढे २ विचार करन लागे। और वह क्षत्री तो नाव में बैठि के श्रीजमुनाजी के पार भयो।

ता पाछे वह क्षत्री श्रीगोकुल में आयके, लोंडीकों एक ठोर बेठायके वाके पास सब वस्तुभाव धरिकें आप तीनों जने श्रीगुसांईजी के दरशन कों आये। सो श्रीनवनीतप्रियजी के राजभोग के दरशन किये। ता पाछे अनोसर करायके श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में पधारे। तब इन तीनों जनेनने भेट धरी, और दंडवत कीनी।

तब श्रीगुसांईजीने पूछी जो—वैष्णव ! कब के आये हो ? तब इन कही जो महाराज ! अब ही आये हैं। श्रीनवनीत-प्रियजीके राजभोग की आरती के दरशन आपकी दयातें करे हैं। तब श्रीगुसांईजी कहे जो—आज तुम प्रसाद इहांई लीजो, अब बेठो।

एसे आज्ञा देके श्रीगुसांईजी आप तो भोजन कों पधारे। ता पाछे आचमन करिके अपनी जूठन की पातरि वा क्षत्रीकों धरी। सो चार पातर श्रीगुसांईजीने उन के आगे धरी।

तब वा वैष्णवने श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो—महाराज ! हम तो तीनही जने हैं। और आपने चार पातरि कौन २ की धरी हैं। इहां तो और वैष्णव कोइ दीसत नाहीं।



तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो—वह तुमारे संग ब्राह्मण आयो है, जाकों तुम पार छोड़ि आये हो। सो वह कौन के घर जायगो ?

तब ए वचन श्रीगुसांईजी के सुनिके तीनो जने लज्जित भये। और कहे जो—जा बात तें देखो हम डरपत हते जो—हमारी हाँसी श्रीगोकुलमें न होय तो आछो है, सो यहां तो सब पहले ही प्रसिद्ध होय रही है। ऐसे कहिके वे तीनो जने अत्यंत सोच करन लागे।

सो श्रीगुसांईजी वा क्षत्री सों कहे जो—तुम सोच काहेको करत हो ? वह तो देवी जीव है, जो तुमारो संग पाइके इहां आयो है। सो अब तुमकों दुख न देहिगो।

एसे वासों किके एक ब्रजवासी कों बुलायके आज्ञा दीनी जो—तू पार जाइके तहां श्रीजमुनाजी के तीर एक नंददास ब्राह्मण बेठयो है, ताकों बुलाय लाव।

तब वह ब्रजवासी तत्काल आइके नावमें बेठिके पार को चलयो। और नंददास कों तो उन मलाहनने नावपे सों उतारि दियो, सो श्रीजमुनाजी के तीर बेठे बेठे श्रीजमुनाजी के आगे विज्ञप्ति के पद गावन लागे। सो पद—

राग रामकली—१ ‘नेह कारन श्रीजमुना प्रथमआइ’ २ ‘भक्त पर कर कृपा श्रीजमुनाजू एसी’ ३ ‘श्रीजमुने २ जो गावे’

सो या भांति नंददास तो श्रीजमुनाजी के तीर बेठे बेठे श्रीजमुनाजी की स्तुति करत हे।



इतने में वह ब्रजवासी जाकों श्रीगुसांईजीने नंददासकों लेवे पठायो हतो, सो नाव लेके पार जाय पहुंच्यो। सो तहां जायके पूछ्यो जो—नंददास ब्राह्मण कहां है ? तब इन कही जो— नंददास ब्राह्मण तो मैं ही हूं। तब वा ब्रजवासीने नंददास सों कह्यो जो— तुमकों श्रीगुसांईजीने बुलाये हैं, और यह नाव पठाई है, तामें तुम बैठिके बेगि चलो।

तब तो नंददास प्रसन्न होइके श्रीजमुनाजीकों दंडवत करिके, श्रीगोकुल कों दंडवत करि पाछे नाव में बैठके पार आये। और आयके श्रीगुसांईजी को दरशन करिके साष्टांग दंडवत करी। सो दरशन करत ही नंददास की बुद्धि निरमल होय गई।

तब तो श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरि विनती करी जो— महाराज ! मैं जब तें जनम पायो, तब तें विषय करत ही जनम गयो। और आप तो परम कृपालु हो, मेरे ऊपर कृपा करिके मोकों अपनी शरण लीजे।

सो एसे दैन्यता के वचन नंददास के सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये। तब श्रीगुसांईजी श्रीमुख तें आज्ञा किये जो— नंददास ! जाओ, स्नान करिके अपरस ही में इहां आइयो।

तब नंददास वेसेही स्नान करिके अपरसही में श्रीगुसांईजी के पास आये। पाछे श्रीगुसांईजीने नंददास को नाम-निवेदन (भावात्मक रूप सों) करवायो। तब श्रीगुसांईजी को स्वरूप नंददास के हृदयारूढ भयो, ता समे नंददासने यह कीर्तन



कियो । सो पद— राग बिलावल । ‘जयति श्रीरुक्मिणी—नाथ,  
पद्मावती—प्राणपति\* विप्रकुल—छत्र आनंदकारी०’ ।

नंददासने यह कीर्तन गायो । सो सुनिके श्रीगुसांईजी  
बहोत ही प्रसन्न भये । ता पाछे श्रीगुसांईजी नंददास कों  
आज्ञा दीनी जो — तेरी महाप्रसाद की पातर धरी है, सो  
जाइके महाप्रसाद लेवो ।

सो नंददास आइके महाप्रसादी रसोई-घरमें जायके  
श्रीगुसांईजी की जूठन को प्रसाद लेन लागे । सो लेत ही  
स्वरूपानंद को अनुभव होन लग्यो । सो नंददास तो देह  
को अनुसंधान भूलि गये, और जहां के तहां बेठे रहि गये ।  
सो हाथ धोयवे की हू सुधि न रही ।

जब उत्थापन को समय भयो, तब भीतरियाने आइके  
श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो — महाराजाधिराज ! नंददासजी तो  
महाप्रसाद लेके उहांई बेठि रहे हैं, उठे नांही हैं । तब श्री-  
गुसांईजीने उन भीतरिया सों कह्यो जो — उहां तुम नंददास तें  
कोऊ बोलो मति ।

ता पाछे चारि प्रहर रात्रि गई तोऊ नंददास कों  
देह की सुधि न रही ।

ता पाछे दूसरे दिन प्रातःकाल नंददास के पास श्री-  
गुसांईजी पधारे । तब श्रीगुसांईजीने नंददास के कानमें  
कह्यो जो — उठो नंददास ! दरशन को समय भयो है । तब

---

\* यह पद सं. १६२४ के बादका है । देखो गुजराती अष्टछाप —सम्पादक



नंददास उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत करी । ता समे नंददासने यह कीर्तन कियो । सो पद—

राग बिभास । १ प्रात समे श्रीवल्लभसुत को पुन्य पवित्र विमल जस गाऊं० । २ प्रात समे श्रीवल्लभसुत को उठत ही रसना लीजे नाम०।

सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तो मंदिर में पधारे और नंददास आप देह कृत्य करिवे गये । ता पाछे श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन को समय भयो । सो नंददास श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करिके बहोत प्रसन्न भये । तब नंददासने यह पद गायो । सो पद—

राग विलावल । १ 'गोपाल ललन कों भोद भरि जसुमति हुल्लावति०'।

यह कीर्तन नन्ददासने तहां गायो । सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये । तब नंददास ने श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरि साष्टांग दंडवत करिके कह्यो जो — महाराज ! मोसे पतित को उद्धार करोगे ? सो वे नंददास श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग—२

और एक समय श्रीगुसांईजी रात्रिको अपनी बेठक में विराजे हते । तब आप आज्ञा करे जो — कालि श्रीनाथजीद्वार अवश्य जानो । तब नंददासने विनती कीनी जो — महाराज ! जैसे आपु कृपा करिके श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करवाये, तेसे श्रीनाथजी के दरशन करवावो ।



ता पाछे प्रात भये श्रीनवनीतप्रियजी के मंगलाके दर्शन करिके, श्रृंगार राजभोग करिके श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे, और नन्ददास को हू संग लिये । सो उत्थापन के समय श्रीगिरिराज आइ पहोंचे । श्रीगुसांईजी तो न्हायके मंदिर में पधारे ।

समो भयो तब दरशन को टेरा खुल्यो । सो नन्ददास श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करिके बहोत प्रसन्न भये । ता समे नन्ददासने यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग नट । 'सोहत सुरंग दुरंग पाग कुरंग ललना केसे लोइन लोने० ।

यह कीर्तन नन्ददासने गायो, सो श्रीगुसांईजी मंदिर में सुने । पाछे टेरा खेंचि लियो । ता पाछे परमानन्द में नन्ददासने बेठे २ और हू कीर्तन किये । पाछे संध्याति के दरशन खुले तब नन्ददासने दरशन करिके यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग गोरी । १ बन तें सखन संग गायन के पाछे पाछे आवत० ।  
२ बनतें आवत गावत गोरी० । ३ देखि सखी हरि को बदन सरोज० ।  
४ नंदमहरि के मिषही मिष आवे गोकुलकी नारी० ।

सो या भांति सों नन्ददासने बहोत कीर्तन किये ।

ता पाछे नन्ददास छ मास पर्यंत सूरदासजी के संग परासोली में रहे, पाछे श्रीगोकुल में रहे । सो श्रीगुसांईजी नन्ददास ऊपर सदा प्रसन्न रहते । वे नन्ददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये ।



## वार्ता प्रसंग-३

और एक समय श्रीमथुराजी को एक संघ पूरव कों चलो, गयाश्राद्ध करिवे कों । ता संघ में दस पांच वैष्णव हू हते । सो कितेक दिन में वह संघ पूरव कों चलो, काशीजी जाइ पहुंच्यो ।

तब तुलसीदासजीने सुन्यो जो - संघ आयो है । तब वा संघ में तुलसीदासजीने आइके पूछी जो - एक नन्ददास ब्राह्मण इहां तें गयो है, सो मथुराजी में सुन्यो है । सो तुमने कहूं देख्यो होय तो कहो ।

तब एक वैष्णवने कही जो-तुलसीदासजी ! एक नन्ददास तो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है । सो वह नन्ददास पहले तो अत्यंत विषयी हतो, सो अब तो बडोही कृपापात्र भगवदीय भयो है !

तब तुलसीदासजी अपने मनमें बिचारे जो - एसो तो वही नन्ददास है, सो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है । जो अब तो उन कों मेरी शिक्षा न लगेगी ।

तब तुलसीदासजीने उन वैष्णवन सों कही जो - मैं तुमकों एक पत्र देउं, ताको जुवाब तुम मोकों मगाय देउगे ?

तब उन वैष्णवनने तुलसीदासजी सों कही जो - काल मेरो मनुष्य श्रीगोकुल कों चलेगो । जो तुमकों पत्र देनो होय तो लिखके बेगि तयार करियो । तब तुलसीदासजीने ताही समे पत्र लिखिके तैयार कियो । तामें लिख्यो जो - तू पतिव्रतधर्म



छोड़ि व्यभिचार धर्म लियो, सो आछो नांही कियो । अब तू आवे तो फेरि तोकों पतिव्रतधर्म बताऊं ।

यह पत्र तुलसीदासजीने वा वैष्णव के हाथ दियो । सो वह पत्र अपने पत्रन में धरिके वा वैष्णवने कासिद के हाथ दियो । सो वह पत्र लेके श्रीगोकुल आयो । तब कासिदने दंडवत करिके वे पत्र श्रीगुसांईजी के आगे धरे । तब उन पत्रन में नंददास के नामको जो पत्र हतो सो निकस्यो । तब श्रीगुसांईजीने वह पत्र बांचि के नंददास कों बुलायके दियो ।

तब नंददासने वह पत्र लेके बांच्यो । पाछे वा पत्र को प्रतिउत्तर लिख्यो जो—मेरो तो प्रथम रामचन्द्रजी सों विवाह भयो हतो । सो बीचमें श्रीकृष्ण दोरि आइके लूटि ले गये । सो रामचन्द्रजी में जो बल होतो तो मोकों श्रीकृष्ण केसे ले जाते ? और श्रीरामचन्द्रजी तो एकपत्नी व्रत हैं । सो दूसरी पत्नीनकुं केसे संभार सकेंगे ? एक पत्नी हू बराबर संभारि न सके, सो रावण हरिके ले गयो । और श्रीकृष्ण तो अनंत अबलान के स्वामी हैं, और इनकी पत्नी भये पाछे कोई प्रकार को भय रहे नांही है । एक कालावच्छिन्न अनंत पत्नी-नकुं सुख देत हैं । जासों मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं । सो जानोगे । सो मैं तो अब तन, मन, धन यह लोक, परलोक श्रीकृष्ण कों दीनोहै । (और) अब तो मैं परवश होइके परयो हूं ।

एसो नंददासने तुलसीदासजी कों पत्र लिख्यो । तामें एक पद यह लिख्यो । सो पद—



राग आशावरी-१ ' कृष्णनाम जबतें श्रवण सुन्यो री आली !  
भूलि री भवन हो । तो बावरो भई री० ' ।

यह कीर्तन नंददासने वा पत्र में लिखिके वह पत्र  
कासिद कों दियो । सो वह कासिद कितेक दिननमें कासीजीमें  
आयो । सो वे पत्र सब वैष्णवन कों दिये ।

तब उन वैष्णवनने वह नंददास को पत्र बांचिके तुलसी-  
दासजी कों बुलायके दीनो । पाछे तुलसीदासजीने नंददास  
को पत्र बांचिके अपने मनमें जान्यो जो- अब नंददास इहां  
कबहूं न आवेगो । एसो जानिके तुलसीदासजी अपने घर आये ।

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजीके ऐसे कृपापात्र भगवदीय  
भये । जिनकों श्रीगुसांईजीके स्वरूप में एसो दृढ भाव हतो ।

#### वार्ता प्रसंग-४

औ एक समे तुलसीदासजीने विचार कियो जो- नन्द-  
दास श्रीगोकुल में है, सो मैं जाइके लिवाय लाऊं । यह  
विचारिके तुलसीदासजी काशीजीतें चले, सो कितेक दिनमें  
श्रीमथुराजीमें आइ पहरोंचे ।

तब मथुराजी में पूछे जो- इहां नन्ददास ब्राह्मण काशी  
तें आयो है, सो तुम जानत होउ तो बताओ, जो- वह कहां  
होयगो ? तब काहूने कह्यो जो- एक नन्ददास तो आइके श्री-  
गुसांईजी को सेवक भयो है, सो तो गोकुल होयगो, या गिरि-  
राज होयगो ।

तब तुलसीदासजी प्रथम तो श्रीगोकुल आये । सो श्री-  
गोकुलकी शोभा देखिके तुलसीदासजी को मन बहुत ही प्रसन्न



भयो । पाछे तुलसीदासजी मनमें बिचारे जो- एसो स्थल छोड़िके नन्ददास कैसे चलेगो ?

तब तुलसीदासजीने तहां पूछ्यो जो- एक नन्ददास ब्राह्मण है, सो कहां होयगो ? तब काहूने कही, जो- एक नन्ददास तो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है । सो श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजीद्वार गये हैं, सो उहांही होयगो ।

तब तुलसीदासजी फेर मथुरा में आयके श्रीयमुनाजी के दर्शन करे, पाछे तहांते श्रीगिरिराजजी गये । सो उहां परा-सोलीमें तुलसीदासजी नन्ददासकूं मिले ।

पाछे तुलसीदासजीने नन्ददास सों कही जो- तुम हमारे संग चलो । सो गाम रुचे तो अयोध्यामें रहो, पुरी रुचे तो काशीमें रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो, वन रुचे तो दंडकारण्य में रहो । ऐसे बड़े बड़े धाम श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र करे हैं ।

तब नन्ददासने उत्तर देयवेकुं ये पद गायो । सो पद—  
‘ जो गिरि रुचे तो वसो श्रीगोवर्द्धन, गाम रुचे तो वसो नंदगाम । नगर रुचे तो वसो श्रीमधुपुरी सोभा-सागर अति अभिराम ॥ १ ॥

सरिता रुचे तो वसो श्रीयमुनातट, सकल मनोरथ, पूरन काम । नन्ददास कानन रुचे तो वसो भूमि वृंदावन धाम ॥ २ ॥

पाछे नन्ददास सूरदासजी सों मिलिके श्रीनाथजी के दर्शन करवेकुं गये । तब तुलसीदासजी हू उनके पाछे पाछे गये । जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे तब तुलसीदासजीने



माथो नमायो नहीं । तब नन्ददास जानि गये, जो- ये श्री-  
रामचन्द्रजी बिना और दूसरेकों नहीं नमे हैं । नन्ददासने  
मनमें विचार कीनो जो- यहां और श्रीगोकुलमें इनकों श्रीराम-  
चन्द्रजी के दर्शन कराउं । तब ये श्रीकृष्ण को प्रभाव जानेंगे ।  
पाछे- नन्ददासने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिनती करी ।  
सो दोहा-

कहा कहूं छवि आज की, भले बने हो नाथ,

तुलसी-मस्तक तब नमे, धनुषबाण लो हाथ ॥

यह बात सुनिके श्रीनाथजी कों श्रीगुसांईजीकी कानतें विचार  
मयो, जो- श्रीगुसांईजी के सेवक कहै, सो हमकुं मान्यो चाहिये ।

पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजीने श्रीरामचन्द्रजीको रूप धरिके  
तुलसीदासजीकों दर्शन दिये । तब तुलसीदासजीने श्रीगोवर्द्धन-  
नाथजीकों साष्टांग दंडवत् करी ।

जब तुलसीदासजी दर्शन करिके बाहर आये, तब नन्द-  
दास श्रीगोकुल चले । तब तुलसीदासजी हू संग संग आये ।  
तब आयके नन्ददासने श्रीगुसांईजी के दर्शन करि साष्टांग  
दंडवत् करी और तुलसीदासजीने दंडवत् करी नांहि ।

पाछे नन्ददासकों तुलसीदासजीने कही जो- जैसे दर्शन  
तुमने वहां कराये वैसेही यहां करावो । तब नन्ददासने  
श्रीगुसांईजी सों बिनती करी- ये मेरे भाई तुलसीदास हैं । सो  
श्रीरामचन्द्रजी बिना और कों नहीं नमे हैं ।

तब श्रीगुसांईजीने कही जो- तुलसीदासजी ! बेठो ।

ता समे श्रीगुसांईजीके पांचमे पुत्र श्रीरघुनाथजी वहां



ठाड़े हुते, और उन दिनन में श्रीरघुनाथजी को विवाह भयो हुतो । जब श्रीगुसांईजीने कही जो— श्रीरामचन्द्रजी ! तुमारे सेवक आये हैं, इनको दर्शन देवो । तब श्रीरघुनाथलालजीने तथा श्रीजानकीबहूजीने श्रीरामचन्द्रजीको तथा श्रीजानकीजी को स्वरूप धरिके दर्शन दिये । तब तुलसीदासजीने साष्टांग दंडवत करी ।

पाछे तुलसीदासजी दर्शन करिके बहोत प्रसन्न भये । और यह पद गायो । सो पद—

‘वरनों अवधि श्रीगोकुल गाम । वहां सरजू यहां यमुना एकहो नाम०’ ।

ता पाछे तुलसीदासजीने श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके कह्यो—जो महाराज ! नंददास तो पहले बड़ो विषयी हतो, सो अब तो याकों बड़ी अनन्य भक्ति भई है, ताको कारण कहा है ?

तब श्रीगुसांईजीने तुलसीदासजी सों कह्यो जो—नंददास उत्तम पात्र हुते, यातें पुष्टिमार्ग में आयके प्रवृत्त भये । और अब व्यसन अवस्था याकों सिद्ध भई है । सो अब वे द्रढ भये है । तब श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के बचन सुनिके तुलसीदासजी प्रसन्न होय श्रीगुसांईजी को दंडवत् करिके पाछे आप बिदा होय काशी आये

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते । जिनके कहें श्रीगोवर्द्धननाथजी कों तथा श्रीरघुनाथलालजी कों श्रीरामचन्द्रजी को स्वरूप धरिके दर्शन देने पड़े ।



### वार्ता प्रसंग-५

सो एक दिन नंददास के मनमें एसी आई जो- जैसे तुलसीदासजीने रामायण भाषा किये हैं, तेसे हमहू श्रीमद्भागवत भाषा करें । पाछे नंददासने श्रीमद्भागवत दशम भाषा संपूरण कियो ।

तब मथुरा के सब पंडित मिलिके श्रीगुसांईजी सों विनती कीनी, जो महाराज ! हम श्रीभागवत की कथा कहिके निरवाह करत हते, सो तुमारे सेवक नंददासजीने भाषा में श्रीभागवत कही है । सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो । तातें अब हमारी जीविका तो गई । सो अब आपके हाथ उपाय है ।

तब श्रीगुसांईजीने नंददास कों बुलायके कह्यो जो- नन्ददास ! तुमने जो श्रीमद् भागवत भाषा में कीनी है, सो इन ब्राह्मणन की जीविका में हानि होत है । तासों तुम ब्रज-लीला तो पंचाध्याई ताई की राखो और सब श्रीजमुनाजी में पधराय देवो ।

सो नन्ददासने श्रीगुसांईजी की आज्ञा प्रमाण मानिके ब्रजलीला ताई ( भागवत ) राखी, और सब श्रीजमुनाजी में पधराय दीनी ।

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजी के ऐसे आज्ञाकारी और बड़े कृपापात्र हते ।

### वार्ता प्रसंग-६

और एक समे अकबर पात्शाह और वीरबल श्रीमथुराजी आये, सो वीरबल श्रीगुसांईजी के दर्शन कों आयो । सो



श्रीनाथजीद्वार श्रीगुसांईजी पधारे हते, और श्रीगिरधरजी घर हते सो-बीरबल श्रीगिरिधरजी के दरशन करिके अकबर पात्साह के पास आये । तब पात्साहने पूछी जो-बीरबल ! तू कहाँ गया था ? तब बीरबल ने कह्यो जो-दीक्षितजी के दरशन को श्रीगोकुल गया था । सो श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजी के दरशन को श्रीगोवर्द्धन पधारे हैं, और उनके पुत्र श्री गिरधरजी घर थे, सो उनके दरशन करके आया हूँ ।

तब पात्साहने बीरबल सों कह्यो जो-दिन दो में हमभी श्री-गोवर्द्धन चलेंगे, वहां से तुम जाकर दीक्षितजी के दर्शन कराना ।

ता पाछे दिन दोय में अकबर पात्साह के डेरा गोवर्द्धन मानसी गंगापे भये । तब बीरबल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों गोपालपुर आये । सो दरशन करिके श्री-गुसांईजी को दंडवत् करिके ता पाछे अपने डेरा आयो ।

पाछे नन्ददासने सुनी जो-अकबर पात्साह के डेरा गोवर्द्धन में मानसी गंगापे भये हैं । सो अकबर पात्साह के एक लोंडी हती । सो वह श्रीगुसांईजी की सेवक हती । ताके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी बड़ी कृपा करते, बाकों दर्शन देते ।

वा लोंडी सों और नन्ददास सों बडी प्रीति हती । सो नन्ददास वा लोंडी सों मिलिवे को मानसी गंगापे आये । सो तहां वा लोंडी को दूढ़न लागे । सो वह लोंडी एक एकांत ठौर में बिलछू पे वृक्षन की लतान की तरें रसोई करत हती । सो रसोई करिके भोग धरयो हो । तहां श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु पधारे हुते । सो नन्ददास ता समे श्रीगोवर्द्धननाथजी



कों देखे । सो दरशन करिके नन्ददास बहोत ही प्रसन्न भये । और कह्यो जो-याके बड़े भाग्य हैं ।

ता पाछे नन्ददास एक वृक्ष की ओटमें ठाड़े रहिके यह कीर्तन गायो । सो पद—

राग टोडी—

चित्र सराहत चितवति दुरि मुरि गोपी बहोत सयानी० ।

यह कीर्तन तहां नन्ददास ने गायो । तब जाने जो- इहां नन्ददास आये हैं । तब वा लोंडीने चारों ओर देख्यो । तब देखे तो-एक वृक्ष की ओट में नन्ददास ठाड़े हैं । तब वा लोंडीने नन्ददास सों कह्यो, जो-तुम ऐसे छिपके क्यों ठाड़े हो ? मेरे पास क्यों नांहि आवत हो ?

तब नन्ददास ने कही जो- राजभोग को समो हतो, श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगवे पधारे हते, तातें हों इहां ठाड़ो होय रह्यो ।

ता पाछे भोग सरायके अनोसर करायके कह्यो जो-मैं तुमतें कही नांही सकत हों, परि श्रीनाथजी को महाप्रसाद है, ताम हू दूध की सामग्री है । तामें तुमारो मन प्रसन्न होय सो लेउ । काहेतें जो- तुम ब्राह्मण हो ।

तब नन्ददासने कह्यो जो-अब तो मैं रंचक २ सब सामग्री लेउंगो । तब उन दोउ जनेन ने प्रसन्नता सों महाप्रसाद लियो । ता पाछे आचमन करिके बेठे । तब वा लोंडी ने नन्ददास सों कह्यो जो-अब इहां ते कहूं न जानो होय तो आछो है । यहां जो- मानसीगंगा है । यह श्रीगिरिराज प्रभुनकी दया तें स्थल प्राप्त भयो है । तातें अब मैं काहू



देशमें न जाऊ तो आछो है, और अब सदा तुमारो संग होय तो आछो ।

तब नन्ददासने बा लोंडी सो कह्यो जो—प्रभु ऐसे ही करेंगे । ता पाछे लोंडी ने कह्यो जो—अब इन आंखनिसों लौकिक को देखनो उचित नांही है ।

पाछे नन्ददास रात्रि कों अपने स्थान मानसीगंगा पे जाय रहे । और प्रातःकाल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों आये, सो गोवर्द्धननाथजी के दरशन किये । और श्रीगुसांईजी के दरशन किये ।

ता पाछे अकबर पात्साह के आगे तानसेन रात्रिकों गायवे आये । सो तहां नन्ददास को कियो पद तानसेनने गायो । सो पद—

राग केदारो ।

‘ देखो री ! देखो नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट ० ’

×

×

×

( अंतमे ) ‘ नन्ददास गावत तहां निपट निकट ’

यह नन्ददासको कियो पद सुनिके अकबर पात्साहने तानसेन सों पूछी जो — जिसने यह पद बनाया है, सो कहां है ? तब बीरबल ने अकबर पात्साह सों कह्यो जो — साहब ! वह तो यहां ही है, श्रीनाथजीद्वार में रहता है । बड़ा कवि और भगवदीय है ।

तब देसाधिपति ने बीरबल सों कह्यो जो — इसी घडी उनको इहां बुलावो । तब बीरबल ने पातसाह सों कह्यो जो — साहब ! वह इस भांति से तो यहां न आवेंगे । मैं कल जाकर लिवा लाउंगा ।



ता पाछे दूसरे दिन बीरबल गोपालपुर आये । तब श्रीगुसांईजीके दरशन किये । ता पाछे नन्ददास सों बीरबलने कह्यो जो— नन्ददासजी ! तुमकों अकबर पातसाहने बुलाये हैं । तब नन्ददासने बीरबल सों कह्यो जो— मोकों अकबर पातसाह सों कहा प्रयोजन है ? मोकों कछु द्रव्यकी चाहना नांहि । जो— मैं जाऊं । और मेरे कछु द्रव्य नांही जो— अकबर पातसाह लेइगो । तातें हमारो कहा काम हैं ?

तब बीरबलने कह्यो जो— तुम न चलोगे तो अकबर पातसाह ही तुमारे पास आवेगो ।

तब नन्ददासने कही जो— तुम इहां वाको मति लावो । इहां भीड को काम नांही है । तातें मैं सेन आरती पाछे श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके मानसी गंगा आउंगो ।

पाछे नन्ददास सेन आरती के दरशन करि, श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके विदा होयके मानसीगंगा आये ! सो तहां अकबर पातसाह और बीरबल दोउ जनैं बेठे हते । सो नन्ददास कों देखिके पातसाहने सन्मान करिके बेठाये ।

ता पाछे अकबर पातसाह ने नन्ददास सों कह्यो जो— तुमने रास को पद बनायो है, तामें तुमने कह्यो हे जो— ‘नन्ददास गावे तहां निपट निकट’ सो इतनो झूठ क्यों बोलत हो ? जो तुम कहो जो— कौन भांति सों निकट आये ?

तब नन्ददासने पातसाह सों कह्यो जो— मेरे कहे को तुमकों विश्वास न होयगो । सो तुमारे घर में फलानी ( रूपमंजरी ? ) लोंडी है तासों तुम पूछ लेउ, जो वह जानत हैं ।

तब अकबर पातसाहने बीरबल कों तो नन्ददास के पास बेठाये, और आप अपने डेरामें जायके वा लोंडी सो पूछी,



जो— यह रास को पद नंददास ने गायो है, सो ताको अभिप्राय कहा है ?

तब यह वचन पातसाह के सुनिके वह लोंडी पछाड खायके गिरि परी, सो देह छूटि गई। सो वह लीलामें जायके प्राप्त भई। तब देसाधिपति नंददास के पास दोरे आये। सो इहां आयके देखे तो नन्ददास की हू देह छूटि गई है। सो एउ लीला में जायके प्राप्त भये।

तब अकबर पातसाह कों बडो आश्चर्य भयो। तब वाने बीरबल सों पूंछी जो— इन दोउन की देह क्यों छूटि गई ? तब बीरबलने पातसाह सों कह्यो जो— साहिब ! इन (नैं) अपनो धर्म राख्यो। काहेतें यह बात बतांयवेमें न आवे, कहिवेमें न आवे। तासों या बात को तो यही उपाय है।

ता पाछे अकबर पातसाह अपने डेरान में आयो। ता पाछे यह बात वैष्णवनने सुनी, सो आयके यह समाचार सब श्रीगुसांईजी सों कहे, जो— महाराज ! नंददासजीने मानसी गंगा पे या रीति सों देह छोडी।

तब श्रीगुसांईजीने श्रीमुखतें बहोत ही सराहना करी। जो वैष्णवकों ऐसेही अपनो धर्म (गुप्त) राख्यो चाहिये। जो— और के आगे कहनो नांही। सो वह नंददासजी और वह लोंडी ऐसे भगवदीय हते। सो दोउ जनेनने अपनो धर्म गोप्य राख्यो।

सो वह लोंडीहू एसी भगवदीय भई। और नंददासजीहू श्रीगुसांईजीके ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते। जिनके ऊपर श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। और अपने स्वरूपानंदको वैभव दिखायो। तातें उनकी वार्ता कहां ताई लिखिये ? ता वार्ता को पार ना आवे ऐसे भगवदीय भये।

इति श्री अष्ट छापकी वार्ता संपूर्ण।



શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ।

અપ-૬૧૫

ગુજરાતી ઐતિહાસિક  
વિભાગ

લેખક-પ્રકાશક  
શ્રીદ્વારકાદાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ  
શ્રીવિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી

—:૦:—

શ્રીવલ્લભાબ્દ ૪૬૩

મુદ્રક : કેશવલાલ સાંકળચંદ શાહ  
ધી વીરવિજય પ્રીન્ટીંગ પ્રેસ  
સલાપોસ કોસ રોડ-અમદાવાદ



## વૈષ્ણવોને નિવેદન

વૈષ્ણવો ! જો આજના યુગમાં તમારા સંપ્રદાય અને તેની વિશુદ્ધ સંસ્કૃતિની રક્ષાની સાથે, ગૌરવયુક્ત જીવન વ્યતીત કરવું હોય તો વિના વિલંબે નીચેની મહત્વપૂર્ણ યોજનાને સ્વીકારી ભાષા-સાહિત્યના પ્રચારને સમ્પૂર્ણ બળથી સ્વીકાર કરો.

એ તો ઇતિહાસથી સર્વ વિદિત છે કે જે દેશ, સમ્પ્રદાય કે સંસ્થામાં તેના પોષક ભાષા-સાહિત્યનો જેટલા અંશમાં અભાવ જોવામાં આવે છે તેટલા જ અંશમાં તેના અસ્તિત્વનો પણ ક્ષય અવશ્યભાવી હોય છે. અતઃ આપને પણ અમારી એજ પ્રાર્થના છે કે આ યોજના ઉપર સત્વર ધ્યાન આપી સક્રિય બનો—

પુષ્ટિમાર્ગના સક્રિય અસ્તિત્વને અર્થે તેના પ્રાકટ્ય કર્તા શ્રીમદ્ વલ્લભાચાર્યજીના સ્વરૂપના યથાર્થ માહાત્મ્યજ્ઞાનનો જનસમૂહમાં પ્રચાર કરવો અત્યાવશ્યક છે. આપત્રીના આદર્શ લક્તોની કૃતિઓ અને ચરિત્રોનો બાહ્ય આવિર્ભાવ મહત્વપૂર્ણ છે એમ સમજી અમે ‘શ્રીવલ્લભીય-સુધા’ અને ‘પુષ્ટિમાર્ગીય લક્ત-કવિ’ નામનો દ્વિત્વાત્મક ગ્રન્થ હવે પછી બહાર પાડવાની ઇચ્છા રાખીએ છીએ અને તેમાં આપનો નિમ્નાંકિત પ્રકારે સહકાર વાંછીએ છીએ.

૧. તમારી અને તમારા મિત્રોની પાસેના અપ્રસિદ્ધ હિન્દી, ગુજરાતી વલ્લભીય-સાહિત્ય (આચાર્યશ્રી અને તેમના વંશજો સંબંધીનું)ની અપેક્ષા.

૨. વલ્લભીય કવિઓની અપ્રસિદ્ધ પ્રામાણિક જનશ્રુતિ, એવં આંતર, બાહ્ય પૂરાવાઓની અપેક્ષા.

૩. લાગવગ ધરાવતાં ટ્રસ્ટફંડો અને સંસ્થાઓ પાસેથી આર્થિક સહાય.

[ આ સંબંધી વિશેષ જાણવા માટે પત્ર-વ્યવહાર કરો. ]

વિદ્યાવિભાગ—કાંકરોલી



શ્રોદ્ધારકેશો જયતિ ।

## પ્રસ્તાવના

—:૦:—

વ્રજભાષા વાર્તા—સાહિત્યનો ઈતિહાસ

અને

તેની પ્રામાણિકતા

—❦—

યદ્યપિ વિશ્વમાં સર્વોપરિ મનાતી આર્ય-સંસ્કૃતિની ભાવનાનુસાર,  
સ્વરૂપ—સમ્પન્ન બ્રહ્મ અને નામ—સમ્પન્ન  
વ્રજભાષા—સાહિત્યના વેદ જેમ સ્વતઃ સિદ્ધ મનાય છે તેમ સ્વ-  
પ્રચારનું મુખ્ય કારણ સમ્પ્રદાયની ભાવનામાં તેનું વ્રજભાષા—  
સાહિત્ય પણ એ જ પ્રકારે સ્વયંસિદ્ધ મનાતું  
આવ્યું છે; તથાપિ સાહિત્યિક—દૃષ્ટિએ તેનું નિર્માણ કાણે, કયા પ્રકારે,  
કેવા કાળમાં, કેમ કર્યું તે પરત્વે ગંભીર વિચારની આવશ્યકતા છે.

મુદ્રિત, અમુદ્રિત લગભગ સારાંચે ભાષા—સાહિત્યના મુખ્ય મુખ્ય  
ગ્રંથોના અધ્યયન એવં મનન પશ્ચાત્ વીસ વર્ષના મારા અનુભવે  
મને તે સંપત્તિ નિમ્ન—પ્રકારનો નિશ્ચય આપ્યો છે—

‘અર્થ તસ્ય વિવેચિતું નહિ વિભુર્વૈશ્વાનરાદ્વાક્યપતે,  
રન્યસ્તત્ર વિધાય માનુષતનું માં વ્યાસવચ્છીપતિઃ ।

દત્ત્વાઽઽજ્ઞાં ચ કૃપાવલોકનપદ્યુર્યસ્માદતોઽહં મુદા,

ગૂઢાર્થે પ્રકટીકરોમિ વહુધા વ્યાસસ્ય વિષ્ણોઃ પ્રિયમ્× ॥

× જે કે મૂઢ પુરુષો આ શ્લોકને પ્રક્ષિપ્ત અથવા તે આત્મશ્લાઘાવત્  
કહી જગદ્ગુરુ પરત્વે પ્રમત્ત પ્રત્યાપ કરે છે, તથાપિ એ અદ્વૈતીને  
ગીતા આદિનાં ‘તસ્માત્ક્ષરમતોતોઽહમક્ષરાદપિ ચોત્તમઃ’ તથા  
‘યદાં યદાં હિ ધર્મસ્ય’ ઇત્યાદિ સ્વસ્વરૂપ એવં સ્વપ્રાકટ્ય—  
પ્રયોજનદર્શક શ્લોકોનાં ધ્યાનમાં લે, તો તેમને પોતાના કરેલાં પ્રમત્ત  
પ્રત્યાપ ઉપર વિત્યાપ કરવાની નિતાન્ત આવશ્યકતા જણાઈ રહેશે.

મહાપુરુષો પૃથ્વી ઉપર પ્રકટ થઈ પોતાનાં સ્વરૂપ એવં પ્રાકટ્ય—



ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં દર્શાવેલી ભગવદ્ગાના પાલનને અર્થે એ વિભુવદ્ગાનને ભૂમિ ઉપર પ્રકટ થઈ પોતાના પ્રાકટ્ય-હેતુને નિમ્ન પ્રકારે સિદ્ધ કર્યો—

સ્વરૂપ વયે જ એ ‘વૈશ્વાનરે’ તત્કાલિન પ્રસિદ્ધ પાટનગરો એવં તીર્થ-સ્થળોમાં વારંવાર પધારી સ્વતેજથી પ્રથમ ત્યાંનાં માયા-વાદાચ્છાદિત આવરણોને ભસ્મીભૂત કર્યા. અનન્તર એ ‘વિભુ’એ વિશુદ્ધ બ્રહ્મવાદી શુદ્ધાદ્વૈત જ્ઞાનાકાશને પુનઃ નિર્મળ કર્યું. અને તેમાં વિદ્વાનો એવં સમ્રાટોદ્ધારા વારંવાર પોતે ‘કનક’<sup>x</sup> આદિના અભિ-ષેકથી સમ્માનિત થઈ ‘ભક્તિ-માર્તંડ’ રૂપે સ્થિત થયા.

એ દિવ્ય માર્તંડે સારાથે ભારતવર્ષમાં વ્યાપ્ત તે સમયની બાહ્યાભ્યંતર-રાજકીય એવં ધાર્મિક વિપ્લવરૂપ-અશાન્તિને પોતાનાં ઉગ્ર તત્વાદિ કિરણોથી નષ્ટ કરી, એક અત્યદ્ભુત કૃષ્ણ-ભક્તિના સ્રોતને સ્વ-આત્માનંદમાંથી બાહ્ય પ્રકટ કર્યો. અને તપ્ત તથા તૃપ્તિ જીવેને તેના પાન માટે આહ્વાન કર્યું.

વજ્રનરેશનંદનની ભાગવતોક્ત ગૂઢાર્થમયી તે ભક્તિનું પાન સર્વસાધારણ ને સુલભ કરવાને અર્થે એ ‘વાગીશે’ નાના ગ્રન્થોના નિર્માણદ્વારા ફલમાર્ગને નિશ્ચિત કર્યો. અને તે માર્ગ-વૃક્ષની શીતલ છાયામાં દમત્રા, પદ્મનાભ, કુંભન એવં સૂરદાસાદિ મહાનુભાવોને એકત્રિત કર્યા.

---

પ્રયોજનોને આત્મવિશ્વાસ ભર્યાં વાક્યો દ્વારા પ્રકટ કરી સામાન્ય પુરુષોથી પોતાની વિલક્ષણતાને લોકહિતાર્થે સૃષ્ટિમાં સિદ્ધ કરે છે, જેના અનેક ઈતિહાસો સાક્ષી-દાતા છે. —લેખક.

<sup>x</sup> હરિહરમદ્દના સં. ૧૬૬૦ ના લખેલા ‘વિષ્ણુસ્વામિચરિત’ નામક સંસ્કૃત ગ્રન્થમાં પણ ‘કનકાભિષેક’નો એક વધુ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત થયો છે.



અનન્તર તેમના યશોગાનથી સંહુષ્ટ થયેલા એ ‘રાસલીલૈક-તાત્પર્યે’ એમને વ્રજભક્તોના સમ્યન્ધવાળી રાસાદિ લીલાઓથી પ્લાવિત કર્યા. અને કૃત્તઃ તેમની દ્વારા એ વ્રજભક્તોના પૂર્ણ સંબંધને પ્રાપ્ત થયેલી રસમયી પ્રાકૃતિક-અકૃત્રિમ, સ્વાભાવિક-વ્રજભાષાને ભક્તિ સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં બંધી, તેને તેનું પ્રધાનપદ આપ્યું.

પશ્ચાત્ તે ભાષા-ક્ષેત્રને વિસ્તૃત બનાવવાને અર્થે એ ‘મહાપ્રભુ’એ સૂરદાસાદિની વાણીમાં સ્વસુધાને મિશ્રિત કરી તેનું ‘મણિ-કાંચન’ યોગરૂપે સમ્પાદન કર્યું.

એ પ્રકારે વ્રજભાષા-સાહિત્યનો આવિર્ભાવ કરી એ ‘વૈશ્વાનરે’ સર્વત્ર જનસાધારણમાં પણ ભાગવતના ગૂઢાર્થને સર્વાનુભવગોચર કર્યો. અને તે દ્વારા પોતાનું પ્રાકટ્ય-પ્રયોજન લોકમાં સિદ્ધ કર્યું.

તે સમયથી તત્કાલીન હિન્દી સ્વરૂપિણી એ વ્રજભાષા આપની છત્રછાયા નીચે ફલી ફૂલી અને સદાને માટે ‘વાકપતિ’ની કૃતજ બની. જે વાત આજના તટસ્થ વિદ્વાનો પણ મુક્ત કંઠે સ્વીકારે છે.<sup>૧</sup>

બસ, તે જ દિવસથી વ્રજભાષા સાહિત્યનો પૂર્ણ ભાગ્યોદય થયો.

આચાર્યશ્રીએ અપનાવેલી એ વ્રજભાષા સંસ્કૃત શબ્દો અને ક્રિયાઓથી જ પરિપૂર્ણ હોઈ સાહિત્યની દૃષ્ટિએ પણ સંસ્કૃતના પ્રચારમાં ઘણી ઉપયોગી નીવડી. અસ્તુ.

વૈશ્વાનરના અન્તર્ધાન બાદ તેમના કુમાર ‘શ્રીવિદ્યેશ્વરે’ તે પિતૃચરણથી પ્રોત્સાહિત થયેલ તે ભાષાસાહિત્યને અષ્ટછાપની સ્થાપના દ્વારા ગૌરવ શિખરે પહોંચાડ્યું. અને તેમાં સ્વયં પણ રચના કરીને,

૧ વ્રજભાષા સદા इनकी कृतज्ञ रहेगी । क्योंकि इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और उनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुंचा दिया । रामनरेश-त्रिपाठी । इन पितापुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बड़ा उपकार किया । मिश्रवन्धु.



‘ભાષા’ને ‘ભાષા’ કહી તિરસ્કૃત કરનારા વિદ્વાનોના સમક્ષ લબ્ધ આદર્શ વ્યાખ્યું.

યદાપિ આપે આચાર્ય-મર્યાદાની રક્ષણાર્થે સ્વરચનાને સંકેતાત્મક પરોક્ષ રૂપ આપ્યું તથાપિ તે દ્વારા પોતાના વ્રજભાષા પ્રતિના પક્ષપાતને ભક્ત-કવિઓ સમક્ષ વસ્તુતઃ સિદ્ધ કર્યો.

અનન્તર આપની વિદ્યમાનતામાંજ શ્રીગોકુલેશ, શ્રીરઘુનાયક આદિ આપના મુખ્યત્રોએ પણ ભાષામાં અનેક રચનાઓ કરી પદ્ય-સાહિત્યમાં વ્રજભાષાનું સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું, જેનો પ્રભાવ કાવ્ય-ક્ષેત્રમાં અખંડિત રૂપે આજપણ તાદૃશ છે.

આ પ્રકારે પિતા, પુત્ર અને તેમના વંશ તથા અષ્ટછાપાદિ સેવકોએ પણ વિશુદ્ધ વ્રજભાષા, વ્રજશૃંગાર અને વ્રજભક્તિને આર્યાવર્તના ખૂણે ખૂણે સ્થાપી સ્વ-સ્વપ્રાકટ્ય-હેતુને પૂર્ણ કર્યો.

આમ સાહિત્યની પદ્યશૈલીને પરિપૂર્ણ કરી અગ્નિકુમાર શ્રી-વિદુલેશ્વરે ભગવદ્વાજાથી પ્રેરિત થઈ વ્રજભાષાની ગદ્યશૈલી તરફ પણ મુખ્ય માંડ્યું.<sup>૧</sup> અને તેનો પોતાના જીવનકાલ પર્યન્ત મૌખિક પ્રચાર કર્યો.

અગ્નિકુમારના તિરોધાન અનન્તર એ ભાષાનેતૃત્વનું કાર્ય એમના

ચતુર્થ પુત્ર શ્રીગોકુલેશે સંભાળ્યું. કિન્તુ શ્રીગોકુલેશનું વ્રજ-ભાષાનેતૃત્વ પોતાના પિતા અને પિતા-ભાષાનેતૃત્વ મહત્તા સમય કરતાં વિલક્ષણ પ્રકારનું રહ્યું.

ઉક્ત ઉભય પિતા, પુત્રના સમયમાં તે ગણત્રીના સંસ્કૃત વિદ્વાનો દ્વારા જ કેવળ ભાષા પરત્વે ઉપેક્ષાભાવ રહ્યો, પરંતુ શ્રીગોકુલેશના સમયમાં તે વિધર્મી રાજ્યનો આશ્રય પ્રાપ્ત કરી હરીફ યાવની ભાષાએ રાષ્ટ્રપદ ધારણ કર્યું હતું. યદાપિ એનો પ્રચાર રાજ્ય ટોડરમલ્લદ્વારા હિન્દુઓના આર્થિક હિતને અંગે થયો હતો તથાપિ તેને સંસ્કૃત એવં વ્રજભાષાની પ્રતિસ્પર્ધા કરતાં શનૈઃ શનૈઃ સાહિત્ય-ક્ષેત્રને પણ સ્પર્શ કરવા માંડ્યો.



આ વિકટ પરિસ્થિતિને અનુભવી પરમ નિપુણ એવં દૂરદર્શી શ્રીગોકુલેશે પિતૃચરણ દ્વારા પ્રસ્કુરિત ગદ્યને જનસાધારણમાં પ્રચારિત કરી વ્રજભાષાને ઉત્તેજિત રાખવાને તત્કાલીન કથાની વાર્તા-ત્મક શૈલી ને અપનાવી. કેમકે તે સમયમાં લોકોની અભિરુચિ કથા, વાર્તા અને ધર્મપ્રતિ વિશેષ દેખવામાં આવતી હતી. પુરાણોની કથા વાર્તા દ્વારા લોકો ધર્મપ્રતિ એવા તો આસક્ત રહેતા કે તેને માટે તેઓ આવશ્યક પડ્યે પોતાનો પ્રાણ પણ અર્પણ કરતા.

એ પ્રકારે ભાષા અને ધર્મના અસ્તિત્વની સાથે અભ્યુદયાર્થે પણ શ્રીગોકુલેશે મૌખિક કથાત્મક પ્રચાર કર્યો, કિન્તુ મિથ્યા ક્રિયા, વાણી અને ધ્યાનને સર્વથા પરિત્યાગ કરનાર એ મહાપુરુષે પોતાના તે કાર્યનો વ્યક્તિત્વ, સમાજ કે સાંપ્રદાયિક પ્રતિષ્ઠાની રક્ષણાર્થે પણ આધુનિક ‘ જૂઠા પ્રચાર ’ ( Propaganda ) સાથે યત્કિયિત્ પણ સ્પર્શ થવા દીધો નહિ, કે જેવું કેટલાક દુર્બ્રાન્તો માને છે.

એ વાતના પુરાવામાં વાર્તાનાં અનેક દૃષ્ટાન્તોમાંના એકાદ એ આ પ્રકારે છે—

કૃષ્ણદાસ અધિકારીના વ્યક્તિત્વ અને સાંપ્રદાયિક સંબંધની પ્રતિષ્ઠાની રક્ષાર્થે પણ વેશ્યા, તથા બંગાલીની ઝોંપડીમાં આગ લગાડવી અને ભૂત થયા આદિના પ્રસંગોને છુપાવવા આવશ્યક હોવા છતાં તે છુપાવ્યા નથી. તેવી જ રીતે નંદદાસનો રૂપમંજરી સાથેનો પ્રેમ અને સનાતની દૃષ્ટિએ ખાનપાનમાં તેની સાથેનો વ્યવહાર પણ છુપાવવામાં આવ્યો નથી. ઇત્યાદિ.

ઉક્ત સત્યાંશની પૂર્તિમાં, શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાની માફક આચા-નિજવાર્તાથી વાર્તા ચંદ્રીની નિજવાર્તા, ધરવાર્તા, બેઠક ચરિત્ર પ્રત્યેની અનેક અને ભાવસિન્ધુને પણ સ્વગુરુ શ્રીગોકુલેશના શંકાઓનું સહજ મુખથી શ્રવણ કરી તેનું જે સંકલન કર્યું છે;

નિવારણ તેમાં આપ, ચોરાશી સંખ્યા કેમ ? વાર્તાનો મૂળ ઉદ્દેશ્ય શો ? અને વાર્તાની પ્રામાણિક ઉત્કૃષ્ટતા આદિ પ્રશ્નો ઉપર નિમ્ન પ્રકારે સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—



‘श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक तों बहोत हैं । और श्रीगो-  
कुलनाथजी महाराज आप श्रीमुखतें चौरासी वैष्णव की वार्ता (ही क्यों)  
कही ताको हेतु यह है जो-(ये) चौरासी वैष्णव कैसे हते,  
ये मुख्य हैं, जिनकुं श्रीमहाप्रभुजी आपु प्रेमलक्षणाभक्ति को दान किये  
हैं । सो कैसे जानिये सो गोविन्दस्वामी गाये हैं ’ जो-

‘भक्ति मुक्ति देत सबहिनको निजजनको कृपाप्रेम बरषत  
अधिकाई ।’

‘सो कृपाप्रेमवारे को कहा लक्षण है ? जो जिनसों श्रीठाकुरजी  
साक्षात वाही देहसों बोलत हैं, और बातें करत हैं, चाहियत सो  
मांगि लेत हैं ।’

‘और श्रीगोकुलनाथजी श्रीसर्वात्म की टीका में पद्मनाभदास को  
स्वरूप लिखें हैं । तातें ए चौरासी भगवदीय कैसेहैं जैसें भगवानके  
गुण गायेतें जीव कृतार्थ होत हैं तेसैं (इन) भगवदीन को जस गाये तें  
जीव कृतार्थ होत हैं । वाही तें श्रीसुकदेवजी नवमस्कंधमें सब राजान  
की कथा कही । सो वे राजा भगवदीय हुते । तातें प्रथम भगवदीय की  
कथा कहिये तो भगवतकथा को अधिकार होय । तहीतें श्रीसुकदेवजी  
नवमस्कंध में भगवदीयेको चरित्र कहिके पाछे दसमस्कंध में भगवान  
को चरित्र कहे । ताहांतें श्रीगोकुलनाथजी चौरासी वैष्णवकी वार्ता  
प्रकट कीनी ।’

‘और श्रीगोकुलनाथजी आप कथा कहते सो एक दिन श्रीगोकु-  
लनाथजी आप दामोदरदास संभरवारे की वार्ता करत हुते । तब एक



‘વૈષ્ણવ ને પૂછ્યો જો મહારાજ ! આજ કથા ન કહોગે ? તબ શ્રીગોકુલનાથજી આપ શ્રીમુખતેં કહ્યો જો આજ તો કથા કોં ફલ કહત હૈં । તાતેં ભગવદોયનકોં અવસ્ય ચોરાસી વાર્તા કહની ઔર સુનની જાતેં ભગવદ્ભક્તિ હોય, ઔર શ્રીઝાકુરજો કે ચરણારવિંદ મેં સ્નેહ હોય ઔર શ્રીનાથજી પ્રસન્ન હોય ।’ (સં. ૧૮૫૧ કો હસ્તલિખિત પ્રતિ સે ઉદ્ધૃત ।)

### આથી વાર્તાના વિવેચકો સ્પષ્ટ સમજી શકશે કે—

૧ આચાર્યશ્રીના કેવળ ચોરાસી જ સેવકો ન હતા જેમ ‘ભારત ધર્મકા ઇતિહાસ’માં મિ. શિવશંકર મિશ્ર લખે છે.

૨ વાર્તા શ્રીગોકુલનાથજીના સમયની છે તેના સુદૃઢ પુરાવા રૂપે સ્વયં શ્રીગોકુલેશે સંસ્કૃતમાં લખેલી શ્રીસર્વોત્તમજીની ટીકામાં પદ્મનાભદાસના તથા વલ્લભાષ્ટક ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકામાં આવેલા કૃષ્ણદાસમેધનઆદિના વાર્તાના જ અક્ષરશઃ આવેલા પ્રસંગોનાં દષ્ટાંતો વિદ્યમાન છે.

એથી એ વાત નિર્વિવાદ છે કે શ્રીગોકુલેશના ગુજરાતી શિષ્યોએ શ્રીગોકુલેશની પાછળથી તેની રચના કરી નથી, જેમ વ્યક્તિત્વનો રક્ષાને અર્થે સ્વં લખ્ધપ્રતિષ્ઠ પં. રામચંદ્ર શુક્લે એમના ‘હિન્દી સાહિત્ય કા ઇતિહાસ’માં તથા નાગરી પ્રચારિણી સભા-કાશી દ્વારા પ્રકાશિત હિન્દી શબ્દકોષની પ્રસ્તાવનામાં વાર્તા પ્રતિ એક અસહ્ય અન્યાય પૂર્ણ લેખ લખીને જાણાવ્યું છે તેમ— જો કે અમે એ સંબંધી એમના મન્તવ્યને સંપૂર્ણ જાણવાને તથા તેને દૂર કરાવવાને અર્થે સમગ્ર પ્રમાણો મોકલવા તેમની સાથે અંગ્રેજીમાં પત્રવ્યવહાર પણ કર્યો હતો છતાં નાગરી પ્રચારિણીના અનેક પત્રોદ્વારા તેમની બિમારીની જ ખબરો આવતી રહેવાથી અમારો એ પ્રયત્ન સફળ ન થયો. અને હાલમાં જ તેમના સ્વર્ગવાસનું સાંભળી ચિત્તને ખેદ થયો. અસ્તુ.



૩ વાર્તાની રચના વલ્લભ સમ્પ્રદાયની ગાદીનો મહિમા વધારવા અર્થે જૂઠા પ્રચારના રૂપમાં કરવામાં આવી નથી, જેમ પં. રામચંદ્ર શુક્લે લખ્યું છે, કિન્તુ ભગવદ્પ્રાપ્તિનાજ ઉદ્દેશ્યથી એક ભક્તિની દૃષ્ટિએ જ તેની વાસ્તવિક અનુભવ સિદ્ધ રચના કરવામાં આવી છે-અતએવ તેમાં જ્ઞાતિ, ગૌરવ, સંબંધ આદિ ભૌતિક તત્ત્વોના પક્ષાગ્રહની ઉપેક્ષાજ રહેલી છે. કેમકે-દૃષ્ટાંત રૂપે-

નંદદાસજી ચાહે સનાદ્ય હો કે સરયૂપારિણ, શ્રીગોકુલનાથજીને તેમજ પુષ્ટિ સમ્પ્રદાયને તેમના જ્ઞાતિસંબંધથી કોઈ ગૌરવ અથવા અન્ય લાભ નથી. તેવીજ રીતે નંદદાસજી ચાહે રામાયણ રચયિતા તુલસીદાસના ભાઈ હો કે અન્ય તુલસીદાસના, તેથી પણ સમ્પ્રદાયને જરાયે લાભ કે હાનિ નથી. કોલકું સમ્પ્રદાયની દૃષ્ટિએ તો મર્યાદા પરમ ભક્ત તુલસીદાસની કક્ષા પણ ગૌણજ છે, કેમકે તેમણે મીરાંની માફક સ્વધૃષ્ટિ શ્રીરામચંદ્રજીને અનેક પરિશ્રમ કરાવ્યા છે જેનો પુષ્ટિદૃષ્ટિથી તો બહિષ્કારજ છે. આથી પાંડકો સમજી શકશે કે વાર્તામાં ભૌતિક જૂઠો સ્વાર્થમય પ્રચાર નથી જ.

૪ સમ્પ્રદાયમાં શ્રીગોકુલેશ અને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ જેવા વાર્તાને શ્રીસુખોધિનીજીની કથાના ફલરૂપે કહે છે. અર્થાત્ પુષ્ટિમાં સાધન અને ફલનો અભેદ હોઈ ઉત્તમ અને ગૌણતાની સમાન આને ફલરૂપે કહેવું નથી, કિન્તુ આગળ ઉપર 'વાર્તા-સાહિત્યનો વાસ્તવિક ઉદ્દેશ્ય' એ પેરેગ્રાફમાં કહેવાશે તેમ તે કેવળ સુધાના અનુભવ રૂપ હોઈ શ્રીસુખોધિની આદિ ભગવદ્લીલાનિર્દર્શક પરમોત્કૃષ્ટ ગ્રન્થોનાયે અનુભવ-સારરૂપ છે. અતઃ પ્રાં વાર્તા-સાહિત્ય પ્રથમ ભાગની પ્રસ્તાવનામાં પ્રમાણરૂપ શબ્દાત્મક સંસ્કૃત સાહિત્યના ફલરૂપે આપવાકયો રૂપ પ્રજ્ઞભાષા-વાર્તા-સાહિત્યને એ માટે કહેવામાં આવ્યું છે કે-વિભિન્ન શ્રેણીના જીવોની સાંપ્રદાયિક સેવા, સ્મરણ, સિદ્ધાંત અને આચારવિચાર સમેત તેના ફલના અનુભવ પરત્વેની તમામ શંકાઓનું



વિવિધ સક્રિય સંતોષપ્રદ સમાધાન સંસ્કૃત સાહિત્ય દ્વારા પૂર્ણ થઈ શકતું નથી જેવું વ્રજભાષા વાર્તા-સાહિત્ય દ્વારા. બસ, એથીજ એની ફલરૂપતા સ્વતઃસિદ્ધ છે, તોપણ તેથી સંસ્કૃત-સાહિત્યની ગૌણતા થતી નથી, કેમકે એ ઉભય સાહિત્ય બીજા અને ફલની માફક પરસ્પર આધાર-આધેય રૂપે રહેલું છે, જેમ બીજથી ફલ અને ફલથી બીજનું અસ્તિત્વ છે. અતએવ જેમ ઈશ્વરની સર્વરૂપા શક્તિનું લીલા-ભાવના પરત્વેજ પ્રાધાન્ય ગ્રાહ્ય છે વસ્તુતઃ તો ઈશ્વરની સાથે તેનો અભેદ જ શુદ્ધાદૈતરૂપે રહેલો છે તેમ સુધા-આચાર્યશ્રીના સ્વરૂપાનુભવ પરત્વેજ વ્રજભાષા-વાર્તા-સાહિત્યને શ્રીસુખોદિનીજી આદિ ગ્રંથોની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવેલી છે, અને તેની વાસ્તવિકતાનું જ્ઞાન પણ આચાર્યશ્રીના સ્વરૂપના નિગૂઢ જ્ઞાનની સાથે સંકળાયેલું છે. અતઃ આચાર્યશ્રીના મૂળ સ્વરૂપથી વિમુખ પુરુષ-પછી ભલે તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપમાં પૂર્ણ આસક્ત કેમ ન હોય-કદી પણ આ વસ્તુનો વાસ્તવિક અનુભવ પ્રાપ્ત કરી શકશે નહિ એમ જાણીને જ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ વ્રજભાષા વાર્તા-સાહિત્ય પ્રતિ આ અવિરત શ્રમ કર્યો છે. જ્યારે દુરાગ્રહી અને હઠાગ્રહી સાંપ્રદાયિકો એ શ્રમને સમજશે ત્યારે વાર્તાપ્રતિના તમામ આક્ષેપો સહજ દૂર થઈ જશે, એટલું જ નહિ પરંતુ તે વાર્તા ભક્તિ અને ઐતિહાસિક હિન્દી સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં પણ પરમ આદરણીય બની અગ્રસ્થાનને વિના વિરોધે જરૂર પ્રાપ્ત કરશે જ એમ અમે માનીએ છીએ.

ઉક્ત પ્રકારના બીજા પણ અનેક પુરાવાઓ-કે જે અમે આગળ ઉપર આપીશું-શ્રીગોકુલનાથજીના સત્ય કથનને સિદ્ધ કરનારા ભાષા-સાહિત્યમાં વિદ્યમાન છે; અતઃ વ્રજભાષા વાર્તા-સાહિત્યની પ્રામાણિકતા પણ નિઃસંદિગ્ધ જ છે.

અસ્તુ..

પિતા અને પિતામહના અથાગ પ્રયાસે તે સમયનો હિન્દુ રાજા અને પ્રજાનો વર્ગ તો બહુધા વૈષ્ણવજ હોતો, ઉપરાંત અહિન્દુ



રાજ્ય પ્રજાઓમાં પણ પ્રાયઃ વૈષ્ણવી પ્રભાવ વિદ્યમાન હતો. અતઃ શ્રીગોકુલેશે એ સમયનો સદુપયોગ કરી વ્રજભાષાના પ્રચારની સાથે સાથે વૈષ્ણવી ભક્તિનો ચોમેર અનુભવ ફેલાવવાને અર્થે તત્કાલીન સમસામયિક મહાપુરુષોનાં શિક્ષાપ્રદ એવાં મનોરંજક પ્રત્યક્ષ દષ્ટાન્તોનું પણ અવલંબન કર્યું.

એ પ્રકારે શ્રીગોકુલેશે વ્રજભાષાના ગૌરવને સાચવી તેના પ્રચાર-આહુત્ય દ્વારા સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં યાવનીભાષાનું મુખમર્દન કર્યું. ફલતઃ તે યાવની-ભાષા રાજ્યના દક્ષિણેમાંજ સ્તમિત રહી.

આમ છતાં શ્રીગોકુલેશનો વાર્તા-સાહિત્યના પ્રચારનો વાસ્તવિક ઉદ્દેશ્ય જુદો જ હતો. યદ્યપિ શ્રીગોકુલેશે વાર્તા-સાહિત્યનો ભાષા અને કૃષ્ણભક્તિના પ્રચારને અર્થે વાસ્તવિક-ઉદ્દેશ્ય ઉપર કહી ગયા તેમ વાર્તા ને કથાનક શૈલી આપી સરળ રાખી અને તે દ્વારા સર્વ સાધારણ ને આકર્ષ્યા તથાપિ તેની ફૂટરચના દ્વારા તેના અર્થ ગાંભીર્યમાં મૌલિકતા સ્થાપી.

‘માહાત્મ્ય જ્ઞાનપૂર્વસ્તુ સુદૃઢઃ સર્વતોઽધિકઃ  
સ્નેહો ભક્તિરિતિ પ્રોક્તઃ ।’

એ આચાર્યશ્રીની ભક્તિની વ્યાખ્યાને શ્રીગોકુલેશે વાર્તાના અક્ષરે અક્ષરમાં ઓતપ્રોત કરી ચરિતાર્થ કરી છે. અને તે દ્વારા પુષ્ટિભક્તિના વાસ્તવિક સ્વરૂપનો દૈવીજીવોને અનુભવ કરાવ્યો છે. વાર્તામાં પુષ્ટિભક્તોના યથાર્થ સ્વરૂપ વર્ણન દ્વારા વસ્તુતઃ આચાર્યશ્રી એવં પ્રભુચરણના સ્વરૂપ-સામર્થ્યનું જે સુનિપુણ પ્રતિપાદન કર્યું છે તે અનુભવતાં શ્રીગોકુલેશની આચાર્યશ્રી પરત્વેની પ્રગાઠ અનુભવવૈકલ્યે જુદો જાસો પરિચય થાય છે, અને વિના પ્રયાસે એમ કહેવાઈ જવાય છે કે શ્રીગોકુલેશ પણ શ્રીસૂરની માફક મહાન ફૂટનીતિજ હતા.



કિન્તુ ખેદ છે કે આધુનિક પાશ્ચાત્ય કેળવણીના સામ્પ્રદાયિક અર્થદગ્ધ વિદ્યાર્થીઓ આ આધ્યાત્મિક તત્ત્વદર્શક વાર્તાઓને કેવળ ભૌતિક પાશ્ચાત્ય ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જોઈ તેનો ઉપયોગ તુચ્છ સ્વાર્થ પરત્વે જ કરવા ધારે છે.

અમે પહેલા ભાગની પ્રસ્તાવનામાં આર્યાવર્તના ઇતિહાસની વ્યાખ્યા આપતાં એ બતાવ્યું છે કે પ્રાચીન આર્યાવર્તનો ઇતિહાસ પરંપરાપ્રાપ્ત ઉપદેશો દ્વારા ચતુર્વિધ વાર્તાની પૌરસ્ત્ય પુરુષાર્થ પ્રતિપાદન કરવાવાળો છે, એટલે ઐતિહાસિક શૈલી તેમાં આવશ્યકતાથી અધિક ભૌતિક ગાથાઓનો સમાવેશ જોવામાં આવતો નથી. અરે ! એટલું જ નહિ પણ શ્રી શંકર, રામાનુજ, નિમ્બાર્ક અને શ્રીવલ્લભ જેવા મહાન આચાર્યોના પ્રાકટ્ય-સંવતો તકનો ઉલ્લેખ પ્રાચીન તત્કાલીન પુરુષો દ્વારા થયેલો નથી, કેમકે આધ્યાત્મિક બાળ્યતોમાં તે સમયના પુરુષો તેને નિર્રર્થક સમજતા હતા.

આમ છતાં વાર્તા-સાહિત્ય ઇતિહાસ-ક્ષેત્રથી વિમુખ રહ્યું નથી. તે સાહિત્યમાં શ્રીગોકુલનાથજીથી પણ વિશેષ શ્રીહરિરાયજીએ ઐતિહાસિક સાધનો એટલાં તો પરિપૂર્ણ અને પરિવર્દિત કર્યાં છે કે તે દ્વારા નવીન ઇતિહાસલેખકો પણ સમય આદિને સ્થિર કરી શકે છે.

અલગત, વાર્તાની શૈલી કથાનકરૂપ હોવાથી તે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ કમશઃ એવં પરિપૂર્ણ નથી. દૃષ્ટાંતમાં—કૃષ્ણદાસનો બંગાલીઓને કાઢવાનો સમય અને બંગાલીઓનો અકબરના દરબારમાં ફરિયાદનો સમય એક ન હોવા છતાં વાર્તાના પ્રસંગમાં તેની રૂપરેખા અવિચ્છિન્ન રાખવામાં આવી છે. તથાપિ ઇતિહાસનો તત્કાલીન અન્ય ઐતિહાસિક ગ્રન્થોના આધારે તેને અલગ અલગ કરી શકે છે. અસ્તુ.



શ્રીગોકુલેશ પ્રથમ તો વ્રજભાષાનો પ્રચાર પિતૃચરણની માફક  
 મધ્યભારત અને ગુજરાત આદિ સ્થળોએ વાર્તા  
 પ્રસંગાત્મક વાર્તાનું કથાદ્વારા મૌખિક રૂપે નિયમિત કરતા, કિન્તુ  
 નવ્ય સાહિત્યાત્મક જેમ જેમ યાવનીભાષા-ઉર્દૂ-નો વિસ્તાર  
 સંસ્કરણ રાજ્યના આશ્રયથી વધવા માંડ્યો તેમ તેમ  
 આપ પણ સચેત થયા, અને તે ધાતક પ્રચાર  
 લવિષ્યમાં વ્રજભાષા ઉપર અણધાર્યો પ્રહાર ન કરે એને માટે આપે  
 ઉક્ત વાર્તાઓના વિવિધ પ્રસંગોનું સ્વશિષ્ય એવં મહાનુભાવ શ્રીહરિ-  
 રાય મહાપ્રભુ પાસે નવ્યસાહિત્યિક સંસ્કરણ કરાવ્યું. ત્યારથી એ વાર્તાઓ  
 અન્ધરૂપે પ્રસિદ્ધ થઈ. [ વાર્તાનાં સંસ્કરણો સંબંધી વિશેષ જુઓ  
 આ પુસ્તકમાં આવેલું પ્રાથમિક હિન્દી વક્તવ્ય ]

એ સમયે વાર્તાત્મક સુપ્રસિદ્ધ વૈષ્ણવોની ચોર્યાશી અને  
 અમોઘાવન સંખ્યાઓનું પણ નિર્માણ થયું. અને તે શ્રીહરિરાયજી  
 દ્વારા થયેલું હોવાથી તેમાં શ્રીગોકુલનાથજીના નામનો પણ ઉલ્લેખ  
 પ્રેરણે થયો.

‘વાર્તાઓ’ શ્રીગોકુલનાથજીની રચેલી છે તેના બીજા  
 પણ બાહ્યાભ્યંતર પુરાવાઓ આ પ્રકારે પ્રાપ્ત થાય છે—

બાહ્ય પુરાવાઓ—

૧ આર્યાવર્તના ખૂણે ખૂણે વ્યાપ્ત હસ્તલિખિત તે વાર્તાના પ્રાચીન  
 ઉપલબ્ધ ગ્રંથોમાં ‘શ્રીગોકુલનાથજી રચિત’ એ શબ્દો છૂટથી  
 વાપરેલા જોવામાં આવે છે.

૨ શ્રીગોકુલનાથજીની ઉપસ્થિતિમાં શ્રીગોકુલમાંજ લખાયેલું  
 વ્રજ સં. ૧૬૯૭ (ગુ. સં. ૧૬૯૬) ના ચૈત્ર સુદ પનું પુસ્તક  
 કાંકરોલી સરસ્વતીભંડારમાં પ્રાપ્ત થાય છે, જેનો બ્લોક પણ આ  
 પુસ્તકમાં આપવામાં આવ્યો છે.



૩ શ્રીગોકુલનાથજીના સમસામાયિક શ્રીદેવકીતંદ્રજીએ ‘પ્રભુચરિત્ર-  
ચિંતામણિ’ નામક પોતાના ગ્રન્થમાં તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૪ પ્રભુચરણના અનન્ય સેવક અને શ્રીગોકુલનાથજીના સહયોગી  
અલીખાન પઠાણરચિત ‘ચોર્યાશી વૈષ્ણવ’નું પદ, જે સર્વત્ર  
પ્રસિદ્ધ છે.

૫ શ્રીગોકુલેશના સમસામાયિક એવં શિષ્ય મહાનુભાવ શ્રીહરિ-  
રાયજીનો ‘ભાવપ્રકાશ’ તેનો એક વધુ અને સૌથી જખ્ખર પુરાવો  
છે, કે જેનો કાકાવલ્લભજીએ પોતાના ચોર્યાશીના ઘોળમાં પણ ઉલ્લેખ  
કર્યો છે.

૬ શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય શ્રીવિકુલનાથ ભટ્ટે સ્વરચિત ‘સંપ્રદાય-  
કરપદ્ધત્તમ’ નામક ગ્રન્થમાં શ્રીગોકુલનાથજીના રચેલા ગ્રન્થોનાં નામોમાં  
તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૭ સમસામાયિક શ્રીનાથદેવનો સંસ્કૃત અનુવાદ તેનું એક  
અકાલ્ય પ્રમાણ છે.

૮ ષષ્ઠપુત્ર શ્રીચદુનાથજીરચિત ‘દિગ્વિજય’ જેની રચના સં.  
૧૬૫૮માં થઈ છે તેની સાથે વાર્તાની સંપૂર્ણ વિગતો પ્રાયઃ બંધબેસતી  
આવે છે.

૯ વાર્તા ઉપરની અચલ શ્રદ્ધાને પ્રકટ કરતા શ્રીગોકુલેશના  
સમયથી અઘાપિપર્યંત અનેક મહાનુભાવો જેવા કે—અલીખાન,  
મોહન, શ્રીનાથ, માધો, શ્રીહરિરાયજી, નિજજન, શ્રીદારકેશજી, કાકા  
વલ્લભજી, દાસવલ્લભ, ભારતેન્દુ હરિશ્ચન્દ્ર અને દયારામ આદિના  
ગદ્યપદ્ધત્તમક સંસ્કૃત, વ્રજ એવં ગુર્જરભાષીય અનુવાદો.

**આંતર પુરાવાઓ—**

૧ વાર્તા પરત્વે વલ્લભવંશના મહાનુભાવોમાં પણ અખંડિત  
શ્રદ્ધાને સ્થાન.

૨ વાર્તાનો સર્વગ્રાહ્ય પ્રચાર.



૩ વાર્તામાં રહેલી સેવા, સિક્કાંત આદિની સૂક્ષ્મ ખારીકિઓ જે આજપર્યંત ગોસ્વામિબાલકામાં પણ મહાનુભાવોથી અતિરિક્ત કાઈ નથી જાણતું.

૪ વલ્લભવંશનાં ધરોની સૂક્ષ્મ અપ્રસિદ્ધ વિવિધ રીતભાંતો.

૫ સમય સમય ઉપરનાં પ્રાસંગિક અપ્રસિદ્ધ પદો અને 'મુકુન્દ-સાગર' જેવા અપ્રાપ્ય અચાત ગ્રન્થોનો ઉલ્લેખ.

૬ વાર્તામાં આવેલ રીત, રિવાજ, વંશજો અને પંચમહાલ આદિના ઉલ્લેખોની વિષ્ણુમાનતા.

ઉપર્યુક્ત કથિત બાહ્યાભ્યંતર પુરાવાઓથી સંપ્રદાયને જાણવા-વાળો મનુષ્ય સહજ સમજી શકે છે કે-કોઈપણ વલ્લભવંશીય પ્રતિભાશાલી વ્યક્તિની રચના વિના 'વાર્તાઓ' સર્વગ્રાહ તથા ભૂત એવં વર્તમાન તત્કાલીન સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ રહસ્યપૂર્ણ પ્રસંગો અને ચમત્કૃતિઓથી પરિપૂર્ણ થઈ શકે નહિ જ, વળી અલીખાન અને શ્રીહરિરાયજી જેવા સમસામયિક મહાનુભાવોના હૃદયને પણ આકર્ષી શકે નહિ.

આથી વિશેષ શું હજીયે વાર્તાની પ્રામાણિકતા વિષે કહેવું બાકી રહે છે કે ?

હાં ! તો આધુનિક સાહિત્યકારો શ્રીગોકુલેશને વાર્તાના ગદ્યલેખક રૂપે માને છે, કિન્તુ તે ગૌરવાસ્પદ હોવા છતાં મીત્રાકુલેશ વ્રજ-અરુચિકર છે. આપને લેખક ન કહેતાં ગદ્ય-ભાષાના ગદ્ય લેખક રચયિતા અથવા આલેખિતા કહેવા નહીં શકાય કે આલેખિતા ? છે, કેમકે આધુનિક ગદ્યશૈલીનો પ્રથમ સાહિત્યિક-આવિર્ભાવ આપના દ્વારા જ થયેલો છે. જો કે તે પહેલાનુંયે ગદ્ય પ્રાપ્ત થાય છે. તથાપિ તે આધુનિક શૈલીના સુતરપ નથી.

શ્રીગોકુલેશની મેઘસૈલી શ્રીહરિરાયજીના સમયમાં પરિમાર્જિત થઈ દારોશજીના સમયમાં આધુનિકતાને પ્રાપ્ત થઈ. એથી શ્રીગોકુલેશને જ વનભાષામંત્રના આલેખિતા કહી શકાય.



શ્રીગોકુલેશ પછી શ્રીહરિરાયજીએ ભાષાનું નેતૃત્વ સંભાળ્યું.  
**શ્રીહરિરાયજી** અને આપે આચાર્યશ્રીના સમયની વિશુદ્ધ  
 અને પ્રજાભાષાનું પુનઃ નવનિર્માણ કર્યું, અર્થાત્  
**પ્રજાભાષા-સાહિત્ય** ભાષામાં ઘુસી ગયેલાં યાવની શબ્દોને જ્યાં  
 જ્યાં દેખાયા ત્યાં ત્યાંથી દૂર કરી તેને સંસ્કૃતનો પૂર્ણ સહયોગ  
 આપ્યો, અને આચાર્યશ્રી એવં પ્રભુચરણના સેવકોની માફક આપે  
 પણ ભાષા-પદમાં પ્રાયઃ સંસ્કૃતના શબ્દોનો જ પ્રયોગ કર્યો. એ રીતે  
 પદને સુવ્યવસ્થિત કરી ગદ્યનું પણ સુરમ્ય નવ્ય સંસ્કરણ કર્યું અને  
 વાર્તાઓ ઉપરનું 'ભાવપ્રકાશ' ટિપ્પણ, પ્રાકટ્ય-વાર્તા તથા અનેક-  
 વિધ ભાવનાઓ આદિને તેમાં યોજ્યાં.

આપના ગદ્યમાં વ્યાકરણ અને શબ્દરચનાઓની પણ અનેક  
 ચમત્કૃતિઓ જોવામાં આવે છે.

પ્રજાભાષાની માફક આપે તેની આંતર સંબંધિની ગુર્જર ભાષાને  
 પણ સંભાળી અને પદમાં તેને પણ સ્વરચના દ્વારા અદ્ભુત અને  
 અપરિમિત સ્થાન આપ્યું.

પ્રાકૃત વૈદિકથી પરિવૃત્ત બનેલી સંસ્કૃત ભાષાની જેમ ગાઢ  
 અંતરંગી પ્રજાભાષા છે તેમ તે પ્રજાભાષાના અતિશય નિકટ સંબંધવાળી  
 ગુર્જર ભાષા હોઈ આપે પ્રજાભક્તિમાં તેનો પણ પ્રભુચરણની માફક  
 સમાદર કર્યો, અને તે દ્વારા ગુજરાતીઓના મનને આકર્ષી ત્યાં  
 પ્રજાભાષાના પ્રચારને સૌથી વિશેષ વ્યાપક બનાવ્યો.

એ રીતે શ્રીહરિરાયજીએ સંસ્કૃત, પ્રજા અને ગુર્જર એમ ત્રિવિધ  
 ભાષાને ભક્તિ-સાહિત્યમાં સ્થાન આપી સર્વત્ર ત્રિવેણી વહેવડાવી.

**શ્રીહરિરાયજીની** પછી શ્રીદારકેશજીએ એ ત્રિવેણીનું નેતૃત્વ  
 સંભાળ્યું અને તેમાં અનેક પ્રકારની નવીન  
**શ્રીદારકેશજી** રચનાઓને સ્થાન આપી ગદ્ય પદાત્મક રચનાઓ  
 કરી. આપના સમયમાં પ્રજાભાષાનો પૂર્ણદિવ્ય  
 અને પ્રજાભાષા રહ્યો, તથાપિ પછીથી તેનું નેતૃત્વ વ્યાપકરૂપે



કાઈએ ન સંભાળ્યું એટલે ગદ્યસાહિત્યમાં ઉર્દૂ મિશ્રિત હિન્દીના પ્રચારનું જોર વધ્યું.

જો કે આપના પછી પણ કાકાવલ્લભજી, શ્રી ચદુજી, શ્રીમદુજી અને શ્રીગોપિકાલંકારજી આદિ એ શુદ્ધ વ્રજભાષાના ગદ્યનો પ્રચાર કર્યો, કિન્તુ તે કેવળ અમુક અંશમાં વચનામૃતરૂપે હોવાથી વિસ્તૃત ન રહ્યો. પરિણામે આજ ગદ્યમાં નવીન હિન્દીએ પ્રાધાન્યપદ લીધું. તથાપિ એ દિવ્યવલ્લભવંશમાં હજી પણ વ્રજભાષાનો મૌખિક પ્રચાર ગૃહવ્યવહારમાં તો ચાલુ છેજ. વળી પદ્યમાં તો હજીયે આજની હિન્દી વિશુદ્ધ વ્રજભાષાના સામ્રાજ્ય ને નષ્ટ કરવામાં કામચાપ થઈ નથી જ એમ આધુનિક લેખકો પણ સ્વીકારે છે. વ્રજભાષા પદ્ય-સાહિત્યમાં તો એ દિવ્ય વલ્લભવંશની મહાનુભાવ વહુએટીઓનું સ્થાન પણ અનેરું છેજ, જેનું વિસ્તૃત વિવેચન અમે ‘પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત કવિ’ નામક ગ્રન્થમાં હવે પછી આપીશું.

આ પ્રકારે વ્રજભાષા જગદ્ગુરુ શ્રીવલ્લભાધીશ્વર અને તેમના વંશની પૂર્ણ ઋણી બની.

આ વિદ્વાતપૂર્ણ વિશુદ્ધવંશે જેમ સંસ્કૃતને પૂર્ણ અપનાવી વિદ્વાનોને મોહિત કર્યા તેમ વ્રજભાષાના નેતૃત્વ દ્વારા સર્વ સાધારણને પણ પૂર્ણ આકર્ષિત કર્યા.

એ પ્રકારે શ્રીભાગવતમાં રહેલી નિગૂઢ ભાવમયી નિર્ગુણ ભક્તિના અખાદિત શીતલ, સુગંધિત સ્રોતને વ્રજભાષા દ્વારા સારાએ ભારતવર્ષમાં અવિચ્છિન્નરૂપે વહેવડાવી, તે વિશુદ્ધ વંશે આચાર્યશ્રીના ઉક્ત પ્રાકટ્ય-પ્રયોજનને જગત સમક્ષ સિદ્ધ કર્યું. અને તેથી શ્રીવલ્લભ કે વંશ મેં સવહો વલ્લભ રૂપ’ એ માન્યતા સર્વ સાધારણમાં પણ આજસુધી ચાલી આવી.

વલ્લભજયંતી

સં. ૧૯૯૭

કાંકરેલી.

આચાર્ય ચરણનુરાગી-

દ્વારકાદાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ

‘સમ્પાદક’-વાર્તા-સાહિત્ય



## —: ઉપકાર—સ્મરણ :—

કૃપાપીયુષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રીકૃત્તીયગૃહતિલ-  
કાચિત શ્રીવજ્રભૂષણલાલજી મહારાજ અને આપશ્રીના અનુજ ગોસ્વામી  
શ્રી ૬ શ્રીવિદ્વત્નાથજી મહારાજશ્રીના કેવળ અનુગ્રહ બળનું સ્મરણ  
કરીને દૂકામાં મિત્રવર્ય શ્રીકણ્ઠમણિ શાસ્ત્રી એવં વીસનગરનિવાસી  
શ્રીપુરુષોત્તમ શાસ્ત્રીનો પણ પૂર્વવત્ ઉપકાર—સ્મરણ કરીશું, કેમકે  
શ્રીકણ્ઠમણિજી દ્વારા આ ‘અષ્ટછાપ’નું પુસ્તક પ્રકાશન થયું એવં  
આધુનિક પદ્ધતિથી રમ્ય બની શીઘ્ર બહાર પડ્યું, તેમજ શ્રીપુરુષો-  
ત્તમજીના શુભ પ્રયાસે આ પુસ્તકની છપાઈમાં નિમ્નાંકિત વીસનગર-  
નિવાસી સદ્ગૃહસ્થોએ પ્રાથમિક આર્થિક મદદ પ્રદાન કરી. અતઃ  
તેમનો પણ ઉપકાર અવિસ્મરણીયજી કહી શકાય.

છપાઈ કાર્ય ચાલુ થયા પછી સિદ્ધપુરનિવાસી ભગવદીય શ્રી  
બલદેવદાસ ભાઈએ પણ યથાશક્તિ આ કાર્યમાં આર્થિક મદદ સ્વયં  
કરી અને અન્ય વૈજ્ઞાને દ્વારા પણ કરાવી. અતએવ એમનો  
પણ ઉપકાર માનીશું જ.

આ રીતે મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યના અનુગ્રહ બળે જ લડાઈની  
મેંધવારીમાં આ બૃહદ્ અન્ય બહાર પાડવાને ઉક્ત સંજ્ઞાનોની  
સહાયથી અમે પ્રારંભાયા છતાં આર્થિક ત્રુટી વધુ ને વધુ દેખાતી  
ગઈ. પરિણામે મૂંઝવણ ઊભી થઈ ત્યારે એ ‘સર્વશક્તિધર્મ વાગીશે’  
અમને પુનઃ શેઠ ઉજ્જમશી પીતાંબરનાં વંશપત્ની જે યાત્રાર્થે અહીં  
આવેલાં હતાં તેમની દ્વારા મદદ કરાવી ઉત્સાહિત કર્યા. તથાપિ પૂર્તિ  
ન અનુભવાતી જોઈ અમે પ્રથમ ભાગના વેચાણનું દ્રવ્ય પણ આ  
કાર્યમાં લગાવ્યું, પરંતુ આ ‘અષ્ટછાપે’ દામોદરસીલાનું સ્મરણ



કરાવવા માંડ્યું અને જેમ જેમ આર્થિક મદદ મળતી ગઈ તેમ તેમ ખર્ચની પૂર્તિમાં બે આંગળનું છેદું રહેતું જ ગયું. છેવટે અમને હોતો-ત્સાહી ભેષ એ કૌતૂહલપ્રિય પ્રભુએ આ કૌતુકને સમાપ્ત કર્યું અને શેઠ રમણલાલ દાતાર પેટલાદવાળાને પચાસ પુસ્તકોના અગાઉ ગ્રાહક બનાવરાવી કાર્યને લગભગ સમાપ્ત કર્યું.

જો કે આ કૌતુકે થોડીવાર માટે અમને મૂંઝવણ ઊભી કરી તથાપિ આખરે શ્રીવલ્લભાધીશ પ્રત્યેની અમારી શ્રદ્ધાને ફલીભૂત કરી સદાને માટે પરમાનંદનું દાન પણ કર્યું. અસ્તુ.

અર્થપ્રદાન કરવાવાળાઓનાં શુભ નામોની યાદી—

- ૧૦૦) શેઠ માણેકલાલ વ્રજલાલ મોદી ૫૧) શેઠ ઉજ્જમશી પીતાંબર  
વીસનગર પાટણ  
૫૦) શેઠ વ્રજલાલ મોતીલાલ ૨૫) બાઈ મણી તે શેઠ જોડાલાલ  
વીસનગર મંગનલાલની વિધવા—  
૫૦) બાઈ અમથી તે શેઠ મયુરદાસ લીલા- સિદ્ધપુર  
ચંદની દીકરી હા. શેઠ વ્રજલાલ ૫) મનહરલાલ મટુભાઈ મુંબાઈ  
વીસનગર ૫) બલદેવદાસ નાથુરામ સિદ્ધપુર  
૩૦૦) દાતાર શેઠશ્રી રમણલાલ કેશવલાલ ૫) રુધનાથદાસ ગોવિંદરામ  
પેટલાદ લાલચંદ સિદ્ધપુર

સાંપ્રદાયિક ‘અનુગ્રહ’ માસિકના તંત્રીઓએ પણ વિના મૂલ્યે જે જાહેર ખર્ચો તેમના માસિકમાં છાપી આ પુસ્તકપ્રસિદ્ધિમાં સહાયતા કરી છે તે બદલ તેમનો ઉપકાર પણ ભૂલીયું નહિ. આ ઉપરાંત અન્ય અગાઉ થયેલા ગ્રાહકોને પણ સ્મરણ કરી સ્મૃતિ-અમથી વિસ્મૃત બનેલા ભગવદ્દિયોનો પણ ઉપકાર સ્મરણ કરીએ છીએ.

સરૈયા આર્ટના મેટેજરનો શ્રીહરિરાયજીના બ્લોક બદલ તથા ‘ભારતવર્ષ’માં જાહેર ખર્ચ વિના મૂલ્ય છાપવા બદલ શ્રીશાસ્ત્રીજી અમંતરામનો પણ ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

દ્વારકાદાસ સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય



## प्राचीन वार्ता-रहस्य भाग १

### अभिप्राय संग्रह—

आपकी पठाई प्राचीन वार्ता-रहस्य की पुस्तकें प्राप्त हुई। अबकाश पायके भैने अश्वरशः सुनी। आप के ऊपर भगवत्कृपा है तासों एसे सत्कार्यमें आपकी रुचि भई है। आपको यह परिश्रम प्रशंसा योग्य है। काच के भवन में छिद्र देखनो जैसे पीपिलिका को कार्य है, एसे भगवान तथा भगवदीयन के चरित्र में दोष देखनों असज्जनको कार्य है।

x x पं. गोकुलदासजी विद्यासुधाकर-कोटा.

आपका भेजा हुआ "प्राचीन वार्ता-रहस्य" कुछ समय पूर्व मिला। देखने से चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। आपने इस में वह रंग भर दिया है जो वर्तमान समय के मलिन हृदयों को भी शुद्ध और सुन्दर रूप दे सकता है। ग्रन्थ के प्रारंभमें "श्री गिरिधरगोपाल" के चित्र की मुहर बड़ी सुन्दर लगी है। कार्य सब प्रकार प्रशंसनीय है।

—जगन्नाथ शास्त्री

संस्कृत पाठशाला. प्रतापगढराज.

x

x

x

भक्ति-भागीरथी का आश्रय लेकर अष्टछापकी सरस काव्यधारा के साथ-साथ प्रस्तुत राष्ट्रभाषा हिन्दी के व्रज-भाषात्मक गद्य साहित्यका प्रोत्कर्ष वार्तारूप में साहित्य-जगत में विद्यमान है। किन्तु साधनों के अभाव एवं इस साहित्य के प्रति प्रायः अनभिमुखि के कारण ही परिष्कृत रूप में वह धार्मिक जनता के समक्ष न आसका। ऐसी परिस्थितिमें आवश्यक शङ्का-समाधान-पूर्वक ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण स्पष्टीकरण सहित नवीन रूप में इन भक्ति-भावोद्बोधक पुनित भगवद्वाताओं का क्रमागत प्रकाशन एक ससहनीय प्रयास है। यह प्राचीन वार्ता-वृत्त का रहस्य-साहित्य-प्रकाशन वैष्णव जगत के लिये एक अनुशीलनीय वस्तु है। इसमें आठ वैष्णवों



કી વાર્તાઓં કા સમાવેશ હૈ । इसी प्रकार सभी वार्ताओं के पृथक् पृथक् भाग रूप में प्रकाशन का आयोजन सम्पादकने किया है । साम्प्रदायिक वैष्णव जनता इस आयोजन को क्रियात्मक रूप देने में सर्वविध सहायक होगी, ऐसी आशा है । प्रस्तुत ग्रंथ सर्व प्रकार से पठनीय एवं संग्रहणीय है । अग्रिम भागों की हम उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं ।

તૈલંગ શ્રીગોકલાનન્દજી,  
સમ્પાદક ' દિવ્યાદર્શ '

આપે ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થનું પ્રકાશન કાર્ય કરી વૈષ્ણવ જનતા ઉપર મહાન અનુગ્રહ જ કર્યો છે. એ બદલ મારાં અંતઃકરણ પૂર્વક આપને અભિનંદન પાઠવું છું. પ્રેમલાલ જી. મેવચા સુલતાનપુર.

પ્રાચીન વાર્તા-રહસ્ય ભાગ ૧લો. એ ગ્રન્થ સમ્પ્રદાયના ભાષા-સાહિત્યમાં એક પહેલરૂપ છે, તેનું સંશોધન પણ ઘણું જ સારું થયું છે. એ પુસ્તક વાંચી ગયા પછી દુરાગ્રહીઓ સિવાય ભાગ્યે જ કોઈને ભાષા-સાહિત્ય વિશે શંકા રહે તેમ છે. ભાષા સાહિત્યના સંશોધનનું અને પ્રકાશનનું અપૂર્વ કાર્ય ઉપાડી વિદ્યાવિભાગે સંપ્રદાયની સાચી અને મહાન સેવા બજાવી છે. ટીકાઓના જવાબ શિષ્ટભાષામાં આપ્યા છે તે વૈષ્ણવને જાણે તેવા છે. આપ તરફથી પ્રકટ થયેલ પુસ્તક વાંચ્યા પછી વાર્તા-સાહિત્યની અદ્ભુતતા અને મહત્તા સમજાયા વિના નહિ રહે.

શેઠ હરિલાલ જે. M. A.

પુ. યુ. પરિષદના મંત્રી. મુંબઈ.

વધુમાં, આ પુસ્તક લોકપ્રિય બન્યું એના પ્રત્યક્ષ નમૂનામાં નાથદ્વારા વિદ્યાસમિતિ તરફથી ઉત્તમશ્રેણીના પાઠ્યપુસ્તક તરીકે તે જાહેર થયું છે. ઉપરાંત આક્ષેપપરિહાર સમિતિ એવં શ્રી. રામલાલ ચુનીલાલ મોદી, શ્રી રમાનાથ શાસ્ત્રી અને શ્રી-પુરુષોત્તમ-ચતુર્વેદી સાહિત્યાચાર્ય આદિના સુંદર અભિપ્રાયો પણ આવેલ છે, જે સ્થાનાભાવથી હવે પછીના પુસ્તકમાં ક્રમશઃ આપવામાં આવશે.

સમ્પાદક ' વાર્તા-સાહિત્ય '



## અષ્ટછાપના ગુજરાતી વિભાગનું

## શુદ્ધિ-પત્રક\*

—૦૫૦—

કૃપા કરીને નીચે પ્રમાણે સુધારીને વાંચો—

અશુદ્ધ	શુદ્ધ	પત્ર	પંક્તિ
રાખી	સખી	૭	૧૧
ઉડ	ઉન	૧૬	૧૬
(વિશેષ જુઓ પ્રસ્તાવનામાં)×		૧૭	૨૪
સૂરકા	સૂરકો	૨૧	૧૮
સૂરસાવલી	સૂરસારાવલી	૩૨	૧૫
સં. ૧૫૪૦	સં. ૧૬૪૦	૩૮	૨૦
સાતે કવિયો	ઉપસ્થિત કવિયો	૩૯	૭
દંડવત કરી	દંડવત કર્યા	૩૯	૧૦
પ્રાસાદાત્મક	પ્રસાદાત્મક	૪૧	૯
સં. ૧૬૦૭	ગુર્જર સં. ૧૬૦૬	૪૩	૫-૭-૧૦-૨૪
દિગ્વદર્શન	દિગ્વદર્શન	૪૮	૩
ઉપાસ	ઉપારત	૪૮	૨૩
સૂરક્યામ	સૂરક્યામ	૪૯	૧૦
જમનાવતામા	સંકર્ષણકુંડ ઉપર	૭૨	૧૩
સં. ૧૬૨૦	સં. ૧૬૨૫	૮૪	૧૮
સ્યામસ શાસી	સ્યામસર ત્રાસી	૧૦૪	૧૩-૨૫

\* મળ દિન્દી સાહિત્ય-વિભાગનું શુદ્ધિ પત્રક સ્થલાભાવથી આપવામાં આવ્યું નથી. એટલે પાઠકોએ પ્રેસની થએલી ભૂલોને સ્વયં સુધારી લેવી.

પત્ર ૧૮૬ પંક્તિ ૨૨ માં અંકુરજીકે સ્થાન પર શ્રીકૃષ્ણ સુધારના.



# અષ્ટાપ

—:::—

મહાનુભાવ શ્રીસૂર—

—\*:—

( સં. ૧૫૩૫ થી સં. ૧૬૪૦ )

ભક્તિમાર્ગીય કાવ્યક્ષેત્રમાં સૂરદાસ નામક સુપ્રસિદ્ધ ત્રણ ભક્તકવિ થયા છે. તેમાંના એક અને મુખ્ય અમારા ચરિત્ર-નાયક અષ્ટાપવાળા મહાનુભાવ શ્રીસૂર છે.

તે પરમવંદનીય શ્રીસૂરની ભક્તિવિષયક મહાનુભાવતા એવં ગંભીર ગૂઢાથં-સૂચક વાણીની શ્રેષ્ઠતામાં કોઈનાય એ મત નથી જ.

તેઓ શુદ્ધ વ્રજભાષા-પદ્ય-સાહિત્યના આદ્યપિતા એવં ભક્ત-કવિકુલ-સમ્રાટ હોઈ કાવ્યક્ષેત્રમાં બિન હરીફ સૂર્યની માફક સદાય પ્રકાશિત છે.

એમની વિદ્યમાનતાથી અદ્યાવધિ કોઈ કવિએ તેમની સમાન હોવાનો દાવો કર્યો નથી, એ જ શ્રીસૂરની અપૂર્વ સૂર્યવત્ પ્રભાનો પરમોત્કૃષ્ટ વિજય છે.

શ્રીસૂરના આવા અપરિમિત યશથી આકર્ષાઈ અદ્યાપિ પર્યંત ભારત-વર્ષના વિવિધ પ્રાંતોના કેટલાય સર્વોચ્ચ સાહિ-



ત્યકારે અને અન્વેષણ-કર્તાઓએ વિવિધ ભાષામાં તેમની જીવની લખવાનો પ્રયાસ કર્યો છે.

કિંતુ મારે કહેવું જોઈએ કે વ્રજભાષા-ગદ્ય-સાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલનાથજી એવં તત્તશિષ્ય શ્રીહરિરાય-મહાપ્રભુથી અતિરિક્ત કોઈનેય તે સંબંધી પૂર્ણ સફલતા પ્રાપ્ત થઈ નથી જ.

એથી વિરુદ્ધ, એ કહેવું જરાય અતિશયોક્તિ-પૂર્ણ નથી કે-આધુનિક કેટલાક સાહિત્ય-અન્વેષણ-કર્તાઓએ તો અષ્ટછાપના શ્રીસૂરની જીવનીમાં અન્ય સૂરદાસોના યથાપ્રાપ્ત ચરિત્રોને અંકિત કરી તેની વાસ્તવિકતાની પ્રાયઃ હાની જ કરી છે.

અર્વાચીન અન્વેષણ-કર્તાઓમાં મુખ્ય મિશ્રબન્ધુઓ, રામનરેશ પાઠક અને રમાશંકર પ્રસાદ આદિ નવીન દષ્ટિના સંશોધકો પણ ઉક્ત દોષથી દૂર રહી શક્યા નથી જ. તો પછી, તે પુરુષોની લેખનીને જ પ્રમાણ માની, પોતાના પરમ-પૂજ્ય શ્રીગોકુલેશ પ્રભૂતિ મહાનુભાવોના લેખનમાં શંકા કરનારા કહેવાતા વાદલભોનું તો કહેવું જ શું ? અસ્તુ.

આ પ્રકારે અમારા ગૌરવ સમાં શ્રીસૂર આદિ અષ્ટ-છાપનાં વાસ્તવિક ચરિત્રોને સંદિગ્ધ થતાં જોઈ, અમે દુઃખી હૃદયે કિંતુ ઉત્સાહપૂર્ણ, ભગવદ્-ધૃષ્ટિને આધીન થઈ, કેવળ તે ભક્તોના આશ્રય બલથી જ ઉક્ત ચરિત્રોને વિશુદ્ધ રૂપ આપવા નિમિત્ત માત્ર થયા છીએ. અને તેમાં અમે અમારું પૂર્ણ-સૌભાગ્ય સમજીએ છીએ.



અમે ઉપર કહી ગયા છીએ કે સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં સૂર-  
દાસ નામક ત્રણ સુપ્રસિદ્ધ ભક્ત-કવિનાં ચરિત્રો પ્રાપ્ત છે.  
તેથી સામ્પ્રત અદ્યપ્રયાસી સાહિત્ય-સંશોધકો દ્વારા સંમિશ્રણ  
થઈ ગયેલા અષ્ટછાપના શ્રીસૂરના ચરિત્રનું વિશુદ્ધ રૂપ બતા-  
વતાં પહેલાં, અન્ય દ્વય સૂરદાસોનો સ્વરૂપ પરિચય આવ-  
શ્યક જાણી અમેએ તે યથાપ્રાપ્ત અહીં ઉદ્ધૃત કર્યો છે—

૧ \*પહેલા સૂરદાસનું મૂળનામ બિલ્વમંગલ હતું.  
તેઓ દક્ષિણમાં કૃષ્ણા નદીના તીર ઉપરના કેાઈ એક ગામમાં  
રહેતા હતા.

પ્રસંગોપાત, સામે પાર રહેતી ચિંતામણી વેશ્યા દ્વારા  
ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરી તેઓ ઘરથી વિરક્ત થઈ ચાલી નિકળ્યા.  
છતાં રસ્તામાં તેઓ નર્મદાના કાંઠે આવેલી માહિષ્મતી નગરીમાં  
એક અતિથિ-વત્સલ વૈશ્ય સ્ત્રીના રૂપથી સંબ્રમ યુક્ત થયા.  
પછી જ્ઞાનદ્વારા તેમણે પોતાની વિષયી આંખોને સોયાથી ફેાડી  
નાખી. અને ત્યારથી તેઓ સૂરદાસના નામથી પ્રસિદ્ધ થયા.+.

\* આ ચરિત્ર લોકમાં અતિ પ્રસિદ્ધ હોવાથી તેને અત્રે  
વિસ્તારથી આપ્યું નથી. આ પ્રસંગ ‘ભક્તિ-માહાત્મ્ય’ નામક  
એક અતિ પ્રાચીન સંસ્કૃત ગ્રન્થથી ઉદ્ધૃત કર્યો છે. ઉક્ત ગ્રન્થ  
શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી શ્રી કણ્ડમણિજીથી પ્રાપ્ત થયો છે. જેમાં અનેક  
ભક્તોના પ્રસંગો યોજેલા છે. કિંતુ ખેદની વાત છે કે તે ગ્રન્થ  
સાંગોપાંગ પ્રાપ્ત નથી, જેથી તેના કર્તા વિષે મૌન જ સેવવું પડે છે.  
—સમ્પાદક.

+ મિશ્રમન્ધુઓ આદિ કેટલાક સાહિત્ય-સંશોધકોએ પણ  
ઉક્ત બિલ્વમંગલ સૂરદાસના સ્ત્રી વિષયક પ્રસંગને અષ્ટછાપના શ્રી



પછી કેટલોક સમય ગુજરાતમાં રહી તેમણે ભક્તિજ્ઞાન યુક્ત કાવ્ય દ્વારા પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. બાદમાં તેઓ વૃંદાવન જઈને રહ્યા.

તેમનાં પદ ગુર્જર એવાં ગુર્જરમિશ્રિત વ્રજભાષામાં ઘણાં પ્રાપ્ત થાય છે. જેવાં કે—

૧ ‘ કૃષ્ણ કહેતાં શું બેસે નાણું ’

૨ ‘ કોણ મેરે કામ ન આયો શ્રી હરિ વિના ’

૩ ‘ કૃષ્ણ નામ ચિત્ત ધરતો જો તું ’

૪ ‘ કેવું તે વાશે વહાણું ઘેલા પ્રાણી ’

ઈત્યાદિ.

૨ બીજા સૂરદાસ, અષ્ટછાપના શ્રીસૂર છે, જેમનું ચરિત્ર વિસ્તારપૂર્વક આગળ આપવામાં આવ્યું છે.

૩ ત્રીજા સૂરદાસ, સંડીલાના દિવાન ‘ સૂરદાસ મદન-મોહન ’ના નામથી પ્રસિદ્ધ હતા. આ સૂરદાસનું મૂળ નામ

સૂરના ચરિત્રમાં યોજવાનો અર્થહીન નિષ્ફળ પ્રયાસ કર્યા ઉપરાંત, તે સ્ત્રી વિષયક પ્રસંગ હોઈ દોષયુક્ત લાગવાથી શ્રી ગોકુલનાથજીએ વાર્તામાં ન યોજ્યો હોય, એવું અનુમાન પોતાના ‘ નવરત્ન ’ નામક ગ્રંથ પાન ૨૭૭ માં કરી ખરે જ તેમણે પોતાની બુદ્ધિનો હાસ્યારૂપક હવાલો વિદ્વાનેને આપ્યો છે. પરંતુ વાર્તા-રસિકો વિચારી શકે છે કે—મહાનુભાવ અષ્ટછાપ શ્રીનંદદાસની સ્ત્રી ઉપરની આસક્તિના પ્રસંગનો જેમણે નિર્દોષપણે સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ વાર્તામાં કર્યો છે એવા સત્યવક્તા શ્રીગોકુલેશ, યદિ સ્ત્રી વિષયક ઉક્ત પ્રસંગ અષ્ટછાપ શ્રીસૂરનો જ હોત, તો શા માટે વાર્તામાં તે ન યોજત ?



અજ્ઞાત હોવા છતાં એ નિશ્ચય છે કે તેમણે પોતાનું સૂરદાસનું ઉપનામ સકારણ રાખ્યું છે.

તેઓ દિલ્હી પાસેના કોઈ એક ગામમાં સૂરધ્વજ બ્રાહ્મણને ત્યાં જન્મ્યા હતા. તેઓ બાદશાહ અકબરના એક પરગનાના અમીન યા દિવાન હતા, અને તેમની પાસે રાજ્યના ૧૩ લાખ રૂપીયાની વિપુલ ધનરાશી રહેતી.

જ્યારથી એમને ભગવાન અને ભક્તોનાં ઐક્ય ભાવ-રૂપે દર્શન થયાં ત્યારથી તેઓ સાધુ, સંત અને ભક્તોમાં વિશેષ પ્રીતિ રાખતા, અને પોતાને પ્રાપ્ત ધન ઉપરાંત આવશ્યક લાગે તો ખજાનાના ધનનો પણ સાધુ સંતોના સત્કારમાં ઉપયોગ કરતા.

એમ કરતાં એક વખત દુષ્કાળના સમયમાં એમણે બાદશાહની ૧૩ લાખની ધનરાશીને પરોપકારાર્થે ખર્ચી દીધી.

પછી બાદશાહે ખજાનો મંગાવ્યો ત્યારે તેમાં તેટલાજ પત્થરો ભરી પ્રત્યેક થેલીમાં નિમ્નાંકિત દોહો લખીને મોકલ્યો, અને તેઓ અર્ધી રાત્રે શ્રીમદ્દનમોહન ઠાકુરજીને પધરાવી વૃંદાવન ચાલી નિકળ્યા.

ઉક્ત દોહો આ પ્રકારે છે—

તેરાલાખ સંઢીલે આયે—સવ સાધુન મિલિ ગટકે ।

સૂરદાસ મદનમોહન મિલિ—આધી રાતૈં સટકે ॥

આ વાંચી બાદશાહના આશ્ચર્યનો પાર ન રહ્યો, અને તેણે રાજા ટોડરમલને કહ્યું કે—સાધુઓએ તેરા લાખ ગટકયા તો ભલે, પરંતુ સૂરદાસ કેમ સટકયા ?



પછી રાજા ટોડરમલે તેમને પકડી મંગાવી કેદમાં નાખ્યા. ત્યાં તેઓએ પ્રભુને પોતાની મુક્તિને અર્થે પ્રાર્થનાનું આ પદ ગાયું—

જવ વિલંબ નહિં કિયો, હાક હરનાકુશ માર્યો ।  
જવ વિલંબ નહિં કિયો, કેશ ગહિકંસ પછાર્યો ॥

\*

\*

\*

\*

કહે સૂર કરજોરિ કે, તુમ દયાલ રુક્મણિ રવન !  
કાટ ફંદ મો અંધકે, x અવ વિલંબ કારન કવન ॥ ÷

x અહીં ‘અંધ’ શબ્દ શ્રીસૂરના ‘દ્વિવિધ આંધરા’ની માફક સકારણુ છે. અને તે એમ સૂચવે છે કે-હે પ્રભુ ! આપ અને આપના ભક્તોમાં દ્વિવિધ ભાવથી રહિત એવો અંધ જે હું તેના આ ફંદ (કેદ)ને કાટ એટલે દૂર કર.

÷ કેટલાક લેખકોએ આ પદ અષ્ટછાપ વાળા સૂરદાસના નામે ચઢાવી લોકોમાં ભ્રમ ફેલાયો છે. પરંતુ અષ્ટછાપવાળા શ્રીસૂરનાં પદોની ઓળખાણુ એ પ્રકારે સ્પષ્ટ છે. એક તો તેમણે પોતાની રચનામાં આવશ્યક પ્રચલિત સંસ્કૃત શબ્દોથી અતિરિક્ત શુદ્ધ વ્રજભાષા શિવાયના કોઈ પણ પ્રકારના શબ્દોનો પ્રયોગ કર્યો નથી, જ્યારે ઉક્ત પદમાં ‘કવન’ શબ્દ પૂર્વી ભાષાનો પ્રતીત થાય છે.

ખીન્નું કારણુ એ સ્પષ્ટ છે કે-શ્રીસૂરે, શરણુ આવ્યા પહેલાં પણ કેવળ ઉદ્ધારના શિવાયની કોઈ પણ અંગત સ્વાર્થમય પ્રાર્થના પ્રદો દ્વારા કરી પ્રભુને પરિશ્રમ આપ્યો નથી. અને જ્યાં સુધી મને ખબર છે ત્યાં સુધી તો હું એમ નિશ્ચિત રૂપે કહી શકું છું કે શ્રીસૂર-



આ પ્રાર્થનાથી પ્રભુએ પ્રત્યક્ષ થઈ તેમને દર્શન આપ્યાં. અને બાદશાહને પણ સ્વપ્નમાં સૂરદાસને શીઘ્ર મુક્ત કરવાની આજ્ઞા આપી. પછી બાદશાહે તેમને મુક્ત કરી, ગયેલી સત્તા પુનઃ સ્વીકારી પોતાની પાસે રહેવાને અત્યંત આગ્રહ કર્યો. છતાં તેમણે તે વાત ન માની અને તુરત ઘૂંઘાવન જઈને રહ્યા.

ત્યાં તેમણે સાનુભવતા પ્રાપ્ત કરી ઘણું પદો રચ્યાં અને તેમાં ‘સૂરદાસ મદનમોહન’ નામક છાપ રાખી.

ના પદોમાં પ્રભુનું માહાત્મ્ય અને પોતાની દૈન્યતા શિવાય બીજી વસ્તુ બહુ ઓછી જણાય છે. અને શરણે આવ્યા પછી તો તેઓએ દાસ, સખ્ય, અને રાખી ભાવને જ પોતાના પદોમાં મુખ્ય સ્થાન આપ્યું છે.

તદ્વિરિક્ત જે પદો પ્રાપ્ત છે તે અષ્ટછાપના શ્રીસૂરનાં નથી જ.

વળી જે પુરૂષોનું એવું કહેવું છે કે શ્રીસૂરે ફારસી ભાષામાં પણ પદો રચ્યાં છે અથવા તેમના પદોમાં ફારસી શબ્દો—જેવા કે ‘મહેલાત’ આદિ આવે છે, તેઓ સ્વયંબ્રમિત છે.

યદ્યપિ તે શંકાનો જવાબ પ્રસ્તુત વાર્તા પ્રસંગ ૪ માં આવી જાય છે તો પણ એનું સ્પષ્ટીકરણ કરવું ઠીક છે કે—સૂરદાસજીનાં વિશુદ્ધ વ્રજભાષામય પદોને બાદશાહ અકબર ફારસીમાં ઉતરાવી સ્વયં વાંચતો અને તેથી સંભવ છે કે તેમના પદોમાં લેખકોએ જણે કે અજણે કવચિત્ પ્રચારની દૃષ્ટિએ પણ તે સમયની પ્રચલિત ભાષાના શબ્દોને યોગ્ય તેમને વિકૃત કર્યા હોય.

કારણ કે એ આ વાર્તામાં સ્પષ્ટ છે કે શ્રીસૂરની છાપથી, અન્ય લોકો પણ પદોની રચના કરતા. અતઃ તેનું વિકૃત થવું જરાય અસંભવ નથી.

—સમ્પાદક



પછી ‘ગીતસંગીતસાગર’ ગોસ્વામી શ્રીવિકૃલનાથ-  
જીની કૃપાથી—યદ્યપિ તેઓ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ન હતા તો  
પણ—તેમણે મહાનુભાવ કવિઓમાં સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું.

ઉક્ત ઉભય સૂરદાસોનો સંક્ષિપ્ત પરિચય આપી હવે  
અમે અમારા ચરિત્ર-નાયક અષ્ટછાપના શ્રીસૂરના, વાર્તાથી  
ઉદ્ધૃત અને તેને અપેક્ષિત એવા, શેષ ભૌતિક ચરિત્રને  
અમારી લેખની એવં મનને પવિત્ર કરવાને અર્થે કંઈક  
લખીએ છીએ.

શ્રીસૂરનાં વિશુદ્ધ અને સંમિશ્રણ યુક્ત ચરિત્ર નિમ્નાં-  
કિત ગ્રન્થોમાં પ્રાપ્ત છે—

( વિશુદ્ધ પ્રામાણિક ગ્રન્થો )

૧ ૮૪ વૈષ્ણવોની વાર્તા, રચયિતા ગો. શ્રીગોકુલનાથજી. સં. ૧૬૪૫

૨ ‘ભાવપ્રકાશ’ ” ” શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ.  
સં. ૧૭૪૦ લગભગ

( તટસ્થ ગ્રન્થ )

૩ ભક્તમાળ ” નાભાજી. સં. ૧૬૬૦-૮૦

૪ ભક્તિમાહાત્મ્ય (સંસ્કૃત)

( સંદિગ્ધ ગ્રન્થો )

૫ ‘મૂલ ગોસાંઈ ચરિત’ રચયિતા વેણીમાધોદાસ. સં. ૧૬૮૮

૬ આઈને અકબરી

વગેરે—

( આધારભૂત ગ્રન્થો )

૭ સૂરસાગર, ૮ સાહિત્ય લહરી, ૯ સૂર સારાવલી.

ઉપરાંત અન્ય ચરિત્ર ચંદ્રિકા, રામરસિકાવલી; શિવ  
સિંહસરોજ, નાગર સમુચ્ચય, ભક્તવિનોદ, સુગમપંથ, ભક્ત-  
નામાવલી, ભારતેંદુ ભક્તમાલ, ભાષાકોષ, નાગરી પ્રચારિણી



સલાની પત્રિકા, મિશ્રબન્ધુવિનોદ, નવરત્ન, સૂરસુધા, કવિતા કૌમુદી, વ્રજમાધુરીસાર, અને સૂરદાસજીનું જીવનચરિત્ર ઇત્યાદિ ગ્રંથોમાં સંબ્રમયુક્ત પ્રસંગોનું સંમિશ્રણ જોવામાં આવે છે.

ઉક્ત સંમિશ્રણ યુક્ત ગ્રંથોના પ્રસંગોને વિશુદ્ધ રૂપ આપવાને માટે પ્રથમના ૧, ૨ સંખ્યાત્મક ગ્રંથોના આશ્રયની ખાસ આવશ્યકતા છે. કારણ કે સૂરદાસજી પુષ્ટિ-માર્ગીય હોવાથી તેમના ચરિત્રનો સંગ્રહ જેટલો તે સંપ્રદાયના મૂળ લેખકોથી વિશુદ્ધ રૂપે પ્રાપ્ત થાય તેટલો અન્યો દ્વારા નહિ જ એ સાવ સીધી વાત છે.

તેમાંયે વળી શ્રીસૂરના સમકાલીન અને અંગત ગાઢ પરિચયવાળા, ગદ્યપદ્ય વ્રજભાષા-સાહિત્યના પૂર્ણ પ્રેમી ગો. શ્રીગોકુલનાથજી દ્વારા જે સંગ્રહ થાય તેની વિશુદ્ધતા અને પ્રામાણિકતામાં તો કહેવું જ શું ?

વળી એ નિઃસંદેહ છે કે ગો. શ્રીગોકુલનાથજી સ્પષ્ટ અને સત્યવક્તા હતા. તેના કારણે રૂપે ૮૪ અને ૨૫૨ વાર્તાઓમાં આવેલી શ્રીનંદદાસ, કૃષ્ણદાસ આદિની ઘટનાઓ વિદ્યમાન છે.

શ્રી ગોકુલેશે લોકદષ્ટિએ અસંગત અને વિકૃત લાગતી ઉક્ત ઘટનાઓને પણ સ્પષ્ટ તથા વિસ્તારપૂર્વક જનસમૂહમાં નિર્દિષ્ટ કરી છે. એથી વિશેષ તેમની પ્રામાણિકતા માટે અન્ય કંઈ પ્રમાણ હોઈ શકે ?

આ વાત વાર્તાના અભ્યાસીઓ સારી રીતે બાણતા હોઈ તે મહાપુરુષની ઉક્તિમાં તેઓને જરાય અતિશયોક્તિ કે અવાંચનીય લાવના દેખાતી નથી જ. અસ્તુ.



જે કે શ્રીસૂરની પ્રામાણિક જીવની જાણવાને માટે તેમના સમકાલીન ગો. શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ‘ચોરાશી વાર્તા’ વિશેષ ઉપયોગી છે, છતાં તે સંક્ષિપ્ત હોવાથી જ્ઞા-સુએને વાસ્તવિક તૃપ્તિ આપવાને અસમર્થ છે.

ઉક્ત ત્રુટીને દુર કરવાને અર્થે ગો. શ્રીગોકુલનાથજીના શિષ્ય મહાનુભાવ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુનો પ્રયાસ અતિ પ્રશંસનીય છે.

શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ, આચાર્યશ્રી એવં ગોસ્વામીજીના ૮૪ અને ૨૫૨ વૈષ્ણવોનાં વિશુદ્ધ આધ્યાત્મિક ચરિત્રોને સ્વગુરૂથી શ્રવણ કર્યા બાદ, તેમાં ઓછાં દેખાતાં ભૌતિક અને આધિદૈવિક તત્ત્વોને પુનઃ વિશેષ રૂપમાં શ્રવણ કરવાની પોતાની ઈચ્છાને તેમની પાસે પ્રકટ કરી. તેથી વ્રજભાષા ગદ્ય-સાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલેશે શ્રીહરિરાયજીને એકાંત અનુભવગમ્ય અને મનનીય વાર્તાના આધિદૈવિક તત્ત્વોનું આવશ્યક વિશેષ ભૌતિક ચરિત્રની સાથે પુનઃ શ્રવણ કરાવ્યું. જેથી તેના ફલ રૂપે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ વાર્તા ઉપર ‘ભાવપ્રકાશ’ યોજ્યો, જે અમારા તરફથી પ્રકાશિત થાય છે.

શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાની ભાષાત્મક ટીકા સ્વરૂપે ઉક્ત ‘ભાવપ્રકાશ’ને સં. ૧૭૨૯ પછી નિજસેવકોના આગ્રહથી ગ્રન્થાકાર રૂપે લેખનબદ્ધ કરાવી ભાષાના ગ્રન્થો ઉપર પણ ભાષામાં જ ટીકા કરવાની નવીન શૈલીનો અવિષ્કાર કર્યો.

પછી તેની દેખાદેખી નાભાજીના શિષ્ય પ્રિયાદાસે પણ ભક્તમાળ ઉપર સં. ૧૭૮૦ માં એવીજ પદ્યાત્મક ટીકા રચી અને ત્યારથી અદ્યવધિ ગદ્યપદ્યટીકાત્મક ભાષા શૈલી ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ પામતી જાય છે.



આ રીતે ભાષા સાહિત્યનું પુર વધ્યું. અને તેના પ્રાથમિક પ્રચારનો યશ ગો. શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુને મળ્યો.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરના ચતુર્થ ચરિત્રને જાણવાને અર્થે ‘૮૪ વાર્તા’ અને ‘ભાવપ્રકાશ’ એ બે ગ્રન્થો પ્રામાણિક અને મહત્ત્વના છે.

વળી શ્રીગોકુલનાથજી માફક શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુની મહાનુભાવતા, સાક્ષાત્કારિતા અને સત્યપ્રિયતામાં પણ કોઈનાય બે મત નથી જ.\* અસ્તુ.

આજપર્યંત કોઈ પણ ચરિત્રનાયક પોતાની વિદ્યમાનતામાં સ્વક્ષેત્રના સર્વમાન્ય રૂપે સ્વીકાર્ય થઈ શક્યો નથી, એમ ભારતવર્ષના ઇતિહાસથી સ્પષ્ટ જણાય છે. પરંતુ શ્રીસૂર તેના અપવાદ રૂપે સિદ્ધ થઈ ચુક્યા છે. તે વિષે પ્રકાશ ફેંકતા નિમ્નાંકિત બે પ્રસંગો અતિ પ્રસિદ્ધ છે જે આ રહ્યા—

પ્રસંગ ૧—શ્રીસૂરના બાર વર્ષ પર્યંતના ગૌઘાટ નિવાસ દરમ્યાન પ્રત્યેક કવિ શ્રીસૂરની પ્રસિદ્ધિથી આકર્ષાઈ તેમને મળવા ગૌઘાટ આવતા. પછી તેમની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી વ્રજના દર્શનાર્થે તેઓ મથુરા પ્રયાણ કરતા.

એ રીતે સં. ૧૫૫૩ થી ૧૫૫૫ લગલગ પ્રસિદ્ધ કવિ કબીર પણ શ્રીસૂરને મળવા ગૌઘાટ આવ્યા. થોડા સમયના

---

\* શ્રી હરિરાય મહાપ્રભુના વિશેષ ચરિત્ર જ્ઞાનાર્થે જુઓ ‘શ્રી વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત’ અને ‘પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તકવિ’ નામક અમારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થતા ગુર્જર અને હિન્દી ભાષાના ગ્રન્થોના પ્રસંગો. —સંપાદક



સત્સંગ પશ્ચાત કબીરે જ્યારે વ્રજના દર્શનાર્થે મથુરા પ્રયાણની આજ્ઞા માગી ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને વ્રજમાં જતા રોક્યા. અને તેઓને તેમના નિરાકાર, નિરંજન વાદને સમજાવતાં કહેવા લાગ્યા કે-‘વ્રજ તો રસિકોની ખાણ છે, ત્યાંના પ્રત્યેક વૃક્ષનું એક એક પત્તું સગુણ લીલામય પરબ્રહ્મમાં તદલીન છે. જેથી તમે-શુષ્ક નિરાકાર બ્રહ્મવાદી-ત્યાં જશો તો ત્યાંનાં સર્વે વૃક્ષો સુકાર્થ જશે.’

પશ્ચાત જ્યારે શ્રીસૂરે, પોતાની આ ભવિષ્ય વાણી ઉપર કબીરને વિશ્વાસ થતો ન જોયો, ત્યારે તેમણે ગૌઘાટ ઉપરના એક વૃક્ષ નીચે બેસી તેમને નિરાકાર બ્રહ્મનાં પદ ગાવાને કહ્યું. તેથી કબીરે આજ્ઞાનુસાર એક વૃક્ષ નીચે બેસી શુષ્ક જ્ઞાનનું ક્રૂર એક પદ ગાયું. જેથી તે વૃક્ષ જોતજોતાંમાં સુકાર્થ ગયું.

આ પ્રત્યક્ષ અમત્કાર જોઈ કબીર આશ્ચર્યપૂર્વક શ્રીસૂરને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિએ અવલોકવા લાગ્યા. પછી શ્રીસૂરે તે જ વૃક્ષ નીચે બેસી ભક્તિવિષયક લીલામય સગુણ બ્રહ્મનું એક પદ ગાયું, કે જેનાથી તે વૃક્ષ પુનઃ નવપલ્લવિત થયું.

આથી કબીરે શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતા સ્વીકારી. અને તેમની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી વ્રજ તરફ પ્રયાણ ન કરતાં ત્યાંથી સીધા કાશી ગયા.\*

---

\* આ પ્રસંગથી, કબીરનો અંત સમય વિ. સં. ૧૫૭૫ નો જેવો કે નીચેના દોહાથી કબીર પંથિયોમાં પ્રસિદ્ધ છે તે-સિદ્ધ થાય છે. અને તેથી ભક્તમાળના, બાદશાહ સિકંદર સાથે કબીરના થયેલા મેળાપવાળા પ્રસંગને પણ ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી પુષ્ટિ મળે છે.

કબીરનો જન્મ સં. ૧૪૫૫-૫૬ માં છે અને અંત ૧૫૭૫ માં છે. તે વાત શ્રીરામકુમાર વર્મા એમ. એ. દ્વારા ‘કબીર પદાવલી’



પ્રસંગ ૨—સં. ૧૬૨૮ માં શ્રીરામના અનન્યઃ લક્ષ્મી-  
તુલસીદાસ પોતાના અનુજ શ્રીનંદદાસને મળવા વ્રજમાં આવ્યા.  
તે સમયે સૂરદાસજીની પ્રસિદ્ધિ શ્રવણ કરી તેઓ ચંદ્ર સરોવર  
પરાસોલી તેમને મળવા ગયા.

ત્યાં તુલસીદાસજી રામનામનું ઉચ્ચારણ કરી સૂરદાસજીને  
મળ્યા. ત્યારે સૂરદાસજીએ તેમને ‘આવો તુલસીદાસ’  
કહીને સત્કાર્યા.

આથી તુલસીદાસજી આશ્ચર્યમાં પડ્યા. અને વિના  
નેત્રવાળા સૂરદાસજી એ, કદી ન મળેલા એવા પોતાને કેવી  
રીતે જોળખ્યો, તે વિચારમાં લીન થયા.

પછી તુલસીદાસજીએ તેનું કારણ પૂછ્યું ત્યારે સૂરદાસજીએ  
તેમને કહ્યું કે—તમારા હૃમણાં જોલેલા જે શબ્દોથી તમારી  
જોળખાણ પડી, કિંતુ સૂરદાસજીએ તે સમયે રામનામનો  
ઉચ્ચાર ન કર્યો.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે પોતાની સુદૃઢ અનન્યતાનો પરિચય.

માં સમાધોયનાત્મક રૂપે સિદ્ધ થઈ ચુકેલી છે. એટલે અત્રે તેનો  
ઉદાપોહ કરવો વ્યર્થ છે.

કબીરના અંતકાલને માટે આ પ્રમાણે પ્રસિદ્ધ છે—

संवत पंद्रहसे पछत्तरा, किया मगहर को गौन ।

माघ सुदी एकादसी, रलौ पौन में पौन ॥

કબીર પદાવલી

—સપ્તપાદક

÷ જે લેખકો ‘અનન્ય’ શબ્દને હૃદયર્થમાં લઈ જઈ, ‘તુલ-  
સીદાસજી એવા હૃદયર્થી ન હતા’ એમ કહી ભક્તિમાં પૂર્ણ આવ-



આપી તુલસીદાસજીને મુગ્ધ કર્યાં. પછી તેમણે વ્રજનાં મનુષ્યો અને વૃક્ષોની રાધાકૃષ્ણ પ્રત્યેની અનન્યતાનાં તેમને પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યાં. તેથી તેઓએ આશ્ચર્યચક્રિત નિમ્ન દોડી રચ્યો—

રાધે ર સવ કહે, આક ઢાક અરુ કૈર ।

તુલસી યા વ્રજ ભૂમિમેં, કહા રામસોં વૈર ॥

પછી સૂરદાસજીએ તેઓને રામકૃષ્ણના અલિપ્તત્વનું જ્ઞાન કરાવ્યું. તો પણ જ્યાં સુધી પોતાને રામ અને કૃષ્ણનાં અલિપ્ત રૂપે દર્શન ન થાય ત્યાં સુધી તે જ્ઞાનને હૃદય સુદૃઢ પણે સ્વીકારતું નથી એમ જ્યારે તુલસીદાસે કહ્યું ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને નંદદાસજીની સાથે શ્રીનાથજીનાં દર્શન કરી મનોરથ સિદ્ધ કરવાની આજ્ઞા આપી.

શ્રીસૂર સાચા ભવિષ્યવક્તા તરીકે પ્રસિદ્ધ હોઈ, તેમની આજ્ઞા ઉપર વિશ્વાસ રાખી તેઓ નંદદાસજીની સાથે શ્રીનાથજીનાં દર્શન કરવા ગયા. ત્યાં તેઓને જ્યારે શ્રીરામ સ્વરૂપે પ્રભુએ દર્શન આપ્યાં ત્યારે તેમને સૂરદાસજી દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ જ્ઞાન દૃઢ થયું. અને પછી તેમણે સૂરદાસજીનાં પદો દ્વારા સ્ફુટ કૃષ્ણના બાલભાવને હૃદયમાં ધારણ કરી

શ્વક એવા અનન્ય પાતિવ્રત ધર્મને સમજતા નથી તેઓ મોટી ભૂત કરે છે. તુલસીદાસજી પ્રારંભિક અવસ્થામાં કેટલા રામ પ્રતિ સ્વરૂપાગ્રહી હતા તે આ દોહાથી સ્પષ્ટ છે—

‘કહા કહું છબિ આજકી, મલે વને હો નાથ ।

તુલસી મસ્તક તવ નમૈ, ધનુષ વાળ લો હાથ ॥’

વિશેષ જુઓ મહાનુભાવ નંદદાસજીનું ચરિત્ર. —સંપાદક



તેની છાયા લઈ રામ અને કૃષ્ણનાં બાલભાવવાળાં ઘણાં પદ  
રચ્યાં, જે આજ ‘કૃષ્ણ ગીતાવલી’ નામથી પ્રસિદ્ધ છે.

પછી સૂરદાસજીની સર્વોચ્ચતાને સ્વીકારી તેમને પ્રણામ  
કરી તેઓ પુનઃ કાશી આવ્યા.\*

તુલસીદાસજીનાં ભક્તિ વિષયક બાલભાવાદિ રામ અને  
કૃષ્ણ સંબંધી પદોનું અવલોકન કરતાં ઉક્ત પ્રસંગને ઘણી જ  
પુષ્ટિ મળે છે. અને તેથી સૂરદાસના સૂર્યવત્ પ્રભાવનું પણ

---

\* વેણીમાધોદાસ રચિત ‘મૂલ ગોસાઈ ચરિત’ની—સૂરદાસજી  
સં. ૧૬૨૬ માં શ્રીગોકુલનાથજીથી પ્રેરિત થઈ તુલસીદાસજીને  
મળવા કામદગિરિ પાસે આવ્યા.—એ વાત આ પ્રસંગથી, તેમજ  
શ્રીગોકુલનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૬૦૮ માં હોવાના કારણને લીધે  
અસંબધ્ધ છે. વળી યુક્તિથી પણ તેમાં બાધ આવે છે. કારણ કે  
શ્રીસૂર તે સમયે ૮૧ વર્ષના વયોવૃદ્ધ, જ્ઞાનવૃદ્ધ અને એક સ્થલ  
નિવાસી એવં ‘ગુરુ પ્રસાદ હોત યહ દરશન સરસઠ વરસ  
પ્રવીન’ આ વાક્યથી ભગવદ્લીલાના સાક્ષાત્કારને પ્રાપ્ત થઈ ચુક્યા  
હતા. તેથી તેઓને સ્વર્ધૃષ્ટ શ્રીનાથજીની સેવા છોડી અત્રત્ર ભટકવું  
શ્રેયસ્કર હોય એમ સંભવે નહીં. તેમજ તેઓ શુદ્ધ પુષ્ટિમાર્ગીય  
હોવાથી પ્રભુને પરિશ્રમ કરાવે એવા મર્યાદા ભક્તોને મળવા એટલી  
દૂર જાય એ પણ માની શકાય નહિ જ.

આ સંબંધી શ્રીયુત પં.સમદત્ત ભારદ્વાજ ‘સુધા’ માસિકના  
વર્ષ ૧૩ ખંડ ૨ અને સંખ્યા ૩ ના પૃષ્ઠ ૨૧૧ ઉપર ‘મૂલ  
ગોસાઈ ચરિત કી અપ્રમાણિકતા’ એ લેખમાં આ પ્રમાણે લખે છે—

બાવા વેણીદાસજી સૂરદાસજી કે વિષય મેં લિખતે હૈ—



વિસ્પષ્ટ દર્શન થાય છે. જેથી એમ સહજ કહેવાઈ જવાય છે કે-જેમ સૂર્યના પ્રકાશથી જ ચંદ્ર પ્રકાશે છે તેમ સૂરદાસના કાવ્યના ભાવોની છાયા માત્રથી જ તુલસીનાં પદો જગતને મુગ્ધ કરે છે.

આ વૈજ્ઞાનિક સૂર્ય-ચંદ્રના સંબંધને ધ્યાનમાં લઈ એક વિદ્વાન્ કવિએ ઠીક જ કહ્યું છે કે—

સૂર સૂર તુલસી સસી.....

વાસ્તવમાં શ્રીસૂર સૂર્ય છે અને તુલસી શશી રૂપ છે. અને ઉભય ભક્ત કવિયો સાહિત્ય સંસારને આવશ્યક ઉષ્ણશીતથી પોષી જીવનદાન આપે છે.

જે પુરુષો સૂરથી તુલસીને સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં કાવ્યની દૃષ્ટિએ ઉચ્ચ બતાવવાનો નિર્ર્થક પ્રયાસ કરી સૂરની વાણીમાં અશ્લીલતાનો દોષ મુકે છે, તેઓ કેવળ પક્ષપાતના અંધારામાં

“ સોરહ સો સોરહ લગૌ, કામદગિરિ ઢિંગ વાસ;  
સુચિ એકાંત પ્રદેશ મહં આૈ સૂર સુદાસ  
પઠાૈ ગોકુલનાથજી કૃષ્ણ-રંગ મેં બોરિ ?

+ + +

કવિ સૂર દિલાયેડ સાગર કો, સુચિ પ્રેમ કથા નટનાગર કો ।  
દિન સાત રહે સતસંગ-પગે; પદ-કંજ ગહે જવ આન લગે ।  
ગહિ બૈહ ગોસાઈ પ્રબોધ કિૈ; પુનિત ગોકુલનાથ કો પત્ર દિયે । ”

અર્થાત્ સં. ૧૬૧૬ લગતે હી કામદગિરિ કે સમીપ વાસ કરતે હુૈ તુલસીદાસજી કે પાસ (વ્રજભૂમિ સે) શ્રી ગોકુલનાથજી દ્વારા કૃષ્ણ-રંગ મેં



જાણી જોઈને ઉભા રહી સૂર્યની સામે ધ્રુવડ-દ્વષ્ટિ કરે છે.

પરંતુ ઉક્ત પક્ષપાતીય આરોપના ઉત્તર રૂપે બે તટસ્થ વિદ્વાનો દ્વારા પ્રકાશિત થઈ ચુકેલા નિમ્ન અભિપ્રાયોને હું અહીં ઉદ્ધૃત કરું છું:—

(૧) શ્રીચુત મિશ્રખન્ધુ લખે છે કે-

तुलसीदास जब कभी राम की नरलीला का वर्णन करते हैं, तब पाठक को यह अवश्य याद दिला देते हैं कि राम परमेश्वर हैं; वह केवल नर-लीला करते हैं । यह बात ऐसे भोंडे प्रकार से भी वह सैकड़ों बार स्मरण कराते हैं कि जी उकता उठता है, और यह ज्ञान पड़ता है कि—गोस्वामीजी पाठक को इतना बड़ा मूर्ख समझते थे कि कितनी ही बार याद दिलाने पर भी वह राम का ईश्वरत्व भुला देगा, अतः उन को पुनः—पुनः स्मरण कराने की आवश्यकता है यह बात सूरदास में नहीं है ।

( नवरत्न पत्र २३४ )

“ परंतु तोभी, यह महाराज (सूरदासजी) गोस्वामी तुलसीदास की भ्रांति और देवताओं को गालियाँ नहीं देते थे। ” (नवरत्न पत्र २३३)

बोरे और भेजे हुए सूरदासजी आए ! उन्होंने अपना 'सूरसागर' दिखाया, और वहां सात दिन रहे । चलते समय गोस्वामीजी के चरण छुए । तब गोस्वामीजीने उन्हें बोध और एक पत्र गोकुलनाथजी के लिये दिया । परंतु सं. १६१६ में श्री गोकुलनाथजी आठ वर्ष के थे, और सूरदासजी ७६ वर्ष के । वह तो कृष्णरँग में पहले से ही रँगे हुए थे । उन्हें आठ वर्ष के बालक कृष्ण के रँग में क्या रँगते । आठ वर्ष के श्री गोकुलनाथ का ६२ वर्ष के गोस्वामी तुलसीदास के पास ७६ वर्ष के महात्मा सूरदास को भेजने का प्रयोजन क्या था ? सूरदासजी तो वृद्धावस्था में व्रज छोड़कर कहीं जाते न थे, नेत्रांध भी थे । ( विशेष श्रुत्यो प्रस्तावनाभां ).



श्रीयुत वियोगी छरि लखे छे डे-

“सूरदासजी व्रज-साहित्य के जन्मदाता, परिपोषक एवं उद्धारक कहे जाय, तोभी कोई अत्युक्ति नहीं। इस में संदेह नहीं कि-यह हिन्दी के वाल्मीकि या व्यास हैं। भक्तिपक्ष में तो यह उद्धव के अवतार माने जाते हैं। वात्सल्य रस लिखने में तो आपने गजब किया है। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव-संवाद अपूर्व और अत्यन्त चमत्कार पूर्ण हैं। हमारा तो यह कहना है कि जिन्हे साहित्य का कुछ रसास्वादन लेना है, उन्हें अवश्य ही सूरदास के मधुर, भावपूर्ण पदों का पारायण करना चाहिए। सूरसागर के गानसे लोक और परलोक दोनों ही आनंद-दायक हो सकते हैं, इस में संदेह नहीं। कवि सम्राट सूरके सम्बन्ध में कई भावुक रसिक जनेोंने अपनी २ अनुमतियाँ प्रकाशित की हैं।”

(व्रजमाधुरी सार पत्र ३)

श्रीसूरनी सर्वोच्चता, स्वयं तारागणु इपे बनाता भडाकवि केशवे पणु, सहर्ष लरसलामां, ओउछा नरेश रामसिंहना लार्ध छन्दलतसिंह आगण स्वीकारी छे अने अन्य विद्वानो पास स्वीकारावी पणु छे. तद्विषयक निम्न प्रसंग प्रसिद्ध छे—

એક સમય ઓડછા નરેશના-સર્વોચ્ચ કવિ કેાણુ એ-  
પ્રશ્નના જવાબમાં કવિ કેશવે લરસલામાં ઉભા થઈ, વિદ્યમાન  
કવિઓમાં સર્વોચ્ચ રૂપે પોતાને ઘોષિત કર્યા.



જેથી વિદ્વાનોએ તેમને શ્રીસૂર માટે તેમનો શો અભિ-  
પ્રાય છે એમ પુછ્યું. ત્યારે કવિ કેશવે સહર્ષ કહ્યું કે-તેઓ  
ભાષા કાવ્યના કવિકુલ સમ્રાટ છે. અને મારા મત પ્રમાણે  
તો તેઓને કવિ કહેવા તે તેમના અપમાન સમાન છે. તેઓ  
કવિ નહીં કિંતુ વ્રજભાષા કાવ્ય-સાહિત્યના આદ્યપિતા છે  
અને કવિમાં તો હું સર્વોચ્ચ છું.

આ પ્રકારે મહાકવિ કેશવે પણ શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતાનો  
સ્વીકાર કર્યો છે. એથી વધુ ગૌરવ બીજું કયું હોય ?

તેથી જ એક કવિએ શ્રેણી વિભાજન કરતાં કહ્યું છે કે-

‘સૂર સૂર, તુલસી સસી, ઝડુગન કેશવદાસ’

વળી રાજા બીરબલે પણ શ્રીસૂરની કાવ્યશક્તિની,  
બાદશાહ અકબર સમક્ષ અત્યંત પ્રશંસા કરી છે. જે  
પ્રસંગ આ રહ્યો-

એક સમય બાદશાહ અકબરે ડુંડવાળા ખેતરમાં એક  
મનુષ્યને આળોટતાં જોઈ બીરબલને તેનું કારણ પુછ્યું. ત્યારે  
તેણે બાદશાહની આગળ શ્રીસૂરની કાવ્યશક્તિની પ્રશંસા  
કરતાં નિમ્ન દોહો કહ્યો-

‘કિયોં સૂર કો સર લગ્યો-કિયોં સૂર કી પીર ।

કિયોં સૂર કો પદ સુન્યો વ્યાકુલ હોત સરીર ॥

આવી રીતે સૂરની વિદ્યમાનતામાં પણ તેમની સર્વોચ્ચ  
તાની કીર્તિ-ધ્વજ, ભક્તિ અને કાવ્યક્ષેત્રના મહારથીઓમાં  
નિર્વિવાદ પણે સર્વ માન્ય અને પરમ વંદનીય હતી. અસ્તુ.

શ્રીસૂરદાસજી પ્રભુના અષ્ટસખા પૈકીના એક વ્રજવાસી  
સખા હતા, તેવી પ્રસિદ્ધિ આજ છે એમ નહિં પણ તેમની



વિદ્યમાનતામાં યે વિદ્યમાનીઓ પણ દૃઢવિશ્વાસપૂર્વક તેમ માનતા હતા.

ઉક્ત વાતને સિદ્ધ કરતો એક પ્રસંગ ‘લક્ષિતમાહાત્મ્ય’ નામક સંસ્કૃત ગ્રંથમાંથી ઉદ્ધૃત કરીને અત્રે આપવામાં આવે છે—

‘ શ્રીકૃષ્ણના કોઈ એક સખા ( ઉદ્ધવ ? ) સૂરસેન કુલમાં ઉત્પન્ન થયા હતા. જ્યારે ભગવાન દ્વારકા પધાર્યા ત્યારે તેમની સાથે તે પણ ત્યાં ગયા. કિંતુ એમનું મન વૃંદાવનમાં લાગી રહ્યું હતું. તેમણે એક દિવસ શ્રીકૃષ્ણને કહ્યું કે હું ક્યારે વ્રજનાં સ્થલોનાં દર્શન કરીશ ?’

‘ પછી થોડા સમય બાદ શ્રીકૃષ્ણે સ્વધામ પધારતી સમયે ઉક્ત સખા આગળ સ્વયંચ્છાને પ્રકટ કરી, પોતાનો મથુરામાં સદા નિવાસ છે એવં પોતાની લીલા નિત્ય છે એમ બતાવી તેમને નિમ્ન ભવિષ્ય કહ્યું—’

“ તમે કલિના સન્ધ્યાંશ (સન્ધિ) સમયમાં મથુરાની પાસે બ્રાહ્મણકુલમાં પેદા થશો. અને મથુરા જઈને મારી લીલાનું સ્મરણ કરી પ્રાકૃત પદોથી એનું ગાન કરશો. જેનો બીજા ઉપર પણ પ્રભાવ પડશે. અને તમારા પદ ગાનાર વ્યક્તિઓનો પણ હું ઉદ્ધાર કરીશ.\* પરંતુ તમે જન્મતાંની સાથેજ નેત્રહીન થશો. જેથી તમને સ્ત્રી પુત્રાદિકનું બંધન પ્રાપ્ત થશે

\* સરખાવો સૂરની વાણી—

અથ શ્રીનાથજી કે વરદાન—

તબ બોલે જગદીશ જગતગુરુ સુનો સૂર મમ ગાથ ।

તૂ કૃત મમ યશ જો ગાવૈગો, સદા રહે મમ સાથ ॥

સરસારાવલી ૧૧૦૪ છંદ



નહિં અને અન્ધા હોવાના કારણથી કેવળ તમારી માતાજી તમને પાળશે. આ પ્રકારે કહી શ્રીકૃષ્ણ અંતર્હિત થયા. ”

x

x

x

‘એક સમય મ્હેન્ટ ભૂપ દિલ્હીના બાદશાહે ભક્તિ-પૂર્વક સૂરદાસજીને પોતાને ત્યાં બોલાવી સત્કાર્યા. અને તેણે કહ્યું કે-આપ ભગવાનના સખા યાદવ છો જેથી આપને બધું સ્મરણ છે. તો મારી પ્રાર્થના છે કે મારી અનેક સ્ત્રીઓમાં કેઈ યાદવી હોય તો બતાવો.’

‘ત્યારે સૂરદાસજીએ બધી રાણીઓને ક્રમશઃ પોતાની સન્મુખ લાવવાને કહ્યું. પછી તેમના કહેવા પ્રમાણે પ્રત્યેક બેગમ પડદાનો ત્યાગ કરી સૂરદાસજીને પ્રણામ કરીને જવા લાગી. અન્તમાં એક બેગમ આવી જેણે સૂરદાસજીને જોઈ સમીપમાં આવી તેમનાં ચરણ-સ્પર્શ કર્યા. અને સ્પર્શ માત્રથી તેણીએ પોતાનો દેહ છોડી દીધો.

÷ આ પ્રસંગથી બે ત્રણ વાત સ્પષ્ટ થાય છે. એક તો સૂરદાસજીની વિદ્યમાનતામાંજ તેઓ ઉદ્ભવના અવતાર તરીકે પ્રસિદ્ધ હોવા જોઈએ. અને નિમ્ન દોહો પણ તે સમયનોજ હોવો જોઈએ—

विरहानल उरमें जरै बहत नैन जल धार ।

अचरज को है सूर का ऊधो को अवतार ॥

બીજું બાદશાહ અકબર નવીન ધર્મના સંસ્થાપક તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા બાદ પોતાને તેના ‘પયગમ્બર’ રૂપે માનતો હતો. અને તેથી કદાચ તેના હૃદયમાં શ્રીકૃષ્ણની સમાન હોવાની કંઈક અભિલાષા રહેતી હોવી જોઈએ. જેથી તેના મનમાં પોતાની સ્ત્રીઓમાં યાદવી હોવાની ભાવના ઉદ્ભવી.



‘પછી તેનું કારણ પુછતાં બાદશાહને સૂરદાસજીએ કહ્યું કે—પહેલાં મથુરામાં ‘સુલોચના’ નામક એક વેશ્યા રહેતી હતી. તેણીને એક વૈશ્યે પોતાના પુત્રના વિવાહમાં ઇંદ્રપ્રસ્થ:(દિલ્હી) બોલાવી. ત્યાં પ્રશંસાવશ તેણીને રાજાએ પણ નૃત્ય માટે સભામાં બોલાવી અને એની કલા ઉપર પ્રસન્ન થઈ તેણીને બહુજ દ્રવ્ય આપ્યું. નૃત્યની સમય તેણીએ એક રાણીને જોઈ પોતાની વૃત્તિ ઉપર પશ્ચાત્તાપ કર્યો. પછી ત્યાંથી આવીને પોતાનું સમગ્ર દ્રવ્ય દરિદ્ર બ્રાહ્મણોને આપી દીધું અને એ કૃળ માગ્યું કે હું આગલા જન્મમાં રાણી થાઉં.’

‘તેણી આ પ્રકારનું ચિંતન કરતાં થોડા સમયમાં મૃત્યુ પામી અને તે તમારે ત્યાં રાણી થઈને આવી.’

‘પછી આયુષ્ય ક્ષય થયા બાદ તેણી મને જોઈને દેહ છોડી મુક્ત થઈ. આ યાદવી ન હતી, કેમકે જેઓએ યાદવ વંશમાં જન્મ લીધો હતો તેઓ મનુષ્ય ન હતાં’\*

---

\* સૂરદાસજી મથુરા ગયા તે સમયે અકબર મળ્યો હતો (જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે) ત્યારનો આ પ્રસંગ છે. સૂરદાસજી દિલ્હી ગયા નથી.



## સૂરદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ

—:૦:—

ચોક્કેર પ્રચલિત પ્રસંગોનું નિરૂપણ કર્યા પછી હવે અમે શ્રીસૂરના ક્રમબદ્ધ ચરિત્રનું સંક્ષિપ્ત વર્ણન કરીએ છીએ—

વ્રજભાષા-ગદ્યસાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ‘વાર્તા’ અને ‘નિજવાર્તા’ના આધારે શ્રીસૂરનો જન્મ સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ શુકલ દ્વિતીય પંચમી અને રવિવારના મધ્યાહ્ને દિલ્હી પાસે આવેલા ‘સીંદી’ નામક ગ્રામમાં એક સારસ્વત બ્રાહ્મણને\* ત્યાં થયો હતો.

શ્રીસૂર સ્વગુરૂ મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીથી ફક્ત ૧૦ દિવસજ ન્હાના હતા.

---

\* સૂરદાસજીનું બ્રહ્મભટ્ટ હોવું બીલકુલ અસંકેત છે. કારણ કે—એ તદ્દન અસંભવ છે કે શ્રીસૂરના ઘનિષ્ઠ પરિચયવાળા શ્રીગોકુલેશ તેમની જ્ઞાતિ પણ ન જાણતા હોય !

અર્વાચીન તમામ અન્વેષણ કર્તાઓએ વાર્તાને જ તે વિષયમાં વધુ પ્રામાણિક માની એકી અવાજે સૂરદાસજીનું બ્રાહ્મણ હોવું સ્પષ્ટ કર્યું છે. વિસ્તાર ભયથી નીચે સમાલોચનાત્મક ફક્ત એજ મત ઉધ્ધૃત કર્યા છે—

“સરદાર કવિ ને इन्हें महाकवि चन्दबरदायी का वंशज मानकर, ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है, किन्तु ‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ में इसका कोई जिकर नहीं है, और ‘वार्ता’ ही प्रमाण कोटि में अधिकांशतः आ सकती है,



जनश्रुतिना आधारे तेमना पितानु नाम रामदास  
अने मातानु नाम भगवती लक्ष्मी हुतुं.

तेओ जन्मथी ज ग्राह्य यक्षु चिन्दु रडित, भगवदीय  
अने त्रिकाक्ष हुता. श्रीसूर छ वर्षना थया त्यारे तेओ

क्यों कि उसे सूरदासजी के समसामयिक गोसाईं गोकुल-  
नाथजी ने रचा था।”

वियोगीहरि रचित ‘व्रजमाधुरी सार’ पत्र. २

“इन छंदों के कपोल कल्पित होने का दूसरा बड़ा भारी  
प्रमाण यह है कि श्रीगोकुलनाथजी ने अपने चौरासी-चरित्र  
में और मियॉसिंह ने भक्त-विनोद में सूरदास को ब्राह्मण  
कहा है। गोकुलनाथ गोस्वामी विठ्ठलनाथ के पुत्र थे, और  
सूरदास के मरने के समय गोस्वामीजी की अवस्था ४८  
वर्ष की थी। अतः समझ पड़ता है कि गोकुलनाथ भी  
२०-२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामीजी और सूरदास में  
प्रेमका एवं अन्य घनिष्ठ संबंध था। अतः यह विचार भी  
मन में नहीं आता कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूर-  
दास का कुल तक न जानते हो। इसी प्रकार चौरासी  
वार्ता और भक्तविनोद में शत्रुनाश के वरदान का कोई हाल  
नहीं लिखा है, यद्यपि कूपपतन का वर्णन है, यह संभव  
नहीं कि यदि यह वरदान सूरदास को मिला होता, तो  
इन दोनों पुस्तकों में कूपपतन का वर्णन होने पर भी यह  
हाल न लिखा होता। फिर यह भी संभव नहीं कि यदि  
इन के छ भाई मारे गए होते, तो ये दोनों लेखक उस  
बात को न लिखते।”



સ્વપિતાના કટુ વચનથી ઘરથી વિરક્ત થઈ ચાલી નીકળ્યા.\* અને તેમણે ગામથી ચાર કેસ દૂર આવેલા એક નાના ગામની ખડાર તલાવ ઉપર આવીને જળ પીધું. ત્યાં તેમણે લોકોને શુકન આદિ બતાવી ભવિષ્ય કહી કેટલીક પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. જેના પરિણામે ત્યાંના લોકોએ તેમને ખાનપાન આદિનો પ્રબંધ કરી આપ્યો.

પછી પ્રસિદ્ધિથી આકર્ષાઈ ઘણા મનુષ્યો, કંઠી એવં ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરી એમના શિષ્ય થયા. અને ત્યારથી તેઓ ‘સૂરસ્વામી’ તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા.

તેઓ કાવ્યરચના અને ગાનકળામાં જેવા સર્વોત્કૃષ્ટ હતા તેવાજ કેકીલકંઠી હતા. તેથી તેમના અનેક ગુણોથી આકર્ષાઈ કવિઓ અને ગુણીજનોનો સમૂહ તેમની નિકટ સર્વદા રહેતો.

ત્યાં બાર વર્ષના નિવાસ દરમ્યાન તેમણે હજારો પદ માહાત્મ્ય અને દીનતાનાં રચ્યાં.

જનશ્રુતિના આધારે, સં. ૧૫૫૨માં તેઓને નારદજીનો સાક્ષાત્કાર થયો. પછી તેમની દ્વારા ભગવદ્ ગુણાનુવાદ શ્રવણ કરી તેઓ અતિ પ્રસન્ન થયા. અને ભક્તપ્રકૃતિને અનુસરીને તેમણે નારદજી આગળ નિમ્ન પદ દ્વારા માહાત્મ્યજ્ઞાન સંયુક્ત પ્રભુની નિષ્કુરતાનું વ્યંગાત્મક વર્ણન કર્યું—

કહાવત એસે ત્યાગી દાની ।

ચાર પદારથ દિયે સુદામા, ગુરુ કે સુત દયે આનિ ॥

---

\* કેટલાકના મતે આઠ વર્ષના થઈ ઉપવિત લીધા બાદ તેઓ વિરક્ત થયા હતા.



વિभीષન કૌં લંક દીની, પ્રેમ પ્રીતિ પહચાનિ ।  
 રાવન કે દસ મસ્તક છેદે, દૃઢ ગ્રહી સારંગ પાનિ ॥  
 પ્રહાદ કો નિજ કૃપા કીન્હી, સૂરપતિ કિયે નિદાન ।  
 સૂરદાસ પર બહુત નિઠુરતા નૈનન હૂ કી હાન ॥

આ પદ શ્રવણ કરી નારદજી આર્દ્ર હૃદયે તેમને ભગ-  
 વદર્શનનો વર આપી અંતર્ધ્યાન થયા.

પછી એક દિવસે સૂરદાસજી ભગવદ્ગુણાનુવાદ ગાતાં  
 આનંદના આવેશથી આત્મ-વિસ્મૃત થયા. અને તેઓ ભાવા-  
 વેશમાં ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. તે સમયે નજીકના એક કુવામાં  
 પડતાં ગોપવેશધારી શ્રીકૃષ્ણે તેમની હાથ પકડી રક્ષા કરી\*

આપના અલૌકિક સ્પર્શમાત્રથી તેઓને ભગવત્સ્વરૂપનું  
 જ્ઞાન થયું. અને તેથી એમણે પણ તે પ્રભુના શ્રીહસ્તને  
 મજબુત પકડ્યો.

પછી ગોપવેશ ધારી શ્રીકૃષ્ણ તેમના હાથમાંથી અંત-  
 ર્ધ્યાન થયા ત્યારે શ્રીસૂરે નિમ્ન દોહો કહ્યો—

---

\* ‘ભક્તિ-માહાત્મ્ય’ નામક એક પ્રાચીન સંસ્કૃત ગ્રંથથી  
 ઉદ્ધૃત.

જે ગ્રંથમાં સાત દિવસ સુધી કુવામાં પડી રહેવાનું  
 વર્ણન છે તે, વાર્તાના આધારે તથા યુક્તિથી પણ અસંગત છે.  
 કેમકે વાર્તાને અનુસરીને એ સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીસૂર કદીયે શિષ્યો  
 વિહીન રહ્યા નથી. એટલે છ દિવસ સુધી શિષ્યોને સૂરદાસજીના  
 કુવામાં પડવાની ખબર ન પડે એ માની શકાય નહિ.

આવેળ એક અન્ય પ્રસંગ બિલ્વમંગળ સૂરદાસ સંબંધીનો  
 ‘ભક્તિ મહાત્મ્ય’ ગ્રંથમાં પ્રાપ્ત છે. એટલે સંભવ છે કે નામ સામ્યે  
 સૂરદાસના પ્રસંગો અને પદોમાં સંમિશ્રણ થયું હોય.



\* हाथ छुड़ाये जात हो निबल जानि के मोहि ।  
हिरदे तें जब जाऊगे मर्द बढोंगो तोहि ॥

पश्चात् त्वारे तरङ्ग प्रलुने ज्योतां तेज्यो विक्रम थर्ष  
त्यांना मनुष्योने ते गोपनालकना विषे पुछवा लाग्या.

ज्यारे मनुष्यो तरङ्गथी डेअर पण प्रचारने जवाण न.  
मज्यो त्वारे तेज्यो स्वस्थणे आनी अति दैन्यतापूर्ण हुदये  
श्रीगोपीजनानी भाङ्क हुरियशोगान करता अस्वस्थ चित्ते  
इदन करवा लाग्या.

ते समये लज्जताधीन प्रलुने त्यां प्रकट थर्ष श्रीसूरने  
दिव्य नेत्रो आपी दर्शन दीधां.

आ वणते श्रीसुरे ते अलौकिक सुधामय भूर्तिनु दर्शन  
करी हुदयवेधक निम्न पद गार्थु—

सन्मुख आवत बोलत बैन ।  
ना जानूं तिहिं समे जु मेरे सब तन श्रवण कि नैन ॥  
रोम २ में सुरति शब्द की नख शिख लोचन ऐन ।  
इते मांझ बानी चंचलता सुनी न समुझी सैन ॥  
तब जकि थकि चकि ठई मौन मुख अब न परै चित्त चैन ।  
सुनहु सूर यह सत्य, किधौं सुपनौ दिन रैन ॥

\* लज्जितालकनां आ दोहो संस्कृतमां आ प्रकारे प्राप्त छे.  
मोटयित्वा करं यन्मे दुर्बलस्य गतोह्यसि ।

हृदयाचेद्बहिर्यसि तदा त्वां पुरुषं ब्रुवे ॥ (१०४ प्रकरण)



પછી શ્રીકૃષ્ણે સુરની વાણીનો અંગિકાર કરી તેમને વર માગવાને કહ્યું. ત્યારે તેમણે અન્ય પ્રાકૃત વસ્તુ ન દેખાય તદ્દર્થ નેત્રોના વિસર્જનપૂર્વક ભગવદ્દલીલાનો સાક્ષાત્કાર માગ્યો.

એટલે શ્રીહરિએ તેઓને મથુરામંડલમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીના શરણ દ્વારા તે ઇચ્છા પૂર્ણ થશે એમ આજ્ઞા કરી.

પછી શ્રીકૃષ્ણના અંતર્ધ્યાન થયા બાદ શ્રીસૂરે કેટલાક દિવસ ત્યાં રહી ભગવદ્દમાહાત્મ્ય જ્ઞાનનું પદો દ્વારા વર્ણન કર્યું. તે પૈકી એક રાત્રિએ પુનઃ શ્રીકૃષ્ણે તેમને દર્શન આપી મથુરામંડલમાં શીઘ્ર જવાની આજ્ઞા કરી.

તેથી તેઓ સં. ૧૫૫૩ માં કેટલાક શિષ્યો સહિત મથુરા જવા નિકળ્યા. આ સમયે તેમના પિતા પણ ત્યાં આવી પહોંચ્યા. એટલે તેમણે તેઓને દુઃખી જાણી પોતે ત્યાગ કરેલો વૈભવ લેવાને કહ્યું.

પછી પિતાએ તે ગ્રહણ કર્યો. અને સૂરદાસની સાથે તેઓ પણ મથુરા યાત્રાર્થે આવી.

કહે છે કે આ સમયે તેમના પિતાએ મથુરામાં એક સાધુને ત્યાં શ્રીસૂરનો યજ્ઞોપવિત સંસ્કાર કર્યો. અને તેમને વિદ્યાભ્યાસ અર્થે ત્યાં રાખ્યા.

પશ્ચાત સૂરદાસના આગ્રહથી તેમના પિતા ઘર ગયા. અને સૂરદાસજી થોડા દિવસ ત્યાં રહ્યા.

પછી મથુરાના ચોખાની પ્રવૃત્તિથી કંટાળી તેઓ મથુરા અને આગ્રાની વચ્ચે આવેલા ગૌઘાટ નામક સ્થાન ઉપર શિષ્યો સહિત ગયા. ત્યાં શિષ્યોને એક કુટી કરવાની આજ્ઞા



આપી. અને જ્યાં સુધી તે સિદ્ધ થઈ નહી ત્યાં સુધી તેઓ પાસેના 'ફનકતા' નામક ગામમાં એક સ્થળે રહ્યા.

બાદમાં શ્રીસૂરે ગોઘાટ ઉપર ૧૨ વર્ષે પર્યંત દૈનિકવાસ યુક્ત અનેક શિષ્યો પ્રાપ્ત કરી, ભગવદ્વચ્ચોગાન દ્વારા મોટા પ્રમાણમાં પ્રસિદ્ધિ-લાભ મેળવ્યો.

ત્યાં સર્વે પ્રકારનું સુખ હોવા છતાં સૂરદાસજીનું હૃદય ભગવદ્દીવાના દર્શનને માટે વારંવાર અશાંત બનતું. તોપણ તેઓ કેઈ ન જાણે તે રીતે પોતાના અશાંત ચિત્તને, ભગવદ્દાસ ઉપર દૃઢ વિશ્વાસ રાખી શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની પ્રતિક્ષા કરતાં, પુનઃ પુનઃ સમજાવી આશા આપતા.

આ પ્રકારે ઘણા દિવસ વ્યતીત થયા. એવામાં દક્ષિણના મહારાજા 'નૃસિંહવર્મા' સાર્વભૌમના રાજ્યમાં, રાયલુ સેનાની રાજા કૃષ્ણદેવ દ્વારા વિદ્યાનગરમાં કનકાભિષેકથી સન્માન પ્રાપ્ત કરી મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય અડેલ થઈ સં. ૧૫૬૬ના ચૈત્ર વદ ૧૧ના દિવસે ગોઘાટ પધાર્યા.

તે સમયે શ્રીસૂર શિષ્યો દ્વારા મહાપ્રભુનું આગમન સાંભળી હર્ષપૂર્વક આપની પાસે આવ્યા. અને તેમણે દીનતાનાં અનેક પદ ગાયા ઉપરાંત પોતાને શરણે લેવાની નિમ્ન પદ દ્વારા પ્રાર્થના કરી—

‘ તુમ તજિ ઔર કોન પૈ જાઝં ।

કાકે દ્વાર જાય શિર નાઝં પરહથ કહાં વિકાઝં ॥

---

x આ સંબંધી વિશેષ જુઓ અમારા તરફથી પ્રકટ થયેલ “શ્રી વિકૃલેશ્વર ચરિતામૃત”



एसो को दाता है समरथ जाके दिये अघाऊं ।  
 अंतकाल तुमरे सुमिरन बिनु और नहीं कहूं ठाऊं ॥  
 रंक सुदामा कियो अजाची दियो अभैपद ठाऊं ।  
 कामधेनु चिंतामनि दीनी कल्पवृक्ष तरछाऊं ॥  
 भव समुद्र अति देखि भयानक मनमें अधिक डराऊं ।  
 कीजे कृपा महाप्रभु मो पर, + सूरदास बलिजाऊं ।

श्रीसूरजी ઉક્ત દૈન્યતાપૂર્ણ વિનતીને સ્વીકારી આચાર્યશ્રીએ તેમને શ્રીચમુનામાં સ્નાન કરાવી તેજ દિવસે (ચૈત્ર વ. ૧૧) નામ નિવેદન આપીને શરણે લીધા. પછી ભાગવતના દશમસ્કંધની અનુક્રમણિકા એવં પુરૂષોત્તમ સહસ્રનામને રચી તેઓને શ્રવણ કરાવ્યાં. તેથી તેમને સમગ્ર લીલાનું જ્ઞાન થયું. પછી એમણે આચાર્યશ્રીના દશમસ્કંધની ટીકાના મંગલારણવાળા શ્લોકને અનુસરીને નિમ્ન પદ ગાયું—

+ એદ છે કે મિશ્રબન્ધુઓએ પોતાની ‘સૂરસુધા’ નામક પુસ્તકમાં આ કડીને ફેરવી નાખી છે—

કીજે કૃપા સુમિરિ અપનો પ્રણ સૂરદાસ બલ જાઝું ।  
 તો પણ

તુમ તજિ ઔર કોન પૈ જાઝું । કાકે દ્વાર જાય શિર નાઝું  
 પરહથ કહાં બિકાઝું ॥

એ શબ્દોથી સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે કે શ્રીસૂરે મહાપ્રભુ આગળ પોતાને શરણે લેવાની પ્રાર્થના રૂપેજ, મહાપ્રભુ અને ઈશ્વરના સ્વરૂપમાં સાચો અને વાસ્તવિક અભેદ સમજી, આ પદ ગાયું છે, વિશેષ જુઓ વિશ્વનાથ ગોવિંદજી દિવેદી રચિત શ્રીવલ્લભ દિગ્વિજય પાન ૯૨

—સંપાદક



‘ચક્રફરી ચલ ચરન સરોવર જર્હા નહિ પ્રેમ વિયોગ ।’

ઉક્ત શ્લોકમાં ‘લક્ષ્મી સહસ્ર લીલામિઃ સેવ્યમાનં કલાનિધિ’ જેમ કહ્યું છે તેમ સૂરે પણ આ પદના અંતમાં ‘જહાં શ્રીસહસ્ર સહિત નિત ક્રીડત શોભિત સૂરજદાસ’ એમ ગાયું છે. તેથી આચાર્યશ્રીએ જાણ્યું કે સૂરદાસજીને ભગવદ્લીલા સ્કુરી.

પછી આચાર્યશ્રીએ તેમને નંદાલયની લીલા ગાવાની આજ્ઞા કરી ત્યારે તેમણે જન્મ પ્રકરણને અનુસરીને ‘વ્રજમયો મહરિ કે પૂત’ એ પદ ગાયું. તેમાં નંદાલયનું વર્ણન કર્યા પછી જ્યારે તેઓ ગોપીયોના ગૃહનું વર્ણન કરવા લાગ્યા ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેમને રોકવા માટે, તેમજ તેમના—સ્વ-શિષ્યોના ઉદ્ધાર સંબંધી—આંતરિક સંદેહના નિવારણાર્થે, ‘સુનિ સૂર સબન કી યહ ગતિ’ એ અંતિમ વાક્ય કહી ઉક્ત પદની પૂર્ણાહુતિ કરી તેમને ચુપ કર્યા.

પછી ત્રણ દિવસ પર્યંત આચાર્યશ્રી ત્યાં બિરાજ્યા તે દરમિયાન શ્રીસૂરે પોતાના અનેક શિષ્યોને સેવક કરાવ્યા. અને ચોથા દિવસે તેઓ આપની સાથે શ્રીગોકુલ આવ્યા.

તે સમયે આગ્રાથી ગજજનધાવન કાલપીવાળા પણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને લઈને આચાર્યશ્રીની સાથે ગોકુલ આવ્યા હતા. અને આચાર્યશ્રી શ્રીનવનીતપ્રિયજીને પ્રેમ-પૂર્વક બાલભાવથી લાડ લડાવતા હતા.

ઉભય સ્વરૂપોની પરસ્પર પ્રીતિનો હૃદયમાં અનુભવ કરી સૂરદાસજીએ આચાર્યશ્રીને પ્રસન્ન કરવાને અર્થે આપની આજ્ઞાથી શ્રીનવનીતપ્રિયજીના ગૂઢ સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં



આલભાવનાં 'શોભિત કર નવનીત લિયે' આદિ અનેક પદ ગાયાં. જેથી આચાર્યશ્રી પ્રસન્ન થયા.

પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી સૂરદાસજીને સાથે લઈ શ્રી-ગોવર્ધન પર્વત ઉપર પધાર્યા. ત્યાં નવીન મંદિરમાં બિરાજતા શ્રીનાથજીની સન્મુખ વૈ. શુ. ૩ અક્ષયતૃતીયાના દિવસે સૂર-દાસજીને કીર્તનની સેવા સોંપી.

તે સમયે શ્રીસૂરે વિશંખીયુક્ત દીનતાનું—'અબ હૌં નાચ્યો બહુત ગોપાલ' એ—પદ ગાયા બાદ પુષ્ટિમાર્ગના મર્મને પ્રકટ કરતું, માહાત્મ્યજ્ઞાનયુક્ત પૂર્ણ સ્નેહને સૂચવતું "કૌન સુકૃત ફન વ્રજવાસિન કો"—પદ શ્રીનાથજીને શ્રવણ કરાવ્યું. જેથી આચાર્યશ્રી પૂર્ણ સંતુષ્ટ થયા.

પછી આચાર્યશ્રીના સંબંધથી શ્રીનાથજીએ શ્રીસૂરને વિવિધ પ્રકારની અનેક લીલાઓનો અનુભવ કરાવ્યો. અને તેમને તે લીલાઓનું સુચારૂ રૂપે વર્ણન કરવાની આજ્ઞા આપી.

જેનું સ્પષ્ટીકરણ શ્રીસૂર આ પ્રકારે નિજ 'સૂરસાવલી'માં આપે છે—

કરમયોગ પુનિ જ્ઞાન ઉપાસન સવ હી ભ્રમ ભરમાયો ।

શ્રીવલ્લભ ગુરુ તત્ત્વ સુનાયો, લીલા ભેદ બતાયો ॥

તા દિન તેં હરિ લીલા ગાઈ, એક લક્ષ પદ બંદ ।

તાકો સાર સૂરસારાવલિ, ગાવત અતિ આનંદ ॥

અથ શ્રીનાથજી કે વરદાન—

તવ બોલે જગદીશ જગતગુરુ, સુનો સૂર મમ ગાથ ।

તૂ કૃત મમ યશ જો ગાવૈગો, સદા રહે મમ સાથ ॥



આ પ્રકારે શ્રીસૂરે આચાર્યશ્રી અને શ્રીગોવર્દ્ધનનાથ-  
જીની કૃપાથી સમગ્ર લીલાનાં પદોનો વિસ્તાર કર્યો. અને  
તેમાં સૂર એવં સૂરદાસ એમ દ્વિવિધ છાપ ધરી. અસ્તુ.

સૂરસારાવલીના અવલોકનથી એ પ્રતીત થાય છે કે  
સં. ૧૫૬૬ થી સં. ૧૫૮૬ સુધીના વચગાળાના ૨૧ વર્ષમાં,  
શ્રીસૂરે, પોતાને પ્રાપ્ત શ્રીનાથજી એવં આચાર્યશ્રીના દિવ્ય  
પ્રસાદ દ્વારા અનેક લીલાઓનાં અસંખ્ય પદો રચ્યાં અને  
મહાપ્રભુને શ્રવણ કરાવ્યાં.

તેથી વાર્તાને અનુસાર આચાર્યશ્રી તેઓને ‘સૂરસાગર’  
કહીને બોલાવતા અને આપની તે વાણી આજ પણ સાહિત્ય-  
સંસારમાં વિશુદ્ધ રૂપે સ્પષ્ટ છે.

સં. ૧૬૩૪ લગભગ જ્યારે બાદશાહ અકબર મથુરામાં  
સૂરદાસને મળ્યો ત્યારે તેણે શ્રીસૂરને પોતાનો પણ  
કંઈક યશ ગાવાને કહ્યું. પરંતુ ભગવદ્દરસથી પરિપૂર્ણ એવા  
શ્રીસૂરે તેને સ્પષ્ટ કહ્યું કે ‘નાહીન રહ્યો મન મેં ઠૌર’ ।

પછી બાદશાહે સૂરદાસજીને વિષ્ણુપદ સંભળાવાને કહ્યું  
ત્યારે તેમણે ‘મનારે તૂ કર માધોસોં પ્રીત’ એ ‘સૂરપચીસી’  
સંભળાવી તેને ઉપદેશ આપ્યો.

તેથી બાદશાહે પ્રસન્ન થઈને કંઈક માગવાને કહ્યું. ત્યારે  
શ્રીસૂરે નિઝરતાપૂર્વક જણાવ્યું કે ‘ફરીથી તમે મને કદી  
મળતા નહિ તેમજ બોલાવતા પણ નહિ’\*

---

\* ‘આમને અકબરી’નો અબુલફઝલનો—સૂરદાસને બાદશાહને  
મળવા કાશીથી પ્રયાગ આવવા માટેનો—લખેલો પત્ર અષ્ટછાપના  
શ્રીસૂર પ્રત્યેનો નથી. કિંતુ સંભવ છે કે ‘સૂરદાસ મદનમોહન’



સૂરદાસજીની આવી નિસ્પૃહતા અને નિઠરતા જોઈ બાદશાહ આશ્ચર્યચકિત થયો. અને ત્યારથી તે તેમને અને તેમના કાવ્યને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિથી જોવા લાગ્યો. પછી તેણે તેમનાં અનેક કીર્તનો પોતાનાં માણસો પાસે ફારસીમાં ઉતરાવી લીધાં અને તેનું તે નિત્ય અધ્યયન કરવા લાગ્યો.

પશ્ચાત ધીરે ધીરે અકબર ને શ્રીસૂરનાં પદો પ્રત્યે બહુજ મમત્વ વધ્યું. અને જે કોઈ તેમનાં રચેલાં પદો તેને આપે તેને તે પ્રત્યેક પદ દીઠ એક એક મોહોર આપતો.

આ રીતે બાદશાહ અકબરે શ્રીસૂરનાં પદોનો બહુજ મોટો સંગ્રહ પ્રાપ્ત કર્યો.

આથી જો કે સૂરદાસજી અને તેમના કાવ્યની ખ્યાતિ જગ-પ્રસિદ્ધ થઈ કિંતુ તેની સાથે એક મહાન અનર્થ એ

---

છાપવાળા સૂરદાસ ઉપરનો હોય. કારણ કે તે સૂરદાસે બાદશાહ અકબરની નોકરી છોડી તે માટે તેમને મનાવવાને અર્થે તેની પ્રશંસાને પત્ર બાદશાહે તેની ઉપર લખાવ્યો હોવો જોઈએ.

ઉક્ત અનુમાનમાં સમય બહુજ મળતો આવે છે કેમકે અબુલ-ફઝલ સંવત ૧૬૩૧ ( અકબરના ઈલાહી સન ૧૯ )માં બાદશાહનો નોકર થયો હતો. અને સૂરદાસ મદનમોહન પણ તેજ અરસામાં નોકરી છોડી આગળ જણાવ્યા પ્રમાણે ભાગી ગયા હતા.

વળી અષ્ટછાપના શ્રીસૂર શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા પછી કદીયે ગોવર્ધન, મથુરા યા ગોકુલ શિવાય કોઈ સ્થળે ગયેલા જણાતા નથી.

અને એ અનુભવ સિદ્ધ વાત છે કે ભગવતસાક્ષાત્કાર થયા બાદ બાદશાહને અથવા કોઈ અન્યને પણ મળવા અન્યત્ર જઈ મહાનુભાવો સ્થાનબ્રષ્ટ થતા નથીજ.

—સમ્પાદક



થયો કે શ્રીસૂરના નામે બનાવટી છાપવાળાં ઘણાં પદો રચાયાં.

એક દિવસે બાદશાહ અકબરની પાસે કેટલાક કવીશ્વરો લોભથી સૂરદાસજીની છાપ ધરી ઘણાં કલ્પિત પદો બનાવીને લાગ્યા. તે વાંચી અકબરે તે પદોની કલ્પિતતાને જાણી લીધી. અને તે બનાવટી પદોની સાથે સૂરદાસજીના વાસ્તવિક પદોને તેણે ઈશ્વરનું સ્મરણ કરી પાણીમાં મૂક્યાં. કલતઃ કલ્પિત પદો જળમાં ડુબી ગયાં અને સાચાં પદો પાણીની ઉપર તરવા લાગ્યાં.

આ સૂરદાસજીની વાણીનો પ્રત્યક્ષ પ્રભાવ જોઈ અકબરને પ્રસન્નતા તો અવશ્ય પ્રાપ્ત થઈ, પરંતુ સાથે સાથે એ વિચારથી ખેદ પણ ઘણો થયો કે મારી લોભ આપવાની પ્રવૃત્તિથીજ સૂરદાસજીનાં વિશુદ્ધ પદોમાં કલ્પિત પદોનું સંમિશ્રણ થયું.

પછી તેણે આર્દ્ર હૃદયે ‘પ્રભુ મને આ પાપમાંથી મુક્ત કરો’ એમ કહી પોતાની પાસેનાં તમામ પદોને જળમાં મૂકી દીધાં. અને ઈશ્વરને પ્રાર્થના કરતો તે કહેવા લાગ્યો કે ‘હે પ્રભુ ! સૂરદાસજીની વાણીથી અતિરિક્ત સર્વે પદોને શીઘ્ર ડુબાવી દો.’

બાદશાહની ઉક્ત પ્રાર્થનાને સ્વીકારી પ્રભુએ સૂરદાસજીથી ભિન્ન સર્વે વાણીને જળમાં ડુબાવી દીધી.

આ રીતે અકબર દ્વારા શ્રીસૂરની વિશુદ્ધ વાણીનું પૃથક્કરણ થયું.+

+ ઉક્ત પ્રસંગ આ પ્રકારે પણ પ્રાપ્ત છે—

દૂસરા યહ કિ—અકબર કે વજીર ભાષારસિક સ્નાનઘાના ને સૂરસાગર સંગ્રહ કિયા, પ્રતિપદ કે લિયે ઇકબક અશર્ફો



પછી ગોસ્વામી શ્રીવિકૃલનાથજીની આજ્ઞાથી તે એક લાખ પદના સંગ્રહને અકબરે 'સૂરસાગર' નામ આપ્યું. જે આજ પણ પ્રસિદ્ધ છે.

વળી એક સમય સૂરદાસજી ગોકુલ આવ્યા ત્યારે ગુસાંધજીએ તેમને ' પ્રેમ પર્યંક શયન ' એ પાલનાનું સંસ્કૃત પદ રચી શિખવાડ્યું. ત્યારથી તેઓએ તેને અનુસરીને અનેક પાલનાનાં પદો ગાયાં. અને તે દ્વારા શ્રીનવનીતપ્રિયજી અવં ગોસ્વામી શ્રીવિકૃલનાથજીને પોતે પ્રસન્ન કર્યા.

પછી જ્યારે શ્રીવિકૃલનાથજી શ્રીનાથજીની સેવાર્થે ગોવર્ધન પધાર્યા ત્યારે તેઓ પણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીથી વિદાય થઈ ત્યાં જવા લાગ્યા. તે સમયે શ્રીગિરધરજીએ ગોવિંદજી, બાલકૃષ્ણજી અને ગોકુલનાથજીના અત્યાગ્રહથી સૂરદાસજીને થોડા દિવસ વધુ રહેવાનો આગ્રહ કરી ગોકુલમાં રાખ્યા. આ વખતે શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીગિરિધરજીને આશ્ર-

દેતે થે । પરંતુ જબ લોગ લોભ સે झूठे पद बना बनाकर लाने लगे तब उन्होंने तोलना आरम्भ किया । जो पद सूरदासजी के होते वह चाहे बड़े हों या छोटे तौल में बराबर उतरते, और जो झूठे होते वे कितने ही बड़े क्यों न हों हलके हो जाते ?

ત્રીસરી यह कि—अकबर ने पदों का संग्रह किया परन्तु झूठे पदों की बहुतायत से संख्या बहुत बढ़ गई तब सब को आग में डाल दिया । जो सूरदासजी के थे न जले और जो झूठे थे सब जल गए ।

‘સૂરદાસ’ પત્ર. ૧૩ આગરી પ્રચારિણી સમાદ્વારા પ્રકાશિત-  
મૃતપૂર્વ મંત્રી બાબુ રાધાકૃષ્ણદાસ લિખિત



ચાંન્વિત થઈ કહ્યું કે સુરદાસજી નેત્રવિહીન હોવા છતાં શ્રીનવનીતપ્રિયજીને જેવો શૃંગાર થાય છે તેવુંજ તેઓ પ્રત્યક્ષ-દર્શી માફક વર્ણન કરે છે. માટે તેઓને અવશ્ય કોઈ કહેતું હોવું જોઈએ. જેથી આવતી કાલે કોઈને ખબર ન હોય તેવો અટપટો શૃંગાર કરી આપ સૂરદાસજીની પરીક્ષા લો.

પછી બીજે દિવસે સૂરદાસજીને જગમોહનમાં બેસાડી કદી ન થયો હતો એવો શૃંગાર શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીગિરધરજી પાસે શ્રીનવનીતપ્રિયજીને કરાવરાવ્યો. તે દિવસ જેઠ વદ ૧ નો હતો (વ્રજ અષાઢ વદ ૧) એટલે ગમી સખત પડતી હતી જેથી શ્રીગિરધરજીએ શ્રીનવનીતાપ્રિયજીને કેવળ મોતિના શૃંગાર કર્યા.\* પછી જ્યારે સૂરદાસજીને કીર્તન ગાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે આ પદ ગાયું—

देखेरी हरि नंगमनंगा ।

जलसुत भूषण अंग विराजत, बसनहीन छवि उठत तरंगा ॥  
कहा कहूं अंग अंगकी शोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा ।  
कछू दधि हाथ कछू मुख माखन, सूर हसत ब्रजयुवतिन संग ॥

આ પદ શ્રવણ કરી શ્રીગોકુલનાથજીને પ્રતીત થઈ કે વાસ્તવમાં શ્રીસુરને સર્વ લીલા પ્રત્યક્ષ છે. \*

\* આજપણ જેઠ માસમાં શ્રીનાથજી અને નવનીતપ્રિયજીને આ શૃંગાર ધરાવવામાં આવે છે.

\* મિશ્રબન્ધુઓએ પોતાના ‘નવરત્ન’ ગ્રન્થમાં, સૂરદાસજી નેત્ર-વિહીન નહીં હોવા જોઈએ કેમકે જેવું અંધ પુરુષ વર્ણન ન કરી શકે તેવું તેઓએ યથાર્થ અને આબેહુથ પ્રાકૃતિક વર્ણન કરેલું છે એવું કરેલું અનુમાન આ પ્રસંગથી અસત્ય ઠરે છે.



પશ્ચાત એક સમય શ્રીસૂરને મળવા હરિવંશ આદિ વૃંદા-  
વનના સંત મહંતો પરાસોલી આવ્યા. ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને  
આદર કર્યો. અને પરસ્પર વાર્તાલાપાનન્તર શ્રીસ્વામિનીજીનાં  
પદો સંભળાવ્યાં. તે સમયે શ્રીસૂર એવા રસાવેશમાં ડુબી ગયા  
કે-તેમણે સાત દિવસ સુધી એક આસન જેસી શ્રીસ્વામિ-  
નીજીના સ્વરૂપને વર્ણન કરતાં અસંખ્ય પદો કહ્યાં.

આથી હરિવંશાદિક મહાનુભાવોએ આપની આર્દ્ર હૃદયે  
સ્તુતિ કરી. પછી પ્રણામ કર્યા બાદ તેઓ આપની પ્રશંસા  
કરતા વૃંદાવન ગયા. કિંતુ સૂરદાસજીને પોતાના શરીરનું ભાન  
ન રહ્યું અને ભાવાવેશમાં તદ્દીન થઈ તેમણે થોડા સમયમાં  
શ્રીસ્વામીનીજીનાં સહસ્રાવધિ પદ કર્યાં. આથી શ્રીસ્વામિનીજીએ  
પ્રસન્ન થઈને તેમને સાક્ષાત્ દર્શન આપ્યાં અને તેમની ‘સૂરજ’  
છાપધરી, જે આજ પણ ઘણા પદોમાં જોવામાં આવે છે.

પછી જ્યારે શ્રીસૂરને નિત્યલીલા-પ્રવેશની ભગવદ્દાસ  
થઈ ત્યારે તેઓને સવા લક્ષમાં બાકી રહેલાં ૨૫૦૦૦ પદોની  
રચના માટે ચિંતા થઈ.

તે ચિંતાને દૂર કરવા શ્રીહરિએ તેમના સંગ્રહમાં બાકી  
રહેલાં પદો ‘સૂરશ્યામ’ની છાપ ધરી પૂર્ણ કર્યાં જે આજ  
પણ પ્રાપ્ત છે.

પછી સં. ૧૫૪૦ ના મહા સુદ ૨ ના દિવસે સૂર-  
દાસજી શ્રીનાથજીને દંડવત પ્રણામ કરી પરાસોલી આવી  
એક ચોતરા ઉપર ધ્વજની સન્મુખ સુઈ ગયા, અને શ્રીગુસાં-  
ઈજીનું ચિંતન કરવા લાગ્યા.

આ સમયે ગોસ્વામીજી શ્રીનાથજીને શ્રંગાર કરી રહ્યા હતા  
તેવામાં તેમના હૃદયમાં આકસ્મિક-શ્રીસૂરને કીર્તન કરતા ન



જોઈ-અનેક પ્રકારની શંકાઓ ઉદ્ભવી. પછી સેવકો દ્વારા શ્રીસૂરનું પરાસોલી ગમન જાણી આપે તે સેવકોને સ્પષ્ટ કહ્યું કે ‘પુષ્ટિમાર્ગનું જહાજ જાય છે માટે જેને જે વસ્તુની આવશ્યકતા હોય તે શીઘ્ર લઈ લેવો.’

ગોસ્વામીજીની આ આજ્ઞાથી ઘણા સેવકો સૂરદાસજીને મળવાને ગયા. પછી રાજભોગાનન્તર સ્વયં શ્રી ગુસાંઈજી પણ અષ્ટછાપના સાતે કવિઓ એવં રામદાસ (મુખ્ય પ્રચારક)ને લઈને સૂરદાસજીને દર્શન આપવા ત્યાં પધાર્યા.

પશ્ચાત્ત ગોસ્વામીજીના સંબોધન દ્વારા શ્રીસૂરે આપનું પધારવું જાણી પુનઃ બેઠા થઈ સાષ્ટાંગ દંડવત કરી અને ‘દેખો દેખો હરિજીકો એક સુભાવ’ એ પદ ગાઈ ગોસ્વામીજી પ્રત્યેના પોતાના હરિરૂપ ગુપ્તભાવનું ત્યાંના ઉપસ્થિત ભાગ્યશાળી વૃંદને દાન કર્યું.

ત્યાર પછી ચત્રભુજદાસના પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપે તેમણે સર્વે વૈષ્ણવોને ‘દૃઢ ઈન ચરણન કેરો’ એ પદ દ્વારા ગુરૂ, ગુરૂપુત્ર અને શ્રીહરિને એકચ ભાવરૂપે જોનારને કલિ બાધા નથી કરી શકતો એવો અમૂલ્ય અંતિમ ઉપદેશ આપ્યો.

ત્યારબાદ ગોસ્વામીજીએ તેમને ‘ચિત્તની વૃત્તિ ક્યાં છે’ આદિ ચાદગાર શબ્દોથી ભગવદ્લીલાનું પુનઃ સ્મરણ કરાવ્યું. પશ્ચાત્ત શ્રીસ્વામિનીજીનું વર્ણન કરતાં તેઓએ પોતાનો દેહ છોડી દીધો.

આ રીતે શ્રીસૂરે પોતાના પદો દ્વારા દૈન્ય અને ભક્તિ-ભાવનું લોકોને દાન કર્યું.



## સૂરસુધા પર એક દષ્ટિ

આર્યાવર્તની પુણ્યભૂમીનો ભાગ્યે જ કોઈ મનુષ્ય, કવિ-કુલ સમ્રાટ ભક્ત-શિરોમણિ શ્રીસૂરની કૃપા-વર્ષિણી સુધાથી અપરિચિત હશે ! એમની સુધાનું જેઓએ પાન કર્યું છે તેઓ વાસ્તવમાં આ લોક અને પરલોકમાં કૃતકૃત્ય થઈ ચુક્યા છે એ નિઃસંદેહ છે.

શ્રીસૂરે, સૂરસાગર, સૂરસારાવલી, સાહિત્યલહરી સૂર-પત્રીશી, એવં સૂરસાઠી નામક ગ્રન્થો\* તથા શ્રીહરિની વિવિધ નિર્દોષ લીલાનાં પાન કરાવતાં અસંખ્ય સ્કુટ પદો રચી ખચિતજ સાહિત્ય-સંસાર એવં ભક્ત સમાજને પૂર્ણ ઉપકૃત કર્યો છે.

નાગરી પ્રચારિણી સભા દ્વારા નવીન શોધિત સૂરદાસના કહેવાતા ‘વ્યાહલો’ અને ‘નલદમયંતિ’ નામક બે ગ્રન્થો અષ્ટ છાપ શ્રીસૂરના હોવામાં અમને જ નહીં કિંતુ ‘વિયોગી હરિ’ ‘મિશ્રબન્ધુઓ’ આદિ ઘણાને સંદેહ છે.

કારણકે શ્રીસૂરે શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત અન્ય કોઈ પણ વ્યક્તિનાં ચરિત્રોને ગ્રન્થાકાર રૂપે લખ્યાં નથી. હાં ! મહા

\* ‘કેટાલાગસ કેટાલાગોરમ’માં ‘હરિવંશ-ટીકા’ નામનો ગ્રન્થ સૂરદાસજી રચિત હોવાનું લખેલું છે તેમજ પદસંગ્રહ, દશમસ્કંધ-ટીકા અને નાગલીલા એવં ભાગવત નામક શ્રીસૂરના રચેલા ગ્રન્થો નાગરી પ્રચારિણી સભા કાશીદ્વારા પ્રાપ્ત થયાનો ઉલ્લેખ વિનોદ પા. ૨૮૮માં છે. ઉક્ત પ્રથમ ગ્રન્થ જોવામાં આવ્યો નથી. અન્ય ગ્રન્થો સ્કુટ લાંબા પદોના અન્તર્ગત આવી જાય છે.



પ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય એવં તત્પુત્ર ગોસ્વામી શ્રીવિકૃલનાથ પ્રભુચરણની આરાને માન્ય આપી તેમણે પુષ્ટિ સેવામાં આવશ્યક જન્માષ્ટમીથી અતિરિક્ત અન્ય ત્રણ જયંતિઓ (વામન, નૃસિંહ અને રામ)નાં ફૂટકર પદો અવશ્ય રચ્યાં છે. તેમજ ભાગવતના અનુવાદમાં આવતા અન્ય અવતારોનાં આવશ્યક વર્ણન પણ તેમણે કર્યાં છે. કિંતુ તે ગ્રંથરૂપે ક્રમબદ્ધ અથવા સ્વતંત્ર તો નહીં.

વળી એ પણ ધ્યાનમાં રાખવાનું છે કે શ્રીસૂરે, પોતાની કાવ્ય શક્તિ એવં પ્રાસાદાત્મક વાણીને, એક પરબ્રહ્મ શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત કોઈ પણ મનુષ્ય યા રાજના યથોગાન કરવામાં ખર્ચ કરી નથી.

તેઓ શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત અન્યદેવોને પણ શક્તિહીન જાણી ભક્તિમાં તેમની ઉપેક્ષા જ કરતા. તેના પ્રમાણ રૂપે ‘અન્ય દેવ સર્વ રંક મિલ્વારો દેસે વહુત ઘનેરે’ આદિ અનેક પદો પ્રાપ્ત છે.

છતાંય તેઓ તુલસીદાસજીની માફક અન્ય દેવોની નિંદા કરતા ન હતા. કિંતુ તેમણે શ્રીકૃષ્ણની સર્વોપરિ સત્તાને, જડ, ચૈતન્ય, કલા, અંશ અને અવતારાદિમાં શુદ્ધાદૈત જ્ઞાન સ્વરૂપે જાણી તેમનું આવશ્યક હેતુથી વર્ણન કર્યું છે.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે અન્ય અવતારોનું આવશ્યક વર્ણન કર્યા છતાં શ્રીકૃષ્ણ શિવાય કોઈનીયે સત્તાને ભિન્નરૂપે સ્વીકારી નથી. એવી સ્થિતિમાં અમે ‘ખ્યાહલો’ અને ‘નલદમયંતિ’ નામક ઉભય ગ્રંથો અષ્ટછાપવાળા શ્રીસૂર રચિત હોય એ



માની શકતા નથી.\*

શ્રીસૂરના સવે ગ્રંથોમાં ‘સૂરસાગર’ એક અદિતીય ગ્રંથ છે. અને તેની રચના શ્રીસૂરના જાણાવ્યા મુજબ વિ. સં. ૧૬૦૨ સુધીની છે.\* તેને કમબધ કરવામાં શ્રીસૂરે ૧૬૦૮ થી ૧૬૩૦ સુધીનો સમય ખર્ચ્યો હોય એમ અનુમાન થઈ શકે છે અને તે અયથાર્થ નથી.

\* ‘નલદમન’ કાવ્યનો વિશેષ પરિચય આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થયો છે:—

‘નલદમન’ કાવ્યની રચના હિજરી સન ૧૦૬૮ એટલે સં. ૧૭૧૪ માં પ્રારંભ થઈ છે તેના રચયતા કવિ ‘સૂર’ના પિતાનું નામ ગોવરધનદાસ હતું અને તેઓ કંબુ ગોત્રના હતા. તેમના પૂર્વ પુરુષો ‘ગુરદાસપુર’ જીલ્લા ‘કલાનૌર’ સ્થાનમાં રહેતા હતા; અને ત્યાંથી તેમના પિતા લખનૌ આવીને રહ્યા. ત્યાંસૂરદાસ કવિનો જન્મ થયો હતો. (વિશેષ જુઓ ‘નાગરી પ્રચારિણી પત્રિકા, વર્ષ ૪૩ ભાગ ૧૯ અંક ૨ માં મુંબઈના પ્રીસ ઓફ વેલ્સ મ્યુનિસિપલ ક્યુરેટર ડૉ. મોતીચંદ દ્વારા લખાયેલો લેખ.)

× ગુરુ પ્રસાદ હોત ચહ દરશન સરસઠ વરસ પ્રવીન ॥ ૧૦૦૨ ॥

+

+

+

શ્રીવલ્લભ ગુરુ તત્ત્વ સુનાયો લીલા મેદ બતાયો ॥ ૧૧૦૨ ॥

તાદિન તેં હરિલીલા ગાઈં એક લક્ષ પદબંધ ।

તાકો સાર સૂરસારાવલી ગાવત અતિ આનન્દ ॥ ૧૧૦૩ ॥

ઉક્ત વાક્યોથી શ્રીસૂર ૧૫૬૬ માં જ્યારથી મહાપ્રભુશ્રી વલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા ત્યારથી તેમણે ૧૬૦૨ સુધીમાં એમની ૬૭ વર્ષની ઉંમર તક એક લક્ષ પદોની રચના કર્યાનું અને તેની અનુક્રમણીકારૂપે સૂરસારાવલી ૧૬૦૨ પછી રચવાનું સ્પષ્ટ કહેલું છે.

—સંપાદક.



એ તો નિશ્ચિત છે કે સૂરસાગરની રચના પછીજ સારા-વલી અને સાહિત્ય-લહરીની રચના થયેલી છે. અતઃ સૂર-સારાવલીનો સમય ૧૬૦૩ થી ૧૬૦૫ વિ. સંવત સુધીનો છે. તેમજ સાહિત્ય-લહરી નિચેના પ્રસિદ્ધ પ્રસંગના આધારે નંદદાસજીના હિતાર્થે બનાવેલી હોવાથી-નંદદાસજી ૧૬૦૭માં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથ પ્રભુચરણને શરણે આવેલા હોઈ-તે અરસામાં એટલે ૧૬૦૭ ના કારતકથી વૈશાખ માસની ત્રીજ સુધીમાં પુરી થયેલી છે.

ઉક્ત પ્રસંગ આ પ્રમાણે સંપ્રદાયમાં પ્રસિદ્ધ છે—

સં. ૧૬૦૭ માં નંદદાસજી એક સ્ત્રીથી આકર્ષિત થઈ ગોકુલ આવ્યા. ત્યાં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીના પ્રભાવથી તેઓ શ્રીકૃષ્ણમાં આસક્ત બની સાચા ભક્ત થયા. પછી ગોસ્વામી પ્રભુચરણ તેમને લઈ શ્રીગોવર્ધન પધાર્યા. અને ત્યાં આપે શ્રીનાથજીની આજ્ઞાનુસાર અષ્ટછાપમાં તેમને સ્થાપી અષ્ટસખાની પૂર્તિ કરી. (વિશેષ જુઓ નંદદાસનો ઇતિહાસ).

આ સમયે શ્રીસૂર આદિ અન્ય સાત સખાએ નંદદાસજીને આવેા ‘નંદનંદન દાસ’ કહીને પોતાની પાસે બેસાડ્યા. પછી નંદદાસજીની પ્રાર્થનાથી શ્રીસૂરે તેમને છ માસ પોતાની પાસે રાખી પ્રથમ ‘અર્થ કરો પંડિત અરુ જ્ઞાની’ એ પદ દ્વારા નંદદાસજીના પાંડિત્ય—ગર્વનું નિવારણ કરી તેમને દૃષ્ટકૂટ આદિ કાવ્ય-ચિત્ર દ્વારા સાંપ્રદાયિક રહસ્ય રૂપ માનસી ધ્યાન એવં ઉપમા ઉપમેય અને શૃંગારી રાધાકૃષ્ણનાં દર્શન કરાવી પુષ્ટિમાર્ગના સિદ્ધાંતથી વાકેફ કર્યા. અને તે કાવ્યચિત્રોના સંગ્રહ રૂપ સાહિત્ય—લહરીની પૂર્તિ સં. ૧૬૦૭ના વૈશાખ



સુદ ૩ ના દિવસે કરી. તેમાં શ્રીસૂરે સ્પષ્ટ શબ્દો નિમ્ન પ્રકારે યોજ્યા છે. જે આ રહ્યા—

મુનિ પુનિ રસન કે રસ લેસ ।

દસન ગૌરીનંદ કો લિખિ સુવલ સંવત પેસ ।

નંદનંદન માસ છયતે હીન તૃતિયા વાર;

તૃતીય ઋક્ષ સુકર્મ જોગ વિચારિ સૂર નવીન;

નંદનંદનદાસ હિત સાહિત્યલહરી કીન ।

આ પ્રકારે નંદદાસજીએ સુરદાસજી દ્વારા પ્રગાઠ પાંડિત્ય અને શૃંગાર પરિપૂર્ણ કાવ્યોને પ્રાપ્ત કર્યાં

આ રીતે કાવ્યક્ષેત્રમાં નંદદાસજી એક પ્રકારે શ્રીસૂર ના શિષ્યવત્ થયા એટલે તેમના કાવ્યોમાં કંઈ મળ્યા રહે ખરી ? તેથીજ અષ્ટછાપમાં સાહિત્યરસિકો દ્વારા નંદદાસજીને શ્રીસૂર પછીનું દ્વિતીયસ્થાન પ્રાપ્ત થયું છે.

અન્ય સૂરપત્રીસી અને સૂરસાઠી આદિની રચનાનો પ્રસંગ વાર્તામાં સ્પષ્ટ છે અને તેના અનુમાને તેનો રચનાકાળ સં. ૧૬૩૪ લગભગનો અનુમાન થાય છે. અસ્તુ

શ્રીસૂરે અર્વાચીન અને પ્રાચીન વ્રજભાષાના સર્વોત્કૃષ્ટ કવિઓમાં અત્ર પદ પ્રાપ્ત કર્યું છે તેનું મુખ્ય કારણ તેમની સર્વવ્યાપી (general vision) દૃષ્ટિ છે. જે કવિઓ પોતાના મતથી વિરુદ્ધ વચનોને પણ પોતાના અન્યપાત્રો દ્વારા આદરપૂર્વક કહેવડાવે તેને સર્વ વ્યાપી દૃષ્ટિના કવિઓ કહેવાય



છે. ઉક્ત દષ્ટિ અમારા શ્રીસૂરમાં અન્ય કરતાં અત્યધિક અંશમાં વિદ્યમાન છે. અને તેથીજ આજ સાહિત્ય—ક્ષેત્રમાં સૂર સૂર્યની માફક પ્રકાશે છે.

સૂરદાસની શુદ્ધ વ્રજભાષા અને કાવ્ય રચના દેખતાં વસ્તુતઃ તેઓ હિન્દીના વાદમીક છે એમ કહેવું એ તદ્દન સાચું છે. અસ્તુ.

સૂરસુધામાં જેવો જ્ઞાન ભક્તિ અને શૃંગારનો એકરસ અભાધિત ઘોઘ વહેતો જોવામાં આવે છે તેવો પાંડિત્ય અને ઉપમા આદિના બહુમૂલ્ય તત્ત્વોનો અવિરોધ સંગ્રહ પણ ઉપસ્થિત છે.

વળી તેમની રસિક રચનામાં લોકોક્તિઓને પણ યથાસ્થાન મળેલું જોવામાં આવે છે જેમકે—પ્રીતિ કરિ કાહુ સુખ ન લહ્યો । ઇત્યાદિ.

જેવી રીતે સૌર કવિતા, ભક્તિ, દૈન્ય, શૃંગાર, અને માહાત્મ્યથી પરિપૂર્ણ છે. તેવી રીતે તેમાં ઉપમા ઉપમેય, ગાંભીર્ય અને પાંડિત્યની પણ જરાય કમી નથી.

શ્રીસૂરની હૃદયગત સાચા ભક્તિભાવવાળી ઉદ્ધવસંવાદની રચના ખરેજ કઠોર હૃદયને પણ દ્રવીભૂત કરી નેત્રોદ્ધારા અશ્રુધારા વહેવડાવે તેવી છે.

તે કાવ્યોના અવલોકન દ્વારા એ કહેવું યથાર્થ છે કે તેઓ એક સત્યવક્તા અને વિશુદ્ધ ભક્ત હતા. અને તે તેમનાં શ્રીજી અને રાધિકા પ્રતિના પ્રેમયુક્ત આવશ્યક નિંદાત્મક કઠોર પદોથી પણ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. તેમણે તુલસીદાસજીની માફક ખુશામદી પદો બહુ ઓછાં રચ્યાં છે.



તેમની સુધા રૂપીણી વાણીમાં ક્ષેત્રોની પૂર્ણતા અને વેધકતા સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.

સૂરની ભાષા શુદ્ધ વ્રજભાષા છે. તેઓ વ્રજભાષાના પ્રથમ કવિ હોવા છતાં એ કહેવું અવાસ્તવિક નથી કે એમની ભાષા લલિત અને શ્રુતિ મધુર છે, કે જેવી પાછળના અન્ય કવિઓની પણ જોવામાં આવતી નથી.

એમની કવિતામાં માધુર્ય અને કૃપા ઝળહળે છે. યદ્યપિ શ્રીસૂરને અનુપ્રાસનો ઈષ્ટ નહતો તોપણ ઉચિત સ્થાને તેઓએ તેનો પ્રયોગ અવશ્ય કરેલો છે.

શ્રીસૂરની વાણીમાં ઉપમા અને રૂપકોનું બાહુલ્ય છે અને તે પ્રાયઃ સંયોગાત્મક શૃંગાર વર્ણનના પદોમાં વિસ્પષ્ટ રૂપે દેખાઈ આવે છે.

તેમના વિયોગાત્મક શૃંગાર વર્ણનના પદોમાં ઉપમા અને રૂપકો જોવામાં આવતાં નથી કિંતુ તેની જગ્યાએ સ્વભાવોક્તિની પ્રાધાન્યતા રહેલી છે.

શ્રીસૂર-સુધામાં પ્રબંધધ્વનિ વિશેષ છે તેમજ તેમાં ઉપર કહ્યા પ્રમાણે વર્ણન-પૂર્ણતા (ક્ષેત્રોના વર્ણનની પૂર્ણતા) પરમોત્કૃષ્ટ રૂપે વિદ્યમાન છે.

સૂરદાસજીના પદો સરળમાં સરળ અને કઠિનમાં કઠિન પણ પ્રાપ્ત થાય છે એજ તેની વિશેષતા છે. આજકાલના શાબ્દિક વિદ્વાનો યા કવિઓ તેવી રચના કરવામાં નિઃસંદેહ અસમર્થ છે.

વળી કઠિન પદોમાં ઝગમગતું સૂરદાસજીનું વિશુદ્ધ પાંડિત્ય એ વૈદિક એવં પોપટિયા જ્ઞાન તુલ્ય નથી કિંતુ તે પ્રભુદત્ત અલૌકિક કૃપાથી ભરેલું છે.



સૂરદાસજીનાં ‘દૃષ્ટકૂટ’ પદો ખરેખર સમર્થ પંડિતોને પણ મુંઝાવી નાંખે તેવાં છે. ઉક્ત પદોની પ્રાપ્ત થતી ટીકાના આશ્રય વિના તેનું વાસ્તવિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું બહુ જ મુશ્કેલ છે.

સૂરદાસજી પાંડિત્યમાં તો તુલસી અને કેશવ થી પણ ઘણા આગળ વધેલા છે. તેમજ બહુજ્ઞતામાં યે ઉક્ત બન્ને કવિયો તેમની સમાનપણું ભોગવી શકતા નથી.

સૂરદાસજીને પૌરાણિક જ્ઞાન જીવ્ધાત્ર હતું. તેમજ તેઓ સંસ્કૃતના પણ પુરા પંડિત હતા એમ ‘કૂટપદો’ ના નિરીક્ષણ દ્વારા પ્રતિત થાય છે.

વળી કૂટકર પદોમાં તેઓએ સંસ્કૃત સાહિત્યના વિચાર એવં કોઈ કોઈ સ્થળે તો સંસ્કૃત શ્લોકોને જેમના તેમ પોતાની રચનામાં વ્યાપ્ત કર્યા છે. દષ્ટાન્ત રૂપે—

‘ જો ગિરિપતિ મસિ વોરિ ઉદધિ મૈ લેં સુરતરુ નિજ હાથ ।  
મમ કૃત દોષ લિરૈં વસુધા ભરિ તઝ નહીં મિત નાથ ॥

આ ઉક્તિને આ શ્લોકથી મેળવો—

અસિત ગિરિ સમં સ્યાત્ કજ્જલં સિન્ધુપાત્રે ।

સુરતરુવર શાખા ૦

સૂરદાસજીની બીજી ઉક્તિ આ છે કે—

ચર્ચિત ચંદન નીલ કલેવર વરસતિ બુન્દન સાવન ।

આ ઉક્તિને જયદેવના ગીત ગોવિન્દના આ પ્રસિદ્ધ ગીતથી મેળવો.

‘ ચંદન ચર્ચિત નીલ કલેવર પીત વસન વનમાલી ’ ।



આ તો એક સાધારણ સમાનતા છે કિંતુ તેમનાં પદોનું અધિક બારિક અધ્યયન કરવાથી ઘણી બારીકમાં બારીક સમાનતાઓનું પણ દિગ્વદર્શન થશે.

સૂરદાસજીના પદોમાં જ્યોતિષની પણ બહુ સારી ઝળક જોવામાં આવે છે. જ્યોતિષની રાશિ અને લગ્ન સંબંધી વાતો વિગેરેનું તેમણે પદોમાં બહુ સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. એથી શ્રીહરિરાયજીના કહેલા ભાવપ્રકાશની પણ સારી પુષ્ટિ થાય છે

તેમણે બાદશાહ અકબરને કહેલું નિમ્મપદ તેમની જ્યોતિષ વિદ્યાની પુષ્ટિ કરે છે—

રે મન ! ધીરજ क्यों न धरे ।

एक हजार नौसैं के उपर एसो जोग परे ॥ विगैरे

તેમની ફારસી કવિતાઓમાં અમને સંદેહ છે જેનું કારણ અમે આગળ કહી ગયા છીએ.

પાંડિત્ય અને બહુશતા ના અતિરિક્ત પ્રાકૃત નિરક્ષણના ગુણનું મહાકવિમાં હોવું આવશ્યક છે. કારણ કે તે વિના કાવ્યમાં સ્વાભાવિકતા પ્રાપ્ત થતી નથી.

સૂરદાસજીના કાવ્યોમાં ઉક્ત ગુણની ભરમાર જોવામાં આવે છે.

શ્રી સૂરની કવિતા કૃષકજીવન, અને પશુપક્ષી આદિનાં જીવનથી સમ્બન્ધ રાખવાવાળી ઉપમાઓ વડે પરિપૂર્ણ છે. દૃષ્ટાન્તરૂપે—

जनके उपजे दुख किन काटत ।

जैसे प्रथम आषाढ के वृक्षनि खेतहर निरखि उपास,

कृषक जीवन—



પશ્ચિજીવન—

યહ સંસાર સુઆ સેમર જ્યોં સુન્દર દેશ લુભાયો ।  
ચાશન લાગ્યો રૂંડે ઉડિ ગઈ હાથ કઠૂ નહિ આયો ।

વૃક્ષજીવન—

મન રે ! તૂ વૃક્ષન કો મત લે,  
કાટે તા પર ક્રોધ ન કીજે સીંચે કરે ન સનેહ ।  
ધૂપ સહત સિર આપને ઔરન છાયા દેત ।  
જો કોઝ તાપર પત્થર ચલાવે તાકો તત્ક્ષન ફલ દેત ।

શ્રીસૂરે ગ્રામ્યભાષાને પણ અપનાવી છે તેનું દષ્ટાંત—

સરશ્યામ વિનુ કોન છુડાવે ચલે જાહુ ભાઈ પોઈસ,

શ્રીસૂરે જે વસ્તુને હાથમાં લીધી, તેનું તેમણે સાંગોપાંગ રૂપે એવું વર્ણન કર્યું છે કે પાછળના કવિએને માટે તેમાં વર્ણન અર્થે કશુંય બાકી રાખ્યું નથી.

શ્રીસૂરના આ વર્ણન—પૂર્ણતા ગુણનું રીવાંનરેશ મહારાજ રઘુરાજસિંહદેવે આ પ્રમાણે વર્ણન કર્યું છે—

‘મતિરામ ભૂષણ બિહારી નીલકંઠ ગંગ, વેની સંશુ તોષ  
ચિંતામનિ કાલિદાસકી । ઠાકુર નેવાજ સેનાપતિ સુકદેવ  
દેવ-પૂજન ઘનઆનંદ ઘનશ્યામદાસ કી ॥ સુંદર મુરારી બોધા  
શ્રીપતિ હૂ દયાનિધિ જુગલ કવિંદ ત્યોં ગોવિંદ કેસોદાસ કી ।  
‘રઘુરાજ’ ઔર કવિગન કી અનૂઠી ઉક્તિ મોહિ લગે જૂઠી જાનિ  
જૂઠી સૂરદાસ કી ॥’

અસ્તુ.

શ્રીસૂરની વાણીમાં ‘મથુરાગમન’. જેવું હૃદયવેધક છે તેવુંજ બાલલીલાનું સ્વાભાવિક વર્ણન હૃદયગ્રાહી અને પરમ મનોહર છે.



દષ્ટાંત રૂપે:—

જે વખતે સહુદય પાઠક શ્રીસૂર દ્વારા માતા યશોદાના કહેલા શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિના આ શબ્દો—‘કજરી કો પય પિયહુ લાલ તવ ચોટી બાઢે’—ના અધ્યનન બાદ, તરતજ બાલક શ્રીકૃષ્ણના દૂધ પીને પુછેલા “મૈયા ! કબહિ બઢેગી ચોટી । કિતી બાર મોહિ દૂધ પિયત ભઈ અજહૂં હૈ યહ છોટી ।” એ શબ્દોનું મનન કરે છે ત્યારે ખરેખર તેના હૃદયમાં સાચો વાત્સલ્ય રસ પ્રકટ થઈ જે આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે તે અદ્વિતીય અને અવર્ણનીય છે.

એવીજ રીતે શ્રીસૂરસુધામાં ઉબલ-બંધન, ગોવર્દન-લીલા આદિ પણ દોષ રહિત અતિરમણીય છે.

વળી એ કહેવું તદ્દન ઉચિત છે કે શ્રીસૂરે પોતાની રચનામાં કોઈનાય ભાવની ચોરી કરી નથી, બદલે તેમના ભાવની દરેક કવિઓએ નિઃસંદેહ ચોરી કરી છે. અસ્તુ.

સૂરદાસજીનું કાવ્યક્ષેત્ર યદ્યપિ તુલસીદાસજીની માફક બૃહદ્દ નથી કિંતુ તેઓએ ઉત્તમતા, ગંભીરતા અને ઉપમા આદિ જે જે વસ્તુઓને આવશ્યક સ્થળે અપનાવી છે, તેમાં તેમણે પાછળના કવિઓને માટે જરાયે જગા રહેવા દીધી નથી. એટલે તેમની કાવ્યક્ષેત્રની ઉત્તમતામાં પરિપૂર્ણતાનો સમાવેશ હોવાથી તેઓ તુલસીદાસજીથી કાવ્યક્ષેત્રમાં આગળ વધ્યા છે એ કહેવું અતિશયોક્તિ પૂર્ણ નથી.

જોકે તુલસીદાસજીએ લોકોકિતને પદ્યમાં રચી રામ સમ્બન્ધી બનાવી જગતમાં લોકપ્રિયતા પ્રાપ્ત કરી છે કિંતુ અમે ઉપર કહી ગયા તેમ તેઓ પાંડિત્ય, ભક્તિ અને



काव्यना गुणोनी दृष्टिसे सूरथी आगण नई शक्या नथीन. अवे।  
मत केवण अमारोन नहिं किंतु सर्वे काव्य-साहित्यना विद्वान  
निरीक्षकेनो पण छे—

दृष्टांत ३पे—

‘ पाण्डित्यमें सूरदास, तुलसीदास और केशवदास दोनों  
से बढ़कर थे । बहुज्ञता में यह दोनों उनकी बराबरी का दावा  
नहीं कर सक्ते । ’

‘ जो आज हिन्दी साहित्य-संसार में कवियों का मुकु-  
टमणि माना जाता है उसकी कविता के सम्बन्ध में कहना  
ही क्या ? ’

‘ और सचभी है क्यों कि— सूरदास के बराबर अधिक  
लिखने वाला कोई शायद ही अन्य कवि हिन्दी भाषा का  
हुआ होगा । कहते हैं कि— अकेले सूरसागर में सवा लाख  
पद हैं । कवि-प्रतिभा इनमें पूरी थी क्यों कि— जो पद अपने  
प्रेम और भक्ति के जोश में लिखे हैं वह पढ़ने वालों के  
हृदय को विना द्रवित किए रहते नहीं—’

बाबू राधाकृष्णदास, नागरीप्रचारिणी सभाके भूतपूर्व मंत्री.

सभयाभावथी श्रीसूर संजंधी अन्य विवेचन अमे  
अभारा ‘पुष्टिमागीय लक्ष्म कवि’ नामक ग्रन्थमां हुवे पछी  
आपीशुं.

—सम्पादक



## શ્રીસૂર નું ચરિત્ર-વિવરણ ક્રોડક:-

જન્મ—વિ. સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ સુદ ૫ ને રવિવારના મધ્યાહ્ન સમયે દિલ્હી પાસેના ‘ સીંહી ’ ગ્રામમાં.

જાતિ—સારસ્વત બ્રાહ્મણ એવં પિતૃનામ રામદાસ.

શરણાગતિસમય—વિ. સં. ૧૫૬૬ ના ચૈત્ર કૃષ્ણ ૧૧ના દિવસે આગ્રા અને મથુરાની વચ્ચેના ‘ ગૌઘાટ ’ મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ—ચંદ્રસરોવર, પરાસોલી.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ઉત્થાપન.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૦ ના મહા સુદ ૨, (?) સ્થાન પરાસોલી ( અહીં હાલ પણ તે સ્થળમાં કુટી અને દ્વાર છે )

લીલાત્મક સ્વરૂપ—કૃષ્ણ સખા એવં ચંપકલતા સખી.

લગવદંગ સ્વરૂપ—વાક.

લીલા વિલિન સ્વરૂપાસકિત—શ્રી મથુરેશજી.

શૃંગારાસકિત—પાગ.

લીલાસકિત—માનલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી

પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર\*

સંગ્રાહક:-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય

---

\* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે—



# શ્રીપરમાનંદદાસજી

( સં. ૧૫૫૦ થી સં. ૧૬૪૦ )

યદ્યપિ અમારા વિશુદ્ધ ચરિત્ર-નાયક મહાનુભાવ મહાકવિ શ્રીપરમાનંદદાસજીનું વિસ્તૃત જીવનચરિત્ર પ્રાપ્ત કરવાને અર્થે અમારી પાસે વધુ સાધનો નથી, છતાં અમે ગો. શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ‘૮૪ વાર્તા,’ શ્રીહરિરાયજી કૃત ‘ભાવપ્રકાશ,’ ધ્રુવદાસ રચિત ભક્તનામાવલી, ‘ભક્તિમાહાત્મ્ય’ એવં પરમ પૂજ્ય નિત્યલીલાસ્થ ગોસ્વામિ તિલકાયત શ્રી ગોવર્દનલાલજી (નાથદારા)ના મૌખિક-પરમ ભગવદ્દોય જટુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત-વચનામૃતોના આધારે સંક્ષિપ્તમાં તેમના ચરિત્રને અહીં ઉદ્ધૃત કરી આશા રાખીએ છીએ કે ઐતિહાસિક વધુ સાધનોના અભાવમાં નિમ્ન સંગ્રહીત ઇતિહાસ સાહિત્યકારોને અવશ્ય સંતોષ આપશે.

મહાકવિ પરમાનંદદાસજીનો જન્મ સં. ૧૫૫૦ ના માગશર સુદ ૭ ને સોમવારની સવારે કનોજમાં એક કાન્યકુબ્જ દરિદ્ર બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો.

બાલકના જન્મતાં વેંતજ તેના પિતાને એક યજમાન શેઠ દ્વારા અઢળક દ્રવ્ય મળ્યું. જેથી પિતાને પરમ આનંદ પ્રાપ્ત થયો અને તેના સ્મારક રૂપે તેણે પોતાના ભાગ્યશાલી પુત્રનું નામ ‘પરમાનંદ’ રાખ્યું. પછી બ્રાહ્મણો દ્વારા



જન્મપત્રિકાથી પણ તે નામ ને પુષ્ટિ મળી જેથી તેને અત્યંત હર્ષ થયો.

પરમાનંદદાસજી સ્વરૂપે ગૌરવણી એવં કંઈક ઉંચા અને મધ્યમ કદના હતા. વળી તેમનો સ્વર પણ તીવ્ર અને સુમધુર હતો. તેમનું લલાટ વિશાળ અને ભવ્ય હતું. તેમની બન્ને બુજ્જ દીર્ઘ હતી. અને તેમને લલાટ, ગ્રીવા અને ઉદરે ત્રિરેખા હતી.

આઠ વર્ષની ઉંમરે તેમને સ્વપિતાદ્વારા યજ્ઞોપવીત પ્રાપ્ત થયું. અને ત્યારથી તેઓ એક મહાપુરુષની પાસે નિકટના એક ગામમાં વિદ્યાભ્યાસાર્થે જવા લાગ્યા.

ત્યાં તેમણે આવશ્યક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યા બાદ એક મહાત્માના સમાગમ દ્વારા શ્રીકૃષ્ણની વિવિધ નિર્દોષ લીલાનું શ્રવણ કર્યું. પશ્ચાત્ પંચદશ વર્ષીય ઉંમરે તેઓને પ્રભુદત્ત કાવ્યશક્તિનું સહસ્રા દાન થયું અને ત્યારથી તેમણે પોતાના સુમધુર ભાવયુક્ત પદોની રચના કરવા માંડી.

પરમાનંદદાસજીએ પોતાની પચીસ વર્ષની ઉંમરે એક મહાન કવિ તરીકેની પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. અને તેઓએ પોતાના ત્યાગમય ભક્તિયુક્ત જીવન દ્વારા અનેક ગુણી, ભક્ત અને કવિયોને આકર્ષ્યા.

ત્યારથી તેમની પાસે પ્રત્યેક સમયે ગુણી લોકોનો મોટો સમૂહ રહેવા લાગ્યો કે જેને તેઓ યથાપ્રાપ્ત સાધનોથી ભાવપૂર્વક સંતોષતા. એમના એવા અનેક ગુણોથી મુગ્ધ થઈ



ઘણાએક તેમના શિષ્ય બન્યા અને તેઓ 'સ્વામી' તરીકે અનાયાસ પ્રસિદ્ધ થયા.

આ અરસામાં કન્નોજમાં દુષ્કાળ પડ્યો જેના ફલરૂપે ત્યાંના હાકિમે તેમનું ઘર લૂંટી લીધું. ત્યારથી ધનવાન પુરૂષો દ્વારા તેમને દ્રવ્યની મદદ મળતી રહેતી. કિંતુ તેઓ તે દ્રવ્યનો સંગ્રહ ન કરતાં ગુણી અને ભકતોના સત્કારમાં તેને ખર્ચ કરી દેતા. આ જોઈ લોભી અને સ્વાર્થી પિતાએ તેમને તે દ્રવ્યના સંગ્રહ દ્વારા લગ્ન કરવાની લાલચ આપી. કિંતુ ઉક્ત વાતને પરમાનંદદાસે ધિક્કારતાં તેનો નકારાત્મક જવાબ આપ્યો. તેથી તે ધન-ઉપાસક પિતા પરમાનંદદાસજીને અકેલા છોડી પૂર્વ તરફ ધન પ્રાપ્તિને અર્થે ચાલી નિકળ્યો. અને ત્યારથી તેઓ સ્વતંત્ર રૂપે ગુણી સમાજની સાથે રહેવા લાગ્યા.

ત્યાં બે વર્ષના સ્વતંત્ર નિવાસ દરમિયાન સં. ૧૫૭૭ માં પરમાનંદદાસજી પ્રયાગ આવ્યા અને ત્યાંજ સમૂહ સહિત રહેવા લાગ્યા. કન્નોજની માફક પ્રયાગમાં પણ તેમની ઘણી કીર્તિ પ્રસરી અને કર્ણોપકર્ણ તેની ચર્ચા આચાર્યશ્રીની પાસે અડેલમાં પણ થઈ.

આ સમયે પોરબંદર નિવાસી સંગીતપ્રેમી કપૂરદાસજી જલધરિયાએ, આચાર્યશ્રી દ્વારા પરમાનંદદાસના કાવ્યગુણની પ્રશંસાની પુષ્ટિ થતી સાંભળી તેમના પદ સાંભળવાનો નિશ્ચય કર્યો. પશ્ચાત સમય પ્રાપ્ત કરી જેઠ સુદ ૧૧ ની મધ્યરાત્રિએ આચાર્યશ્રીના વચનામૃતો શ્રવણ કર્યા બાદ તેઓ ત્રિવેણીમાં તરીને સામી પાર પ્રયાગ-જ્યાં પરમાનંદદાસજીનો મુકામ હતો ત્યાં-આવ્યા.



તે દિવસે એકાદશી હોવાથી પરમાનંદસ્વામી ભકતોના સમૂહસહિત રાત્રિ જાગરણ નિમિત્તે ભગવત્સંકીર્તન કરતા હતા.

આ સમયે ત્યાં ઉપસ્થિત કેટલાએક પ્રયાગના જાણીતા વૈષ્ણવોએ કપૂરક્ષત્રીને પરમાનંદદાસની નિકટ બેસાડી તેમનો સત્કાર કર્યો. અને પરમાનંદદાસ સાથે તેમનો પરિચય કરાવ્યો.

પશ્ચાત્ સમસ્ત રાત્રિ કીર્તન શ્રવણ કરી હૃદય-તર્ગિત પરમાનંદદાસના ગુણો અને પદોની પ્રશંસા કરતા તેઓ બ્રાહ્મમુહૂર્તમાં પુનઃ ત્રિવેણી તરીને અડેલ આવ્યા અને નિજસેવામાં પ્રવિષ્ટ થયા.

અહીં પ્રયાગમાં પરમાનંદદાસજીએ આલસ નિવૃત્ત્યર્થે બ્રાહ્મમુહૂર્ત થયે વિશ્રામ કર્યો. તે સમયે તેમને સ્વપ્ન આવ્યું અને તેમાં તેમને કપૂરક્ષત્રીના ખોળામાં તેમના પૂર્વ સંબંધી ચિરપરિચિત પરમપ્રિય આત્મારૂપ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને પોતાના કીર્તન સાંભળતાં જોયા.

પછી સ્વપ્નભંગ થયા બાદ ઉક્ત સ્વરૂપના લાવણ્યમાં મુગ્ધ થઈ તેઓ તરતજ અડેલ આવ્યા અને ત્યાં આચાર્ય-શ્રીનાં તેમને દર્શન કર્યા.

પશ્ચાત્ કપૂરક્ષત્રીને મળી તેમણે આચાર્યશ્રીની પાસેથી નામનિવેદન પ્રાપ્ત કર્યું. પછી આચાર્યશ્રીએ પરમાનંદદાસજીને દશમની અનુક્રમણિકા શ્રવણ કરાવી ભગવદ્દીલા-પીયૂષ-સમુદ્રરૂપ ભાગવતને તેમના હૃદયમાં સ્થાપ્યું. અને ત્યારથી તેઓ શ્રીસૂરની માફક 'સાગર'રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

તે સમયે તેમણે ગુરુસેટ રૂપે, પોતાને આચાર્યશ્રીની દ્વારા



આમ થયેલ ભગવદ્દીવાની સ્ફુરણાની પ્રતીતિ અર્થે, બાલલીલાનું નિમ્ન પદ ગાઈ આપને સંતુષ્ટ કર્યા—

‘માઈરી ! કમલનયન શ્યામસુંદર ચૂલત હૈં પલના ।’

પછી તેઓ આચાર્યશ્રીની પાસેજ રહેવા લાગ્યા અને તેમની દ્વારા શ્રીસુખોદિનીજીની કથાનું નિત્યપ્રતિ શ્રવણ કરી તેના ભાવ ને તેઓ પદ્યમાં વ્યક્ત કરી આચાર્યશ્રી એવં શ્રીનવનીતપ્રિયજીને અહુર્નિશ શ્રવણ કરાવતા.

તેમની આ ચિત્તપ્રવીણતા રૂપ માનસી સેવાથી આચાર્યશ્રી પૂર્ણ સંતુષ્ટ થયા. પછી સં. ૧૫૮૨ માં તેમની ‘ચહ માગોં ગોપીજન-વલ્લભ’ એ પ્રાર્થના શ્રવણ કરી આપ તેમને લઈને વ્રજ તરફ પધાર્યા.

તે સમયે રસ્તામાં કનોજ મુકામે પરમાનંદદાસે વૈષ્ણવો સહિત આચાર્યશ્રીને અત્યંત દૈન્યતા પ્રેમયુક્ત આગ્રહ પૂર્વક પોતાના ઘરમાં પધરાવ્યા. અને ત્યાં તેમના આગ્રહને વશ થઈ ભક્તવત્સલ આચાર્યશ્રીએ ત્રણ દિવસ સુધી મુકામ રાખ્યો.

મુકામના પ્રથમ દિવસેજ ભોજન કર્યા બાદ આચાર્યશ્રીને પ્રસન્ન કરવાને અર્થે—આપની ચિત્તવૃત્તિ વ્રજના દર્શનમાં લીન છે એમ જાણી—પરમાનંદદાસજીએ નિત્યલીલા ને સ્મરણ કરાવતું નિમ્ન પદ આચાર્યશ્રી સન્મુખ ગાયું—

‘હરિ તેરી લીલા કી સુધિ આવે ।’

ઉક્ત પદના કેવળ શ્રવણ માત્રથી આચાર્યશ્રી, મૂળ નિજસ્વરૂપાવેશમાં આવી લીલામાં મગ્ન થયા. અને ત્રણ દિવસ સુધી દેહાનુસંધાન રહિત રહ્યા. આ જોઈ પરમાનંદ-



દાસજી આદિ વૈષ્ણવો ગભરાયા અને તે સર્વે-ત્રણ દિવસ સુધી ખાનપાન આદિ આવશ્યક દેહકાર્યનો પણ સદંતર ત્યાગ કરી સ્તબ્ધ થઈ ત્યાંજ બેસી રહ્યા. ચોથા દિવસે જ્યારે આચાર્યશ્રીએ નેત્ર ખોલ્યાં ત્યારે નિકટવર્તી વૈષ્ણવોમાં પણ પ્રાણસંચાર થયો અને તેઓ આનંદિત બન્યા.

પશ્ચાત પરમાનંદદાસજીએ-‘માફરી ! હોં આનંદ મંગલ ગાઝું’-એ પદ ગાઈ આચાર્યશ્રીને શ્રીગોકુલની સુધિ કરાવી.

બાદમાં આપના ભોજન કર્યા પછી સર્વે વૈષ્ણવોએ પ્રસાદ લીધો અને પરમાનંદદાસજીએ પણ દેહકાર્યથી નિવૃત્ત થઈ આચાર્યશ્રી આગળ આ પદો ગાયાં-

‘વિમલ જસ વૃંદાવન કે ચંદકો’૦-૨ ‘ચલ રી ! સસ્વી નંદગામ જાય બસિયે૦’

આ દ્વિતીય પદ શ્રવણ કરી આચાર્યશ્રીએ વિશ્રામ અનન્તર કન્નોજથી પરમાનંદદાસાદિ વૈષ્ણવોને લઈને વ્રજ તરફ પ્રયાણ કર્યું.

તે સમયે પરમાનંદદાસજીએ પોતાના પૂર્વ શિષ્યોને આચાર્યશ્રી પાસે નામમંત્ર અપાવી સેવક કરાવ્યા.

પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી જ્યેષ્ઠ માસમાં ગોકુલ પધાર્યા. ત્યાં ભીતરની બેઠકમાં (શ્રીદ્વારકાધીશજીના મંદિરમાં હાલ જે બેઠક છે તેમાં) આપે મુકામ કર્યો. અને ત્યાં પરમાનંદદાસજીને શ્રીયમુનાદેવનો પાઠ કરાવી શ્રીયમુનાજીનાં અલૌકિક દર્શન કરાવરાવ્યાં. તે સમયે પરમાનંદદાસજીએ શ્રીયમુનાજીની સ્તુતિનાં નિમ્ન પદો ગાયાં-



૧ ‘ શ્રીયમુનાજી યહ પ્રસાદ હૌં પાઝં ’૦ ।

૨ ‘ શ્રીયમુનાજી દીન જાનિ મોહિ દીજે ’૦ ।

૩ ‘ કાલિદો કલિકલમષ-હરની ’ ।

પછી આચાર્યશ્રીની કૃપાથી પરમાનંદદાસજીને પનઘટ આદિ લીલાનાં પણ દર્શન થયાં. તદનુસાર તેમણે અનેક પદો જેવાં કે-શ્રીયમુના ઘટ ભર લે ચલિ શ્રીચંદ્રાવલિ નારિ૦ આદિ ગાયાં.

બાલલીલાનાં દર્શન આપી આસક્તિ ઉત્પન્ન કરાવ્યા પછી આચાર્યશ્રી તેમને લઈને શ્રીગોવર્દન પધાર્યા. ત્યાં શ્રીનાથજીની સન્મુખ તેમને પદ ગાવાની આજ્ઞા કરી.

એ સમયે આચાર્યશ્રીની આજ્ઞાથી પરમાનંદદાસજીએ શ્રીનાથજીને ‘મોહન નંદરાય કુમાર’. વિગેરે પદો ગાઈ પ્રસન્ન કર્યા. તેથી શ્રીનાથજીની આજ્ઞાથી આપે તેમને સમયાનુસારનાં કીર્તનની સેવા સોંપી.

પછી આચાર્યશ્રીએ પરમાનંદદાસજીને સેનના પ્રસાદી દૂધ દ્વારા નિકુંજ લીલાનું દાન કર્યું. ત્યારથી તેમણે તે લીલાનાં અનેક પદો ગાયાં જે વાર્તામાં પ્રકાશિત છે.

પશ્ચાત કેટલાક સમયાનન્તર સં. ૧૫૮૫ માં આચાર્ય શ્રી જ્યારે શ્રીગોવર્દન પધાર્યા હતા તે સમયે ઓડછા દેશનો રાજા પોતાની રાણી સહિત ત્યાં શ્રીનાથજીના દર્શનાર્થે આવ્યો. તેણે—રાણીના પડદામાં રહી શ્રીનાથજીના દર્શન કરવાના આગ્રહથી આચાર્યશ્રી પાસે તેવો બંદોબસ્ત કરાવી—પોતાની રાણીને પડદામાં દર્શને મોકલી. આ સમયે પરમાનંદદાસજી કીર્તનની સેવામાં ઉપસ્થિત હતા.



એ વખતે શ્રીનાથજીએ—જ્યારે રાણી પડદામાં દર્શન કરી રહી હતી ત્યારે—મંદિરનાં દ્વાર ખોલી દીધાં કે જેને લઈ ને મનુષ્યોની ગીડહી રાણી ઉપર આવી પડી. આથી રાણીની બેઠજતી થઈ. એ સમયે પરમાનંદદાસે તે દશ્યને જોઈ પોતાના પરમ ઇષ્ટ પ્રભુને પણ એક નીતિ અને સત્યતારૂપે મધુર ઠપકો આપવાને માટે ‘કોન યહ खेलिवे की बान’ એ ગાવાનો પ્રારંભ કર્યો.

પરંતુ આચાર્યશ્રીએ, પોતાના પ્રાણરૂપ શ્રીનાથજીની સ્વચ્છંદ બાલલીલામાં મહેણારૂપ તે શબ્દો કહેવા ઉચિત નથી તેમ કહીને તે પદ ગાતાં પરમાનંદદાસજીને રોક્યા, અને તેમને આ પ્રમાણે ગાવાની આજ્ઞા આપી—

‘ મલી यह खेलिवेकी बान ।

मदन गोपाललाल काहूकी राखत नाँहिन कान ॥ ’

પછી પરમાનંદદાસે પણ આજ્ઞાનુસાર ઉક્ત પદને સુધારીને તે પ્રમાણે ગાયું. અસ્તુ.

સંવત ૧૫૮૬માં એક સમય સૂરદાસ, કુંભનદાસ અને રામદાસાદિ પરમાનંદદાસના હૃદયાંતર્ગત લાવને જાણવાને અર્થે તેમને ત્યાં સુરભીકુંડ ઉપર સેનઆરતી પશ્ચાત ગયા. ત્યારે પરમાનંદદાસે પોતાને ત્યાં અચાનક ભગવદ્ભક્તોને આવેલા જોઈ અત્યંત હર્ષપૂર્વક પ્રથમ તેમનું સ્વાગત કર્યું. અને પછી તેમણે તેઓની ન્યોછાવર માટે નિમ્ન પદ ગાયું—

आये मेरे नंदनंदनके प्यारे ।०



બાદમાં વૈષ્ણવ માહાત્મ્યનાં અનેક પદો ગાઈ પોતાના ભાવને તે લગવદીયો સમક્ષ પ્રકટ કર્યો.

ત્યારપછી રામદાસે તેમના ગુપ્ત અભિપ્રાયને જાણવાને અર્થે પ્રશ્ન કર્યો કે—વ્રજનાં શ્રીનંદ, ગોપી, ગ્વાલ આદિ ભક્તોમાં સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રેમ કેનો છે ?

યદ્યપિ પરમાનંદદાસના ચિત્તની સંલગ્નતા બાલલીલામાં વિશેષ હતી તો પણ તેમણે આચાર્યશ્રીના અભિપ્રાયમાં તો સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રેમ શ્રીગોપીજનોનો જ છે તે, નિમ્ન પદ ગાઈ કહી બતાવ્યું—

‘ ગોપી પ્રેમકી ધ્વજા૦ ’

પછી વ્રજજન સમ ઘર પર કોડ નાંહી’૦ આદિ અન્ય પદો દ્વારા ઉક્ત અભિપ્રાયની પુષ્ટિ કરી.

આ પદો શ્રવણ કરી સૂરદાસાદિ મહાનુભાવો અત્યંત પ્રસન્ન થઈ તેમની આજ્ઞા માગી પોતપોતાના સ્થાનકે ગયા.

પછી સં. ૧૬૨૧-૨૨ના અરસામાં પ્રભુચરણ જ્યારે શ્રીગો-કુલ પધાર્યા ત્યારે પરમાનંદદાસજી પણ ત્યાં ગયા. અને તે સમયે આપે તેમને સંસ્કૃતમાં મંગલાર્તિનું ‘મંગલ મંગલં’૦ પદ રચીને શ્રવણ કરાવ્યું. તેથી પરમાનંદદાસે તેને અનુસરીને ભાષામાં ‘મંગલ માધો નામ ઉચ્ચાર’ ઇત્યાદિ અનેક પદો રચ્યાં. પછી પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી પરમાનંદદાસે તેની મંગલાર્તિ સમે ગાવાની શરૂઆત કરી જે આજ તક સમ્પ્રદાયમાં ચાલુ છે.

પછી સં. ૧૬૪૦માં જન્માષ્ટમીના બીજા દિવસે પરમાનંદદાસજીને પ્રભુચરણે જન્મપ્રકરણની લીલાનાં દર્શન



કરાવ્યાં. જેથી તેને અનુસરીને પરમાનંદદાસે જન્મ-લીલાનાં અનેક પદો રચ્યાં, અને તે આનંદને હૃદયમાં ધારણ કરી તેઓ શ્રીનાથજીને દંડવત્ પ્રણામ કરી સુરભીકુંડ પોતાના સ્થાનકે આવીને સુધ્ધ ગયા.

અહીં શ્રીગુસાંઈજીએ પરમાનંદદાસને રાજભોગના સમયે શ્રીનાથજીની સન્નિધાન કીર્તન કરતાં ન જોયા ત્યારે સેવકોને પરમાનંદદાસજી ક્યાં છે એમ પુછ્યું.

પછી સેવકો દ્વારા પરમાનંદદાસનું સુરભીકુંડ જવાનું સાંભળી આપને અનેક શંકાઓ ઉદ્ભવી. અને છેવટે રાજભોગ આરતિ કર્યા બાદ આપ વૈષ્ણવોને સાથે લઈ ને પરમાનંદદાસને દર્શન દેવા પધાર્યા.

આ સમયે પરમાનંદદાસ અચેત હતા. તેથી પરમદયાલુ ભક્તવત્સલ પ્રભુ શ્રીવિકૃલેશે પોતાના કેમલ શ્રીહસ્તને તેમના માથે ફેરવી તેમને સચેત કર્યા.

પછી પરમાનંદદાસજીએ પ્રભુચરણને સાષ્ટાંગ દંડવત્ પ્રણામ કર્યા અને આપે અંતિમ સમયે પોતાને દર્શન આપી કૃતકૃત્યકર્યો એમ જાણી ગદગદ થઈ ‘પ્રીતિ તો શ્રીનંદનંદનસોં કીજે’ એ પદ ગાયું. અને તે દ્વારા શ્રીસૂરની માફક ગુરુ, ગુરુપુત્ર અને નંદનંદનમાં પોતાની અભેદ બુદ્ધિનો સર્વ વૈષ્ણવોને પરિચય કરાવ્યો.

ત્યારબાદ એક વૈષ્ણવના—શ્રીઠાકુરજી કૃપા કેવી રીતે કરે ? એ—પ્રશ્નનો જવાબ આપતાં પરમાનંદદાસજીએ ‘પ્રાત સમે ઉઠિ કરિયે શ્રીલક્ષ્મનસુત-ગાન’ એ પદ ગાઈ તેને ગુરુભક્તિનો મહામૂલો ઉપદેશ આપ્યો.



પશ્ચાત ગોસ્વામીજીએ તેમને ચિત્તની વૃત્તિ ક્યાં છે ?  
એમ પુછ્યું ત્યારે પરમાનંદદાસે તેના પ્રતિઉત્તર રૂપે સારંગ  
રાગમાં અંતિમપદ આ ગાયું—

રાધે બેઠી તિલક સંવારતિ ।

મૃગનૈની કુસુમાયુધ કે ઢર સુભગ નંદસુત-રૂપ વિચારતિ ॥

દર્પન હાથ સિંગાર બનાવતિ બાસર જામ જુગતિ યેં ઢારતિ ।

અંતરપ્રીતિ સ્યામસુંદર સેં પ્રથમ સમાગમ કેલિ સંભારતિ

બાસર ગત રજની બ્રજ આવત મિલત લાલ ગોવર્દનધારી ॥

પરમાનંદસ્વામી કે સંગમ રતિરસ મગન મુદિત વ્રજનારી ॥

ઉક્તપદને પૂર્ણ કરતાંની સાથેજ પરમાનંદદાસજીએ  
પણ પોતાના બાહ્ય જીવનને સં. ૧૬૪૦ના શ્રાવણ વદ દિના  
મધ્યાહ્ન સમયે સમાપ્ત કરી દીધું.

પશ્ચાત વૈષ્ણવોએ તેમનો અગ્નિસંસ્કાર કર્યો અને પ્રભુ-  
ચરણે તેઓને પરમાનંદદાસનું સ્વરૂપ સમજાવતાં આજ્ઞા કરી  
કે પુષ્ટિમાર્ગનાં વિવિધ રત્નો ભર્યા બન્ને સાગરો અદ્રશ્ય થયા.



## પરમાનંદ સુધા ઉપર એક દષ્ટિ—

મહાકવિશિરોમણિ પરમાનંદદાસજીના કાવ્યોનું અવલોકન કરનાર પ્રત્યેક વિદ્વાન વ્યક્તિ એ કહી શકે છે કે— તેઓ એક સર્વોત્કૃષ્ટ ઉત્તમોત્તમ શ્રેણીના મહાકવિ છે. અને કાવ્યોમાં જે ભાવો અને તત્ત્વોની યથાર્થતા પૂર્વક આવશ્યકતા છે તે તેમના કાવ્યોમાં વિશેષરૂપમાં સ્પષ્ટ ઝળમળે છે.

તેથીજ મિશ્રબન્ધુઓ આદિ આધુનિક તટસ્થ વિદ્વાનોએ પણ તેમને ‘તોષ’ની ઉત્તમ શ્રેણીમાં રાખેલા છે ( જુઓ મિંવિનોદ પાન ૨૪૪ )

આથી જાણી શકાય છે કે તેમની કાવ્ય પ્રતિભા વિશાલ અને તીવ્ર હતી. છતાં સાહિત્યિક દષ્ટિએ નિષ્પક્ષપાત હૃદયે કહિયે તો તેઓ શ્રીસૂરની માફક સર્વવ્યાપી દષ્ટિના કવિ તો નજ ગણાય. પરંતુ તેથી તેમની કાવ્યશક્તિમાં જરાયે ન્યૂનતા પ્રાપ્ત થતી નથી. કેમકે તેમના કાવ્યમાં તાદશતા અને તદ્દીનતા આદિ તત્ત્વો કે જે કાવ્યના પ્રાણ સમાન છે તે વિશેષ ચમકે છે. આથી તેમની મહાકવિત્વ શક્તિની પ્રતિભાની કોઈથીયે અવગણના થઈ શકે તેમ નથીજ.

સાંપ્રદાયિક દષ્ટિએ તેઓ શ્રીસૂરની માફકજ ‘સાગર’ સમાન છે. અને તેમનાં કાવ્યોમાં પણ શ્રીસૂરનાં કાવ્યોની સમાન મહત્ત્વ રહેલું છે. તેથીજ ગોસ્વામિચરણે તેમને સૂરદાસની સાથેજ અષ્ટછાપમાં સ્થાન આપ્યું.

પરમાનંદદાસજીના કીર્તનોમાં જે સ્તુત્ય તત્ત્વોનું દિગ્દર્શન થાય છે તેને વર્ણન કરવાને ભાષામાં કોઈ શબ્દોજ નથી એ કહેવું અતિશયોક્તિ ભરેલું નથી. અને તેથીજ



આધુનિક સાહિત્યકારોએ પણ તેમને ઉત્તમોત્તમ શ્રેણી ના બતાવી મુઝાઈને તે વિષે મૌન સેવ્યું છે.

પરમાનંદદાસજીના ગ્રન્થોમાં ‘પરમાનંદસાગર’\* મુખ્ય છે. તદ્દતિરિક્ત દાનદીલા, ઉદ્ધવદીલા, એવં તેમના રચેલાં સ્ક્રૂટ પદો પણ પ્રાપ્ત છે.

પરમાનંદદાસજીના કાવ્યોમાં એ શક્તિ હતી કે જેના કેવળ શ્રવણ માત્રથી મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી જેવા પ્રૌઢ જ્ઞાની ત્રણ દિવસ સુધી દેહાનુસંધાન રહિત થયા. કહો ! એથી વિશેષ એમની કાવ્યશક્તિની મહાનતાનું બીજું કયું પ્રમાણ હોઈ શકે ? અસ્તુ.

તેમના કાવ્યોમાં વિશેષ ઝળમળતી તદ્દીનતા, નિસ્પૃહતા. એવં તાદૃશતા આદિના કેટલાક નમૂના અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ:—

તાદૃશતાના પ્રત્યક્ષ નમૂના—

દેવોરી ! કૈસા બાલક રાની જસુમતિ જાયા હૈ ।  
સુંદર વદન કમલદલ લોચન દેવત ચંદ્ર લજાયા હૈ ।

\*

પિછોરા સ્વાસા કો કટિ બાંધે ।  
વે દેવો આવત હૈં નંદનંદન નયનકુસુમશર સાંધે ॥

મેં તોહિ કૈ બિરિયાં સમજાઈ ।  
ઉઠ ઉઠ ઉગ્રકિ હરિ હેરતી ચંચલ દેવ જનાવતિ ।

\* ‘પરમાનંદ સાગર’ કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગમાં પ્રાપ્ત છે અને તેના પ્રકાશનની યોજના વિચારાધીન છે. કોઈ સદ્ગ્રંથની મદદથી તે પ્રકટ થશે જ.

—સંપાદક



તદ્દીનતાનો નમૂનો—

મેરો માઈ ! માધો સોં મન માન્યો ।

મેરો મન ઔર વા ઢોટા કો એકમેક કર સાન્યો ॥

અવ ક્યોં બિન્ન હોય મેરી સજની દૂધ મિલ્યો ડ્યોં પાન્યો ।

x

x

x

પ્રેમભાવનો નમૂનો—

પ્રેમ કી પીર સરીર ન માઈ ।

નિસવાસર જિય રહત ચટપટી રહ ધકધકી ન જાઈ ॥

પ્રબલ સૂલ સહો જાત ન સહીરી ! આવે રોવન ગાઈ ।

કાસોં કહોં મરમ કોં માઈ ! ઉપજી કોન બલાઈ ॥

જો કોઝ સોજે સોજ ન પડ્યત તાકો કોન ઉપાઈ ।

હોં જાનત હોં મેરે મનકી લાગી હૈ કલુ બાઈ ॥

પાછે લગે સુનત પરમાનંદ હરિ મુખ મૃદુ મુસકાઈ ।

મુંદિ આંચિ આણ પાછે તેં લીની કંઠ લગાઈ ॥

કહા કરોં બૈકુંઠ હિ જાય;

જહૈં નહિ નંદ જહૈં નહીં જસોદા જહૈં નહિ ગોપી ગ્વાલ ન ગાય ॥

જહૈં નહિ જલ જમુના કોં નિરમલ ઔર નહીં કદમન કી છાય ।

પરમાનંદ પ્રભુ ચતુર ગ્વાલિની વ્રજરજ તજિ મેરી જાય બલાય ॥

\*

એ ખરું છે કે પરમાનંદદાસજી શ્રીસૂરની તરહ સર્વ-  
વ્યાપિ દષ્ટિના ઠવિ નથી તો પણ તેઓ સૌરકાવના અન્ય  
કવિઓમાં પ્રથમ અને મહત્વનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે.

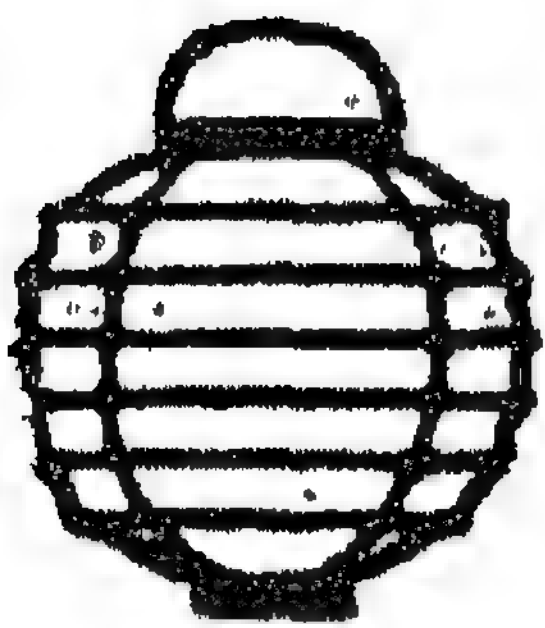


એમાં જરાય સંદેહ નથી કે સામ્પ્રદાયિક દૃષ્ટિએ પરમાનંદદાસજીનું સ્થાન શ્રીસૂરથી ન્યૂન નથી જ. છતાં કાવ્યદૃષ્ટિએ તો તેઓ સૂર અને નંદદાસ પછીજ આવી શકે તેમ છે.

ભગવદ્દીયતામાં તો તેઓ સૂરની માફકજ મહાન છે. તેમના હૃદયનો પ્રેમ અવર્ણનીય, અચિંત્ય અને અગમ્ય છે. મહાપ્રભુની પૂર્ણ કૃપા વિના તેમનાં પદોમાં રહેલું નિગૂઢ તત્ત્વ કોઈનાય હૃદયમાં પ્રવેશી શકે તેમ નથી.

પરમાનંદ સુધામાં સૂરના સર્વોચ્ચ સર્વવ્યાપી પ્રેમને મનોયોગ દ્વારા સંકુચિત કરી તેને આસક્તિનું સ્વરૂપ આપેલું હોવાથી તે (સુધા) જોકે જગતમાં સર્વ વ્યાપી રૂપે ન રહી છતાં ભક્તિ કોટીમાં તો અગ્રસ્થાનેજ બિરાજે છે. તેનું વિશેષ વિવેચન કુંભનની કાવ્યસુધામાં વિસ્તૃત રૂપે આવેલું છે.

--સમ્પાદક





## પરમાનંદદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોઠક-

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૫૦ ના માગશર સુદ ૭ ને સોમવારે  
સવારમાં કનોજ મુકામે.

જાતિ-કનોજીયા બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિસમય-વિ. સં. ૧૫૭૭ ના જેઠ સુદ ૧૨ ના  
'અડેલ' મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ-સુરભી કુંડ, શ્યામતમાલ વૃક્ષની નીચે  
કીર્તનનો મુખ્ય સમય-મંગલા.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૦ ના શ્રાવણ સુદ ૯, સ્થાન સુરભી  
કુંડ ( અહીંનું વૃક્ષ હાલમાં પડી ગયું છે )

લીલાત્મક સ્વરૂપ-તોડ સખા એવં અંદ્રભાગા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-જીંહા ઇંદ્રિય.

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીનવનીતપ્રિયજી.

શૃંગારાસક્તિ-ગ્વાલપગા.

લીલાસક્તિ-બાળલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી  
પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસારx

સંગ્રાહક:-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

x મૂળ સાહિત્ય પદાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.



ભક્ત-શિરોમણિ મહાકવિ

કુંભનદાસ



( સં. ૧૫૨૫ થી સં. ૧૬૪૦+ )



કુંભનદાસ અષ્ટસખાઓ પૈકીના એક છે. તેમનો જન્મ વિ. સં. ૧૫૨૫ના ચૈત્ર વદ ૧૧ ના દિવસે વ્રજમંડલમાં આવેલા શ્રીગોવર્દન ધામની અતિ નિકટના જમનાવતા નામક ગ્રામમાં એક ગોરવા ક્ષત્રિય ને ત્યાં થયો હતો.

તેમના જન્મની આખ્યાયિકા નિમ્ન પ્રકારે પ્રચલિત છે—

કહે છે કે તેમના પિતા ભગવાનદાસ (?) એક સમય સહકુટુંબ કુંભના પર્વમાં પ્રયાગ ગયા હતા. ત્યાં તેમણે સેવાદ્વારા એક મહાપુરુષની પ્રસન્નતા પ્રાપ્ત કરી પુત્ર પ્રાપ્તિનો વર મેળવ્યો. પશ્ચાત્ ઘર આવ્યા બાદ તેમને ત્યાં યથાસમય એક પુત્રરત્ન સાંપડ્યું. જેનું નામ તેમણે કુંભના પ્રસંગની સ્મૃતિ તરીકે ‘કુંભન’ રાખ્યું.

---

+ સૂરદાસજીના અંતિમ સમયે કુંભનદાસજીની ઉપસ્થિતિ વાર્તાથી સિદ્ધ છે. પરંતુ પરમાનંદદાસજીના અંતિમ સમયે તેઓ ન હતા. તેથી ઉક્ત બન્ને મહાનુભાવોના અંતિમ કાલની વચમાં તેમનો અંતિમ સમય અનુમાન થઈ શકે છે.

—સંપાદક.



કુંભનદાસને આઠ વર્ષે ઉપવીત આપ્યા બાદ તેમના પિતાએ વૈકુંઠવાસ કર્યો. જેથી કુંભનદાસે પોતાની શેષ બાક્યા-વસ્થા પોતાના કાકા ધર્મદાસની દેખરેખમાંજ વ્યતીત કરી.

ત્યારબાદ સં. ૧૫૩૫ માં પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથે ગોવર્દ્ધન પર્વતમાં સ્વતઃ પ્રકટ થઈ ધર્મદાસને કુંભનને પોતાની સાથે રમવા મોકલવાની આજ્ઞા કરી; ત્યારથી કુંભનદાસને કૃપાયુક્ત ભગવત્સાક્ષાત્કાર પ્રાપ્ત થયો.

એ પ્રકારે પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથની કૃપાથી કુંભનદાસમાં મહાત્મ્યજ્ઞાન યુક્ત સુદૃઢ સ્નેહરૂપ પુષ્ટિભક્તિનો ઉદય થયો. અને વીસ વર્ષ પર્યંત તેઓએ શ્રીનાથજીની વિવિધ લીલાનો અનુભવ કર્યો. તે દરમિયાન સં. ૧૫૫૦ લગભગ તેમનું લગ્ન ‘બહુલા’ ગામમાં એક સજ્જતીય કન્યા સાથે થયું.

સં. ૧૫૫૫ માં મહાપ્રભુ શ્રાવણભાચાર્યે આન્યેાર પધારી પ્રભુ શ્રીનાથજીને પર્વતથી બહાર પધરાવ્યા તે સમયે કુંભનદાસ સ્ત્રી સહિત આચાર્યશ્રીની શરણે આવ્યા. ત્યારથી વાકપતિ-શ્રીવલ્લભની કૃપાદ્વારા તેમની દિવ્ય વાણીમાં કૃપાત્મક કાવ્યશક્તિનો પ્રવેશ થયો. એટલે આપની આજ્ઞાથી તેમણે સર્વ પ્રથમ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજી સન્નિધાન નિમ્ન પદ ગાયું—

સાંજ કે સાંચે બોલ તિહારે ।

રજની અનત જગે નંદનંદન આયે નિપટ સકારે ॥



ઉક્ત પદ શ્રવણ કરી મહાપ્રભુ અત્યંત પ્રસન્ન થયા અને તેમને શ્રીનાથજી ની સન્નિધાન ઋતુ અનુસાર નિત્યપદ ગાવાની આશા આપી.

આ સમયે કુંભનદાસની સ્ત્રીએ આચાર્યશ્રી પાસે પુત્ર પ્રાપ્તિનો વર માગ્યો, ત્યારે આપે તેણીને સાત પુત્રો થવાનું વરદાન આપ્યું. જેથી યથાસમય કુંભનદાસને ત્યાં સાત પુત્રો થયા જેમાં કૃષ્ણદાસ અને ચત્રભુજદાસ નામના બે મહાન ભગવદ્ભક્ત હતા.

કુંભનદાસ મોટા કુટુંબવાળા હતા છતાં ઉપજ તેમને કેવળ ખેતીનીજ હતી, જેથી તેઓ સદા અર્કિચન અવસ્થા ભોગવતા હતા. તોપણ તેઓ ધર્મની સિદ્ધિના કારણે એટલા તો ત્યાગી અને સંતુષ્ટ રહેતા કે જેનો જોડ તે સમયે ન હતી. એ વાતનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ રાજા માનને થયો હતો જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે.

વિ. સંવત ૧૬૦૨ માં પ્રભુચરણે જ્યારે પુષ્ટિ અષ્ટ-છાપની સ્થાપના કરી મહાકવિઓનું નિર્માણ કર્યું ત્યારે તેમાં કુંભનદાસની પણ ગણના થઈ. ત્યારથી તેમની પ્રસિદ્ધિ ભક્ત સમાજ ઉપરાંત સાહિત્ય-સંસારમાં પણ ખૂબ પ્રચલિત થઈ. જેના ફલ સ્વરૂપે વૃંદાવનના હરિવંશાદિક સંત મહંત હચ્ચ કવિઓ તેમજ રાજા 'માન' જેવા રાજનૈતિક પુરુષો પણ તેમની મુલાકાત લેવા જમનાવતામાં આવવા લાગ્યા.

એ પ્રકારના કુંભનદાસજીના જીવનના અનેક મહત્વપૂર્ણ પ્રસંગોમાં એક એ પણ છે કે તેઓ ભગવત્સાક્ષાત્કારને પ્રાપ્ત



થયેલા હોવા છતાં નિરભિમાનપણે આચાર્યશ્રીની મર્યાદાને જ અવલંબીને રહેતા હતા. કેમકે તેમણે તે જ્ઞાન સારી રીતે પ્રાપ્ત કર્યું હતું કે પુષ્ટિસ્થ પ્રભુ 'કર્તું, અકર્તું, અન્યથા કર્તું સર્વ સામર્થ્ય યુક્ત' છે. એટલે પોતાના ખેત ઉપર કૃપા કરીને અહુર્નિશ દર્શન દેતા પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનધરના લાવણ્યામૃતના લોભને પરિત્યાગ કરીને પણ તેઓ આચાર્યશ્રીએ બાંધેલા સેવાના સમયે, આપની મર્યાદાથી સ્થિત મંદિરની ચરણ ચોકી ઉપર બિરાજમાન શ્રીગોવર્દ્ધનધરની સેવામાં ઉપસ્થિત થતા.

આ રીતે કુંભનદાસજી પ્રભુની સ્વતઃ થયેલી કૃપા કરતાં પણ સ્વગુરુ મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની મર્યાદાને અધિક મહત્વ દેતા જેનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ વાર્તામાં છે.

એ પ્રકારે કુંભનદાસજીએ લગભગ ૧૧૫ વર્ષની આયુ ભોગવી સં. ૧૬૪૦ માં જમનાવતામાં દેહ છોડી.

x

x

x

x

**કુંભનદાસજીના ચરિત્રમાં રહેલી દૈવીસંપત્તિઓ-**

ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે ગીતાના ૧૬ મા અધ્યાયમાં કહેલી દૈવી સંપત્તિઓ કુંભનદાસજીના આ વાર્તાત્મક ચરિત્રમાં પૂર્ણરૂપે સ્પષ્ટ તરી આવે છે, જેનાં કંઈક ઉદાહરણ અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ-

૧ અમય-સં. ૧૬૩૦ની લગભગ જ્યારે બાદશાહ અકબરે કુંભનદાસજીના પદોથી મુગ્ધ થઈ તેમને સન્માનયુક્ત ક્ષેત્રપુર સીકરીમાં બોલાવ્યા અને તેઓને સત્તાત્મક રૂપે પોતાનો કંઈક યથા ગાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે વિવેકપુરઃસર તે સત્તા અને સન્માનનો અનાદર કરતાં પોતાની દૈવી સંપત્તિના મૂળરૂપ જે અભયને નિમ્ન પદ દ્વારા પ્રસિદ્ધ કર્યો તે આ રહ્યો-



મક્ત કો કહા સીકરી કામ ?

આવત જાત પન્હૈયા તૂટી વિસર ગયો હરિનામ ॥

જાકો મુખ દેસત દુઃખ ઉપજે તાર્કો કરની પરી પ્રણામ ।

કુંભનદાસ લાલ ગિરિધર વિનુ યહ સવ ઝૂંઝો ધામ ।

આથી વિશેષ અભયતા શું સંસારમાં હોઈ શકે ખરી ? એક વિધર્મી બાદશાહને સર્વસમક્ષ 'જાકો મુખ દેસત દુઃખ ઉપજે' એ શબ્દો નિડરતા પૂર્વક કહેવા એ શું મનુષ્ય તાકાતની બહારની વાત નથી ? અને તેના પ્રતિધ્વનિરૂપે વળી બાદશાહને શાંત રાખવો તે શું તેમના દેવી સમ્પત્તિમાંના ૨૧ મા ગુણ 'તેજ' નો પ્રભાવ ન ગણાય ?

૨ સત્ત્વસંશુદ્ધિ—દેવી સમ્પત્તિનું બીજું લક્ષણ જે અંતઃકરણની શુદ્ધિ છે તે, એમના સૂતક એવં શ્રીગુસાંઈજીના વિદેશ ગમનાદિ અનેક સમયે થયેલા ભગવદ્ વિયોગાત્મક પ્રસંગોથી સિદ્ધ જ છે. કેમકે અંતઃકરણની પૂર્ણ શુદ્ધિ વિના સુદૃઢ ભગવદ્દાસક્તિ થવી અસંભવ છે. અને આસક્તિ વિના તાપ થવો દુર્લભ છે. એ ભગવદ્ વિયોગાત્મક તાપ કુંભનદાસજીમાં કેવા પ્રકારનો હતો તે તેમના અનેકાનેક પદોમાંના કૃત્ત નિમ્ન એક પદ દ્વારા પણ પ્રત્યેક મનુષ્ય સમજી શકે છે—

કેતે દિન વહે જુ ગયે વિનુ દેસે ।

તરુણ કિશોર રસિક નંદનંદન કલ્લુક ઉઠત મુખ રેસે ॥

વહ શોભા વહ કાંતિ વદન કી કોટિક ચંદ્ર વિસેસે ।

વહ ચિતવનિ વહ હાસ્ય મનોહર વહ નટવરવપુ મેસે ॥

શ્યામસુંદર મિલિ સંગ खेलनि की आवत जीय अपेसે ॥

કુંભનદાસ લાલ ગિરિધર વિનુ જીવન જનમ અલેસે ।



આહ ! ઉક્ત પદ કેટલું હૃદયવેધક છે ? તેમાં શબ્દ શબ્દમાં આસક્તિ ઠાંસી ઠાંસીને ભરી છે. એમાંયે વહ શોભા, વહ કાંતિ, વહ ચિતવનિ, વહ હાસ્ય ઇત્યાદિ સ્થલોએ ધરેલો 'વહ' શબ્દ કેટલો હૃદયગ્રાહી અને માર્મિક છે ? તેનું વર્ણન કરવું અશક્ય છે. શું ઉક્ત પદથી કુંભનદાસના અંતઃકરણની પૂર્ણ શુદ્ધિ વિસ્પષ્ટરૂપે નથી ઝળહળતી ? એ વાતનો જવાબ તો ભક્ત-હૃદય જ આપી શકે.

૩ જ્ઞાનયોગ વ્યવસ્થિતિ-દૈવી સમ્પત્તિનું ત્રીણું લક્ષણ જ્ઞાન અને યોગમાં સ્થિતિ તે કુંભનદાસજીના નિમ્ન પ્રસંગોમાં સ્પષ્ટ દેખાઈ આવે છે-

એક સમયે શ્રીપ્રભુચરણે કુંભનદાસજીને કેટલા પુત્ર છે એમ પુછ્યું ત્યારે તેમણે સાત પુત્રો હોવા છતાં પોતાને કેવળ ડોઢજ પુત્ર છે એમ કહ્યું. તેમના આ ઉત્તરથી ઉપસ્થિત સર્વે વૈષ્ણવો જ્યારે આશ્ચર્યાન્વિત થયા ત્યારે તેમના જ્ઞાનાર્થે શ્રીપ્રભુચરણે કુંભનદાસજીને ડોઢ પુત્રનો પ્રકાર પુછ્યો. એટલે તેમણે કહ્યું કે શ્રીગોપીજનોની ભાવનાનુસાર સંયોગ અને વિપ્રયોગાત્મકપણે ક્રમશઃ ૩૫ અને નામની જે સેવા કરે છે તે ચત્રભુજદાસ આખો પુત્ર છે અને કૃષ્ણદાસ કેવળ સ્વરૂપનીજ સેવા કરતો હોવાથી તે અડધો પુત્ર છે.

આ પ્રકારે કુંભનદાસજીએ શ્રીગોપીજનોના હૃદયિક નિગૂઢ ભાવને પ્રકટ કરી પોતાની મહાઅલૌકિક જ્ઞાનાત્મક સ્થિતિને જનહિતાર્થે પ્રકાશી.

એજ રીતે મનને એકાગ્ર કરવાવાળી યોગસ્થિતિ ( પુષ્ટિમાર્ગીય ભગવદ્ વ્યસન ) એમના સંયોગ-વિપ્રયોગાત્મક



સેવા પ્રકારથી સિદ્ધ છે. યોગીની માફક તેમણે ઉક્ત ઉભય અંગ સ્વરૂપ સેવાદ્વારા મનની એકાગ્રતા પ્રભુમાં કેવી સિદ્ધ કરી હતી તે જાણવા માટે તેમના અનેકામાંનું ‘હિલગ’નું એકજ પદ અત્રે આપીએ છીએ—

જો પે ચોંપ મિલન કી હોઈ ।

તો ક્યોં રહ્યો પરે બિનુ દેસે લાસ કરે જો કોઈ ॥

જો પે વિરહ પરસ્પર વ્યાપે તો કહુ જીય વને ।

લોકલાજ કુલ કી મરિયાદા ઈકો ચિત્ત ન ગિને ॥

કુંભનદાસ પ્રભુ જાહિ તન લાગી ઔર કહુ ન સુહાઈ ।

ગિરિધરલાલ તોહિ બિનુ દેસે છિનુ ર કર્પ બિહાઈ ॥

અહા ! શું સંયોગ અને વિપ્રયોગનું પરસ્પર મિલન છે ! આ હૃદયની સ્વરૂપાત્મક એકાગ્રતા યોગીઓના પ્રાકૃત યોગદ્વારા સિદ્ધ થતી નથી. એ તો ભગવત્કૃપાથી સિદ્ધ થતી સેવારૂપી અલૌકિક યોગદ્વારા જ સાધ્ય છે.

૪ દાન-એજ પ્રકારે દેવીસમ્પત્તિના ચોથા લક્ષણરૂપ તેમનું અદેય ‘દાન’ પણ અલૌકિક જ છે. આજ સૂતકમાં રસાત્મક શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીનાં દર્શન રૂપી જે ભિક્ષા વૈષ્ણવોને મળે છે તે કુંભનદાસજીના દાનના ફલ સ્વરૂપ જ છે એ કહેવું ભાગ્યેજ આવશ્યક કહી શકાય ! કુંભનદાસજીએ એ અલૌકિક દાન આપી વૈષ્ણવ સમૂહને અસીમ ઋણી બનાવ્યો છે તે વાર્તાના પ્રસંગથી સિદ્ધ છે.



૫ દમ-દૈવી સમ્પત્તિનું પાંચમું લક્ષણ જે દમ ( ઇંદ્રીય દમન) તેને બતાવવાને માટે વિસ્તારપૂર્વક વિવેચનની કોઈ આવશ્યકતા નથી. તે તો ‘ આંખા ’ વિગેરેના પ્રસંગથી સ્વયં-સિદ્ધ છે.

૬ યજ્ઞ—કુંભનદાસજીમાં દૈવી સમ્પત્તિના છઠ્ઠા લક્ષણરૂપ ‘યજ્ઞ’ પણ અત્યલૌકિક આધિદૈવિક સ્વરૂપે વિદ્યમાન છે. યજ્ઞનો દેવતા જેમ અગ્નિ છે તેમ અહિં આધિદૈવિક યજ્ઞના દેવતા સ્વરૂપ ભગવદ્ મુખાગ્નિ છે. અને કુંભનદાસજીએ તે અગ્નિને દૈન્ય ભાવયુક્ત પરમ સ્નેહના પુટથી વિવિધ સામગ્રિયો આરોગાવી તેને સંતુષ્ટ કર્યો છે જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે. તેથી વિશેષ બીજો કયો યજ્ઞ હોઈ શકે ?

૭ સ્વાધ્યાય—એજ પ્રકારે સાતમા લક્ષણરૂપ સ્વાધ્યાય (વેદાધ્યયન) તો તેમના ભગવત્સાક્ષાત્કારયુક્ત આધિદૈવિક વેદ સ્વરૂપ કીર્તનોજ છે જેમાં ભક્તિમાર્ગીય જીવોને તો કંઈ સંદેહ નથીજ.

જે કીર્તનો આજ પણ કેવળ અધ્યયન માત્રથી ત્રણે દુઃખને દૂર કરી દૈવી જીવોને પરમાનંદમાં મગ્ન કરે છે તે આધિદૈવિક વેદરૂપ નહિં તો બીજું શું ?

૮ તપ તથા ધૈર્ય—દૈવી સમ્પત્તિના આઠમા લક્ષણરૂપ ‘તપ’ અને ૨૩ મા લક્ષણરૂપ ધૈર્ય’ તો કુંભનદાસજીના જીવનમાં ક્ષણે ક્ષણે દેખાઈ આવે છે. ‘ત્રિદુઃસ્વ સહનં ધૈર્યમ્’ એ આચાર્યશ્રીના વાક્યને તેમણે પોતાના જીવનમાં પ્રત્યક્ષ ઉતાર્યું હતું એમ વાર્તાના અનેક પ્રસંગોથી જણાય છે.



તેમનું તપરૂપ ત્રિવિધ ધૈર્ય આ પ્રકારે છે—

એમણે દરિદ્ર અવસ્થા ભોગવીને લૌકિક દુઃખને ધૈર્યપૂર્વક સહર્ષ સહન કરી શારીરીક ભૌતિક તપ કર્યું, તેજ પ્રકારે ચત્રભુજદાસના પ્રાકટ્યના પૂર્વે સત્સંગ અર્થે તેમણે માનસિક દુઃખને ધૈર્યપૂર્વક સહન કરી આધ્યાત્મિક તપ કર્યું. અને અસહ્ય ભગવદ્વિયોગમાં પણ દેહની સ્થિતિ રાખીને જે કષ્ટને એમણે ધૈર્યપૂર્વક સહન કર્યું તે આધિદૈવિક તપ તો અદ્ભૂતજ કહેવાય. એ પ્રકારે ‘તપ’ અને ‘ધીરજ’ રૂપી સમ્પત્તિ એમનામાં સહજ હતી.

એ રીતે દૈવી સમ્પત્તિનાં સરળતા, અહિંસા, સત્ય, અક્રોધ, અને ત્યાગ આદિ તો તેમના સાદા પરોપકારી અને નિઃસ્પૃહયુક્ત સત્ય જીવનમાં સ્પષ્ટ તરી આવે છે. જેના ઉદાહરણ રૂપે રાજા માનની મુલાકાતનો, શ્રીપ્રભુચરણના વિદેશગમનનો તથા ટોડના ઘના આદિના પ્રસંગો વિસ્પષ્ટજ છે.

એ પ્રકારે અન્ય લક્ષણો પણ એમનામાં વિદ્યમાન હતાં જેનું સ્થળ સંકોચથી વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ અમે અત્રે આપી શકતા નથી. અસ્તુ.



કુંભનસુધા ઉપર એક દષ્ટિ—

કુંભનદાસજીના કાવ્યોમાં સહુથી મહત્વપૂર્ણ જે વસ્તુ વિશેષ માત્રામાં દેખાઈ આવે છે તે તેમની ભગવદાસક્તિ ઉપરાંતનું વ્યસન છે.

તેમની કાવ્યસુધામાં તક્ષીનતા એટલી તો વ્યાપક રૂપે વિદ્યમાન છે કે તેના નિરંતરના અવગાહન માત્રથી પણ જીવ ભગવદ્ તન્મયતા સહજમાં પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

તેમણે ગોકુલની ખાલલીલા ગાઈ નથી કેમકે તેઓ પ્રમેયને જ સુખ્ય માનનારા હતા પ્રમાણુને નહિ. છતાં તેમની સખ્યભક્તિ વિશેષતઃ માહાત્મ્ય જ્ઞાન સંયુક્ત હતી.

દષ્ટાંત રૂપે—

एसो भूपति कोन जो हम पे हाथ उठावे ।

बंदीजन द्विज वेद पढ़ें द्वारे नित्य गावे ॥

ब्रह्मरूप उत्पन्न करूं रुद्र रूप संहार ।

विष्णुरूप रक्षा करूं सो मैं हूं नंदकुमार ॥(दानलीला)

સૂરે જેમ સર્વવ્યાપી પ્રેમનું મૂર્તિમંત સ્વરૂપ ‘સૂર-સાગર’ દ્વારા જનતા સમક્ષ મુકયું છે; અને જેમ પરમાનંદદાસે ભગવદાસક્તિ પરમાનંદ સાગરમાં મૂકી છે તેમ કુંભને ભગવાન પ્રત્યેની પોતાની થયેલી વ્યસન અવસ્થાનું વિશુદ્ધ દશ્ય પોતાના પદો દ્વારા જનસમૂહ સમક્ષ સ્થાપ્યું છે.

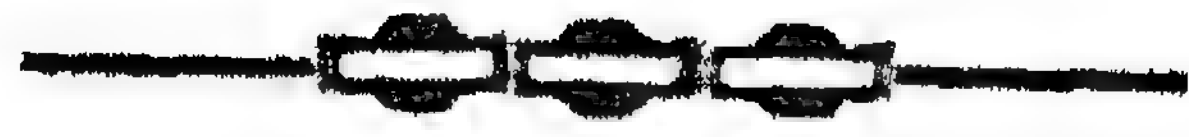
એ કહેવું ભાગ્યે જ બાકી ગણાય કે પ્રેમ એ ત્રિલોકીની સર્વવ્યાપી વસ્તુ છે એટલે તેના સુદૃઢ અને સર્વોત્કૃષ્ટ ઉપાસક રૂપે સૂરની વાણી પણ સર્વવ્યાપી હોય જ. કિંતુ



આસક્તિ અને વ્યસન મનની એકાગ્રતાને અર્થે ક્રમશઃ એકપછી એક પોતામાં સંકુચિત તત્ત્વોનો સમાવેશ કરતાં હોઈ તેઓ જગતમાં ગુપ્ત અને ગુપ્તતમ રૂપે સ્થિત રહે છે. તે પ્રમાણે તેના ઉપાસક રૂપે પરમાનંદ અને કુંભન ક્રમશઃ એક પછી એક સર્વ સાધારણની દૃષ્ટિમાં ગુપ્ત અને ગુપ્તતમ છે. હાં ! તે વસ્તુના ગ્રાહકો આગળ તો તેઓ ગુપ્ત હોવા છતાં પૂર્ણ પ્રકાશિત છે જ એમાં સંદેહ નહિ.

આ રીતે કુંભનના કાવ્યો સૂરની માફક સર્વવ્યાપી ન હોવા છતાં સંકુચિત તત્ત્વને લીધે લગવદ્ વ્યસન અવસ્થામાં પૂર્ણ ઉપયોગી અને મહત્ત્વનાં છે જ.

—સરપાદક





# કુંભનદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કેાઠક-

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૨૫ ના ચૈત્ર વદ ૧૧ ના દિવસે જમનાવતા  
ગામમાં.

જાતિ-ગોરવા ક્ષત્રિય, પિતૃનામ-ભગવાનદાસ  
શરણાગતિસમય-વિ. સં. ૧૫૫૫ ના વૈશાખ સુદ ૩  
ગોવર્ધન-ગોપાલપુર-મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ-જમનાવતા.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય-રાજભોગ.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૦

લીલાત્મક સ્વરૂપ-અનુન સખા એવં વિશાખા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીગોવર્દનનાથજી.

ચુંગારાસક્તિ-કુલ્હે.

લીલાસક્તિ-નિકુંજલીલા

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદારકેશજી

પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસારx

સંગ્રાહક:-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

x મૂળ સાહિત્ય પદાત્મક અંતમાં આપ્યું છે,



# ભક્ત કવિરત્ન શ્રીકૃષ્ણદાસજી

—:x:—

( સં. ૧૫૫૩ થી સં. ૧૬૩૧ )

—:x:—

હિન્દી સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં યદ્યપિ કૃષ્ણદાસ પયહારી, કૃષ્ણદાસ કવિ આદી અનેક કૃષ્ણદાસ નામક પ્રાચીન સુ-કવિયોની નામાવલી છે; તોપણ તેમાં મૂર્ધન્ય રૂપે બિરાજમાન અષ્ટછાપના મહાકવિ શ્રીકૃષ્ણદાસજી વિશ્વવિદિત છે.

આ અષ્ટછાપના ભક્ત કવિરત્ન શ્રીકૃષ્ણદાસજીનો જન્મ સં. ૧૫૫૩ ના વૈશાખ સુદ ૩ ના દિવસે અમદાવાદ જિલ્લામાં આવેલા ‘ ચલોતર ’ નામક ગ્રામમાં એક કણ્ઠી ‘ મુખી ’ ને ત્યાં થયો હતો. એમની બાલ્યાવસ્થા અને ગૃહત્યાગનું સવિસ્તર વર્ણન વાર્તામાં હોવાથી અત્રે એટલું કહેવું જ પર્યાપ્ત છે કે તેઓએ ૧૩ વર્ષની વયેજ પિતાના અસત્યાચરણથી ગૃહ-ત્યાગ કરી તીર્થાટનનો પ્રારંભ કર્યો હતો.

પ્રારંભના થોડા જ સમય અનન્તર સં. ૧૫૬૮ માં તેઓ મથુરાના વિશ્રાંત ઉપર મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા. અને ત્યાંથી આપની સાથે શ્રીગોવર્દન જઈ શ્રીનાથજીની સન્મુખ તેમણે આચાર્યશ્રીથી નિવેદન પ્રાપ્ત કર્યું.

નિવેદનની સાથે જ કૃષ્ણદાસ ઉપર અસીમ ભગવતકૃપા ઉતરી અને તેમને ભગવલ્લીલાનો સાક્ષાત્કાર થયો. આથી



તેમની વાણી દિવ્ય અને પ્રસાદાત્મક બની, જેથી તેઓ આગળ જતાં મહાકવિ રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

કૃષ્ણદાસે શરણુ આવ્યા બાદ ગુરુભેટ રૂપે જે પ્રાથમિક પદ આચાર્યશ્રી સન્મુખ ગાયું તે આ છે—

‘શ્રીવલ્લભ પતિત-ઉદ્ધારન જાનો ।

શરણ લેત લીલા દરસાવત તાપર ઠરત ગોવર્દન રાનો ॥

સાધન વૃથા કરત દિન સોવત શ્રીવલ્લભ કો રૂપ ન જાને ।

જાકી કૃપા કટાક્ષ સકલ ફલ કૃષ્ણદાસ તીનો જનમન માને ॥’

આ પદ સાંભળી આચાર્યશ્રીએ તેમને ભગવત્સન્નિધાન કીર્તન કરવાની આજ્ઞા આપી. અને ત્યારથી તેઓ કીર્તનની સેવામાં રહ્યા.

પશ્ચાત્ સં. ૧૫૮૨ થી આચાર્યશ્રીએ તેમને શ્રીનાથ-  
જીની ભેટ ઉઘરાવવાની સેવા સોંપી ત્યારથી તેઓ વિદેશમાં  
ભેટ લેવાને જતા. તે દરમિયાન એક સમય ગુજરાતથી ભેટ  
ઉઘરાવીને આવતાં રસ્તામાં તેઓ મીરાબાઈના મુકામે આવ્યા.  
તે વખતે કૃષ્ણદાસને જોઈ મીરાબાઈએ તેમને શ્રી-  
નાથજીની ભેટ રૂપે ૧૧ મહોર અનેક સાધુસંતોના દેખતાં  
આપવા માંડી. ત્યારે તેમણે તે ન લેતાં મોરાંબાઈને સ્પષ્ટ  
કહ્યું કે શ્રીનાથજી આચાર્યશ્રીના સેવક વિના અન્યની ભેટને  
સ્વીકારતા નથી. એ રીતે દિવ્યત્યાગ દ્વારા સ્વામીનો સુયશ  
વધારી કૃષ્ણદાસ ગોવર્દન આવ્યા. તેમની આ નીતિ  
કુશળતાથી પ્રસન્ન થઈ આચાર્યશ્રીએ તેમને મંદિરની



દેખરેખ સમેત શ્રીનાથજીના મુખ્ય લંડારનું કાચું  
સોંપ્યું.

બાદમાં આચાર્યશ્રીના તિરોધાનાનંતર કૃષ્ણદાસે અવ-  
ધૂતદાસ દ્વારા શ્રીનાથજીની આજ્ઞાને બાણી મંદિરમાં સ્વચ્છન્દ  
રીતે સેવા કરતા નિરંકુશ બંગાલીઓને પોતાની નીતિ કૂશ-  
ળતાથી દૂર કર્યા. તેથી પ્રભુચરણે કૃષ્ણદાસ ઉપર પ્રસન્ન થઈ  
તેમને ઉપરણો ઓઢાવીને શ્રીનાથજીના અધિકારી બાહેર કર્યા.

પશ્ચાત્ પ્રભુચરણે કૃષ્ણદાસની ગાદી કાયમ કરી અને  
તેમના મુખ્ય લંડારને ‘કૃષ્ણ-મંડાર’ એ નામ આપ્યું.  
વળી તેમને અનેક રથો, ઘોડાઓ અને સશસ્ત્ર મળવાસિયોનું  
સૈન્ય પણ આપ્યું.

ત્યારથી કૃષ્ણદાસની સમ્મતિ વિના મંદિરમાં પ્રભુચરણ  
પણ કોઈ કાર્ય ન કરતા. આથી કૃષ્ણદાસનો પ્રભાવ સર્વત્ર  
પ્રસર્યો અને તેઓ પૂર્ણ રાજસમાં હત્યા.

‘ભર્યામાં ભરે’ એ સૃષ્ટિના નિયમાનુસાર પ્રભુ શ્રી-  
ગોવર્દ્ધનનાથજીએ પણ પ્રભુચરણની કૃષ્ણદાસ પ્રત્યેની કૃપાને  
જોઈ પોતાની કૃપાને દ્વિગુણીત કરી. જેના ફલ સ્વરૂપે તેમને  
અનેક વખતે શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ પોતાની રાસાદિ લીલાનાં  
પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યાં અને તે તે સમયે તેમની વાણીનો  
પણ અંગીકાર કર્યો.

પરમ દયાલુ ભક્તવત્સલ પ્રભુ કૃષ્ણદાસ ઉપર એટલી  
કૃપા કરી ને જ સંતુષ્ટ ન થયા. કિંતુ તેમની દ્વારા સમર્પા-  
યલી એક તુચ્છ વેશ્યાને તેમના રથેલા કીર્તનના સંબંધ-



માત્રથી સદેહે લીલામાં લઈ આપે જગતમાં પોતાનું ભક્તા-  
ધીનત્વ સિદ્ધ કર્યું. તેવી જ રીતે તે કૃપાળુ શ્રીજીએ સાહિત્ય  
સંસારમાં પણ કૃષ્ણદાસના સુચશને વધારવાને માટે કાવ્ય-  
પિતા શ્રીસૂરના હૃદયસ્થલમાં નહિ આવેલા 'નેચુકી' ગાયના  
વર્ણનને કૃષ્ણદાસના નામથી સંપાદન કરી પોતે તેમને અને  
તેમનાં પદોને પણ જગતવિખ્યાત સૂર્યવત્ શ્રી સૂરના દિવ્ય  
કાવ્યોની હરોળમાં મૂક્યાં.

આ રીતે શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ શ્રીકૃષ્ણદાસજી ઉપર  
વ્યાપક કૃપા કરી તેમના નામને 'ચાવચંદ્રદિવાકરો' પર્યંત  
ઉજ્જવલ રીતે પ્રસિદ્ધ કર્યું. છતાં કૌતુહલ પ્રિય પ્રભુએ  
અનેક ઉદ્દેશ્યોને સિદ્ધ કરવાને અર્થે કૃષ્ણદાસજીના જીવનમાં  
પણ એક અસંભવિત કૌતુકને ઉત્પન્ન કર્યું. જેના પરિણામે  
કૃષ્ણદાસનો પ્રભુચરણથી વિરોધ થયો. તેથી તેમના અતિ  
ઉજ્જવલ ચરિત્રમાં દ્રષ્ટિ નિવારણાર્થે એક શ્યામઞ્જીવ પ્રવેશ્યું.

ઉક્ત વિરોધમાં કૃષ્ણદાસે રાજ્યનીતિનો આશ્રય લઈ  
શ્રીગોપીનાથજીના પુત્ર શ્રીપુરુષોત્તમજીને શ્રીનાથજીના મંદિ-  
રના હક્કદાર તરીકે સિદ્ધ કર્યા; અને તે દ્વારા પ્રભુચરણને  
સં. ૧૬૨૦ લગભગના પોષ સુદ ૬ ના દિવસથી શ્રીનાથજીનાં  
દર્શન બંધ કર્યાં.

આ સમયે યદ્યપિ પ્રભુચરણને કદપાનાતીત અસહ્ય કષ્ટ  
પ્રાપ્ત થયું. તો પણ આપે આચાર્યશ્રીનાં 'નિજેચ્છાત્ કરિષ્યતિ,'  
'પુષ્ટિમાર્ગ સ્થિતો યસ્માત્ સાક્ષિણો ભવતાસ્થિલઃ,' 'ત્રિઃદુઃસ્વ  
સહનં ધૈર્યમ્' આદિ વાક્યોનું સ્મરણ કરી, તે વાણીના આશ્રય  
બદે નિષ્ક્રીય બની પ્રભુના વિયોગમાં ચંદ્રસરોવર પરાસોલી  
તરફ પ્રયાણ કર્યું.



ત્યારપછી છ માસ બાદ શ્રીપુરુષોત્તમજીના લીલા-  
પ્રવેશ અને શ્રીગિરધરજીના પ્રયાસથી પુનઃ પ્રભુચરણ શ્રીના-  
થજીના મંદિરના માલિક બન્યા. આ સમયે કૃષ્ણદાસને રાજા  
બીરબલે કેદ કરેલા હોવાથી પરમ આર્દ્રહૃદયી શ્રીવિકૃદેશે  
તેમને શીઘ્ર મુક્ત કરાવ્યા અને પુનઃ પૂર્વવત્ અધિ-  
કારારૂઢ કર્યા.

શ્રીવિકૃદેશની એ હાર્દિક દયાનો કૃષ્ણદાસ ઉપર અત્યંત  
પ્રભાવ પડ્યો. જેના ફલરૂપે તેઓ આસુરાવેશથી મુક્ત  
થઈ પુનઃ આપશ્રીના અનન્ય ભક્ત બન્યા. તે સમયે કૃષ્ણ-  
દાસે પ્રભુચરણના નિરપેક્ષ ઉપકારથી દ્રવીભૂત થઈ આપના  
સુયશ ને પ્રકટ કરતાં અનેક પદ ગાયાં જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે.

ત્યારબાદ કૃષ્ણદાસની પ્રાથનાથી યદ્યપિ શ્રીવિકૃદેશે  
તેમના અવિસ્મરણીય અપરાધને શ્રીનાથજી પાસે ક્ષમા કરા-  
વ્યો તોપણ આપનું કોમળ હૃદય કે જે પ્રાણપ્રેષ્ઠ પ્રભુના  
અસહ્ય તાપથી એટલું તો વિકળ બની ગયું હતું કે આપના  
અનેકાનેક પ્રયાસોથી પણ તે ઉક્ત અપરાધને વિસારી  
શક્યું નહિ.

એ રીતે ઘણા વર્ષ પર્યંત અધિકારારૂઢ રહ્યા બાદ  
સં. ૧૬૩૩માં કૃષ્ણદાસે પોતાના અપરાધી શરીરને કુવામાં  
લીન કર્યું અને તેઓ સદાને માટે તેનાથી મુક્ત થયા.



## શંકા-સમાધાન

પૂર્વપક્ષી—પ્રેતવિષયક પ્રસંગમાં અમને નીચે પ્રકારની શંકાઓ રહે છે તદ્વર્થ તેનું સમાધાન કરવું આવશ્યક છે.

૧ શું તમે કહી શકો છો કે કૃષ્ણદાસના સંબંધનો પ્રેત વિષયક પ્રસંગ ‘વાર્તાકાર’ના નામથી તેમની હયાતી બાદ કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા તેમાં પાછળથી યોજવામાં નહિ આવ્યો હોય ? જો એમ હોય તો એ પ્રસંગ નિઃસંદિગ્ધ પ્રશ્નિત હોઈ તેને વાર્તામાંથી દૂર કરવો આવશ્યક છે.

૨ કૃષ્ણદાસ જેવા મહાનુભાવ ભગવદ્દીય પ્રભુચરણ ને ભગવદ્ દર્શનમાં અંતરાયરૂપ થઈ પડે એ વાત શું અસંભવ નથી ?

૩ કદાચ પ્રશ્ન બીજાને સ્વીકારી પણ લઈએ તો પણ એ વાત તો સર્વથા પાયાહીન માની શકાય એમ છે કે કૃષ્ણદાસ પ્રેતરૂપે શ્રીનાથજી સાથે વાર્તાલાપ કરે, અને છતાં તેઓ પ્રેતજ રહે ?

યદ્યપિ અમારી ઉપર્યુક્ત શંકાઓનું સમાધાન ભાવનાત્મક દૃષ્ટિએ શક્ય હોવા છતાં સમ્ભવિત અને ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ તેમ બનવું શક્ય નથી તેમ અમે માનીએ છીએ. માટે અમારા મત પ્રમાણે તો વાર્તામાં ઇતિહાસને સર્જીત રૂપ થઈ પડે એવો નિમ્ન પ્રકારનો ફેરફાર થવો આવશ્યક છે—

‘અમારા મન્તવ્યને અનુસાર કૃષ્ણદાસ પ્રેત થયા બાદ શ્રીનાથજી સાથે વાર્તાલાપાનન્તર તેઓ તે યોનિમાંથી છુટી ગયા અને તેના પ્રમાણ રૂપે કૃષ્ણદાસનું ‘કૃષ્ણદાસ સુર તેં અસુર ભયે અસુર તે સુર ભયે ચરનન છોય’ એમ લખવું જોઈએ

ઉત્તરપક્ષી—પ્રથમ મારે ઉક્ત પ્રશ્નોનો ખુલાસો કરતાં



પહેલાં એ વાત ઉપર આપનું ધ્યાન ખેંચવું આવશ્યક છે કે તે પ્રેતવિષયક પ્રસંગ સદંતર ભૌતિક તો નથીજ. કેમકે પ્રેત-યોનિ મૃત્યુલોકના પ્રાણીઓથી શ્રેષ્ઠ છે એમ શાસ્ત્ર કહે છે. તેથી તેનો સંબંધ પણ મૃત્યુલોક સાથે સંભવિત નહીં હોવાથી ત્યાં ભૌતિક ઇતિહાસની ગમ્ય નથી. અતઃ તે શંકાઓનું નિવા-રણ આવશ્યક ભૌતિક ઉપરાંત શાસ્ત્રીય એવં સામ્પ્રદાયિક દૃષ્ટિએજ નિમ્ન પ્રકારે આપવામાં આવે છે—

આપના પ્રશ્ન પહેલાના નિવારણ રૂપે અમારી પાસે કાંકરોલી સરસ્વતી ભંડારથી પ્રાપ્ત શ્રીગોકુલેશની ઉપસ્થિતિ સમયની ગોકુલમાં લખાયેલી વ્રજ સં. ૧૬૯૭ (ગુ. ૧૬૯૬)ના ચૈત્ર સુદ ૫ ને વાર રવિની પ્રતિ વિદ્યમાન છે. અને તેની ‘પુષ્પિકા’નો ફોટો પણ પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં આપવામાં આવેલો છે. અતઃ તે વિષે કોઈ શંકા રહેતી નથી. વળી વાર્તા શ્રી-ગોકુલેશ દ્વારા લખાયેલી છે કે અન્યથી, તે આપના આંતરિક સંદેહનો વિચાર પ્રસ્તાવનામાં કરેલો છે એથી અત્રે તેનો ઊહાપોહ કરવો પણ વ્યર્થ છે.

આપના બીજા અને ત્રીજા પ્રશ્નનો ઉત્તર યદ્યપિ શ્રી-હરિરાયજીના ‘ભાવપ્રકાશમાં’ સ્પષ્ટ છે તથાપિ તેના સારનું એકીકરણ ત્રિવિધ સંગતિથી અત્રે સૂક્ષ્મરૂપે આપવામાં આવે છે—

અન્ય વાર્તાની માફક આ વાર્તામાં પણ ‘વાર્તાકારે’ ત્રિવિધ ભાષા ( લૌકિક-પરમતા અને સમાધિરૂપ ) એવં ભાવ-નાની જે સુંદર સંગૃહિત રચી છે તે નીચે પ્રકારે છે—

લોક સંગૃહિત—ભૌતિક દૃષ્ટિ—

લોકમાં એ સ્પષ્ટ છે કે અંતિમ સમયે મનુષ્યનું મન કોઈપણ ભૌતિક વસ્તુમાં રહી જાય તો તેને પ્રેતાદિ યોનિ



લોગવવી આવશ્યક થઈ પડે છે. તે વાતની સંજ્ઞાંતિ અત્રે પણ કુવાના કાર્યાર્થના રૂા ૧૦૦)માં કૃષ્ણદાસનું મન રહેલું હોવાના પ્રસંગદ્વારા વાર્તાકારે સિદ્ધ કરી છે.

વેદસંજ્ઞાંતિ—આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિ—

વેદ નિયમાનુસાર શ્રીગુરુદેવનો અપરાધ મહાનતમ મનાય છે. એક વખતે પ્રભુ પોતાના અપરાધને ક્ષમા કરે છે કિંતુ શ્રીગુરુદેવના અપરાધને તે કદાપિ ક્ષમા કરી શકતા નથી એ લોક અને વેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. તદનુસાર પ્રભુચરણની પ્રાર્થનાથી શ્રીનાથજીએ કૃષ્ણદાસના સ્વ પ્રત્યેના અપરાધને ક્ષમા કર્યો. કિંતુ ન તો શ્રીજીએ તથા ન પ્રભુચરણે ગુરુ સ્વરૂપ પ્રતિના અસહ્ય અપરાધથી કૃષ્ણદાસ ને મુક્ત કર્યા. જેથી તે અપરાધની નિવૃત્તિને અર્થે તેમને પ્રેતયોનિ લોગવવી આવશ્યક થઈ પડી.

યદ્યપિ પ્રભુ સર્વસમર્થ છે છતાં શાસ્ત્રીય પ્રણાલીની રક્ષાને અર્થે આપે તેમને સ્વયં પ્રેતયોનિથી મુક્ત ન કર્યા. કિંતુ ગુરુદેવના અપરાધનું નિવારણ ગુરુદેવ જ કરી શકે છે એ સિદ્ધાંત ચરિતાર્થ કરાવવાને અર્થે જ પ્રભુચરણ પાસે તેમની મુક્તિ કરાવી. આમ લોક અને વેદની શાસ્ત્રીય પદ્ધતિનું રક્ષણ કર્યા છતાં પ્રભુએ આચાર્યશ્રીના વિશદ સ્વતંત્ર પુષ્ટિમાર્ગની પ્રણાલીને પણ ગૌણ થવા દીધી નહિ. એ જ પ્રભુનું વિરુદ્ધધર્માશ્રયત્વ આ વાર્તામાં સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું છે.

લોક અને વેદની દૃષ્ટિએ કૃષ્ણદાસ અપરાધી હોવા છતાં પુષ્ટિદૃષ્ટિએ તેઓ નિર્દોષ જ રહ્યા. જેથી શ્રીજીએ તેમનો દેહ દંડ દ્વારા લોકવેદની રક્ષા કરી તોપણ ‘પુષ્ટિ’ની સર્વોચ્ચતા સિદ્ધ કરવાને માટે તે યોનિમાં પણ ભગવદર્શન એવ વાર્તાલાપનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત કરાવ્યું. જે લોક અને વેદની



દૃષ્ટિએ સર્વથા અસમ્ભવ છે. અને આચાર્યશ્રીના ‘અત્રાપિ વેદનિંદાયામધર્મકરણાત્તથા, નરકે ન ભવેત્પાતઃ કિન્તુ હીનેષુ જાયતે’ એ વાક્યને ગોપીનાથદાસ દ્વારા લોક સમક્ષ સિદ્ધ કર્યું.

પ્રેતયોનિમાં પણ ભગવદર્શનના આ પ્રસંગને બિલ્વમંગલના ચરિત્રદ્વારા પણ ઐતિહાસિક પુષ્ટિ મળે છે.

આ રીતે લોક, વેદ અને ‘પુષ્ટિ’નું પૃથક્કરણ કરી કૃષ્ણદાસને પુષ્ટિના વિશુદ્ધરૂપમાં લેવાને માટે દર્શન દ્વારા, સ્પર્શરૂપ ફલ મળે તદર્થ વિપ્રયોગનું દાન પણ આપ્યું.

ભાવસંગતિ—આધિદૈવિક દૃષ્ટિ—

આધિદૈવિક ભાવાત્મક ભક્તિની દૃષ્ટિએ મહાનુભાવ શ્રીહરિરાયજીએ પોતાના ભાવપ્રકાશ દ્વારા જે ભાવસંગતિ ભક્તજનો સમક્ષ રાખી છે તે પૂર્ણ સંતોષ રૂપ હોવાથી તેની વિશદ ચર્ચાની આવશ્યકતા અત્રે રહેતી નથી.

આ પ્રકારે વાર્તાકારે શ્રીપ્રભુના વિરૂદ્ધધર્માશ્રયત્વનું દિગ્દર્શન કરાવી સાથે સાથે ત્રિવિધ મર્યાદાની જે સંગતિ જનતા સમક્ષ સુચારૂ રૂપે ઉપસ્થિત કરી તે વાસ્તવમાં સરાહનીય છે.

આ સંબંધી કોટા શ્રીખંડે મથુરેશજીના મુખિયાજી વિદ્યાસુધાકર શ્રીયુત ગોકુલદાસજી નીચે પ્રમાણે લખી જણાવે છે—

સાધારણ પુરુષોંકો સમજાને કે લિયે તો યહી ઉત્તર હૈ કિ મનુષ્ય કે રુધિર માંસ કે શરીરસે ભૂતોંકા વાયુકા શરીર ઉત્તમ હૈ । હસીસે અમરકોષમેં ‘ભૂતોંમી દેવયોનયઃ’ ઇસા લિખા હૈ અર્થાત્ ભૂત દેવતાઓંમેં ગિને જાતે હૈં ઓર જિસ પ્રકાર સેવોપયોગિ અથવા જ્ઞાનોપયોગી દેહ જિનકા હો



वह उत्तम मनुष्य गिना जाता है, और जिनका विषयोपभोग के लिये देह है वह संसारी हीन मनुष्य गिना जाता है। ऐसेही भूतगणों में जिनका ज्ञानोपयोगी या भजनोपयोगी देह हो वह उत्तमभूत गिने जाते हैं। उनकी गुह्यक, सिद्ध नाम से प्रसिद्धि होती है। और जो अधार्मिक जीव स्त्री पुत्रादि की वासना से भूत हो जाते हैं वे अधम गिने जाते हैं। एवं विषयोपयोगी पृथ्वी के राजा के देह की अपेक्षा कृष्ण-दासजी अधिकारी का कोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीगोवर्द्धनजी के लीलोपयोगी भूत शरीर अत्यन्त ही श्रेष्ठ हैं। जैसे भक्तजीवों को ब्रजके पशु पक्षी वृक्ष आदि के कलेवर देके प्रभुने उनके साथ क्रीडा की, वैसेही कृष्णदासजी अधिकारी को कुछ कारण वशभूत शरीर देके कुछ समय इनको लीलाका अनुभव कराया। पुष्टिमर्यादामार्गीय भी भक्त भगवान से जन्म मरण से छूट-नेकी प्रार्थना नहीं करते हैं, जैसे भागवत प्रथम स्कन्ध में परीक्षित ने कहा है—

‘महत्सु यां या मुपयामि योनिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः’

हे ब्रह्म ऋषियों! आपसे नमस्कारपूर्वक मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि जन्म २ में मेरी महापुरुष भक्तों के साथ मित्रता हो।

और भक्त योगीश्वर भी पवन का देह धारण करके ब्रह्मांड के भीतर बाहर विचरते हैं जसा कि.भा. द्वि. स्कन्ध में लिखा है—

योगिश्वराणां गतिमाहुरन्तर्  
बहि स्त्रिलोक्यां पवनान्तरात्म नाम् ।



## છીતસ્વામી

( સં. ૧૫૭૨ થી સં. ૧૬૪૨ )

સૂર એવં પરમાનંદ આદિ ઉક્ત પ્રાથમિક અષ્ટાપના કવિયોની માફક છીતસ્વામીનો ઇતિહાસ પ્રાપ્ત થતો નથી. તેમજ વાર્તામાં પણ તેમનું પૂર્વ ચરિત્ર આપેલું નથી. અતઃ લાખ એષ્ટા કરવાથી પણ તેમના માતાપિતાના નામ આદિની વિશેષ વિગતો પ્રકાશમાં લાવી શકાતી નથી. તોપણ તિ. શ્રીગોવર્દ્ધનલાલજી મહારાજશ્રીની આજ્ઞાનુસાર આ મહા-કવિનો જન્મ સં. ૧૫૭૨ ના માગશર વદ ૧૦ ને વાર શનિના દિવસે મથુરામાં એક ચતુર્વેદી બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો.

યદ્યપિ આ મહાનુભાવનું પ્રાથમિક જીવન દુઃસંગને લીધે વિપરીત પથાનુગામી લોકમાં રહ્યું, તથાપિ સં. ૧૫૯૨માં જ્યારે તેઓ શ્રીવિકૃલેશ્વરની સન્મુખ આવ્યા ત્યારે તેમની જીવનદશાએ તેમાં પલટો ખાધો.

શ્રીવિકૃલેશ્વરના અપનાવ્યા બાદ, કુસંગરૂપી વાદળથી ઢંકાયેલો એ દિવ્ય‘તારલો’ પુનઃ ભક્તિ તથા સાહિત્યાકાશમાં પ્રકાશ્યો. અને એના પ્રકાશે ભક્તિના મહત્ત્વ અંગરૂપ ગુરુના સ્વરૂપનું પ્રથ્વ-પ્રદર્શન કરાવી અનેકોને સુપથગામી કર્યા.

જો કે એમનું વાર્તાત્મક ચરિત્ર સંક્ષિપ્ત હોવાથી ભૌતિક-ક્ષેત્રમાં સંતોષપ્રદ નથી તથાપિ આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિએ તે અત્યંત મહત્ત્વપૂર્ણ સિદ્ધ થઈ ચુક્યું છે.

તેમના ચારિત્ર્યદ્રારા, ગુરુ એવં ઇશ્વર વચ્ચે રહેલા શાસ્ત્રીય અભેદનો જે દિવ્યપ્રકાશ ધાર્મિક-ક્ષેત્રમાં દેખાય છે તે વસ્તુતઃ ઉર્ધ્વપથને પ્રકટકર્તા હોઈ અનુસરણીય છે. એટલુંજ



નહિ કિંતુ તેથીયે વિશેષ ગુરુપ્રત્યેનો તેમનો કેન્દ્રિત ભાવ એવં દૃઢાશ્રય પરમમનનીય છે. અને તે દ્વારા તેમનો, રાજા બીરબલ જેવા સખલ રાજકીય પુરુષનો વિમુખતા અર્થેનો ઉજ્જવલ ત્યાગ સર્વેને અનુકરણીય છે. એ બધા પ્રસંગો દેવી સંપત્તિઓનું વિસ્પષ્ટ દર્શન કરાવનારા છે.

વળી પેટના અર્થે ધર્મનો ઉપયોગ ન કરવો એ તેમનો સિદ્ધાંત વસ્તુતઃ આશ્રયના સિદ્ધિરૂપ છે.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન કહેતાં તેમના સ્વરૂપ વિષે અમારું આટલું કથન પર્યાપ્ત થશે કે—શ્રીસૂર જે પ્રકારે ભાવ—સમ્પન્ન છે તેજ પ્રકારે છીતસ્વામી સ્વરૂપ—સમ્પન્ન છે. દૃષ્ટાંતરૂપે—

પોતાના ભાવના પરમકેન્દ્રિય એવં પ્રાણાધિક્ય સ્વરૂપ શ્રી-વિઠ્ઠલેશ્વરના અંતર્ધ્યાન થતાં માત્ર આ સ્વરૂપાસક્ત મહાનુભાવે પણ સ્વરૂપવિયોગે કરીને નિમ્ન પદ ગાર્ધ સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ ના દિવસે ‘પૂંછરી’ સ્થલે શ્યામ તમાલની નીચે દેહ છોડ્યો.

‘વિહરત સાતોં રૂપ ધરેં ।

સદા પ્રકટ શ્રીવલ્લભનંદન દ્વિજકુલભક્તિવરેં ॥

શ્રીગિરિધર રાજાધિરાજ વ્રજરાજ ઉદ્યોત કરેં ।

શ્રીગોવિંદ ઇંદુ જગકિરન સોંચત સુધા અધરેં ॥

શ્રીબાલકૃષ્ણ લોચન વિશાલ દેસે મન્મથ કોટિ હરેં ।

ગુણ લાવણ્ય દયાલ કરુનાનિધિ ગોકુલનાથ ભરેં ॥

શ્રીરઘુપતિ યદુપતિ ઘનસામલ મુનિજન શરણ પરેં ।

છીતસ્વામી ગિરિધરન શ્રીવિઠ્ઠલ જિહ્વિ ભજ અખિલ તરેં ॥’



## છીતસ્વામીનું ચરિત્ર—વિવરાણુ કેાઠક—

જન્મ—વિ. સં. ૧૫૭૨ ના માગશર વદ ૧૦ ને વાર  
શનિ, મથુરામાં.

જાતિ—ચતુર્વેદી બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિ સમય—વિ. સં. ૧૫૬૨.

સ્થાયીનિવાસ—ગિરિરાજમાં ‘પૂછરી’ સ્થાને શ્યામતમાલ  
વૃક્ષની નીચે.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—સંધ્યાર્તિ.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ ‘પૂછરી’ સ્થાને.

લીલાત્મક સ્વરૂપ—‘સુખલ’ સખા એવં ‘પદ્મા’ સખી.

ભગવદ્ભંગસ્વરૂપ—ભુજા.

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ—શ્રીવિકૃલનાથજી.

શૃંગારાસક્તિ—સેહરા.

લીલાસક્તિ—શ્રીગુસાંધજીની જન્મલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી

પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર.\*

સંગ્રાહક—સમ્પાદક વાર્તા—સાહિત્ય.

---

\* મૂળ સાહિત્ય પદ્માત્મક અંતમાં આપ્યું છે.



# ગોવિંદસ્વામી

( સં. ૧૫૭૩ થી સં. ૧૬૪૨ )

છીતસ્વામીની માફક આ મહાકવિનો ઇતિહાસ પણ હજી સુધી અંધકારમાં જ રહ્યો છે. અતઃ વાર્તાથી એટલું જ જાણી શકાય છે કે તેઓ ભરતપુર રાજ્યાન્તર્ગત આવેલા ‘આંતરી’<sup>x</sup> નામક ગામમાં અનુમાનતઃ સં. ૧૫૭૩ માં એક સનાઠ્ય બ્રાહ્મણને ત્યાં જન્મ્યા હતા. ગૃહસ્થાશ્રમાનન્તર તેઓ ભગવતપ્રાપ્તિને અર્થે વ્રજમાં આવ્યા હતા અને ત્યાં વિશેષ કરીને તેઓ મહાવનના ટીલા ઉપર રહેતા હતા. તેઓ કેવલ મહાકવિ હતા એટલું જ નહિં અપિતુ એક સર્વોચ્ચ ગવૈયા પણ હતા. સં. ૧૫૬૨ માં જ્યારથી તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની શરણે આવ્યા ત્યારથી તેમણે ભગવત સન્નિધાનાતિરિક્ત અન્યત્ર સ્વવાણીનો વિનિયોગ કર્યો નહિં. એટલું જ નહિં કિંતુ અનાયાસ રૂપમાં પણ જ્યારે તેમની વાણી બાદશાહ અકબરે\*

x જે લોકો આ આંતરી ગામને દક્ષિણમાં સતારા જિલ્લામાં આવેલું કહે છે તે સ્વયં ભ્રમિત છે. કેમકે નંદદાસજીની માફક ગોવિંદસ્વામીના કાવ્યોમાં કોઈપણ દક્ષિણી ભાષાનો શબ્દ જોવામાં આવતો નથી. વળી તેમની એટી અકેલીનું ‘આંતરી’ જવાનું લખેલું છે. તેથી પણ જ્ઞાત થાય છે કે તે વ્રજની નજીકમાં જ હોવું જોઈએ. કેટલાકે ગ્વાલિયર રાજ્યાન્તર્ગત છાવનીથી આવેલા સાત ગાઉ ઉપરના આંતરી ગામને આ આંતરી ગામ સાથે મેળવે છે તે પણ ઉપરનાં કારણથી અમને ઠીક લાગતું નથી.

\* ઘણી પ્રાચીન પ્રતિયોમાં આ સમયે અકબરનો ઉલ્લેખ — જોવામાં આવે છે. જ્યારે આ પ્રતિમાં કેવળ એક મ્લેચ્છ એમ લખ્યું છે. —સમ્પાદક.



ગુપ્તવેશે સાંભળી અને તેની સરાહના કરી ત્યારથી તેમણે તે રાગને સદાને માટે પ્રભુ સન્નિધાન નિવેદન ન કર્યો એવા તેઓ અનન્ય ટેકી હતા.

શરણે આવ્યા ત્યારે આ મહાનુભાવે ગુરુભેટરૂપે ‘શ્રીવલ્લભનંદનરૂપ અનૂપ’ એ પદ ગાઈ પોતાની સ્વરૂપાસકિતને પ્રકટ કરી. જેથી પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા.

તેમની ગાનવિદ્યાની નિપુણતા તો એથી સ્વયંસિદ્ધ છે કે—તે સમયના અકબરના દરબારના નવરત્નોમાંના સર્વોચ્ચ ગવૈયા તાનસેન પણ તેમની પાસેથી ગાન સાંભળવા અને શિખવા હરિદાસના શિષ્ય હોવા છતાં પ્રભુચરણના સેવક થયા.

સ્થલાભાવથી અત્રે સમગ્ર વાર્તાનું દિગ્દર્શન ન કરતાં ટુંકમાં એટલું જ કહેવું પર્યાપ્ત છે કે તેઓ એક નિઃશંક સખ્યભક્તિથી યુક્ત એવં નિરભિમાની મહાકવિ હતા. તેમની સખ્ય ભક્તિનો આદર્શનમૂનો રૂપાપોલિયાના પ્રસંગ ઉપરાંત શ્રીનાથજીના દાવ લઈને ભાગીજવાના સમયે કહેલા આપદમાં સ્પષ્ટ છે—

‘પોત લે આયો ભાજિ ગંવાર ।

ખોલિ કિંવાડ ધસ્યો ઘર મીતર સિખરૂ દયે લંગવાર ॥૧॥

કબહૂ તો નિકસેગો બાહિર ઇસી દડંગો માર ।

ગોવિંદસોં તૂ વૈર અબ કરિકે સુખે ન સોવે ચાર ’ ॥૨॥

ધન્ય છે આ પરમકાષ્ટાપન્ન સખ્ય ભક્તિને !

તેમનું પરલોકગમન અત્યદ્વલ્લભ રૂપે છે. તે સંબંધી ૧૨૦ વચનામૃતમાં એમ પ્રસિદ્ધ છે કે જ્યારે પ્રભુચરણ—(સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭મે) પૂજની શિલાના દ્વારથી લીલામાં પધાર્યા ત્યારે આ મહાકવિ પણ સદેહે સાથેજ લીલામાં ગયા.

ગોવિંદસ્વામીનાં ૨૫૨ પદ અદ્વલ્લભ છે. તેમનું ગિરિરાજમાં રહેવાનું એકાંતિક સ્થાન ‘કદમખંડી’ સુપ્રસિદ્ધ છે.



# ગોવિંદસ્વામીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ-વિ. સ. ૧૫૭૩ ભરતપુર રાજ્યાન્નર્ગત  
'આંતરી' ગામમાં.

જાતિ-સનાઢ્ય બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિ સમય-વિ. સં. ૧૫૯૨.

સ્થાયી નિવાસ-ગિરિરાજમાં કદમખંડી, ગોકુલમાં મહા-  
વનના ટીલા ઉપર.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય-ગ્વાલ.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ પૂજની  
શિલા આગળના દ્વારથી.

લીલાત્મક સ્વરૂપ-‘શ્રી હામા’ સખા એવં ‘લામા’ સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-નેત્ર.

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીદ્વારકાધીશ પ્રભુ.

શૃંગારાસક્તિ-ટિપારા

લીલાસક્તિ-આંખમિચૈની, હિંડોરા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી  
પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર\*

સંગ્રાહક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

\* મૂળ સાહિત્ય પદ્ધત્મક અંતમાં આપ્યું છે.



## ચત્રભુજદાસ.

( સં. ૧૯૮૭ થી સં. ૧૯૪૨ )

આ મહાકવિના જન્મની કથા જેવી અત્યદ્ભુત છે તેવીજ તેમની બાલ્યચેષ્ટા પણ. વાર્તાને અનુસાર કુંભનદાસની વૃદ્ધ વયે, આચાર્યશ્રી એવં શ્રીગોવર્દ્ધનધરના આશીર્વાદથી ચત્રભુજદાસનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૫૯૭માં જમનાવતામાં થયું હતું. તેઓ જન્મથી જ દિવ્ય શક્તિવાળા એક મહાનુભાવો ભક્ત-કવિ હતા.

જન્મથી એકતાલીસમા દિવસે જ નામ નિવેદન પ્રાપ્ત કરી તેમણે પ્રભુચરણ આગળ ગુરૂ ભેટ રૂપે 'સેવક કી સુખ-રાસ સદા શ્રીવલ્લભરાજકુમાર' એ માર્મિક પદ ગાયું.

યદ્યપિ ચત્રભુજદાસની ભક્તિ વિશેષતઃ સખ્ય પરિપૂર્ણ હતી તથાપિ સ્વગુરુ સન્મુખ તો તેઓ સંપૂર્ણ દાસ્ય ભાવને જ ધારણ કરતા હતા. તેઓ તેમના પિતા કુંભનદાસજીની માફક ભગવદનુગ્રહથી પણ વિશેષ ગુરુની મર્યાદાનેજ મહત્ત્વ આપતા હતા.

એમણે કુટકર પદોથી અતિરિક્ત અન્ય કેઈ અન્ય રચ્યો હોય એમ જણાતું નથી. તેમનાં કુટકર પદોના સંગ્રહ રૂપે, ચતુર્ભુજ કીર્તન સંગ્રહ, કીર્તનાવલી અને દાનલીલાના ત્રણ ગ્રંથો કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગમાં છે. તથાપિ એ સ્વતંત્ર ગ્રંથ ન કહેવાય.

'મધુમાલતી-કથા' અને 'ભક્તિ-પ્રતાપ' નામના બે ગ્રંથો કે જે કાશી નાગરી પ્રચારિણી સભાના સભ્યોદ્વારા એમના નામ ઉપર મૂકવામાં આવ્યા છે તે ઠીક નથી.

વાર્તાથી એ જ્ઞાત થાય છે કે સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ ના દિવસે સ્વગુરુ શ્રીવિકૃલેશ્વરના લીલાપ્રવેશ અનન્તર આ સ્વરૂપાસક્ત અનન્ય ભક્તે 'રૂઢકુંડ' ઉપર તેમના અલૌકિક વિરહમાં આમલીના વૃક્ષ નીચે દેહ છોડ્યો.



## યત્રભુજદાસનું ચરિત્ર—વિવરાણુ કેાળક—

જન્મ—વિ. સં. ૧૫૬૭ જમનાવતામાં.

જાતિ—ગોરવા ક્ષત્રિય.

શરણાગતિ સમય—વિ. સં. ૧૫૬૭.

સ્થાયી નિવાસ—જમનાવતા.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ભોગ.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ રુદ્રકુંડ

ઉપર આમલીના વૃક્ષ નીચે.

લીલાત્મક સ્વરૂપ—‘વિશાલ’ સખા એવં ‘વિમલા’ સખી.

ભગવદ્ગ સ્વરૂપ—ત્વચા

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ—શ્રીગોકુલનાથજી

શૃંગારાસક્તિ—દુમાલા.

લીલાસક્તિ—અન્નકૂટ લીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી

પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર\*

સંગ્રામકે—સમ્પાદકે વાર્તા—સાહિત્ય.

---

\* મૂળ સાહિત્ય પદાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.



# મહાકવિશિરોમણિ શ્રીનંદદાસજી

( સં. ૧૫૮૦ થી સં. ૧૬૪૦ )

આ મહાકવિનો ઇતિહાસ આજ સુધી હિન્દી સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં એક ‘સમસ્યા’ રૂપ હતો. જેથી આધુનિક અનેક લખ્ધપ્રતિષ્ઠ લેખકોએ પણ તેને પોતપોતાના ઉર્વર મસ્તિષ્કની યોજનાઓ દ્વારા રજૂ કરી ઇતિહાસમાં અરાજકતા ફેલાવી. પરિણામે અનેક મતભેદોએ હઠાચહનો આશ્રય લઈ, વાક્યુદ્ધ દ્વારા એક સાહિત્યિક ‘કલહ’ ઉત્પન્ન કર્યો. જે ‘કલહે’ પ્રાચીન પ્રામાણિક ગ્રંથો ને પણ ‘અછૂતા’ ન રાખ્યા.

કિંતુ ભકતેચ્છાપૂરક આચાર્યશ્રીના અનુગ્રહબળે અમારા પરમમિત્ર માનનીય સોરોંનિવાસી પં. ગોવિંદવલ્લભશાસ્ત્રી કાવ્ય-તીર્થનો તદ્દવિષયક પ્રયાસ સફળ થયો. અને પરિણામે અન્ય તટસ્થ વિક્ષાનો પણ તેમાં સહમત થયા.

આ રીતે વાગીશ પ્રભુની પ્રેરણાથી રૂપર વાર્તા ઉપર વિરોધ પક્ષે કરેલા સળસળ અને તીવ્ર પ્રહારનો નિર્મૂળ નાશ થયો.

પં. ગોવિંદવલ્લભશાસ્ત્રીએ અત્યધિક પરિશ્રમ કરીને વાર્તાને અનુસરતાં જે અકાટ્ય પ્રમાણો પ્રાપ્ત કર્યા તેમાંનાં કેટલાંક આ રહ્યાં—

સૂકરક્ષેત્ર માહાત્મ્ય—

ગણપતિ ગિરા ગિરીસ, ગિરજા ગંગા ગુરુ ચરન ।  
બન્દહું પુનિ જગદીસ, છવિ વરાહ મહિ ઉદ્ધરન ।  
બન્દહું તુલસીદાસ, પિતુ વડંબ્રાતા-પદજલજ ।  
જિન નિજ બુદ્ધિ વિલાસ, રામચરિત માનસ રખ્યો ।



सानुज श्रीनंददास, पितु की बन्दहुं चरन-रज ।  
 कीनो सुजस प्रकास, रास पंच अध्यायि भनि ।  
 बन्दहुं कृपानिकेत, पितु गुरु श्रीनरसिंह पद ।  
 बन्दहुं शिष्य समेत, वल्लभ आचारज सुषद ।  
 बन्दहुं कमला मात, बन्दहुं पद रतनावली ।  
 जासु-चरणजलजात, सुमिरि लहहिं तिय सुरथली ।  
 सुकुलवंस दुजमूल, पितरन पद सरसिज नमहुं ।  
 रहहिं सदा अनुकूल, कृष्णदास निज अंस गनि ।  
 महि वराह संवाद, सूकरक्षेत्र महात्म कर ।  
 हों धरि कर आह्लाद, कृष्णदास भाषा करहुं ।

अन्थनो अंतिम दोडो आ प्रक्षारे छे—

सोरह सौ सत्तर प्रमित, सम्बत् सित दल मांह,  
 कृष्णदास पूरन करयो, छेत्र महात्म वराह ।  
 तीरथवर सौकर निकट, गाम रामपुर वास ।  
 सोइ रामपुर श्यामपुर, करयो पिता नंददास ।

आ अन्थना अन्तमां 'कृष्णदास' पोतानी वंशावली

आ प्रमाणे आपे छे—

खेत वराह समीप सुचि गाम रामपुर एक ।  
 तहं पंडित मंडित वसत सुकुल वंश सविवेक ॥  
 पंडित नारायण सुकुल, तासु पुरुष परधान ।  
 धारयो सत्य सनाढ्य पद, व्है तपवेद निधान ॥  
 शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल, मे गुरु द्रोण समान ।  
 ब्रह्मरंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्वान ॥  
 तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्त पिता अनुहारि ।  
 पंडित श्रीधर शेषधर, सनक सनातन चारि ॥  
 भये सनातन देव सुत, पण्डित परमानंद ।  
 व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चिदानन्द ।



तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परवीन ।  
लघु सुत जीवाराम भे, पंडित घरम धुरीन ॥  
पुत्र आत्मारामके, पंडित तुलसीदास ।  
तिमि सुत जीवाराम के, नन्ददास चन्द्रहास ॥  
मथ २ वेद पुरान सब, काव्य शास्त्र इतिहास ।  
रामचरितमानस रच्यो, पंडित तुलसीदास ॥  
वल्लभकुल वल्लभ भये, तासु अनुज नन्ददास ।  
धरि वल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास ॥  
नन्ददास सुत हौं भयो, कृष्णदास मतिमन्द ।  
चन्द्रहास बुध सुत अहे, चिरजीवी ब्रजचन्द ॥

‘रत्नावली’ (चरित्र)

तवै मीत इक दई आस, गुरु नृसिंह के जाउ पास ।  
स्मारत वैष्णव सो पुनीत, अखिल वेद आगम अधीन ॥  
चक्र तीर्थ ढिंग पाठसाल, तहीं पढ़ावत विपुल बाल ।  
तहां रामपुर के सनाढ्य, सुकुल वंशधर द्वै गुनाढ्य ॥  
तुलसीदास और नन्ददास, पढ़त करत विद्याविलास ।  
एक पितामह पौत्र दोउ, चन्द्रहास लघु अपर सोउ ॥  
तुलसी आत्माराम पूत, उदर हुलासी के प्रसूत ।  
गये दोउ ते अमरलोक. दादी पोतहिं करि ससोक ॥

+

+

+

नन्ददास अरु चन्द्रहास, रहहिं रामपुर मातुपास ।  
दम्पति वसि वाराह धाम लहत मोद आठौंहु याम ॥

अन्थना अन्तमां ङवि आ प्रभाणे लभे छे—

एक पितामह सदन दोउ जनमे बुधि रासी ।  
दोऊ एकै गुरु नृसिंह बुध अन्तेवासी ॥  
तुलसीदास नन्ददास मते द्वै मुरलीधारे ।  
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे ॥



एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे ।  
एक रामगाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥

એક અન્ય પદ શોધમાં મળ્યું છે જે આ રહ્યું—

શ્રીમત્તુલસીદાસ સ્વગુરુ ભ્રાતા પદ વંદે ।  
શેષ સનાતન વિપુલ જ્ઞાન જિન પાદ અનંદે ॥  
રામચરિત જિન કીન તાપ ત્રય કલિ-મલહારી ।  
કરિ પોથી પર સહી આદરેડ આપ મુરારી ॥  
રાચી જિનકી ટેક મદનમોહન ધનુધારી ।  
વાલમીકિ અવતાર કહત જેહિ સંત પ્રચારી ।  
નંદદાસ કે હૃદય નયન કોં ચોલેડ સોઈ ।  
ઝજ્જલ રસ ટપકાય દિયો જાનત સબ કોઈ ॥

ઉપર્યુક્ત આપેલાં અકાટ્ય પ્રમાણોમાં ‘સૂરક્ષેત્રમહાત્મ્ય’  
સં. ૧૬૫૭માં આપણા ચરિત્રનાયક મહાનુભાવ નંદદાસજીના  
સુપુત્ર શ્રી કૃષ્ણદાસે રચેલો છે કે જેની પ્રમાણિકતા સર્વે  
વિદ્વાનોએ મુક્તકંઠે સ્વીકારી છે.

ઉક્ત દ્વિતીય ‘રત્નાવલી’ નામક ગ્રન્થ પં. મુરલીધર  
ચતુર્વેદી સોરોં નિવાસીએ સં. ૧૮૨૬ માં રચેલો છે.

આ બે ગ્રન્થોના પ્રમાણો માટે એક બે સમાલોચકોએ  
સંદિગ્ધતા પણ દેખાડી, તથાપિ પં. રામદત્ત ભારદ્વાજ એમ.  
એ. એલ-એલ-બી. ને હાલમાં કાસગંજના પંડા હરગોવિંદને  
ત્યાંથી ‘વર્ષતન્ત્ર’ અને ‘વર્ષફલ’ નામના જે બે જુદા જુદા  
ગ્રન્થો પ્રાપ્ત થયા છે તેનાથી ઉક્ત સમાલોચકોની સંદિગ્ધતા  
પૂર્ણ રૂપેણ નષ્ટ થાય છે. કેમકે આ જ્યોતિષ ગ્રન્થો એટલા તો  
ગહન છે કે આધુનિક લોકો તેને સહજમાં સમજી શકે તેમ



નથી. વળી તે સાહિત્યિક વિષય નહિ હોવાથી તેમાં કૃત્રિમ રચનાનો પણ આરોપ થઈ શકે તેમ નથી.

જો કે ‘વર્ષતન્ત્ર’ના રચયતા પણ કવિ કૃષ્ણદાસ છે છતાં તે સાહિત્ય અને ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ નિરર્થક છે. અતઃ ઉક્ત દ્વિતીય ગ્રન્થ—‘વર્ષફલ’—ની ઐતિહાસિક પંક્તિઓ જ અમે અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ—

દોહા-તાત અનુજ ચન્દ્રદાસ વુધવર નિદેસ હિય ધારિ ।

લિખ્યો જથામતિ વર્ષફલ, બાલવોધ સંચારિ ॥

કવિત્ત-કીરતિ કી સૂરતિ જહાં રાજે ભગીરથકી,

તીરથ વરાહ ભૂમિ વેદનુ જે ગાઈ હૈ ।

જાહી ધામ રામપુર સ્યામસર કીનોં તાત,

સ્યામાયન સ્યામપુર વાસ સુખદાઈ હૈ ॥

સુકુલ વિપ્રવંસ મે વિગ્ય તહાં જીવારામ,

તાસુ પુત્ર નન્દદાસ કીરતિ કવિ પાઈ હૈ ।

તા સુત હૌં કૃષ્ણદાસ ‘વર્ષફલ’ ભાષા રચ્યૌ,

ચૂક હોઈ સોધૈ મમ જાનિ લલુતાઈ હૈ ॥

સોરહ સૌ સત્તામનિ વિક્રમ કે માંઝ ભઈ,

અતિસય કોપ-દૃષ્ટિ વિશ્વ કે વિધાતા કી ।

વોતત આણઢ વાઢ લાઈ વઢિ દેવધુની,

બૂઢી જલ જન્મભૂમિ રત્નાવલિ માતાકી ॥

નારી નર બૂઢે કહ્યુ સેસ વડંભાગ રહે,

ચિન્હ મિટે વદરી કે દુલ્હન કથા તાકી ॥

આજુ નમ કૃષ્ણ માસ તેરસિ સનિ કૃષ્ણદાસ,

વર્ષફલ પૂર્યૌ મયો દયા વોધ દાતાકી ॥

ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થથી અતિરિક્ત એક ‘દોહારત્નાવલી’ નામક



અન્ય પણ ઉક્ત પં. શ્રી ગોવિંદવલ્લભ શાસ્ત્રીને પ્રાપ્ત થયે છે. તેમાં નંદદાસજી સંબંધી એક દોહો નિમ્ન પ્રકારનો છે—

‘મોહિ દોનો સંદેશ પિય અનુજ ‘નંદકે’ હાથ ।

રતન સમુજ્ઞિ જનિ પૃથક મોહિ જો સુમિરિત રઘુનાથ ’ ॥

ઉપર્યુક્ત દોહો રામાયણ કર્તા તુલસીદાસજીના ધર્મપત્ની કવિયત્રી શ્રીરતનાવલી રચિત છે.

આ ઉપરાંત પ્રાચીન વસ્તુઓની શોધ ખોળમાં શ્રીરામ-દત્ત ભારદ્વાજ એમ. એ. એલ. બી.ને બ્રમરગીતના ખંડિત જીર્ણ પત્રો કાસગંજના પુરોહિત અને વૈદ્ય હરગોવિંદ પશુડયાને ત્યાંથી પ્રાપ્ત થયાં છે—જે વાર્તાની પુષ્ટિ કરતા છે તે—આ પ્રમાણે છે—

પત્ર—૧ બ્રમરગીતસમ્પુરનમ્ વિ...ત નંદદાસ ભ્રાતા તુલસીદાસ કે સ્યામસ યાસી સોરોજી મધ્યે લિખિતં ક્રણદાસ સિષ્ય બાલક્રણ આજ્ઞાનુસાર ગુરુ ક્રણદાસ બેટા નંદદાસ નાતી જીવારામકે શુક્લ શ્યામપુરી સનાદય.....રદ્વાજ ગોતી સચ્ચિદાનંદ કે બેટા આતમારામ...કે બેટા રામાયણ કે કરતા તુલસીદાસ દૂજે...ટા નંદદાસ ચન્દ્રહાસ તિનકે બેટા ક્રણદ...ાસકે બેટા વ્રજચંદ પોથી લિખી માઘ...ોજ ચન્દ્રવાર સં. ૧૬૭૨ શુભમ્ ।

પત્ર—૨ અસ્પષ્ટ.

પત્ર—૩ ન કિયો સો યહ લીલા ગાઈ પાઈ રસ પુંજના વંદો તુલસીદાસ કે ચરના સાનુજ નંદદાસ દુઃખ હરના જિન પિતુ આતમારામ સુહાણે જિન સુત રામક્રણ જસ ગાણઃ  
દ્ર સુવન મમ ગુરુ પ્રવીના દાસ ક્રણ મમ નામ સોચીના ।  
શુક્લ સનાદય તેજ ગુણ રાસી ધર્મ ધુરીણ શ્યામ સ યાસી ॥



બાલક્રષ્ણ મેં ઊર કર દા(સા) (સૂ)કર ક્ષેત્ર જાન મમ વાસા...અ ॥  
માધુરી. વર્ષ ૧૮ સ્વર્ણ ૨ મર્દ, ૧૯૪૦

આ તમામ અકાટ્ય પ્રમાણોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે  
મહાનુભાવ નંદદાસજી રામાયણ રચયિતા શ્રીતુલસીદાસજીના  
કાકાના પુત્ર નાના ભાઈ હતા.

હવે જે ભક્તમાલનેા છંદ ટાંકી પ્રસિદ્ધ પંડિત  
રામચંદ્ર શુક્લે એમના ‘હિન્દી શબ્દ સાગર’ એવ  
‘ઈતિહાસ’માં વાર્તા ઉપર કટાક્ષ કર્યું છે તેને  
અમે ઉપર્યુક્ત પ્રમાણો સાથે સરખાવી વાર્તાની નિર્દોષતા  
સિદ્ધ કરવાને અર્થે અત્રે ઉદ્ધૃત કરિએ છીએ—

ભક્તમાલ—

શ્રીનંદદાસ આનન્દનિધિ, રસિક પ્રમુદિત રગ મગે । ટેક.  
લીલા પદ રસ રીતિ ગ્રન્થ રચના મેં નાગર ।  
સરસ ઉક્તિ જુત જુક્તિ ભક્તિ રસ ગાન ડજાગર ॥  
પ્રચુર પયધ લૌં સુજસ ‘રામપુર’ ગ્રામ નિવાસી ।  
સકલ સુકુલ સંબલિત ભક્ત પદ રેનુ ડપાસી ।  
ચન્દ્રહાસ અગ્રજ સુહૃદ પરમ પ્રેમ પય મેં પગે ॥ શ્રી નંદદાસ૦

આથી પાઠકો સહજ સમજી શકશે કે ‘વાર્તા’ એવ  
ભક્તમાલ પરસ્પર અવિરૂદ્ધ છે, અને વાર્તાની પ્રામાણિકતા  
વસ્તુતઃ અકાટ્ય છે.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન લખતાં ઉક્ત પ્રાપ્ત  
પ્રમાણોની સાથે વાર્તાની એકવાક્યતા કરી જનશ્રુતિના આધારે  
હવે અમે નંદદાસજીનો ઇતિહાસ આપીશું.



## નંદદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ

નંદદાસજીનો જન્મ અનુમાનતઃ સં. ૧૫૬૦ લગભગ સોરો નિકટના 'રામપુર' ગામમાં 'જીવારામ' સનાઢ્ય બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો. નંદદાસજીના પિતા જીવારામ સોરો નિવાસી તુલસીદાસજીના પિતા 'આતમારામ' ના સગા ભાઈ હતા. નંદદાસજીને એક નાના 'ચંદ્રહાસ' નામના પણ ભાઈ હતા. તુલસીદાસજી અને નંદદાસજી બન્નેનાં માતા પિતા તેમના બાલપણમાં જ ગત થઈ ગયેલાં હોવાથી તે બન્ને ભાઈઓ તેમની દાદીમાની પાસે સોરમમાં રહેતા હતા. જેથી તેઓ લોકમાં 'અનુજ' અને 'અગ્રજ' રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

તુલસીદાસજી અને નંદદાસજી બન્ને રામાનંદી પંડિત શ્રીનરહરિને ત્યાં વિદ્યાભ્યાસ કરી સંસ્કૃતના પ્રખર જ્ઞાતા થયા. અનંતર તુલસીદાસજી પ્રાયઃ કથાદ્વારા પોતાની આજીવિકા કરવા લાગ્યા. અને નંદદાસજી તેમની સાથે રહેતા. આ બન્ને ભાઈઓ રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા. સં. ૧૬૦૬ માં જ્યારે તુલસીદાસજી કથાને માટે નંદદાસજીને લઈને કાશી રહેતા હતા ત્યારે એક સંઘ ત્યાંથી યાત્રાર્થે નિકળ્યો. તેની સાથે નંદદાસજી પણ ચાલી નિકળ્યા. પ્રસંગોપાત રસ્તામાં સિંહનંદમાં તેઓ એક ક્ષત્રાણીથી આસક્ત થયા અને તેની પાછળ પાછળ ગોકુળ આવી શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરના સેવક થયા. એજ સમયે સેવક થતાં માત્ર નંદદાસજીના જીવને અદ્ભૂત પલટો ખાધો.

પછી તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની સાથે ગોવર્દન આવ્યા. અને ત્યાં લગવદ્ ઈચ્છાથી અષ્ટસખાની પૂર્તિ રૂપે અષ્ટ-છાપમાં સ્થપાયા.

આ સમયે શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે જ્યારે સંપ્રદાયના જ્ઞાનાર્થે સત્સંગ કરવાને નંદદાસજીને તેમની પ્રાર્થનાથી મહાનુભાવ શ્રીસૂરને સોંપ્યા ત્યારે શ્રીસૂરે-કે જે ત્રિકાલજ્ઞ હતા-નંદદાસજીને પ્રથમ રામભક્ત બાણી 'આવો નંદનંદનદાસ!' એ પ્રકારે સંબોધ્યા.



અનન્તર પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી શ્રીસૂરે તેમને પોતાની પાસે ચંદ્રસરોવર ઉપર છ માસ તક રાખ્યા. તે દરમિયાન પ્રથમ તેમના હૃદયમાં સર્વવિધ દૈન્યતા સ્થાપવાને માટે તેમણે નંદદાસજીને ‘અર્થ કરો પંડિત અરુ જ્ઞાની’ પદ રચીને સંભળાવ્યું. અને તે દ્વારા તેમનો હૃદયાન્તર્ગત વિદ્યામદ નિવૃત્ત કર્યો.

પશ્ચાત્ કાવ્યચિત્રો-કૂટપદો-દ્વારા તેમના હૃદયમાં શૃંગાર પરિપૂર્ણ કૃષ્ણને સ્થાપી, મર્યાદા રામભક્તિને દૂર કરી. આ કાવ્યોએ નંદદાસજીના હૃદયને કૃષ્ણાસક્ત કર્યું એટલું જ નહિ અપિતુ તેમનામાં રહેલી કાવ્ય-પ્રતિભાને શક્તિશાલી કરી. ક્ષણતઃ નંદદાસજીની રચના અનેક અલંકારોથી પરિપૂર્ણ શૃંગાર-મયી બની. અને તેમણે હિન્દી સાહિત્યક્ષેત્રમાં શ્રીસૂર પછી પોતાનું સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે એક પ્રકારે તેઓ કાવ્ય-ક્ષેત્રમાં શ્રીસૂરના શિષ્યવત્ થયા. સૂરદાસજીએ પણ તેમને માટે છ માસમાં સમગ્ર સાહિત્ય લહરીની રચના કરી અને તેની પૂર્તિ (વ્રજ) સં. ૧૬૦૭ના વૈશાખ સુદ ૩ ના દિવસે નિમ્ન પદ દ્વારા કરી—

‘ મુનિ<sup>૭</sup> પુનિ<sup>૮</sup> રસન<sup>૯</sup> કે રસ<sup>૬</sup> લેખ ।

દસન ગોરીનંદકો લિખિ સુબલ સંવત પેખ ।

નન્દનન્દન માસ છય તે હોન તૃતિયા વાર ॥

નન્દનન્દન જન્મ તે હૈં બાળ સુખ આગાર ।

તૃતિય ઋક્ષ સુકર્મ જોગ વિચારિ સૂર નવીન ।

નન્દનન્દનદાસ હિત સાહિત્યલહરી કીન । ’

આ પ્રકારે નંદદાસજી શૃંગાર રસ-પરિપૂર્ણ નંદનંદનના સ્વરૂપમાં આસક્ત થયા.

વાર્તાથી જ્ઞાત થાય છે કે આ અરસામાં તુલસીદાસજીએ નંદદાસ પ્રત્યેના મમત્વથી આકર્ષાઈ તેમને પુનઃ ઘર આવવાનો પત્ર લખ્યો. કિન્તુ તેઓએ તે પત્રની ઉપેક્ષા કરી.



અનન્તર પ્રસિદ્ધ જનશ્રુતિને અનુસાર સૂરદાસજીએ તેમને તેમનું લવિષ્ય કહી ઘર જવાને પ્રેર્યા. છતાં જ્યારે લવિષ્ય સાંભળીને પણ નંદદાસજીનું મન ઘર જવાને તૈયાર થયેલું ન જોયું ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને સ્પષ્ટ શબ્દોમાં નિમ્ન પ્રકારે કહ્યું—

જ્યાંસુધી તમે ઘર જઈને ગૃહસ્થાશ્રમમાં સ્થિત નહિ થાવ, તેમજ તમારે ત્યાં થનાર એક ભગવદીય પુત્રનું પ્રાકટ્ય નહિ થાય ત્યાં સુધી તમને ‘નંદનંદન’નો સાક્ષાત્કાર અને તેની ભક્તિનો આસ્વાદ કદી પણ પ્રાપ્ત નહિ થાય. કેમકે તમારા હૃદયનો વૈરાગ્ય સુદૃઢ નથી. અતઃ મારી આ વાણીનો સ્વીકાર કરી એકવાર તમે ગૃહસ્થાશ્રમ ભોગવો અને તે દરમ્યાન ત્યાં કૃષ્ણભક્તિનો પ્રચાર કરો.

સૂરદાસજીની આ વાણી શ્રવણ કરીને નંદદાસજી પોતાના ગામમાં ગયા અને ત્યાં સંવત ૧૬૧૨ લગભગ કમલા નામની કન્યા સાથે તેમનું લગ્ન થયું.

ત્યાંના નિવાસ દરમ્યાન તેઓએ ભાગવતની કથા દ્વારા લોકોને કૃષ્ણભક્તિમાં આસક્ત કર્યા. અને પોતાના પ્રભાવથી રામપુર ગામને ‘શ્યામપુર’ નામે પ્રસિદ્ધ કર્યું. અહીં તેમણે એક તલાવ પણ ખોદાવ્યું જેનું નામ તેમણે ‘શ્યામસર’ પાડ્યું.

૧. હાલપણ રામપુર ગામને સરકારી પત્રોમાં શ્યામપુર અથવા શ્યામસર એ નામથી જ લખવામાં આવે છે. આ રામપુર ગામ સોરમજીથી બે કોસ દૂર છે. યદ્યપિ નંદદાસજીના ગૃહસ્થાશ્રમ આદિની વાત વાર્તામાં નથી—કેમકે વાર્તામાં આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિનું જ પ્રાધાન્ય હોવાથી ભગવદ્ભક્તિમાં આવશ્યક હોય એટલો જ ભૌતિક અંશ પ્રત્યેકની વાર્તામાં આપેલો છે—તોપણ બાહ્ય પ્રમાણો એવં સમ્પ્રદાયમાં પ્રચલિત જનશ્રુતિના આધારે ઉક્ત વાતને પુષ્ટિ મળે છે.



અનન્તર તેમને ત્યાં એક પુત્ર ઉત્પન્ન થયો જેનું નામ તેમણે કૃષ્ણદાસ<sup>૨</sup> રાખ્યું. આ રીતે સૂરદાસજીની વાણી સફલ થયા આદિ સં. ૧૬૨૪ લગભગ તેઓ જ્યારે પુનઃ ગોકુલ આવ્યા ત્યારે તેમણે શ્રીગુંસાર્ધજીને હંડવત કરી ‘જયતિ રુક્મિણિનાથ પદ્માવતી પ્રાણપતિ’ એ પદ ગાયું.

અહીં સં. ૧૬૨૪ માં તુલસીદાસજી કાશીથી પોતાના ઘર સોરમજી આવ્યા. અને ત્યાં પોતાની સ્ત્રી ‘રતનાવલી’ને ‘બદરિયા’ ગામમાં તેના પિયર ગયેલી જાણી તેઓ પણ ત્યાં ગયા. અહીં સ્ત્રીના સાધારણ ઉપદેશથી તુલસીદાસજીને રામ પ્રતિ દઢભાવ ઉત્પન્ન થયો અને તેઓ રાત્રેજ ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા.

અનન્તર તેઓ કાશી ગયા અને ત્યાંથી ફરતા ફરતા સં. ૧૬૨૮ લગભગ વૃંદાવન આવ્યા. ત્યાં તમામ સ્થલે દર્શન કરી જ્યારે તેઓ ગોવર્દ્ધનમાં નંદદાસજીને મળવા ગયા ત્યારે તેમને ‘અંદ્રસરોવર’ ઉપર સૂરદાસજીનો સમાગમ થયો. અહીં ત્રિકાલજ્ઞ શ્રીસૂરે તેમના હૃદયમાં ઉછલિત રામ પ્રત્યેના અનન્ય ભાવને અનુભવી તેમને રામ અને કૃષ્ણની અભેદતાનાં દર્શન કરાવ્યાં.<sup>x</sup> અને તેમણે નંદદાસજી દ્વારા સાક્ષાત્ કૃષ્ણસ્વરૂપ કોટાનકોટિમન્મથ-મોહન પ્રભુ શ્રીનાથજીમાં સ્વયંષ્ટ શ્રીરામચન્દ્રજીનાં પ્રત્યક્ષ દર્શન કરવાનો આદેશ આપી તેમને ગોપાલપુર મોકલ્યા.

૨. નંદદાસજી પહેલાં રામભક્ત હતા એ વાત વાર્તાથી સિદ્ધ છે. એટલે પુત્રનું નામ કૃષ્ણદાસ હોવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની શરણે આવી કૃષ્ણ ભક્ત બન્યા પછી જ પાછા ઘર આવેલા હોવા જોઈએ. અને તેથીજ ગામનું નામ શ્યામસર અને પુત્રનું નામ કૃષ્ણદાસ રાખ્યું.

x આ સંબંધી વિશેષ જુઓ આજ ગ્રંથમાં આપેલો સૂરદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ પેજ ૧૩ થી ૧૫



અહીં તેમના મન્દિરમાં આવ્યા બાદ નન્દદાસજીની  
'કહા કહોં છવિ आजकी भले बने हो नाथ ।

तुलसी-मस्तक तब नमै, धनुष बाण लो हाथ ॥'

આ પ્રાર્થનાથી પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનધારીએ 'ધનુર્ધારી' રૂપે દર્શન આપ્યાં અને એજ રીતે ગોકુલમાં શ્રીગુસાંઈજીએ પણ નંદદાસજીની પ્રાર્થનાથી પંચમ પુત્ર શ્રીરઘુનાથજી-કે જેમનું લગ્ન જાનકી વડુજી સાથે હાલમાં જ થયું હતું-દ્વારા તેમને રામ એવં જાનકી સ્વરૂપે દર્શન કરાવરાવ્યાં. આથી તુલસીદાસજીનું હૃદય અત્યંત દ્રવિત થયું અને તેમણે શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરને પોતાને સેવક કરવાની પ્રાર્થના કરી + કિંતુ ઉદાર હૃદયના શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે તે પ્રાર્થનાનો અસ્વીકાર કરતાં સમજાવ્યું કે પુષ્ટિમાર્ગમાં તમારા જેવા અનન્ય અનેક ભક્તો છે, કિંતુ મર્યાદામાર્ગમાં તમારા જેવો અનન્ય ખીજો નથી અતઃ તમારી તે માર્ગમાં સ્થિતિ આવશ્યક છે.

+ આ સંબંધી 'સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ' માં નિમ્ન પ્રકારે છે.

'मुरली मुकुट दुरायके धनुष बाण गहि हाथ ।

रामभक्ति हिय जानि दढ, नाथ भये रघुनाथ ' ॥

करि प्रमाण गिरिधरनकों, आयजु विठ्ठल पास ।

शरण मंत्र की विनय किय, मुदितजु तुलसीदास ॥

विठ्ठलेश संतोषि मन, रामभक्ति पहिचान ।

पंचम सुत रघुनाथ ढिंग मेज दीन्ह नृप मान ! ॥

दरसन करि रघुनाथ के, करि प्रणाम नृप मान ! ।

भक्ति मांगि गृहकों गये तुलसीदास सुजान ॥ सं. क० पत्र ૭૩

આ પ્રસંગની પુષ્ટિ શ્રીદ્વારકેશજીએ પણ પોતાની 'ભાવભાવના'માં કરી છે. સં. ક. માં સં. ૧૬૨૮ ના ફાગણ સુદ ૧૧ ના દિવસે આ પ્રસંગ બનેલો છે. એમ લખ્યું છે. —સંપાદક



आ प्रसंगनो अनुभव करी तुलसीदासजीये राम अने  
कृष्णजी अलेख दीवानुं प्रभुचरण आगण निम्न पद द्वारा  
वर्णन कर्युं—

बरनो अवधि श्रीगोकुल ग्राम ।  
उत विराजत जानकीवर इतहिं स्यामास्याम ॥१॥  
उहां सरजू बहत अदभुत इहां श्रीजमुना नीर ।  
हरत कलिमल दोउ मूरत सकल जनकी पीर ॥२॥  
मनि जटित सिर क्रीट राजत संग लछमन बाल ।  
मोर मुकुट रु बन कर इहां निकट हलधर ग्वाल ॥  
उहां केवट सखा तारे बिहसिके रघुनाथ ।  
इहां नृग जडुनाथ तारयो कूप-गहि निज हाथ ॥४॥  
उहां सिवरो स्वर्ग दीनो सीलसागर राम ।  
इहां कुबजा ल्याय चंदन किये पूरन काम ॥५॥  
भक्तिहित श्रीरामकृष्ण सुधरयो नर अवतार ।  
दास तुलसी दोउ आसा कोउ उबारो पार ॥६॥

तुलसीदासजीनी आ असेदुबुद्धि जेठ प्रभुचरण अत्यंत  
प्रसन्न थया. अने तेमनी प्रार्थनाथी आपे तेमनी वाणीने  
श्रीनाथजीनी सन्मुख सदाने भाटे अप्रछापनी साथे स्वसंप्रदायमा  
गावाने तेमने अस्यवचन आयुं. डे ने आजपर्यंत आबु छे.

येथी प्रसन्न थय तुलसीदासजीये प्रभुचरण प्रति पोताने।  
लक्ष्मि-भाव अने कृतज्ञता प्रकट करवाने अर्थे आ पद गाथुं—

“ जे कहावत सेवक निजद्वारके ।  
धरो संवारि पन्हैया ताकी श्रीवल्लभ राजकुमारके ॥  
चरनोदक की करों लालसा मन वच क्रम अनुसारके ।  
तुलसी के सुख को बरनन करि कोन सके संसारके ॥”  
( कांकरोली स० भं० हि० बन्ध १ पु. सं. २ पत्र ९० )

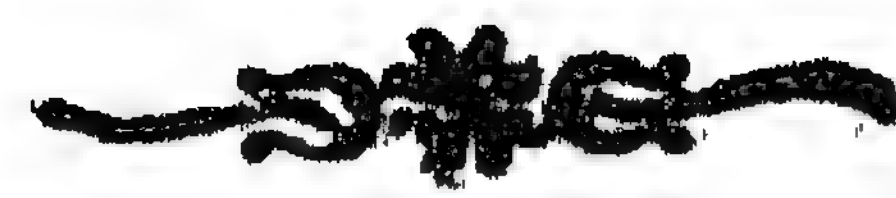


આ પ્રકારના વર્ણનથી પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા અને સુદૃઢ ભક્તિનો વર આપી તેમને વિદાય કર્યા. અનન્તર તુલસીદાસજીએ વ્રજમાં રહી ‘કૃષ્ણગીતાવલી’ ની રચનાની શરૂઆત કરી. તેમાં સૂરદાસજીનાં બાળલીલાનાં પદોના ભાવનો મુખ્ય આશ્રય લીધો. જે વાંચવાથી પાઠકોને તેનો (સૂરદાસજીની છાયાનો) પ્રત્યક્ષ અનુભવ થાય છે. અસ્તુ.

પશ્ચાત્ નન્દદાસજીએ શ્રીગોકુલમાં રહી શ્રીભાગવતને ભાષામાં કરી, કિન્તુ બ્રહ્મકલેશના કારણે પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી દશમસ્કન્ધના પ્રથમથી ભ્રમરગીત સુધીના અધ્યાયની ભાષા સિવાયની તમામ રચના શ્રીચમુનાજીમાં પધરાવી દીધી.

એ રીતે સં. ૧૬૩૯ સુધી નન્દદાસે ૬૬ વ્રજવાસ કરી પ્રભુચરણમાં પોતાની અનન્ય ભક્તિ સ્થાપી અને અનેક પદો રચ્યાં.

અંતમાં સં. ૧૫૪૦ લગભગ તેમને ગોવર્દ્ધન ગામમાં માનસીંગંગા ઉપર પીપળના વૃક્ષ નીચે અકબરના એક પ્રશ્ન ઉપર દેહ છોડ્યો. જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે





## નંદદાસજીનું ચરિત્ર—વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ—વિ.સં. ૧૫૬૦ (?) સોરો પાસેના 'રામપુર' ગામમાં

જાતિ—સનાતન્ય બ્રાહ્મણ પિતૃનામ—જીવારામ

શરણાગતિ—સમય—વિ.સં. ૧૬૦૬

સ્થાયી નિવાસ—ગોવર્દ્ધન, માનસીગંગા

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—શૃંગાર

અંત સમય—વિ.સં. ૧૬૪૦ માનસી ગંગા ઉપર પીપરના  
[ વૃક્ષ નીચે

લીલાત્મક સ્વરૂપ—'ભોજ' સખા એવં 'ચંદ્રરેખા' સખા

ભગવદ્ગ સ્વરૂપ—ઉદર

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપોસક્તિ—શ્રીગોકુલચંદ્રમાળ

શૃંગારાસક્તિ—ફેંટા

લીલાસક્તિ—કિશોરલીલા--રાસપંચાધ્યાયીની

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી  
પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર

સંગ્રાહક—સમ્પાદક વાર્તા—સાહિત્ય



## છીતસ્વામી આદિ પાછળના ચાર સખાઓની કાવ્ય-સુધા ઉપર એક દષ્ટિ—

જે પ્રકારે શ્રીસૂર આદિના પ્રથમ ચાર મહાકવિઓની સુધા સંપ્રદાયમાં જેટલી મહત્ત્વપૂર્ણ છે; એ પ્રકારે એટલીજ આ ચાર કવિઓની સુધા પણ છે. તથાપિ કાવ્ય એવં તત્ત્વ-દષ્ટિથી એમાં મૌલિક ભેદ રહેલો છે.

નંદદાસજીથી અતિરિક્ત આ અન્ય ત્રણ કવિઓની કાવ્ય ચમત્કૃતિ પ્રથમના ત્રણ કવિઓની અપેક્ષા સાધારણ હોવા છતાં તેમના સ્વરૂપ પરત્વેનાં પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન ક્રમશઃ અક્ષરશઃ સમાન ઝળકે છે. ફેર એટલોજ છે કે સૂર આદિનાં પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન ભાવપરત્વે છે. જ્યારે આ સ્વરૂપ પરત્વે છે.

નંદદાસજીની કાવ્ય ચમત્કૃતિ અહ્ભુત છે. તેમને માટે એ કહેવત પણ પ્રસિદ્ધ છે કે ‘ઔર સબ ગદિયા નંદદાસ જડિયા ।’ નંદદાસજી કાવ્યમાં સૂરદાસજીના શિષ્ય સમાન હોવાથી તેમનાં કાવ્યો અસાધારણ એવં મનોહર હોયજ એ સ્વાભાવિક છે.

વળી નંદદાસજીને સૂરદાસજીની માફક ભાવાત્મક સ્વરૂપની સાથે પ્રભુચરણે અનોસરમાં પ્રહસંબંધ કરાવ્યું છે એ પણ મર્મજોને માટે એક ખાસ સમજવાની વાત છે. —અસ્તુ.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન લખતાં ‘પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત-કવિ’ નામક ગ્રંથમાં સર્વેની કાવ્યસુધા ઉપર સમાવૈયાતના રૂપે વિસ્તૃત લખવામાં આવશે. —સમ્પાદક.



## अष्टछापना चरित्र-विवरणनो प्रमाण-संग्रह



नंददासजी—

कोन लई कोन दई इंडुरिया गोपाल मेरी,  
ग्वाल बाल सखन मांझ तुमही हसत हो ।

x

x

x

नंददास वसत वास ब्रजमें गिरिराज पास  
टेडो फटा आडवंद कोनपे कसत हो ?

श्रीहरिरायजी—

सूरदास शिरपाग बिराजे, कृष्णदास मुकुट मणि राजे ।  
ग्वालपगा परमानन्द आजै, कुम्भनदास कुल्हे शिरताजे ॥  
गोविंदस्वामी टिपारे साजे, चत्रभुजदास दुमाले गाजे ।  
फैंटा नन्द अनंगन लाजे, सेहरा छीत सधन समाजे ॥  
नित्य लीला भक्त हित काजे, दरशन अष्ट उपाधि भाजे ।  
कुम्भनदास महारस कंद, प्रेम भरे निज परमानन्द ॥  
छीतस्वामी गावे सब कोऊ, बांधे हरि गुण सूर बहु ।  
कृष्णदास जो पावन करे, चत्रभुजदास कीतन उच्चरे ॥  
नंददास सदा आनंद, गुण गावे स्वामी गोविन्द ।  
'रसिक' यही श्रवन राखे, श्रीवल्लभकी बानी मुख भाखे ।  
करि सेवा मन कीजे ध्यान, नितप्रति लीजे आठों नाम ॥

श्रीद्वारकेशजी—

छुप्पय—

सूरदास सो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो ।  
कृष्णदास सो कृष्ण, छीतस्वामी सुबल बखानो ॥  
अर्जुन कुम्भनदास, चत्रभुजदास विशाला ।  
नन्ददास सो भोज, स्वामी गोविंद श्रीदामा ।  
अष्टछाप आठों सखा, द्वारकेश परमान ।  
जिनके कृत गुनगान करि, होत सुजीवन थान ॥



श्रीमद्गुजी महाराज—

जो जन अष्टछाप गुन गावत ।

चित्त निरोध होत ताही क्षण हरिलीला दरसावत ।

सूर सूर जस हृदे प्रकाशत परमानंद बढ़ावत ।

छितस्वामी गोविंद जुगल बस, तन पुलकित जल आवत ॥

कुंभनदास चत्रभुजदास, गिरिलीला प्रकटावत ।

तरुण किशोर रसिक नंदनंदन, पूरन भाव जनावत ॥

नंददास कृष्णदास रास रस, उछलित अंग अंग नमावत ।

रसिकदास जन कहाँलों बरनों श्रीवल्लभ मन भावत ॥

गद्य संग्रह—

गद्यमां श्रीदुरिरायश्रये ने कंठ अष्टछापनु लैतिक, आध्यात्मिक अने आधि दैविक वर्णन दण्युं छे ते 'लावप्रकाश' मां आवेद्युं होवाथी अत्रे दण्यता नथी.

उपरांत 'निजवार्ता'मां सूरदासश्रये। जन्मसमय आ भाणु छे—

'सो सूरदासजी, जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुको प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है । सो श्रीआचार्यजी सां ये दिन दस छोटे हुते' ।

श्रीद्वारकेशश्रय गद्यमां आ प्रमाणे अष्टछाप संबंधी दण्ये छे. सुरदासश्रये। जन्म समयने। उद्देश्य—

'सो सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हुते । लीलामें उनको स्वरूप कृष्णसखा,—चंपकलता सखी श्रीजीके वाक् को स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण—सींहीगामके वासी' ।



श्रीद्वारकेशजी गोविंदस्वामीना आधिदैविक स्वरूपविषे  
आटलुं विशेष लभे छे-

‘ ये गोविंदस्वामी लीलामें श्रीठाकुरजीके अन्तरंग सखा  
‘श्रीदामा’ तिनको प्राकट्य हैं । सो श्रीदामा सखा श्रीस्वामि-  
नीजी को भाई है, तातें श्रीठाकुरजीकों अधिक प्रिय हैं । सो  
एक दिन खेलमें श्रीदामा श्रीठाकुरजीके कंधा उपर चढ़यो,  
सो श्रीस्वामीनीजीने देख्यो । तब श्रीस्वामिनीजीने उनकों  
शाप दियो जो भूमि ऊपर गिरो । उह समय श्रीजीने श्री-  
स्वामिनीजीसों कह्यो जो-ये तो मेरी मालारूप हैं । परि  
आपने नहीं मान्यो । ता पाछे ये आंतरी गाममें जन्मे और  
गोविंदस्वामीके नाम सों प्रसिद्ध भये । परि इनकों भगवन्मिलन  
की चाह बहोत तातें ये व्रजमें आये ’ x x x

नंददासजी संबंधी—

‘ ये नंददासजी लीलामें ‘भोज’ सखा अन्तरंग तिनको  
प्राकट्य हैं । सो दिवसकी लीलामें तो ये ‘भोज’ सखा हैं  
और रात्रिकी लीलामें श्रीचंद्रावली की सखी ‘चंद्ररेखा’ इनको  
नाम है । इनको मन शृङ्गार करिवे में और रूप सम्हारवे में  
बहोत, सो वे पूर्व में ‘रामपुर’ गाममें जन्मे ।

अे प्रकारे आठे सप्पाना स्वरूपने विचार लभ्ये छे  
ने श्रीहुरिरायजीना ‘लावप्रकाश’ने भणतो होवाथी अत्रे  
आपता नथी.

—सम्पादक





## કૃષ્ણસુધા ઉપર એક દષ્ટિ—

( અનુસંધાન પત્ર ૬૦ )



શ્રીકૃષ્ણદાસજીની સુધા મહાઅલૌકિક છે. સૂર, પરમાનંદ અને કુંભનની માફક તેમની વાણી પણ ભાવ પ્રાધાન્ય છે. એમની સુધામાં જે તન્મયતા ઝળહળે છે તેના પ્રત્યક્ષ પુરાવા રૂપે તેમને ‘મો-મન ગિરધર છવિ પર અટક્યો’ એ પદ દ્વારા એક સાધારણ વેશ્યાને પણ સદેક લીલામાં પહોંચાડી તે વિદ્યમાન છે.

જે પ્રકારે કુંભનદાસજીએ દાનલીલા દ્વારા શ્રીનાથજીને મથુરાલીલામાં નિમગ્ન કર્યા\* તે જ પ્રકારે કૃષ્ણદાસે પણ પોતાના સિદ્ધ નિસાધનાત્મક ભાવ દ્વારા સ્વવાણીમાં શ્રીનાથજીની સુધાને પ્રાપ્ત કરી સાહિત્યમાં એક નવીન કલ્પના-ક્ષેત્રનો અવિભાવ કર્યો તે કંઈ ઓછું મહત્ત્વનું નથી. તેમાંયે તેમનાં રાસલીલાવિષયક પદ તો એટલાં બધાં અનુપમ છે કે તેના ગાન દ્વારા મનુષ્ય સહજ ભગવત્તન્મયતાને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. એથી જ પ્રભુચરણે પણ તે પદોની મુક્ત કંઠે પ્રશંસા કરી છે. અતઃ કૃષ્ણસુધામાં ભાવસમ્પન્ન તન્મયતા-કે જે પ્રેમની પરાકાષ્ઠા છે તેની સિદ્ધિ રહેલી અનુભવાય છે.

કૃષ્ણદાસજીનું એક પ્રાચીન પદ-કે જે શ્રીગુસાંઈજી સાથેના તેમના અવાંચનીય પ્રસંગની પુષ્ટિ કરે છે તે, આ રહ્યું—

પરમ કૃપાલ શ્રીનંદ કે નંદન કરિ કૃપા મોહિ અપનો જાનિ કે । મેરે સવ અપરાધ નિવારે શ્રીવલ્લભ કી કાનિ માનિ કે । શ્રી જમુના જલપાન કરાયો કોટિન અઘ કટવાયે પ્રાન કે । પુષ્ટિ તુષ્ટિ મન નેમ યદી નિશ ‘કૃષ્ણદાસ’ ગિરિધરન આન કે ॥



\* આ સખંધી વિશેષ જુઓ વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિત્ર,



\* श्रीद्वारकेशो जयति \*

श्री द्वा० ग्र० माला का पुष्प १३

# प्राचीन वार्ता-रहस्य

## तृतीय भाग

—\*X\*—

श्री हरिरायजी कृत भाव प्रकाश, ( वृजभण्डा ) मूल  
वार्ता एवं प्रासंगिक ऐतिहासिक विवेचन  
( गुजराती ) तथा संस्कृत वार्ता

अथ माला सहित,

—:~:—

सम्पादक—

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

प्रकाशक—

श्री विद्या विभाग कांकरोली

वि० सं० २००४ ]

[ श्री बल्लभानन्द ४६६



प्रकाशक—  
पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद  
संचालक  
विद्याविभाग—कांकरोली

360114

---

प्रथमावृत्ति	}	श्री सर्वस्वत्प स्वाधीन	{	मूल्य
१०००		कृष्णजयन्ती २००४		१॥)

---

मुद्रकः—

श्री विट्ठलनाथ प्रेस कोटा



## दो शब्द

—:X:—

सं० १९६८ के बाद ( लगभग ५ वर्ष के उपरान्त ) आज पाठकों के सामने प्राचीन वार्ता रहस्य का यह तृतीय भाग बड़ा कठिनाइयों के साथ समुपस्थापित किया जा सका है । कठिनाइयों का दिग्दर्शन विज्ञ पाठकों को क्या कराया जाय ? उसका आपाततः परिज्ञान इसी से किया जा सकता है- कि सर्वविध चेष्टाएँ करते रहने पर भी- हम प्रेस, और कागज की अप्राप्यता वश अनेक अभिनव ग्रन्थों के साथ इस ग्रन्थ को भी प्रकाश में न लासके । इस ग्रन्थ के इस छोटे से खण्ड को छुपा ने में जब लगभग सार्ध वर्ष का लम्बा समय लगाना पड़ा कई प्रेसों का दरवाजा खटखटाना पड़ा और मुँह माँगा दाम देना पड़ा, तब ग्रन्थ ग्रन्थों के प्रकाशन की कथा तो दूरापास्त है । यह तो प्रकाशक का या प्रकाशनीय ग्रन्थ का अहोभाग्य कहिये-- जो श्री विट्ठलनाथ प्रेस कोटा के प्रबन्धक मित्रवर पं० श्री लक्ष्मणशास्त्री जी ने साम्प्रदायिकता के नाते इसे छुपा देना अंगीकार कर लिया और आई हुई उन विषमता-ओं को पार कर हमारे मनोरथ को पूरा कर दिया जिन्हें भुक्त भोगी हो जान सकता है । अस्तु कुछ भी हुआ हमारे प्रकाशन की शृंखलास्थित रह सकी और हम पुराने ग्राहकों के संमुख अपनी परवशता वश प्राप्त हुई अकर्मण्यता को दूर हटाने के लिये ' दोशब्द ' लिखने का साहस कर सके यह क्या कम सौभाग्य है । मुद्रण- साहित्य सामग्री की अनुपलब्धिरूप विभीषिका यदि भगवत्कृपा से शीघ्र ही अपगत होसकी तो इस



बिलम्ब का अच्छा उत्तर हम अगले समय में दे सकेंगे ऐसी आशा है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ जो द्वा. अ. माला के १३ वें पुष्पका तृतीय भाग है-- में प्रथम भाग की आठ वार्ताओं के आगे की ६ से १६ संख्या तक की " द३ वैष्णवों की वार्ताओं " की वार्ताएँ उपलब्ध साहित्य के साथ पूर्ववत् प्रकाशित की जा रही हैं-- केवल मात्र द्वि० भाग के समान गुजराती विभाग को साथ में अनुक्रम रूप में न दे कर पृथक् परिशिष्ट रूप में प्रकाशित करने की विशेषता को लेकर । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्तुत विभाग का सम्पादन पहिले के समान ही मित्रवर द्वारकादास जी पुरुषोत्तम दास जी परिस्र ने ही किया है-- मुझे तो प्रूफ देखने का भी अवसर अस्वास्थ्य के कारण अधिगत नहीं हो सका है-- यद्यपि किसी मानसिक उथल पुथल के कारण भीयुत परिस्र जी ने स्वतन्त्र प्रकाशक बनकर एक प्रकार से विद्या विभाग से अपना सम्बन्ध-विच्छेद\* प्रकाशित कर दिया है-- जो वाञ्छनीय नहीं है, फिर भी प्रस्तुत वार्ता साहित्य के प्रकाशन में संस्था के साथ उनका बिसम्बाद नहीं है फलस्वरूप श्री प्रभु ने चाहा तो सम्पूर्ण वार्ता सुन्दर रूप में एक साथ ही प्रकाशित हो जाने का अवसर शीघ्र ही आ सकेगा ।

स्वीकृत प्रणाली के अनुसार प्रस्तुत भाग में मूलवार्ताएँ, उनके साथ श्रीहरिरायजी-कृत भाव प्रकाश, परिशिष्ट में गुजराती-विवेचन- जिसे अपनी कोज पूर्ण, भावुकता परिमुन विद्वत्ता से ऐतिहासिक रूप में परिस्रजी ने प्रस्तुत किया है और मठेश श्रीनाथ देश कृत 'संस्कृत वार्ता मणिमाला' की

---

\* देखो नव प्रकाशित- 'हरिरायजी महाप्रभुनं जीवन चरित्र' भूमिका पत्र ३५



प्रासंगिक ८ वार्ताएँ उपस्थित की जा रही है। 'सं० बा० मणिमाला' की आदर्श प्रति विद्या विभाग के सरस्वती भंडार में अभी तक एक ही विद्यमान थी, जिसके आधार पर यथो-पलब्ध वार्ताएँ यथा मति संशोधित कर प्रकाशित की गई हैं। अब जब यह संस्कृत वार्ताएँ मुद्रित हो चुकी हैं— एक अन्य हस्त लिखित प्रति स्व० त्रिगृह श्री गोवर्धन लाला जी मथुरा के विशाल ग्रन्थ संग्रह के साथ प्राप्त हुई है। यह कहना अस्थाने न होगा कि स्वकीय विद्याप्रेम, एवं संग्रह प्रियता होने के कारण विद्याविभागाध्यक्ष, शु. सं० तृतीय पीठाधीश्वर गो० श्री १०८ ब्रजभूषण लाल जी महाराज ने जिस तत्परता से यह अमूल्य ग्रन्थ संग्रह उनके एक मात्र स्वर्गीय पुत्र श्री बलदेव लाला जी 'प्रेमकवि' की पतिवियोग विह्वलापत्नी के स्वत्व का पूर्ण संरक्षण करते हुये स्वकीय विद्याविभाग के लिये प्राप्त कर लिया है। अन्यथा शु० सम्प्रदाय के एक अन्यतम विद्वान का यह अनुपम ग्रन्थ संग्रह अन्य ग्रन्थ संग्रहों की भाँति न जाने किस दिशा का पथिक बन जाता ? कुछ कहा नहीं जा सकता। अवसर पर चूक जाने की साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों ने कुछ पैसों के लोभ में पडकर न जाने कितने ऐसे अक्षय, अमूल्य, अनुपम एवं अनन्त ग्रन्थ भंडारों को हस्तान्तरित कर कहाँ का कहाँ पहुँचा दिया है और इस प्रकार शु० सा० साहित्य की जो दुरवस्था की है वह अकथनीय होते हुये भी लाज्यनीय है। वास्तव में इस प्राप्त संग्रह को देखने वाला विद्वान् व्यक्ति महाराज श्री की गुणवृत्ति की भूरि २ प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता अस्तु।

मठेश श्री माध देव के सरबन्ध में कुछ विशेष वृत्त ( प्र० भाग की अपेक्षा ) प्राप्त नहीं हुआ है जो हुआ है वह



प्रामाणिक रूप में पुष्ट हो जाने पर किसी अन्य स्थल पर प्रकाशित किया जायगा ।

प्रेस की दूरी, स्वास्थ्य का अभाव और अन्य कई ऊँच जतूल आपत्तियों के कारण प्रस्तुत भाग को आकर्षण नहीं बनाया जा सका है—जिसके लिये मानसिक परिताप है और तो और प्रूफ संशोधन भी अपेक्षाकृत ठीक नहीं हो पाया है । फिर भी युद्धजन्य प्रकाशन के अभाव में यत्किञ्चित् सामग्री लेकर हम पाठकों के सम्मुख उपस्थित होने का साहस कर रहे हैं । यदि अनुकूलता मिल गई जैसा कि निश्चय और विश्वास है तो सम्पूर्ण वार्ताएँ एक ही ग्रन्थ के रूप में उक्त साहित्य के साथ प्रकाशित की जायगी तब हम पाठकों से त्रुटियों के लिये क्षमा याचना करेंगे । ऐसी सदाशा है ।

ॐ शान्तिः ३

निवेदकः—

पो० कण्ठमणि शास्त्री

श्री कृष्ण जयन्ती

सं० २००४

संचालक

विद्या विभाग

काँकरोली





ગો. શ્રી વ્રજમૂપનાત્મજ

ત્રિ. શ્રી ગિરિધરગોપાલ

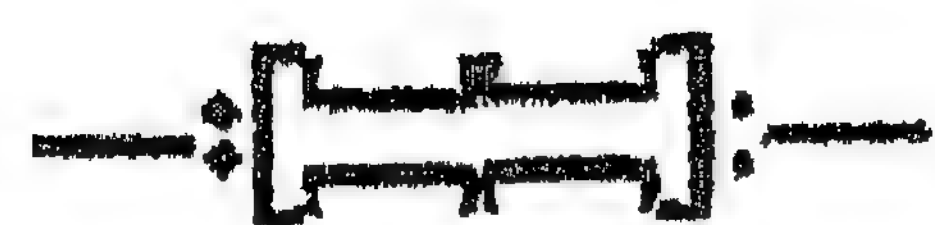
સરૈયા ઇન્ટર પ્રીન્ટરો, અમદાવાદ.



# विषयानुक्रमिका

( क ) ब्रजभाषा—

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
६	सेठ पुरुषोत्तम दास क्षत्री की वार्ता ....	१
१०	” ” की बेटी रुक्मिणी की वार्ता	१६
११	” ” के बेटा गोपाळदास की वार्ता	२४
१२	रामदास सारस्वत ब्राह्मण ” ”	२६
१३	मदाधरदास कपिल सारस्वत ” ”	३५
१४	बेणीदास माधवदास दो भाई की वार्ता....	४६
१५	हरिबंश बाठक सारस्वत ....	५४
१६	गोविन्ददास भल्ला की वार्ता ....	५८





## (ख) गुजराती विवेचन—

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
६	सेठ पुरुषोत्तमदास क्षत्री ....	१
१०	„ „ कौ बेटी रुक्मिणी ....	१-२०
	} तथा अन्तिम पृष्ठ	
११	„ „ के बेटा गोपालदास } ....	१-३
१२	रामदास सारस्वत ब्राह्मण ....	२०
१३	गदाधरदास कपिल सारस्वत ....	२४
१४	माधवदास ... ..	३०
१५	हरिवंश पाठक ... ..	३३
१६	गोविन्ददास भट्टा ... ..	३४



## (ग) संस्कृत वार्ता माणिमाला

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
६	अष्टि पुरुषोत्तम दासस्य वार्ता... ....	१
१०	पुरुषोत्तमदासस्य दक्षिण देशस्थ विप्रस्य च वार्ता	३
११	सेवकद्वयस्यमन्दारमेरोरूपरिघटिता वार्ता	७
१२	पुरुषोत्तमदासस्य पुत्र्याः वार्ता.... ...	१०
१३	सारस्वत ब्राह्मण रामदासस्य वार्ता ....	१४
१५	गदाधरदास सारस्वत ब्राह्मण कड़ा मानिकपुर	२०
१६	बेणोदास माधवदासक्षत्रियस्य वार्ता ....	२३
१७	अम्बाखन्नाणी कड़ा मानिकपुर ....	२६
१८	सारस्वत ब्राह्मण हरिवंशस्य वार्ता ...	२६
	गोविन्ददासभट्टा क्षत्री शानेश्वरस्य वार्ता	३१

—:[~::~~::~~::]:—



# विद्याविभाग कांकरोली

की

श्री का० प्र० माला द्वारा प्रकाशित और प्राप्य ग्रन्थ

सं०	नाम	मूल्य
१	बुरहानपुर आर्य समाज शास्त्रार्थ (हिन्दी)	।)
२	पुष्टि मार्गीय वैष्णवान्हिक (गुजराती)	=)।
३	मङ्गलमणि माला—१३ गुच्छ (संस्कृत हिन्दी) प्र०	=)
४	कविता कुसुमाकर प्र० भाग ( , , )	॥)
५	साम्प्रदायिक ग्रन्थ सूची (हिन्दी)	।)
६	सम्प्रदाय प्रदीप सजिह्द (संस्कृत हिन्दी)	२॥)
७	रसिक रसाल (हिन्दी)	१॥)
८	कांकरोली (एकत्र चारों भाग सचित्र-हिन्दी)	५)
९	प्राचीन वार्ता रहस्य प्र० भाग (हि० गु०)	१।)
१०	कांकरोली दिग्दर्शन (गुजराती)	
११	ध्यान मन्जूषा (हिन्दी)	।)
१२	श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्ता (हि.गु.) श्रीवल्लभ वंशावली (हिन्दी)	} २)



१३ जगतानन्द	(हिन्दी)	१॥॥)
१४ पुष्टिमार्ग	(गुजराती)	१।)
१५ अनन्याश्रय अने असमर्पित तत्त्वज्ञान	„	।)
१६ श्री हरिरायजी महाप्रभुजीनूँ जीवन चरित्र	„	२)
१७ गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह	„	॥)
१८ समस्या पूर्ति— तीन भाग हिन्दी	॥) ।।) ॥॥)	
१९ समस्या कुसुमाकर प्र० द्वि० कुसुम	=) ≡)	
२० घनाक्षरी नियम रत्नाकर		।)
२१ सङ्गीत विश्व दर्शन		≡)
२२ कन्या शिक्षण		।)
२३ विद्या विभाग कांकरोखी		।)
२४ गो० श्री वृजभूषणलालजी महाराज का चित्र		=)



## प्राचीन वार्ता-रहस्य

### तृतीय भाग

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तम-  
दास कासी में रहते, तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं ।

—:~:—

सेठ पुरुषोत्तमदास को दामोदरदास संभरवारे को  
संग है । जब ताँबे को पत्र बचाइवे को कासी  
श्रीहरिरायजी गए ता दिनतें सेठको श्रीआचार्यजी के  
कृत दरसन की आरति भई । सो श्रीआचार्यजी  
भाव प्रकाश पहली पृथ्वी बरिक्रमा करि कासी पधारे तब  
सेठ ने मनिकर्निका घाट पर श्रीआचार्यजी  
के दरसन पाये । सो कृष्णदास सो पृच्छे:- श्रीआचार्यजी  
दक्षिण देस में कृष्णदेव राजा की सभा में मायावाद- खंडन  
किये हैं, सोई हैं ? तब कृष्णदास मेघन ने कही एही हैं । तब  
सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीआचार्यजी के सन्मुख जाइ दंडोत  
किए, बिनती करी । महाराज ! कृपा करके सरन लीजे । कृपा  
करि घर पावन करिए । तब श्रीआचार्यजी दैन्यता देखि सेठ  
पुरुषोत्तमदास के घर पधारे । सेठको, सेठकी बेटी रुक्मिणी  
को, सेठके बेटा गोपालदास आदि सबको नाम सुनाए  
ब्रह्मसंबंध कराए । तब सेठने बिनती करी, महाराज ! अब  
हमको कहा कर्तव्य है ? तब श्रीआचार्यजी कहे, भगवत्



सेवा पुष्टिमार्ग की रीतियों करो । सो सेठ के घर श्रीमदन-  
मोहन जी ठाकुर होते ।

पास हजार दस पन्द्रह हजार रुपैया हतो सो घर बनाए । सो नींव में तें श्रीमदनमोहनजी ठाकुर निकसें । और द्रव्य बहुत निकस्यो, करोड़धुजीकहाए । साठ करोड़ द्रव्य पाये । सो पिता कछुक दिन श्रीमदनमोहनजी की पूजा करि देह छोड़े । बीछे सेठने पूजा बहोत दिन लों करी, द्रव्य बहोत कमाए । सो श्रीमदनमोहनजी को श्रीआचार्यजी ने पंचामृत स्नान कराइ पाट बैठाये, सेठ के माथे पधराए ।

सो सेठ पुरुषोत्तमदास लीला में श्रीस्वामिनीजी की सखीहैं । इंदुलेखा इनको नाम है और सेठकी सेठ का आधिदैविक बेटी रुकमिनी इन्दुलेखा की सखी मोदनी स्वरूप नाम है । और गोपालदास सेठ को बेठा, सो इंदुलेखा की सखी गानकला है । सो सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीमदनमोहनजी की राजसेवा करते । बावन बीड़ी कौ नेग हतो । याकौ कारन यह हैः-- जो लीला में बीड़ा अरोगाहवे की सेवा इंदुलेखा की है । तातें पुरुषोत्तमदास ने बावन बीड़ा राखे, जो श्रीठाकुरजी के भावतें बीस और बत्तीसबीड़ा श्रीस्वामिनीजी के भावतें । याकौ आसय यह जो श्रीठाकुरजी कों विस्वास प्रिय है । तातें बीसों विस्वा मिश्र-यात्मक हठ विश्वास जताहवे कों बीस बीड़ा श्रीठाकुरजी के भावतें । श्रीस्वामिनीजी कों शृंगार प्रिय है, तातें जुगल रूप के सिंगार सोरह दूने बत्तीस भये । याप्रकार श्रीस्वामिनीजीकों प्रसन्न किए । या प्रकार कहि ( यह जताए जो ) जितनी सेवा सेठ पुरुषोत्तमदास करते, सो भावपूर्वक करते । सामग्री वस्त्र आभूषण ह में ।



और मदनमोहनजी की सेवा श्रीठाकुरजी के भावतें अधिक श्रीआचार्यजी महाप्रभु के भावतें करते तातें श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइकें श्रीमदनमोहनजी के दोऊ चरण स्याम दरसन कराए । ताकौ आसय यह जो- सर्वाङ्ग गौर, सो तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कौ निजस्वरूप-श्रीस्वामिनीजी कौ श्रीअंगवर्ण । और चरण दोऊ स्याम, सो श्रीकृष्ण के श्रीअंगवर्ण । तामें चरण स्याम कौ अभिप्राय निकुंजादिक लीला में श्रीठाकुरजी दूसरे स्वरूप ( श्रीस्वामिनीजी ) के चरण—आश्रित हैं । तातें श्रीठाकुरजी के भावतें श्रीआचार्यजी की सेवा दिखाए । या प्रकार सेठ पुरुषोत्तमदास पर अनुग्रह श्रीआचार्यजी किए ।

सो श्रीमदनमोहनजी कों श्रीआचार्यजी ने पंचामृत स्नान कराइ पाट बैठारे, सेठ के माथें पधराए ॥

वार्ता प्रसंग-१- और सेठ कासी मुख्य विस्वेस्वर महादेव, सो कासी के राजाहैं, तिनके दरसन कों कबहु नहि जाते । सो एक दिन विस्वेस्वर-महादेव ने स्वप्न में सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो- गांव कौ नातो तुम नाहि राखत, तो वैष्णव कौ नातो तो राखो, कबहुं हम कों महाप्रसाद तो दियो करो । तब सबेरे सेठ पुरुषोत्तमदास सेवा सों पहोंचिकें महाप्रसाद कौ डबरा बीरा ले विस्वेस्वर महादेव के देवालय कों चले । तब गाँउ के लोग सब आश्चर्य हे रहे जो-- सेठ कबहुं नाहि आवते सो आजु क्यों आए ? सो कितने लोग संग सेठ के चले । सो सेठ महाप्रसाद कौ डबरा, बीड़ा चारि धरे, श्रीकृष्ण-स्मरण करिके उठि चले । तब बड़े बड़े सैव आवाण होते



सो सेठ पुरुषोत्तमदास सों कहे, तुम दंडवत् नमस्कार नाहिं किए ? श्रीकृष्णस्मरण करि उठि चले सो उचित नांही । तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही, हमारे इन के भगवत्-स्मरण को ब्यौहार है । तुम पूछि लीजो । तुम सों विस्वेस्वर महादेव-जी कहेंगे ।

सो उन ब्राह्मणन में एक ब्राह्मण महादेवजी कौ कृपापात्र हतो । सो उन ब्राह्मण सों महादेवजी ने कही । जो- हमने सेठ सों महाप्रसाद मांग्यो हतो । हमारे इनके भगवत्-स्मरण कौ ब्यौहार ही है । ताते इन सों और कछु मति कहियो । ता पाछे बड़े उत्सव के पाछे महाप्रसाद विस्वेस्वर महादेव कों ले जाते ।

भाव प्रकाश- वह कहिवे कौ अभिप्राय यह जो- सेठ पुरुषोत्तमदास अब सेवक भए तब इनकी आज्ञा में सिंगरे लोग द्रव्य अर्थ रहें । सो महादेवजी ने जाने जो अब सिंगरे अनन्य होंइगें । तो हमारी महात्म हूं घटि जायगो, और भगवद् आज्ञा कलिकाल आयो, सो जीवन कों बहिर्मुख करने हैं ।\* और सेठ पुरुषोत्तमदास ने भक्ति फैलाई सो इनसों तो कछु चले नांही । तब महादेवजी ने यह उपाइ कियो, जो- सेठजी

---

\*“ त्वञ्च रुद्र ! महा बाहो ! मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।

पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुर सत्तम ? । ”

एसे पुराणादि में कहे हुए अनेक वाक्य अत्र स्मरणीय हैं ।

सम्पादक



तो महाप्रसाद दें जाँइ, ता करि सिगरे लोग महादेवजीके देवालय जान लागे । जो कोउ बरजे तो उत्तर करें- सेठजी खरिखे जात हैं तो हमारी कहा ? महादेवजी बड़े भगवदीय हैं । या प्रकार जीव बहिर्मुख भए । परन्तु यह न जाने जो- सेठकों आशा भई सो गए, परन्तु रुकमिनी गोपालदास कबहूँ नाँहि गए, हम कैसे जाँइ ! परन्तु सबकों उत्तम फल नाँहि देनो है । तारें सेठ पुरुषोत्तमदास हू गए ।

वार्ता प्रसंग- २- आर एक दिन विश्वेश्वर महादेवजी ने कालभैरव को, कोतवाल कासीके होते तिनसों- कहा, जो- सेठ पुरुषोत्तमदास वैष्णव के घरतें अर्द्धरात्रिकों आवत हैं अबेरे सेवेरे, सो सेठ पुरुषोत्तमदास के घर की चौकी दीजो । कोई छलवा, चोरादिक उपद्रव न करे । तब कालभैरव नित्य सेठ पुरुषोत्तमदास के घर की चौकी पहरा देते ।

सो एक दिन वैष्णव के घरतें अर्द्धरात्रि समें सेठ पुरुषोत्तमदास आवत है । सो घरके द्वार ऊपर तब काहुको देख्यो पार्छे फिरिकें देखें तब पूछे जो-तू कौन है ? तब कालभैरवने कहे जो मौकों महादेवजी ने तिहारे घर की चौकी पहरा देवे की कही है , सो नित्य चौकी देत हों । तब सेठ पुरुषोत्तमदास बोले नाँही किंवार दै घर में आए ।

भाव प्रकाश- यह कहि कै यह जताए जो- सेठ एसे कृपापात्र भगवदीय हते । परन्तु वैष्णव के संग अर्थ आयु



चलाइ के जाते । तातें वैष्णव कौ संग अवश्य करनों । कहे तें श्रीआचार्यजी लिखे हैं “ पोषकाभावे तु शिथिलम् ” ( अर्थात् ) पोषक कौ अभाव होई तब मन स्थिर न रहे जाइ, भक्ति घटि जाइ । सो पोषण सत्संग तें होइ ।

और कालभैरव कों महादेवजी राखे सो यातें, जो-कासी में भूत छुलावा बहोत, तथा चोरादिक । सो महादेवजी विचारे जो-मोकों भगवान् ने कासी कौ राज दिखो है, जातें या गांव में अन्याय होइ सो मेरे मार्यें । तातें भगवदीय कौ कछू बिगार होइ तो भगवान् मोपर अग्रसन्न होइ जाई । और सेठजी हमकों महाप्रसाद ( हृ ) कृपा करिकें दिए, हमारों तो कछू लेत नाहीं । तातें इदनी चौकसी\* तो करी चाहिए । तातें कालभैरव सों चौकी पहरा कौ कहे । ( सो यातें ) जो कदाचित् कछू बिगार हु होइ तो दंड कालभैरव के मार्यें । तातें आपु नाँही दिए ।

वार्ता प्रसंग- २- और एक दखिन देस कौ ब्राह्मण कासी में आयो सो सैदी महादेवजी कौ कृपापात्र हतो । जब महादेवजी दरसन दें तब वह ब्राह्मण खान-पान करै । सो एसें करत जन्माष्टमी कौ उत्सव आयो ।

सो सेठ पुरुषोत्तमदास बड़े मंडान सों जन्माष्टमी कौ उत्सव करते । सो महादेवजी जन्माष्टमी के दिन सेठ पुरुषोत्तमदास के घर आए । सो नौमी कों नंदमहोत्सव पाछें दुपहर

---

\* आग्र्य ग्रंथों में “चाकरी” शब्द भी है— सम्पादक



कों आए । तब ब्राह्मण कों दरसन भयो । तब वह ब्राह्मण ने विस्वेस्वर महादेवजी सों पूछे, जो- कालि तिहारो दरसन नांदि भयो । आजु दुपहर कों भयो, ताकौ कारन कहा ? तब महादेवजी ने कहा- मैं जन्माष्टमी कौ उत्सव देखन कों ( सेठ के घर ) गयो हो, कालिह सवारे तें । सो आजु आयो । तब वह ब्राह्मण ने कही, जो- ऐसे सेठ कौन हैं ? जिनके घर तुम उत्सव देखन जात हो । तब विश्वेश्वर महादेवजी ने कही, जो- वे बड़े भगवद्भक्त हैं, हम सों श्रेष्ठ हैं ।

भाव प्रकाश- ताकौ यह अर्थ जो- सेठ पुष्टिमार्गीय भगवद्भक्त हैं, हम मर्यादामार्गीय हैं ।

तब ब्राह्मण ने कहा, जो- ऐसे भगवद्भक्त हम हूं को करो । महादेवजी ने कहा, सेठ पुरुषोत्तमदास के सेवक जाइ के होउ । वे नाम सुनावत है, उनकों श्रीआचार्यजी की आज्ञा है । तब वह ब्राह्मण ने कही, जो तुमहीं नाम सुनावो । तब महादेवजी ने कही, जो- हमारो दियो नाम फलेगो नांही ।

भाव प्रकाश- ताकौ अर्थ यह हमारो नाम दिए- मर्यादाभक्ति कौ अधिकारी होइगो । तातें पुष्टिमार्ग कौ अधिकार उनहीं कों है ।

तब वह ब्राह्मण सेठ पुरुषोत्तमदास के द्वार पर आइ सेठकों खबर कराई । तब मनुष्यन ने कही, एक ब्राह्मण



तुमसों मिलन आयो है । तब सेठने कही जो- माथो खाली करन आयो होइगो ।

भाव प्रकाश- याकौ अर्थ यह जो- महादेवजी की भक्त है, नाम सुनेगो, परन्तु दृढ़ भक्ति बहुत दिन लों पचेंगे तब होइगी ।

पाछें सेठ सेवा तें पहुँचिके बाहिर आए । तब वह ब्राह्मण नें दंडवत् कियो । तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही- तुम यह अनुचित क्यों करत हो ? हम क्षत्रिय हैं, तुम ब्राह्मण होइके दंडवत् करत हो ? तब उह ब्राह्मण नें कही, जो हमको नाम देहु, सेवक करो । तब सेठने कही हमतो काहू को नाम देत नाहीं । सेवक नाहिं करत ।

भाव प्रकाश- ताकौ अर्थ यह नाम देवे बारे सेवक करवेबारे तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु हैं । यह बात तो वह ब्राह्मण समुझयो नाहि ।

तब बहोत आग्रह किए परन्तु सेठ ने नाम नाहि दियो । तब महादेवजी पास फिर आयो । कह्यो- सेठतो नाम नाहि देत । तब विश्वेश्वर महादेव ने कह्यो, जो- तू फेरि जाइके सेठजी सों कहियो जो मोकों महादेवजी ने पठायो है । जो अबके नाहिं फेरेंगे । तब वह ब्राह्मण फेरि आइके सेठजी सों कहीं जो- मोकों महादेवजी ने पठायो है सो नाम देउ ।



भावप्रकाश- ताको यह अर्थ जो जीव पुष्टिमार्ग को है । तार्ते नाम देऊ ।

तब सेठ ने उह ब्राह्मण को नाम सुनाय हाथ जोरिकें जैश्रीकृष्ण कियो । तब वह ब्राह्मण ने कह्यो तुम मोको नाम सुनाए, अब हाथ जोरिकें नमस्कार क्यों करत हो ? तब सेठ ने कही हम श्रीआचार्यजी की आज्ञार्ते नाम देत हैं । हमारे तिहारे गुरु श्रीआचार्यजी महाप्रभु हैं । जब श्रीआचार्यजी महाप्रभु पधारें तब उनके पास फेरि नाम सुनियो । हमारे तिहारे भगवत् स्मरण को न्यौदार भयो । पाछें वह ब्राह्मण अढ़ेल में जाइ श्रीआचार्यजी के पास नाम निवेदन पाए । तब वह कछूक दिन रहि दक्षिन देस गयो । वैष्णव भयो ।

भावप्रकाश- यह वार्ता में यह संदेह है जो महादेवजी जन्माष्टमी को उत्सव देखन सेठ पास आए । सो श्रीआचार्यजी संबंधी लीला सो गोपालदास गाए हैं- 'यह मारग श्रीवल्लभ-वरनो- जहाँ नहि प्रवेस विधि हरनो' ।

यहाँ यह भाव जाननो जो सेठ के घर सारस्वत कल्प को पूर्णवितार की लीला है । तहाँ सगरी लीला है । सो महादेवजी को कल्पतरु की लीला, सो अंसकला है, ताको प्रनुभव भयो । यह कहि यह जताए जो श्रीआचार्यजी के शिष्य हैं तहाँ पुष्टिमार्गीय वैष्णव को पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप को दरसन होइ । अन्यमार्गी को एस दरसन न होई ।

महादेवजी उह ब्राह्मण से कह्यो जो सेठके सेवक होउ । तब पुष्टिमार्ग में अंगीकार होइगो ।



वार्ता प्रसंग ४— और सेठ पुरुषोत्तमदास एक दिन मंदिर में बैठे थे, मंदिर बरस करत हते । सो दूरितें गोपालदास दोखिकें मनमें विचार कियो । जो— अब सेठजी वृद्ध भए हैं । तारें अब मैं सेवा में तत्पर होऊ । तब गोपालदास न्हाइ आए । तब सेठनें गोपालदास के मनकी जानि के बुलाए । बेटा आगे आउ । तब गोपालदास निकट आइके देखे तो बीस पच्चीस बरस के सेठ हैं । तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने गोपालदास सों कही जो— भगवदीय सदा तरुन हैं । परन्तु जो अवस्था होइ ताकां मान दियो चाहिए तारें आजु पाछें एसी मनमें मति लाइयो ।

भावप्रकाश— याकौ अर्थ यह जो - गोपालदास के मन में यह आई जो - मैं तरुन हों सेठजी वृद्ध हैं अब मैं सेवा में तत्पर होऊं । या बात में गोपालदास को विचार जान्यो जो तू, हम कहा सेवा करेंगे ? श्रीआचार्यजी जासों कृपा करेंगे वासों ही श्री ठाकुर जी सेवा करावेंगे । सो तरुन कहा, वृद्ध कहा ? आजु पाछें एसी मन में कबहु मति लाइयो । सो या प्रकार मानमर्दन करि बगिही समुझाए । काहे तें गोपालदास लीला में सेठकी सखी हैं तारें ए न समुझावें तो और कौन समुझावें ?

वार्ता प्रसंग ५— और एक समय सेठ दक्षिण में गए । तहां भारखंड में मंदार पर्वत है , ताके ऊपर मंदार मधुसूदन



ठाकुर हैं । सो उह पर्वत तें मनुष्य गिरै तो चोट न लगै अन-  
जानें । और जानि के सिंगरे पाप कहि कें ऊपर तें गिरै तो  
देह छूटै । पाछे दूसरे जनम में कामना सिद्ध होय । एसो वा  
पर्वत कौ माहात्म्य लोक में प्रसिद्ध है ।

तहां एक बेर श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमा करत पधारे  
हे । तहां एक समय सेठ पुरुषोत्तमदास और एक ब्राह्मण  
वैष्णव विरक्त संग दोउ जने गए । सो उहां रात्रि वैह गई ।  
तातें पर्वत पर सोइ रहे । अर्द्ध रात्र समय एक ब्राह्मण सिद्ध  
कौ रूप धरि श्रीठाकुरजी आपु आए । तब सेठ बोले नांही ।  
उह वैष्णव सेठ के संग कौ पूछे , जो तुम कौन हो ? तब  
उन कह्यो जो - मैं ब्राह्मण हों या पर्वत पर रहत हों । तुम  
कौन हो ? तब वाने कही - हम श्रीबल्लभाचार्यजी के  
सेवक हैं । तब उन ब्राह्मण ने कही हमारे पास माणि है ,  
तुम लेउगे ? तब वैष्णव ने कही, माणि में कहा गुण है ? तब  
उह ब्राह्मण ने कही जितनो द्रव्य चाहिए सो माणि सों मिलै ।  
तब उह विरक्त वैष्णव ने कही जो मैं कहा करूंगो ? जगदीस  
सेर चून दैइगो । तातें सेठ पुरुषोत्तमदास गृहस्थ हैं, इनको  
बहोत खरच हैं, इनको देउ । तब ब्राह्मण ने कही जो- सेठ-  
जी कों जगावो । तब उह वैष्णव ने जगाइ के सेठजी सों कही,  
यह माणि लेउ । यासो जितनो द्रव्य चाहिए तितनो होइगो ।



तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही, जो-हमारे तो माणि नांहि चाहिए। तब उह सिद्ध ब्राह्मण मणि लेकै फिरि गयो। तब वैष्णव ने सेठजी सों कह्यो, तुम माणि क्यों न लिए ? तब सेठ ने कही तू क्यों न लियो ? पढ़ेलेतो ! तोकों देत हो। तब उह वैष्णव ने कही मैं विरक्त हों, माणि कहा करुंगो ? जगदीस सेर चून जहां तहां ते देइगें। तब सेठ ने कही तोकों सेर चून देइगें तो मोकों दस सेर हू देइगें। कहा जगदीस के कछु टोटे है ? सो ब्राह्मण बावरे ! मैं श्रीठाकुरजी कौ आश्रय छोड़ि मणि कौ आश्रय करूं ? पाछे सेठ अपने घर आए।

भावप्रकाश- यह वार्ता में बहोत संदेह हैं जो सेठ सेवा छोड़ि कै दक्षिण क्यों गए ? इनके कछु कामना तो नांही सो दक्षिण में उहां मधुसूदन ठाकुर के दर्शन कों क्यों गए ? तहां कहत हैं, जो- सेठके मनमें यह आई जो दक्षिण में श्री आचार्यजी कौ जन्म है। सो जनमस्थान के दर्शन करि आऊँ ताके लिए दक्षिण गए। तब मंदार मधुसूदन ठाकुर सेठजी सों कहे जो तुम कृपा करिकें या पर्वत में मेरे पास आओ तो या स्थल कौ पाप दूरि होय। काहेतें मेरे यहाँ अनेक पापी आवत हैं सो कोऊ पर्वततें महात्म्य सुनिकें गिरत हैं। सो उनके पाप बहोत भए हैं। तातें सिगरे तीर्थ गंगाजी आदि भगवदीय के आइवे कौ मार्ग देखत हैं\*। तातें तुम या देस

---

\* “तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता” ।  
तथाच “ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः” श्रीभागवत ।



में आए हो तो पावन करौ । और तुम आबोगे तो या तीरथ की महात्म्य बटैगो । निहारो तो कछु बिगरे है नाहीं प्रभु के आश्रयतें । या प्रकार मंदार मधुसूदन कहे । तब सेठजी उह परवत पर गए । तब मणि लेइके लुभ्याए । परंतु सेठजी निष्काम हैं इनकों कछु डर नाहीं । तातें जो ऐसे निष्काम होई वामें तीर्थ कों पवित्र करिवे की सामर्थ होय । तिनकों बाधक न परें । और सकामीकों तीर्थ हू बाधक हैं । सो यातें जो उह स्थल के महात्म्य तें पर्वत तें गिरै तब मनोरथ के फल पावें । यह कहि जताए, जो- मनोरथ कामना कछु वस्तु की कामना भई तब पुष्टिमार्ग सों गिरै । और निश्चय मणि न लिए ताकी अभिप्राय यह जताए, जो- बिना मांगे (हू) कछु फल मिलै ताके लिए मे (भी) बाधक अन्य संबंध होई तो कामनातें तो निश्चय अन्याश्रय होय । तातें सेठ नें उह विरक्त वैष्णवसों कही जो- 'बावरे' ताकी कारन यह जो मणि आदि कछु फल दें आवें, तासों बोलनो नाहीं, आपुहि चल्यो जाइ । या प्रकार सेठके दृढाश्रय हतो ।

वार्ता प्रसंग- ६- और एक समय श्रीआचार्यजी महा-प्रभु कासी पधारे । सो सेठ पुरुषोत्तमदास के घर उतरे । तब सेठ पुरुषोत्तमदास के ठाकुर श्रीमदनमोहनजी कों पंचामृत स्नान कराइ आपु भोग धरि भोजन किए । तब दामोदरदास हरसानी नें श्रीआचार्यजी सों विनती करी, जो- महाराज ! यह कहा ? यहां पंचामृत ठाकुर कों न्दवाए ? तब



श्रीआचार्यजी कहे जदपि यह हमारी आज्ञातें नाम देत है तऊ इतनी मर्यादा राखी चहिए ।

भावप्रकाश- याकौ आशय यह जो- सेवक करें ताके सन्मुख सिष्य के पाप आवत हैं, सो गुरु सामर्थ्यवान होइ सो पाप कों जरावे । सो सेठ जदपि मेरी आज्ञातें नाम देत हैं, भगवदीय हैं तातें पाप कहा करें बाकों, परंतु तऊ मर्यादा सों सेव्य कों पंचामृत के न्हापतें सेठ के पंचतत्व को सरीर सुद्ध होय एक यह गौणभाव । और उत्तम भाव यह जो- सेठ श्रीमदनमोहनजी की श्रीआचार्यजी महाप्रभु के भावसों सेवा करत है । तातें श्रीआचार्यजी पंचामृत स्नान कराई, श्रीगोवर्द्धनधर रूप करि भोग धरत हैं । यह भाव जाननो ।

वार्ता प्रसंग- ७- बहुरि एक दिन कासी के राजा के मनमें आई जो सेठ पुरुषोत्तमदाससों हम मिलिए । सो राजा गंगा पार रहत हतो । तहांते प्रातःकाल आयो । ता समय सेठजी छोटी परदनी पहरे गोबर संकेलत हते । तब सेठके लोग नें सेठसों कह्यो, जो- तुमसों मिलन कों राजा आवत हैं । सो आछे वस्त्र पहिरिकें गादी पर बैठो । तब सेठ कहे जो आवन दे । राजा कौ कहा बर है ? तब राजा आयो । तब सेठ गोबर भरे हाथ राजा के आगे आए । तब राजा चतुर हतो सो कहे सेठजी । तुम धन्य हो । या संसार में मान बढाई एक तिहारी कूटी है । तब सेठ नें कही हम गृहस्थ हैं, घर कौ काम करयो चहिए । तब राजा प्रसन्न होइ



के घर गयो । या प्रकार सेठकों प्रतिष्ठा की चाह रंचक हू  
नाहीं । और गाय की टहल, सो अपने घर कौ काम कहे ।

भावप्रकाश- ताकौ आसय यह जो जैसे श्रीठाकुरजी की  
सेवा जेसँ गाय की सेवा । यही घर कौ काम है । लौकिक  
वैदिक काम है सो बाहिर कौ काम हैं । या भांति तें सेठि  
ने कही ।

वार्ता प्रसंग- ८- सो ऐसे सेवा करत जन्माष्टमी  
आई । तब श्रीआचार्यजी ने नंदरायजी के घर जन्म उत्सव  
भयो ता लीला के भावतें पालना नन्द महोत्सव किए । तब  
नंदरायजी, यशोदाजी, गोपी ग्वालसों रह्यो न गयो । सो  
साक्षात् पधारे । नन्दमहोत्सव अनिर्वचनीय भयो । सो दर्शन  
सेठ पुरुषोत्तमदास कों, रुकमिणी कों, मोपालदास कों भए ।

भावप्रकाश- काहेतें ये लीला संबन्धी पात्र हैं ।  
पाछें श्रीआचार्यजी ने नसोदाजी गोपीग्वालसों कहे जो- या  
काल में तुम साक्षात् पधारे सो उचित नाहीं । तब सबनने  
कह्यो, जहां तुम साक्षात् स्वामिनी रूप न्है उत्सव करो तहां  
हमसों क्यों रह्यो जाइ ? तब श्रीआचार्यजी ने कही जो (अबसों)  
हम सब तिहारे भेष धरावेंगे । तिनके भीतर न्है पधारियो ।  
तब कहे जो आछो भेष सों पधारेंगे । ता दिनतें श्रीआचा-  
र्यजी ने भेष की रीति जन्माष्टमी पे किए । या प्रकार प्रथम  
ही जन्म उत्सव सेठ पुरुषोत्तमदास के घर कियो । तब पाछें



सेठ जह पुरुषनोत्तमदास नित्य श्रीमदनमोर्कों पालने  
मुलावते । जन्म उत्सव के भावमें सदा मगन रहते ।

वार्ता प्रसंग- ६- और श्रीआचार्यजी के पास वादी  
बहोत आवें । सो वाद करत संझा व्हे जाय । सो आपु के भोजन  
बिना किए वैष्णव महाप्रसाद लेइ नाही तब श्रीआचार्यजी  
पत्रावलंबन ग्रन्थ कारेकें एक कागद पर लिखि एक वैष्णव  
कों दिए । जो- विश्वेश्वर महादेवजी के देवालय में लगाइ  
भीति सों, यह कहियो- जितने पांडित शैव, ब्राह्मण वादी आवें  
सो संदेह होइ, सो यामें देखि लेउ । जो उत्तर न पावो तो  
श्रीआचार्यजी पास आइयो । तब वैष्णव 'पत्रावलंबन' ग्रन्थ  
ले जाइ महादेव के पास भीति में लगाइ, सिंगरे माया वादी  
तो तहां आवें ही, तिनसों वैष्णव ने कही, जो संदेह श्री-  
आचार्यजी सों पूछनो होइ सो याकों बांचि लेउ । सो सबन  
को उत्तर मिल्यो । सब चुप व्हे रहे । और कहे जो श्रीआचार्यजी  
ईश्वर हैं इतने छोटे ग्रन्थ में हजारन मायावादीन को निरुत्तर  
किए ।

भावप्रकाश- महादेवजी के पास लगाइवे कौ आसय यह है जो  
हमारो कियो तिहारे इष्ट महादेव कों प्रमाण है । तो तुमको जीतने  
कितनीक बात हैं । और इतने पर या काशी के राजा विश्वेश्वर  
हैं । उनके पास यह भगरो डारे हैं । खोटे खरे के महादेव साक्षी  
हैं । अब जो न मानोगे तो तुम को महादेव दंड देइगे । या प्रकार



म. धरि गाढीवान सों कहे, बेगे माढी पाछे कों घर कों हांकि  
 तोकों एक रूपैया देउंगो । इहां श्रीमदनमोहनजी रुक्मिनी  
 सों कहें, बेग तू उठि कै न्हाइ के पूरी कर, सेठ साक लेकें  
 आवत हैं । तब रुक्मिनी ने कही, महाराज! सेठ तो गया को  
 गए हैं । तब श्रीठाकुरजी ने कही, सेठ गया करि आयो,  
 उनकी गया पूरण भई । तू उठ के पूरी बेगे करि, तब रुक्मिनी  
 न्हाइ के, मेदा घर में सिद्ध हतो, सो पूरी करन लागी । पहर  
 एक रात्रि गई हती । कछूक पूरी बाकी रही तब सेठ घर पर आई  
 पुकारे । तब गोपालदास ने किवाड खोली दिए । तब सेठ  
 रुक्मिनी सों पूछे कहा समय है ? तब रुक्मिनी ने कही पूरी करी  
 है, साक नहीं है । तब सेठजी ने कही मैं साक लायो हों । तब  
 रुक्मिनी ने कही बेगे सँवारि देउ थोरी सी पूरी रही है । तब  
 सेठजी और गोपालदास मिलिकें बेगन सँवारि दिए ।  
 रुक्मिनी ने सामग्री सिद्ध करी । सेठहू न्हाइके भोग घर तब  
 सेठ गोपालदास सों कहे, दस पांच वैष्णव बेगे मिले सो  
 खिवाइ लाउ । तब गोपालदास वैष्णवन को बुलाइ लाए ।  
 इतने समय भयो भोग सराए । सेन आरती करि श्रीठाकुरजी  
 कों पोढ़ाए । अनौसर कराइ वैष्णवन सों मिलिके महाप्रसाद  
 लिए । पाछें उह मामा कछूक दिन में गया करि आयो ।  
 तब कह्यो तुम पाछेते क्यों फिरि आए । तब सेठने कही,  
 मोकों कहा पूछत हों, मेरे घर में कछु काम हतो । तार्ते  
 फिरि आयो ।



भावप्रकाश— या वार्ता में यह सिद्धांत भयो जो सामग्री उत्तम देखिए तामें अपने प्रभु को स्मरण करिए । वाको बहोत मोल में ( खरीदिये ) भूगरो न करिए । अपने सामर्थ्य प्रमान लीजिए । और भगवत सेवा रूप यह धर्म के आगे सिंगरे वैदिक धर्म तुच्छ जानिए । तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न होंइ । सेठकी प्रीति अर्थ दूसरे फिरि सैन भोग श्रीठाकुर जी अरोगे । तातें स्नेह है सोई प्रभु प्रसन्नता को कारन है ।

सो वे सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हे । तातें इनकी वार्ता को पार नांदी सो कहां ताई लिखिए । वैष्णव ६ ( ८४ मध्ये )  
( ६६ मध्ये वैष्णव संख्या १२ )

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तम-दास की बेटी रुक्मिणी तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं—

भाव प्रकाश— ए रुक्मिणी लीला में श्रीस्वामिनीजी की सखी है इंदुलेखा, तिनकी सखी 'मोदिनी' है । श्री ठाकुर-जी की सेवा में तत्पर है । मोदिनी जो आनन्द ताकी उपजाबन-हारी है तातें इनको नाम मोदिनी हैं ।

वार्ता प्रसंग- १- सो एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की सरन रुक्मिणी आई । तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने वाको नाम सुनायो । ता पाछें निवेदन करवायो सो उह रुक्मिणी बड़ी कृपापात्र हती ।



सो एक समय श्रीगुसांइजी काशी पधारे हे । सो तहां सूर्य ग्रहण भयो । तब श्रीगुसांइजी मणिकर्णिका घाट स्नान कों पधारे । तब रुक्मिणी (इ) श्रीमदनमोहनजी कों स्नान कराइ के आपु मणिकर्णिका स्नान कों आई, सो श्रीगुसांइजी पधारे जानिके । सो स्नान करिके वस्त्र पहिरे । तब एक वैष्णव ने श्रीगुसांइजी सों कह्यो महाराज । सेठ पुरुषोत्तम-दास की बेटी गंगास्नान कों आई है । तब श्रीगुसांइजी कहे, रुक्मिणी, आगे आऊ । तब रुक्मिणी आगे आई । तब श्रीगुसांइजी पूछे तू कितने दिनन में गंगास्नान कों आई है ? तब रुक्मिणी ने कही, महाराज ! चौबीस बरस पाछे गंगा स्नान कों आई हों । यह रुक्मिणी के बचन सुनिके श्रीगुसांइजी कौ हृदय भरि आयो । जो ऐसी सेवा में मगन है ! जो गंगास्नान कौ अवकास नाहि है ।

भाव प्रकाश— तहां यह संदेह होई, जो चौबीस बरस पहिले तो गंगाजी स्नान कों आई हती । अब श्रीगुसांइजी पधारे ताते आई परन्तु गंगास्नान या आग्रह तें रुक्मिणी सेवक भए पाछे आई नहीं । ऐसी सेवा में मगन है ।

सो श्रीगुसांइजी रुक्मिणी कों देखि के कहते, जो—  
इनसों श्रीठाकुरजी उरिन कबहू न होइगें ।

भाव प्रकाश— ताको अर्थ यह जेसे रास पंचाध्याई में श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन सों कहे, जो- तिहारो भजन एसो



हैं जो मैं सदा रिनि रहूँगो । तेसे रुक्मिणी सों श्रीठाकुरजी रहेंगे । या भाव सों श्री गुसाईंजी ने कही ।

वार्ता प्रसंग- २- और चत्रिय लोगन में बहुबेटी कासी में कार्तिक, माह, वैसाख गंगास्नान करतीं । सो रुक्मिणी ने सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो तुम कहो तो मैं कार्तिक स्नान करूँ । तब सेठने कही करो, जो चाहिए सो लेऊ । तब रुक्मिणी ने कहि घृत खांड मंगाइ देहु, मेदा तो घर में हैं । तब सेठ ने घी खांड मंगाइ दियो । सो रुक्मिणी पहर रात्रि पिछली सों उठि नित्य नेगते अधिक सामग्री करै । सो मंगलाते राजभोग पर्यन्त अरोगावे । पाँछ उत्थापन के पहर एक पहलें न्हाइ सामग्री करै । सो उत्थापन ते सयन पर्यंत अरोगावे । ऐसे करत कितने के दिन बीते । तब सेठने रुक्मिणी सों पूछ्यो जो- कार्तिक न्हाते तो तोकों कबहुं देख्यो नाहि, तू गंगाजी कौन समय न्हाति है ? तब रुक्मिणी कही मेरे कार्तिक न्हाइवे को कहा काम है ? जाकों कछू कामना होइ सो कार्तिक न्हाइ । मैं तो याही भांति न्हात हों । तब सेठ पुरुषोत्तमदास बहुत प्रसन्न भए ।

भावप्रकाश— तहाँ यह संदेह होइ जो रुक्मिनो ने कार्तिक न्हाइवे को नाम लेके सेठ पास सामग्री क्यों लीनी अरोगाइवे को नाम लेती तो कहा सेठ सामग्री न देते ? तहाँ कहत हैं, जो जैसे कुमारिकान को मन श्रीठाकुरजी



सों लाग्यो तब न्यारे मनोरथ ( कियो ) ( सो ) जसोदाजी सों कह्यो चहिण । तब जसोदा जी सों कहे, जो तुम कहो तो हम कात्यायनी देवी को पूजन करें, मार्गसिर महिना श्री जमुना जी स्नान । तब श्री जसोदाजी ने भीनंदरायजी सों कहि न्यारी सामग्री पूजन की घी झाँड सब कुमारिकान कों दिये । तब कात्यायनी देवी को मिस करी श्रीजमुनाजी को पूजन कियो काहेतें, श्री ठाकुरजी श्री यमुनाजी एक ही हैं । तातें “पुरुषोत्तमसहस्रनाम” में श्री आचार्यजी कहे हैं “ कात्यानी व्रत व्याज सर्वभावाश्रिताङ्ग नः ” । कात्यायनी व्रत को व्याज जो मिस करि सर्व प्रकार को भाव सगरे अंग में आवेश करि प्रभु को आश्रय कियो तैसे ही रुक्मिणी ने हू कार्तिक, मार्गसिर, माह, वैसाख इत्यादिक को नाम ले व्रज भक्तन के भाव पूर्वक सेवा करी यामें यह जताए जैसे व्रज भक्तन के भाव को खबरि काहुकों न परी तैसे रुक्मिणी के भाव का खबरि काहुकों न परी । और को कहा ? सेंट पुरुषोत्तम-दास हू रुक्मिणी के हृदय के भाव कों पहुँचि न सकते ऐसे अगाध हृदय हतो ।

वार्ता प्रसंग- ३- बहुरि एक समय रुक्मिणी की देह असक्त भई । तब रुक्मिणी ने कह्यो, अय देह छूटे तो आछो । जा देह तें भगवान की सेवा न भई सो देह कौन काम की ? पाछें भगवत् इच्छा तें देह छूटी तब काहु वैष्णव ने श्री गुसाई जी सों कही महाराज रुक्मिणी ने गंगा पाई । तब श्रीगुसाई जी कहे जों ऐसे मति कहो । ऐसे कहो जो गंगाजी ने रुक्मिणी पाई ।



भाष्यप्रकाश— काहेतें जो गंगाजी किनारे तो अनेक जीव देह छोटत हैं। परन्तु गंगाजी को एसी भगवदीय कहाँ मिलै ? या प्रकार श्रीमुखते कहें। ताको कारन यह जो-भगवदीय गंगाजी आदि तीरथ को पवित्र करत हैं। तामें नन्ददास जी नें ( ह ) पंचाध्याई में गाथो है— “गंगादिकन पवित्र करन अवनि पर डोलें”। भगवदीय को प्रागट्य जीवन के उद्धारार्थ ही है। जैसे भगवान् को प्रागट्य तेसे ही भगवदीय को प्रागट्य हैं सो ‘पुष्टि प्रवाह मर्यादा’ ग्रंथ में श्री आचार्यजी भगवदीय को स्वरूप लिखे हैं।

“तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।  
भगवद्रूप सेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् ॥ १२ ॥  
स्वरूपेणावतारेण लिङ्गेन च गुणेन च।  
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रिया सु वा ॥ १३ ॥

पुष्टि मार्गीय जीव यह संसार के जीवन ते भिन्न हैं या में संशय नाहीं। भगवान् को रूप ही है। भगवान् की सेवा ही के अर्थ जगत में पुष्टि धर्म प्रगट करिवे के लिए जन्मे हैं। भगवान् के स्वरूप में, भगवान् के अवतार में, भगवान् के जेसे गुन हैं, भगवान् की जैसी क्रिया हैं, तेसे ही भगवदीय में लक्षण है। तातें भगवान् में अरु भगवदीय में तारतम्य नाहीं हैं। या प्रकार श्री गुसाईंजी भगवदीय के गुन सब रुक्मिणी में कहै।

सो यह रुक्मिणी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की सेवक एसी कृपापात्र भगवदीयही। तातें इनकी वार्ता को पार नाही सो कहाँ ताई लिखिए।  
( १६ मध्ये वैष्णव )



अब श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तम दास के बेटा गोपालदास तिनकी वार्ता ।

भाव प्रकाश— सेठ पुरुषोत्तमदास लीला में इन्दुलेखा श्रीस्वामिनीजी की सखी हैं । नाकी सखी 'गायनकला' सो ये हैं । ब्रजभक्तन को विरह संयुक्त गायन तिनकी कला गोपालदास में झलकत है । यह कहि यह जनाए जो गोपालदास विरह में सदा मगन रहतें ।

वार्ता प्रसंग- १- सो गोपालदास सो श्रीमदनमोहन जी सानुभाव हते, सो जो चाहिए सो मांगि लेते । ऐसे सदैव कृपा करते । और गोपालदास कीर्तन बहुत करते । सो एक समय होरी के दिनन में गोपालदास को बहोत विरह भयो । होरी के भाव संयोग रस की विस्मृति भई गई । तब नित्य जैसे ब्रजभक्त वेनुगीत जुगलगीत गावत हैं ता भावसों दोइ कीर्तन 'ललना' कहिकें गाए ।

भावप्रकाश— सो ललना को अर्थ यह जो ब्रजकी ललना या प्रकार विरह में गान करत हैं ।

सो ललना गावत ही श्रीठाकुरजी लीला सहित दर्शन दिए । तब गोपालदास बलिहारी लिये । तातें गाए, जो "मदनमोहन के वारनैं बलि बलि दासगोपाल ।



वार्ता प्रसंग- २- सो कितनेक दिन पाछे गोपाल-  
दास की देह बहोत असक्त भई । तब भगवत् नाम को  
उच्चार करते । तब श्रीमदनमोहन जी आप हुंकारी देते एसी  
कृपा करते । ऐसे करत रात्रि को गोपालदास को नींद आवती  
फेरि चोंकि के विरह में पुकारते । श्रीमदनमोहनजी ।  
तब मंदिर सों श्रीठाकुरजी कहते क्यों पुकारत हो ? मैंतो  
तेरे निकट हों । तब गोपालदास कहते , महाराज ! आपु  
क्यों जागत हो ? भोगे तो पुकारिवे को सुभाव परयों हैं ।  
तब मदनमोहनजी कहते मोसों तेरो विरह सह्यो नाहि जात ।  
तातें तेरो समाधान करत हुं । या प्रकार गोपालदास  
मंदिर को अरु चोक को ताला लगाइ चोखटि पर माथो  
धरि के , एक वस्त्र बिछाइ विरह में परे रहेतें । सरिर के  
सुख की खबरि ही नाहि रहति । तातें विरह के कर्तिन  
बहुत गाए हैं ।

और श्री आचार्यजी के ग्रन्थ सुबोधिनी निबंध श्री  
गुसांई जी के रहस्य ग्रन्थ सो सब गोपालदास अनोसर में  
देख्यो करते । समय पर भगवत् सेवा करते । न्यौपार बनिज  
लौकिक वैदिक सर्व त्याग करि लीलारसमें मगन रहतें ।  
सो श्रीगुसांईजी गोपालदास ऊपर बहोत प्रसन्न रहते ।  
कहतें जो सेठ पुरुषोत्तमदास को परिवार एसी ही चाहिये ।  
विरह की दसा अनिर्वचनीय है । तातें गोपालदास की वार्ता



कौ विस्तार नाहि किए । सेठ पुरुषोत्तमदास के परिवार सहित वार्ता एक । ( या प्रकार वैष्णव ग्यारह भए परन्तु परिवार सहित वार्ता एक गिनवे तें ८४ मध्ये वैष्णव छ और ६६ मध्ये वैष्णव १४ भए )

अब श्रीभाचार्यजी महाप्रभुन के सेवक रामदासजी सारस्वत ब्राह्मण पूरब में रहते तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं ।

भाव प्रकाश— सो प रामदासजी लीला में राधा सहचरी की सखी है । 'प्रेम मंजरी' इनकी नाम है । प कुमारी-का के जूथ में है ।

सो रामदास के पिता के पास द्रव्य बहोत हतो । परन्तु पुत्र नाहि हतो । सो सूर्य की उपासना बहोत करी । तब सूर्य प्रसन्न होइ के एक पुत्र दियो । सो रामदास जी बरस आठ के भये तब पिता ने विवाह रामदास को कियो । पाछें देह छोड़ी । सो रामदास को एक मर्यादा-मार्गीय वैष्णव को सतसंग भयो । तब मर्यादा मार्गीय वैष्णव ने कही, कोई तीरथ करे हो ? तब रामदास जी कहे पिता की देह छोड़ी, अब घर छोड़ि के कैसे जाँइ ? तब वा मर्यादा-मार्गीय वैष्णव ने कही, भलो ! गंगासागर तो तिहारो निकर है । यहां तो न्हाइ आवो, चलो मैं संग चलूं । तब रामदास संग चले । तब रामदासजी उह मर्यादामार्गीय के संग गंगासागर जाइ नहाए । तीन दिन तहाँ रहे । चौथे दिन तहाँ रहे न्हाइ के, गंगा सागर के किनारे रसोई करन के लिए थोरी सी रे ती डारे । तब लालाजी को स्वरूप उहाँ तें निकस्यो सो रामदास जी गंगासागर के जल सों न्हावाइ उह मर्यादा-मार्गीय वैष्णव सों कहयो । मोको भगवत्स्वरूप प्राप्ति भयो ।



तब वह मर्यादा मार्गीय वैष्णव ने कही, तिहारे बड़े भाग्य हैं। तुम इनकी पूजा करियो, परंतु तुम सेवक काहू के हो ! तब रामदासजी बरस सोरह के होते। सो कहे, मैं सेवक तो अबही नहीं भयो। तब मर्यादामार्गीय वैष्णव ने कह्यो, मैं तुमको सेवक करों जो तिहारो मन होय। तब रामदास जी कहै घर जाइ के स्त्री सहित सेवक होउंगे। तब उह मर्यादामार्गीय वैष्णव ने कह्यो, जो- श्रीवल्लभाचार्यजी, सो (जिनने) दक्षिण में कासी में मायावाद खंडन किये है सो पुरुषोत्तम पुरी में पधारे हैं। उनकी सरन तोकों मिलै तो तेरे बड़े भाग्य है। तब यह सुनतही रामदासजी श्रीठाकुरजी को लोके घर को बेगे चले। उह मर्यादामार्गीय तो गंगासागर ऊपर रह्यो। सो चौथी मजलि करि अपने गाम के बाहर एक बगीचा है तहां रामदास मध्याह्न समें आये। सो श्रीआचार्यजी हू पुरुषोत्तम पुरी सो एक दिन पहले के आइ उतरे होते। तब श्री आचार्यजी रामदास सो कहें, तुमको गंगासागर में भगवत् स्वरूप कैसो प्राप्त भयो है ! सो हमको दिखाउ। तेरो नाम रामदास है। तब रामदास चक्रत होइ रहे। जोमें अबही चलयो आवत हों, काहू को भगवत् स्वरूप दिखायो नहीं। तारे में महापुरुष है। तब पास वैष्णव हे, तिनसों पूछे ये महापुरुष को नाम कहा है ? तब कृष्णदास मेघन ने कही श्रीवल्लभाचार्यजी सिगरे प्रसिद्ध हैं। मायावाद खंडन करि भक्तिमार्ग को स्थापन किए हैं। तब रामदास साष्टांग बन्दवत करि बिनती किये, महाराज ! मेरे घर पधारिये। तब श्रीआचार्यजी कहे, तुम स्वारस्यत ब्रह्मण हो ; तिहारे क्षत्री सो खानपान को व्यौहार कैसे छूटेगो ? तब रामदासजी कहे, आपु की कृपा तें मेरे द्रव्य बहोत है। मैं तो काहू सो जल को व्यौहार हू न राखोंगो। आपु आज्ञा करोगे तैसें करंगे। तब श्री



आचार्य जी प्रसन्न होइ के रामदास के घर पधारे तब स्त्री सहित रामदास को नाम समर्पन कराए । श्रीठाकुरजी को पंचामृत सों स्नान कराई पाट बैठारें । श्रीठाकुरजी कौ नाम श्रीनवनीयप्रियजी धरें । पांच रात्रि रामदास के घर रहि के सगरी रीति सेवा की बताए, आपु पृथ्वी परिक्रमा को पधारें ।

वार्ता प्रसंग १ — सो रामदासजी अष्ट प्रहर अपरस में रहते । जलपान बीड़ा अपरस में लेते ।

भाव प्रकाश— यह कहि यह जताए जो - लौकिक काहू सों बोलते नां ही । व्यौहार बनिज कछू न करते, स्त्री संग हू छोड़े ।

या प्रकार भगवत् सेवा करते । श्रीठाकुरजी कौ नेगहू बहोत हतो । द्रव्य हू बहोत हतो । सो कछुफ दिन में द्रव्य थोरो सो आइ रह्यो ।

भाव प्रकाश— ताकौ अभिप्राय यह, जो - रंज द्रव्य कौ अहंकार हतो । सो अन्याश्रय श्रीठाकुरजी कौ छुडाय दैन्य करना है । तातें द्रव्य थोरो सो रह्यो ।

तब रामदास ने बिचार्यो , जो - कछू द्रव्य कौ उपाइ कर्यो चाहिए । तब पूरव देस में पटवस्त्र बुनावत हैं तिन-कों तांती कहत हैं । सो तांतीन कों न्याज द्रव्य दियो तो न्याज बहोत आवन लाग्यो । तब रामदासजी के मन में



कछुफ हरख भयो । ताते श्रीठाकुरजी आज्ञा किए , जो - तू मोकों तांतीन ऊपर राख्यो ?

भाव प्रकाश— ताकौ आसय यह , जो - मैं भाव प्रीति सों रहत-हों सो पहले द्रव्य पर राख्यो , जो द्रव्य घट्यो तब व्याज पर राख्यो , जो तांती सों व्याज आवै । तामें मेरी सेवा व्याज को द्रव्य महा हीन, द्रव्य को मैलि सो नासुं करे सो ता पर मैं कैसे रहंगो ।

तब यह आज्ञा सुनि के रामदास चैंकि परे ।

भाव प्रकाश— सो यह जो - हाय हाय । मैं बुरो काम कियो । अब भगवत् इच्छा होइगी सो सही , परन्तु एसो कार्य कवं हूं न करनो ।

तब तांतीन पास गए । कहे मेरो सगरो द्रव्य देहु । तब तांतीन ने कही तुम कों व्याज दिए जात हैं तो द्रव्य कहा देए ? कहा थेरे दिनन में ( ही ) मांगन लागे ? तब रामदास जी कहें मोकों लरिका साथ काम परयो है, लरिका कहे सो करनो ।

भाव प्रकाश— यह कहि यह जताए , जो - बालक को ख्याल बिरुद्ध है । कोई खिलोनां कों ऊंचे बैठारे , काहू कों नीचे बैठारे । काहू को फोरि डारे । सोई प्रभु को सुभाव कतुं , अकतुं , अन्यथा कतुं सर्व सामर्थ्य , जो मन में आवे सो करें । यह सिद्धांत कहे । परन्तु तांती जाने कोई बालक होइगो ।



सो सिगरो द्रव्य भेलो करिके रामदास जी को दिए ।  
सो घर लाए । सेवा करन लागे । सो कछुक दिन में  
सिगरो द्रव्य उठि गयो ।

भाव प्रकाश— तब द्रव्य को आश्रय तो छूटयो ।  
परन्तु पहले को गर्व ताको धीज है सो भीठारकुजी अब  
दूरि करेंगे ।

तब रामदास जी एक बनिया के इहां उधारे उचापति  
करन लागे । तब माथे रिन भयो । बनिया इनको टोके ।  
तब वा बनिया की उचापति छोडि और बनिया के इहां  
उचापति करन लागे ।

तब एक दिन उह बनिया ने बहोत तनादो करयो । और  
कह्यो जो अब मेरे इहां उचापति नांदि करत तो मेरो दाम  
चुकाई देहु । तब वाको बहोत कहि सुनि के विदा किए । परन्तु  
लज्जा के मारे बहोत दुःख भयो ।

भाव प्रकाश— तामें पिछुनो अहंकार दोष दूरि भयो ।

तब श्रीठाकुरजी रामदास को रूप करि उह बनिया  
को करज सब चुकाई दिए । रूपैया १००) अधिक दै अपने  
हस्त सों रामदास के जमा लिखि आए । रामदासजी को  
दुख सखो न गयो ।

भाव प्रकाश— जो मेरे लिए इन इतनो दुख पायो है



यातें श्रीठाकुरजी करज चुकाए । परन्तु सौ रूपया अधिक धरे ताको कारन यह जो अधिक धरे तें कदाचित द्रव्य संबन्धि प्रसन्नता गर्व होइ तो पुष्टिमारणीय फल न होय दास भाव जात रहै । श्री ठाकुरजी करज चुकाए । रामदास बैठे रहे । तातें थोरो सौ रूपैया (१००) धरें । यह परीक्षा अर्थ । और कछू दूसरे बनिया को करज हू भयो है । कछू खरच के बिप ।

पाछें एक दिन रामदास का वैष्णव बुलावन को आए । तिनके संग रामदासजी चलें । सो उह बनियां की हाट आगे होइके निकसे । सो उह बनियां की नजर बचाइ आनाकानी देई के निकसे जो यह मांगेंगे । सो बनियां ने रामदास जी को देखें । और बिचारयो जो- ये नजर बचाइ के यातें आगे निकसे , जो - मैं इनसो तगादो बहोत कियो है । तब बनियां रामदासजी के आगे आइ पावन परयो । कह्यो मेरे अभागि जो तुम उचापति अपनी हाट सों नाहि करत । परन्तु सौ रूपया अधिक धरें हैं सो तो ले-जाउ । तब रामदासजी ने कह्यो मैं पाछें आऊंगो । अब काम जात हों । तब बनियां हाट पर आयो । रामदासजी ने अपने मन में बिचार कियो जो - मैं तो याको कछू द्रव्य दियो नाहि । तातें मति कहुं श्रीठाकुरजी याको दिए होई ।

सो वैष्णव के इहां जाइ कछू लुवा छाई को काम हतो सो बताइ पाछे रामदासजी उह बनियां के हाट पर आइ



कहैं , अपनो लेखो निकार । तब बनियां ने कही , तुम लेखो चुकाइ रुपैया १००) अधिक धरि अपने हाथ सों लिखि गए हो , फेरि देखि लेहु । सो बही में श्रीठाकुरजी के हस्ताक्षर देखे, तब चुप करि रहै ।

तब घर में आइ बिचारे जो - अब घर में रहनो नांही ।  
चाकरी करूंगो ।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो घरमें रहों तो श्रीठाकुरजी कों भ्रम होय द्रव्य खानो परें; खों की भीति साधारण है । तार्ते यह खायगी ।

तब ऐक घोरा लिए । हथियार बांधि चाकरी करन प्रागमें आए । तब जलपान बड़ी बिना अपरसमें लेन लागे ।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो कलू अपरस की अहंकार हतो, जो और सों एसी अपरस नांही बनत सोउ श्रीठाकुरजी लूडार्ई अहंकार मिटाए । और यह जताए जो एसी अपरस कौन कामकी जामें श्रीठाकुरजी कों भ्रम करनो परै ।

पार्ले एक दिन रामदासजी प्रागमें अडेलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दरसन करन आए । सो पांचों कपरा पहरि हथियार बांधि दंडवत् किए । तब श्रीआचार्यजी रामदास सों देखिकें कहै, धन्य है । रामदास तू धन्य है । तब वैष्णव पास बैठे हैं सो कहन लागें, महाराज ! अब याकों धन्य क्यों



कहत हो ? याकी अपरस तो छूटी, सिपाहीन में रहत है, हथियार बांधत हैं ? तब श्रीआचार्यजी कहे, यह धन्य है । श्रीठाकुरजी को श्रम नाहि करावत है । तार्ते या समान धीरज काहूको नाही, यह श्रीमुखते कहे ।

भावप्रकाश— ताको कारण यह जो- कहा बहोत अपरस सों कार्य होत हैं ? पुष्टिमार्गीय धर्म बहोत काठन है । द्रव्य सिगरो गयो, रिन मांथे भयो, परन्तु धीरज नाही छूट्यो । सो कहा जो मन श्रीठाकुरजी में रह्यो । हृदय के भीतर चिंता रूप कष्ट नांहा भयो । पाछें श्रीठाकुरजा रिन चुकाए । सों मनमें प्रसन्न न भयो । चाकरी को कार्य कियो । अब दैन्यता याकों भई है, मन श्रीठाकुरजा में है । या आसयतें श्रीआचार्यजी धन्य कहे ।

वार्ता प्रसंग- २- और श्रीआचार्यजी के द्वार आगे एक खाड़ा हतो । सो आपु न्हाइवे को पधोरें, तब कहें यह खाड़ा अजहूं भरयो नाही है । यह कहिकें आपुतो श्रियमुनाजी स्नान को पधोर, सिंगरे बैष्णव खाड़ा भरन लागे । तब रामदासजी एक बड़ो टोकरा ले जहां ताई श्रीआचार्यजी न्हाइ के पधोर तहां ताई में खाड़ा पूरि बराबर धरती करि दिए । तब श्रीआचार्यजी आपु रामदास को देखे खाड़ा भरते, सिंगर कपडा धूरि सों भरे देखिके, फेरि श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ के कहे, रामदास धन्य है ।



भाव प्रकाश—सो यातें जो और वैष्णव आछे कपरा उतारी एक धोती पहारि खाड़ा भरें। रामदास श्री-आचार्य जी की आज्ञा सुनि के परम भाग्य सेवा मानी खाड़ा भरयो सिपाइपनेकी लाज सरम सब छोड़ी। ता पर श्री-आचार्यजी बहोत प्रसन्न भए। जो-या प्रकार भगवत् सेवा में प्रतिष्ठा मन में न आवे, छोटी मोटी हीन सेवा भाग मानि के करनो। यह सिद्धान्त जताए।

फेरि रामदास जी बरस एक में द्रव्य बहोत कमाइ घर आए। पाछे भली भांति सों सेवा करन लागें।

भाव प्रकाश—सो श्रीठाकुरजी कों धीरज देखनो हतों। पाछें द्रव्य की कहा है। जो चाहिए सो सब सिद्ध है।

वार्ता प्रसंग ३—पाछे एक दिन श्री ने कही तुम दूसरो न्याह करो तो संतति होइ।

भाव प्रकाश—ताकौ कारण यह जो-स्त्री कों रामदास के हृदय के अभिप्राय की खबरि नाहीं। तातें जान्यो जो-मोसों राजी नहीं हैं, तो दूसरो न्याह करो। न्याह करें एक पुत्र होइ।

तब रामदास ने कही जो मोकों पुत्र की इच्छा नहीं है। तब श्री ने कही-मेरे एक पुत्र की इच्छा है। तब रामदास ने कही, जो तिहारे इच्छा है तो श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा



बालभाव सों कर । जैसे खानपान सों लड़ावत हैं । तिहारो मनोरथ पूरन होइगो । पाछे कछुक दिनन में पुत्र भयो ।

भाव प्रकाश—सो रामदासजी ने तो भाव रूप अलौकिक बात कही, जो श्रीठाकुरजी कों बालभाव सों लड़ावोगी तो एई बालक तिहारे होइगें । जसोदाजी के सौभाग्य कों पावेगी । सो तो स्त्री उत्तम अधिकारी होइ तो समुझे । तातें पुत्र की कामना सहित श्रीठाकुरजी की बाल-भाव सों सेवा करी । सो श्रीठाकुरजी ने पुत्र दियो । परन्तु रामदासजी के फल कों नहि पायो । रामदास कों कबहु लौकिक कामना में मन न भयो । तातें श्रीआचार्यजी प्रसन्न रहते । तातें रामदास के भाव की कहां तांइ कहिये ।

सो रामदास श्रीआचार्यजी महाप्रभु के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते सो इनकी वार्ता कौ पार नहीं सो कहां तांई लिखिये । वैष्णव ७ (८४ मध्ये) (६६मध्ये वैष्णव १५भए)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक गदाधरदास कपिल सारस्वत ब्राह्मण कड़ा में रहतेतिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश—

सो गदाधरदास मकरस्नान कों तीर्थराज प्रयाग बरस के बरस जाते । सो एक समय गदाधरदास प्रयाग में रहते । तहां श्रीआचार्यजी पधारे । सो पंडित सब श्रीआचार्य जी सों चर्चा करन आवते । सो गदाधरदास कौ काका प्रयाग रहतो, तहां गदाधरदास उतरते । सो गदाधरदास कौ काका परिद्धत हतो, परन्तु सैव हतो । सो काका ने



गदाधरदास सों कही, श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं । तिनसों कछु सन्देह पूछुनो है, सो मैं जात हों । तब गदाधरदास कहै, जो मैं हूं चलूंगो, सो दोऊ आए । तब गदाधरदास के काका ने श्रीआचार्य जी सों पूछ्यो, जो महाराज ! ठाकुर तो एक हैं परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय में न्यारे न्यारे क्यो मानत हैं ? कोई कृष्ण कों, कोई राम कों, कोई नृसिंघ, कोई नारायण आवि, तामें निश्चय कौन ठाकुर ? तब श्रीआचार्यजी कहे जैसे चक्रवर्ती राजा को राज तो सगरी पृथ्वी पर, और राजा देस देस के गाँव गाँव के, सोऊ राजा कहावें, परन्तु चक्रवर्ती के आज्ञाकारी । तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सो सर्वोपरि । और अवतार अंस कला करिके होइ, सब श्रीकृष्ण के आज्ञाकारी । ठाकुर सब कों कहिए । तब गदाधरदास को काका छुप करि रह्यो । गदाधरदास दैवी जीव तिनके मन में सिद्धांत बैठि गयो । जो श्रीआचार्यजी को सरन जइए तो श्रीकृष्ण को प्राप्ति होइगी । तब गदाधरदास ने श्रीआचार्यजी कों दण्डवत प्रणाम करि विनती किये, महाराज ! सरन लीजिए । मैं संसार में बहोत भटक्यो । तब श्रीआचार्यजी ने कही, जो तुम अपने काका कों तो पूछो । इनही चित्त दुख पावै तो सेवक काहे कों होउ ? तब गदाधरदास के काका ने कही, महाराज ! हमारे तो गायत्री मंत्र सों काम है, और तो हम जानत नाहीं, गदाधरदास की ए जाने । ना हम हां कहें, ना हम ना कहें । तब गदाधरदास ने कही, अब मैं आप को दास भयो । अब संसारी जीव सों ब्योहार मेरे नाहीं है । तारें मैं आपु के सरन आयो हों, कृपा करिके सरन लीजिए । और यह बहिर्मुख कब कहेंगो जो - तू सेवक होउ । या प्रकार गदाधरदास के बचन सुनिके गदाधरदास को काका उहां तें उठि बाहर आई ठाढ़ो भयो ।



तब श्रीआचार्यजी गदाधरदास के ऊपर बहुत प्रसन्न भए । कहें, बिना सेवक ऐसी टेक है तो सेवक भए, भलो वैष्णव होइगो । तब आचार्य जी कहे जा त्रिवेणी न्हाइ आव । तब गदाधरदास न्हाइ के अपरस में आए । तब श्रीआचार्य जी ने नाम सुनाइ ब्रह्म सम्बन्ध करायो । पाछे गदाधरदास ने बिनली कीर्ता महाराज अब मोकों कहा कर्तव्य है ? सो आज्ञा दीजे । तब गदाधरदास सों श्रीआचार्यजी कहे, जो तुम भगवत्सेवा करो । स्वरूप कहूं ते लावो । तब गदाधरदास ने विचारयो जो एक स्वरूप ये मेरे काका के घर है, सो कैसे मिले ? मैं तो या बहिर्मुख सों बोलत नाही हों । यह विचार करत बाहर निकसे, माला तिलक करिके । सो गदाधरदास के काका ने पूछा जो-सेवक भयो सो भली करी परन्तु मेरे घर तो चलो । तब गदाधरदास ने कही मोकों तिहारे घर में ठाकुर हैं सो देउ तो मैं चलौ । तब उन कहीं जो ले जाउ । मेरे ठाकुर सों कहा काम है ? तब गदाधरदास काका के संग बाके घर गये, श्रीठाकुरजी मांगे । तब उन कह्यो खानपान तो करो, दुपहर भयो है । श्रीठाकुरजी पाछे ले जैयो । तब गदाधरदास ने रही अब हमारे तिहारे जल—ब्यौहार नाहि । श्रीठाकुरजी देउ फेरि तुम श्रीठाकुरजी सों काम न राखो तो देउ । तब काका ने कहा, हम सैव मार्गीय हैं । हम सों ठाकुर सों कहा ? हम तो महादेवजी कों जानें । तातें बेगे ले जाउ ।

श्रीठाकुरजी गदाधरदास के काका कौ मन यातें करे जा । भगवद्गीय जाकौ घर छोड़े तहाँ श्रीठाकुरजी हू न रहें । यातें बेगि रिप । तब श्रीआचार्यजी पञ्चामृत स्नान कराइ श्रीमदनमोहनजी नाम धरयो । गौर स्वरूप हैं । तब तीन दिन गदाधरदास श्रीआचार्य जी पास रहे । सेवा की सिगरी रीति सीख सो श्रीआचार्यजी “भक्तिवर्द्धिनी” ग्रन्थ किय,



ताकी व्याख्यान किए । तामें यह कहे जो- “अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः । व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा ।” तामें मुख्य सेवा अव्यावृत्त होय यह कहे । तासों उतरती व्यावृत्त कहे । हरि में मन राखे । यह सुनत ही गदाधरदास ने सङ्कल्प किए जो-व्यावृत्ति कछु न करनी । पाछे श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों बिदा होइ ओरछा वे अपने घर आए । सो इनको व्याह तो भयो न हतो, मां बाप ह न हते । इनहू की अवस्था बरस तीस की हती । सो सगे सम्बंधीन सों कहे अब तुम और घर में जाइ रहौ, मैं वैष्णव भयो । मेरे तिहारे जल-व्यौहार नाहीं । तब और घर में जाइ रहे । गदाधरदास सिंगरो घर खासा करि सेवा श्रीमदन-मोहनजी की प्रीति सों करन लागे ।

वार्ता प्रसंग १ — सो गदाधरदास कों श्रीमदन-मोहनजी सानुभावता जतावते । आगे जजमान के घर जाते, जो चाहिये सो लें आवते । वैष्णव भये पाछे अव्यावृत्त से रहते । सो सब ठोर कौ जानो छोड़ दियो । जो आवे तामें निर्वाह करें । चित्त मानसी सेवा फलरूप में इन को लग्यो । “चेतस्तत्प्रवणं सेवा” या भाव में मगन रहें । तनुजा, वित्तजा जो बने सो करें । बहोत संग्रह करे नांही । जो आवे ताकी सामग्री करि श्रीमदनमोहनजी को भोग घरे । वैष्णव कों महाप्रसाद लिवाइ देते । या प्रकार त्याग पूर्वक रहते ।

सो एक दिन भगवद् इच्छा तें जजमान के घर तें कछु आयो नाहीं ।



भाव प्रकाश—ताकी कारण यह जो श्रीठाकुरजी ने इनकी परीक्षा लिए । जो अव्यावृत्त को संकल्प तो होना सहज ही है परन्तु न मिले तब धारज रहै यह महा कठिन है । तार्ते कछू न आयो ।

तब मंगला में जल की लोटी भोग धरे । सिंगार में, राज-भोग में जल ही धरे । पाछे उत्थापन में सेन पर्यन्त जल ही धरे । परन्तु उधारो न लिए ।

भाव प्रकाश—काहे तें यह व्यौहार हैं । और उधारो लेय जहाँ ताँई बाकी द्रव्य न देय तहाँ ताँई बाकी सेवा है । इनकी नाहीं । और काम को प्रमान नाहीं । उधारो लियो, देह छूटिजाय तो रिन माथे रहै, जन्म लेनो होइ । यह शास्त्र में कहे हैं । परन्तु इनके तो कालकी डर नांही । अव्यावृत्त श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके-ग्रन्थ को आश्रय किए ।

ऐस करत रात्रि प्रहर डेढ गई, सोइ रहे । परन्तु छाती में आगि सी लागी जा— आजु मेरे ठाकुर भूखे रहे ।

भाव प्रकाश—याकी हेतु यह जो— जदपि ये जल धरि के मानसी में सब आरोगाए हैं, श्रीठाकुरजी अरोगे हैं । काहे तें येह श्रीराधा सहचरीकी सखी हैं । 'कलकंठी' इनको नाम है । कुमारिका के जूथ मे हैं । इनको श्रीजमुनाजी को आश्रय है । राधा सहचरी के गान समय ये सुर भरत हैं । इनहूँ की कंठ बहोत सुन्दर हैं । तार्ते जमुनाजी के भाव सों सिंगरे भोग में जल ही धरे । तार्ते सिंगरी सामग्री भाव करि सिद्ध हैं । परन्तु या सामग्री में वैष्णव को समाधान नांही । सिंगरीइन्दिय



की सेवा नहीं, सामग्री हाथों धरै और व्रज भक्तन की मानस।  
हू करै। और श्रीठाकुरजी को न्यारो मनोरथ हू करै। यह  
पुष्टिमार्ग की रीति है। जो सामग्री हाथ सों भोग धरन में

प्रीति न होइ तो व्रज भक्तन के भाव हू छूटि जाई। ज्ञान मार्ग की रीति व्हे जाइ। “पत्रं पुष्पं, फलं, तोयं, यो मे भक्त्या प्रयच्छति”। या वाक्य में बोध अर्थ है। पर्यादा मार्गीय के भाव में पत्र, पुष्प, फल, जल जैसी वस्तुओं को धर्यो। नामग्री को आग्रह नांही है। और गीता में कहे जो भक्त धरै। यामें यह अर्थ जो भक्त होइ सो चारों वस्तु त्रिवेक पूर्वक धरै। स्नेही होय ताको भक्त कहिए। तामें पत्र जो पान तथा पोई के पात, अरु रुई (अरई) के पात जिनके पत्रोडा करि स्नेह सों सँवारि धरै। ज्ञानी को स्नेह नांही, सो मांठे करुई सगरे पत्ता धरै। और फूल में गुलाब के फूल को साँड में सामग्री करि प्रेम सों अरोगावै। फल सुन्दर मांठे करुवे चाखि के धरै। सो भक्त होय तो चाखै। जदपि पर्यादा में भीलनी सवरी हती, सो वन के फल को खाई के धरै, जो फल जहरी कोई कीरा को खायो होइ तो पहलें मार्क दुःख होइ। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी को मति हाइ। तब श्रीरामचन्द्रजी सराहना किए। जो एस फल मसरथ पिता के घर और जनक विदेहो के इहाँ व्याह में हू नाहि खाए। सो वहाँ एसी प्रीति नांही। भक्त सँवारि के धरौ ज्ञाना जैसे मिलै तैसे धरै। तारें गदाधरदास तो पुष्टिमार्गीय लीला संबंधो हैं जो भावपूर्वक जल धरें। परन्तु स्नेही हैं तारें छाता हैं आगि लागी जो आजु कछु न आयो। सो छाता में विरह रूप आगि लागी। जो—आजु कछु नाहि धर्यो जो - वैष्णव के लिवार बिना श्रीठाकुरजी भूखे ही हैं। या प्रकार को गूढ़भाव जिनके



हृदय को है । और श्रीठाकुरजी को विरह को दान करना है ताते कछू न आयो । सो छाती में विरह रूपी आगी लामी । मुख्य अधिकारी भए । जिनको विरह नांही उनको पुष्टि-मार्ग को फलनांही । या प्रकार डेढ़ प्रहर रात्रो गई ।

सो तब एक जजमान आयो । गदाधरदास को पुकारि, किवाड़ खोलाय के रुपया ४) और कछू वस्त्रादिक दियो । और कछो जो आजु मेरे सुद्ध श्राद्ध हतो ताकी दक्षिणा लेहु । यह कहि उह घर गयो । तब गदाधरदास को हृदय में विरह बहोत जो बेगिही कछू धरिए । यह भावसों एक रुपैया ले सामग्री लेनको बजारमें बेगे गए । सो एक हलवाई जबेबी करत हतो । सो देखत ही वासों पूछी यामेंते काहूको दीनों तो नाहीं । तब उन कही अब करी है; बेची नांही । तब रुपैया दै, कहै बेगि तोलदें । सो लेकै आइ घरमें न्हाइ, श्रीठाकुरजी को भोग धरी । पाछु श्रीठाकुरजी को पोढाइ वैष्णवनको बुलाई महा-प्रसाद सब लिवाइ दियो । आपु भूखेई सोई रहै । परन्तु मनमें सुख पाए । जो श्रीठाकुरजी आरोगे । और वैष्णव को नागो न परचो । पाछें तीन रुपया को सीधो सामान लाइ सामग्री करि भोग धरि पाछें श्रीठाकुरजी को पोढाइ वैष्णवन को बुलाई महा-प्रसाद की पातरि धरी । तब वैष्णव महाप्रसाद लेति बोलें, जो- गदाधरदास रात्रिकों तुम महाप्रसाद दिए सो यह सामग्री तो हमहु करत हैं परन्तु एसो स्वाद नाहीं होत । सो एसी क्रिया हमहु को बतावो । कैसे करी हती ? तब गदाधरदास



ने कही, कालि मेरे घर कछू न हतो । सो रात्रिकों रुपया चारि  
आए । एक रुपैया की जलेबी बजार सों लायो । या प्रकार  
सब कहें । तब सिंगरे वैष्णव गदाधरदास की ऊपर प्रसन्न भये ।

भावप्रकाश— ताकौ हेतु यह है जो— श्रीठाकुरजी  
श्रीआचार्यजी इनके ऊपर प्रसन्न हैं । सो सिंगरे वैष्णवन के  
हृदय में हैं । बुद्धि के प्रेरक श्रीकृष्ण हैं \* तातें निष्कपट शुद्ध  
भाव वारे वैष्णव पर कोई अप्रसन्न न होय । या प्रकार वैष्णव  
प्रसन्न भए । तब गदाधरदासजी ने एक कीर्तन गायो—

“गोविंद पद पल्लव सिरपर विराजमान ।  
तिनकों कहा कहि आवै सुखकी प्रमान ।  
व्रज दिनेस देख बसत कालानल हून असत,  
बिलसत मन हुलसत करि लीला रस पान ॥ १ ॥  
भीजे नित नैन रहत, हरि के गुनगान कहत,  
जानत नहिं त्रिविध ताप मानत नहिं आन ।  
तिनके मुख कमल दरस, पावन पहरैनु परस,  
अधम जन ‘गदाधर’ से पावत सन्मान ॥ २ ॥

जो मैं अधम जन हों परन्तु तुम भगवदीय हो सो मो  
सारिखे को सन्मान करत हो । या प्रकार वैष्णवन में और  
श्रीठाकुरजी में द्रढ प्रीति एक रसहती । तातें श्रीठाकुरजी  
और वैष्णव इनके बस हते । ऐसे गदाधरदास उत्तम  
भगवदीय है ।

---

\* बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णस्य पाद पद्म प्रसीधतु ।



वार्ता प्रसंग २— और एक दिन गदाधरदास ने वैष्णव महाप्रसाद को बुलाए हते । सिगरी सामग्री करी परन्तु साग कछू न हतो तब गदाधरदास ने वैष्णव बैठे हते तिनसों कही— एसो कोई वैष्णव है जो साग ले आवे ? सो माधोदास, बेनीदास के भाई जिनने वेस्या घर में राखी हती सो बोले, कहे तो मैं ले आऊं ।

भावप्रकास— ताको आसय यह जो मैं वेस्या राखी है मेरो लाया लेहुगे ?

तब गदाधरदास कहे ले आवो ।

भावप्रकास - सो गदाधरदास के हृदय में दोष दृष्टि नांही है । श्रीआचार्यजी को संबंध जानत हैं । तार्ते कहे ले आवो ।

तब बथुवा की भाजी ले आए । तब गदाधरदास प्रसन्न है कै कहे, बेगे सवारि देउ ।

भावप्रकास— यामें यह जताए जो प्रीति सों लाए । तब सँवारिवे की मुख्य सेवा हू दिण । तामें जताए जो सेवा प्रीति सों करै । कैसे हू होउ ताके हाथ को श्रीठाकुरजी प्रीति सों अंगीकार करें ।

पाछे सामग्री सिद्ध करी श्रीठाकुरजी को भोग धरें । समय भए भोग सराइ अनोसर करि सिगरे वैष्णवन को महाप्रसाद की पातरि धरें । सो सब वैष्णव महाप्रसाद लेत साग बखान्यो । तब गदाधरदास परोसत माधवदास पास आए तब



प्रसन्न होइकै माधोदास सों केहे जो तिहारो लायो साग  
श्रीठाकुरजी आरोगे । तातैं तोकों हरिभक्ति दृढ होऊ । यह  
आसीर्वाद दिए ।

भावप्रकाश— यामें यह जताए जो रंच सेवा साग की  
माधोदास किए । तातैं श्रीठाकुरजी प्रीतिसों आरोगे । यह तब  
जानिए जो वैष्णव प्रसाद लेइ सराहना करें । तब दोऊ सेवा  
सिद्ध होय और भगवदीय समान उदार कोऊ नाही जो रंच  
साग की सेवा किए जनम जनम की संसार मिटाइ हरि भक्ति  
करि दिए । ऐसे गदाधरदास भगवदीय हे ।

वार्ता प्रसंग ३- और एक-दिन गांव के बाहिर  
बनजारा आइ उतरयो । ताकों बैल चाहिए सो गाम में आइ  
दस पंद्रह गदाधरदास के सगे ब्राह्मण बैठे हते । सो गदाधरदास  
की ईर्षा करते जो भगत भयो है । सो बनजारे ने उन ब्राह्मण  
सों पूछयो हमकों बैल मोलकों लेने सो कहां मिलेंगे ? तब  
उन ब्राह्मण ने कही गदाधरदास भगत है उनके यहां जितने  
चाहिए तितने लेहु । परन्तु योंतो वे न देइंगे । उनके पास  
रुपैया दे आवो । कहियो हमकों जहां सो चाहो तहां सों  
मंगवाइ देहु । पाछे दुसरे दिन जइयो । तब बैल तुमकों  
मिलेंगे । तब बनजारा १००) रुपया ले गदाधरदास के  
पास गयो । कह्यो हमको बैल लेने हैं । सो तुम मंगाइ देहु ।  
तब गदाधर दास ने कही - बाबा हमारे बैल  
कहां ? गाँउ में पूछो, हमतो जानत नाही । तब बनजारे ने  
१००) रुपैया गदाधरदास के आगे धरि दिए । उठिचह्यो  
कह्यो कालि बैल लेन आऊँगो । मोसों गाँउ के लोगन ने



बा भांति बताए हैं । तब गदाधरदास ने जानी जो हमारी जाति के ने याकों बहकायो होइगो । तब गदाधरदास ने कही काल्हि मध्याह्न समेतो न देखोगे । तौऊ बनजारा प्रसन्न होइके कहै; जो आछो । यह रुपैया राखो ।

पाछें गदाधरदासजी १००) रुपैया की सामग्री मगाए । सिंगरे पाक सिद्ध करि दूसरे दिन भोग धरे । फेरि सिंगरे वैष्णवन को परोसत हते मध्याह्न सभे तब बनजारा आयो । तब गदाधरदास ने कही भले समय आयो । ऐ सब ठाकुरजी के बेल हैं । यामें बहुरा हू हैं, तरुन हूं हैं । जैसे चाहिए तैसे देखि लेहु ।

भावप्रकाश— याको आसय यह- बेल धर्म को रूप है । सो गदाधरदास कहे आजुके काल में धर्म इन वैष्णवन में हैं । सो धर्म लेनो होइ तो देखिले । बेलको यह जा कारज में लगावै सोई करै । नाही न करै । जो सबावै सोई खावै । संतोष करै तैसे ये वैष्णव हैं । जाजा कार्य में चलत हैं सो प्राप्त होय । तामें संतोष हैं ।

सो बनजारे की सामग्री श्रीठाकुरजी अरोगे । वैष्णव महाप्रसाद लिए । और गदाधरदास प्रसन्न होइके कहै । सो उह बनजारे को ज्ञान होइगयो । जो एतो भगवद्भक्त हैं । गांउ के लोगन ने मसखरी करी, लराइवे को उपाइ करयो हतो । परन्तु मेरे बड़े भाग्य हैं । जो या मिष मो सारिखे की पापी सत्ता अंगीकार किए । अब मैं इनकी सरन



जाऊँतो । कृतार्थ होऊँ । तब साष्टांग दंडवत् गदाधरदास कों  
करि कह्यो मैं रात्रि दिन संसार समुद्र में भटकत हों । अब  
तिहारी सरन आयो हुं । मेरो उद्धार करो । तब गदाधरदास  
ने कही हमतो सेवक करत नाहीं । परन्तु ए सगरे वैष्णव  
और हम श्रीआचार्यजी के सेवक हैं, सो अडेल में बिराजत  
हैं, तिनके सेवक होउ । पाछें गदाधरदास ने दैवीजीव जानि  
वाको महाप्रसाद दिए । तब वनजारा अडेल आई श्रीआचार्य  
जी पास नाम पाइ कृतार्थ भयो ।

भावप्रकाश— यामें यह जताए जो भगवदीय के एकक्षण  
के संग तें जो उत्तम जीव होय तो वाकौ कार्य है जाइ  
गदाधरदास एसे भगवदीय हे इनके हृदय कौ अगाध भाव है  
सो कैसे करयो जाय सो वे गदाधरदासजी श्री आचार्यजी  
महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हे । तारें इनकी बार्ता  
को पार नहीं सो कहाँ ताई लिखिए । वैष्णव ८ ( ८४ मध्ये )  
( ६६ मध्ये वैष्णव संख्या १६ )

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक बेनीदास माधवदास  
दोऊ भाई छत्री हते कडा में रहते तिनकी वार्ता और ताकौ  
भाव कहत हैं—

बेनीदास वृषभानजो के गाडा कौ बैल है । सो 'ऋषभ'  
श्रीहरिरायजी सखा कों सींग मारयो सो तीन दिन  
कृत 'ऋषभ' सखा दुख पायो । ताके शाप  
भावप्रकाश तें गिरे भूमि पर । और माधवदास  
'रतनप्रभा' ललिताजी की सखी है । सो इहां भगवद् इच्छा  
ते दोऊ भाई भए । परन्तु मन मिले नाहीं । सो माधौदास ने  
वेस्या घर में राखी हती, सो वैष्णव सब निंदा करते । परन्तु



उह वैष्णव देवी हती। चंद्रावलीजी की सखी 'चन्द्रलता' लीलामें इनको नाम हतो। सो अलौकिक संबंध बिना देवी जीव की दृढ़ प्रीति बंधे नांही।

वार्ताप्रसंग १— पाछें एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु कडा में पधारे। तब सिंगरे वैष्णव दरसन कों आए। पाछें माधौदास सुने। सोऊ आय श्रीआचार्यजी कों दंडवत् कियो। तब सिंगरे वैष्णव दरसन कों आए। तब सिंगरे वैष्णवन नें श्रीआचार्यजी सों कही— महाराज माधौदास ने वेस्या राखी है। तब श्रीआचार्यजी पूछे, क्यों माधौदास वेस्या राखी है ? तब माधौदास ने कही, महाराज मेरो मन वाके ऊपर आसक्त है। तातें राखी है। या प्रकार तीनि बेर श्रीआचार्यजी पूछे। तीनों बेर माधवदास ने कही महाराज ! मेरो मन वा पर आसक्ते है, तातें राखी है। तब श्रीआचार्य जी चुप है रहे।

भावप्रकाश— याको अभिप्राय यह, जो प्रथम वैष्णव निंदा करते। सोऊ माधौदास कों वेस्या की संग छुड़ावन कों। जो निंदाते लाज पाइ छोड़ेंगे। यातें करते। अपने भाई जानि कें, ईर्ष्या द्वेष भाव नाहिं हतो। जो द्वेष होइ तो सिंगरेन कों बाधक होई। पाछें श्रीआचार्यजी सों वैष्णवन ने कही। सोऊ माधौदास के लिए जो श्रीआचार्यजी के कहे तें छूटै तो आछो। लौकिक में वैष्णव की निंदा होत हैं सो छूटै। सो श्रीआचार्यजी सर्व लीला को प्रकार जानत हैं। तातें कहैं क्यों रे माधौदास ! तू वेस्या राखे है ? यह कही। यह कहते- जो



वेभ्या को संग छोड़ दे तोकों बाधक है। तो माधौदास छोड़ि देते। आपु बड़ाई करी। क्यों रे माधौदास वेभ्या सरीखी हीन को अंगीकार करि राखे? संसार में बड़ी जात हती। लौकिक सोंउ न डरप्यी? तब माधौदास कहे- मन वापर आसक्त रहे गयो। जो याकों कहूं ठिकानो नाहीं है तातें संसार की लाज सरम वैष्णव कीहू कानि छोड़ि राखी है। सो मैं नाहीं राखी मनके प्रेरक आपु हो। आपुही वापर आसक्त कियो सो आपुही राखी है। या प्रकार तीनि बार कहे। सो यातें जो- साँची प्रीति होइगी (तो) एक दृढ बचन साँचे निकसेंगे। सो साँचे ही तीनिबार माधौदास ने कही। तब आपु प्रसन्न भए। जो एसे टेक के वैष्णव दुर्लभ हैं।

तब सिंगरे वैष्णव श्रीआचार्यजी महाप्रभुनसों कहे- महाराज ! अब ताई तो आपु की कानि हती। अब आपु सों हू कहि छूट्यो। आपु वासों कछू कहे नांही?

भावप्रकाश— यह कहे जो- यातें जो वैष्णवन को बड़ी चिंता भई जो आपु आगे कहि दियो। अब याकी कैसे कल्याण होइगी? यह चिंता करि फेरि वैष्णव ने कही आपु यासों कछू कहे नांही? सो कहो, यह जताए।

तब श्रीआचार्यजी वैष्णवन को समाधान कियो। तुम चिंता मति को। याको मन वापर आसक्त है सो श्रीठाकुरजी को फेरत कितनीक बार लगेगी। और गदाधरदास ने याकों आसीर्वाद दियो है जो हरि भक्ति दृढ होइगी सोई यह माधौदास है।



भावप्रकाशः—यह कहि यह जताए जो याकी चिन्ता तुम मति करो । यह संसार में परिवेवारो नाहीं है । बेस्या आदि औरहू कों संसार तें काढन वारो है । गदाधरदास ने दढ़ भक्ति दीनी सो मैंने दीनी । अब जो मैं हठ करिके छूड़ाऊं तो गदाधरदास भगवदीय की कृपा केसैं जानी जाय । यातें गदाधर दास ने हरि भक्ति दीनी सो दढ़ होइगी । तुम याकी चिन्ता मति करो ।

तब सब वैष्णव प्रसन्न होइके चुप है रहे । ता पाछे भाघोदास को मन फिरयो । सो वेश्या दूरि कीनी । वैष्णव की रीति मर्यादा में चलन लागे । भले वैष्णव भए ।

भाव प्रकाश—यामें यह जताए जो वेश्या कों दूरि कीनी सो यह अर्थ वेस्या कों बताए जो तू श्री गुसाईं जी की सखी है । जब श्री गुसाईं जी पधारेंगे तब तेरो कार्य होइगो । तातें अब हमसों तो सों न बने । यह कहि के काढे । तब वह वेस्या बिना घी की चुपरी रुखी अँगाखरी खाइ के निर्वाह पन्द्रह वर्ष लों कियो । पाछें श्रीगुसाईं जी कड़ा में पधारे, तब वेस्या ने सुनी । तब श्रीगुसाईंजी सों आई विनती करो, महाराज ! मेरो अङ्गीकार करिए । तब श्रीगुसाईं जी कहे हम वेश्या कों सेवक नाहीं करन । तब घर आई के परि रह्यो । अन्न, जल छोड़ दियो । सो आठ दिन श्रीगुसाईंजी कड़ा में रहे । दूरि तें वेस्या दरसन करि जाइ । पाछें नोमैं दिन श्रीगुसाईंजी पधारन लागे । तब वेस्या दोह मनुष्यन के हाथ पकरि के आई । कह्यो महाराज ! आजु नोमो दिन है । बिना अन्नजल मेरे अब प्राण छूटेंगे, जो आपु अङ्गीकार न करोगे । तब श्रीगुसाईंजी ने जानी जो अब याकी दोष दूरि भयो सुद्ध भई । तब उह वेस्या कों नाम सुनायो । पाछें उह ब्रह्मसम्बन्ध की विनती



करो, महाराज ! माधौदास कहि गए हैं जो तू श्रीगुसाईंजी की दासी है । सो आप के लिये पन्द्रह बरस लों खूना अङ्गा-करी खाय देह राखी । अब नौमैं दिन तें जल हू त्यागो है । और जो मोकों आज्ञा करो सो मैं करों । मैं तो दुष्ट हों, परन्तु माधौदास के सम्बन्ध तें मोकों श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के दरसन हू भये, और आप के हू भए । तातें मोकों ब्रह्मसम्बन्ध कराइ मेरे माथे भगवत् सेवा पधरावो, तो मेरे प्रान रहेंगे । तब श्रीगुसाईंजी सुद्ध भाव देखिके ब्रह्मसम्बन्ध कराए । लालजी पधराय दिये । वैष्णवन लों कहे याकों रीति भांति सब बताइ दीजो, ता प्रकार यह सेवा करै । ऐसैं करत वेस्या कों अटकाव भयो । सो वैष्णव तो बरजे जो चारि दिन लों कछू मति जलादि छुगो । परन्तु वाकों विरह प्रेम बहोत सो रह्यो न जाइ, अटकाव में सेवा करै । पाछें पांचवें दिन अपरस काढे । श्रीठाकुरजी कों पञ्चामृत स्नान करावै । सो वैष्णवनने-जुनसों व्यवहार छोडि दियो । पाछें कछूक दिनमें श्रीगुसाईंजी कड़ा पधारे तब सबनने श्रीगुसाईंजी लों कही, महाराज ! वह वेस्या अटकाव में हू बहोत बरजे परन्तु मानत नाहीं, सेवा करत है । पाछें वेस्या लों ऐसे सुने श्रीगुसाईंजी निकट बुलाइ कहे—अटकाव में लोढी क्यों भरत हो ? तब वेस्या ने कही महाराज ! मेरे जितने रोम हैं इतने धनी लौकिक में किए । सब आपकी कृपा तें छूटे । अब एक धनी अलौकिक आपु करि दिये, तिन बिना कैसे चारि दिन रह्यो जाइ ? सो आपु तो अन्तर्यामी हो । एक क्षण को अन्तराइ सह्यो नहि जात है । अरु पांचवे दिन अपरस हू काढि पञ्चामृत लों श्रीठाकुरजी कों स्नान करावत हों । यह मर्यादा हू राखत हों । अब आप सब के अन्तर की जानत हो । जो आज्ञा देउ सो करों । तब श्रीगुसाईंजी याकं ऊपर श्रीठाकुरजी प्रसन्न देखि कै कहे जैसे करति है तैसेई करियो । या प्रकार वाकी समा-



धान करि घर पठाई । जो बेगि जा, तेरे लिए श्री ठाकुर जी बैठि रहे हैं । तब वह दंडोत करिके गई ।

पाछें श्रीगुसांईजी वैष्णवन सों कहें, जो वह बेश्या करै, वासों मति कछू कहियो । वाकी देखादेखी और कोई मति करियो । वापर श्रीठाकुर जी वाही भाँति प्रसन्न हैं तुम पर मर्यादा ही सों प्रसन्न होंगे । या प्रकार उह बेश्या को माधौदास के संग तें प्रेम भयो ।

वार्ता प्रसंग २— माधौदास बेनीदास सों मिलि कै रहते । सो एक दिन मोतीकी माला बहुत मोल की भारी बिकान आई । सो देखिके माधौदास ने बेनीदास सों कही, यह माला श्रीनिवनीताप्रियजी लाइक है, सो लेहुं । तब बेनीदास ने कही, माला की कहा है । हमारे जो कुछ वस्तु है सो सब श्रीठाकुरजी की ही है । यह कहिके बात टारि दिए ।

भाव प्रकाश—यामें यह जताए, जो संसार में आसक्त होय सो लोगन के दिखाइवे के लिये सब भी ठाकुरजी को कहै । परन्तु श्रीठाकुर जी के लिए खर्च न करै ।

तब माधौदास ने कही जो— सब श्रीठाकुरजी को है तो श्रीठाकुरजी के लिए माला क्यों नाहि लेत ? तब भाई बेनीदास ने कही जों हमसों कैसे लीनी जाइ ? तब माधौदास ने कही जो मेरो द्रव्य बाँटि देहु । मैं तुमसों न्यारो रहंगो ।

भाव प्रकाश—यामें यह कहै— तुम बैल हो, सो केवल गृहस्थाश्रम को ध्यौहार लादो । हों तो न्यारो रहि मनोरथ ककंगो ।



सो द्रव्य आधो बाटिके न्यारे भए । सो थोरो द्रव्य ।  
हतो सो माला लीनी न गई । परन्तु मन मे यह जो- एसी  
श्री नवनीत प्रियजी कों अंगीकार होई । सो द्रव्य लें  
के दक्षिण कमावन गए । और यह माला कों माधोदास ने  
अलौकिक अंगीकार विचारें । सो लौकिक में जाहि नाहि  
सो प्रयाग में बिकन आई । तब प्रयाग के वैष्णव मोल लें  
श्री आचार्यजी कों दिए । श्री आचार्यजी ने श्री नवनीत  
प्रियजी कों पहराए ।

उहां माधोदास नें द्रव्य बहोत कमायो सो पहिली  
माला तें उत्तम मोल लेके चले । सो मारग में एक बड़ी  
नदी आई । तहां नाव पर बैठे और हु बहोत लोग बैठे  
और नाव मध धारा में जब आई तब श्रीनवनीतप्रियजी  
लाल छरी लेकै आए । सो एक माधोदास को दरसन भए  
तब श्रीमुख तें कहे नाव हुबाऊँ ? तब माधोदास कहै  
निजेच्छातः करिष्यति । तब श्रीनवनीतप्रियजी कहै तू  
कहां गयो हतो तब माधोदास कहै माला लेन गयो हों ।  
तब श्रीनवनीतप्रियजी कहैं, कहा हमारे माला नाहि है ?  
दोखि उहि माला । श्रीआचार्यजी घराए हैं और मेरे बहो  
तेरी हैं । तब माधोदास कही महाराज ! आपके बहोतेरी  
हैं परि सेवक को यह धर्म नाहि जो बैठे रहे । उद्यम करनो ।  
तब नाव हुबत लें रही ।



भाव प्रकाश—श्रीठाकुर जी नाव पर आइकें कहें सो बातें जो तेरे पीछे मोकों दछिन जानो परयो, सो तू क्यों गयो ? मेरे कहा माला नाहीं है ? तार्ते नाव डुबाऊं तो तू कहा करै ? मनोरथ तेरो धर्यो रहै । तब माधौदास कहै “निजेच्छातः करिष्याति” । सो “निजानां सेवकानां इच्छा करिष्यति” । जो भक्तन की इच्छा होइ सो ही सदा आपु करत आए हो । “भक्त मनोरथ पूरकाय नमः” को आप नाम है ।\* सो माला को अङ्गीकारि श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के द्वारा होइ । ता पाछे सरीर रूपी नाव डूबे ताकी मोकों कछु चिन्ता नाहीं है । जब तिहारी इच्छा में आवै तब डुबाइयो । और तिहारे माला बहोत हैं सो यामें मेरो कहा उद्यम । जोतिहारे मनोरथ कछु बनि आवैतो उद्यम सुफल है । नाहि तो गृहस्थाश्रम हू वृथा पषि मरनो है । तार्ते सेवक की धर्म यह जो तिहारे अङ्गीकार को मनोरथ करत रहै । तब श्री-ठाकुरजी नाव डूबन तें राखी । नाहीं तो जैसे श्रीठाकुरजी नाव डुबावन की कही । तैसे माधौदास हू भगवान इच्छा कहते । भक्त की आज्ञा होइ तो डूबे ही । परन्तु निजेच्छातः कहै । निज जो भक्त तिनकी इच्छा माला अङ्गीकार करन की । या प्रकार कहै । और माधौदास कों तो नाव डूबन की चिन्ता नाहीं । परन्तु और हू नाव पर बैठे सो भक्त के संग बचे चहिये । वे कैसे डूबन माधौदास देहि ? तार्ते भगवदीय की बानी गूढ है । भगवान्, समझें, के कृपा होइ सो समुझें और नाव डाली इती तब सबको सुख सुखि गयो । मलाह ने कही, हमारे हाथ नाही है । ता समय माधौदास को मन प्रसन्न

---

\*“दास चब्रभुज प्रभु के निजमत चलत लाल गिर धरन” ओ कथन पशु अत्रे स्मर्तव्य छे. —सम्पादक



है ली नाव डूबत तें रही । तब सबनमें कही जो ए महापुरुष  
बैठे हैं तातें नाव बची । नाहि तो सबरे डूबते ।

पाछें पार उतरें । कछुक दिनन में श्रीआचार्यजी  
महाप्रभुन के पास माधोदास आए । तब माधोदास सों  
श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने कही नाव डूबत तें कैसे रही ?  
तब माधोदास ने सब समाचार श्रीआचार्य जी सों कहे ।  
तब श्री आचार्यजी सिंगरे वैष्णवन सों कहे । जो देखो  
यह वही माधोदास है कैसी टेक को वैष्णव भयो ता दिन  
तें माला को नाम 'माधोदास' कहे सो सिंगरे कहते ।

भाव प्रकाश—यद्य कहि यह जताए जैसे लीला में इन  
को नाम 'रत्नप्रभा' तैसे ही रतन जैसे प्रकास माधो दास की  
वार्ता को है । एसे माधोदास भगवदीय हैं । या वार्ता में  
भगवदीय के आसीर्वाद को उत्कर्ष प्रगट कियो ।

सो माधोदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र  
भगवदीय है । तातें इनकी वार्ता को पार नाहि सो कहां  
ताई लिखिए । वैष्णव ६ ( ८४ मध्ये ) ६६ मध्ये  
वैष्णव १७ भए )

—————

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक हरिवंश  
पाठक सारस्वत आश्रम कासी के, तिनकी वार्ता और ताको  
भाव कहत हैं—



हरिनाथजी कृत भाष्य प्रकाश- ए लीला में “गति उत्तालिका” बिसाखाजी की सुखी है। सगरी सेवा तत्काल सामग्री सिद्ध करत हैं। तार्ते इनकी चाल इनकी क्रिया उतावली सो वेग करत हैं। तार्ते बिसाखाजी इनपर बहोत प्रसन्न रहते।

सो हरिवंस पाठक पहलें गणेश के उपासक हते। सो जब श्रीआचार्यजी ‘पत्रावलंबन’ कासी में किए। पंडितन को जीतें तब हरिवंस पाठक के मन में आई जो मैं हूँ श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के दरसन करि आऊँ। सो दरसन को आप। तब विप्र रूप देखिकें मन में आई जो ए ऊ ब्राह्मण हैं हम हूँ ब्राह्मण हैं। ए पंडित हैं। सो मेरे कहा काम है। मेरे गणेश के दरसन में ढोल लगे सो ठीक नाहि हैं। यह बिचारि दूरि तें देखि पाछे फिरे। सो घर में आई गणेश की पूजा की सामान लै चलन लागे। सो द्वार पर ठोकर लगी, गिरि परे सो मूर्छा आई गई। तब गणेश ने सपने में हरिवंस पाठक सो कहें, तू श्रीआचार्यजी के दरसन करे बिना मेरे पास आवत हतो सो मैं तेरो मुंह न देखोंगो श्रीआचार्यजी को अपराध कियो। श्रीआचार्यजी पूर्णपुरुषोत्तम हैं। तिनसों अपराध क्षमा कराइ मेरे पास आयो। तब हरिवंस पाठक को सरीर की सुधि भई। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन पास दोरयो आयो। दण्डवत करि बिनती करी, महाराज ! आप पूर्णपुरुषोत्तम हो, मैं नहि जान्यो। अब मेरो अपराध क्षमा करि सरन लेहु। तब श्रीआचार्यजी कहें हम हूँ ब्राह्मण हैं तुम हूँ ब्राह्मण हो। सरन आवे की क्यों कहत हो ? तब हरिवंस पाठक ने कही महाराज ! हम तो अज्ञानी जीव हैं, संसार समुद्र में पड़े हैं। सो आप के स्वरूप को कहा हम जानें ? हम तो गणेश के उपासक हैं। सो गणेश हूँ आप के अपराध सो



डरघत हैं । तातें मोकों तिहारे पास पठाए । जो अपराध छुमा कराइ आवो । सो मैं अब जान्यो जो हम सों बड़े आप हो, अब मोकों सरन लोहू । तब श्रीआचार्यजी सेठ पुरुषोत्तमदास के इहाँ उतरते हते । तहां हरिवंस पाठक को नाम सुनाए । तब हरिवंस पाठक ने बिनती करी महाराज ! घर में स्त्री है एक बेढा एक बेटी है । ताकों अङ्गीकार करिये । तब श्रीआचार्य ने कही तुम भगवत् स्वरूप कहूं ते लावो । तब तेरे घर पधारि सबको नाम निवेदन कराइ श्रीठाकुर जी पधारय देंगे । तिनकी तुम सेवा करियो और की संवामति करियो । तब हरिवंस पाठक ने कहा महाराज पुरुषोत्तम पाये पाछे ऐसो को अभागो है जो और देवता के पाछे द्वार भटकेगो । यह कहि बजार में आई कछू न्योछावर दे, एक छोटे से लालजी को स्वरूप लियो । सो श्रीआचार्यजी के पास आय बिनती करी, महाराज अब कृपा करिके वेगि पधारिए । काहे तें सरीर को भरोसो नाहीं और कदाचित कोई कौ काल आई जाइ तो जीव कौ अकाज होइ । यह आरति देखि श्रीआचार्यजी महाप्रभु प्रसन्न होइ हरिवंस पाठक के घर पधारे । सिगरी अपरस सिद्धि कराई । सिगरे कुटुम्ब कों नामनिवेदन कराइ श्रीठाकुरजी कों पञ्चामृत सों स्नान कराइ पाट बैठारे । पाछें आप पाक करि भोग धरि भोजन किए । सबन कों जूठनि धरी । पाछे आप सेठ पुरुषोत्तमदास के घर पाँव धारे ।

पाछें आप पृथ्वी-परिक्रमा कों पधारे । तब हरिवंस पाठक सों कहे जो सन्देह होइ सो सेठ पुरुषोत्तमदास सों पूछि लीजो । सो हरिवंस पाठक सेवा भली भाँति सों करते । श्रीठाकुरजी सानुभावता जनावन लागे ।



वार्ता प्रसंग—सो एक समय हरिवंस पाठक पटना ब्यौहार को गए होते । सो पटना के हाकिम सों बहोत मिलापहतो । सो वह हाकिम मनमें अपने में जाने जो एकछु मांगे तो मैं इनको देंऊँ सो एक दिन उह हाकिम ने कही मैं तुम ऊपर बहुत प्रसन्न हों, तातैं तुम जो कछु मांगो सो मैं देहुं । तब हरिवंस पाठक ने कही, कोई दिन कछु काम परैगो तो कहूंगो । सो ऐसे करत डोल उत्सव के दिन निकट आए । तब श्रीठाकुरजी ने हरिवंस पाठक सों जताई जो तू डोल मोकों न भुलावेगो ? तब हरिवंस पाठक मनमें विचारे अब कहा करिए दिन थोरे रहे, चखेसो तो न पहोचिये तब वह हाकिम पास गए और कहें कछु मांगत है सो मोकों दियो चाहिए तब वह हाकिम ने कही जो चाहो सो मांगो । तब हरिवंस ने कही जो मोको दिन ३ में कासी पहुँचो चाहिए । तब वह हाकिम न घोड़ा और मनुष्य साथ दिए । सो मजालि मजालि पर घोड़ा की ढाक पर चले जाई घोड़ा मनुष्य पलटत जाई । सो ऐसे करत दूसरे दिन आई पहुँचे । रात्रि को सब डोल की तयारी सिद्ध करि राखी दूसरे दिन भुलाए बड़ो सुख भयो । पाँच दिन दस पंद्रह रहीके पटना आए । तब वह हाकिम ने हरिवंस पाठक सों पूछी एसो घर में कहा जरूरी कामहतो जो यह मांग्यो कछु द्रव्यादिक मांगते, तो लाख रुपये की



रीफि देतो । तब हरिवंश पाठक ने कही जो हम ग्रहस्थ हैं ।  
अनेक काम घर के हैं । सो गयो हतो । या प्रकार अपना  
धर्म गोप्य रखे । ऐसे भगवदीय है । ता पाछे बड़े उत्सव,  
छोट उत्सव सिंगेर घर आइ के करते ।

भाष प्रकाशः—याम यह सिद्धांत जताए जो मनेही  
हाइ सो उत्सव अपने ठाकुर पास करे तो ठाकुर प्रसन्न रहें,  
और श्री ठाकुर जो की सेवा को प्रकार काइ सो कहनो माही  
जैसे हरिवंश पाठक उह हाकिम सो बहुत न कहे घरह में  
अधपि वैष्णव हते तऊ श्री ठाकुर जी के अनुग्रह प्राप्त नाही  
कही । वैष्णव दस ( ८४ मध्ये ) ( १६ मध्ये वैष्णव १८ मध्ये )

सो हरिवंश पाठक श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे  
कृपापात्र भगवदीय है । ताते इनकी वार्ता को पार नहीं सो  
कहां तांइ लिखिये ।

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुजी के सेवक गोविंददास  
भल्ला चूत्री थानेश्वर में रहते तिनकी वार्ता और ताको  
भाव कहत हैं ।

श्री हरिराय भी कृप भाष प्रकाश—सो गोविंददास  
थानेश्वर में सिपाहिगीर करते हाथपार बांधते ।  
थानेश्वर के हाकिम पास रहते । रुपैया पांच साल को  
रोज पावते । सो थानेश्वर में श्रीआचार्य जी पधारे ।  
तब थानेश्वर में बहोत जांव सरन आए । तब गोविंददास  
भल्लाने श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सो बिनती करी, जो महाभाग !  
मेरे द्रव्य बहोत है, कहा करूँ । तब श्री आचार्य जी ने कही-



भगवत सेवा करो। तब गोविंददास भल्ला ने कही- महाराज  
 स्त्री अनुकूल नांही है। ताको आसय यह जो देवी नांही है  
 तब श्रीआचार्यजी कहें स्त्री को त्याग कर। तब गोविंददास  
 ने स्त्री को त्याग करि सिंगरो द्रव्य लाइ श्रीआचार्य जी  
 महाप्रभुन सों बिनता करी, महाराज ! द्रव्य को कहा करूं  
 स्त्री को तो त्याग करयो। तब श्री आचार्यजी नें कहा यह  
 द्रव्य के चार भाग करि एक भाग श्रीनाथजी की भेटकरि  
 एक भाग स्त्री को दें। यातें जो- व्याह भयो ताकी छोड़े को  
 दोष पंभी दिये छूट्यो। दो भाग तू लेके भगवत सेवा कर।  
 तब गोविंददास भल्ला नें कही, महाराज ! कछु आपु अंगीकार  
 करिए। तब श्रीआचार्य जी नें कहा, भलो, एक भाग हम को  
 दे। तब गोविंददास ने द्रव्य के चारि भाग करे एक भाग  
 श्रीनाथजी को भेट किए एक भाग श्रीआचार्यजी महाप्रभुन  
 को भेट कियो। एक भाग स्त्री को दियो। एक भाग को  
 द्रव्य ले महावन में आइ रह्यो। सो यातें जो गांव में स्त्री  
 को प्रतिबध परे। तातें महावन आइ मथुरानाथ जी की  
 सेवा करन लागे।

वार्ता प्रसंग १—सो गोविंददास महावन में नित्य  
 के चौबीस टका की सामग्री करें, भोग धरें। उहांइ मर्यादा  
 भार्गीय वैष्णव को खिवाय देई बचै सो गाइको खवाइ देई  
 तामें तें आपु कछु न लेंई। आपु न्यारि लटि करि भोग  
 धरि खांय।

भाव प्रकाश—याको आसय यह जो-महावन में नन्द  
 रायजी को देवालय कराइ ब्राह्मण की पूजा मोंपी हती। सो



मर्यादा रीति सों करते । खरच नन्दराय जी देते । सो डाकुर होते । ब्राह्मण पूजा करते । सो देवालय को आपु कैसे लें ? तातें न्यारी लीढी करि मन ही सों भोग धरि लेते ।

एसे करत द्रव्य सब निपट्यो तब श्रीनाथजीद्वारि आइ श्रीगोवर्द्धनधर को परचारगी करन लागे । दाइ समय के पात्र मांजें । रात्रि पहर डेढ रहे पाबुली, तब उठि देह कृत्य करि न्हाइ के गागरि ले मथुरा आइ श्रीयमुना जल की गामार भरि राजभोग पहले आधसे । पात्र सब मांजि रसोइ पोति अपनी सब सेवा सों पहोंचि पर्वत तें नीचे आई, तिलक षोड माला उतारि गांठि बांधि गोवर्धन के आसपास सो कोरी भिक्षा मांगि लावते । सो सेर पांच सात को आहार हू हतो । सो आहार लाइक आवे तब आइके अपने हाथ सों पीस रोटी करि श्रीगोवर्द्धनधर की ध्वजा को दिखाइ चरणामृत मिलाइ कें लेते । पाछे सेनभोग के पात्र मांजने । रसोई पोति सेवा सों पहोंचि सैन करते । या प्रकार सेवा करते । परन्तु श्री गोवर्द्धननाथजी को आछो न लागतो ।

भाव प्रकाश—ताको कारन यह जो भाव प्रीति सों ऐसी सेवा करें, जो श्री गोवर्द्धनधर वाके पाछे लगें डालते परन्तु गोविंददास भग्ना तामसी होते, सो अहंकार सों करते । स्त्री को त्याग हू अहंकार सों करयो । ब्रह्मचर्य में हू चौबिस व्रत की सामग्री रोज करते । सो अहंकार सों करते । इहां हू सिगरी सेवा अहंकार सों करते । सरीर को कष्ट पावते ।



है ? तब श्रीगोवर्धनधर ने कही, बिहरो सेवक मेको बहुत सिखावन है । तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु ने सिंगरे सेवक बुलाइ सेवा टहल महाप्रसाद की पूछे । सो सब सों भिचा दिये जो अहंकार मति कारिजे । तब गोविंददास से पूछे सो वे सब कहें । तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें श्रीनाथजी की रसोई में सिंगरे सेवक महाप्रसाद लेत हैं । तुमहू लिये करो ।

भाव प्रकाश—यह कहि यह जताए जो सिंगरे सेवक की रीति चलो । अहंकार छोड़ो । और प्रभुअकिलष्ट कर्मा है दुःख पाय अहंकार सों करिए सो प्रभु को भावें नाहीं ।

तब गोविंददास ने कही महाराज ! देवअंस कैसे लेहु

भाव प्रकाश—यामें यह भाव सों कहें जो सिंगरे सेवक अंस लेत हैं मैं कैसे लेऊँ !

तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें जो हमारी रसोई में महाप्रसाद लेउ ।

भाव प्रकाश—ताका आशय यह जं आपकी रसोई छोड़, यह कहि यह जताए जो श्री गोवर्धनधर की सेवा छोड़ि हमारी करो । इहां रहो । सब सेवकन सों मिलिके चलो तो निर्वाह होय नाहीं तो हमारे पास रहो महाप्रसाद लेहु ।

तब गोविंददास फिर अहंकार करि कहें देव-अंस, गुरु अंस कैसे लेहुं । तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुने कही जो सेवा छोड़ि देउ ।



भाव प्रकाश—बामें यह बताए जो श्रीनाथ जी के यहां अहंकार किए तब सहज में सेवा छूटि गई सौ सेवा छोड़ि दीनी परन्तु आज्ञा न मानी। तातें श्रीगोकुलनाथजी कहे क्षत्री अहंकारि करि सेवा छोड़ि दीनी बाको आसय यह जो श्री गोकुलनाथजी को अहंकार प्रिय नाहीं है। 'तामसा ना अधो-मतिः' काहेतें अहङ्कार ताम्र भाव में विरोधी हैं, तातें क्षत्री अहंकारी कहे। ताको आसय यह और क्षत्री सेवक बहोत भए परन्तु अहङ्कार क्षत्रीपने को छोड़ि दिए। और इनकों वैष्णव नाहीं कहे "क्षत्री अहङ्कारों" कहे सो क्षत्रीपनो रासहू भए पैं नाम न भयो गुरु आगें। तातें उत्तम कुल-भद बाधक दिखाए। जो एक दिन अहङ्कार सों सेवा छूटे। सेवा कंकुर न करावें। यह सिद्धांत दिखाए।

तातें शिक्षापत्र में लिखे हैं "असाधनः साधनो वान साधुः साधुरेव वा। शरणादेव निखिलं फलं प्राप्नोत्य संशयम्। या मार्ग में कितन असाधन हैं, जिनसों भगवदधर्म नाहीं बनत। कितने साधन बहोत करत हैं, सेवा स्मरण अप पाठ बामें कोई साधु जो सात्विक है कोई असाधु राजसी तामसी है। परन्तु सरन रात्रि दिन दृढ़ है प्रभु की। तिनही को प्राप्ति निश्चय है यह बताए।

वार्ता प्रसंग २- तब क्षत्री अहंकारि नें सेवा छोड़ि दीनी पाछे मथुरा आए। परन्तु बिना सेवा पूजा रह्यो न नाइ, देवी है। तब केसौराजजी की सेवा इचारे लीनी। सोउ विपरीत किए।

भाव प्रकाश—काहे तें पहले महावन में मथुरानाथ जी की सेवा छोड़ि दिए श्रीगोबर्धनधर की सेवा किए सोतो



होकर किए । परन्तु श्री गोवर्धननाथ जी की सेवा छोड़ि फेर मर्यादा में गए । ताते बिपरीत भए सो कहत हैं ।

वार्ता प्रसंग २- पाछे एक दिन गोविंददास ने केसोरायजी की सज्या निवार भराए । सो चुननबारे कों मेवा खवाइ बुनाए सो बहोत सुन्दर भई । और मथुरा के हाकिम ने खाट निवार सों बुनाइ, तब काहु ने कही केसोराय जी की सज्या भई तैसी न भई । यह सुनिके वह हाकिम केसोराय जी के मंदिर में आयो । सो तिवारी में केसोरायजी की सज्या धरी हती । तापर चढ़ि बैठ्यो । सो कोई ने गोविंददास भस्त्रा सों कही, जो मथुरा कौ हाकिम आइ श्रीठाकुरजी की सज्या पर बैठ्यो है । तब गोविंददास गुपति बेलत आए । सो हाकिम कौ उहांई मारयो । पाछे हाकिम के मनुष्यने गोविंददास को अपराध कियो । यह बात मथुरा के वैष्णवन ने सुनी । सो गोविंददास की देह को अग्नि संस्कार कियो ।

पाछे यह बात एक वैष्णव ने श्रीआचार्यजी सों कहे महाराज ! ऐसे वैष्णव की यह बति कैसे भई ? तब श्री-आचार्यजी महाप्रभुन ने कही, याके परलोक में तो कछु हानि नाही भई (परि) यह मेरी आज्ञा न मान्यो ताते ऐसो भयो । यह पहले जन्म में नन्दराय जी कौ भेला हतो । सो याके ऊपर श्रीठाकुरजी चढ़ते । सो याने एक दिन श्रीकुरजी के



पूँछ की मारी, ताकौ दंड भयो । और श्रीनन्दरायजी के इहां श्रीठाकुरजी को मन्दिर बन्यो तब यार्का पीठ पर पानी माटी बहोत दुयो है ।

भाव प्रकाशः—यह कही यह जताए जो तहांहूँ भार उठायो और यहांहूँ भार उठावो । परन्तु प्रीति सों सेवा नांही करी जैसो अधिकार पूर्व को होय तैसोई कार्य बने ।

और गोविन्ददास सारस्वत कल्प में नन्दरायजी के पास हथियार बाँधि के रहते । सो मथुरा में कंस को कर देते, सो इनके हाथ देते । लीला में इनको नाम 'मनसुखा' गोप है । सो श्री ठाकुर जी नें जब धोबी के बस्त्र लूटे मारे तब मनसुखा कंस को पैसा टका राखतो ताको लूटिके मारग में बहोवन कों मारे । सो सब अधमरे दस पांच भए । सोऊँ बैर भाव इनको बल्यो आयो ।

पाछें ये स्वेत बाराह कल्प भयो यानें श्रीनन्दरायजी के घर भेंसा भए । ता बात कों पाँच हजार बरस भये । तहां श्रीठाकुरजी को पूँछ की बीनी, यह अपराध परयो । सो मथुरा को हाकिम मलेच्छु हतो । सो कंस को तौसा-खाना करतो । ताको गोविन्ददास ने मारें । जो याने नन्दरायजी पास तें पैसा बहोत दियो है । और अब श्रीठाकुरजी की सेज्या पर बैठयो । यह मारन लाबक है । तातें मार और दस पांच अधमरे पहल्ले किये । तिन सबन मिलके गोविन्ददास को मारे । सबको बैर लूट्यो । पाछे अब नन्दरायजी पास फेरि गोप भये । या प्रकार कहि यह जताए



जो पिछले बेर सों बेर होइ, पिछले स्नेह सों स्नेह होइ ।  
सो गोविन्ददास भज्जा ऐसे भगवदीय हते । इनकी वार्ता में  
यह सिद्धांत अताए जो-अहङ्कार न करनो । और अपने डठ  
करि गुरु की आज्ञा उलङ्घन न करनो । और पुष्टिमार्गीय  
श्रीठाकुरजी की सेवा छोड़ि के मर्यादा मार्गीय श्रीठाकुर जी  
की सेवा न करनी ।

सो वे गोविन्ददास श्रीआचार्यजी महाप्रभु के ऐसे  
कृपापात्र भगवदीय हे । ताँने इनकी वार्ता कहाँ ताँई  
लिखिये । वैष्णव ११ ( ८४ मध्ये ) ( ६६ मध्ये वैष्णव  
१६ भए )



## શેઠ પુરુષોત્તમદાસ

૧.ભૌતિક ઇતિહાસ+— શેઠ પુરુષોત્તમદાસ જ્ઞાતે ‘ચોપડા’ ક્ષત્રી હતા. તેમનો જન્મ વિં સં ૧૫૩૫ માં રાયપુર જિલ્લા ની અંદર આવેલ ચંપારણ્ય ની પાસેના ચતુર્ભદ્રપુર, ( ચોડાનગર ) માં થયો હતો. તે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી થી લગભગ એક બે માસ પછી જન્મ્યા હતા. એમના પિતાનું નામ ‘કૃષ્ણદાસ’ હતું = કૃષ્ણદાસ દ્રવ્ય સમ્પન્ન હોવાથી શ્રેષ્ઠિ-શેઠ કહેવાતા. તેઓ ‘રતનપુર’ ના રાજા જગન્નાથસિંહદેવ ( વિં સં ૧૪૧૭ ) ના વંશજ રાજા ભુવનેશ્વર ના અમાત્ય હતાX.

વિં સં ૧૫૩૩ માં મકરસંક્રાંતિના વિશેષ પર્વ ઉપર જ્યારે કૃષ્ણદાસ ત્રિવેણી સ્નાન અર્થે પ્રયાગ ગયા હતા ત્યારે ત્યાં દક્ષિણ થી આવેલ વેદનાડુ શ્રી લક્ષ્મણ દીક્ષિત નો તેમને સમાગમ થયો હતો. એ સમયે દીક્ષિત જી ના આચાર વિચાર અને વિદ્વતા થી કૃષ્ણદાસે પ્રભાવિત થઈ તેમની પાસેથી ‘ગોપાલ-મંત્ર’ ની દીક્ષા લીધી હતી. દીક્ષાનન્તર તેમણે દીક્ષિતજી પાસેથી પુત્ર પ્રાપ્તિ નો વર પણ મેળવ્યો હતો\*. ત્યાર પછી લક્ષ્મણ દીક્ષિત ત્યાંથી જ્યારે કાશી ગયા ત્યારે કૃષ્ણદાસ પુનઃ ચોડા-નગર આવ્યા હતા

+વાર્તા, ભાવપ્રકાશ, ચદુનાથ દિગ્વિજય, વલ્લભદિગ્વિજય આદિ ગ્રન્થો ના આધારે.

=“શ્રેષ્ઠિનઃ કૃષ્ણદાસસ્ય શિષ્યીભૂતસ્ય યજ્ઞવનઃ ।

પુરુષોત્તમદાસેતિ શિશોર્નામ સમર્પિતમ્ । વલ્લભદિગ્વિજયઃ । ૧૨૪॥

X“ તત્રચ રાજ્ઞોઽમાત્યેન કૃષ્ણદાસ શ્રેષ્ઠિ...” (ચદુંદિગ્વિંપૃ.૮)

\*“અથાઽત્ર મહત્યાં પર્વયાત્રાયાં લક્ષ્મણાઽઽચાર્યં વિરક્ત જનૈઃ સમર્ચિતં સમાગતં શ્રુત્વા શ્રેષ્ઠી કૃષ્ણદાસઃ સપત્નીકઃ પુત્રાર્થી સમાગતસ્તદર્થં યયાન્ને તેન દેવસમારાધનં કૃત્વા વક્તવરઃ પ્રચાલિતઃ ( ચ. ઇ. ૫૦૭



વિં સં ૧૫૩૫ ( ચૈત્રી ) માં ત્યારે કાશી માં દશ-  
નામી સન્યાસીઓ અને મ્હેચ્છા વચ્ચે સંઘર્ષ થવાનો ભય  
જાણ્યો ત્યારે અન્ય જનતા ની માફક દીક્ષિતજી પણ કાશી  
છોડી ને સ્વદેશ જવા નિકળ્યા હતા. એ સમયે દીક્ષિતજી નાં  
સ્ત્રી ઇલિમાગારુ ગર્ભ સમ્પન્ન હતાં. તેમણે રાયપુર જીલ્લાના  
અંપારજીમાં બ્રજ વૈશાખ વદી ૧૦ ઉપરાંત ૧૧ રવિવારની  
રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરે બાલક ને જન્મ આપ્યો. આ બાલક  
તે જગદ્ગુરુ શ્રી મદ્વલ્લભાચાર્ય જી હતા. ત્યાર પછી દીક્ષિતજી  
તે બાલક ને લઈ ને કેટલાક દિવસ ચાગનગર માં કૃષ્ણદાસ ને  
ભાંજ રહ્યા.

એ અરસા માં કૃષ્ણદાસ ને ત્યાં પણ એક પુત્ર નો જન્મ  
થયો. આ પુત્ર તેજ આપણા ચરિત્ર નાયક શ્રી પુરુષોત્તમદાસ  
હતા. કૃષ્ણદાસે પોતાના આ પુત્ર ને અતિ શ્રદ્ધાપૂર્વક લક્ષ્મણ  
દીક્ષિત ની સન્મુખમાંજ, જન્મથીજ યશ અને તેજ ને પ્રાપ્ત  
એવા શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી ના ચરણ માં સમર્પિત કર્યા.X

તદનન્તર કાશી નો ઉપદ્રવ શાંત થયે દીક્ષિતજી એ  
પુનઃ કાશી જવાના પોતાના વિચાર ને શ્રેષ્ઠિની સમક્ષ પ્રકટ  
કર્યો. એટલે શ્રેષ્ઠિએ રસ્તા ની આવશ્યક સર્વ તૈયારી ની  
સાથે ઘોડા મનુષ્ય આદિ નો પ્રબંધ કરી આપ્યો.X.

---

X... તસ્ય બાલસ્ય પ્રપત્તિઃ કારિતા રક્ષા ચ વક્તા ।  
( ય૦ દિ૦ ૬ )

\*આમેશેન તતો લોલા ચાપિ સમર્પિતા ।

ક્રિકરાઃ પચ્ચસંસ્થાકા લીરાશ્ચ પથિરક્ષિણઃ ।

( જ૦ દિ૦ ૧૨૦ )



દીક્ષિતજી એ કાશી માં આવી ને ત્યાંજસ્થાયી નિવાસ કર્યો. પછી વિ. સં. ૧૫૪૦ માં જ્યારે શ્રીવલ્લભ પાંચ વર્ષ ના થયા ત્યારે લક્ષ્મણ ભટ્ટજી એ તેમને યજ્ઞોપવીત આપવાનો નિશ્ચય કર્યો. એ વાતની કૃષ્ણદાસ ને જાણ થતાં તેઓ કાશી આવ્યા અને યજ્ઞોપવિત નો સર્વ વ્યય પોતેજ કર્યો. એ પ્રકારે કૃષ્ણદાસે દીક્ષિત જી ને સેવા દ્વારા પ્રસન્ન કર્યા. પછી દીક્ષિત શ્રી લક્ષ્મણ ભટ્ટ જી ની આજ્ઞા ને પ્રાપ્ત કરી પુનઃ તેઓ 'ચોડા' ગયા.

વિ. સં. ૧૫૪૫ માં જ્યારે લક્ષ્મણભટ્ટજી ના દેહ ત્યાગ ને એક વર્ષ થયું હતું તે અરસા માં કૃષ્ણદાસ અમાત્ય પદ થી અવકાશ પ્રાપ્ત કરી કાશી આવી ને રહેવા લાગ્યા. એ સમયે તેમણે ભટ્ટજી ના કુટુંબ ની તપાસ કરી કિન્તુ ત્યાં કોઈ પ્રાપ્ત ન થયું. અહીં કૃષ્ણદાસે પોતાને રહેવાને અર્થે એક મકાન ખરીદ્યું અને તેમાં તે સહકુટુંબ રહેવા લાગ્યા. અહીં તેમણે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ નું લગ્ન કર્યું. ત્યાર પછી લગભગ વિ. સં. ૧૫૪૮ માં કૃષ્ણદાસ નું અવસાન થયું. ત્યારથી શેઠ પુરુષોત્તમદાસ સ્વતંત્ર રીતે વાણિજ્ય આદિ કરવા લાગ્યા.

એ અરસા માં શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને કન્યાજ ના દામોદરદાસ સંભરવાલાનો સમાગમ થયો. એમણે કૃષ્ણદાસ મેઘન દ્વારા સાંભળેલ શ્રી વલ્લભાચાર્યજી ના યશ ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસ આગળ કહ્યો ત્યારથી શેઠ પુરુષોત્તમદાસ આચાર્યશ્રીના દર્શન ની પ્રતીક્ષા માં રહેતા હતા.

વિ. સં. ૧૫૫૦ ની આસ પાસ શેઠ પોતાના ઘર ને નવું બનાવવા તેનો પાંચો ખોદાવ્યો. તેમાંથી તેમને અઢળક દ્રવ્ય અને એક શ્રીમદ્નમોહનજી નું સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયું. ઇતિહાસના



અનુસંધાન થી એમ અનુમાન થઈ શકે છે કે તે દ્રવ્ય પૂર્વેના કોઈ દટાઈ ગયેલા દશનામી સન્યાસી ના મઠ નું હોવું જોઈએ = ઘર નવું થયા પછી શેઠ તેમાં રહી શ્રીમદનમોહનજી ની શ્રદ્ધા પૂર્વક પૂજા કરવા લાગ્યા.

એવામાં વિ. સં. ૧૫૫૨ માં શ્રી મદ્વલ્લભાચાર્યજી પોતાની પ્રથમ પૃથ્વી પરિક્રમા x સમાપ્ત કરતાં કાશી પધાર્યા. આપતું પધારવું સાંભળી શેઠ મણિ કર્ણિકા ઘાટ ઉપર આવી આપતાં દર્શન કર્યાં. અને કૃષ્ણદાસ મેઘન દ્વારા પરિચય પ્રાપ્ત કરી તે આપના સેવક થયા. પછી આપને પોતાના ઘરમાં પધારવા વિનંતી કરી.

એ સમયે શેઠ ને ત્યાં સુદ્ધમણી અને ગોપાલદાસ ના જન્મ થઈ ચૂક્યા હતા. એથી શેઠ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી ને પોતાને ત્યાં પધરાવી તે સર્વે ને સેવક કરાવ્યા. તેમજ શ્રીમદનમોહનજી ને પુષ્ટ કરાવ્યા. ત્યારથી શેઠજી આપના અતન્યગામી સેવક બન્યા.

શેઠની વૈષ્ણવતા જોઈ ને શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી એ તેમને જીવોને અષ્ટાક્ષરમંત્ર શ્રવણ કરાવવાની પણ આજ્ઞા આપી. સાથે સાથે તેમની પ્રીતિ ને વશ થઈ આચાર્યશ્રીએ તેમના ઘરનેજ કાશી ના નિવાસ તરીકે પસન્દ કર્યું. ત્યારથી શેઠ ના ઘરમાં આજ પર્યંત આપની બેઠક વિદ્યમાન છે.

આચાર્ય શ્રી એ શેઠ ને ત્યાંજ 'પત્રાવલંબન' ગ્રંથ ની રચના કરી હતી. 'નંદમહોત્સવ' ના પ્રકાર ને પણ આપે સહુ થી પહેલા અહીંજ પ્રકટ કર્યો હતો. શેઠ આપની યાવજીવન તન મન અને ધન થી સંપૂર્ણ શ્રદ્ધા સહિત નિષ્કામ ભક્તિ કરી.

---

= જુઓ શ્રી વિહલેશ ચરિત્ર પત્ર ની કુટ નોટ x જુઓ વાર્તા



શેઠ માં વૈષ્ણવતા ના આદર્શ રૂપ ભક્તિભાવ ની સાથે સંતો ને ઉપયુક્ત એવાં ત્યાગ અને વૈરાગ્ય પણ દૃઢ હતાં. તેમણે મણિ નો તિરસ્કાર કરી સન્યાસી ઓથી પણ ન થઈ શકે એવા ભગવદાશ્રય વાલા અપૂર્વ ત્યાગનો પરિચય આપ્યો હતો એજ રીતે રાજાની સન્મુખ ગૌ સેવા અને સાદા જીવન ને નિઃસંકોચ રૂપમાં પ્રકટ કરી જ્ઞાન વૈરાગ્ય ના આદર્શ ને પણ પ્રકટ કર્યા હતા. તેમનો સમગ્ર વ્યવહાર ભક્તિભાવ થી સમ્પન્ન હતો એ પણ તેમની વાર્તા થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે.

શેઠના અન્તિમ સમય યદ્યપિ પ્રાપ્ત થતો નથી તથાપિ વાર્તા માં તેમની વૃદ્ધાવસ્થા નો ઉલ્લેખ હોઈ તેમણે લગભગ ૬૦—૭૦ વર્ષ ની ઉંમર ને તો અવશ્ય પ્રાપ્ત કરીજ હશે એમ અનુમાન થઈ શકે છે. અને તેના આધારે તેમની ભૂતલ સ્થિતિ લગભગ વિં સં ૧૬૦૦ પર્યંત રહેલી હોવી જોઈએ.

શેઠ નાં પુત્રી રુક્મણી અને ગોપાલદાસ નો કોઈ વિશેષ ઇતિહાસ પ્રાપ્ત થતો નથી તથાપિ વાર્તા ના આધારે રુક્મણી નો જન્મ વિં સં ૧૫૪૮ લગભગ અને ગોપાલદાસ નો જન્મ વિં સં ૧૫૫૧ ની આસ પાસ થયો હોવો જોઈએ. કેમકે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી પ્રથમ પરિક્રમા કરી વિં સં ૧૫૫૨ માં કાશી પધારેલા નિશ્ચિત છે.\* અને તેજ સમયે શેઠ પુરુષોત્તમ દાસે ઉભય ને નામ નિવેદન પ્રાપ્ત કરાવ્યું હતું. અતઃ પુરુષોત્તમદાસ ની તે સમય ની વય ૧૮ વર્ષ ની હોઈ ઉભય સંતતી ના જન્મ નો સમય ઉપર પ્રમાણેજ નિર્ધારિત થઈ શકે છે. શેઠ નું લગ્ન તેરવર્ષ ની વયે થયું હોય તો ૧૮ વર્ષ માં જ સંતતિ થવી સામાન્ય રીતે સ્વીકાર થઈ શકે તેમ છે અસ્તુ.

રુક્મણી અને ગોપાલદાસ ની ભૂતલ સ્થિતિ ક્યાં સુધિ રહી તેનો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી. તોપણ “ગજ્ઞા ને



રુચિમણિ પાઈ” એ શ્રી ગુસાંદણ ના વાક્યથી રૂઢમણી ને અંતિમ સમય શ્રી ગુસાંદણ ના તિરોવાન પહેલાં અર્થાત વિં સં ૧૬૪૨ પહેલા જ થયેલાં નિશ્ચિત થાય છે. ગાપાલ દાસ તો વિરહ માંજ રહેતા હોવાથી તેમની ભૂતલ સ્થિતિનો સમય બહુ ઓછો હોવો જોઈએ.

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ ની ઉભય સંતતિ ભગવત્સેવા અને સ્મરણ નિષ્ઠ હતી. રૂઢમણી ને માટે તે શ્રીગુસાંદણ એ “इनसों श्रीठाकुरजी उरिन कबहु न होइगें” । એ પ્રમાણે આજ્ઞા કરી હતી એથી તેમની સેવા નિષ્ઠતા નો પરિચય મળી રહે છે. તેનું કેટલુંક સેવા વિષયક વિશેષ વર્ણન “ભાવસિંધુ” થી પણ પ્રાપ્ત થઈ રહે છે. ગાપાલદાસ ભક્તની સાથે કવિ પણ હતા. તેમણે શ્રીમદાચાર્ય ચરણ અને શ્રી હાકુરણ નાં કેટલાંક પદ પણ ગાયાં છે. જેનો કાવ્ય પરિચય “પુષ્ટિમાર્ગયિ ભક્ત કવિ” માં હવે પછી આપવામાં આવશે.

૨. વાર્તા સ્વારસ્ય—પ્રથમ ભાગ “વાર્તા - સ્વરસ્ય” પૃષ્ઠ ૬ ઉપર આપેલા દ્વાદશાંગે રૂપ વાર્તા-કાષ્ઠક ને અનુસાર શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ ની વાર્તા શ્રીમદાચાર્યચરણ ના ગિર સ્વરસ્ય પુષ્ટિમુક્તિ ( મોક્ષ ) રૂપ છે.

શ્રીમદાચાર્યચરણે શ્રીભાગવતના મુક્તિ-લક્ષણ માં “निष्प्रपञ्चानां स्वरूप-लाभा मुक्तिः” એ પ્રમાણે ભક્તો ના “સ્વરૂપલાભ” ને મુક્તિ કહેલી છે. આ સ્વરૂપલાભ તે ભક્તોની પોતાના આધિદૈવિક મૂલ રૂપમાં સ્થિતિ થવી તે છે. આ સ્થિતિ જે પ્રકારે થાય છે. એટલે તે મુક્તિ દ્વિવિધ ધર્મરૂપ પણ છે.

“સ્વરૂપલાભ” રૂપ મુક્તિ નું એક ધર્મરૂપ જીવ કૃતિ સાધ્ય ‘સાયુજ્ય મુક્તિ’ છે. એમાં માર્ગનિષ્ઠાએ, કમંદરી, જીવ



નો કૃષ્ણ સંબંધ દ્વારા પરમાનંદમાં પ્રવેશ થાય છે.\* એનું બીજું ધર્મ રૂપ ભગવત્કૃતિ સાધ્ય 'સાધો મુક્તિ' છે. એમાં સાધન ક્રમ રહિત જીવ માં પ્રમેય બળે શ્રી કૃષ્ણ અત્યંત કૃપા મુક્ત થઈ પ્રવેશ કરે છે.= આમ સ્વરૂપ લાભ વાળી મુક્તિ નાં બે ધર્મ રૂપો પણ પ્રાપ્ત છે.

શેઠ પુરુષોત્તમદાસની વાર્તા માં મુક્તિ નું 'સ્વરૂપલાભ' વાળું લક્ષણ આ પ્રકારે કહેવામાં આવ્યું છે—

“और सेठि पुरुषोत्तमदास एक दिन मन्दिर में बैठे हे । मन्दिर- वस्त्र करंत हते । सो दूरि तें गोपालदास देखि के मन में विचार कियो, जो अब सेठिजी वृद्ध भए हैं । तातें अब मैं सेवा में तत्पर होऊं । तब गोपालदास न्हाइ आए । तब सेठिने गोपालदास के मन की बात जानि कै बुलाए । बेटा ! आगे आउ तब गोपालदास निकट आइकैं देखे तो बीस-पचीस वर्ष के सेठि हैं । तब सेठि पुरुषोत्तमदास ने गोपालदास सों कही जो, भगवदीय सदा तरुन हैं । परन्तु जो अवस्था होइ ताकों मान दियो चाहिए । तातें आजु पाछें पसी मन में मति लाइयो ।”

આ પ્રસંગ માં શેઠ પુરુષોત્તમદાસે પોતાના મૂળ આધિ-દૈવિક ભગવદીય રૂપ ને સ્પષ્ટ કર્યું છે. એ થી તેમનો 'સ્વરૂપ-લાભ' પ્રકટ થઈ રહે છે. તેમણે પોતાના વિશેષ સામર્થ્ય દ્વારા ગોપાલદાસ ના હૃદય ની વાત ને જાણી પોતાના સ્વરૂપલાભ રૂપ ભગવદીયત્વ નો તેને પણ અનુભવ કરાવ્યો છે.

---

\* તથા જુઓ શ્રી હરિરાયજી કૃત “મુક્તિ દ્વૈવિધ્ય નિરૂપણ” ગ્રન્થ.



ભગવદ્દીયો ની સર્વજ્ઞતા સ્વતઃ સિદ્ધ હોય છે. તે ન કેવલ જીવોનાજ હૃદય ની વાત ને જાણી શકે છે કિન્તુ ભગવાનના હૃદયની પણ વાત ને સહજ માં જાણી લે છે. એથી અહીં ગોપાલદાસ ના હૃદય ની વાત ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસે જાણી તે કોઈ આશ્ચર્ય જનક ન થી. કૃષ્ણદાસ મેઘન, દામોદર દાસ સંભરવાલા આદિ ભક્તો એ શ્રીમદાચાર્યચરણના હૃદય ની વાત ને પણ જાણી લીધી છે એ પૂર્વે વાર્તા થી જ્ઞાત છે. “પુષ્ટ્યા વિમિશ્રાઃ સર્વજ્ઞાઃ” એ આચાર્ય વાક્ય જ્યાં પુષ્ટિ પુષ્ટિ ભક્તો માં “સર્વજ્ઞતા” ના લક્ષણ ને કથે છે ત્યાં શેઠ પુરુષોત્તમદાસાદિ નિર્ગુણ શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તો માં સર્વજ્ઞતા હોય તેમાંતો આશ્ચર્યજ શું ?

પ્રશ્ન—અહીં એક પ્રશ્ન એ થઈ શકે છે કે શ્રીમદ્ભાગવતના મુક્તિલક્ષણનું તાત્પર્ય તા કૃત્રિમ ભૌતિક રૂપો ને છોડી ને ભક્ત ની મૂળ રૂપમાં સ્થિતિ થવી એમ છે. કિન્તુ અહીં શેઠ નું તે ભૌતિક રૂપ છુટ્યું નથી. તેથી મુક્તિ લક્ષણ અત્રે ફલિત થતું નથી

સમાધાન—ઉક્ત શંકા ઠીક નથી. કેમકે શુદ્ધ પુષ્ટિ ભક્તો આ દહુમાંજ પોતાના મૂળ અલૌકિક રૂપની પ્રાપ્તિ કરી મુક્ત દશા ને પ્રાપ્ત થયેલા હોય છે. યદિ જો તેઓ આ દહુ ને છોડી ને સ્વરૂપલાભ રૂપ મુક્તિ ને પ્રાપ્ત થાય તો અન્ય મર્યાદા ભક્તો કરતાં તેમની વિલક્ષણતા સિદ્ધ થઈ શકે નહીં. પરંતુ “સર્વત્રોત્કર્ષના કથન થી પુષ્ટિ નો નિશ્ચય થાય છે” એ શ્રીમદાચાર્ય ચરણ ના વાક્ય ને અનુસાર આ ભક્તો માં



ઉત્કર્ષતા થી પુષ્ટિ તું જ્ઞાન થવાને માટે તેમનામાં મર્યાદા થી વિલક્ષણતા રહેવી આવશ્યક છે. અતઃ અહિં શેઠ ના ભૌતિક દેહમાંજ અલૌકિક રૂપ ના ‘સ્વરૂપલાભ’ રૂપ મુક્તિ તું દર્શન કરાવવા માં આવ્યું છે. પુષ્ટિ ભક્તોના આ ભૌતિક દેહમાંજ અલૌકિકતા પ્રાપ્ત થઈ રહે છે તેનો પ્રકાર શ્રીહરિરાયજી એ “સ્વમાર્ગીય ભાવના નિરૂપણ” ગ્રન્થ માં આ રીતે વર્ણવ્યો છે-

“પુષ્ટિ ભક્તો માં વિયોગરસની સ્થિતિ હોય છે. તે સ્વતાપવડે ભૌતિક દેહ ને તપાવી તેમાં રહેલા મલાદિક ને દૂર કરે છે. એ થી અગ્નિ ના સંબંધ થી જેમ કાષ્ટ તેજોમય બને છે તેમ તે દેહ તેજોમય બને છે. આ વિયોગાગ્નિ સ્વરૂપાત્મક હોવાથી દેહ નો નાશ કરતો નથી કિન્તુ દેહ ને મૂર્તિવત્ અધિષ્ઠાન રૂપ કરી તેમાં સમાન આકાર થી આત્મા રૂપે પ્રવેશે છે. એથી તે તદ્દરૂપ થઈ અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે.\*

પ્રશ્ન—અહીં એક અન્ય પ્રશ્ન પણ ઉપસ્થિત થઈ રહે છે. તે એકે જ્યારે આ દેહ માં અલૌકિકતા પ્રાપ્ત થાય છે. તો તેનો ત્યાગ કેવીરીતે અને કેમ સંભવે ?

સમાધાન—પુષ્ટિ ભક્તો ના દેહ નો ત્યાગ ભગવદ્ ઇચ્છા ઉપરજ અવલંબિત છે. જે ભક્તો માટે ભગવદ્ ઇચ્છા દેહત્યાગ

---

\* “प्रकारस्तु पूर्वं देहान् स्वतापेन शुद्धान् विधाय तत्स्थितं मलादि दूरीकृत्य बहिः संबंधेन काष्ठमिव तेजोमयं विधाय, यथा विद्योगाग्निना नाशो न भवति तदात्मकत्वात्, मूर्तिवदधिष्ठानत्वेन तन्निर्माय तत्र भावात्मा बहिःप्रकटसमाकारः सर्वलीलाविशिष्टः प्रविशतीति ।”

—શ્રીહરિરાયજી



ની હોય છે તેજ દેહ ત્યાગ કરે છે. જેને અર્થે તે નથી હોતી તે ભક્ત સદેહે પણ લીલા માં જઈ શકે છે. સદેહે લીલા માં ગયા નાં દૃષ્ટાંતો ગોવિંદસ્વામી પ્રભૃતિ નાં પ્રાપ્ત છે. જે ભક્તો ભગવાન ની ઇચ્છા ને જાણી ને દેહ ત્યાગ કરે છે તેઓ આ કાલ ને ભગવાન ની ઇચ્છા શક્તિ રૂપ સમજીનેજ તેનો કેવળ આદર માત્ર કરે છે. અન્યથા તે અસાધારણ અવસ્થા માં કાલ નું અતિક્રમણ પણ કરી શકવાના સામર્થ્ય વાળા હોય છેજ તેને કાલ કર્મનવ બાધેરે યમને શિર ધનુષ નસાંધેરે\* એ વદ્ધભા-જ્યાનનાકથનની સાથે ‘પુષ્ટિ: કાલાદિવાધિકા’ વાળું-આચાર્ય વાક્ય પણ અત્રે સ્મરણીય છે. અત્રે કાલ ને આઠ વાર પાછા ફેરનાર ડોકરી નું સ્મરણ પણ આવશ્યક છે. થોડા પુરુષોત્તમદાસે પણ “પરન્તુ જો અવસ્થા હોઈ તાકો માન લેનો ચાહિયે ।” આ શબ્દોમાં ઉક્ત અભિપ્રાય નેજ સ્પષ્ટ કર્યો છે.

બીજું પુષ્ટિ ભક્તો ના આ દેહ માં અલૌકિકત્વ પ્રાપ્ત થયે તેનો ત્યાગ જે કે સંભવતો ન થી તો પણ પ્રભુની ઇચ્છા ને જાણી ને પુષ્ટિ ભક્તો, પ્રભુની સમાન પોતાના કર્તુમ્, અકર્તુમ્, અન્યથા કર્તુમ્ સર્વ સામર્થ્ય રૂપ થી તેનો ત્યાગ કરી શકે છે. ત્યાગ ની સમયે તે તેમાં રહેલા અલૌકિકત્વ નું સંવરણ કરી તેને પુનઃ કેવળ પંચભૌતિક કરી દે છે. એ તેમનું કર્તુમ્ અકર્તુમ્ અને અન્યથા કર્તુમ્ સામર્થ્ય છે. અલૌકિકતા ને પ્રાપ્ત થયા પછી પણ વ્રજ ભક્તો એ દેહ ને છોડ્યાનું શ્રી-સુબોધિની પ્રભૃતિમાં પ્રાપ્ત છે.\* અતઃ ભગવાનની સમાન ભગવદ્ ભક્તો માં પણ વિરુદ્ધ ધર્માશ્રય વાળું સામર્થ્ય રહેલું દેખાઈ આવે છે. એથીજ શ્રીમદ્વાચાર્યચરણે ભગવાન અને પુષ્ટિભક્તો માં સંપૂર્ણ અભેદ બતાવ્યો છે. કેવલ લીલા સિદ્ધ-યર્થેજ તેમાં ભિન્નતા રહેલી દેખાય છે.

\*જુઓ ભમરગીત અધ્યાય ૪૩ શ્લોક ૫ ની શ્રીસુબોધિની.



સ્વરૂપેણાવતારેણ લિંગેન ચ ગુણેન ચ ।

તારતમ્યં ન સ્વરૂપે દેહે વા તત્ક્રિયાસુ વા ।

તથાપિ યાવતા કાર્યં તાવત્ તસ્ય કરોતિ હિ ।” ( પુ. પ્ર. મ. )

આમ શેઠ પુરુષોત્તમદાસની વાર્તા માં એકાદશસ્કંધીય મુક્તિ લક્ષણ થી પુષ્ટિમુક્તિ નું મૂળ-ધર્મી રૂપ કહેવામાં આવ્યું છે. આ પ્રકારની મુક્તિજ ધર્મી સ્વરૂપ શ્રીમદ્વાચાચરણના શિર રૂપ છે.

ઉક્ત મુક્તિ ના દ્વિવિધ ધર્મ રૂપ ‘સાયુજ્ય’ અને ‘સદ્યો’ મુક્તિ શેઠ ની પુત્રી રુક્મણિ અને શેઠ ના પુત્ર ગોપાલદાસની વાર્તાઓ માં કહેવાયેલ છે. પૂર્વોક્ત ‘સાયુજ્ય મુક્તિ’ રુક્મણિ ની વાર્તા માં આ પ્રકારે કહેવાઈ છે—

“સો રુદ્ધમનિ ને સેઠિ પુરુષોત્તમદાસ સૌં કહ્યો જો- તુમ કહો તો કાર્તિક સ્નાન કરૂં । તબ સેઠિ ને કહી, કરો । .. સો રુદ્ધમનિ પહરરાત્રિ પિછલી સૌં ઉઠિ નિત્ય નેગ તેં અધિક સામગ્રી કરે । સો મજ્જલા તેં રાજભોગ પર્યંત આરોગાવૈ । પાછે ઉત્થાપન તેં સેન પર્યંત આરોગાવૈ । પસે કરત કિતનેક દિન બીતે તબ સેઠિ ને રુદ્ધમનિ સૌં પૂછે, જો કાર્તિક ન્હાત તોકોં કબહુ દેખ્યો નાહી । તૂ ગંગાજી કૌન સમય ન્હાત હૈ । તબ રુદ્ધમનિ કહી, મેરે કાર્નિક ન્હાદવે કો કહા કામ હૈ ? મૈં તૌ યાહી માંતિ ન્હાત હૌં ।”

આ ઉદ્ધરણ માં સામુજ્યમુક્તિ નાં “માર્ગનિષ્ઠા” “સાધન ક્રમ” “કૃષ્ણ સંબંધ” અને “પરમાનન્દ માં પ્રવેશ” એમ ચાર તત્ત્વો પેકીના પ્રથમ નાં બે તત્ત્વો સ્પષ્ટ થયેલાં છે. કાર્તિકાદિ સ્નાનના નિમિત્તે રુક્મણિ એ ભગવાન ને જે વિવિધ અને વિશેષ સામગ્રીઓ અરોગાવી તે તેની માર્ગ ઉપર ની



નિષ્ઠા ની સ્વચ્છ છે. કેમકે તેણે કાર્તિકાદિ સ્નાન ના ફલ ની જરા પણ અપેક્ષા રાખ્યા વિના એક માત્ર શ્રીહરિનેજ સમ્પ્રદાયના સિદ્ધાંત ને અનુસાર નિષ્કામ ભાવે સામગ્રી અરોગાત્રી તે માર્ગ ની નિષ્ઠા તેજ સ્પષ્ટ કરે છે. એજ પ્રકારે તેણે શ્રીહરિ ની મંગલા થી સેન પર્યંત ના ક્રમ ને અનુસાર તનુ વિત્તજ સેવા કરી સમ્પ્રદાયના સાધન ને પણ સ્પષ્ટ કર્યું છે. એના ઉદ્દેશ્ય પણ ઉક્ત ઉદ્ધરણ માં મળી આવે છે. આમ રૂઢમણી મા “સાયુજ્ય મુક્તિ” ના પ્રારંભનાં બે તત્ત્વો ઉક્ત કથન થી સ્પષ્ટ થયા છે. તેનું ત્રીજું તત્ત્વ જે “કૃષ્ણ સંબંધ” તે તેના ચોવિસ વર્ષે શ્રીગુસાંઈજી ના દર્શન અર્થે ગંગા સ્નાન કરવા આવ્યા ના વાર્તાના પૂર્વ ઉદ્દેશ્ય થી સ્પષ્ટ થઈ જાય છે. તેને શ્રીકૃષ્ણની સેવા માં એવી તો આસક્તિ હતી કે તદ્દત્તિરિકત અન્ય કોઈ પણ પ્રકાર નો સંબંધજ પ્રાપ્ત ન હતો. એથી એ સેવા દ્વારા કૃષ્ણ નો સંબંધ તેને સારી રીતે સિદ્ધ થયો હતો એ સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. એની વિશેષ પુષ્ટિ શ્રીગુસાંઈજી ના “इनसों श्री ठाकुरजी उरिन कबहु न होइंगे ।” એ કથન થી થઈ રહે છે. આ વાક્ય માં પ્રાપ્ત “उरीन” શબ્દ રૂઢમણી અને શ્રીઠાકુરજીના સાક્ષાત્ સંબંધ નો પણ સ્વચ્છ છે. જેમ પ્રજાભક્તો ના સાક્ષાત્ પ્રેમ થીજ શ્રીકૃષ્ણ તેમના સદા ને મારે રહી થયા છે તેમ રૂઢમણી ના પણ સાક્ષાત્ પ્રેમથીજ શ્રીઠાકુરજી તેજ પ્રકારે રહી થયા છે. એથી ઉભય વચ્ચે સાક્ષાત્ સંબંધ રહેલો જણાઈ આવે છે. એતદર્થ શ્રી હરિરાયજી એ પણ ત્યાં ના “ભાવપ્રકાશ” માં તેજ ભક્તો તુંજ દૃષ્ટાંત આપ્યું છે. સાયુજ્ય મુક્તિ તું ચોથું તત્ત્વ “परमानंदमां प्रवेश” છે. તે “गंगा ने कर्मणि पाई” એ શ્રી ગુસાંઈજી ના વાક્ય થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. અહિં શ્રીગુસાંઈજી એ ભગવત્યરણોદક સ્વરૂપીની ગંગા થી પણ રૂઢમણિ નો વિશેષ ઉત્કર્ષ પ્રકટ કર્યો છે.



ભગવત્પરણોદક શ્રી વિશેષ ઉત્કર્ષ ભગવાન સિવાય અન્ય નો સંભવે નહિ. અતએવ રુક્મણી નો પરમાનંદ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણ માં પ્રવેશ નિશ્ચિત થયેલો છે. એથીજ ગંગાની અપેક્ષા રુક્મણી નો ઉત્કર્ષ વિશેષ કહેવાયો છે. આમ “સાયુજ્ય મુક્તિ” નાં ચારે તરવો રુક્મણીની વાર્તા માં સ્પષ્ટ હોઈ આ વાર્તા તે મુક્તિ ને સ્પષ્ટ કરનારી છે.

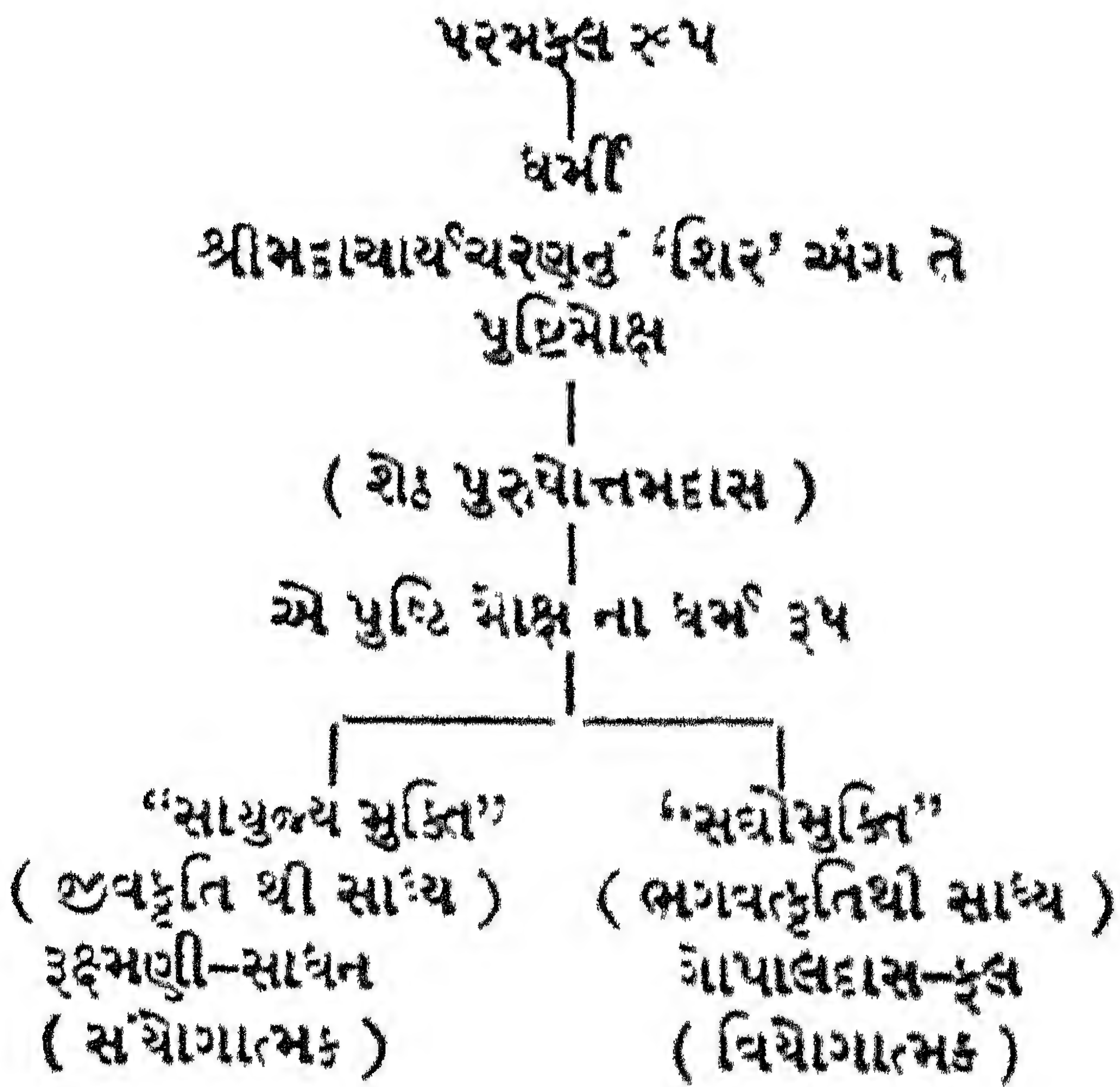
ગોપાલદાસની વાર્તા માં “સયોમુક્તિ” નું નિરૂપણ છે. એમાં પૂર્વ કથન ને અનુસાર સાધન ક્રમ નો અભાવ હોય છે. તેમાં કેવળ પ્રમેય બલે શ્રીકૃષ્ણ અત્યંત કૃપાયુક્ત થઈ જીવમાં પ્રવેશે છે. આ પ્રકારની ‘મુક્તિ’ ગોપાલદાસ ની વાર્તા માં આ પ્રકારે પ્રાપ્ત થઈ રહે છે—

“और गोपालदास कों रात्रि कों नींद आवती । केरि चोंकि के बिरह में पुकारते, श्रीमदनमोहन जी ! तब मन्दिर सों श्रीठाकुर जी कहते क्यों पुकारत हो ? मैं तो तेरे निकट हों ।.....या प्रकार बिरह में गोपालदास मन्दिर कौ ताला लगाइ, चोक कौ ताला लगाइ, चौखटि पर माथो धरि एक वस्त्र बिछाई बिरह में परे रहतें ।”

આ ઉદ્ધરણ માં ગોપાલદાસના સાધન ક્રમ નો અભાવ સ્પષ્ટ છે. તેમને સાધનની અપેક્ષા રાખ્યા વિના શ્રી કૃષ્ણ અત્યંત કૃપાવંત થઈ પ્રમેય બળે વિરહ નું દાન કર્યું હતું. અને તે વિરહ દ્વારા શ્રીકૃષ્ણેજ તેમનામાં પ્રવેશ કર્યો હતો. એથીજ જ્યારે જ્યારે ગોપાલદાસ વિરહ માં વિકલ થઈ પ્રભુને પુકારતા ત્યારે ત્યારે પ્રભુ અવાજ દઈ તેમનું સમાધાન કરતા. વાર્તા માં આવેલું “મોસો તેરો બિરહ સહ્યો નહિ જાત” એ પ્રભુનું



વાક્ય અત્યંત દુપા તું સૂચક છે. વિરહ તું દાન પ્રમેય બળ વિના ગામ થતું ન થી. અતઃ પ્રમેય બલ પણ અત્રે સ્પષ્ટ છે. અને શ્રીમદનમોહનજી સમય સમય ઉપર અનોસરમાં પણ તેમનું સમાધાન કરતા તે ગોપાલદાસ માં શ્રીકૃષ્ણ ના પ્રવેશ તું સૂચક છે. ગોપાલદાસ ના હૃદય માં પ્રભુએ સારી રીતે પ્રવેશ કર્યો હતો ત્યારેજ શ્રીકૃષ્ણજી તેમનું હરેક સમયે સમાધાન કરતા. આમ આ વાર્તા માં “સઘો મુક્તિ” તું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. આ ત્રણ વાર્તાઓ ને સમજવા અર્થે અહીં એક કોષ્ટક આપવામાં આવે છે.—



આ પ્રકારે શ્રીમદાચાર્યચરણે પુરુષોત્તમદાસ માં પુષ્ટિ મુક્તિ ને સ્થાપી તેમની દ્વારા મર્યાદા મુક્તિ ક્ષેત્ર કાશી માં તેને પ્રકટ કરી. એથી પુષ્ટિ ની ઉત્કર્ષતાએ આપનો યશ કાશી માં પણ ફેલાયો અને તે દ્વારા આપનું મસ્તક શિવપુરી કાશી



માં પણ સદા ઉન્નતજ રહેયું. કાશી માં આપે કરેલા ધ્વજ-  
રોહણ નો સંકેત પણ આતુંજ સૂચનકર્તા છે. ત્યારથીજ કાશીમાં  
આજ પર્યન્ત પુષ્ટિ ની વિજય પતાકા ફરહરાય છે. અને ત્યાં  
આજ પણ માયાવાદી શૈવો માં એ આંશિક ભાકિત જોવામાં  
આવે છે. એ પુષ્ટિ ભક્તિ નો પ્રકટ વિજય છે.

અન્યત્વે, આ ત્રિવિધ ધર્મ ધર્મી મુક્તિ રૂપ ત્રણે ભગ-  
વદીયોનાં ફલ રૂપા માનસી સેવા ના મધ્ય ફલ રૂપ ત્રણે રૂપો  
આ પ્રકારે છે—

“સેવાયાં ફલત્રયં; અલૌકિક સામર્થ્યં, સાયુજ્યં, સેવો-  
પયોગી દેહો વા વૈકુણ્ઠાદિષુ ।” એ આચાર્ય કથન ને અનુસાર  
“અલૌકિક સામર્થ્ય” રૂપ પ્રથમ ફલ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ માં  
સિદ્ધ થયેલ છે. આ “અલૌકિક સામર્થ્ય” તે સર્વાભોગ્ય સુધા  
ધર્મી રૂપ આનન્દ છે. દ્વિતીય ‘સાયુજ્ય’ ફલ રૂકિમણી માં  
સિદ્ધ થયેલ છે. આ ‘સાયુજ્ય’ તે ભગવદ્ભોગ્યા સુધા ધર્મભૂત  
આનન્દ પ્રભુ અપ્રધાનીભૂય ભક્ત પરવશ છે. તૃતીય “સેવો-  
પયોગી દેહ વા વૈકુણ્ઠાદિષુ” ફલ ગોપાલદાસ માં સિદ્ધ થયેલ  
છે. આ ફલ તે દેવભોગ્યા સુધા ધર્મભૂત આનન્દ પ્રભુ પ્રધાની  
ભૂત સ્વવશ છે. જેમ સ્વર્ગ ફલ ની મધ્યે અમૃત પાનાદિ છે. તેમ  
માનસી ફલ રૂપ મધ્યે આ ત્રણે ફલ છે.\*

૩. પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહેસ્ય—શેઠ પુરુષોત્તમદાસ  
ની વાર્તા પૂર્વોક્ત પ્રકારે પુષ્ટિ મુક્તિ મોક્ષ રૂપ છે. આ મોક્ષ  
શુદ્ધ પુષ્ટિ અવસ્થા રૂપ હોઈ તે પરમફલ રૂપ ધર્મી વિપ્રચો-



ગાત્રમક શ્રીમદાચાર્યચરણના સ્મરણ ભજન સ્વરૂપા છે. \* આ સ્મરણ ભજન ની પૂર્ણતા જ્ઞાપનાર્થે આ વાર્તા માં પૈંઠ્યર્થ યુક્ત ધર્મી ની સાથે અન્ય ધર્માદિ પુષ્ટિના ત્રણ પુરુષાર્થો નું પણ નિરૂપણ કરાયેલ છે. અત્રે પૈંઠ્યર્થો દ્વારા જેમ શ્રીમદાચાર્ય ચરણના સ્મરણ ને સિદ્ધ કરેલ છે. તેમ ધર્મી યુક્ત ત્રણ પુરુષાર્થો દ્વારા આપના ભજન ને સ્પષ્ટ કરેલ છે. આ ધર્મી સ્વરૂપલાભ વાળી મુક્તિ નું તાદાત્મ્યભાવનાનું દ્વિતીય અભિનિરૂપ રૂપ તે પુષ્ટિ (સર્વો) મુક્તિજ છે. આમ પૈંઠ્યર્થ સહિત ધર્મી-મોક્ષ-ની સાથે અન્ય ત્રણ પુરુષાર્થો ના નિરૂપણ થી દસ તત્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. એથી આ વાર્તા માં દસ પ્રસંગોજ કહેવાયલા છે. તે દસે નું રહસ્ય આ પ્રકારે છે.

પ્રસંગ-૧. આ પ્રસંગ માં તામસ મૃદ જીવોના ઈશ્વર રૂપ મહાદેવ ની પ્રસાદ-ચાચના દ્વારા શેઠ માં રહેલ શ્રીમદાચાર્ય ચરણના 'ઐશ્વર્ય' ધર્મ નું સ્મરણ કરાયેલ છે. આ 'ઐશ્વર્ય' તે પુષ્ટિ ના ઉત્કર્ષ રૂપ છે.

પ્રસંગ-૨. આ પ્રસંગ માં મહાદેવ અને કાલ ભૈરવ જેવા સમર્થ દેવો દ્વારા ભય પૂર્વક શેઠ ના ઘરની કરાયેલી રખવાલી તે શેઠ માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણ ના 'વીર્ય' ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ-૩. સ્માર્ત ધર્મ જેને મહાદેવના સાક્ષાત્કાર રૂપ થી ફલિત થયેલો છે. એવા બ્રાહ્મણનો પણ શેઠ 'પુષ્ટિમાર્ગ'

---

\* "અતઃ સર્વાત્મના શશ્વદ્ ગોકુલેશ્વરપાદયોઃ । સ્મરણં ભજનં ચાર્પ ન ત્યાજ્યમિતિ મે મતિઃ ।" એ આચાર્ય વાક્ય માં ઉક્ત પ્રકારના પુષ્ટિ મોક્ષનું નિરૂપણ છે. એનું વિસ્તૃત વિવેચન અમારા તરફ થી પ્રસિદ્ધ થયેલ 'પુષ્ટિ-માર્ગ' માં આવેલ છે જણાસુ એત્યા બોધું



માં કરાવેલ પ્રવેશ તે તેમનામાં સ્થિત શ્રીમદ્વાચાર્યચરણના 'યશ' ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ-૫. આ પ્રસંગમાં મંદારમધુસૂદન હાકુરે નું ચિંતિત દ્રવ્ય આપનાર અમૂલ્ય મણી દ્વારા લલચાવવું છતાં શેઠ નું આશ્રય સ્વરૂપ શ્રીહરિમાંજ એક માત્ર પરમ વિશ્વાસ થી તેના તાદૃશ રૂપ ( આશ્રય ) ને પ્રાપ્ત થવું તે તેમના માં સ્થિત શ્રીમદ્વાચાર્યચરણના 'શ્રી' ધર્મ ને સ્મરણ કરાવે છે. ધ્રિયો હિ પરમાકાષ્ટા સર્વકાસ્તાદૃશા યાદે" એ વાક્ય અત્રે સ્મરણીય છે.

પ્રસંગ-૭. રાજાની સમુખ પણ શેઠ દ્વારા થયેલ રાજસી સ્વભાવ નું પરિવર્તન અર્થાત રાજા વિવેક ને અનુસાર કરવાં જોઈતાં કાર્યો નું સહજ વિસર્જન તે તેમના માં સ્થિત શ્રીમદ્વાચાર્યચરણનાં 'જ્ઞાન' ધર્મ ને સ્મરણ કરાવનાર છે. જ્ઞાન-દૃઢ થયા વિના સ્વભાવનું પરિવર્તન શક્ય નથી 'મગ્ન-ગતયઃ એ વાક્ય અત્રે સ્મરણીય છે.

પ્રસંગ ૧૦—ભગવત્પ્રીત્યર્થ મામા આદિના આગ્રહ રૂપ લોક સંબંધ નો તેમજ ગયા યાત્રા રૂપ વેદ સંબંધ નો અહિ કહેવાયલાં સહજ ત્યાગ તે શેઠ માં સ્થિત આચાર્યશ્રી ના " વૈરાગ્ય " ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ ૪—આ પ્રસંગ માં ધર્મી નું નિરૂપણ છે. આ ધર્મી તે પુષ્ટિ મોક્ષ રૂપ ચતુર્થ પુરુષાર્થજ છે. અહિ કહેલો શેઠ નો 'સ્વરૂપલાભ તે પૂર્વ કથન ને અનુસાર પુષ્ટિ મુક્તિ રૂપ છે.



આ ધર્મી રૂપ હોવાથી તેમાં અન્તર્ગત પદ્માએ પૌરુષ્ય ની પણ આ પ્રકારે સ્થિતિ કહેલી છે—

૧. ઐશ્વર્ય—ગોપાલદાસ માં થયેલ દોષ બુદ્ધિ રૂપ અજ્ઞાન ને દૂર કરવું તે ઐશ્વર્ય. ૨. વીર્ય— પાતાના અલૌકિક રૂપ ને પ્રકટ કરવું તે વીર્ય. ૩. યશ—ગોપાલદાસ ને તે સ્વરૂપ નો સારી રીતે અનુભવ કરાવવો તે યશ. ૪—શ્રી ભગવદીય ના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું તે શ્રી ૫—જ્ઞાન-મંદિર વગેરે કરવું તે જ્ઞાન. ( મંદિરવગેરે કર્યા થી હૃદયની શુદ્ધિ થાય છે. એતદ્વર્થે તે જ્ઞાન રૂપ છે.) ૬. વૈરાગ્ય—ભગવદ દેહી રૂપ કાલ નું-પરિપાલન તે વૈરાગ્ય.

ઉક્ત પ્રકારે અત્રે પ્રાસંગિક પૌરુષ્યો નું નિરૂપણ છે હવે ધર્મોદિ ચતુર્વિધ પુરુષાર્થ રૂપ ધર્મો વિપ્રયોગાન્મક શ્રીમદા-ચાર્યચરણના ભજન ને કહેવામાં આવે છે.

પ્રસંગ ૬—

ધર્મ— સર્વદા સર્વ ભાવેન ભક્તીયો વ્રજાભિપ:  
સ્વસ્થાયમેવ ધર્મોદિ નાન્યઃ ક્વાપિ કલાન ન ।

એ શ્રીમદાચાર્યચરણ ના કથન ને અનુસાર પ્રસંગ ૬ માં કહેલ ભગવત્સેવા તે અત્રે 'ધર્મ' રૂપ છે. એમાં શ્રીમદા-ચાર્યચરણ ની ભાવના એ શેઠ કહેલી શ્રીમદનંદાદનજી ની સેવા તે પુષ્ટિ ધર્મ ના એ ધર્મ રૂપ છે. કેમકે પુષ્ટિસ્થ હોવા માં જે દીનતા એક માત્ર ફલાત્મક સાધન રૂપ હોય છે. એ દીનતા ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસે “इति श्रीकृष्णदाम्भय वल्लभस्य हितं वचः” એ દાસ્યભાવ રૂપ શ્રીમદાચાર્યચરણ પ્રતિની દાસ્ય ભાવ વાળી સેવા દ્વારા સિદ્ધ કરી છે. એથી તેમના માં



દાસાનુદાસત્વ રૂપે થઈ રહે છે. આ પ્રકારના ભાવની સિદ્ધિને અર્થેજ પુષ્ટિમાર્ગ માં આચાર્યસેવા પ્રસિદ્ધ છે. અત્રે ‘વૃત્તચતુઃ શ્લોકી’ ઉપરની શ્રીગુસાંબજી ની વ્યાખ્યા તથા ‘પ્રાચીનવાર્તા-રહસ્ય’ પ્રથમભાગ પૃષ્ઠ ૪૦ ઉપરની શ્રીદામોદરદાસ હરસાની ની વાર્તા ના ભાવપ્રકાશનું અનુસંધાન આવશ્યક છે.

પ્રસંગ ૮—

અથ—एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव कर्षयति

प्रभुः सर्व समर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

આ આચાર્યકથન ને અનુસાર પ્રભુજ એક માત્ર પુષ્ટિ-માર્ગના ‘અર્થ’ રૂપ છે. આ ‘અર્થ’ ને શ્રીમદાચાર્યચરણે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને ત્યાં ‘પત્રાવલંબન’ થી પ્રકટ કર્યો છે, આ ‘પત્રાવલંબન’ દ્વારા ‘બ્રહ્મવાદ’ નું સારી રીતે નિરૂપણકરિ હરિ ના માહાત્મ્ય જ્ઞાન રૂપ ‘અર્થ’ થીજ અર્થાત્ આખિલ ભુવને-શ્વરે સ્વરૂપ પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ ને અર્થ રૂપથી હૃદયમાં ધારણકરવા-થીજ ભક્ત નિશ્ચિન્ત થઈ તેનું સેવન કરી શકે છે આમ આ ત્રવમા પ્રસંગ માં પુષ્ટિમાર્ગથી ‘અર્થ’ પ્રસિદ્ધ છે.

પ્રસંગ ૯—

૩ ‘કામ’—यदि श्री गोकुलाधीशोवृतः सर्वात्मना हृदि ।

ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदિકैरपि ॥

શ્રીમદાચાર્યચરણના આ કથન ને અનુસાર શ્રીગોકુલા-ધીશજ એક માત્ર પુષ્ટિમાર્ગ માં ‘કામ’ રૂપથી ગ્રાહ્ય થયેલા છે એ શ્રીગોકુલ અર્થાત્ વ્રજભક્તોના વૃંદ ના અધીશ જ્યાં વિદ્યમાન હોય ત્યાં ગોપ ગોપી આદિ સમસ્ત ભક્તવૃંદ ઉપ-સ્થિત થઈ રહે છે શ્રીમદાચાર્યચરણે આ વસ્તુને જન્માષ્ટમી ના પ્રસંગ થી સ્પષ્ટ કરી છે. અર્થાત્ આપે નંદમહોત્સવ ના



‘મિષે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને પુષ્ટિમાર્ગીય ‘કામ’ રૂપ સાક્ષાત શ્રીગોકુલાધીશ નો રસાત્મક અનુભવ કરાવ્યો એથીજ ત્યાં વ્રજભક્તો નો પરિકર પણ સ્વતઃ પ્રકટ થયો. ભગવાન અને ભગવાન નો પરિકર ભિન્ન રહે નહિ એ વાતનું પણ એના થી જ્ઞાન થઈ રહે છે.

પ્રસંગ ૪—

૪ મોક્ષ—અતઃ સર્વાત્મના શશ્વદુ ગોકુલેશ્વર પાદયોઃ  
સ્મરણં મજનં ચાપિ ન ત્યાજ્યમાત મે માનઃ

એ આચાર્ય કથન ને અનુસાર સર્વાત્મનાભાવે શ્રીગોકુલેશ્વર નું સ્મરણ ભજન ન ત્યજવું. કેમકે એજ પુષ્ટિમાર્ગના પરમમોક્ષ રૂપ છે. સર્વાત્મના ભાવવાળું સ્મરણ ભજન આધિદૈવિક સ્વરૂપ પ્રાપ્તિ વિના સિદ્ધ થઈ શકતું નથી કેમકે તેમાં ધર્મી સંયોગ વિપ્રધાગાત્મક રસ ની સ્થિતિ હોય છે. અતઃ તેના અનુભવ અર્થે મળા ધર્મી રૂપની આવશ્યકતા રહેલી હોય છે. આ પ્રકારનું ધર્મી રૂપ શેઠ પુરુષોત્તમદાસને સિદ્ધ થયું હતું તે પૂર્વે કહેવાયેલું છે.

## રામદાસ

૧ ભૌતિક ઇતિહાસ:— રામદાસ નો વિશેષ ઇતિહાસ અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. “ વાર્તા ” અને “ ભાવપ્રકાશ ” ને અનુસાર આ રામદાસ પૂરવ ના સારસ્વત બ્રાહ્મણ હતા-તેઓ ગંગાસાગરની સમીપના કોઈ એક ગામમાં રહેતા હતા તેમના પિતા સુર્યના ઉપાસક હતા. સુર્યની પ્રસન્નતાથી તેમને ત્યાં રામદાસનો જન્મ થયો હતો. રામદાસ બ્યારે આઠ વર્ષના થયા ત્યારે તેમનું ભજન કરવામાં આવ્યું હતું.



તેમની સ્ત્રી હું નામ પ્રાપ્ત થતું નથી. તેમને એક પુત્ર પણ થયો હતો.

રામદાસ પ્રારંભમાં મર્યાદાભાગીય કોઈ વૈષ્ણવની સાથે ગંગાસાગર ગયા હતા. ત્યાં તેમને એક ભગવત્સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયું હતું. પુનઃ તે શ્રીવદ્ધભાચાર્યજી નો યશ સાંભળી તેમના દર્શનને પુરવોત્તમપુરી જતા હતા. ત્યાં રસ્તામાં તેમને આચાર્ય શ્રી નાં દર્શન થયાં હતાં. તે સમયે આચાર્યશ્રી થી પ્રભાવિત થઈ તેમણે આપશ્રીને પોતાના ઘરમાં પધરાવી સ્ત્રી સહિત દીક્ષા લીધી હતી. રામદાસ નો શરણકાલ પ્રથમ પારિક્રમા નો અર્થાત્ વિ સં ૧૫૫૩ ની આસ પાસ નો પ્રાપ્ત થાય છે.

શરણ અનન્તર રામદાસે સમ્પ્રદાય ની રીતિ ને અનુસાર ગંગાસાગર થી પ્રાપ્ત થયેલ શ્રીઠાકુરજીને આચાર્ય-શ્રી થી પુષ્ટ કરાવી સેવાનો પ્રારંભ કર્યો હતો. આચાર્યશ્રીએ આ ઠાકુરજીનું નામ 'શ્રીનવનીતપ્રિયજી' ધર્યું હતું જે આજ શ્રીગોકુલમાં 'રાજઠાકુર' ના નામથી તિલકાયત શ્રીના માથે ધરાજે છે. આ ઠાકુરજી એ રામદાસ નું દેવું ચૂકાવ્યું હોવાથી તેમને સહુ કોઈ 'રાજઠાકુર' ના નામથી સંબોધે છે. આજપણુ તે શ્રીગોકુલ ની જમીદારી ના માલિક રૂપથીજ ગોકુલમાં ધરાજે છે.

રામદાસની પાસે અઢલક દ્રવ્યહતું તેથી તે સર્વ પ્રકાર ના વ્યાપારો ને છોડી અષ્ટ પ્રહર અસ્પર્શ માં રહીનેજ રાજ વૈભવથી શ્રીઠાકુરજી ની સેવા કરતા હતા. પરંતુ પાછલથી જ્યારે તે દ્રવ્ય ઘટ્યું ત્યારે તેમણે શેષ રહેલા દ્રવ્યને વ્યાજ ઉપર મુક્યું. અને તે વ્યાજ દ્વારા સેવાના વૈભવને જાલવી



રાખ્યો. પરંતુ શ્રીઠાકુરજીને આ વાત ઠીક ન લાગી એથી તેમણે તે દ્રવ્ય ના વ્યાજ ને બંધ કરી તેનેજ ખર્ચ કરવા માંડ્યું એમ કરતાં જ્યારે તે દ્રવ્ય સમ્પૂર્ણ ઘટ્યું ત્યારે કેટલાક વખત પર્યંત ઉધાર લઈ કામ ચલાવ્યું. આ પ્રકાર ના વ્યવહારથી શ્રી ઠાકુરજી ને જ્યારે પરિશ્રમ પડ્યો જાણ્યો ત્યારે તેમણે અસ્પર્શતા ને છોડી અન્યત્ર જઈ સિપાહીગીરી કરવા માંડી. જ્યારે તે અડેસ ગયા ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેમની ધીરજ નાં વખાણ કર્યાં.

રામદાસની પ્રીતિ આચાર્યશ્રી માં વિશેષ હતી એ તેમના અડેસમાં ખાડા પૂરવાના પ્રસંગ થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. તે સમયે લોકલજ્ઞ તેમજ સિપાહીની પાશાક આદિની પણ ઉપેક્ષા કરી ને તે આચાર્યશ્રીની સેવા માં તત્પર થયા હતા.

રામદાસ નો ભાવ અસાંકિક હતો. જ્યારે સ્ત્રીએ એક પુત્ર અર્થે તેમને બીજા વિવાહ નું કહ્યું ત્યારે તેમણે પોતાનો તે પ્રતિ વૈરાગ્ય બતાવી પોતાના ઠાકુરજી માંજ વાત્સલ્ય ભાવ થી સેવા કરવાને કહ્યું, પરંતુ સ્ત્રી એ સકામ ભાવ થી તે સેવા કરી જે થી તેને એક પુત્ર થયો.

રામદાસ ની ધીરજ અપરિમિત હતી તેમણે તમામ દ્રવ્ય ખૂટી ગયા છતાં પોતાનો ધીરજ ને ન છોડી હતી. તેમના પુષ્ટિ-ધર્મ પણ અદ્વિતીય હતો જ્યારે તેમણે શ્રીઠાકુરજી ને પરિશ્રમ પડ્યો જાણ્યો ત્યારે તેઓ લોકલજ્ઞ આદિ ને છોડી સિપાહીગીરી માં રહ્યાં આ તેમના સાહસ ની પરાકાષ્ઠા હતી.

૨. વાર્તા-સ્વારસ્ય:—રામદાસની વાર્તા પુષ્ટિશ્રુતિ ના



‘વીર્ય’ ધર્મની સૂચક છે. એમાં પરાક્રમ સમ્પન્ન વિવેક, ધૈર્ય અને આશ્રય ની પરાકાષ્ટા રહેલી અનુભવાય છે. પ્રભુના અસાધારણ વીર્ય- પરાક્રમ- વિના પુષ્ટિનાં વિવેકાદિ સિદ્ધ થઈ શકતાં નથી.

૧ વિવેક: -- “વિવેકસ્તુ હરિઃ સર્વનિજેચ્છાતઃ કરિષ્યતિ” ઇત્યાદિ આચાર્યચરણે નિરૂપેલી વિવેક ની આજ્ઞાઓ ને રામદાસે વ્યાજે મૂકેલા દ્રવ્ય ના સંપૂર્ણ અભાવ સમયે પણ પ્રાર્થનાદિ ની ઉપેક્ષા કરી પ્રભુ ને પરિશ્રમ પડતો જાણી સિપાહી-ગીરી ની નોકરી ને સ્વીકારી તે વિવેક ની પરાકાષ્ટા ને સિદ્ધ કરી છે. “ પ્રાર્થિતેવા તતઃ કિંસ્દાત્ સ્વામ્યભિપ્રાય સંશયાત્ ” ઇત્યાદિ આજ્ઞાઓ અત્રે સ્મરણીય છે.

૨ ધૈર્ય:- “ત્રિદુઃસહનં ધૈર્યમ્” એ આચાર્યચરણે નિરૂપેલા ધૈર્ય ને રામદાસે લોકલજ્ઞ અને ભગવત્સેવાદિ માં નેગાદિ ની થયેલી ત્રુટિ આદિ લૌકિક અલૌકિક દુઃખો ને સહન કરી ને સ્પષ્ટ કર્યું છે. અત્યંત દ્રવ્ય સમ્પન્ન અવસ્થા ને ભોગવ્યા પછી પણ ભગવત્સુખાર્થ સિપાહીગિરિ ની નોકરી કરેલી. એમાં જે અસહ્ય લૌકિક લજ્ઞા આદિ દુઃખો રહેલાં છે તે ભૌતિક દુખો ને રામદાસે જેમ સહન કર્યાં તેમ ભગવત્સેવા માં ખાંધેલા નેગની ત્રુટિ તું અલૌકિક આધિદેવિક દુઃખ પણ અસહ્ય જ હતું એને પણ રામદાસે સહન કર્યું છે. એ પ્રકારે સ્ત્રીનું પુત્રકામનાદિ તું માનસિક-આધ્યાત્મિક દુઃખ પણ તેમણે સહન કર્યું. આ ધૈર્ય ની પરાકાષ્ટા છે.

૩ આશ્રય:— “અશક્યે વા સુશક્યે વા સર્વથા શરણં હરિઃ ।” એ આચાર્ય નિરૂપિત આશ્રય ને રામદાસે સ્ત્રી ની પુત્ર કામના સમયે શ્રીહરિ પ્રતિજ્ઞા અલભાવ ની સેવા ના ઉપદેશ



થી સ્પષ્ટ કરેલો છે. આમ રામદાસ ની આ વાર્તા માં પુષ્ટિ ના વિવેક ઘેર્યાંદ દ્વારા પુષ્ટિમુક્તિ ના 'વીર્ય' ધર્મ નું નિરૂપણ છે.

## ગદાધરદાસ

૧. ભૌતિક ઇતિહાસ—ગદાધરદાસ નો વિશેષ ઇતિહાસ અન્યત્ર પ્રાપ્ત ન થી. “વાર્તા” એવં “ભાવપ્રકાશ” ને અનુસાર તેઓ કડા- માણેકપુર ના સારસ્વત ‘કપિલ’ સંજ્ઞાધારી બ્રાહ્મણ હતા. તેમને એક કાકા હતા. જે પ્રયાગ માં રહતા હતા.

ગદાધરદાસ મકર સ્નાનાર્થે જ્યારે પ્રયાગ આવતા ત્યારે તે તેમના કાકા ને ત્યાં ઉતરતા. એક સમય જ્યારે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પ્રયાગ પધાર્યા હતા- ત્યારે તેમની સાથે ચર્ચા કરવાને ગદાધરદાસના કાકા આપના મુકામે ગયા હતા. એ વખતે ગદાધરદાસ પણ એમની સાથેજ હતા.

ગદાધરદાસ ના કાકાએ આચાર્યશ્રી ને કૃષ્ણ, રામ, નૃસિંહ અને નારાયણ આદિ માં મુખ્ય હૃદયર કોણ એમ જ્યારે પ્રશ્ન કર્યો ત્યારે આપે લોક ચુક્તિ એ ચક્રવર્તિ રાજાના દૃષ્ટાંતે મુખ્ય હૃદયર રૂપ થી શ્રીકૃષ્ણનું પ્રતિપાદન કર્યું આ સમય ગદાધરદાસ સાથે હતા તે આ સાંભળી આચાર્યશ્રી ની શરણે આવ્યા.

ગદાધરદાસે શરણ અનન્તર પોતાના કાકા શૈવી હોવાથી તેમના ઘરનો ત્યાગ કર્યો. કાકા ને ત્યાં એક શ્રીમદનમાહુનજી નું સ્વરૂપ હતું તે તેમણે કાકા ની પાસે થી માંગી લીધું. આચાર્ય શ્રી એ આ સ્વરૂપ ને પુષ્ટ કરી તેમને સેવાર્થે પધરાવી આપ્યું-



અને ઉપદેશ રૂપથી 'ભક્તિવર્દિની' ને પ્રકટકરી તેનું આજ્ઞાન કર્યું 'ભક્તિવર્દિની' ના "અવ્યાવૃત્તં મજેન્ કૃષ્ણ" વાલા આચાર્ય વાક્યને શ્રવણ કરીને ગદાધરદાસે તેને પોતાના જીવન પર્યંત અનુસરવાનો નિશ્ચય કર્યો.

ગદાધરદાસ આચાર્ય શ્રી ની શરણે આવ્યા ત્યારે તેઓ ત્રીસ વર્ષ ના હતા. તે સમયે તેમનાં માતા-પિતા વિદ્યમાન ન હતાં તેમજ તેમનું લગ્ન પણ થયું ન હતું.

આચાર્યશ્રીના તિરોધાન અનન્તર ગદાધરદાસ ની ઉપસ્થિતિ નો કેમ પણ ઉદ્દેશ્ય કંઈ પણ પ્રાપ્ત થતો ન હોવાથી એમ અનુમાન થઈ શકે છે કે તેમનો અંતિમ કાલ વિં સં ૧૫૮૭ ના આસ-પાસ નો હોવો જોઈએ. તેઓ ત્રીસવર્ષ શરણે આવ્યા અને તેમણે કેટલાક કાલ પર્યંત સેવા કરી તેમજ માધવદાસાદિ ને અનન્યભક્તિ નું દાન કર્યું એ સર્વ ને જોતાં તેમની આયુ ૬૦ થી ૬૪ વર્ષ ની અનુમાન થઈ શકે છે. એ ઉપરથી તેમનો શરણુકાલ વિં સં ૧૫૫૨ લગભગ નો સમજી શકાય તેમ છે.

ગદાધરદાસ ની વૈષ્ણવો ઉપર પ્રીતિ અદ્ભુતહતી એ તેમના "ગોવિન્દ પદયજ્ઞવ મિર પર વિરાજમાન" વાળા પદ થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. એમાં "અધમ જન ગદાધર સં પાવત સન્માન" વાળા વાક્ય થી તેમની અલૌકિક દીનતા નું પણ ભાન થઈ રહે છે. તેમનામાં આચાર્યશ્રી ની કૃપા થી વાક-સિદ્ધિ પણ હતી તે માધવદાસ ને પ્રાપ્ત થયેલ ભક્તિ થી જાણી શકાય છે. તેઓ નિરભિમાની સમદર્શી અને ત્યાગી પુરુષ હતા. એથીજ તેમના ક્ષણિક સંગ થી વણુઝારો પણ વૈષ્ણવ થયો હતો. તેમની ભક્તિ ઉચ્ચ-વિપ્રયોગાત્મક હતી એથી જ્યારે પ્રભુ દિનભર ભૂખ્યા રહ્યા ત્યારે તેઓ વ્યાકુલ થયા અ



તે વ્યાકુલતા ના કારણેજ તેમણે રાત્રે અનાયાસપેસા પ્રાપ્ત થતાં માત્ર બજારની જલેખી પ્રભુને ભોગ ધરી હતી. આવી ઉચ્ચ ભક્તિ પ્રાપ્ત થયેજ ભક્ત દેહાનુસંધાન રહિત થઈ શકે છે. અને ત્યારેજ તે જીવધર્મરૂપ આચારવિચારો ને સહજ વિસરી જાય છે. અત્રે વાઘાજી રજપૂત નું દૃષ્ટાંત પણ સ્મરણીય છે. સેવામાં જે લોકવેદના આચારો નું પાલન કર્તવ્યરૂપ છે તે માત્ર જીવ ના હૃદય ની શુદ્ધિ ને અર્થેજ હોય છે. એ શુદ્ધિ જ ઉચ્ચ ભક્તિ દ્વારા સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જાય તો તે જીવ ને તેવા પ્રકાર ના આચાર વિચારો નું ધર્મ રૂપ થી પાલન કરવું શેષ રહેતું નથીજ તો પણ તેવા ભક્તોમાં જે તેવા આચારો સામાન્ય અવસ્થા માં દેખાય છે અને તે કેવળ તેમને માટે તો લોકવેદ ના સંગ્રહાર્થ રૂપ અને ભગવદ્દર્શના ના પાલન રૂપ થીજ હોય છે. અન્ય રૂપ થી નહિજ. કારણ કે જો તેવા મહાનપુરુષો તે આચારો નું સામાન્ય અવસ્થાઓ માં પણ ઉદ્ધિંબન કરે તો તેનું અનુકરણ સાધારણ જનતા કરવા લાગી જાય એથી સામાન્ય ધર્મો નો વ્યતિક્રમ થઈ ને તે પરોક્ષ ભગવદ્દર્શા એના ઉદ્ધિંબન નો દોષ પણ પ્રાપ્ત થઈ રહે.

અત્રે જે જલેખી નું સ્નેહાધિક્યે તાપભાવથી પ્રભુને સમરપણુ કરવામાં આવ્યું છે તેન ગદાધરદાસ પોતાના ઉપયોગ માં લીધી નથી એ વસ્તુ વિશેષ કરીને દ્રષ્ટવ્ય છે તેઓ તો તે સમયે ભૂખ્યાજ સુઈ રહ્યા હતા. એથી તેમના થી આચાર મર્યાદા નું ઉદ્ધિંબન પણ થયું નથી ।

તેમણે જે પ્રકાર ના સ્નેહ થી પ્રભુને તેનો ભોગ ધર્યો તેજ પ્રકાર ના સ્નેહ થી વૈષ્ણવોના સ્વરૂપ ને પણ ભગવદ્ ભાવરૂપ જાણી નેજ તે જલેખી વૈષ્ણવો ને પણ લેવડાવી એ થી સ્નેહ ની શુદ્ધતા એ તે કાર્ય પણ પુષ્ટિરૂપ થઈ રહ્યું.



અતઃ તેમાં કોઈ પણ પ્રકારના દોષ ની સંભાવના રહે લી નથી  
આમ ગદાધરદાસ ની ભક્તિની ઉત્કર્ષતા સ્વતઃ સિદ્ધ છે .

ગદાધરદાસ કવિહૃતા . તેમનાં પદો માં ‘ ગદાધર ’  
છાપ પ્રાપ્ત થઈ રહે છે એમનો કાવ્ય પરિચય ‘ પુષ્ટિમાર્ગીય  
ભક્ત કવિ ’ માં હવે પછી આપવામાં આવશે—

### વાર્તા—સ્વારસ્ય

ગદાધરદાસજી ની વાર્તા નું સ્વરૂપ પ્રથમ ભાગ ની  
પ્રસ્તાવના માં જણાવ્યા પ્રમાણે (પુષ્ટિ) ઉત્ત નું છે. ઉત્તિલીલા  
અર્થાત્ કર્મવાસના નું સ્વરૂપ. આહિં તે ઉત્તિ પુષ્ટિ ના ભાવરૂપે  
હોવાથી આ વાસના તે પુષ્ટિની સેવા ભાવના રૂપમાં પ્રસિદ્ધ  
છે. ભાવના એ ભાવનું આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ છે ( જુઓ .  
વાર્તા રહસ્ય પ્રથમ ભાગ પત્ર ૧૦) ભાવના થીજ ભાવ રૂપ  
હરિ ની પ્રાપ્તિ છે. આ ભાવના નું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે—

“ ભાવસ્તુ વિપ્રયોગેણ તાપક્લેશૈર્વિચારણમ્ । ”

અર્થાત્ “ વિરહે કરી તાપક્લેશ વિચાર કરવામાં આવે  
તે ભાવ — ” અહીં “ વિચાર કરવામાં આવે ” એશબ્દો  
થી સાધન રૂપતા કહેલી છે. અતએવ અહીં જે ભાવ  
શબ્દ યોજ્યોછે તે સાધનરૂપ ભાવના ના અર્થમાં પ્રયુક્તછે. ભાગ-  
વતોક્ત ઉત્તિ લીલા માં સદ્વાસના, અસદ્વાસના અને સદસદ્વા-  
સના એમ ત્રણ ભેદ રહેલા હોય છે કિન્તુ અહીં ભાવરૂપ પુષ્ટિ  
પ્રકારમાં તે કેવલ સદ્ભાવના રૂપજ છે. આ સદ્ભાવના પોતાના  
સામર્થ્ય થી અસદ્વાસના અને સદસદ્વાસના ને પોતાની સદૃશ  
કરી દે છે તેનાં વાસ્તવિક ઉદાહરણ ગદાધરદાસ ની આ વાર્તા  
માં રહેલાં છે માટે આ વાર્તા આચાર્ય શ્રી ની ભાવાત્મક ઉત્તિ-  
લીલા પ્રસિદ્ધ છે—

સદ્વાસના— પુષ્ટિ માર્ગ માં વાસના નું સ્વરૂપ ભાવના નું  
છે. અને તે ભાવના ભાવ સિદ્ધ કરવાનું મુખ્ય સાધન છે.



ગદાધરદાસ માં આ સદ્ભાવના કેવા રૂપમાં સ્થિત હતી તે વાર્તા ના પ્રથમ પ્રસંગ થી આરીતે સ્પષ્ટ છે—

પ્રારંભમાં ગદાધરદાસ ની ભાવના ની શરૂઆત કેવી રીતે થઈ તે બતાવે છે— “ चित्त मानसी सेवा फल रूप में इन को लाग्यो । ” અહીં “ લાગ્યો ” શબ્દ મૂકવામાં આ બ્યા છે તે સાંવન રૂપતા ના સ્પષ્ટિકરણ રૂપ છે. અતઃએવ ગદાધરદાસ ની ભક્તિ ની પ્રવૃત્તિ માનસી રૂપ સદ્ભાવના થી શરૂ થાય છે. કિન્તુ આ સાંવન રૂપ પ્રારંભની માનસી ભાવના ને તનુજા વિત્તજની પણ અપેક્ષા રહેલી હાય છે. મોટે આગળ વાર્તા માં “ परन्तु या मानसी भावना में वैष्णव को नमाभ्याज नहीं ” એ પ્રમાણે બાહ્ય સેવા ની આવશ્યકતા કહેલી છે. એનાં કલેશ ગદાધરદાસ ને થયો તે જતાવવાને આગળ વાર્તા માં કહેયું છે કે— “ नातें छान में आगि लागी जो आलु कछू नहीं धर्यो ” આ પ્રકારના વિરહથી ગદાધરદાસ ની ઉક્ત સાંવન રૂપ “ સદ્ભાવના ” સિદ્ધભાવ સ્વરૂપમાં પરિવર્તિત થઈ ગઈ. આ પ્રાપ્ત ભાવનું સ્વરૂપ તેમના “ गोविन्द पद पल्लव सिर पर विराजमान ” એ આખાંય પદનાં અક્ષરે અક્ષર માં ઝળકે છે આ સિદ્ધ સ્વરૂપ ભાવના પ્રતાપેજ તેમણે પ્રસંગ બે માં વર્ણિત ઉત્તિલીલાની અસદ્વાસના નાં સ્થિતિ ભત માધવદાસ કે જેની વશ્યામાં અસદ્પ્રીતિહતી તેને તેમણે ભક્તિ રૂપ પરમભાવનું દાન કર્યું તેનું વર્ણન વાર્તાના આ શબ્દો થી સ્પષ્ટ છે—

“ तब प्रसन्न होइ के माघोदास सों कहे जो-तिहारो लायो साग आढाकुर जो आरोगे नातें तोको हरि भक्ति दद दोऊ। यह आसिरबाद दिये । એજ પ્રકારે ત્રીજા પ્રસંગ માં સદ્ અને અસદ્વાસના રૂપ વળુજારાનાં પણ ગદાધરદાસે પોતા માં સ્થિત સિદ્ધ ભાવરૂપ ભક્તિના બળે ઉદ્ધાર કર્યો એ રીતે વાર્તા માં ઉત્તિરૂપ સદ્વાસના ના પુષ્ટિ સ્વરૂપ નું વર્ણન કર્યું છે—



આ સદ્ભાવના રૂપ પુષ્ટિ તું સ્વરૂપ આચાર્ય શ્રીના દક્ષિણ શ્રીહસ્ત રૂપ છે.

બીજા પ્રકારે આ વાર્તા માં ‘યશ’ તું પ્રતિપાદન છે. ‘યશ’ એ પુષ્ટિ ધર્મ છે. અતઃ આ ‘યશ’ પુષ્ટિ મોક્ષ (મુક્તિ) ના ધર્મ રૂપ છે. ગદાધરદાસે માધવદાસ ને ભક્તિ તું જે દાન કર્યું છે તે આચાર્ય શ્રી વિના અન્યત્ર દુર્લભ છે. સાયુજ્યાદિ મર્યાદા મુક્તિ ભગવાન અને તેમના ભક્તો આપી શકે છે કિન્તુ પુષ્ટિ ભક્તિ તું દાન તો કેવળ શ્રીમદાચાર્ય ચરણજ કરી શકે છે. એવી તે ભક્તિ અદ્વય દુર્લભ છે. એ તું દાન શ્રીમદાચાર્ય ચરણજ કરી શકતા હોવા થી “અદેયદાન દક્ષશ્ચ” એ પ્રકારે આપ તું નામ પ્રસિદ્ધ ! થયેલું છે આ પ્રકારતું અદેયદાન ગદાધરદાસે શ્રીમદાચાર્યચરણના આશ્રયથી માધવદાસ ને કર્યું એથી ગદાધરદાસ માં શ્રી-મદાચાર્યચરણનો ‘યશ’ ધર્મ પ્રકટ રહેલો સિદ્ધ થઈ રહે છે. એનાથી માધવદાસ વિષયાનન્દ થી મુક્ત થઈ ભજના-નંદરૂપ પુષ્ટિ ભક્તિ વાલી મુક્તિ (મોક્ષ) ને પ્રાપ્ત થયા. અતઃ આ ‘યશ’ પુષ્ટિ મુક્તિ ના ધર્મ રૂપ છે.

પદ્મનાભદાસ ની વાર્તા માં જે આશ્રય તું પ્રતિપાદન છે તે શુદ્ધ પુષ્ટિ ની અવસ્થા રૂપ છે. એથી ગદાધરદાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ ઉત્તિ રૂપ જમણા શ્રીહસ્ત રૂપ છે જ્યારે પદ્મનાભ-દાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ ના શુદ્ધ આશ્રય રૂપ આચાર્ય શ્રી ના વામ શ્રીહસ્તરૂપ છે. આ વામ શ્રીહસ્તરૂપ આશ્રય સ્વાધીના ભક્તિરૂપ છે. અર્થાત્ “કૃષ્ણાધીનાતુ મર્યાદા સ્વાધીના પુષ્ટિ રુચ્યતે” એ આચાર્ય કથન માં નિરૂપિત સ્વાધીના પુષ્ટિ ભક્તિ અતઃ ‘આશ્રય’ રૂપથી પ્રસિદ્ધ છે. એમાં સ્વરૂપ ની પણ અપેક્ષા રહેતી નથી તેમાં ‘કેવળ’ ભાવજ આશ્રય રૂપ થી સિદ્ધ હોય છે આ



‘ આશ્રય ’ રૂપ શુદ્ધ પુષ્ટિ નું વિવેચન અમારા તરફ થી પ્રકાશિત, પુષ્ટિમાર્ગ ’ માં થયેલું છે એથી અત્ર તેનું પિષ્ટ પેષણ કરવામાં આવતું નથી. પદ્મનાભદાસે અડેલમાં શ્રીમથુ રાધીશ ને શ્રીમહાપ્રભુજી ને ત્યાં પધારવાની વિનતી કરી- પોતાની સ્વરૂપ નિરપેક્ષતા અને સ્વાધીના ભાવ અવસ્થા ને સ્પષ્ટ કરી છે. એથી તે શુદ્ધ આશ્રય અવસ્થા રૂપ છે.

### ✦ માધવ દાસ ✦

ભૌતિક ઇતિહાસ—

માધવદાસ નું વિશેષ વૃત્ત અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. “ વાર્તા ” અને “ ભાવપ્રકાશ ” ને અનુસાર માધવદાસ કડા માણેકપુર માં રહેતા હતા. તેમના માતા પિતા નું નામ જ્ઞાત નથી. એમને એક મોટા ભાઈ હતા તેમનું નામ વેણી-દાસ હતું એ બન્ને ભાઈ પ્રયાગમાં શ્રીઆચાર્યશ્રીની શરણે આવ્યા હતા.

માધવદાસ ની સ્થિતિ શ્રીમદાચાર્યચરણ ની ભૂતલ સ્થિતિ પછી ઉપલબ્ધ થતી નથી. એથી તેઓ વિં સ ૧૫૮૭ પહેલાં જ ગત થઈ ગયેલા હોય એમ જણાય છે. તેમણે શરણે આવ્યા પછી પણ ઘણા વર્ષો સુધિ વેશ્યા ની સાથે વિપય ભોગ ભોગ વ્યો હતો. ત્યાર પછી ગદાધરદાસ ના આશીર્વાદ થી તે અનન્ય ભક્ત થયા હતા તેમણે વિં સં ૧૫૭૩-૭૪ માં વેશ્યા ને છોડી હતી એમ “ વાર્તા ” ના આ કથન થી સમ-ભાય છે—

“ જો વેશ્યા કો દુર કી ની । ++ તब वेश्या ने बिना  
घी की अंगकरी जाय निर्बाह पंद्रह वर्ष लों कियो । पाछे  
श्रीगुसांई जी कडा में पधारे बब वेश्या ने सुनी । श्रीगुसांई  
जी सों आय बिनती करी । ... महाराज मोकों माधोदास कहि  
गए हे जो तू श्रीगुसांई जी की दासी है । सो आपु के लिए



પંદ્રહ વરસ તો સૂચી અંગાકરી સ્નાય દેહ રાક્ષી । ”  
અહિ “ માધોદાસ કહિ ગયે હૈ ” અર્થાત્ માધવદાસ કહિ  
ગયા હતા. એ શબ્દો થી માધોદાસ નું જેમ પરોક્ષ સિદ્ધ  
થઈ રહે છે તેમ શ્રીગુસાઈજી નું સ્વતંત્ર રૂપ થી સર્વ પ્રથમ  
કડા માં આગમન થયું તેના પૂર્વ પંદ્રહ વર્ષ પહેલાં માધવદાસે  
વેશ્યા નો ત્યાગ કર્યો હતો એ પણ સ્પષ્ટ કહેવાયલું છે. શ્રીગુ-  
સાઈજી નું સર્વપ્રથમ સ્વતંત્ર રૂપ થી કડા માં આગમન વિં સં ૧૫૮૮  
માં થયે લું છે. એ સમય આપે અડલથી  
ગોપાલપુર જતાં વચ્ચે કડામાં મુકામ કર્યો હતો. અતઃ ૧૫૮૮  
માં થી ૧૫ વર્ષ બાદજતાં સં ૧૫૭૩ આવે છે. આ સમય  
માધવદાસ ની અનન્ય ભક્તિ ના પ્રારંભનો સિદ્ધ થઈ રહે છે.

અતઃ માધવદાસ ની ભૂતલ સ્થિતિ ઓછા માં ઓછી  
૫૦-૬૦ વર્ષ ની માનવામાં આવે તો તેઓ વિં સં ૧૫૫૨  
માં આચાર્ય શ્રી ની શરણે આવ્યા હોવા જોઈએ. કેમકે ત્યાર  
પછી તેમણે ઘણા વર્ષો સુધિ વેશ્યા નો સંગ કર્યો. પછી તેના  
ત્યાગ કર્યો. પછી દક્ષિણ કમાવા ગયા. ત્યાં થી મોતિ ની માલા  
લાવ્યા અને આચાર્ય શ્રી ને સમર્પિત કરી આ બધી ઘટનામાં  
ઓછામાં ઓછા વીસ વર્ષ નું અનુમાન આવશ્યક છે.  
એથી તેમના શરણ કાલ નો ઉક્ત સંવત ઠીક લાગે છે.

માધવદાસ ની ભક્તિ સત્ય અટલ અને શુભનિષ્ઠા  
વાળી હતી. તેમણે શ્રીમદાઆચાર્યચરણ ની આગળ પણ  
પોતાના દાપને છિપાવ્યો નહિ. તેમજ શ્રીનવનીતપ્રિયજીએ જ્યારે  
તેમની પરીક્ષા કરી ત્યારે પણ તેઓ જરા પણ ઘેર્ય થી  
ચલિત થયા નહિ. એમની શુભનિષ્ઠા ભાઈના સહવાસના  
ત્યાગ થી પણ પ્રત્યક્ષ થઈ રહે છે. જ્યારે ભાઈએ કાપટ્ય ભાવ  
થી “ આ બધું પ્રભુનુંજ છે ” એમ કહી માલા લેવાની ના



પાડી ત્યારે માધવદાસ પોતાના હિસ્સા નું દ્રવ્ય લઈ અલગ થયા અને પોતે જે મનોરથ કર્યો હતો તેને પૂર્ણ કરવાને અર્થે દક્ષિણ જવાનું સાહસ ખેડ્યું. અને ત્યાંથી તેવીજ માલા ખરીદી અડલ આવી શ્રીઆચાર્યજીને તે શ્રીનવનીતપ્રિયજીના અર્થે ભેટ કરી. આ માલા આજપણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને ત્યાં નાથદારામાં વિદ્યમાન છે અને તેનું નામ ' માધવદાસ જ પ્રચલિત છે.

માધવદાસ ના સંગ થી વેશ્યા માં પણ ભક્તિભાવ પ્રકટ્યો અને તેને લઈને તે આચાર્ય પૂર્વક શ્રીગુસાંઈજી ની સેવકની થઈ. એ સમયે વેશ્યા માં રહેલો વિપયભાવ પ્રભુપ્રતિ મુદ્દ પતિપ્રતા ધર્મના રૂપમાં પલટાઈ ગયો અને તેણે અટકાવ માં પણ પ્રભુનો વિરહ સહ્ય ન થવાથી સેવા કરવા માંડી અને શુદ્ધ થયે અપરસ કાઢી શ્રીની સેવા મર્યાદાની પણ તે રક્ષા કરતી. એનાથી શ્રીગુસાંઈજી પણ પ્રસન્ન થતા. અને શેરગદના દામોદરદાસની માતા વીરબાઈ નું દષ્ટાંત પણ સ્મરણીય છે.

## ૨. વાર્તા—સ્વારસ્ય—

માધવદાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ મુક્તિ ના ' શ્રી ' ધર્મ રૂપ છે. એમાં માધવદાસ નો શ્રીનવનીત પ્રિયજી પ્રતિ જેમ દૃઢ વિશ્વાસ સ્પષ્ટ થયો છે તેમ તેમના માં તાદશ ભાવ વાળી અલૌકિક સાક્ષાત્ સેવા પણ ફલિત થયેલી માલા ના પ્રસંગ થી અનુભવાય છે. " ધ્રિયોઽહિ જરમાકાળઠા સેવકા સ્તાદશા ચર્ષિ । " એ વાક્ય અત્રે દ્રષ્ટવ્ય છે. પુષ્ટિ મોક્ષ રૂપ શ્રીમદાચાર્ય ચરણ માં પોતાના તે વિશ્વાસ ને સમર્પિત કરી માધવદાસ પોતામાં શ્રીમદાચાર્યચરણ ના ' શ્રી ' ધર્મ ને સ્પષ્ટ કર્યો છે.



## હરિવંશપાઠક

૧. ભૌતિક ઇતિહાસ:— હરિવંશપાઠક નું વિશેષ વૃતાંત-  
અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. “ વાર્તા ” અને “ ભાવપ્રકાશ ” ને અનુ-  
સાર આ હરિવંશ પાઠક કાશી ના હતા. પહેલાં તેઓ ગણેશ  
ના ઉપાસક હતા. પરંતુ પછી થી તેઓ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે  
આવ્યા હતા. તેમના શરણ કાલ ના નિશ્ચય અર્થે ‘ભાવપ્રકાશ’  
ની આ પંક્તિયો દ્રષ્ટવ્ય છે—

“ સો જબ શ્રી આચાર્ય જી પત્રાવલંબન કાશી મેં કિવ  
પંડિતન કોં જોતે તબ હરિવંશ પાઠક કે મન મેં આઈ જો મેં  
હ શ્રી આચાર્ય જી મહાપ્રભુન કે દરસન કરિ આજ્ઞાં । × × ×  
સો શ્રી આચાર્ય જી પાસ દોર્યો આયો દંડવત્ કરિ બિનતી  
કરી મહારાજ × × × જબ મેરો અપરાધ છિમા કરિ સરનિ લેહું

આ પંક્તિઓ થી એ સ્પષ્ટ છે કે તેઓ પત્રાવલંબન  
સમયે કાશીમાં આચાર્યશ્રી ની શરણે આવ્યા હતા.  
પત્રાવલંબન નો સમય દિગ્વિજય ને અનુસાર તૃતીય પરિક્રમા  
નો છે. વાર્તામાં પણ “ પાછે ” આપુ પૃથ્વી પરિક્રમા કોં  
પધારે ” એ શબ્દ પ્રાપ્ત થાય છે એથી જે લોકો તું એવું  
માનવું છે કે ત્રણ પરિક્રમા અનન્તર પત્રાવલંબન ની રચના  
થઈ છે તે અસત્ય રે છે તૃતીય પરિક્રમા સમયે આપ વિં ૦ સં ૦  
૧૫૬૪ માં કાશી પધાર્યા હતા અતઃ હરિવંશ ના શરણકાલ  
નો સંવત પણ તેજ સિદ્ધ થઈ રહે છે.

હરિવંશ પાઠક લોકમાં સારી રીતે વૈરાગ્ય વાલા હતા.  
એથીજ તેમણે હાકિમ ત્રા પાસે અન્ય કંઈપણ ન માંગતાં  
કેવળ સેવા ની સિદ્ધિ ની ભાવનાએ શીઘ્રાતિશીઘ્ર



કાશી જવાના પ્રખંડની જ યાત્રના દરી.

હરિવંશ પાઠક ને એક સ્ત્રી તેમજ એ સંતાન હતાં તેઓ વ્યવસાય અર્થે વિશેષ કરીને પટના રહેતા હતા. ત્યાંથી તે પ્રતિ ઉત્સવ ઉપર પોતાના ઘરે આવીને શ્રીહાકુરજી ની સેવા કરતા. એમણે શ્રીમદ્વાચાર્યચરણ ની ઈચ્છા ને જાણી આપ શ્રી ની સેવકની પંચવર્ષિય કૃષ્ણાનું પાલન કર્યું હતું અને તે મોટી ઉમરની થઈ ત્યારે લોકાપવાદના ભયે તેને શ્રીગુસાંઈજી ને ત્યાં મોકી આપ્યા હતા. શ્રીમદ્વાચાર્યચરણ ના સેવકો ઉપર હરિવંશ ની અત્યંત પ્રીતિ આથી સિદ્ધ થઈ રહે છે.

હરિવંશ ના રોવ્યસ્વરૂપ આલિપ્ત્યુ ૭ હતા જે તે  
અજાર થી ન્યોછાવર દહ મેળવ્યા હતા.

૨ વાર્તા—સ્વારસ્ય— આ વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષરૂપ શ્રીમહાચાર્યવરણના 'વૈરાગ્ય' ધર્મ રૂપ છે. અર્થાત્ દરિયંશમાં ભગવત્સુખાર્થે સર્વ પ્રલોભનના ત્યાગ ને અત્રે સ્પષ્ટ દર્શનામાં આ વ્યો છે. પુષ્ટિમાર્ગમાં ભગવત્સુખાર્થ સર્વ વસ્તુના ત્યાગને જ વૈરાગ્ય કહેવાયલું છે—



# गोविन्ददास भट्टा

૧ ભૌતિક ઇતિહાસ— ગાવિંદાદાસ નું વિશેષ વૃત્તાંત અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. “ વાર્તા ” અને “ ભાવપ્રકાશ ” અનુસાર તેઓ થાનેશ્વર ના ક્ષત્રી હતા. તેઓ ત્યાંના હાકિમ ની નોકરી કરતા



તેમાં તેમને ઘણું દ્રવ્ય પ્રાપ્ત થયું હતું એમનું લગ્ન થયું હતું

જ્યારે શ્રીમદ્દેસભાચાર્યજી થાનેશ્વર પધાર્યા ત્યારે તે આપનાં સેવક થયા હતા પછી સ્ત્રી અનુકૂલ ન હોવાથી તેમણે શ્રીમદ્દાચાર્યચરણ ને પોતાની સ્થિતિ ને નિવેદન કરી આપની આજ્ઞાનુસાર તે પોતાના દ્રવ્ય ના ચારભાગ કર્યા તેમાં થી એક ભાગ સ્ત્રી ને, એક શ્રીનાથજી ને, અને એક ભાગ આચાર્યશ્રી ને સમર્પિ એક ભાગ પોતાને માટે રાખ્યો પછી તેઓ મહાવન માં શ્રીમથુરાનાથજી ની મર્યાદારિતિથી સેવા કરવા લાગ્યા ત્યાં પોતાના ભાગ નું દ્રવ્ય ઘટ્યું ત્યારેતે શ્રીનાથદ્વારમાં આવી શ્રીનાથજી ની સેવામાં રહ્યા અહિં તે ઓ કોરી ભિક્ષા માંગી પોતાનો નિર્વાહ કરતા આ વાત શ્રીનાથજી ને સોહાઈ નહિ, એથી આપે શ્રીમદ્દાચાર્યચરણ ને તે વાત જતાવી. તે થી શ્રીમદ્દાચાર્યચરણે ત્યાં પધારી ને તેમને સમજાવ્યા. પરંતુ દેવદ્રવ્ય અને ગુરુદ્રવ્ય ન લેવાનો તેમનો આગ્રહ જોઈ પાછળ થી તેમને આપે સેવા છોડી દેવાનો આદેશ આપ્યો આદેશાનુસાર તેમણે શ્રીનાથજી ની સેવા છોડી દીધી અને મથુરામાં કેશવરાયજી ની સેવા નો ઈજારો લીધો. ત્યાં તેમને ત્યાંના હાકિમ થી લગભગ થઈ અને તેમાં તે માર્યા ગયા. ગુરુ આજ્ઞા ઉલ્લંઘનનું તેમને એ કૃપા મળ્યું કે એકતો શ્રીનાથજી ની સેવા છુટી અને બીજું મ્લેચ્છો ના હાથથી તેઓ માર્યા ગયા.

તેમનો શરણ આવવાનો સમય સ્પષ્ટરૂપ થી પ્રાપ્ત નથી તોપણ શ્રીનાથજીના પ્રાકટ્ય પછીજ તેઓ શરણ આવ્યાછે એ વાર્તા માં “શ્રીનાથજી નો એકભાગકાઢ્યા વાળા ઉલ્લેખ થી સ્પષ્ટજ છે. શ્રીનાથજી નો પ્રાદુર્ભાવ વિં સં ૧૫૫૫ માં છે અતઃ તેમને શરણ કાલ તે પછીનાજ સ્પષ્ટ થાય છે.

ગોવિંદદાસ ભટ્ટા નો અંતિમ સમય વિં સં ૧૫૮૭ નો પૂર્વ છે. કેમકે વાર્તા ને અનુસાર તેમના અંતિમ સમયની ઘટના



શ્રીમહાપ્રભુજી પાસે વૈષ્ણવો એ વ્યક્તકરી હતી શ્રીમહાપ્રભુ-  
જી તું તિરોધાન વિં સં ૧૫૮૭ નિશ્ચિત છે એથી ગોવિંદ-  
દાસ નો અંતિમ સમય તે પૂર્વ નો સ્પષ્ટ થઈ રહે છે.

ગોવિંદદાસ ભક્ષા એ સંવેલા શ્રીમથુરાનાથજી કાલાંતરે  
શ્રીમહાપ્રભુજી ને ત્યાં પધાર્યા હતા અને ત્યારથી વંશ પરંપરા  
એ તે સ્વરૂપ આજ કાંકરોલીમાં ગાં શ્રીવિકુલનાથજી ને  
માથે બિરાજમાન છે.

સ્વાર્તા સ્વારસ્ય—આ વાર્તામાં પુષ્ટિભોક્ષ ના ‘જ્ઞાન’ ધર્મ તું  
મુચન છે. જ્ઞાન ના આવિકર્યે ગોવિંદદાસ થી શ્રીનાથજી ની સેવા  
ન થઈ શકી અને બ્રહ્મવિદની સમાન તેમણે જહાં તહાં અર્થાત  
કેશવરાયજી મર્યાદા સ્વરૂપની પણ સેવા કરી છે.

આ ભાગમાં આવેલા સ્વરૂપોની યાદી અને વિગત

વાર્તા સં	સ્વરૂપોનાં નામ	કોનાં સેવ્ય	હાલ ક્યાં બિરાજે છે
૧	શ્રીમદન મોહન જી	શ્રીમહાપ્રભુજી	શ્રીમદગંગુલ
૪	શ્રીનવનીત પ્રિયાજી [ રાજા ઠાકોર ]	”	”
૫	શ્રીખાલકૃષ્ણજી	”	”
૬	શ્રીખાલકૃષ્ણજી	”	શ્રીનાથદ્વારા
૭	શ્રીખાલકૃષ્ણજી	”	”
૮	શ્રીમથુરા નાથ જી	”	શ્રીકાંકરોલી



## ગોપાલદાસ અને રૂકમાણી ની

વાર્તાઓનાં સ્વારસ્ય

(પત્ર ૧૫ “પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય” પહેલાંનું અનુસંધાન)

ગોપાલદાસની વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષના ‘ધર્મી’ પ્રકાર રૂપ માં હોલ ધર્મી-પ્રમેય-નું સ્વરૂપ પૂર્વે સ્પષ્ટ થયેલું છે. એમાં ઐશ્વર્યાદિ છ ધર્મો આ પ્રકારે વ્યક્ત થયેલા છે—

ઐશ્વર્ય—“સમય પર ભગવદ્ સેવા કરતે” વિરહ દ્વારા તનની સુધિ ન રહેવા છતાં સમય ઉપર ભગવદ્ સેવા કરવી તે તેમનું ઐશ્વર્ય છે.

વીર્ય—“મોસોં તેરો વિરહ સહ્યો નહિ જાત” શ્રીહાકુરજી તેમનો વિરહ સહન ન કરતા તે તેમની ભક્તિતેની ઉત્કર્ષતા વીર્ય રૂપ છે.

યશ—“તાતે તેરો સમાધાન કરતુ હું ।” શ્રીહાકુરજી તેમનું નિરંતર સમાધાન કરતા એ તેમનો ‘યશ’ છે.

શ્રી—“વિરહ મેં સદા મગન રહતે” આચાર્યશ્રીના વિપ્રયોગાત્મક રસ સદૃશ નિરંતર સ્થિતિ રહેવી તે ‘શ્રી’ ધર્મ છે.

જ્ઞાન—“વિરહ મેં ગાન કરતે” શ્રીહાકુરજીની લીલા ભાવના ના જ્ઞાન સહિત ગુણ ગાન તે અત્રે ‘જ્ઞાન’ ધર્મ છે.

વૈરાગ્ય—“લૌકિક વૈદિક સર્વ ત્યાગ કરિ લીલા રસ મેં મગન રહતે ।” લીલા રસના અનુભવ પૂર્વક ભગવત્સુખાર્થ લૌકિક વૈદિક ધર્મોના ત્યાગ તે અત્રે ‘વૈરાગ્ય’ છે.



રૂઢમણીની વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષના 'ઐશ્વર્ય' ધર્મ રૂપ છે. એમાં શ્રીહાકુરજી ની ઋતુ સમયાનુસાર સેવા કરવી તેમજ શ્રીહાકુરજી ને પણ પોતાને અધીન કરવા તે અધુ પુષ્ટિ મોક્ષ ના ઐશ્વર્ય રૂપ છે. એનો વિસ્તાર પૂર્વે થઈ ગયો છે.

આ ભાગમાં કહેલાં ભગવત્સ્વરૂપો ની ઐતિહાસિક યાદી—

સંખ્યા	સ્વરૂપોનાં નામ	કોનાં સેવ્ય	હાલ ક્યાં ખિરાજે છે
૧ ૮૨	શ્રીમદ્દનમોહનજી	શ્રી મહાપ્રભુજીના	ગોકુલ
૪ ૧૨	શ્રી નવનીતપ્રિયજી ( સંજ્ઞાહાર )	"	"
૫ ૧૩	શ્રીમદ્દનમોહનજી	"	જામનગર
૬ ૧૪	શ્રીખાલકુખજી	"	ગોકુલ
૭ ૧૫	શ્રીનવનીતપ્રિયજી	"	કોટા
૮ ૧૬	શ્રીમથુરેશજી	"	કાંકરોલી

વાર્તા સંખ્યા માં ઉપરની સંખ્યા આ ભાગના ક્રમને અનુસાર છે જ્યારે તેની નીચેનીજે સંખ્યા છે તે પ્રારંભ થી શરૂ કરેલ સંખ્યા ને અનુસાર છે. પ્રથમ ભાગમાં ૮ વાર્તાઓ છે. ( દ્વિતીય ભાગ ની અષ્ટસખાની વાર્તા આ ની પ્રારંભિક



[ ૩ ]

સૂરદાસાદિ ચાર સખાઓ ની વાર્તાઓની ગણતરી ચોરાસી વાર્તાઓની અન્તિમ સંખ્યા ૮૧, ૮૨, ૮૩, અને ૮૪એમ છે.)

વાર્તા સંખ્યા ૬/૧૪માં શ્રીહાકુરજીનું નામ પ્રાપ્ત નથી છતાં ‘સેવ્ય સ્વરૂપોની વાર્તા’ માં હોવા થી અત્રે તેને આપેલ છે.

આ શ્રી હાકુર જી શ્રીમહાપ્રભુજી ના સમય માંજ મહાવન થી ગોકુલ પધારી ગયા હતા. ત્યાર થી અદ્યાપિ શ્રીમહાપ્રભુજીના વંશમાંજવસાજે છે.



॥ भीहरिः ॥

श्रीनाथदेव कृता

## संस्कृत वार्ता-मणिमाला \*

—: ( १८ ) :—

### वार्ता ६

( पुरुषोत्तम दास चौपंढा काशी )

अथ कश्चिच्चौपडाख्यः पुरुषोत्तमदासकः ॥

वाराणस्यां क्षत्रश्रेष्ठस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥ ५२१ ॥

श्रीमदाचार्यवर्याणां शरणं, स्वसमर्पणी ॥

श्रीकृष्णनाम सर्वेभ्योऽश्रायत्तदनुज्ञया ॥ ५२२ ॥

भवति स्म सदा गेहे यः श्रीमदन मोहनम् ॥

राजसेवा-संविधाभिः प्रभुं संपत्समन्वितः ॥ ५२३ ॥

द्विपञ्चाशद्वटिकान् स्म यश्च स्वप्रभवे सदा ॥

समर्पयति पक्वान्न-राजभोगोत्तरं मुदा ॥ ५२४ ॥

विश्वेश्वरमहादेव-दर्शनार्थमपि क्वचित् ॥

न गतः स्वप्रभोः सेवा-कर्मण्यनवकाशतः ॥ ५२५ ॥

एवं संभजतस्तस्य कालो बहुतरो गतः ॥

एकदा विश्वनाथेन रुद्रेण स्वप्न ईरितम् ॥ ५२६ ॥

“पुरुषोत्तमदासावामेकग्राम—निवासिनौ ॥

तत्रापि वैष्णवत्वाख्य--सम्बन्धं तु पुरस्कुरु ॥ ५२७ ॥

\* इसकी प्रथम द वार्ताए प्रथम भाग में प्रकाशित की जा चुकी हैं ।



यत्स्वप्नप्रभोः सुप्रसादं देहि स्वल्पमपि क्वचित् ॥  
 इत्याश्रुत्योत्थितः प्रातः स्नात्वा सेवां समाचरत् ॥ ५२८ ॥  
 राजभोगारार्त्तिकां तां कृत्वाथ बहिरास्थितः ॥  
 परिधाय स्ववासांश्चि हस्तयोस्तत्प्रसादितान् ॥ ५२९ ॥  
 बीटकांश्चतुरो धृत्वा पुरुषोत्तमदासकः ॥  
 विश्वेशदेव-निलयमभियाति स्म वैष्णवः ॥ ५३० ॥  
 अभियान्तं तमालोक्य लोका ग्राम-निवाधिनः ॥  
 विस्मिता ऊचुरन्योन्य “महो याति शिवालयम् ॥ ५३१ ॥  
 चित्रमेष क्वापि नाप्त” इति ते चलिताः समम् ॥  
 श्रेष्ठी देवालयं प्राप्तः पुरो विश्वेश्वरस्य, तान् ॥ ५३२ ॥  
 विधाय “जयश्रीकृष्णेति” ब्रुवन् पुनरागमत् ॥  
 तदा तत्र महाशैवविप्रैः पृष्ट “महो त्वया ॥ ५३३ ॥  
 श्रेष्ठिजमस्कृतो नेशः कृष्णोत्युक्त्वा गतं, न सत्” ॥  
 तदाऽऽकर्ण्य श्रेष्ठिनोक्तं “पृष्टव्यः स हि वोऽधुना ॥ ५३४ ॥  
 विश्वनाथो महादेवो वक्ष्यतीति” न संशयः ॥  
 निश्चेको विश्वनाथस्य कृपापात्रं द्विजोत्तमः ॥ ५३५ ॥  
 तस्य स्वप्ने शिवेनोक्तं “पुरुषोत्तमदासकः ॥  
 महामागवतो ब्रह्मन्नेतस्मादर्थितं मया ॥ ५३६ ॥  
 प्रभोर्महाप्रसादाख्यं वस्तु तदातुमागतः ॥  
 व्यवहारश्च मेऽनेन श्रीकृष्ण-स्मरणात्मकः ॥ ५३७ ॥  
 अस्मिन् किमपि नो वाच्यमसाधु भवदादिभिः ॥  
 इत्याकर्ण्य स्वप्नवृत्तं तेन सर्वत्र वेदितम् ॥ ५३८ ॥



( ३ )

श्रुतवद्भिः शैवविप्रैः संशयो हृद्यपाकृतः ॥  
ततः स्म तेन पुरुषोत्तमदासेन वै प्रभोः ॥ ५३६ ॥  
महामहोत्सव - महाप्रसादान्नं निवेद्यते ॥  
एकदा विश्वनाथेन काल भैरव सन्निधौ ॥ ५४० ॥  
प्रोक्तं “भो! वक्तुमायाति पुरुषोत्तमदासकः ॥  
अतिकालेन स्वगृह मित्यस्य परि — षट्गणः, ॥ ५४१ ॥  
रक्षां विधेहि सततं बहिः स्थित्वेति” सोऽकरोत् ॥  
कदाचिदपि बेलायामेकाकी स निशीथके ॥ ५४२ ॥  
आगतो वैष्णव गृहात्पुरुषोत्तमदासकः ॥  
दृष्ट्वानुयान्तमारात्तं काल भैरव रूपिणम् ॥ ५४३ ॥  
स्वगृह द्वारपर्यन्तमेकतः शनकैः स्थितम् ॥  
पृष्टवान्निर्भयः कोऽसि तदा स प्रोक्तवान् गणः ॥ ५४४ ॥  
काल भैरव नामाहं श्रेष्ठिन् ? विश्वेश्वरस्य हि ॥  
आज्ञया रक्षिता तेऽस्मि योजितः परिषद्गणः ॥ ५४५ ॥  
इति श्रुत्वा वैष्णवाग्रयः पुरुषोत्तमदासकः ॥  
कपाटिकां पिधायान्तर्गतो गेहे मुमोद ह ॥ ५४६ ॥  
इति श्रीवैष्णववार्तामालायां नवमो मणिः

## वार्ता १०

अथैको दक्षिणदिशः शैवो विप्रः समागतः ॥  
वाराणस्यां कृपापात्रं विश्वेशस्य बुधोऽवसत् ॥ ५४७ ॥



दृष्ट्वा तु विश्वनाथं स पिबति स्म जलं सदा ॥  
 नोचेदुपवसेत्क्वापि परमेष्ठ शिवेक्षणः ॥ ५४८ ॥  
 स इत्यमेकदा कृष्ण- जन्माष्टम्यामहर्निशम् ॥  
 उपोषितो विचिन्वन्स विश्वेशं न व्यलोकयत् ॥ ५४९ ॥  
 प्राप्तं नवम्यां मध्यान्हे पश्यन् विप्रो जगाद तम् ॥  
 “पूर्वेद्युद्य मध्यान्हमालये तव दर्शनम् ॥ ५५० ॥  
 भगवन्न मया प्राप्तमत्र को हेतु रुच्यताम्” ॥  
 तदा विश्वेश्वरेणोक्तं “द्रष्टुं जन्माष्टमी- सुखम् ॥ ५५१ ॥  
 पुरुषोत्तमदासस्य गतोऽहं श्रेष्ठिनो गृहे ॥  
 विसर्जितोऽधुना यामि दधि - कर्म संस्तुतः” ॥ ५५२ ॥  
 तदाऽऽकर्य द्विजेनोक्तं “भगवन! धूर्जटे! स कः? ॥  
 पुरुषोत्तमदासाख्यो यद्गृहे भगवानगात्” ॥ ५५३ ॥  
 तदा विश्वेश्वरेणोक्तं “विप्र” ! स क्षत्रियोत्तमः ॥  
 महाभागवतः श्रीमान्” इत्याकर्यान्वयुंक्त सः ॥ ५५४ ॥  
 अहो “एवं विधाः सन्ति महाभागवता मुदा ॥  
 अभियन्ति गृहान्येषामंशा अपि भवादृशाः” ॥ ५५५ ॥  
 तन्निशम्योक्तभीशेन ब्रह्मन् ! भागवतास्तथा ॥  
 महान्तः सर्वसुहृदः करुणा विश्वपावनाः ॥ ५५६ ॥  
 तदभिप्रायमाकर्य विप्रेणोक्तं विभोः पुरः ॥  
 “एवं चेत्तर्हि भगवद्भक्तं कुर्विह मामपि” ॥ ५५७ ॥  
 तदा विश्वेश्वरेणोक्तं “यद्येवं तर्ह्यवामहि ॥  
 पुरुषोत्तमदासस्य निकटे कृष्णनाम तत्” ॥ ५५८ ॥



तदा प्रोक्तं पुन विप्र-वर्येण “भगवन् ? भवान् ॥

कृष्णनामोपदिशतु मह्यमेवेह सर्वथा” ॥ ५५६ ॥

तदाऽऽश्रुत्योक्तमीशेन “द्विजाकर्णाय तत्त्वतः ॥

प्रायोपदिष्टं ते कृष्णनाम नेह फल्लिष्यति ॥ ५६० ॥

एतन्मार्गाचार्यवर्यत्वाऽ भावादिति मे मतिः” ॥

इत्याकर्ण्य ज्ञातहारोऽथ विप्रो

गत्वा द्वारे श्रेष्ठिनोऽ तिष्ठदेकः ॥

केनाप्यारात्स्वागमं सेवकेन—

सोन्तःस्थस्याऽऽवेदयद्वैष्णवस्य ॥ ५६१ ॥

श्रुत्वा प्रोक्तं श्रेष्ठिना भृत्यवर्ग !

सम्यक् स्थाने वेष्यतां ब्राह्मणः सः ॥

प्रायः प्राप्तो मां विवादेप्सुरेव—

कर्त्ता शून्यं मस्तकं शुष्क तर्कैः ॥ ५६२ ॥

तदनु स्वयमेवासः सेवातो लब्ध सत्त्वणः ॥

बहिः सदस्युपासीनमेकं विप्रं ददर्श सः ॥ ५६३ ॥

ब्राह्मणः सहस्रोत्थाय ववन्दे दंडवंन्मुदा ॥

दृष्ट्वा तमाह स श्रेष्ठी “हा हा तेऽनुचितं कृतम् ॥ ५६४ ॥

वयं हि क्षत्रिया जात्या, यूयं पूज्या द्विजोत्तमाः” ॥

तदा विप्रेणोक्तं “महो देयं श्रीकृष्णनाम मे” ॥ ५६५ ॥

श्रेष्ठिनोक्तं कथं यूय मुपदेश्या मयाऽऽर्यकाः ॥

पुनर्विप्रेणोक्तमिति “देयं श्रीकृष्णनाम मे” ॥ ५६६ ॥



मूर्यः कृतेऽप्याग्रहे तन्नोद्दिष्टं श्रेष्ठिना तदा ॥  
 तदा ततः परावृत्य गतो विश्वेश्वरं प्रति ॥ ५६७ ॥  
 उक्तवान् “राति नो नाम स श्रेष्ठीति करोमि किम्” ॥  
 तदाकर्ण्योक्तमीशेन “याहि भूयो मयेषितः ॥ ५६८ ॥  
 मे नाम गृहन्सदनं प्रेषितोऽस्मीति शंभुना” ॥  
 तन्निशम्य पुनर्विप्रः श्रेष्ठिनो गतवान् गृहे ॥ ५६९ ॥  
 पुरुषोत्तमदासाख्य ! श्रेष्ठिन्नद्यागतोऽस्म्यहम् ॥  
 आज्ञया विश्वनाथस्य भूयो वाराणसी-पतेः ॥ ५७० ॥  
 विश्वेश्वरेणेत्यमुक्तमपि ‘श्रेष्ठिन् ! द्विज-मनः ॥  
 कर्णो सव्ये श्रावयतु कृष्ण नामास्य पारकम्’ ॥ ५७१ ॥  
 तदभिप्रायमाबोच्य सर्वं श्रेष्ठी द्विजन्मनः ॥  
 श्रावयामास वै श्रोत्रे कृष्णनामास्य पारकम् ॥ ५७२ ॥  
 “शरणं मम श्रीकृष्ण” इत्युच्चेऽञ्जलि-बन्धतः ॥  
 कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्रणतस्तस्य वै पुरः ॥ ५७३ ॥  
 तदोक्तं तेन विप्रेण किमिदं क्रियतंऽधुना ॥  
 प्रणतिश्च कथं युक्ता ममेति विनिरूप्यताम् ॥ ५७४ ॥  
 तदोक्तं श्रेष्ठिना विप्र ! वैष्णवोऽस्मीति वै मया ॥  
 बंदनीयपदाचार्याः सन्तीशा आवयोरिह ॥ ५७५ ॥  
 तेषामनुज्ञयैवेह कृष्णनाम दिशामि तत् ॥  
 इत्यावेऽऽदित इर्देन श्रेष्ठिना चत्रियेण सः ॥ ५७६ ॥  
 ज्ञापितो बल्लमाचार्य—पादानां निकटे गतः ॥  
 निवेदितात्मवृत्तान्तो भूयो-नामासवांस्ततः ॥ ५७७ ॥



( ७ )

कियादिनावधि स्थित्वा श्रीमदाचार्य—सन्निधौ ॥

अधीत्य बहुशो ग्रन्थान्पुनर्देशं निजं ययौ ॥ ५७८ ॥

इति श्रीमद् वैष्णव वार्ता-मालायां दशमो मणिः

—००—

## वार्ता ११

निर्भारस्वरुढे पापघ्नो मंदारो नाम पर्वतः ॥

ततः पतेन्मनुजो व्यथते न कदापि च ॥ ५७९ ॥

ब्रुवन् तत्प्रकृतं पापं सकामश्चेत्ततः पतेत् ॥

देहं त्यक्त्वा स वै मर्त्योऽभीप्सितं काममाप्नुयात् ॥ ५८० ॥

नित्यं संनिहितो यत्र मन्दिरे मधुसूदनः ॥

तद्दर्शनार्थमाचार्याः प्राप्तास्तत्र पुरा स्वयम् ॥ ५८१ ॥

तत्र द्रष्टुं गतौ तौ द्वौ श्रीमदाचार्य—सेवकौ ॥

पुरुषोत्तमदासः स कोऽपि वर्णी तथा द्विजः ॥ ५८२ ॥

मधुसूदनदेवंतौ दृष्ट्वागन्तुं सत्सुकौ ॥

अधः परित्यक्तजनौ तुङ्गमासेदतुर्गिरिम् ॥ ५८३ ॥

मधुसूदन-वासं तमरणये पश्यतोस्तयोः ॥

तमिस्रायामपदवी मतीव भ्रममाणयोः ॥ ५८४ ॥

तदा सुप्तौ गिरौ नक्तं पर्यायेण च निर्जने ॥

बिलोक्यैकः समायातः सिद्धोऽपृच्छत्प्रबोधयन् ॥ ५८५ ॥

कौ युवामिह संप्राप्तौ कुतो वेति तदा तयोः ॥

स एको ब्रह्मचार्यूचे” विद्वि नौ वैष्णवौ सुरः ॥ ५८६ ॥



श्रीवल्लभाचार्यविमोः सेवकौ, दर्शनार्थिनौ” ॥  
 तदाऽऽकर्योवाच सिद्धो “रे! मर्यः कोपि नात्र हि ॥ ५८७ ॥  
 वसते किमुनागास्यां व्याघ्रादेऽपि यद्भयम्” ॥  
 तदोक्तं वार्ष्णिना ‘सिद्ध ! सांप्रतं तु स्थितं गिरौ ॥ ५८८ ॥  
 निर्भयं तद्वचः श्रुत्वा सिद्धेनोक्तं द्विजम्बने ॥  
 ‘रे ममास्ते मणिः पार्श्वे तं ददाम गृहाण मे’ ॥ ५८९ ॥  
 तदा पृष्टं वार्ष्णिना भा! मणिः किं कार्य-साधकः ॥  
 तदा सिद्धेनोक्त मिति यदर्थेत्तददाति सः ॥ ५९० ॥  
 तदाऽऽकर्य द्विजेनोक्तं तर्हि तं कामये न हि ॥  
 ब्राह्मणोऽहं विरक्तश्च ब्रह्मचारी सदाऽनघ ! ॥ ५९१ ॥  
 यो मे पार्श्वे स्वपित्यास्ते क्षत्रियोऽस्मै प्रदेहि तम् ॥  
 तदा सिद्धेनोक्तमिति प्रतिबोधय तर्हि तम् ॥ ५९२ ॥  
 बाढमित्यभ्युपेत्यैव वार्ष्णिना सः प्रबोधितः ॥  
 उक्तञ्च भो ! गृहाणेमं माण बाहुजम्बरं (?) ॥ ५९३ ॥  
 तदाऽऽकर्य श्रेष्ठिनोक्तं मणिः किं कार्य-साधकः ॥  
 तदा सिद्धेन तस्याग्रे प्रभावः कथितो मणेः ॥ ५९४ ॥  
 तदाऽऽश्रत्य श्रेष्ठिनोक्तं तर्हि गृहामि नो मणिम् ॥  
 श्रेष्ठिनोक्तं ब्रह्मचारिन्! गृहासि न कथं मणिम् ॥ ५९५ ॥  
 तदोक्तं वार्ष्णिना श्रेष्ठिन् ! विरक्तोऽस्मि नः ग्रही ॥  
 पिष्टं प्रस्थमितं नित्यं जगदीशो ददाति मे ॥ ५९६ ॥  
 बहुलं भवताऽपेक्ष्यं ग्रहस्थस्य कुटुम्बिनः ॥  
 ततो ग्राह्यो मणिश्चेति क्रिया समभिहारतः ॥ ५९७ ॥



( ६ )

तदोक्तं श्राष्ठना ब्रह्मन् ! जगदीशो ददाति यत् ॥  
तुभ्यं प्रस्थमितं दाता, दशप्रस्थमितं स मे ॥ ५६८ ॥  
तस्य का न्यूनता 'दाने भाव्या विश्वंभर प्रभोः ! ॥  
त्यक्त्वा तदाश्रयं किं वा कुर्यामस्य मणेरिति" ॥ ५६९ ॥  
उक्तौ जगदुत्तुर्नोभौ यद्वा सिद्धोऽगमत्तदा ॥  
ततोऽवरुह्य तौ प्रातः संवृतौ स्वानुजीविभिः ॥ ६०० ॥  
मध्येमार्गं विहसता वर्णिना श्रेष्ठिसंज्ञिना ॥  
पुनरुक्तमहो "श्रेष्ठिन्" ! कथं नाप्तो मणि स्त्वया ॥ ६०१ ॥  
गृहस्थोऽहि भवान् धुर्यः कुटुम्बी व्यवहारवान् ॥  
सेवाभारः शीर्ष्णि तवेत्युचितो मणि-संग्रहः" ॥ ६०२ ॥  
तदोक्तं श्रेष्ठिना हं हो ! ब्रह्मन् ! विकलभाषणः ! ॥  
किंस्वाचार्याश्रयं त्यक्त्वा गृहीयां तन्मणेरहम् ॥ ६०३ ॥  
नेत्थं नाच्यं वैष्णवेन वैष्णवस्य पुरोमम ॥  
इति संवदमानौ तावयितुः स्वस्वमाश्रयम् ॥ ६०४ ॥  
इति श्रीवैष्णववार्तामालायामेकादशा मणिः ॥ १॥



## वार्ता १२

यदा कदाचित् स्माऽऽयान्ति वल्लभाचार्य दीक्षिताः ॥  
पुरुषोत्तमदासस्य तदा मन्दिरमास्थिताः ॥ ६०५ ॥  
कुर्वन्तिस्म स्वगृहवत्तस्य मेवां प्रभोर्मुदा ॥  
पञ्चामृतेन विधिवत् स्नापयित्वा प्रसाद्य च ॥ ६०६ ॥  
भोगं समर्पयन्तिस्म बुभुजुस्तदनन्तरम् ॥  
तद्दामोदरदासेन दृष्ट्वा पृष्ठं तदाद्भुतम् ॥ ६०७ ॥  
“भो महाराजाधिराज ! भवद्भिः किमिदं कृतम् ॥  
पञ्चामृतैः स्नापयित्वापितंयन्मे परः प्रभोः ॥ ६०८ ॥  
पश्चात् तद् मुक्तमित्यत्र संशयोमेनिवार्यताम् ” ॥  
तदाऽऽकर्ण्योक्तमाचार्यैर्भो दामोदरदासकः ॥ ६०९ ॥  
यद्यप्यनेन पुरुषोत्तमदासेन दीयते ॥  
श्रीकृष्णनामाज्ञया मे तथापीह मया श्रुतेः ॥ ६१० ॥  
मर्यादा रक्षितव्येति लोकमंग्रह कारणात्” ॥  
इत्याकर्ण्य स गम्भीरमाचार्याणां वचा मदत् ॥ ६११ ॥  
तद्दामोदरदासोपि निःसंदेहोऽभवत् क्षणात् ॥  
पुरुषोत्तमदासस्य तस्य वै श्रेष्ठिनः सती ॥ ६१२ ॥  
दुहिता रुक्मिणी नाम्नी तस्यवार्ता निरूप्यते ॥  
एकदा श्रीमदाचार्याः श्रीमद्भोस्वामिनस्तथा ॥ ६१३ ॥  
वाराणस्यां संवसन्तो गङ्गायां स्नातुमागमन् ॥



ग्रह-पर्वणि संकीर्णे तौर्धे सन्मणिकर्णिके ॥ ६१४ ॥

तदा स्नातुमिता पूर्वं स्नापयित्वा गृहे प्रभुम् ॥

रुक्मिणी चिंतिताचार्य—गोस्वामि स्नानदर्शना ॥ ६१५ ॥

दृष्ट्वा प्रत्यभिजानन्तः श्रीगोस्वामि महाशयाः ॥

आहूयाग्रे पृष्ठवन्तो गङ्गायां रुक्मिणीं स्वयम् ॥ ६१६ ॥

क्रियद्वर्षोत्तरं स्नातुमायातासीह पर्वणि ॥

तदाचे रुक्मिणी राजभूज्या ब्रयां किमीहितं ॥ ६१७ ॥

गंगायां स्नातु माशासे चतुर्विंशत्तमोत्तरम् ॥

श्रुत्वेति श्रीमदाचार्यसूनु गोस्वामिनस्तदा ॥ ६१८ ॥

विक्रिन्न हृदयाः प्रोचु “रहो पश्यत ! पश्यत !! ॥

सेवायां परिचर्यायां यस्याः सक्तात्मनोनिशम् ॥ ६१९ ॥

अवकाशः क्वापिनाभूद्गङ्गायां स्नातुमप्यणुः ॥

धन्या भगवदीयेयं रुक्मिणी श्रीप्रभुप्रिया ॥ ७१६ ॥ ६२० ॥

श्रीमदाचार्य- कृपयेत्युक्त्वा तुष्टाः प्रतुष्टुवुः ॥

स्नात्वाते विधिबत् पूर्वं पश्चादपि महाशयाः ॥ ६२१ ॥

समायाता गृहस्वायं रुक्मिणी चापि सत्वरम् ॥

जनामाद्योर्ज वैशाखे कुर्वन्ति स्नानमन्वहं ॥ ६२२ ॥

दानं नियमतः पूजां विष्णोर्वै वैष्णवा इति ॥

आलक्ष्योक्तवती तातं रुक्मिणी पुरुषोत्तमम् । ६२३ ॥

कुर्यांभोः कार्तिक स्नानं प्रातर्यद्यनु मन्यसे ॥

श्रुत्वेति सोऽपि पुरुषोत्तमोवाच उवाच ताम् ॥ ६२४ ॥



वाढं कुरु स्नानमूज तद् गृहाण यदिञ्चसि" ॥  
 तदाऽऽकर्य तया प्रोक्त" मेवं चेद्दीयतामिह ॥ ६२५ ॥  
 षट्च्छया समाञ्ज्य पिष्ट सा राज्यशर्करं ॥  
 तदा श्रुत्यैव पुरुषोत्तमदामेन हपंतः ॥ ६२६ ॥  
 घृतं सशर्करं तस्याः स्थपितं बहुलं पुरः ॥  
 गांधूम चणकौ ( वापि? ) पिष्ट्वांर गृहेस्थितम् ॥ ६२७ ॥  
 गृहीत्वा मुदिता प्राप्ते कार्तिके मासि सान्वहम् ॥  
 उत्थायापररात्रान्ते शुचिः स्नात्वाऽथ मंदिरे ॥ ६२८ ॥  
 प्रवोषितस्य स्वाविमो राजभोगवधि स्वयम् ॥  
 भोगार्थं नव्यपक्वान्नं सामग्रीं विविधा मुदा ॥ ६२९ ॥  
 चतुरा रचयद्भक्त्यार्पयति स्म स्व हस्ततः ॥  
 कृत्वा स्नातोत्थापनेऽपि सामग्रीमार्पयन्नबाम् ॥ ६३० ॥  
 नित्यं शयन पर्यन्तमित्यं नियममास्थिता ॥  
 कार्तिके सा तथा माघ वैशाखे मासि पावने ॥ ६३१ ॥  
 एवदा श्रेष्ठिनो पृष्टा ! मांभो रुक्मिणी ! पुत्रिके ॥  
 नदृश्यसे गता स्नातुं गंगा तीर्थे मया कदाचित् ॥ ६३२ ॥  
 कीदृक् ते कार्तिकस्नानं सत्यं कथय मा मृषा ॥  
 तदाऽऽकर्यैवावाच सत्यं रुक्मिणी पितरं प्रति ॥ ६३३ ॥  
 बहिः स्नानेन तीर्थेपि कः कामो मे विशिष्यते ॥  
 इत्थमेव स्नामि सदा पावने कार्तिकादिके ॥ ६३४ ॥  
 अत्रान्तर्भोगसेवायां यत्त्रिः स्नाता प्रभोऽरिति ॥  
 श्रुत्वैतद्वहु संतुष्टः श्रेष्ठी तस्या वचो महत् ॥ ६३५ ॥



भजन्तो (?) गोस्वामिपादा दृष्ट्वाकर्ह्यपि रुक्मिणीम्  
 आहुः स्नाहो प्रीतिबद्धो वत्सलायाः कदाऽनृणः ॥ ६३६  
 रुक्मिण्या भवितै तस्या यशोदा वत्सलो हरिं ॥  
 एवं क्रियद्दिनान्ते सा शरीरेणाऽक्षमावदत् ॥ ६३७  
 “आः कथंचिदयं देहः पतेद्भद्रं तदा भवेत्” ॥  
 इत्येवं चिंतयन्त्यास्तु रुक्मिण्याः सहरीच्छया ॥ ६३८ ॥  
 दहः पपात निर्मुक्त इत्यशेषजनैः श्रुतम् ॥  
 उक्तं सद्भिः क्वचिच्छ्रीमद्गोस्वामि निकटे गतैः ॥ ६३९ ॥  
 महाराजा ! सेविकया भवतां श्रीप्रभुं जुषा ॥  
 रुक्मिण्या सा तया गंङ्गेत्याकुर्यात्तं तदार्यकैः ॥ ६४० ॥  
 नैवं वाच्यं वाच्यमित्थं गंगया सेति रुक्मिणी ॥  
 नित्याङ्गसङ्गिनी विष्णोः सकृदेकाङ्गसङ्गया ॥ ६४१ ॥  
 इतिपश्य प्रभुप्रीतिसेवाकर्मादिकान् गुणान् ॥  
 कीर्तयन्तिस्म गोस्वामिपादाः सा रुक्मिणीत्य भूत् ॥ ६४२ ॥  
 इति श्रीभट्टैषणववार्तामालायां द्वादशा मणिः



## वार्ता १३

( रामदास सारस्वन ब्राह्मणः )

अथ कश्चिद्रामदासो विप्रः सारस्वतो महान् ॥  
भजातिस्म प्रभुं प्रीत्या श्रीमदाचार्यसेवकः ॥ ६४३ ॥  
अस्पर्शतः स्म कुरुते सर्वकार्यं तथात्मनः ॥  
वीटकानुपयुक्तस्म नीरं चास्पर्शयोगतः ॥ ६४४ ॥  
एवं वै वर्तमानस्य संपन्नस्य सदा स्वतः ॥  
चिरं स्थितस्य स्वगृहे द्रव्यं व्ययमितं बहु ॥ ६४५ ॥  
यत्किञ्चन स्थितं गेहे तदा लब्धं व्यर्चितयत् ॥  
आयः स्यादवशिष्टेन यथैतेन तथा मया ॥ ६४६ ॥  
कार्यमित्यन्यथा सेवा निर्वहः संभवेत्कथम् ॥  
तदोपेतस्तुवाय- लोकेषु द्रव्यमात्मनः ॥ ६४७ ॥  
व्यवहारानुसारेण प्रादान्मूलं विवृद्धये ॥  
तथा कृते तत् द्रव्यस्य वृद्धिद्रव्यं समागमत् ॥ ६४८ ॥  
स्वगृहे बहु लोभेन तान्तवैर्व्यवहारतः ।  
पूर्वदेशे पट्टवस्त्रं वायकास्तान्तवा इति ॥ ६४९ ॥  
ख्यातास्तेष्वेकदा प्रोक्तं रामदासेन भो जनाः ॥  
यदा मेऽभीष्टितं नेतुं तद् गृहीव्येषनं स्वकम् ॥ ६५० ॥  
इति भाषा बंधनेन निश्चिन्तस्य च सर्वदा ॥  
रामदासस्य सेव्यं स्वं प्रभुं संसेवतो मुदा ॥ ६५१ ॥  
नवनीतरत्नं साक्षादाचार्यं विनिवोदितम् ॥



कालोऽत्यगात् बहुतरः स्वप्नेजातु प्रभुः स्वयम् ॥ ६५२ ॥

सेवकं श्रीरामदासं प्रत्यूचेऽकिमहं त्वया ॥

रक्षितस्तन्तुवायेषु वृध्यर्बमितभोग भुक् ॥ ६५३ ॥

तदाकर्ण्यैव चकितो रामदासो वभूवह ॥

प्रातरुत्थाय स मृतस्तन्तुवायवनान्प्रेति ॥ ६५४ ॥

उवाच “भो ! मे तत् द्रव्यं समर्पयत सर्वशः” ॥

तदातैरुक्तं “मेतात्किं कारणं सर्वमर्थ्यते” ॥ ६५५ ॥

तदोक्तं रामदासेन ऽ कार्यमापतितं मया ॥

बालस्य हठिनस्तस्य मनोरञ्जनमिष्यते ॥ ६५६ ॥

तदाऽऽकर्ण्यश्रुतैस्तन्तु-वायकैः सर्वमाहृतम् ॥

तद् द्रव्यं स समादाय स्वगृहे संन्येवशयत् ॥ ६५७ ॥

भूयस्तथैव सविभोर्नित्यं सेवा समाचरत् ॥

एवं कृते व्ययमितं तत् द्रव्यं सर्वमेवाहि ॥ ६५८ ॥

तदाऽऽलक्ष्य स्वयं पश्चाद्रामदासः स सेवकः ॥

कस्यचिद्वणिजो हृष्टादानिन्ये तद् ऋणौकृतम् ॥ ६५९ ॥

धान्यादिकं नित्यमिति संभूतं शीर्ष्णिं तद्वणम् ॥

आलक्ष्य तत्याज ततस्तदाऽऽहरणं मन्यतः ॥ ६६० ॥

कृतवान् वणिजः पूर्वतनस्याग्रेष्य सञ्चरन् ॥

कश्चित्पूर्वतनेनाग्रे रामदासं प्रतीरितम् ॥ ६६१ ॥

“ कथं भो ! रामदासेह हृष्टाद्रस्तु न गृह्यते ॥

नचेदेवं तर्हि कृणु मदीयं दीयतामृणम् ॥ ६६२ ॥



भूयः प्रेरण मायाय पीडयामास तं वणिक् ॥  
 तदैकदा प्रभुः साक्षाद्रामदास-वपुर्धनः ॥ ६६३ ॥  
 तस्यैव वणिजः प्रापद्विपणौ लिखतः स्वतः ॥  
 उक्तवा "नानयस्वेति लेखपत्रं पुरोमम " ॥ ६६४ ॥  
 तेनानीहं लेखपत्रं दृष्ट्वा सव्यांच (?) लेखवित् ॥  
 सर्वं तद् द्रव्यमावेद्य मूयोबुद्राः शतंनिजाः ॥ ६६५ ॥  
 अधिकाश्रयामास वणिजव्यवहारतः ॥  
 त्रे स्वहस्ताक्षराणि दत्वाऽऽलिखयागमद् गृहम् ॥ ६६६ ॥  
 नैतद् वृतं रामदासो यथाविद्यात्तथा ऽ करोत् ॥  
 कदाचिद्वैष्णवाः केचित् उत्सवाल्लोकनोद्यतम् ॥ ६६७ ॥  
 निमंत्रितं रामदासमानिन्युस्तेन वर्त्मना ॥  
 तस्यैव वणिजो ऽ स्यर्णं वंचयित्वा दशं शनैः ॥ ६६८ ॥  
 निगक्राम्यद्रामदासो देयार्थिनशंकया ॥  
 तथायान्तं तालालोक्य दूरोदेत्य स वै वणिक् ॥ ६६९ ॥  
 उवाच " भो रामदास ? गृह्यते न समापण त् ॥  
 यत्किंचिदपिवा वस्तुतदभाग्यं ममेति हि ॥ ६७० ॥  
 तार्ह्यत्मनोधिकं द्रव्यं मपि न्यस्तं यदात्मना ।  
 तत्तुनेयं व्ययार्थं ते श्रुत्वागाद"न्वियामिति ॥ ६७१ ॥  
 मध्येमार्गं प्रचलता रामदासने चितितम् ॥  
 मयात्वस्मिन्ननिःक्षिप्तं द्रव्यं किमपि वै क्वचित् ॥ ६७२ ॥  
 वदत्यवमेयं किंचिदत्र कारणमस्त्यहो ॥



सतो वैष्णव लोकानां गृहे गत्वोत्सवं परम् ॥ ६७३ ॥

विलोक्य प्राणिपातेन, मध्येमार्गे वणिक् गृहात् ॥

रामदासेनोपहृत आनेयं लेखपत्रकम् ॥ ६७४ ॥

तत्रैव बाणिजा लेखपत्रं संदर्शितं पुरा ॥

उक्तंच “ भो स्वाद्रेनेदं हस्तेन लिखितं दलम् ॥ ६७५ ॥

कथं विस्मर्यते बह्वी पात्रिका च प्रदृश्यताम् ॥

दृष्ट्वा तद्रामदासेन श्रीशहस्ताक्षरं दलम् ॥ ६७६ ॥

तूष्णीं भूतो गृहं यातः स्त्रिया अग्रे न्यवेदयत् ॥

“अधुना तु गृहे स्थास्ये कुर्वे देशान्तरंगतः ॥ ६७७ ॥

कस्यचित् सेवया जीव्यां छात्रवृत्तिं विपद्गतः ” ॥

इति निश्चित्य मनसा निष्क्रीतोऽश्वेऽथ तत्कृते ॥ ६७८ ॥

सर्वशस्त्राणि वा मार्गे बबन्धोष्णीष वेष्टनम् ॥

प्रसादि नीरताम्बूलान्यादद् स्पर्शितां त्यजन् ॥ ६७९ ॥

क्रियाहिनानन्तरं सौप्यलिप्तिं ग्राममागतः ॥

श्रीमदाचार्यवर्याग्निं दर्शनार्थाय सज्जितः ॥ ६८० ॥

दण्डवत्प्रणतं दृष्ट्वा श्रीमदाचार्यं दीक्षिताः ॥

तमूचु “धन्यधन्येति” रामदासं पुरः सताम् ॥ ६८१ ॥

तदाऽऽलक्ष्येरितं सद्भिः सेवकैरन्तिके स्थितैः ॥

कथमार्याः कथमथ धन्यमेव विधं ह्यमुम् ॥ ६८२ ॥

विहायास्पर्शिता धर्मं छात्रवृत्तिमुपाश्रितम् ॥

तन्निशम्योक्तमाचार्यं — — यंधन्योऽस्त्यतेऽधुना ॥ ६८३ ॥



यन्न प्रभुं श्रमयति धीरो नैतादृशो परः ॥  
 इति स्वाचार्य-वाक्यं ते निर्व्यलीकं परं महत् ॥ ६८४ ॥  
 निशम्य वैष्णवाः सर्वे बभूवुर्हत संशयाः ॥  
 एकदा श्रीमदाचार्याः स्नातुं गङ्गां यतो गताः ॥ ६८५ ॥  
 तत्र मार्गे गर्तमेकं वीक्ष्य प्रोचुर्गच्छया ॥  
 अहो न पूरितो गर्तो मध्ये मार्गं प्रयातुकः ॥ ६८६ ॥  
 इत्याचार्यं मुषोद्दीर्घवचः श्रवणं मात्रतः ॥  
 वैष्णवास्तत्क्षणात्सर्वे तं पूरयितुं मुद्यताः ॥ ६८७ ॥  
 भूतास्ततोमृतं क्षेपार्थं गृहीतं तृण-पत्रिका ॥  
 रामदासस्तु तं गर्तं पूरयामास सज्जितः ॥ ६८८ ॥  
 तावदाचार्यं चरणाः स्नात्वा तत्र समागताः ॥  
 पश्यन्तः पूरितं गर्तं रामदासेन तत्क्षणात् ॥ ६८९ ॥  
 तुष्यत्युद्योगिनि हरिरित्युत्तवा तुष्टिमाब्रुवन् ॥  
 किञ्च श्रीरामदासस्य पुरः सज्जति वर्जितः ॥ ६९० ॥  
 पत्नी प्रोवाच “भो ! स्वामिन्नन्यां परिणयेति वै ॥  
 बालकौ भविता तस्या” मित्याकर्ण्य सचाब्रवीत् ॥ ६९१ ॥  
 “न ममेच्छा सुतस्येति” पुनरुक्तं तदास्त्रिया ॥  
 “तर्हि मेतस्य वान्छेति श्रुत्वा भर्त्रेरितं पुनः ॥ ६९२ ॥  
 वाढं तवेच्छा यद्यस्ति तर्हि स्वस्य प्रभोर्भुदा ॥  
 नबनीतरतस्यास्य सेवां सूनोर्धिया कुरु ॥ ६९३ ॥  
 वक्ष्येनेकैः पक्वान्नैराकल्पैः कीदृनैरपि ॥



हरिं लालय सुप्रीत्या पुत्रसो भवितेतिवै” ॥ ६६४ ॥

इत्याश्रुत्य तथा तुष्टो नवनीतस्तस्या ॥

कालांतरेण जनितः पुत्रो वैष्णव एव तत् ॥ ६६५ ॥

एतादृक् रामदासोभूच्छ्रीमदाचार्य सेवकः ॥

महापुरुष संबंधी महापुरुष उत्तमः ॥ ६६६ ॥

इति श्रीमद् वैष्णव मालायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥

— — (०) — —



## वार्ता १५

[ गदाधरदास सारस्वत ब्राह्मण कदा मानिकपुर ]

अथ सारस्वनो विप्रो गदाधर इति श्रुतः ॥  
कडारमाणिकपुरे कन्धाल्लखातिगवसत् ॥ ६६७ ॥  
श्रीमदाचार्यशरणः प्रभु मदबोधनम् ।  
बृहद्गौरस्वरूपं सं भजतिस्म तन्निवर्धनः ॥ ६६८ ॥  
यजमानगृहात् किञ्चिद्यथेयात्तथाप्येत् ॥  
एकदा यजमानस्य वृत्तिलभ्यमपि चयात् (?) ॥ ६६९ ॥  
नागतं किमपि स्वान्नं यत् प्रसाध्य संपर्पयेत् ॥  
तदागदाधरो बालमोग — मार्पयदंभसा ॥ ७०० ॥  
शृंगार भोगमपिच वस्त्रपूतेन तेन हि ॥  
राजमोगं जले नैव तथात्यापन भोगकम् ॥ ७०१ ॥  
शायनं च तथा कृत्वा दुःखितो मनसिस्वयम् ॥  
सुप्तो संतप्त हृदयो निशीथार्द्धे गतेऽधिकम् ॥ ७०२ ॥  
तदैको यजमानोस्य द्वार्युच्चरितिवान्वचः ॥  
“कपाटोदघाटनम् ब्रह्मन् ! कुरुत्व” मिति वै पुनः ॥ ७०३ ॥  
श्रुतवान्स समुत्थाय कपाटोदघाटमाकरोत् ॥  
यजमानोऽददान्मुद्राश्वतसो युगलां वरम् ॥ ७०४ ॥  
द्वादशाहे पदं देयं तस्मै धातुजपात्रिका ।  
सदीचिणां पितृश्राद्धे प्रत्तो प्रति गृहाणमे ॥ ७०५ ॥



( २१ )

इत्यादाय सवस्त्रादि ग्रहमध्ये न्यवेशयत् ।  
मुद्रागृहीत्वा विपण्णे गतः क्षीरजमिष्टकम् ॥ ७०६ ॥  
सद्यः केनापि कृतिना क्रियमाणमनर्पितम् ।  
आकल्य निरक्रीणात् गृहीत्वाऽऽशुग्रहेनयत् ॥ ७०७ ॥  
पुनःस्नात्वोत्थापिताय प्रभवे भोग मार्षयन् ।  
तदैवाऽऽकारितेभ्यश्च वैष्णवेभ्योऽददाति तत् ॥ ७०८ ॥  
प्रसादिभोगं सुस्वादुं बुभुजुस्तेप्यलौकिकम् ॥  
स्वयं किमपितन्नाऽऽदत् पुनः सुप्तो निशि स्वयम् ॥ ७०९ ॥  
प्रातः प्रबुद्ध उत्थाय विपणोरानय द्रुह ।  
आमान्नं घृतमिष्टादि तत्पाकं संविधाय च ॥ ७१० ॥  
प्रभवे भोगमावेद्य वैष्णवांस्तानभोजयत् ।  
तदासन्तो वैष्णवास्ते प्रोचुस्तं वै गदाधरम् ॥ ७११ ॥  
रात्रौ प्रसादि बन्मिष्टं त्वमादत्तं प्रभोर्हि नः ।  
भुक्तं सुस्वादु च यथा न तथैतत्कृतं कथम् ॥ ७१२ ॥  
इति प्रष्टुः सतानूचे प्रकारं तत्प्रसादजम् ॥  
पुनःक्वचिद्भोजयितुं प्रसादान्नं निजप्रभोः ॥ ७१३ ॥  
आमंत्रिता वैष्णवास्ते तद्गदाधर शर्मणा ॥  
महानसेऽखिलं दृष्ट्वा शाकपत्रमनाहतम् ॥ ७१४ ॥  
उक्तं कंचित्प्रति“ह्यास्ते कोऽप्यत्रैतादृगप्यहो ? ॥  
य आनयेच्छाकपत्र” मित्याकर्ण्यह कोप्यमुम् ॥ ७१५ ॥  
विषयी वैष्णवोऽभ्ये त्य “हं” हो शाकमिहानये ॥



इत्युदीर्याऽऽ पण्डितस्यो वास्तुकं शाकमानयत् ॥ ७१६ ॥  
संस्कृत्य शाकं वास्तुकं दत्तवान्स महानसे ॥  
सिद्धशाकं भोगमध्ये भुक्तवान् प्रभुर्षितम् ॥ ७१७ ॥  
तत्प्रप्रादात्तशाकान्नं भुक्तवन्तोऽथ वैष्णवाः ॥  
स्तुवन्तः स्वादु संभृतं शाकमक्षय्यं सोमवीत् ॥ ७१८ ॥  
धन्यरे ! धन्य विपायिन् (?) शाकभोजयितुः प्रभो ॥  
विदुरस्येवहृदि ते हरे भक्तिर्दृढास्त्विह ॥ ७१९ ॥  
यदाशिषा वैष्णवाग्रयः सोऽभूदिति स वै महा ॥

इति श्रीमद् वैष्णव वार्ता-मालायां पंचदशोऽध्यायः



## वार्ता १६

( वेणीदास और माधवदास क्षत्रिय )

वेणीदासः क्षत्रियाग्र्यस्तथा माधवदासकः ॥

एतावास्तां आतरौ हि तयोर्वार्ता ऽ धुनोच्यते ॥ ७२० ॥

शाकानेता यः पुरोक्तः स वै माधवदासकः ॥

वेश्यायां विषयासक्तो वेशितायांस्वकेगृहे ॥ ७२१ ॥

निन्दमानो वैष्णवैः स्वैरेवं वृत्तोप्यजीगणत् ॥

नकांश्चिदप्याचार्याणामपि कर्णपथं गतः ॥ ७२२ ॥

प्रष्टोऽथ श्रीमदाचार्यैः क्वचिद् दृष्टि पथं गतः ॥

“ कथंस्ववैष्णवगृहे त्वया वेश्या निवेशिता ” ॥ ७२३ ॥

इत्याश्रुत्येरितं तेन “ सत्यं ब्रयां महाशयाः ? ॥

अतिसक्तं मनस्तस्यामिति मे सा निवेशिता ” ॥ ७२४ ॥

इत्यापृष्टः स तैर्वाचा त्रिरपीत्थं न्यवेदयत् ॥

श्रुत्वेति श्रीमदाचार्यैः स्तूष्णीं भूतं नचेरितम् ॥ ७२५ ॥

तदोक्तं वैष्णवैः “ रद्यावधिसंकोच आहितः ॥

गतोस्तमधुनाग्रेऽपि हा पुरो वदतोऽस्म्य वः ॥ ७२६ ॥

श्रीमद्भिरास्मिन् किमपि नोक्तं वेश्यारतौपि च ॥

तदोक्तं श्रीमदाचार्यैरहो अस्य तथा मनः ॥ ७२७ ॥

प्रभोः परावर्तयितुं को बिलम्बो भाविष्यति ॥

इति प्रभुप्रसादाशीः परावर्तितचेतसः ॥ ७२८ ॥



तस्यमाधवदासस्य हरौ भक्तिर्दृढाऽभवेत् ॥  
 वेश्यानिःसारिता तेन गृहाच्छक्त्या महात्मनः ॥ ७२६ ॥  
 दृष्ट्वा माधवदासेन क्वचिन्मौक्तिकमालिका ॥  
 समीचीऽऽनापणे ऽ नर्घ्या योग्येयं स्वप्रभेरिति ॥ ७२७ ॥  
 रात्र्योक्तंस्वगृहे भ्रातुर्वर्णीदासस्य वै पुरः ॥  
 क्रीत्वापिगृह्यतामेषा ऽ पीन्या मौक्तिकमालिका ॥ ७२८ ॥  
 नवनतिरत्ने श्रीमत्कंठार्द्धेति पुनः पुनः ।  
 भ्रात्रोक्तं रेति विकलः स्वगृहे यद्विभूषणम् ॥ ७२९ ॥  
 वस्त्रं धान्यं धनं सर्वं प्रभोरेव किमेतया ॥  
 अस्माकं गृहिणामात्मजन्मो द्वादधनार्थिनाम् ॥ ७३० ॥  
 कथमित्थं घटतेति ज्ञात्वा वंचितमीहितः ॥  
 ऊचे माधवदासस्त्वद्भाविताऽस्मि पृथक् गृही ॥ ७३१ ॥  
 इत्युत्तवा ऽ भूत् पृथक् गृही विभज्य धनमात्मनः ॥  
 तद्रव्यनिष्क्रयं वस्तु गृहीत्वा दक्षिणं गतः ॥ ७३२ ॥  
 तत्रवस्तु स विक्रीय व्यापारेण धनं बहु ॥  
 बर्द्धयामास , चानर्घ्या काम्यां मौक्तिक मालिकाम् ॥ ७३३ ॥  
 अप्युतमां प्राग् दृष्ट्वा गृहीत्वा स न्यवर्तत ॥  
 वर्त्मन्याप्तां नदीं तर्तुं संभृतं नावमास्थितम् ॥ ७३४ ॥  
 एकस्तत्कर्णधृग् भूत्वा नवनतिरतः स्वयम् ॥  
 करेलकुटिकां विभ्रदुवाच बहुमपिपन् ॥ ७३५ ॥  
 किमरे मज्जमेयं त्वां सनावं सपरिच्छदम् ॥



( २५ )

इतिमाधवदासस्तत् श्रुत्वाचे धैर्यमास्थितः ॥ ७३६ ॥

विवेकीति हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥

तदाकर्ण्य प्रभुः प्रोचे किमरे नेहमालिका ॥ ७४० ॥

मम मुक्तामणिमयीत्याकर्ण्यो चे स तं पुनः ॥

प्रभो ते संति भूयस्वः परं धर्मो न मादृशाम् ॥ ७४१ ॥

अनुद्यमः स्वामिसेवा साधने भूषणादिना ॥

सेवकस्य तु धर्मोऽयमुद्यमो भाक्ति साधने ॥ ७४२ ॥

इत्याकर्ण्य स्वात्ममतं प्रभुणानौर्न मज्जिता ॥

इतस्ततः प्लाव्यमाना स्रवन्त्यां कलिता जनैः ॥ ७४३ ॥

अलचाबद्धिर्वाप्यं तयोः संवदमानयोः ॥

वैपमानैर्नाविरुद्धै राश्चर्यं चकितैस्तदा ॥ ७४४ ॥

उक्तं वताहो ! धन्योऽस्य धर्मोनियमसंयमः ॥

यदयं तुष्टहृदयो हर्षताति विचिन्त्य तैः ॥ ७४५ ॥

आश्रितः समहान्सर्वैः कुशली पारमभ्यगात् ॥

ततः संभृतसंभारः सहितो ह्यचिरेण सः ॥ ७४६ ॥

स्वदेशमागतः प्रादान्मालां स्वाचार्यहस्तयोः ॥

दंडवत्प्रणतः पृष्टः श्रीमदाचार्यपाण्डितैः ॥ ७४७ ॥

कथं रेप्लाव्यमाना नौ रक्षितेति निरूपयताम् ॥

तदाऽऽकर्ण्य स तद् वृतं वर्णयामास तत्त्वतः ॥ ७४८ ॥

तदाश्रुत्योचुराचार्या वैष्णवानां पुरः सताम् ॥

सोयं माधवदासोऽत्र प्रत्याभिज्ञायतां बुधाः ॥ ७४९ ॥

॥ इति श्रीवैष्णववार्तामालायां षोडशो मार्गः ॥



## वार्ता १७

[ अम्भा खत्राणी, कडा मानिकपुर ]

कडार माणिकपुरे वासिन्येका महत्तया ॥

अम्भा' नाम्नी चत्रियाणी श्रीमदाचार्यधेविका ॥ ७५० ॥

तस्या हरिं जुषः सूनुगदिमः काञ्चतोमृतः ॥

इति दुस्तेनातुरापि कुर्वन्ति हरिसेवनम् ॥ ७५१ ॥

निनायकालं कजेशेन प्रातः स्नाता सदाशिशुम् ॥

कृष्णं प्रबुद्धं प्रसाद्य राजभोगं समर्प्य च ॥ ७५२ ॥

कृत्वानवसरं नित्यं बहिः स्थाने स्म रोदिति ॥

तत् श्रुत्वा बालकः कृष्णोऽभ्यन्तरेखेदमाप्तवान् ॥ ७५३ ॥

इत्थं नित्यं संरुदन्त्या द्वितीयोऽपि सुतो मृतः ॥

तद्वद्रोदीद्राजभोगोत्तरं पूर्ववदातुरा ॥ ७५४ ॥

प्रभुश्चासहमानस्तामुपेत्यावारयन्निष्ठशुः ॥

अम्बमाक्रन्द खिन्नोऽहं भवामीत्यब्रुवन्मुहुः ॥ ७५५ ॥

तथापिरोदमानां 'ता' तथा वीक्ष्य सर्वे प्रभुः ॥

श्रीमदाचार्यसूनुश्रीगोस्वाम्यग्रे न्यवेदयत् ॥ ७५६ ॥

अहो अम्भा विलपती त्यहमत्यन्तदुःखितः ॥

भवामि वा चिरं प्राज्ञा वर्जनीया प्रयत्नतः ॥ ७५७ ॥

तदाकर्णयथ गोस्वामिपादैराप्तैः समाहिता ॥

“अम्बमाक्रन्द बालोयं श्रीकृष्णः स्वपतीति वै” ॥ ७५८ ॥



तदभिप्रेत्य साऽऽक्रंदादमंदात्सन्यवर्तत ॥ ७५६ ॥  
 अपुत्रावापुत्रमेष कृष्णमेकमन्यत ॥  
 नित्यं सेवार्थं बुद्बुद्ध्वा प्रातः स्नाता स्वहस्तयोः ॥  
 सुगंधसारमालेप्य मन्दिरे जुजुषे प्रभुं ॥ ७६० ॥  
 मुदोस्याथ स्वहस्ताभ्यां प्रसाधित मिति क्वचित् ॥  
 अम्बा पात्रेऽर्पयित्वाऽऽप्रेषयस्तस्य गताबहिः ॥ ७६१ ॥  
 तस्यास्तत्समये प्राप्ता गोस्वामिप्रभवो गृहे ॥  
 आचार्यगतयस्तेऽन्तरपचार्य पटावृत्तिं ॥ ७६२ ॥  
 ददृशुस्तं बालकृष्णं पिवन्तं तत्पयोमुदा ॥  
 तावत्ततः परावृताः कृत्वा जवनिकां पुनः ॥ ७६३ ॥  
 इत्था लक्ष्याम्बया पृष्टा कस्मादस्मान्महत्तमाः ॥  
 परावृता इति श्रुत्वाश्रोक्तं गोस्वामिभिस्तदा । ७६४ ॥  
 दृष्टः पयः पिवदन्नम्बे ! मयासेव्यस्तव प्रभुः ॥  
 तदाम्बयोक्तं भो बालः कृष्ण एष विलक्षणः ॥ ७६५ ॥  
 इति न ज्ञायते किं वा दृश्यतामिति ते पुनः ॥  
 दृष्ट्वाबालं तथा दृष्टाः परावृत्ता गृहं प्रति ॥ ७६६ ॥  
 अम्बां प्रत्युक्तवन्तश्च “हेम्बः वस्तदिदं पयः ॥  
 गृहे संप्रेषणी यंम ” इत्या श्रुत्येरितं तथा ॥ ७६७ ॥  
 “ अत्रोपि भो भवानेव पाता वातत्र पीयताम् ” ॥  
 इत्यावेदितहार्हा ते प्राप्ता निजगृहे मुदा ॥ ७६८ ॥



अथापितत्पयः सर्वं प्रेषयामास तद् गृहे ॥

पूर्वोभयस्वरूपज्ञा महापुरुषयोगतः ॥ ७६६ ॥

जनन्या इव यस्यावै नत्सलायाः प्रभुर्भुवन ॥

स्वेष्टमर्थयतीत्यासीत्मात्राऽऽत्प्रहभाजनम् ॥ ७७० ॥

इति श्रीमद् वैष्णववार्ता आलार्या सप्तदश वार्तामणिः





## वार्ता १८

( हरिवंश सारस्वत ब्राह्मण काशी )

हरिवंशो द्विवः सारस्वतः स्वाचार्य-सेवकः ॥

काशीवासी पाठकोऽभूत्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥ ७७१ ॥

सकदाचित् पत्तनाख्ये देशे व्यापृतये गतः ॥

तत्रत्यकोटपालेन प्रीतिमाश्रयसच्चिरम् ॥ ७७२ ॥

कोट पालोऽस्य स गुणैः सत्यवादादिभिर्वशः ॥

स्वान्तर्व्यचिन्तयच्चैतद्यदयं निःस्पृहः सुहृत् ॥ ७७३ ॥

किञ्चिदप्यर्थयेन्मतस्तद्दामि विचारयन् ॥

इत्येवं पत्तने सोऽपि कोटपालेन सम्मतः ॥ ७७४ ॥

चक्रे व्यापारममलं किमप्यर्थञ्च नार्थयत् ॥

मास फाल्गुनके पूर्वं दोल्लोत्सवदिनं द्रव्यात् ॥ ७७५ ॥

हरिवंशस्य पुरतो व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥

स्वप्ने प्रोक्तं स्वसेव्येन संबोध्य प्रभुणां निशि ॥ ७७६ ॥

कथं रे ! नैष्यसि गृहे न मान्दोल्लयिष्यामि ॥

इत्युक्तमात्रे प्रोद्बुद्धो हृदि चिंतितवान्सुधीः ॥ ७७७ ॥

तदैवोत्थाय सदगं कोटपालस्य सोऽगमत् ॥

दृष्ट्वा तमागतं कोटपालो दूरात् समुत्सुकः ॥ ७७८ ॥

अवदात्किमहो मित्रं प्राप्तः प्रार्थयितुमवान् ॥

तदोमित्यब्रवीत्सोऽपि नेयोऽहं मित्र ! सत्वरम् ॥ ७७९ ॥



क्लृप्तां दिनं द्रव्याभ्यन्तरिति श्रुत्वा उभ्युपैयिवान् ॥  
 बाढमित्यश्व आरोप्य व्यसृजत्तं सहानुगैः ॥ ७८० ॥  
 तदाज्ञया प्रार्तिग्रामं सवर्त्मनि समारुहन् ॥  
 श्रान्तं श्रान्तं विसृज्याश्वं निशि गेहं समागमत् ॥ ७८१ ॥  
 प्रातः स्नातोऽथ दोलार्थं सामग्रीं संनिधाप्य सः ॥  
 प्रभुमान्दोलयामास दोलारूढं मुदान्वितः ॥ ७८२ ॥  
 कियद्दिनावधि गृहे स उषित्वा गृही पुनः ॥  
 पत्तनाख्यं पुरमगात् व्यापार - परि चिंतया ॥ ७८३ ॥  
 वतमागतं समाल्लक्ष्य कोटपालेन तेन वै ॥  
 पृष्ठं मोऽमित्र ! किं शीघ्रं समभूते चिकीर्षितम् ॥ ७८४ ॥  
 यदर्थं गतवानाशु मत्सकाशाद्दिनद्वयम् ॥  
 तदोक्तं हरिवंशेन "किमप्येतादृशो व माः ॥ ७८५ ॥  
 अवाच्यं समभूत्कार्यं यदर्थं गतमाशु मे ॥  
 इत्युक्तो परतः तं वै कोटपालस्तथा मुदा ॥ ७८६ ॥  
 प्रीणयामास सद्यतं सोपितं स्वगुरौः सदा ॥  
 परं स्वमार्गीय वृत्तान्तं ना वेदयदमुष्क सः ॥ ७८७ ॥  
 श्रीमदाचार्यशरण-रीतिज्ञोऽनधिकारतः ॥ ७८७ ॥  
 ॥ इति श्रीमद्वैष्णववार्तामाहायामष्टादशोऽध्यायः ॥



तत्र श्रीमथुरानाथ प्रभोः सेवां समाचरत् ॥  
 स्वचतुर्विंशतकं द्वंद्वजं भोगमापयत् ॥ ७६७ ॥  
 तद्भोगीयप्रसादान्नं वैष्णवान्समभोजयत् ॥  
 अभावे वैष्णवानां स गवामग्रे न्यवेदयत् ॥ ७६८ ॥  
 वानराणामग्रतश्च महावननिवासिनाम् ।  
 परंतद्देव भोगान्नमद्यात् किञ्चिदपि स्वयं ॥ ७६९ ॥  
 नादाद् गोविन्ददासाख्यः श्रोताधर्मपराण्योः ॥  
 किंतु कृत्वा पृथग् लीटीः समर्प्याश्नानित्यशः ॥ ८०० ॥  
 एवं संसेवतस्तस्य धनं सर्वं व्ययं गतम् ॥  
 ततोगतः श्रीनाथस्य गोवर्धनगिरौ प्रभोः ॥ ८०१ ॥  
 परिचर्यां चकारोच्चैर्मध्यान्हे पात्रमार्जनीम् ॥  
 रात्रेश्च पश्चिमे यामे साधिके स समुत्थितः ॥ ८०२ ॥  
 याति स्म नित्यं मथुरां प्रष्टुं चक्रुर्महाराडलुः ॥  
 विश्रान्तितीर्थतः स्नात्वा देवार्थं भृतभाजनम् ॥ ८०३ ॥  
 प्रागराज भोगतो भ्येति पुनः सेवार्थमात्मनः ।  
 विधाय दर्शनं तस्य भूयः पात्राण्यमार्जयत् ॥ ८०४ ॥  
 महानसभुवं चापि मृदालिप्य पुनः पुनः ॥  
 परिचर्यामात्मनीनां प्रभोरेव विधाय सः ॥ ८०५ ॥  
 गिरेषोऽवतरति तिष्ठकं संनिवर्त्य सन् ॥  
 तुलसीकाष्ठजां मालां मुत्तार्य निजकण्ठतः ॥ ८०६ ॥  
 गिरेः पार्श्वप्रागमध्ये भिक्षार्थं याति नित्यदा ॥



आममन्नं स भित्तिवा चतुः पंचक शेटकम् ॥ ८०७ ॥  
 आहारभात्रं मिलितमायाति स्म पुनर्गृहम् ॥  
 पिष्टं विधाय तेनोपारोटिकाः लीटिका कृता ॥ ८०८ ॥  
 प्राज्याः पक्वा दर्शयित्वा लये श्रीशध्वजाग्रतः ॥  
 चरणामृतमाधाय कश्चिदन्तः प्रसादिताः ॥ ८०९ ॥  
 भुङ्क्ते स्म गोविन्ददास इति निर्वाहमाचरत् ॥  
 एवं निर्वाहतः सेवां कुर्वतो चिन्तयत् प्रभुः ॥ ८१० ॥  
 तस्य गोवर्धनाधीशो भाषपत्रं समज्जसं ॥  
 पुरोवदत्स्वाचार्याणामरिह्यग्रामवर्तिनाम् ॥ ८११ ॥  
 अहो मां खेदयत्येको भवदीयोऽत्रसेवकः ॥  
 तदाकर्ण्यारिह्यतः श्रीवल्लभाचार्यदीक्षिताः ॥ ८१२ ॥  
 चलिता नातिचिरतो विश्रान्ता अग्रिमे पुरे ॥  
 सत्कृता वैष्णवैः प्रत्युद्गमनासनवासनैः ॥ ८१३ ॥  
 तदैव तत्र स्वाचार्याः प्रष्टवन्तः समश्रितान् ॥  
 कथं रे! वैष्णवाः केन रोषितोऽस्मत्प्रभुर्गिरौ ॥ ८१४ ॥  
 तन्निशम्याश्रितैरुक्तं न नो विदितमणवपि ॥  
 तदाकलय्य स्वाचार्या ततो मधुपुरीमिताः ॥ ८१५ ॥  
 तत्रस्था प्रष्टवन्तोपिनाप्नुवन्निश्चयं ततः ॥  
 चलिता गोपालपुरं श्रीद्वारं प्राविशस्तदा ॥ ८१६ ॥  
 स्नात्वा श्रीवल्लभाचार्यारूढा गोवर्धनोपरि ॥  
 स्पृष्ट्वा कपोलौ श्रीशस्य स्वपाणिभ्यां तमब्रुवन् ॥ ८१७ ॥



गोवर्धनाधीश तातः ! विमनस्कोसि हा कुतः ? ॥  
 तदा गोवर्द्धनभृता प्रोक्तं श्रीशेन खिद्यता ॥ ८१८ ॥  
 “तात श्रीवल्लभाचार्याः शृणुतेदमिद्वान्वहम् ॥  
 भवदीयः कश्चिदेको मां खेदयति संवकः ॥ ८१९ ॥  
 अथाप्रच्छंस्तदा श्रुत्वाचार्या आहूय सेवकान् ॥  
 प्रत्येकं वदत स्वं स्वं सेवाकर्मह सेवकाः ॥ ८२० ॥  
 इत्यापृष्टा स्तदा प्रेक्षुः सेवकाः स्वस्वकर्म तत् ॥  
 प्रक्षान्नग्रहान्तं च तथा गोविन्ददासकः ॥ ८२१ ॥  
 तदावश्यैः कृत्वाचार्यैर्विज्ञातं यदनेन हि ॥  
 प्रभुर्गोविन्ददासेन रोषितो नात्र संशयः ॥ ८२२ ॥  
 प्रोक्तं मोस्ते प्रमोर्माद्यं प्रसादान्नं महानसात् ॥  
 तदोक्तं तेन भोः प्राज्ञा देवस्वं नाश्रयामिति ॥ ८२३ ॥  
 तदभिज्ञायोक्तमार्यैर्भोज्यं न स्तन्महानसात् ॥  
 तत्राप्युक्तं भो ! गुरवो गुरुस्वं कथमश्रयाम् ॥ ८२४ ॥  
 इत्याकर्ण्यतिनिवन्धवचनं तस्य ते तदा ॥  
 अत्रुवं स्तदिमां सेवामपि त्यज्य महामते ! ॥ ८२५ ॥  
 इति श्रुत्वाऽत्यजत्सेवां क्षत्रियः सोप्यहं कृती ॥  
 तदैव गोविन्ददासोऽभ्यगमन्मथुरां पुरीम् ॥ ८२६ ॥  
 केशवलय-सेवायां अध्यक्षत्वं समग्रहीत् ॥  
 मितद्रव्यातुरोधेन पुण्यक्षपठानतः ॥ ८२७ ॥  
 सेवां केशवदेवस्य कुर्वन्नास्तं स्म चित्रघा ॥